(४)

राज-विभवसुख छोड़कर, औरोंके हित-हेतु ।
सतत 'सत्य' घोषित किया, हे भवसागर-सेतु ॥

(५)

किये पुनीत विहारसे, नव नव नाना देश ।
प्रभो, सुनाया सुखद अति, स्वार्थरहित संदेश ॥

(६)

इस कारण तव पद निकट, प्रार्थनीय नहिं और ।
चितमें नित चित्रित रहे, यह चरित्र सिरमौर ॥

(७)

जिसके[1] पुण्य-प्रसादसे, यह जीवन-प्रासाद[2] ।
परहित-रत उन्नत विमल, बने विगत-अवसाद[3] ॥

(८)

नहीं चाहिए स्वार्थयुत, स्वर्गभोग भी हेय ।
पर-सेवाव्रत ही रहे, इस जीवनका ध्येय ॥

(९)

तव पुनीत जीवनचरित, महावीर भगवान् ।
सब जगका मंगल करे, बन आदर्श महान् ॥
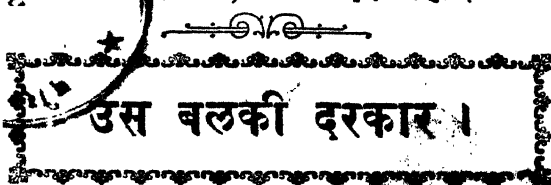
उस बलकी दरकार ।

गीत ।

मुझे है स्वामी, उस बलकी दरकार । (टेक)
अड़ी खड़ी हों अमित अड़चनें, आड़ी अटल अपार ।
तो भी कभी निराश निगोड़ी, फटक न पावे द्वार ॥

---

१ जिस चरित्रके । २ जीवनरूपी महल । ३ विषाद या नाशरहित ।

जैनहितैषी।

श्रीमत्परमगम्भीरस्याद्वादामोघलाञ्छनम्।
जीयात्सर्वज्ञनाथस्य शासनं जिनशासनम्॥

११ वाँ भाग | कार्तिक, मार्गशीर्ष वीर नि० सं० २४४१। | अंक १-२

प्रार्थना।

(१)

धनी-निर्धनीके धनी, ऊँच-नीचके मीत।
लघुसे लघुतर कीटके, पालक पिता पुनीत॥

(२)

मनुज-जाति तक ही नहीं, मर्यादित तव दृष्टि।
धर्मदेश-वृष्टिसे, की सुखमय पशु-सृष्टि॥

(३)

किया न केवल आपने, जैनोंका उपकार।
दयाधर्मसे आपके, उपकृत सब संसार॥

मुझे है स्वामी,
उस बलकी दरकार ॥ १

सारा ही संसार करे यदि, दुर्व्यवहार-प्रहार।
हटे न तो भी सत्यमार्गगत, श्रद्धा किसी प्रकार ॥
मुझे है स्वामी,
उस बलकी दरकार ॥ २

धन-वैभवकी जिस आँधीसे, अस्थिर सब संसार।
उससे भी न जरा डिग पावे, मन बन जाय पहार ॥
मुझे है स्वामी,
उस बलकी दरकार ॥ ३

असफलताकी चोटोंसे नहिं, दिलमें पड़े दरार।
अधिकाधिक उत्साहित होऊँ, मानूँ कभी न हार ॥
मुझे है स्वामी,
उस बलकी दरकार ॥ ४

दुखदरिद्रताकृत अतिश्रमसे, तन होवे बेकार।
तो भी कभी निरुद्यम हो नाहिं, बैठूँ जगदाधार ॥
मुझे है स्वामी,
उस बलकी दरकार ॥ ५

जिसके आगे तनबल धनबल, तृणवत् तुच्छ असार।
महावीर जिन ! वही मनोबल, महामहिम सुखकार ॥
मुझे है स्वामी,
उसहीकी दरकार ॥ ६
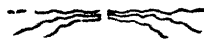
प्राचीन मैसूरकी एक झलक ।

जिस जातिमें कमज़ोरी आजाती है और फिर भी वह सोया करती है, उसका अवश्य नाश होता है। यह नियम है कि संसारमें कमज़ोरोंको कोई जीवित नहीं रहने देता। केवल बलवानोंको ही जीनेका अधिकार है। संसारके इतिहासमें ऐसी अनेक जातियोंके नाम मौजूद हैं, जिनका अब पता भी नहीं है। अतएव जो जाति अपने बलको क़ायम नहीं रख सकती उसका दुनियामें कहीं भी ठिकाना नहीं। इतिहास इस बातका साक्षी है कि वे पतित जातियाँ जो पहले कभी श्रेष्ठ रह चुकी हैं पुनः उन्नत हो गई हैं; परन्तु उन्होंने अपनी उन्नति अपने ही उद्योग और बलसे की है। उन जातियोंने जब अपने प्राचीन गौरवको अपने इतिहासमें देखा तब उनमें उत्साहका संचार हो गया। उत्साहके संचारसे उद्योग प्रारंभ हुआ और उद्योगसे उन्नति हुई। जैनसमाजकी दशा आज बड़ी ही शोचनीय है। क्या इसमें भी उत्साह का संचार हो सकता है, जैसा अन्य जातियों में हुआ है? अवश्य हो सकता है। जिन कारणोंसे उनकी उन्नति हुई है उनका प्रयोग करनेसे उन ही जैसा परिणाम होगा। यदि जैनसमाजके सामने उसके प्राचीन गौरवका इतिहास रक्खा जायगा तो उसमें भी उत्साहके दर्शन होने लगेंगे; परंतु 'इतिहास आये कहाँसे?' यह एक बड़ा भारी प्रश्न जैन विद्वानों-

के सामने उपस्थित है। बहुत से जैनग्रंथ और अन्य आवश्यक सामग्रियाँ नष्ट हो चुकी हैं। यदि अब भी जैनसमाज बची हुई सामग्रीकी रक्षा करना सीख जाय तो बहुत कुछ ऐतिहासिक साधन मिल सकते हैं। यदि जैन विद्वान् इसी बची खुची सामग्री—ग्रंथ इत्यादि—को लेकर परिश्रम करने लग जायँ, तो जैन-इतिहासके बहुत से अंगोंकी पूर्ति हो जाय। देखना है कि जैनसमाज इस बातको कब समझता है। परन्तु याद रहे कि इन बचेखुचे साधनोंको भी समाज खो बैठा, तो इसका भयंकर परिणाम यह होगा कि जैनसमाजका भी संसारके इतिहासमें केवल नामही नाम रह जायगा। सैकड़ों ग्रंथरत्न—जो हमारे प्राचीन गौरवके आधार थे—सदैवके लिए खो गये। कभी कभी हमारी सरकारकी कृपासे हमें अपने प्राचीन गौरवकी एकाध झलक दिखाई दे जाती है; उस समय हमको पता लगता है कि जैनसमाजकी स्थिति प्राचीन कालमें अब जैसी न थी। यदि सरकारकी हमारे ऊपर यह कृपा न होती, तो हमको इतना भी पता लगना कठिन था।

पाठको, आज आपको उस क्षेत्रके प्राचीन गौरवका कुछ दर्शन कराया जाता है जहाँ पर अब मैसूरराज्य विद्यमान है—जहाँ पर जैनबद्री और मूडबद्री नामक जैनियोंके अतिशय तीर्थ मौजूद हैं। इस संबधमें पहले बहुतसे अन्वेषण हो चुके हैं। यदि उन सबको लिखा जाय तो एक मोटी पुस्तक बन जाय। यहाँ पर हमारा अभिप्राय केवल कुछ नई बातें प्रकट करनेका है, जो हालमें ही मालूम हुई हैं। इनके साथ ही अन्य मनोज्ञ बातोंका भी उल्लेख किया जायगा। यदि जैनसमाजमें कुछ भी उत्साहका संचार हुआ

तो हम अपने परिश्रमको सफल समझेंगे। हमारा उद्देश जैनसमाजका ध्यान जैनइतिहासकी ओर आकर्षित करनेका है।

श्रवणबेलगुल—यहाँ गोमठस्वामीकी विशाल मूर्ति विन्ध्यगिरि पर्वत पर है, जो लगभग ६० फीट ऊँची है। मूर्तिकी बाईं ओर पत्थरका एक बड़ा बरतन है, जिसमें मूर्तिके प्रक्षालके लिए जल रहता है। इस बरतनका नाम है **ललितसरोवर,** जो इसके सामनेवाले पर्वत पर खुदा हुआ है। जब ललितसरोवर भर जाता है तब जितना जल अधिक होता है वह एक नालीके द्वारा बह जाता है। मूर्तिके पास एक पैमाना (स्केल) ३ फीट, ४ इंचका खुदा हुआ है। इसके ठीक बीचमें पुष्पके आकारका चिह्न बना है, जिससे पैमानेके दो बराबर हिस्से हो जाते हैं। कुछ लोग कहते हैं कि इस पैमानेकी लम्बाईको १८ से गुण करनेसे मूर्तिकी ऊँचाई निकल आती है; परन्तु १८ से ही क्यों गुणा किया जाय, इसका कारण नहीं मालूम। कुछ लोग कहते हैं कि यह पैमाना एक धनुषकी लम्बाईका सूचक है; परन्तु धनुष् ३$\frac{1}{2}$ हाथका होता है, ३ फीट, ४ इंचका नहीं। इस पैमाने पर हालमें ही ध्यान दिया गया है; परन्तु इस बातका पता अब भी नहीं लग सका है कि इसका क्या अभिप्राय है। मूर्तिके सामने घंटे पर एक नया लेख मिला है, जो प्राचीन नहीं है। मूर्तिके चारों ओर अनेक तीर्थंकरों और बाहुबलिस्वामी इत्यादिकी कुल ४१ प्रतिमायें हैं। अब यह मालूम हो गया है कि प्रत्येक प्रतिमा किस किसकी है। इस पर्वत पर अनेक मंदिर हैं। इनमेंसे एकमें

चंद्रनाथकी प्रतिमा है। यह मंदिर ई० सन् १६७२ के लगभग-का बना मालूम होता है। यहाँ पर एक बड़ा भारी पत्थर है, जिस पर कई लेख मिले हैं। इसके ऊपरी अंश पर जैनगुरुओंकी प्रतिमायें हैं। कुछ प्रतिमाओंके नीचे उनके नाम भी लिखे हैं। इस मंदिरके दरवाजेकी दायीं ओर एक स्त्रीकी मूर्ति हाथ जोड़े खड़ी है। अभी तक लोग इसे गुल्लका यक्षी समझते थे; परन्तु इसके नीचे अब एक लेख मिला है जिससे मालूम होता है कि यह एक सेट्टीकी पुत्री है, जो वहीं मर गई थी। यहाँके पर्वत पर तीन लेख और मिले हैं। चंद्रगिरि पर्वत पर भी कई मंदिर हैं। इनमेंसे दो मंदिरोंके नाम 'शान्तीश्वर बस्ती' और 'सुपार्श्व बस्ती' हैं। इनके बीचमें एक इमारत है, जो अब रसोईघरका काम देती है। इस इमारतमें एक मूर्ति बाहुबलि (गोमट) के भाई भरत-की है जो अधूरी बनाकर छोड़ दी गई है। मूर्तिसे कुछ दूर एक लेख है जिसमें लिखा है कि 'अरिट्ठो नेमिगुरुने........बनवाया'। क्या बनवाया, यह मिट गया है। लोग यह कहते हैं कि अरिट्ठो नेमि एक शिल्पकारका नाम है, जिसने गोमठ स्वामीकी विशाल मूर्ति बनाई थी; परन्तु यह ठीक नहीं। क्योंकि शिलालेखसे मालूम होता है कि 'अरिट्ठो नेमि' तो बनवानेवालेका नाम है—यह नहीं मालूम कि उन्होंने क्या बनवाया। यहाँ पर और भी कई लेख मिले हैं। ब्रह्मदेव मंदिरके सामने उन यात्रियोंके नाम मिले हैं जो यहाँके मंदिरोंको देखनेके लिए किसी समय आये थे। 'कच्चिन दोड़े' नामक तालके पास एक लेख मिला है, जिसमें लिखा है कि

तीन बड़े बड़े पत्थरके टुकड़े किसी कदम्बवंशीय राजाकी * आज्ञासे यहाँ पर लाये गये। इनमेंसे दो पत्थर तो अब भी पड़े हैं; परन्तु तीसरा बिलकुल खंडित हो गया है। एक और लेख मिला है जिसमें लिखा है कि उक्त ताल जिनदेवका (के निमित्त) है। सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण बातें 'लक्किदोड़े' नामक तालके पास मालूम हुई हैं। पर्वतके इस भागकी पहले कभी खोज नहीं हुई थी। यहाँ पर ३० नये शिलालेख मिले हैं जो नौवीं और दशवीं शताब्दियोंकी लिपिमें लिखे हुए हैं। इनमें अधिकतर उन यात्रियोंके नाम लिखे हैं जो यहाँ दर्शनके निमित्त आये थे। इनमेंसे कुछ यात्री जैनगुरु, कवि, पदाधिकारी और अन्य प्रतिष्ठित मनुष्य हैं। एक लेख 'कंड' नामक छंदमें दिया है और शेष सब गद्यमें हैं। इनमेंसे कुछमें यात्रियोंके नाम मात्र ही लिखे हैं। इस पर्वतकी रक्षाकी बड़ी जरूरत है, नहीं तो ये लेख धीरे धीरे मिट जायँगे और संसारमेंसे एक महत्त्वपूर्ण चीज़ जाती रहेगी। ये लेख यात्रियोंके नामोंको तो बतलाते ही हैं; परन्तु इनसे इस ऐतिहासिक बातका पता लगता है कि नौवीं और दशवीं शताब्दिमें श्रवणबेल्गुलका माहात्म्य कायम था और इसके दर्शनोंके लिए दूर दूरके लोग आते थे। कहा जाता है कि पार्श्वनाथ बस्तीके सामनेके मानस्तंभ और मंदिरके घेरेको उस ग्रामके दो निवासियोंने 'चिक्कदेवराज उडेयर' नामक राजाके समयमें —जिसने सन् १६७२ से १७०४ तक राज्य किया है–

* इस वंशके बहुतसे (कदाचित् सब) राजा जैन थे, इस बातका पता और लेखोंसे भी लगा है। क्या कोई महाशय इस वंशके राजाओंकी खोज जैन-ग्रंथोंसे करनेका कष्ट उठावेंगे जिससे इनका एक इतिहास तयार हो सके?

बनवाया था। श्रवणबेल्गुलका सबसे बड़ा मंदिर 'भंडारी-बस्ती' है। यह बारहवीं शताब्दिके उत्तरार्द्धका बना हुआ मालूम होता है। इसके फ़र्शमें जो पत्थरके चौके लगे हैं वे बहुत बड़े हैं। अधिकांश १२ फीट लम्बे ६ फीट चौड़े और ९ इंच मोटे हैं। न मालूम ये यहाँ किस तरह लाये गये होंगे। एक मंदिरमें एक प्रतिमामें पंचपरमेष्ठीकी मूर्तियाँ बनी हैं।

यहाँ पर एक 'जैनमठ' भी है। मठकी दीवारों पर जिनदेवों और जैनराजाओंके जीवनोंके अनेक दृश्य चित्रोंद्वारा दिखाये गये हैं। एक चित्रमें 'कृष्णराजा उडेयर (तृतीय)' सिंहासन पर बैठे हैं। एक चित्रमें पंच परमेष्ठि, श्रीनेमिनाथ, यक्ष, यक्षी, और मठके स्वामी हैं। एक चित्रमें श्रीपार्श्वनाथके समवसरणका दृश्य है। एक और चित्रमें महाराज भरतजीके जीवनके दृश्य हैं। मठकी कई मूर्तियों पर नवीन लेख मिले हैं। एक ताल और पर्वत पर भी कई लेख मिले हैं। इनमेंसे अधिकांश तामिल और ग्रंथलिपियोंमें हैं। इस मठके पुस्तकालयमें बहुतसे जैनग्रन्थ हैं। इसी ग्राममें पंडित दौर्बली शास्त्री रहते हैं। इनके निजी पुस्तकालयमें ताड़ और कागज़ पर लिखे हुए लगभग ५०० जैनग्रंथ हैं। पंडितजी अपने ग्रंथोंको बड़ी सावधानीसे सुरक्षित रखते हैं। वे उनको दिखानेको भी तैयार हैं। सरकारने इन ग्रंथोंकी एक सूची प्राप्त कर ली है। ताड़पत्रों पर लिखे हुए कुछ ग्रंथ एक गज़से अधिक लम्बे और ६ इंचसे अधिक चौड़े हैं। इनमेंसे बहुतसे अभी प्रकाशित नहीं हुए हैं। कुछ ऐसे हैं जो मठके पुस्तकालयमें भी नहीं है। यहीं पर एक और महाशयके

पुस्तकालयमें ३० जैनग्रंथ कन्नड़ भाषाके हैं। एक ग्रंथ हाल ही मिला है जिसका नाम 'जिनेन्द्र—कल्याणाभ्युदय' है। यह संस्कृतमें है और इसके लेखक अय्यप्पारव हैं। इसमें जिनपूजाकी विधि लिखी है। यह ग्रन्थ सन् १३१९ का लिखा हुआ है। लेखकने वीराचार्य, पूज्यपाद, जिनसेन, गुणभद्र, वसुनंदि, इंद्रनंदि, आशाधर, हस्तिमल्ल और एकसंधिका उल्लेख किया है। सन् १५७८ का लिखा हुआ एक ग्रंथ 'चंद्रप्रभ-शतपदि' कन्नड़ भाषाका मिला है।

श्रवणबेलगुलसे एक मील उत्तरको जिननाथपुर नामक ग्राम है। यहां 'शान्तिनाथ-बस्ती' नामक मंदिर है। इसमें जिनदेवों, यक्षों, यक्षियों, ब्रह्म, सरस्वती, मनमथ, मोहिनी, ढोल बजानेवालों, बाजा बजानेवालों और नर्तकों इत्यादिकी मूर्तियाँ हैं।

आसपासके ग्रामोंमें दो हिन्दुओंके मंदिर हैं जिनके स्तंभ और अन्य अंश किसी समय जैनमंदिरोंके भाग रहे होंगे; परन्तु अब वे इन मंदिरोंमें लगे हैं। इन अंशों पर जो लेख मिले हैं; उनसे यह बात मालूम हुई है। अंकनाथपुर नामका एक उजाड़ ग्राम है। यहाँका भी हिंदुओंका मंदिर जैनमंदिरोंके अंशोंसे बना है। इसका नाम अंकनाथेश्वर है। इस हिन्दू-मंदिरके दरवाजेके बगलके पत्थर पर एक जैन लेख मिला है और मंदिरके स्तंभ पर छोटी छोटी जैनप्रतिमायें बनी हुई हैं। लेख कोनगाल्व राजाके समयका है। मंदिरकी सीढ़ियों पर भी दो जैनलेख मिले हैं। एक जैनलेख मंदिरकी छतमें लगे हुए एक पत्थर पर मिला है। यह दशवीं शताब्दिका है। छतकी दो पटरियों पर चार जैनलेख और मिले हैं; ये भी

दशवीं शताब्दिके हैं। इसमें अब कोई संदेह नहीं है कि यह हिन्दू-मंदिर एक या अधिक जैनमंदिरोंके पत्थरोंसे बनाया गया है। कालकी गति बड़ी विचित्र है।

शालिग्राम—यह एक प्राचीन ग्राम है। सुना जाता है यहाँ पर रामानुजाचार्य आये थे और एक मंदिरमें उनकी मूर्ति भी यहाँ स्थापित है। यहीं पर दो जैनमंदिर भी हैं। एक तो नवीन है जिसको बने हुए केवल ४० वर्ष हुए हैं और दूसरा प्राचीन है, जो एक किलेके भीतर बना है। इसमें अनन्तनाथजीकी प्रतिमा पर एक लेख है, जो कुछ कुछ मिट गया है। इसमें एक चतुर्विंशति-तीर्थंकर प्रतिमा है, जिसमें बीचकी प्रतिमा खड्गासनस्थ है। बहुत अच्छी बनी है। इस प्रतिमाके पीछे एक प्राचीन लेख है। इस बस्ती अर्थात् मंदिरमें जो जैनप्रतिमाओंका समूह है वह ऐसा शोभायमान है कि देखते ही बनता है। अन्य प्रतिमाओंके सिंहासनों पर भी कई लेख मिले हैं। घंटों पर भी लेख मिले हैं। इस ग्रामसे पूर्वकी ओर कुछ दूरी पर एक चट्टान है; इसे गुरुगल्ले (गुरुकी चट्टान) कहते हैं। इस चट्टान पर दो चरणपादुकायें बनी हैं। श्रीवैष्णव कहते हैं कि ये रामानुज आचार्यके चरण हैं और जैनी इनको अपने गुरुके चरण बताते हैं। जैनी इनकी पूजा विशेष कर विवाह इत्यादिके अवसरों पर करते हैं। इसके उत्तरकी ओर एक लेख मिला है, जिससे अब मालूम हो गया है कि ये चरण-पादुकायें जैनगुरु श्रेयोभद्रकी हैं। यहाँके कुछ जैनियोंको अब तक यह विश्वास था कि ये चरण रामानुजाचार्यके हैं और कुछ वर्ष हुए

स्वयं जैनियोंमें ही इस बात पर झगड़ा उठ चुका है कि ये पादुकायें रामानुजाचार्य की हैं या जैन गुरुकी। एक चट्टान पर तीन सर्पोंके चित्र भी बने हैं।

चिक्क हनसोगे—इस ग्राममें एक केशवका मंदिर है। एक मंदिर और है, जिसको 'आदिनाथ-बस्ती' कहते हैं। मंदिर दुर्दशामें है; परन्तु आदिनाथ, शान्तिनाथ, चंद्रनाथकी मूर्तियाँ अच्छी दशामें हैं। इस मंदिरके दरवाजे पर कुछ नये लेख मिले हैं। ये कन्नड़ लिपिमें हैं। इन लेखोंसे और पहले मिले हुए लेखोंसे अब यह सिद्ध हो गया है कि यह स्थान किसी समय जैनियोंका अतिशय क्षेत्र था। इसमें एक समय ६४ बस्तियाँ अर्थात् मंदिर थे; परन्तु अब इस ग्राममें तथा इसके आसपासके ग्रामोंमें एक भी जैनी नहीं रहता। उपर्युक्त आदिनाथका मंदिर टूटा हुआ पड़ा है, जिसकी कोई खबर लेनेवाला नहीं। कुछ वर्ष हुए यहाँकी एक नदीमेंसे कई गाड़ियाँ भरकर धातुकी जैनप्रतिमायें और बरतन निकाले गये थे। ११ वीं शताब्दिमें इसके जैन-मंदिर विद्यमान थे।

कित्तुर—यहाँ पर एक पार्श्वनाथ बस्ती है, जिसकी दशा शोचनीय है। इस मंदिरमें अब एक लेख मिला है जिससे मालूम हुआ है कि यह मंदिर बड़ा प्राचीन है। मंदिरके बरतनों पर भी कुछ लेख पाये गये हैं।

इन अन्वेषणोंसे जो नई ऐतिहासिक बातें मालूम हुई हैं उनका कुछ सार यहाँ पर लिखा जाता है। अंकनाथपुरके लेखोंसे यह मालूम हुआ है कि यह स्थान किसी समय जैनियोंका अच्छा क्षेत्र था।

कुछ जैनलेखोंसे गंगवंशीय राजाओंके समयका पता लगता है। चंद्रनाथ बस्तीके एक लेखसे मालूम हुआ है कि उसकी प्रतिमा बालचंद्र-सिद्धांत-भट्टारके शिष्य के....लभद्र-गोरवने विराजमान कराई थी। यह कदाचित् सन् ९९० की बात है। एक जैनलेखसे पता लगा है कि देवियब्बे कांति नामक स्त्री पाँच दिन तपस्या करके स्वर्गको चली गई। एक लेखमें चमकब्बे नामक स्त्रीकी मृत्यु लिखी है। वह उदिग-सेट्टी और डेवरदासय्यकी माता थी। वह कुंदकुंदाचार्यकी अनुयायिनी थी। एक और लेखमें महेन्द्रकीर्ति नामक जैनमुनिका अष्टकर्म क्षय करके स्वर्गवास (?) लिखा है। इन लेखोंका समय दशवीं शताब्दि मालूम होता है। श्रवणबेल्गुलके यात्रियोंके लेख मनोरंजनसे खाली नहीं हैं। जैसा पहले लिखा जा चुका है ये लेख नौवीं और दशवीं शताब्दियोंमें श्रवणबेल्गुलकी प्रतिष्ठाको प्रगट करते हैं। इनमेंसे कुछ लेख आठवीं शताब्दिके हैं। कुछ लेखोंमें तो केवल यात्रियोंके नाम ही दिये हैं और कुछमें उनका परिचय भी दिया है। पहले प्रकारके लेखोंके उदाहरण लीजिए। गंगरवंठ (गंगवंशीय योद्धा), बदवरनंठ (निर्धनोंका मित्र), श्रीनागती आल्दम (नागतीका शासक), श्रीराजन चट्ट (राजाका व्यापारी)। दूसरे प्रकारके लेखोंके उदाहरण श्रीएचय्य, शत्रुओंके लिये कठोर; श्रीईशरय्य, दूसरोंकी स्त्रियाका ज्येष्ठ; श्रीमदरिष्टनेमि पंडित, प्रतिद्वंदी मतोंका नाशक; श्री नागवर्म........सूर्य। और भी बहुतसे नाम दिये हैं, जिनमें विशेष रविचन्द्रदेव, श्रीकविरत्न, श्रीनागवर्म, श्रीवत्सराज बालादित्य, श्रीपुलिक्कय्य, श्रीचामुण्डय्य, मारसिंगय्य,

इत्यादि हैं। इनमें कविरत्न और नागवर्म ये दोनों कन्नड़ भाषाके प्रसिद्ध कवि मालूम होते हैं जो दशवीं शताब्दिमें विद्यमान थे। मारसिंगय्य एक गंगवंशीय राजाका नाम है। चामुण्डय्यया चामुंडराय उस सेनापतिका नाम मालूम होता है जिसने गोमठ स्वामीकी विशाल मूर्ति बनवाई है। एक लेखमें मूर्तियोंके बनानेवाले शिल्पकारोंके नाम चंद्रादित्य और नागवर्म लिखे हैं। एक लेखमें सर्पचूळामणि नामक जैनका नाम लिखा है। यह नहीं मालूम कि ये कौन थे। कई लेखोंमें इस बातका उल्लेख है कि अमुक अमुक मनुष्योंने आकर उस जगहके दर्शन किये अथवा तपस्या की।

कदम्बवंशके एक राजाका जिसने पत्थरके तीन टुकड़े मँगवाये थे, उल्लेख हो चुका है। श्रवणबेलगुलके एक और लेखमें लिखा है कि बासबेके पुत्र राचय्य, जो कदम्बवंशके थे, संसारको त्याग कर यहाँ आये और तीन दिन तक तपस्या करके देवगतिमें पहुँचे। इस लेखके लिखनेवालेका नाम 'बल्देव' दिया है। यह लेख कदाचित् सन् ९५० में लिखा गया होगा।

अनंतकेश्वर नामक मंदिरके एक लेखमें पता चला है कि दुद्दमल्लरस नामक राजाने, जो हैंगडंगमें रहते थे, प्रभाचंद्र देवको एेबवल्लि नामक ग्राम एक जिनमंदिर बनानेके लिए दिया। इस राजाका और भी लेखोंमें नाम आया है; ये सन् १०८५ के लगभग विद्यमान थे। कदाचित् ये राजा कोनगाल्व वंशके थे।

होलेनरसिपुरके रामानुजाचार्यके मंदिरमें एक जैनलेख मिला

है, जिससे वीर कोनगाल्वदेव नामक राजाका पता चलता है। इसमें लिखा है कि कुंदकुंद-परंपरा, पुस्तक गच्छ, देशीय गण और मूलसंघके मेघचन्द्र-त्रैविद्य-देवके शिष्य प्रभाचन्द्र सिद्धान्तदेवके श्रावक महामंडलेश्वर वीरकोनगाल्व-देवने सत्यवाक्य-जिनालयको बनवाया और उसके निमित्त प्रभाचन्द्र-सिद्धांत-देवको 'हैने-गडलू' नामक ग्राम दान दिया और उस ग्रामको करसे भी मुक्त कर दिया। इस लेखके मेघचन्द्र और प्रभाचन्द्र 'श्रवणबेल्गोला इन्सक्रिपशन' न० ४७ में भी आये हैं। यह दान सन् १११९ ई० के लगभग दिया गया मालूम होता है।

शालिग्रामकी अनन्तनाथ बस्तीकी जो चतुर्विंशति प्रतिमा है, उसके पीछे एक लेख है। उसमें लिखा है कि मूल संघ और बलात्कार गणके महानंद सिद्धांतचक्रवर्तिके श्रावक सम्बु-देव-की स्त्री बोममल्वेने इस प्रतिमाका दान (जैनियोंके) 'आणति नोम्पि' नामक व्रतके समाप्त करने पर किया था।

इनके अतिरिक्त कई और जैनप्रतिमाओं पर लेख मिले हैं, जिनमें बहुतसे जैनमुनि, भट्टारक संघ, शाखा, गण, कुल इत्यादि-का पता चलता है। इनसे कई राज-वंशोंका भी निर्णय हो सकता है। यदि अब तक संग्रहीत संपूर्ण जैनलेखोंको इकट्ठा करके देखा जाय तो हमारे यहाँकी बहुत पट्टावलियाँ दुरुस्त हो जायँ और अनेक जैनराजाओंका पता लग जाय। भिन्न भिन्न कालोंमें जैनसमाजकी स्थिति कैसी रही है, इस बातका भी पता लग जाय। उदाहरणार्थ, अनेक जैनशिलालेखोंसे अब यह निश्चय

हो चुका है कि जैनधर्मका महावीर स्वामीके बाद नौवीं, दशवीं और ग्यारहवीं शताब्दियोंमें सबसे अधिक जोर रहा। जिनसेन इत्यादि बड़े नामी नामी लेखक, जैनमुनि और अमोघवर्ष इत्यादि राजा इसी कालमें हुए हैं। मथुराके जैनलेखोंसे पता चलता है कि स्त्रीसमाजकी रुचि धर्मकी ओर अधिक थी। परिश्रम करनेसे ऐसी ही अनेक बातोंका पता लग सकता है और लगा है।

—संशोधक।

तपका रहस्य।

(जैनहितेच्छुके एक लेखके एक अंशका अनुवाद।)

यह सब जानते हैं कि 'दान' और 'शील' के पालनेवाले मनुष्यके स्थूल और सूक्ष्म दोनों शरीर निर्मल रहते हैं। तथापि दो कारण ऐसे हैं जिनसे इन दोनों ही शरीरोंमें मलोंके या अनिष्ट तत्त्वोंके प्रवेश होनेकी संभावना बनी रहती है। एक तो मनुष्य मात्रसे भूल होती है, प्रमाद होता है और दूसरे भूल या प्रमादसे, जानकर या बिना जाने, शारीरिक या मानसिक अतिक्रमण या व्यतिक्रमण या अनाचार हो जानेका संभव रहता है। इस प्रकार ज्ञात या अज्ञात अवस्थामें जो शारीरिक या मानसिक दोष लग जाते हैं यदि उनके भस्म करनेका उपाय तत्काल न किया जाय तो वे धीरे धीरे बढ़ते जाते हैं और भयंकर रूप धारण करके बहुत बड़ी हानि पहुँचाते हैं। जैसे, शीलसम्बन्धी बारह व्रतोंमें जो

सातवाँ व्रत है उसमें आज्ञा दी गई है कि मनुष्यको नियमित और मिताहारी होना चाहिए। इससे उसके स्थूल-सूक्ष्म-शरीरोंकी निर्मलता बढ़ती है। यदि वह कभी स्वादके वशीभूत होकर भोजन कर ले और चित्ताकर्षक दृश्योंके देखनेके लिए बहुत रात तक जागता रहे और इस तरहकी भूल बार बार करता रहे तो बीमार पड़ जायगा। परन्तु यदि इस अपराधका दण्ड या इस भूलका प्रायश्चित्त शीघ्र कर लिया जायगा, तो अनिष्ट परिणाम न होगा। पेटपर पड़े हुए बोझेको कम करनेके लिए लंघन या उपवास कर लिया जाय अथवा विश्राम लिया जाय तो इतनेहीमे बुरा असर दब जायगा। इस तरह जो दोष ज्ञात अवस्थामें बन गये हैं उनका असर अधिक न बढ़ने पावे, इसके लिए प्राकृतिक ओषधि अथवा तपकी आवश्यकता है। इसी तरह सांसारिक काम धंधोंमें पड़े रहनेमे आत्मभान नहीं रहता है और विभावरमणता हो जाती है। असत्य बोला जाता है, अयोग्य काम बन जाते हैं और मानसिक शान्ति खो दी जाती है। परन्तु यदि उसके बाद एकान्तमें बैठकर स्वाध्याय अर्थात् ज्ञानदायक पुस्तकोंका वाचन मनन किया जाय, ध्यान पश्चात्ताप और जनसेवाकार्य किये जावें तो खोई हुई मानसिक शान्ति फिर प्राप्त हो जाती है और लगे हुए दोष न्यूनाधिक रूपसे दूर हो जाते हैं। इसके सिवाय पूर्वजन्मकृत कर्मोंको भस्म करनेके लिए भी तपकी आवश्यकता रहती है। इस तरह पूर्वके तथा वर्तमानके दोषोंको निवारण करनेके लिए-शारीरिक और मानसिक अतिक्रमणके अनिष्ट प्रभाव नष्ट या न्यून करनेके लिए तपकी बड़ी भारी आवश्यकता है।

यह तप शरीरके तथा मनके भीतरके मलको जला डालनेके लिए शक्तिशालिनी आँच या अग्नि है और इसी लिए जगद्गुरु तीर्थकरोंने इसके दो भाग किये हैं—एक **बाह्य तप** और दूसरा **अन्तरंग तप।**

आजकल लोगोंमें बाह्यतपके सम्बन्धमें जितनी अज्ञानता या बेसमझी फैली हुई है उतनी शायद ही किसी अन्य विषयके सम्बन्धमें फैली होगी। जो शरीरशास्त्र और वैद्यकशास्त्रसे सर्वथा अपरिचित हैं, अँगरेज़ीका भाषाज्ञान मात्र प्राप्त कर लेनेसे जो आपको विद्वान् समझने लगते हैं, वे तो इस बाह्यतपको केवल वहम, पागलपन, Humbag या शारीरिक अपराध समझते हैं और जो धर्मके रहस्योंसे अनभिज्ञ साधु नामधारियोंके गतानुगतिक पूजक हैं वे केवल लंघनको ही आत्मकल्याणका मार्ग समझ बैठे हैं और शारीरिक तथा मानसिक स्थितिका ज़रा भी खयाल किये बिना शक्तिसे बाहर तपस्या करके निर्बल बनजानेको ही सब कुछ मान लेनेकी मूर्खता करते हैं।

अज्ञानतासे होनेवाली इन दो प्रकारकी भूलोंसे, चतुर पुरुषोंको अलग रहना चाहिए। बाह्यतपका प्रारम्भ उपवाससे नहीं किन्तु स्वादत्याग, ऊनोदर (भूखसे कम खाना) एकासन, व्यसनत्याग आदिसे करना चाहिए। जिसे अधिक मसाला खानेकी आदत पड़ रही हो, उसको कुछ दिन तक स्वाद परित्यागरूप तप करना चाहिए; जिससे जिह्वाको वशमें रखनेकी आदत पड़, अधिक मसालेके खानेसे जो हानि होती है उससे बचा रहे और थोड़ासा कारण

पाकर उत्तेजित होजानेवाला मन कुछ संयमी बने । बारबार खानेकी आदतवालेको, खूब डटकर खानेवालेको, अपचकी और अस्थिर मनकी शिकायतें करनेवालेको ऊनोदर तप करना चाहिए, अर्थात् कुछ दिनोंके लिए भूखसे भी कम खानेका नियम ले लेना चाहिए, कुछ समय तक दिनमें केवल एक ही बार खाना चाहिए और बीड़ी, सुपारी, तम्बाकू आदि व्यसनोंसे भी नियमित समय तक पृथक् रहना चाहिए । ये सब बातें तपकी प्रारम्भिक अवस्थाकी हैं । इस भाँति शरीरकी असत् (अस्वाभाविक) क्षुधा, अथवा लालसाओंको अंकुशमें रखनेकी आदत पड़ जाती है और तब उपवासकी दूसरी सीढ़ी पर चढ़ना सुगम होता है ।

पाश्चात्य विद्वानोंने, शरीरशास्त्रके ज्ञाताओंने, और अनुभवी पुरुषोंने उपवासके विषयमें बड़ी गहरी खोजें की हैं और भाँति भाँतिके प्रयोगों द्वारा कई सत्य सिद्धान्त स्थिर किये हैं । अतः हम भी इस विषयमें यहाँ प्राचीन ग्रन्थोंका हवाला न देकर, वर्तमान वैद्य-विद्या, और सायन्सके सिद्धान्तोंका उल्लेख करेंगे । बरनार मैक्फेडन (Bernarr Macfadden) नामी अमेरिकन शोधक लिखता है:—

" शरीरमें लगातार उत्पन्न होनेवाले विषोंको—जो बहुत समय तक रहनेसे नानाप्रकारके रोगोंका रूप धारण कर प्रगट होते हैं—निकाल बाहिर करनेके लिए जितने उत्तम और रामबाण उपाय हैं उनमें सबसे अच्छा उपाय उपवास है ।

" इसमें कुछ सन्देह नहीं कि प्रकृति रोगोंका इलाज करनेके

लिए जो जो उपाय करती है उन सबमें 'उपवास' सर्वोत्कृष्ट और आवश्यकीय है। यदि हम कोई ऐसा पदार्थ ढूँढें जो कि सर्व रोगोंको हटा सके तो वह सिवाय उपवासके और कोई नहीं हो सकता; क्योंकि यह सर्व उपायोंसे आगे खड़ा रहता है। रोगोंका मुख्य कारण शरीरमें उत्पन्न होनेवाले नाना भाँतिके विषोंका समूह है और उन विषोंको निकाल बाहर करनेके हेतु अन्य सारे स्वाभाविक उपायोंमेंसे, प्रथम और आवश्यकीय उपाय 'उपवास' है।

"उपवास करनेमें सबसे बड़ी कठिनता यह है कि मनको समाधान नहीं होता। वह नहीं समझता कि उपवास करना शरीरके लिए अच्छा है। अतः तुमको विश्वास रखना चाहिए कि मनुष्य उपवास करनेसे अथवा भूख रहनेसे न तो अशक्त होकर बुरी स्थितिको प्राप्त होते हैं और न क्षण मात्रमें भूमि पर गिरकर मर ही जाते हैं। इसकी लेश मात्र भी शंका न रक्खो। बहुत लोग समझते हैं कि भूखे रहनेसे मनुष्य मर जाते हैं और उनका यह विश्वास ही उन्हें मार डालता है। उपवास और ऊपर कहे हुए विषके रहस्यसे अभिज्ञ पुरुष यदि पाँच या सात दिन तक उपवास करे, तो सचमुच ही उसका मर जाना सम्भव है। क्योंकि उसके मनमें यह विश्वास जमा रहता है कि इतने दिनतक उपवास करनेसे आदमी अवश्य मर जाता है। इससे यह विदित होता है कि मनका शरीर पर बहुत गहरा प्रभाव पड़ता है। इस समय मैं यह जोर देकर कहूँगा कि जिस प्रकारसे उक्त बुरा कार्य्य मनसे हो जाता है उस ही भाँति दूसरी तरहका उत्तम कार्य भी मनसे किया जा सकता है। यदि

तुम मनकी शक्तिको विश्वासपूर्वक मानोगे तो चाहे कैसा ही रोग क्यों न हो तुम उससे मुक्त हो सकोगे और मनको स्वस्थ करनेके लिए दृढ संकल्प करना ही चित्तकी दूसरी शक्ति है। गरज यह कि यदि तुमको उपवाससे नीरोग बनना है तो प्रथम ही उपवास सम्बन्धी भय या चिन्ताको मनसे अलग कर दो।

" उपवाससे शरीरके भीतरकी सारी गलीज़ अथवा विषैली चीजें निकल जाती हैं। इसका एक आश्चर्यजनक किन्तु जाना हुआ प्रमाण यह है कि उपवासके समय जिह्वाके ऊपर थरसी जमी हुई मालूम होती है और मुँहमे दुर्गंध निकलने लगती है। जिह्वा ख़राब हो जाती है, स्वाद बिगड़ जाता है और बदबू निकलने लगती है। ये सब बातें प्रगट करती हैं कि उपवासकी बहुत आवश्यकता थी। पाचनक्रिया करनेवाले सारे अवयव जो अब तक उदरमें गये हुए भोजनको पचानेहीमें ध्यान देते थे और पुष्टिकारक तत्त्वोंको शरीरके प्रत्येक भागमें वितीर्ण करनेका काम करते थे, वे उपवासके समय अपनी कार्यप्रणालीको तबदील कर देते हैं। यही बात दूसरे शब्दोंमें इस तरह कही जा सकती है कि वे भोजनको पचानेके बदले ज़ह-रको बाहिर निकालनेका काम करने लगते हैं। उनका यह कार्य ही शरीरको नीरोग करनेका उपाय है और उपवाससे बीमारियाँ दूर होनेका कारण भी यही है।

" साधरणतया नीरोग मनुष्यके मुखसे दुर्गन्ध नहीं निकलती; किन्तु यदि किसीके मुँहसे दुर्गन्ध आने लगे तो समझना चाहिए कि इसके शरीरमें कुछ रोग है। रोगके सारे ऊपरी कारणोंके विदित

हो जाने पर भी, यदि तुम उस पर कुछ ध्यान न देकर, लापरवाही करोगे तो याद रक्खो कि वह कभी न कभी एक बड़े भारी भयङ्कर रूपमें प्रगट होगा जिससे या तो तुम मरणासन्न हो जावोगे या ऐसा कोई निरन्तर रहनेवाला (Chronic) रोग हो जायगा कि जिससे मुक्त होना कठिन ही नहीं बल्कि असम्भव हो जायगा। इसमें भी खास कर यदि आधुनिक प्रचलित एलोपेथी (Allopathy) नामक वैद्य-विद्याके अनुसार इलाज कराया करोगे, तो उन इलाजोंके साथ जो थोड़ी बहुत खुराक देनेकी रीति है उससे अवश्य मरणको प्राप्त हो जाओगे।"

डाक्टर मैक फेडन आगे चलकर कहते हैं कि "बीमारीके समय उदरको भोजन देकर कष्ट पहुँचाना एक प्रकारका अपराध है। इस बातको मिथ्या प्रमाणित करनेके लिए यदि कोई वैद्य (Doctor) अथवा वैज्ञानिक (Scientist) तत्पर हो तो उसको मैं चैलेंज (Challenge) देता हूँ। जब तुम किसी कठिन रोगसे पीड़ित हो रहे हो, जैसे कि फेफड़े-की सूजन, ज्वर आदि—तब भली भाँति समझ लो कि तुम्हारी नाड़ी अभीतक तुम्हारे हाथहीमें है। ये सब तकलीफें भाँति भाँतिके चिह्न हैं। इनका अभ्यास करो, इनकी सूचनाओंको सीखो, और ज्यों ही ये चिह्न प्रगट हों, त्यों ही उपवास करना प्रारम्भ कर दो। इस एक ही उपायसे तुम अपने पर आक्रमण करनेवाले अनेक कठिन रोगोंको रोक सकोगे, और इसके साथ ही साथ यदि अन्य सावधानियाँ भी रक्खोगे, तो ध्यान रक्खो कि रोगी होना तुम्हारे लिए असम्भवसा हो जावेगा।

" मुझे याद है कि मेरे जीवनमें मुझ पर न्यूमोनियाके कई आक्रमण हुए हैं। उसके चिह्नोंसे ज्यों ही मुझे उसका आना मालूम होता था त्यों ही मैं आठ या दस दिनोंतक बिस्तरों पर पड़कर कष्ट उठानेके बदले यह सच्चा उपाय अर्थात् 'उपवास' करना प्रारम्भ कर देता था और अधिकसे अधिक पाँच दिनमें ही उसे बिदा कर देता था। इसही भाँति प्रत्येक कठिन रोगका इलाज हो सकता है।

" जब तुम्हें थकावट मालूम हो, सुस्ती आने लगे, अवयव निकम्मेसे जान पड़ने लगें, अथवा तुम्हारा मूत्राशय (Kidneys) अपना नियमित कार्य करना बन्द कर दे, और जब तुम्हारे शरीरके किसी भी भागमें विकट वरम (सूजन) अथवा गरमीका जोर बाहर आता हुआ जान पड़े, तो उसी समय तुम्हारा फ़र्ज़ है कि तुम इन विकारोंको दबा देनेका प्रयत्न करो। इसके पहले ही कि रोग तुमको अपने जालमें फँसा लेवे तुमको चाहिए कि ऊपर कहे हुए अथवा अन्य किसी इलाजके द्वारा उसका नाश कर दो। यदि तुम यह सूचना ध्यानमें रख लोगे, तो डाक्टरोंको सैकड़ों रुपयोंका बिल न चुकाना पड़ेगा। इतना ही नहीं बल्कि कितनी ही वेदनाओंसे और कठिनाइयोंसे भी बच जाओगे और सम्भव है कि तुम्हारे जीवनके वर्षोंमें भी किसी क़दर वृद्धि हो जाय। यदि तुम उपवासके सिद्धान्तोंका ज्ञान प्राप्त करोगे तो यह ज्ञान हजारों लाखों रुपयोंकी क़ीमतके जवाहरातसे भी विशेष क़ीमती हो जायगा। क्योंकि संसारमें पहला सुख कायाका नीरोग रहना है।

" अवयवोंके कार्य्योंमें ख़लल होनेका—बाधा पड़नेका नाम 'रोग'

या ‘ दर्द ’ है। कई प्रसंगोंमें तुम यों भी कह सकते हो कि रोग यह निर्बल जीवन शक्ति है, जीवनशक्ति (जो शरीरमें है) का घटना है, अथवा शरीरके काम करनेवाले कल पुरजोंमें कुछ खराबीका हो जाना है। यह मत समझो कि तुम पर किसी जातिके कीड़ोंने हमला किया है जिससे तुम्हें रोग होगया है अथवा कोई विचित्र जातिके सूक्ष्म जंतु तुम्हारी श्वासके साथ भीतर चले गये हैं। रोग प्रकट हुआ है, इसका कारण यह है कि तुम उसके लिए तैयार हुए हो, अथवा तुमने स्वयं वैसी हालत तैयार की है। बहुतसे उदाहरणोंमें रोगका कारण यह होता है कि तुमने प्राकृतिक नियमोंका भंग किया है। अर्थात् तुम प्रकृतिके नियमोंमे प्रतिकूल चले हो और उसके दण्डके रूपमें तुम रोगके पात्र हुए हो। तो भी स्मरण रक्खो कि रोग एक मित्रकी भाँति ही आता है, शत्रुकी भाँति नहीं। इस बातको तुम्हें अच्छी तरह समझ लेना चाहिए कि न यह रातको चुपचाप घरमें घुस आनेवाले चोरकी भाँति छुपकर आता है और न तुमको हैरान करनेके लिए आता है। यह तुम्हें लाभ पहुँचाने आता है; और बहुतसे उदाहरणोंसे प्रतीत होता है कि यह तुम्हारे स्थूल शरीरको साफ़ कर जाता है।

“ यद्यपि रोग (दर्द) एक ही है, किन्तु वह सैकड़ों मार्गोंसे आता है और उसके सहस्रों चिह्न दिखाई देते हैं। वैद्यलोग उन चिह्नोंको भिन्न भिन्न रोगोंके नामोंसे पहचानते हैं। मगर वे हैं सब एक ही रोगके परिणाम। अभ्याससे, व्यवहारोपयोगी रीतिसे, अथवा कुदरती उपायोंकी रीतिसे, जो मनुष्य आरोग्यता

प्राप्त करना जानते हैं वे समझते हैं कि रोग एक ही है और वह बाहरी वस्तुओंके अथवा ख़राब चीज़ोंके शरीरके रक्तमें मिल जानेसे होता है ।

" जब देखो कि शरीरमें कोई पीड़ा या रोग है, तब समझ लो कि जो अवयव रक्त बनानेका कार्य करते हैं और जिनमें वास्तविक जीवनशक्ति रहती है वे अपना कर्तव्य पूर्ण नहीं कर रहे हैं । अतः रक्तमें जो मल एकत्रित हो गया है, उसको बाहर निकालना चाहिए । किन्तु जब यह कार्य करनेवाले अवयव अशक्त हो जाते हैं तब विषमय पदार्थोंको रक्तमेंसे भिन्न नहीं कर सकते । उस समय कठिनाई आ पड़ती है, बखेड़ा खड़ा हो जाता है और शरीरके आवश्यकीय अवयवोंके कार्यमें बाधा आ पड़ती है । जब ये अवयव शरीरमें से इन विषोंको बाहर निकालनेमें अशक्त हो जाते हैं तब तुम्हारे जीवनको बचानेके लिए रोग दिखलाई देता है और वह मानों यह सूचित करता है कि भोजनको पचानेवाले अवयवोंका जो सदाका काम है उसे बन्द कर दो और उन्हें ज़हरको बाहर निकालनेके काममें लगा दो । इस तरह ' रोग ' भी एक सहायक मित्र है ।

" आजकल ४० से ५० दिनोंतकका उपवास करना तो (अमेरिकामें) साधारण बात हो गई है । जिन लोगोंने इतने उपवास किये हैं, उनसे मैं मिला हूँ । मैंने सुना है कि एक अमेरिकनने ७० दिनका उपवास किया था ! इसे लोग बहुत आश्चर्यजनक समझेंगे; परन्तु वास्तवमें उपवास ही अशक्ति और अधिक

खानेसे उत्पन्न हुए रोगोंको मिटानेका इलाज है। एक पूर्ण उपवास करनेके बाद शरीर अपने आप ही अपने वास्तविक वज़नकी प्राप्ति कर लेता है।"

मि. सिंकलरका स्वानुभव।

अमेरिकाके प्रसिद्ध डाक्टर मि. सिंकलर लिखते हैं कि–"मेरा प्राकृतिक सुदृढ़ शरीर अनियमित आहारसे निर्बल हो गया था। मैं न कभी मदिरापान करता था, न सिगरेट पीता था और न कभी चाय या काफ़ी ही पीता था। मैं एक कट्टर वैजीटेरियन (शाक–फल–अन्नभोजी) था। किन्तु बहुत खानेसे और समय पर न खानेसे मुझे अजीर्ण (Dyspepsia) का रोग हो गया और तब मेरे शरीरमें नाना भाँतिके रोग उत्पन्न होने लगे। अन्तमें ऐसी खराब हालत हुई कि मेरे लिए दुग्ध पचना भी कठिन हो गया। तब मैंने उपवासके द्वारा अपने रोगोंकी चिकित्सा करना प्रारम्भ किया। पहले चार दिनोंमें मेरी जो हालत रही उसको मैं यहाँ संक्षेपमें बतलाता हूँ।

"पहले दिन मुझे बहुत ही क्षुधा लगी, वह अप्राकृतिक अग्निके समान थी। इसे प्रत्येक अजीर्णसे पीडित मनुष्य पहचानता है। दूसरे दिन प्रातःकाल मुझे थोड़ीसी क्षुधा लगी और उसके बाद आश्चर्योत्पादक बात यह हुई कि मुझे क्षुधा ही न लगी। अन्तमे मुझे ऐसी नफ़रत हो गई कि जैसे कभी न खाई हुई वस्तुसे हो जाती है।

"उपवासके पहले दो तीन सप्ताहसे मेरे सिरमें पीड़ा रहती थी;

किन्तु उपवास करना प्रारम्भ करनेके दूसरे ही दिनसे वह पीड़ा मिट गई और फिर कभी न हुई ।

"दूसरे दिन मुझे बहुत ही निर्बलता जान पड़ी और उठते समय चक्कर आने लगे। तब मैं कहीं घरसे बाहर न जाकर छत पर धूपमें बैठ गया और तमाम दिन पढ़ता रहा । इसी प्रकार तीसरे और चौथे दिन ऐसा मालूम हुआ कि मानों मेरा शरीर ही बेकाम हो गया है; परन्तु उसी समय ऐसा भी प्रतीत हुआ कि मेरी मानसिक शक्ति बढ़ रही है । पाँचवें दिनके बाद मुझमें शक्ति आने लगी और मजबूती जान पड़ने लगी । मैंने बहुत कुछ समय टहलकर बिताया, बादमें कुछ लिखना भी प्रारम्भ कर दिया । इस तपस्यामें मुझे जो सबसे अधिक अचरजकी बात मालूम हुई वह मनसम्बन्धी चपलताकी थी । क्योंकि मैं पहले जितना पढ़ने लिखनेका काम कर सकता था, उससे बहुत ज्यादा काम इन दिनोंमें कर सका था ।

"पहले चार दिनोंमें मेरा वजन साढ़े सात सेर कम हो गया; किन्तु पश्चात् उसका कारण विचारनेसे विदित हुआ कि मेरे शरीरके स्नायु भाग (Tissues) बहुत ही निर्बल स्थितिको प्राप्त हो गये थे, इसलिए मेरा वज़न इतना कम हो गया था । तत्पश्चात् आठ दिनोंमें केवल एक सेर ही कम हुआ जो कि मामूली कहा जा सकता है । उपवासके दिनोंमें मैं अच्छी तरह सोता था । प्रतिदिन दो पहरको मुझे निर्बलता मालूम होती थी; किन्तु पगचम्पी करवानेसे और शीतल जलमें स्नान करनेसे, फिर ताज़गी आजाती थी ।

२६ — ख क व

"११ दिन मैंने इस ही भाँति बिना भोजनके केवल जलपान करके बिताये। बारहवें दिन चलते समय थकावट मालूम होने लगी; परन्तु मुझे सो-रहना पसन्द न आया। इसलिए उस दिन नारंगीका रस पीकर मैंने अपना उपवास भंग कर दिया। आगे दो दिन केवल नारंगीका रस ही पीया। तत्पश्चात् मैंने मि० बरनार मैक फेडन-की सम्मतिके अनुसार दुग्ध पीना प्रारम्भ किया। पहले दिन प्रति घंटे एकएक प्याला पीता रहा। फिर दूसरे दिन पौन पौन घंटेके अन्तरसे एकएक प्याला दुग्ध पीने लगा। इस प्रकार दिन भरमें चार सेर दूध पीजाने लगा। यद्यपि यह सारा हजम नहीं होता था, तथापि पेटके अन्दरके अवयवोंको धोकर (Flush) साफ कर देता था और फिर दस्तके द्वारा सारे मलको लेकर बाहिर निकल जाता था। इससे अन्दरके बारीक स्नायुओंका (Tissues) पोषण होकर असाधारण रीतिसे बलवृद्धि और शरीरपुष्टि होने लगी। जिस दिन दूध पीना प्रारम्भ किया, उस दिन मेरा वजन सवा दोसेर बढ़ गया। तत्पश्चात् २४ दिनोंमें सोलह सेर वजन बढ़ा। पहले तो मुझमें एक असाधारण जातिकी शान्ति उत्पन्न हुई। मानों मेरे शरीरका प्रत्येक थका हुआ तन्तु एक बिल्लीके समान, जो अँगीठीके पास बैठकर आराम लेती हो, आराम लेता हुआ मालूम हुआ। दूसरी तबदीली यह हुई कि मेरे मनकी शक्ति बहुत बढ़ गई। निरन्तर लिखने पढ़नेका कार्य करते रहनेहीमें मुझे आनन्द आने लगा; और अन्तमें शारीरिक परिश्रमका कुछ न कुछ कार्य करते रहनेका उत्साह उत्पन्न होने लगा।"

दूसरी तपस्याका परिणाम ।

पहली तपस्याके बाद मिस्टर सिंकलरके अजीर्णसम्बन्धी सारे विकार नष्ट हो गये और उनका मुख गुलाबके फूलकी भाँति दिखाई देने लगा। परन्तु इतने हीसे उन्हें सन्तोष नहीं हुआ। वे कहते हैं कि "अभी तक मैंने एक पूरी तपस्या, अर्थात् अपने आप क्षुधा लगने तक उपवास जारी रखनेकी क्रिया नहीं की थी। मेरे पैर दुखने लगे थे इससे पहली तपस्या छोड़ दी थी। अतः फिर मैंने दुबारा तपश्चरण करना प्रारम्भ किया। अबकी बार मैंने छोटी तपस्या करनेका ही विचार किया था, किन्तु क्षुधा बिल्कुल ही मिट गई, और मैंने देखा कि पहलेके समान इस बार मैं निर्बल नहीं हुआ। मैं नित्य प्रति शीतल जलसे स्नान करता और खूब अच्छी तरहसे घिसघिसकर अपना शरीर पोंछ डालता था। नित्य प्रति चार माइलका चक्कर लगाता, और फिर हलकीसी कसरत भी कर लिया करता था; किन्तु यह विचार मैं कभी नहीं करता था कि मैंने भोजन नहीं किया है, अथवा मैं उपवास करता हूँ। आठ दिनमें मैं आठ पौंड (चार सेर) कम हो गया। फिर आठ दिन मैंने अंजीर नारंगी खाकर बिताये; और इनसे ही मैंने अपना गया हुआ वजन पूरा किया। मुझे कभी शिरःपीड़ाकी शिकायत नहीं करनी पड़ी। मैं वर्षाके दिनोंमें ठंडी हवाके चलते रहने पर भी जंगलोंमें फिरता रहता था; किन्तु ठंड मुझ पर कुछ असर न करती थी। विशेष जाननेकी बात तो यह है कि मुझमें कुछ ऐसी शक्तिका संचार हो गया था कि जिससे मैं बिना कुछ किये एक मिनिट भी नहीं बैठ सकता था। यदि कहीं

एक आध मिनिटकी फुरसत मिलती, तो मैं (दूसरा कार्य न होनेसे) कुलाँटे ही खाने लगता या सिरके बल खड़ा होजाने लगता था! इस भाँति मेरी शारीरिक चपलता बहुत ही बढ़ गई थी।"

उपवासकी जाँच।

सबसे ज्यादा आवश्यकीय और लोगोंको पूर्णतया भरोसा दिलाने वाली बात कारनेजी इंस्टिटचूशन (Nutrition laboratory of the Carnegie Institution of Washington) की है कि जहाँ उपवासकी जाँच पूर्ण योग्यता और उत्तमताके साथ 'सायंटिफिक' रीतिसे कुछ अरसा हुआ चल रही है और उसमें कई आजमायशें हो भी चुकी हैं। पाठकोंको विदित होगा कि मिस्टर कारनेजीने सांइसकी शोधके लिए उक्त संस्थामें लगभग ९ करोड़ रुपया लगाया है। इस संस्थाके सबसे बड़े प्रोफेसर फ्रांसीस डी. बेनीडिक्ट हैं कि जो बहुत अनुभवी और उत्साही गिने जाते हैं। इन प्रोफेसरसाहबने एक कल ऐसी बनाई है कि उसके अन्दर प्रवेश करनेसे मनुष्यके सब अवयवोंकी हरकतें वहाँ अंकित हो जाती हैं। दम किस भाँति चलता है, रक्त कैसे फिरता है और प्रत्येक अवयव किस भाँति काम करता है; इत्यादि सूक्ष्मसे सूक्ष्म क्रियाओंका भी इस कलमें उल्लेख हो जाता है।

इस संस्थाके कितने ही विद्यार्थियों पर उपवासकी जाँच की गई है। इतना ही नहीं किन्तु उन्होंने कितने ही बाहरके मनुष्यों-पर भी जाँच करके यह निश्चय किया है कि कोई भी साधारण मनुष्य दोसे सात दिनों तक बिना खुराकके केवल जलके आधार पर

ही रह सकता है और इससे उसको किसी भाँतिकी हानि या तकलीफ़ नहीं होती। उपवास करनेसे मनुष्य प्रति दिन आधा सेर वज़नमें कम होता है; किन्तु उपवास तोड़ने अर्थात् पुनः खुराक लेना प्रारम्भ करने बाद खोये हुए वज़नसे द्विगुण वज़न प्राप्त करता है। इस वज़नकी पुनः प्राप्तिका कार्य बहुत ही शीघ्रतासे होता है।

सात दिनोंके उपावासका परिणाम ।

सात दिनोंके उपवाससे तपस्वीके शरीरमें से ८१ ग्राम (Grammes) नाइट्रोजन (Nitrogen) कम हो जाता है; और १२ दिनोंमें वह उसे पुनः प्राप्त कर लेता है। ऐसी दो तपस्यायें करनेके बाद एक साथ ९४ ग्राम नाइट्रोज़न उसके शरीरमें बढ़ जाता है।

इस भाँति उपवास—तपस्यारूप बाह्य तपके असंख्य लाभ हैं। अथवा यों कहो कि शरीररूपी मैशीनके कल पुरज़े साफ़ करनेके लिए और उसको सशक्त बनानेके लिए बाह्य तपकी बहुत आवश्यकता है। इसके बिना वह अच्छी तरह काम नहीं दे सकता।

हमें पाश्चात्य विद्वानोंके अभिप्रायसे मालूम हुआ है कि उपवास केवल शरीरको ही लाभ नहीं पहुँचाता है, किन्तु मनको भी शान्ति देता है। इसके सिवाय इससे बाह्य वस्तुओंकी आसक्तिको वशमें करनेकी आदत पड़ती है और यह एक बहुत बड़ा लाभ है।

किन्तु उपवासके बाद कम खानेका, बहुत ही सादा भोजन करनेका, और तन्दुरुस्तीके सामान्य नियम भली भाँति पालनेका पूरा ध्यान रखना चाहिए। यह बात कभी न भूलना चाहिए।

बाह्य तपके विषयमें जिन लोगोंके भ्रमपूर्ण ख़याल हैं उनके लिए श्रीमुनिचंद्रसूरिका निम्नलिखित श्लोक बहुत ही उपयोगी होगाः—

कायो न केवलमयं परितापनीयो,
मिष्टै रसैर्बहुविधैर्न च लालनीयः।
चित्तेन्द्रियानि न चरन्ति यथोत्पथेन,
वश्यानि येन च तदाचरितं जिनानाम्॥

अर्थात्—इस शरीरको केवल कष्ट ही पहुँचे, ऐसा तप नहीं करना चाहिए। इसी प्रकार दूसरी ओर विविध प्रकारके मधुर रसों द्वारा इसका केवल लालन पालन ही न करना चाहिए। (तब क्या करना चाहिए?) चित्त और इन्द्रियाँ जिससे उन्मार्गमें न जावें और अपने वशमें रहें, ऐसा श्रीजिनेश्वर भगवान्का आचरित 'तप' करना चाहिए।

उपवास और आरामका रहस्य।

अमेरिकामे प्रगट होनेवाले 'दी एनल्स आफ साइकिकल सायन्स' नामक एक मानसशास्त्रसम्बन्धी पत्रमें दो वर्ष हुए एक मनन करने योग्य लेख निकला था। उसका सारांश नीचे दिया जाता हैः—

"यदि गई हुई शक्ति ख़ुराकसे फिर प्राप्त होती तो हम कसरत-शालामें न जाकर पहले भोजनशालामें जाते; किन्तु इसतरह नहीं होता। हम जब थके हुए होते हैं, तब भोजनालयमें नहीं किन्तु शयनालयमें जाते हैं जिससे कि गत शक्तिको पुनः प्राप्त कर सकें। हमने चाहे कितना ही भोजन किया हो, चाहे कितनी ही मेहनत या कसरत भोजन पचानेके लिए की हो, तो भी एक समय अवश्य ऐसा

आता है कि जब हमें आराम लेना पड़ता है, सोना पड़ता है, अथवा मरना पड़ता है।

"हम यह जानते हैं कि दिनभर परिश्रम करनेके बाद भोजन करनेको बैठजाना वैद्यकशास्त्रके विरुद्ध है और सादी आनन्द-दायक कसरत ऐसे अवसरमें लाभदायक होती है। मतलब यह कि शक्ति प्राप्त करनेके लिए भोजनकी आवश्यकता नहीं; किन्तु जब शक्तिकी आवश्यकता हो उस समय आराम और नींद लेनेका यत्न करना चाहिए। मनुष्यशरीर और यंत्रमें यही अन्तर है। मनुष्यशरीर अपने आप ही अपनी कमीको पूरी कर लेता है पर यंत्र ऐसा नहीं कर सकता।

"एक मनुष्यसे उपवास कराइए, फिर देखिए कि वह जैसा तन्दुरुस्त उपवास प्रारम्भ करनेके पहले था उससे विशेष तन्दुरुस्त और विशेष शक्तिशाली दश बीस या तीस उपवासके पश्चात् होता है या नहीं? इस बातसे बहुत लोग हँसेंगे; परन्तु मैंने (उक्त अमेरिकन पत्रके सम्पादकने) प्रयोग करके देखा है कि जो मनुष्य उपवासके पहले दिन जीने पर चढ़नेमें भी असमर्थ थे वे तीसवें उपवासके दिन ९ माइल पैदल चल सके थे। इससे यह सिद्ध हुआ कि 'प्रतिदिनकी खुराकसे शरीरको शक्ति मिलती है' यह विश्वास भ्रमपूर्ण है। खुराक या भोजनका काम शरीरमें सारे दिनके कामोंसे जो कमी हो जाती है उसे पूरी कर देना और परिश्रमसे शिथिल हुए स्नायुओंको ताजा कर देना है। खुराक शरीरको किसी भी तरहकी उष्णता अथवा शक्ति नहीं दे सकती। यह उष्णता और शक्ति सर्वथा भिन्न प्रकारसे ही

प्राप्त होती है। शारीरिक शास्त्रके विद्वान् कुछ बाहरी बातें देखकर भ्रममें पड़ गये हैं। उष्णता और शक्ति भोजन या खुराकसे नहीं, किन्तु निद्रा और आरामसे प्राप्त होती है। नींदके समय मनुष्य-शरीर, ग्रहण करनेकी स्थिति (Receptive Attitute) में होता है और उसके पुरजे अर्थात् स्नायुआदि सर्वव्यापक शक्ति (All Pervading Cosmic Energy) से भर जाते हैं। इसी शक्तिमें हम रहते हैं, चलते हैं, फिरते हैं और जीवित रहते हैं। निद्राके समय जब शरीर ग्राहकगुण धारण करता है, तब उसमें यह शक्ति प्रवेश करती है। यही कारण है कि जब हम प्रातःकाल जागृत होते हैं, तब ऐसा मालूम होता है कि हममें कोई नवीन चैतन्य आगया है।

"खुराकसे अग्नि भी उत्पन्न नहीं होती है। वह गरमी भी चैतन्यकी ही है। एक मुर्देके पेटमें चाहे जितनी खुराक क्यों न डाल दो उसमें कदापि उष्णता नहीं आयगी। नीरोगावस्थामें जितनी उष्णता चाहिए उतनी उष्णता जिन लोगोंके शरीरमें न होवे वे यदि उपवास करें तो उनको उतनी ही उष्णता प्राप्त हो सकती है। शरीर शक्ति उत्पन्न करनेका यन्त्र नहीं है किन्तु उसे एक स्थलसे दूसरे स्थलमें पहुँचानेका कार्य करनेवाला यन्त्र है। वह यन्त्र निद्रा और आरामके समयमें शक्ति प्राप्त करता है और जागृतावस्थामें उसका व्यय करता है।

"उपवास और लंघन दोनों एक दूसरीसे बिलकुल विरुद्ध दशायें हैं। उदाहरणार्थ, जब कोई व्यक्ति प्राकृतिक नियमोंका उल्लंघन करता है, तब उसके शरीरमें बिगाड़ उत्पन्न हो जाते हैं और फिर वह उपवास करना प्रारम्भ कर केवल जल पर ही कई दिनोंतक निर्वाह करता

है । उस समय उसके मल शुद्ध करनेवाले अवयव सदा गति करते रहते हैं, इससे शरीरका भीतरी मल या कचरा सब थोड़े ही दिनोंमें निकल जाता है । ज्यों ज्यों कचरा निकलता जाता है त्यों त्यों उसकी नाड़ी और उष्णता ठीक स्थितिमें आती जाती है । उसका श्वास सुगन्धित होता जाता है, उसको आरोग्यताकी क्षुधा लगने लगती है, और यह क्षुधा ही वास्तविक क्षुधा कहलाती है ।

"बादमें वह मनुष्य धीरे धीरे भोजन लेना प्रारम्भ करता है और उसको वह पचाने लगता है । इससे उसका मूल रोग नष्ट हो जाता है । उपवास प्रारम्भ करनेके पहले जितना बल था इस वक्त उसको अपनेमें उससे विशेष बल मालूम होता है । इसका कारण यह है कि उसके यंत्र मलरहित शुद्ध हो जाते हैं और इससे उन यंत्रोंके द्वारा पहलेकी अपेक्षा अधिक शक्ति कार्य कर सकती है ।

"उपवास, यह एक शास्त्रीय (Scientific) योजना है कि जिसके ज़रिये रोग अर्थात् स्नायुओंका कचरा अलग किया जाता है । उपवासका परिणाम सदा लाभदायक होता है । लंघन अथवा भूख मरना, उस स्थितिका नाम है कि जिसमें स्नायुओंका जरूरतके मुवाफ़िक पोषण नहीं होता है । लंघन अथवा भूखा मरनेका परिणाम सदैव बुरा होता है । उपवासका अन्त उस समय होता है, जब प्राकृतिक क्षुधाका लगना प्रारम्भ होता है और लंघनका प्रारंभ उस समय होता है जब कि प्रकृतिक क्षुधा भोजन चाहती है । उपवासका परिणाम शक्तिकी पुनः प्राप्ति है और भूखा मरनेका परिणाम मृत्यु है । एकके आरंभके आगे दूसरेका अन्त है ।

"डाक्टर डेवी अपने सुन्दर शब्दोंमें कहते हैं:—'बीमार मनुष्यके पेटमेंसे खुराक ले लो, इससे तुम बीमारको नहीं किन्तु उसके रोगको भूखा मारनेवाले गिने जावोगे।' इन थोड़ेसे शब्दोंमें उन्होंने उपवासकी फिलासफी और सायंसका सारा रहस्य भर दिया है।

"बीमारकी ताकत जाती न रहे इस लिए कुछ न कुछ खिलाते ही रहना चाहिए। इस प्रकारके विचार कितने भ्रमपूर्ण हैं, इसका पता उक्त कथनसे सरलताके साथ लग जाता है।

"शरीर शक्तिको एकस्थानसे दूसरे स्थानमें ले जानेवाला यंत्र है। वह शक्ति इस शरीरके द्वारा दिखाई देती है। जीवन शक्ति यह एक अद्भुत शक्ति है जिसका अस्तित्व शरीरके बाहर भी संभव है और शरीरसे वह स्वतन्त्र है। जिस भाँति लेम्प कांचकी चिमनीके द्वारा अपना प्रकाश बाहर डालता है उसी भाँति उक्त जीवन-शक्ति, शरीरके जरिये अपना प्रकाश प्रकट करती है। अर्थात् वह शक्ति इस शरीरके द्वारा प्रगट होती है। यदि चिमनी धुँधली होती है, मैली होती है या किसी गहरे रंगकी होती है तो उसके अनुसार लेम्पका प्रकाश भी न्यूनाधिक होता है। शरीरके सम्बन्धमें भी ऐसा ही समझना चाहिए। यदि शरीर खुराकके कचरेसे भरा हो, रोगी हो अथवा लंघन कर रहा हो तो जीवन ऐसे शरीरके द्वारा भले प्रकारसे दर्शन नहीं दे सकता है।"

अभ्यंतर तप।

बाह्य तपके उपयोग हेतु और लाभका विचार करने बाद, अब हम 'अभ्यंतर तप'की जाँच करेंगे। स्थूल अथवा औदारिक

शरीरका कचरा निकालनेके लिए अथवा खोई हुई शक्ति पुनः प्राप्त करनेके लिए जिस भाँति 'बाह्य तप' उपयोगी है उसही भाँति सूक्ष्म शरीरके (तैजस और कार्माण शरीरोंके) लगे हुए मलको दूर कर उन शरीरोंको निर्मल और विशेष उपयोगी बनानेके लिए 'अभ्यन्तर तप' की आवश्यकता है। इस प्रकारके तपको जैन-फ़िलासफरोंने प्रायश्चित्त, विनय, वैयावृत्य, स्वध्याय, ध्यान और कायोत्सर्ग इन छः भागोंमें विभक्त कर दिया है। (१) मान लो कि मैंने किसी सज्जनपुरुषके सम्बन्धमें बुरी बात फैलाई है। अर्थात् उसकी निन्दा कर उसको लोगोंकी दृष्टिसे गिरा दिया है। अब यदि मैं अपनी भूल देख सकूँ—मेरा यह कृत्य हत्यारेके समान है ऐसा समझ सकूँ, तो उसके लिए मेरे मनमें बहुत दुःख या पश्चात्ताप उत्पन्न होगा और मेरा मानसिक सूक्ष्म शरीर पश्चात्तापकी सूक्ष्म अग्निमें जलकर शुद्ध होगा। इस शुद्धताका विश्वास तब ही हो सकता है कि जब शुद्धिकरणकी क्रिया करनेके बाद मैं स्वयं प्रगट रूपसे उस मनुष्यके बारेमें लोगोंको वास्तविक बात बताऊँ और उस मनुष्यसे सच्चे अन्तःकरणके साथ क्षमा माँगूँ। इतना ही नहीं बल्कि समय आने पर उस मनुष्यकी सेवा करनेमें या उसकी कीर्ति फैलानेमें भी बाज़ न आऊँ। इसका नाम '**प्रायश्चित्त तप**' है। यदि प्रायश्चित्त नियत मंत्रोच्चारण करनेसे, या नियत दंड लेनेसे हो जाता, तो फिर हत्यारों और व्यभिचारियोंको नरकमें जानेका लेशमात्र भी डर नहीं रहता। अपनेसे बड़े ज्ञानी या गुणीके सामने किये हुए पापोंका स्वरूप प्रकाश करनेसे

उनके द्वारा हमको जो ज्ञान मिलता है, वह पापको निवारण करनेमें बहुत उपयोगी होता है। इसी लिए गम्भीर विद्वान् और पवित्र पुरुषोंके समक्ष पाप प्रगट करके प्रायश्चित्त लेनेका धर्मशास्त्रोंने निर्देश किया है। किन्तु ध्यान रखना चाहिए कि प्रायश्चित्त तप बाह्य तपका नहीं, किन्तु अभ्यन्तर तपका भेद है और इस ही लिए इसमें बाह्य क्रियाओंका महत्त्व नहीं हैं। इसमें आन्तरिक पश्चात्ताप और भूल सुधारनेके लिए यथाशक्ति यत्न करनेका निश्चय, ये दो बातें अवश्य होनी चाहिए। हम यह कहे बिना नहीं रह सकते कि जो मनुष्य अपने किये हुए अपराधोंके लिए हार्दिक खेद करने, और कृत अपराधके असरका यथाशक्ति निवारण करनेको तत्पर नहीं होता है वह ध्यान या कायोत्सर्ग जैसे उच्चकोटिके तपके लिए भी योग्य नहीं हो सकता।

(२) झूटे खयालों और संकुचित बुद्धिको जड़मूलसे उखाड़नेकी शक्तिवाले सत्य धर्मकी फिलासफी, उस धर्मके निर्देशानुसार आचरण करनेवाले पवित्रहृदय सद्गुरु, उस धर्मके शुद्ध स्वरूपके प्रचार करनेवाले पुरुष, उस धर्मके प्रचारार्थ और रक्षार्थ स्थापित की हुई संस्थायें—इन सबकी ओर सत्कार दृष्टिसे देखने और सामान्यतया गुणीजनोंके प्रति नम्रता प्रकट करनेको ‘ **विनय तप** ’ कहते हैं। जहाँ गुण दोष समझनेकी शक्ति, अर्थात् विवेकबुद्धि नहीं है वहाँ विनयतपका अस्तित्व भी असम्भव है। जिसके हृदयमें गुण दोष पहचाननेकी शक्ति है, उसके हृदयमें अपने आप ही गुणियोंके प्रति नम्रता या विनय दिखानेके भाव

उत्पन्न हो जाते हैं और ऐसे विनयसे उस मनुष्यका हृदय अपने अन्दर दूसरोंके सद्गुणोंका आकर्षण करने योग्य बन जाता है ! (३) ऊपर जो धर्म, धर्मगुरु, धर्मप्रचारक, धर्मरक्षक, धार्मिक-संस्थायें आदिके प्रति विनय करनेको कहा गया है उन सबका विनय करके ही चुप नहीं रह जाना चाहिए, किन्तु इससे आगे बढ़कर यथाशक्ति उनकी सेवा करना अर्थात् उनके उपयोगी बनना चाहिए। यही '**वैयावृत्य तप**' कहलाता है। (४) पश्चात्ताप, विनय और सेवातत्परता इन तीन गुणोंके धारकका मस्तक और हृदय इतना निर्मल हो जाता है कि उसको ज्ञान प्राप्त करनेमें कुछ भी कठिनाई नही पड़ती है, इसीसे चौथे नम्बर पर '**स्वाध्याय तप**' अथवा ज्ञानाभ्यास रक्खा गया है। ज्ञान प्राप्त करना यह आवश्यकीय तप है; इसको कभी न भूलना चाहिए। इसके लिए पाँच सीढ़ियाँ बताई गई हैं—(१) '**वाचना**' अर्थात् शिक्षक अथवा गुरुके पाससे कोई पाठ लेना अथवा गुरुका योग न मिले तो पुस्तकका कोई अंश पढ़ लेना। (२) '**पृच्छना**' अर्थात् उतने अंशमें जो कठिनाईयाँ प्रतीत होती हों उनको गुरुसे अथवा किसी अनुभवी पुरुषसे पूछ लेना। (३) '**परावर्तना**' अर्थात् सीखा हुआ पाठ फिर याद कर लेना। (४) '**अनुप्रेक्षा**' अर्थात् अभ्यस्त विषय पर गम्भीर विचार और मनन करना। (५) '**धर्मकथा**' अर्थात् प्राप्त ज्ञान दूसरोंको सुनाना, समझाना, व्याख्यान, बातचीत, ग्रन्थरचना, तथा चर्चा इत्यादिके द्वारा दूसरोंको ज्ञान देनेका उद्यम करना। इससे अपना ज्ञान बढ़ता है और दूसरोंमें भी ज्ञानका

प्रचार होता है जिससे ज्ञानान्तरायकर्म क्षीण होता है और इस कारण ज्ञान प्राप्त करनेकी विशेष योग्यता प्राप्त होती है।

यदि कोई यह कहे कि ज्ञान अमुक पुस्तकोंसे, या अमुक पुरुषोंसे ही ग्रहण करना चाहिए अन्यसे नहीं; तो उसे कभी मत मानो। इसी भाँति किसी लोकप्रिय सिद्धान्तके विरुद्ध विचार करनेवाले सिद्धान्तकी दलीलोंको सुननेके लिए भी कभी आनाकानी मत करो। हृदयको उदार बनाओ, आँखें खुली रक्खो, सारे संसारमें तुम्हारे घरके कूपके जलके अतिरिक्त अन्य किसी कूपसे उत्तम जल कभी प्राप्त ही नहीं हो सकता, ऐसी मूर्खताका परित्याग करके भिन्न भिन्न फिलासफरोंका सहवास करो, उनके विचारोंको सुनो, भाषाज्ञान प्राप्त करो, न्यायशास्त्र पढ़ो और बादमें इन दोनोंकी सहायतासे संसारका प्राचीन और अर्वचीन जितना भी ज्ञान प्राप्त कर सको, करो।

(९) उक्त सब प्रकारके तपोंसे '**ध्यान तप**' विशेष शक्तिशाली है। संसारिक विजयके हेतु और आत्मिक मुक्तिके लिए—दोनों कामोंमें यह एक तीक्ष्ण औजार है। चित्तकी एकाग्रता अथवा ध्यानके द्वारा सब शक्तियाँ एक ही विषय पर एक साथ उपयोगमें आती हैं और उससे ईप्सितार्थ प्राप्त करनेमें बहुत आसानी हो जाय यह स्वाभाविक ही है। असाधारण विजेता नेपोलियनकी मनोवृत्तियोंकी एकाग्रता इतनी हद्दतक पहुँची हुई थी कि उसने सेनाओंके मध्यमें भी—जहाँ दनादन तोपें दगती थीं—बैठकर राज्यकी कन्याशालाओंके नियम बनाये थे! वह युद्धभूमिमें ही १० या १९

मिनिट पर्यन्त अपनी इच्छानुसार थकावट दूर करनेवाली नींद ले लेता था ! ऐसे मनुष्य यदि विजयश्रीको मुट्ठीमें बाँध रक्खें तो क्या आश्चर्य है ? खोई हुई चित्तशान्ति पुनः प्राप्त करनेके लिए, व्यापार या परमार्थके कामोंमें आई हुई कठिनाइयोंका निराकारण करनेके लिए, वस्तुस्वरूपकी पहचानके लिए, और मोक्षमार्गकी प्राप्तिके हेतु भी ध्यानकी उपयोगिता अनिवार्य है। शास्त्रकार ठीक कहते हैं:—

निर्जराकरणे बाह्याच्छ्रेष्ठमाभ्यन्तरं तपः ।
तत्राप्येकातपत्रत्वं ध्यानस्य मुनयो जगुः ॥

अर्थात् कर्मोंको झड़ानेके कार्यमें बाह्य तपकी अपेक्षा अभ्यन्तर तप विशेष उपयोगी और उत्तम हैं और उसमें भी ध्यान तपका तो एकछत्रपन है, अर्थात् यह तो तपोंमें चक्रवर्ती है । क्योंकिः—

अन्तर्मुहूर्तमात्रं यदेकाग्रचित्ततान्वितम् ।
तद्ध्यानं चिरकालीनां कर्मणां क्षयकारणम् ॥

अर्थात् अन्तर्मुहूर्त मात्र चित्तके एकाग्र होनेको ध्यान कहते हैं । ऐसा ध्यान चिरकालके संचित कर्मोंके क्षयका कारण होता है ।

जह चिअसंचियमिंधणमणलो य पवणसहिओ दुअं डहइ ।
तह कम्मिंधणममिअं खणेण झाणाणलो डहइ ॥

अर्थात् जिस प्रकार बहुत समयके एकट्ठे—किये हुए काष्ठको पवनसहित अग्नि तत्काल ही जला देती है उसी प्रकार ध्यानरूपी अग्नि अनन्त कर्मरूपी ईंधनको एक क्षण मात्रमें जला देती है ।

सिद्धाः सिद्ध्यन्ति सेत्स्यन्ति यावन्ताः केपि मानवाः ।
ध्यानतपोबलेनैव ते सर्वेपि शुभाशयाः ॥

अर्थात्, जितने सिद्ध हुए हैं, होते हैं और होवेंगे, सो सब शुभाशययुक्त ध्यान तपका ही बल समझना चाहिए ।

ध्यानके भेद मार्ग आदिके सम्बन्धमें बहुत कुछ जानने और सीखने योग्य है; किन्तु इस छोटेसे लेखमें सब बातोंका समावेश नहीं किया जा सकता। पाश्चात्य विद्वानोंने ध्यानके सिद्धान्तसे दर्द मिटाना, बुरी आदतें सुधारना, एक जगह बैठे बैठे दूरका संदेशा मँगाना आदि अद्भुत और उपयोगी कार्य साधे हैं और आर्यविचारकोंने इस ही ध्यानके बलसे मुक्तिका मार्ग सिद्ध किया है। इस लिए यह अद्भुत शास्त्र बुद्धिशालियोंको, विशेषकर धर्मशिक्षकोंको अवश्य सीखना चाहिए।

(६) ध्यानसे आगेकी एक स्थिति '**कायोत्सर्ग**' है। इसमें कायाको—स्थूल शरीरको बिलकुल मृतवत् बनाकर सूक्ष्म देहोंके साथ आत्माको उच्च प्रदेशोंमें ले जाना होता है। इस अवस्थामें शरीर जल जाय, छिद जाय, तो भी उसका भान नहीं रहता। क्योंकि जिस मनको भान होता है वह मन अथवा मानसिक शरीर आत्माके साथ उच्च प्रदेशोंमें चला जाता है। इसको कोई कोई समाधि भी कहते हैं। यह विषय इतना गहरा है कि इसमें तर्क और वाचन कुछ काम नहीं दे सकता; यह 'अनुभव' का विषय है और मुझमें इतनी योग्यता है नहीं, इसलिए इस विषयमें मुझे मौन ही धारण करना चाहिए।

कृष्णलाल वर्मा।
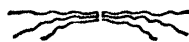
आँखें ।

(१)

तुम्हें देखनेको ये दोनों आँखें अब भी जीती हैं,
आशा-वश शरीर रखनेको केवल पानी पीती हैं।
सूख गये सब अङ्ग अचानक ये तीती भी रीती हैं,
सोती नहीं, स्वप्नमें रहतीं, कितनी रातें बीती हैं!

(२)

पानीमें रहकर भी दोनों आँखें प्यासी रहती हैं,
डूब नहीं जाती हैं उसमें, व्याकुल होकर बहती हैं।
पड़कर प्रबल-पलक-जालोंमें पर-वश पीड़ा सहती हैं,
केवल मौन, मनोभाषामें, 'पाहि पाहि' ही कहती हैं?

(३)

आँखोंको पानी दे देकर मानस सूखा जाता है,
स्वयं सूखकर क्यों वह इनको इतना आर्द्र बनाता है?
इनसे तुम्हें देखनेकी वह आशा रखता आता है,
देखें उसका पूर्ति-योग वह कब तक तुमसे पाता है!

(४)

निज पवित्र जलसे ये आँखें अब किसका अभिषेक करें?
विना तुम्हारे किसे देखकर अपने मनमें धैर्य धरें?
इन्हें इष्ट यह है कि तुम्हारे रूप-सिन्धुमें सदा तरें,
तुम्हें इष्ट क्या है कि उसीमें पार न पाकर डूब मरें?

(५)

पलक-कपाट खोलकर आँखें मार्ग तुम्हारा देख रहीं,
बाढ़ आरही है सम्मुख ही उसका भी कुछ सोच नहीं।
पर तुम ऐसे निर्दय निकले-जहाँ गये रम गये वहीं!
भूलो तुम, पर क्या ये तुमको भूल सकेंगी कभी कहीं!

(६)

फँसीं तुम्हारे प्रबल-गुणोंमें सतत शून्यमें झुली हुई,
मनकी अभिलाषाके ऊपर तुल्य भावसे तुली हुई?
क्रोध कहाँ, अभिमान कहाँ अब, अविरल जलसे धुली हुई'
हाय! खुली ही रह जावेंगी क्या ये आँखें खुली हुई!

(७)

खुली हुई आँखें क्या तब तक तुमको देख न पावेंगी—
जगकी धूल छान कर जब तक बन्द नहीं हो जावेंगी ॥
किन्तु हाय! ये ऐसा अवसर आप कहाँसे पावेंगी?
सींच सींच कर बस आशाके अंकुर ही उपजावेंगी ॥

(८)

हे अनन्तगुणमय! क्या ऐसे अकरुण तुम हो जाओगे—
सब कुछ दिखलाकर आँखोंको अपनेको न दिखाओगे?
नहीं नहीं, ऐसा न करोगे, तुम इनको अपनाओगे,
दिव्य-दीप्ति-परिपूर्ण स्वयं ही सहसा सम्मुख आओगे ॥

मैथिलीशरण गुप्त।

महावीर स्वामीका निर्वाणसमय।

अब तक सभी लोगोंने इस बातको मान लिया था कि महावीर स्वामीका निर्वाण ईस्वी सनसे ५२७ वर्ष पूर्व हुआ; परन्तु अभी हालमें जार्ल चारपेंटियर नामक एक पाश्चात्य विद्वान्ने इस विषयका एक विस्तृत लेख 'इंडियन एंटिक्वेरी' के जून, जुलाई और अगस्तके अंकोंमें प्रकाशित कराया है। इस लेखमें उन्होंने यह सिद्ध करनेका प्रयत्न किया है कि महावीर स्वामीका निर्वाण ईस्वी सन्से ४६७ वर्ष पूर्व हुआ है। अर्थात् इस समय हम जो वीरनिर्वाणसंवत् मान रहे हैं उसमें ६० वर्षका अन्तर है—२४४१ के स्थानमें २३८१ चाहिए।

साधारण पाठकोंकी दृष्टिमें यह कोई महत्त्वका विषय नहीं कि महावीर स्वामीका निर्वाण ४६७ वर्ष पूर्व हुआ या ५२७ वर्ष पूर्व हुआ; परन्तु विशेष पाठकोंके लिए तथा जैनधर्मके इतिहासके लिए यह विषय बहुत ही महत्त्वका है। विद्वानों और इतिहासज्ञोंका कर्तव्य है कि वे उक्त विद्वान्‌के दिये हुए प्रमाणों पर विचार करें और इस विषयकी अच्छी तरह जाँच पड़ताल करके अपना सम्वत् निश्चय करें। जैनधर्मके लिए यह विषय बहुत ही आवश्यक है, कारण कि इसी पर जैनधर्मके इतिहासका आधार है। जब तक इसका निर्णय नहीं होगा तब तक जैनइतिहासका लिखाजाना असंभव है।

उक्त विद्वान्‌ने अपने विस्तृत लेखको तीन भागोंमें विभक्त किया है। हम यहाँ पर उसका सारांश मात्र दिये देते हैं। पहले भागमें आपने सन् १३०६ की बनी हुई मेरुतुंगाचार्यकृत विचारश्रेणीकी उन गाथाओंको अयुक्त और असम्बद्ध दिखलाया है जिनमें महावीरनिर्वाण तथा विक्रमादित्यके राज्यारूढ होनेके बीचके मुख्य मुख्य राजघरानोंका उल्लेख किया गया है। वे गाथायें ये हैं:—

जं रयणीं कालगओ, अरिहा तित्थंकरो महावीर।
तं रयणीं अवंतिवई, अहिसित्तो पालगो रण्णो॥ १॥

अर्थात्—जिस रात्रिको महावीर तीर्थंकरका निर्वाण हुआ उसी रात्रिको अवन्तीके राजा पालकका राज्याभिषेक हुआ।

सट्ठी पालगरण्णो पण्णावण्णसयं तु होइ नंदाण।
अट्ठसयं मुरियाणं, तीसं चिय पूसमित्तस्स॥ २॥

पालक राजाने ६० वष, नन्द राजाओंने १५५ वर्ष, मौर्य राजा-ओंने १०८ वर्ष और पुष्यमित्रेन ३० वर्ष राजा किया।

बलमित्त भाणुमित्त सट्ठीवरसाणि चत्त नहवहेन।
तह गद्दभिल्ल रज्जं तेरसवरिसा सगस्स चऊ॥ ३॥

बलमित्र भानुमित्रने ६० वर्ष, नभोवाहनने ४० वर्ष, गर्दभिल्लने १३ वर्ष और शकने ४ वर्ष राजा किया। इस प्रकार महावीरस्वामीके निर्वाण और विक्रमसंवत्के आरंभमें ४७० वर्षका अन्तर है। इनमें विक्रम संवत् और ईस्वीसन्के बीचके ५७ वर्ष जोड़ देनेसे ५२७ वर्ष होते हैं।

महावीर स्वामीके निर्वाणकालके विषयमें इन्हीं गाथाओंका अनेक स्थलों पर उल्लेख किया जाता है; परंतु ये गाथायें किसी प्रकार भी मान्य नहीं हो सकतीं। प्रथम तो ये गाथायें मेरुतुंगकी अथवा उसके समकालीन ग्रंथकारोंकी बनाई हुई ही नहीं हैं। कारण कि उनके समयसे बहुत पहले जैनविद्वानोंने प्राकृतमें लिखना छोड़ दिया था। दूसरे इन गाथाओं तथा इसी प्रकारकी अन्य काल-विषयक गाथाओंमें विक्रम सम्वत्का उल्लेख किया गया है और उस सम्वत्को उज्जैनीके राजा विक्रमादित्यका चलाया हुआ मानते हैं। पर यह बिलकुल असत्य है। यह बात बहुत दिन हुए पूर्णरूपसे सिद्ध हो चुकी है कि ई० सन् से ५७ वर्ष पूर्व विक्रमादित्य नामका कोई राजा ही नहीं हुआ है। यह सम्वत् बहुत पीछे विक्रमादित्य राजाके नामसे प्रसिद्ध हुआ है। विंसेंट स्मिथके अनुसार इस सम्वत्को मालवाके ज्योतिषियोंने चलाया था। संभवतः चन्द्रगुप्त द्वितीयके

समयमें यह विक्रमादित्यके नामसे प्रसिद्ध हुआ । सबसे पहले सन् ८४२ ई० के धौलपुरके एक शिला-लेखमें इसका जिकर आया है। फिर **धनपालने** 'पाइयलच्छी' में सन् ९७२ ई० में और **अमितगतिने** 'सुभाषितरत्नसंदोह'में सन् ९९४ ई० में इस संवत्का उल्लेख किया है। तीसरे जिन राजघरानोंका इन गाथाओंमें जिकर किया है वे भी असम्बद्ध मालूम होते हैं । उनमें कोई सम्बंध नहीं पाया जाता । पालक अवंतिका राजा था, नंद, मौर्यवंशी, पुष्यमित्र, मगधके राजा थे। शक उत्तर पश्चिमीय हिंदुस्तानके विदेशी घरानेका था। गर्दभिल्ल पश्चिमीय हिंदुस्तानमें राज करता था । प्रोफेसर **जेकोबी** इस विषयमें अपना संदेह पहले ही प्रगट कर चुके हैं। अवंतीके राजा पालकको मगधाधिपतियोंमें कैसे मिला दिया ? इसका उन से क्या सम्बंध था ? इसी प्रकार बलमित्र, भानुमित्र, नहवहन (नभोवाहन) गर्दभिल्ल और शक राजाओंके विषय और समयमें बड़ा संदेह मालूम होता है । अतएव जैनियोंकी यह राजाओंकी सूची जिस पर वे महावीर भगवानके निर्वाणका समय निश्चय करते हैं, ऐतिहासिक दृष्टिसे कुछ भी महत्त्व नहीं रखती। पालक राजाका, जिसके ६० वर्ष बताये गये हैं, महावीरसे कोई सम्बंध नहीं है और न बलमित्र, भानुमित्र, गर्दभिल्ल और शक राजाओंका कोई सम्बंध है। निःसंदेह २९३ वर्षतक मगधके राजघरानोंका शासन रहा । संभावना यह है कि मगधके राजाओंसे ही इस बीचके समयका प्रारम्भ होता है। बिम्बिसार (श्रेणिक) और अजातशत्रु (कुणिक) का जैनधर्मसे घनिष्ट सम्बन्ध रहा है।

दूसरे भागमें उक्त विद्वान्ने इस बातको दिखलाया है कि गौतम बुद्ध और महावीर स्वामी ये दोनों महात्मा समकालीन थे। बौद्ध ग्रंथोंमें अनेक स्थलों पर निगंथ नातपुत्त (निग्रंथो ज्ञातिपुत्रः) का जिकर आया है। 'सामण्णफलसुत्त' में लिखा है कि अजातशत्रु, निगंथ नातपुत्तके पास गया तथा गौतमबुद्धके पास भी गया। जैनशास्त्रोंमें भी लिखा है कि कुणिका वा कोणिया (अजातशत्रु) महावीर स्वामीके पास गया। बौद्धशास्त्रोंमें अनेक स्थानोंपर लिखा है कि गौतमबुद्ध निग्रंथ साधुओंसे मिले। महावीरके शिष्य अपने गुरुको बुद्धदेवके समान ही अनंत ज्ञान और अनंत दर्शनका धारी कहते थे और उसी प्रकार उसकी स्तुति और प्रशंसा करते थे। बौद्धग्रंथोंमें महावीरस्वामीके सूचक अनेक शब्दों का प्रयोग किया है जिससे स्पष्ट प्रगट होता है कि बौद्धोंको जैनियों तथा उनके गुरुका पूर्ण परिचय था। अतएव इसमें कोई संदेह नहीं है कि गौतम बुद्ध और महावीर समकालीन दो भिन्नभिन्न व्यक्ति थे। गौतम बुद्धने बौद्धधर्मका प्रचार किया। महावीर स्वामीने जैनधर्मका प्रकाश किया। दोनों मगधमें हुए। आजकलके प्रायः सभी विद्वान् इस विषयमें सहमत हैं।

अब संदेह यह है कि जब गौतम बुद्ध और महावीरने साथ साथ अपने मतका प्रचार किया तब उनके निर्वाणमें इतना अंतर क्यों है? जेनरल **कनिंघम** और प्रोफेसर **मोक्षमूलरके** मतानुसार बुद्धदेवका ई० सन्से ४७७ वर्ष पूर्व निर्वाण हुआ। मेरी रायमें भी यही ठीक मालूम होता है। उस समय उनकी

अवस्था ८० वर्ष की थी, इसमें किसीको भी विवाद नहीं है। इससे ज्ञात होता है कि यदि महावीर स्वामीका ई० सनूसे ५२७ वर्ष पूर्व निर्वाण हुआ तो बुद्धदेवकी उस समय केवल ३० वर्षकी अवस्था होगी; परंतु इसको सब कोई मानते हैं कि ३६ वर्षकी अवस्थासे पहले न तो गौतमको बोध हुआ था और न उनके अनुयायी ही हुए थे, अतएव महावीर स्वामीका उनसे मिलना नितान्त असम्भव है। इसके अतिरिक्त कहा जाता है कि ये दोनों महात्मा अजातशत्रु (श्रेणिकके पुत्र कुणिक) के राज्यकालमें हुए और अजातशत्रु बुद्धदेवकी मृत्युसे ८ वर्ष पूर्व राज्यसिंहासन पर बैठा और उसने ३२ वर्ष तक राज्य किया। इससे महावीर स्वामी और बुद्धदेवके निर्वाणकालमें बड़ा संदेह मालूम होता है। या तो महावीर स्वामीका समय आगे बढ़ाया जाय, या बुद्धदेवका समय पीछे हटाया जाय; परंतु बुद्धदेवका समय बिलकुल गिना हुआ है और महावीर स्वामीका समय केवल अनुमान किया हुआ है। अतएव हम बुद्धदेवके मृत्युसमय पर संदेह न करके महावीर स्वामीके मृत्युसमय पर संदेह करते हैं।

यद्यपि बुद्धदेवके मृत्युसमयके विषयमें भी विद्वानोंका मतभेद है; विंसेंट स्मिथ तथा अन्य अनेक विद्वानोंने अभी हालमें खोज करके यह निश्चय किया है कि ई० सन् से ४८७ वर्ष पूर्व बुद्धदेवकी मृत्यु हुई; परंतु मैं उनसे सहमत नहीं हूँ *। यदि थोड़ी

* उक्त विद्वान्ने अँगरेजी लेखमें बुद्धदेवके निर्वाण कालके विषयमें अनेक युक्तियाँ दी हैं जिनको हमने पाठकोंके लिए विशेष उपयोगी न देखकर छोड़ दी हैं। जिन महाशयोंको इस विषयमें अधिक रुचि हो वे मूल लेखको देखें। यहाँ पर केवल लेखकका आशय और अभिप्राय दिया है।

देरके लिए मान भी लिया जाय कि उनका मत ठीक है तो भी महावीर स्वामीका निर्वाण ई० सन्से ५२७ वर्ष पूर्व नहीं हो सकता।

निश्चयसे गौतम बुद्धका निर्वाण ई०सन्से ४७७ वर्ष पूर्व हुआ। चूँकि उनकी आयु ८० वर्षकी हुई, इसलिए उनका जन्म ई० सन् से ५५७ वर्ष पूर्व हुआ होगा । पाली ग्रंथोंसे जो इस विषयके मूल आधार हैं, ज्ञात होता है कि जिस समय बुद्धदेवने गृहस्थाश्रमको त्याग किया उस समय उनकी अवस्था २९ वर्षकी थी और जिस समय उनको बोध हुआ उस समय ३६ वर्षकी थी, अर्थात् दूसरे शब्दोंमें वे ई० सन् से ५२० वर्ष पूर्व बुद्ध हुए। इस हिसाबसे स्पष्ट विदित होता है कि महावीर स्वामी और बुद्धदेव कभी नहीं मिले होंगे और पाली ग्रंथोंमें जो कुछ नातपुत्त और उसके अनुयायियोंके विषयमें लिखा है वह सब आद्योपांत असत्य और कल्पित है। परंतु यह सर्वथा मिथ्या है; ऐसा कदापि नहीं हो सकता। अतएव महावीर स्वामीका निर्वाण कदापि ई० सन्से ५२७ वर्ष पूर्व नहीं हुआ; किंतु उससे ६० वर्ष पीछे अर्थात् ईस्वीसन्से ४६७ वर्ष पूर्व हुआ और इसीको तीसरे भागमें लेखक महाशय जैनकथाओंके अनुसार सिद्ध करते हैं।

हेमचन्द्राचार्यके लेखानुसार कुणिकका चम्पामें देहान्त हुआ और उसका पुत्र उदयन राज्यका अधिकारी हुआ । यह राजा बड़ा बलवान् था; परन्तु इसको एक व्यक्तिने धोखेसे मार डाला और इसके बाद नंद राजा हुआ। कथानुसार यह घटना महावीर

स्वामीके निर्वाणके ६० वर्ष पश्चात् हुई। प्रथम नंदराजाके विषयमें हेमचन्द्राचार्यकी दृष्टि अच्छी मालूम होती है। सम्भवतः वह जैन-धर्मका संरक्षक और प्रेमी था। यह बात उदयगिरिके खारवेलके लेखसे भी सिद्ध होती है।

इन ६० वर्षोंमें कुछ वर्ष कुणिकने राज्य किया और शेषकाल उद-यनने राज्य किया। अतएव यदि मेरे मतानुसार बुद्धदेवकी ई० सन्से ४७७ वर्ष पूर्व मृत्यु हुई है तो अजातशत्रु (कुणिक) ई० सन्-से ४८३ वर्ष पूर्व राज्यसिंहासन पर बैठा होगा। अजातशत्रुका सबसे पहला काम कौशलके राजासे युद्ध करना था। भगवती सूत्रके अनुसार गोशाल, जो महावीरसे बड़ा द्वेष रखता था, इस युद्ध-के समाप्त होते ही श्रावस्तीमें मर गया था और महावीर १६ वर्ष बाद तक रहे। गोशालके विषयमें जो और समय दिये हैं उनसे भी यह बात मिलती है। जब गोशाल मरा, उस समय महावीर स्वामीकी अवस्था ५६ वर्षकी होगी। इससे अनुमान होता है कि महावीरस्वामीका निर्वाण ४८३–१६–४६७ वर्ष पूर्वमें हुआ होगा। जहाँ तक मैं अनुमान करता हूँ ऐसा कोई कथन नहीं कि जिसके अनुसार महावीरस्वामीका अजातशत्रुके समयमें निर्वाण हुआ और न कोई ऐसा ही कथन है कि उनकी उदयन-से भेट हुई। मेरे विचारमें हमको यह नतीजा निकालना चाहिए कि बौद्धग्रंथोंमें जो अजातशत्रुका राज्यकाल ३० वर्ष दिया है वह ठीक है और यदि अजातशत्रु और उदयनके बीचमें कोई और राजा नहीं हुआ तो उदयनने ३३ वर्षसे भी अधिक राज्य

किया। चंद्रगुप्तके विषयमें **मेरुतुंगका** मत है कि उसने ई० सन्से ३१२ वर्ष पूर्वमें अपना सम्वत् चलाया। यद्यपि मैं इससे सहमत नहीं हूँ, मेरी रायमें चन्द्रगुप्तने कोई सम्वत् नहीं चलाया, तथापि इससे भी यही सिद्ध होता है कि महावीर स्वामीका निर्वाण ई०सन्से ४६७ वर्ष पूर्व हुआ। कारण, यह कहा जाता है कि चन्द्रगुप्तका वीर भगवान्के १५५ वर्ष बाद, राज्याभिषेक हुआ।

प्रोफेसर **जेकोबीने** कल्पसूत्रकी भूमिकामें ४६७ वर्ष पूर्वके और भी कई प्रमाण दिये हैं। हेमचंद्रसे पीछेकी जितनी कथायें हैं सबमें भद्रबाहुकी मृत्यु वीर भगवानसे १७० वर्ष बाद बतलाई है और भद्रबाहुका चन्द्रगुप्तके समयसे निकटतम सम्बंध है। इससे भी सिद्ध होता है कि ४६७ वर्ष पूर्व ही महावीर भगवान्का निर्वाण हुआ। उसी हिसाबसे भद्रबाहुका समय ई० सन्से २९७ वर्ष पूर्व निकलता है। यही चन्द्रगुप्तका समय है।

इसी प्रकार अनेक युक्तियाँ देते हुए, जिनका हमने यहाँ उल्लेख करना विशेष उपयोगी नहीं देखा, लेखक महाशय अपने लेखको समाप्त करते हैं और अंतमें अपने विज्ञ पाठकोंसे सानुरोध प्रार्थना करते हैं कि इस विषय पर पूर्णरूपसे अन्वेषण करें।

हम भी अपने पाठकोंसे निवेदन करते हैं कि हमने इस लेखमें मूल लेखकमहाशयके विचारोंका दिग्दर्शन मात्र कराया है। पाठकोंको उचित है कि इस नवीन मत पर पक्षपातरहित विचार करें। यदि लेखक महाशयके विचार अयुक्त हों अथवा ५२७ वर्ष पूर्वके प्रबल अकाट्य प्रमाण आपके पास मौजूद हों तो आप उनको

अवश्य प्रकाशित करें कि जिससे इस विषयका अच्छी तरह निर्णय हो सके। हम पुनः बलपूर्वक कहते हैं कि जैनइतिहासके लिए यह अत्यंत आवश्यक प्रश्न है। जब तक यह हल न होगा जैन-इतिहासका लिखा जाना असम्भव है। हम अपने विद्वान् जैन-पण्डितोंसे यह भी निवेदन कर देना चाहते हैं कि लेखक महाशय अपने विचारोंको बदलनेके लिए तैयार हैं, यदि आप प्रबल युक्तियों द्वारा उनका खंडन कर सकें और अपना मंडन कर सके। वास्तवमें यह समय परीक्षाका है। इस समय केवल कहनेसे काम नहीं चलता। दिखलाने और सिद्ध करनेकी जरूरत है।

हमें आशा है कि हमारे विज्ञ पाठक इस विषय पर विचार करेंगे और शीघ्र ही वीर भगवान्के निर्वाणसमयका निर्णय करेंगे। हमें शोक इस बातका है कि हमारे जैनीभाई इन विषयोंकी ओर किंचित् भी ध्यान नहीं देते हैं। तत्त्वचर्चा करते समय तो वे शतांशों और सहस्राशोंतक पहुँच जाते हैं और लोक, अलोक, असंख्यात, अनंत, कोड़ाकोड़ी सागरों और पल्योंकी बातें करते है, परंतु उन विषयोंका जिकर तक भी नहीं करते जिन पर जैन-इतिहासका आधार है। क्या इससे अधिक और कोई शोक की बात होसकती है कि धर्मप्रवर्तक, तीर्थंकर भगवान् महावीर स्वामीका निर्वाणसमय भी अभीतक अनिश्चित है? कितने जैन-पंडितोंने और ग्रेज्युएटोंने इस विषयका अध्ययन किया! कितनोंने इस पर लेखनी उठाई? शोक! महाशोक! कि हमारे कामको विदेशी

विद्वान् हाथमें लेवें और हम उनकी कुछ भी सहायता न करें। काम हमारा और करें वे और उस पर हमारा मौनावलम्बन !

दयाचन्द्र गोयलीय, बी. ए.।

जैननिर्वाण-संवत्।

जैनोंके यहाँ कोई २५०० वर्ष की संवत्-गणना का हिसाब हिन्दुओं भर में सब से अच्छा है। उससे विदित होता है कि पुराने समय में ऐतिहासिक परिपाटी की वर्षगणना यहां थी। और जगह वह लुप्त और नष्ट हो गई, केवल जैनों में बच रही। जैनों की गणना के आधार पर हमने पौराणिक और ऐतिहासिक बहुत सी घटनाओंको जो बुद्ध और महावीर के समय से इधर की हैं समयबद्ध किया और देखा कि उनका ठीक मिलान जानी हुई गणना से मिल जाता है। कई एक ऐतिहासिक बातों का पता जैनों के ऐतिहासिक लेख पट्टावलियों में ही मिलता है। जैसे नहपान का गुजरात में राज्य करना उस के सिक्कों और शिला लेखों से सिद्ध है। इसका जिक्र पुराणों में नहीं है। पर एक पट्टावली की गाथा में जिस में महावीर स्वामी और विक्रम संवत् के बीच का अन्तर दिया हुआ है नहपाण का नाम हम ने पाया। वह ' नहवाण 'के रूपमें है। जैनों की पुरानी गणना में जो असंबद्धता योरपीय विद्वानों द्वारा समझी जाती थी वह हमने देखा कि वस्तुतः नहीं है। यह सब विषय अन्यत्र लिख चुके हैं। यहां केवल निर्वाण संवत् के विषय कुछ कहा जायगा।

महावीर के निर्वाण और गर्दभिल्ल तक ४७० वर्ष का अन्तर पुरानी गाथा में कहा हुआ है जिसे दिगंबर और श्वेताम्बर दोनों दलवाले मानते हैं । यह याद रखने की बात है कि बुद्ध और महावीर दोनों एक ही समय में हुए । बौद्धों के सूत्रोंमें तथागत का निर्ग्रन्थ नाटपुत्र के पास जाना लिखा है और यह भी लिखा है कि जब वे शाक्यभूमिकी ओर जा रहे थे तब देखा कि पावामें नाटपुत्रका शरीरान्त हो गया है ।

जैनों के ' सरस्वती गच्छ ' की पट्टावली में विक्रम संवत् और विक्रमजन्म में १८ वर्ष का अन्तर मानते हैं । यथा—" वीरात् ४९२ विक्रम जन्मान्तरवर्ष २२, राज्यान्त वर्ष ४ । " विक्रम विषयकी गाथा की भी यही ध्वनि है कि वह १७ वें या १८ वें वर्ष में सिंहासन पर बैठे । इस से सिद्ध है कि ४७० वर्ष जो जैन-निर्वाण और गर्दभिल्ल राजा के राज्यान्त तक माने जाते हैं, वे विक्रम के जन्मतक हुए—(४९२–२२=४७०) । अतः विक्रमजन्म (४७० म० नि०) में १८ और जोड़ने से निर्वाण का वर्ष विक्रमीय संवत् की गणना में निकलेगा अर्थात् (४७०+१८) ४८८ वर्ष विक्रम संवत् से पूर्व अर्हन्त महावीर का निर्वाण हुआ । और विक्रम संवत के अब तक १९७१ वर्ष बीत गए हैं, अतः ४८८ वि० पू० +१९७१=२४५९ वर्ष आजसे पहले जैन–निर्वाण हुआ । पर ' दिगंबर जैन ' तथा अन्य जैनपत्रों पर नि० सं०२४४१ देख पड़ता है । इसका समाधान यदि कोई जैनसज्जन करें तो अनुग्रह होगा । १८ वर्ष का फ़र्क गर्दभिल्ल और

विक्रमसंवत् के बीच की गणना छोड़ देने से उत्पन्न हुआ मालूम होता है। बौद्ध लोग—लंका, श्याम, वर्मा आदि स्थानों में बुद्धनिर्वाण के आज २४५८ वर्ष बीते मानते हैं। सो यहां मिलान खा गया कि महावीर, बुद्ध के पहले निर्वाण—प्राप्त हुए। नहीं तो बौद्धगणना और 'दिगंबर जैन' गणना से अर्हन्त का अन्त बुद्ध—निर्वाण से १६—१७वर्ष पहले सिद्ध होगा जो पुराने सूत्रों की गवाही के विरुद्ध पड़ेगा।

(पाटलिपुत्रसे उद्धृत)

जिनाचार्यका निर्वाण

—उस का जातीय उत्सव—।

कहुं ईश्वर कहुं बनत अनीश्वर नाम अनेक परो।
सत पन्थहिं प्रगटावन कारण लै सरूप विचरो॥
जैन धरम में प्रगट कियो तुम दया धर्म सगरो।
'हरीचन्द' तुमको बिनु पाए लरि लरि जगत मरो॥

जैन—कुतूहल।

धर्मनायकोंके मत—प्रवर्त्तन का तत्त्व ऊपर के पद की आदि कड़ियों में हरिश्चन्द्र ने कहा है।

अहो तुम बहु विधि रूप धरो,
जब जब जैसा काम परै तब तैसो भेख करो।

जब जिस बात की आवश्यकता पड़ती है, मानवशक्ति अथवा उस शक्ति का प्रेरक एक नया रूप धर कर खड़ा होता है। हिन्दू जाति की आत्मा ने ऐसे समय में जब कि इस देश का मुख्य भोजन मांस था आचार्य महावीर नाटपुत्र के रूप में अवतार ले

कहा 'बस ! अब बहुत हुआ, छुरी की जगह दया धारण करो।' नाटपुत्र निर्ग्रन्थ ने यहांके मनुष्येतर प्राणियों को निर्ग्रन्थ—स्वतंत्र किया। भागलपुर के पास एक छोटे से पंचायती राज्य—गणराज्य के एक ठाकुर के बेटे के मन में दया की दिग्विजय की कामना उठी। उस समय भारतवर्ष में चारों ओर राज्यनैतिक दिग्विजय की कामना हवा पानी पेड़ पत्ते में भर रहीं थी। छोटे छोटे राज्य पाण्डवों के महाराज्य सा राज्य बनाना चाहते और आसमुद्र एक-चक्र, एकछत्र राज्य स्थापित किया चाहते थे; उसी फसल में अङ्ग के खेत में एक निराला फूल खिला। उसे हम 'अहिंसाविजय' कहेंगे। विजय और साथ ही अहिंसा ! जिन अर्थात् विजेता और साथ ही चींटी तक न दबे ! नाटपुत्र की विजय हुई। 'साईं चले पउला पउला चिंउटी बचाय के' ग्राम की बात है। चींटी को चारा देनेवाले, पिंजरापोल बनानेवाले, नीलकंठ को व्याध के हाथ से मुक्त करनेवाले हिन्दू, अपनी अलौकिक दया पर घमंड करने वाले हिन्दू, नाटपुत्र की बात मान गए। ऐसे बहादर को जिसने अपने से निर्बल को मारना कायरता और पाप मनवा दिया, हिन्दू लोगों ने ठीक ही 'महावीर' की उपाधि से भूषित किया। वह भारत के नहीं, संसार के महावीरों में जब तक चन्द्र और सूर्य है गिना जायगा।

वेदद्रोही बुद्ध का आदर हिन्दुओं ने उन्हें अवतार मान कर किया। पर क्या हिन्दू अपने महावीर नाटपुत्र को भूल गए? नहीं, उसकी याद वे हर साल करते हैं। हिन्दूजाति अपना इतिहास

भूल गई है, पर अपनी ऐतिहासिक संस्थाएं वह भक्तिपूर्वक मानती और चलाती चली आई है जिनके कारण बुद्धिबल और सुदिन पाने पर वह अपना इतिहास फिर जान जायगी। हिन्दुओं के त्योहार उस के सुदिन के अनश्वर बीज हैं। अवसर और देशकाल का मेह पा उन त्योहारों और रस्मों से अभ्युदय पनप पड़ेगा।

'जिन' नाटपुत्र का मृत्युदिन उनके जन्म दिन से भी बड़े उत्सव का दिन था, क्योंकि उस दिन उन्हों ने अपना मोक्ष माना। उनका मोक्ष कार्त्तिक की अमावस्या को हुआ। पावा कसबे में वहां के जमींदार के दफ्तर में उनका निर्वाण हुआ। उनका मोक्ष मनाने को पावापुरी ने 'दीपावली' की।

तब हीसे आज एक पावापुरी नहीं आर्यावर्त्त की सारी पुरियां कार्त्तिक की अमावस्या को दीपावली का उत्सव मनाने लगीं और वह कितनी ही शताब्दियों से जातीय महोत्सव हो गया है। दीप ज्ञान का रूप है। ज्ञानी और ज्ञानदाता नाटपुत्र महावीर के स्मरणार्थ इस से उपयुक्त महोत्सव क्या हो सकता है?

प्राकृत जैन कल्पसूत्र (१२३ से आगे) में महावीर के जीवनचरित में, पावा में उनके मरण का जहां विवरण दिया है वहीं निर्वाण के उत्सव में दिवाली करना भी लिखा है। हम लोगों के और किसी प्राचीन ग्रन्थ में दीपावली महोत्सव की उत्पत्ति-कथा नहीं लिखी है। हम हिन्दू जैसे अपनी बहुत सी जातिय बातें भूल गए थे, उसी तरह इस महोत्सव का मूल भी भूल गए थे।

जैसे बुद्ध भगवान् के मंदिर में हम नहीं जाते, उसी तरह

जिनदेव के भी मन्दिर में नहीं जाते, अर्थात् दोनोंके मत-वाद को हिन्दू तसलीम नहीं करते। पर दोनों आचार्यों को हिन्दू जातीय महावीर, जातीय महात्मा और जातीय सभ्यता के स्तम्भ मानते हैं। अपने समय में हिन्दूजाति की दया ने सिद्धार्थ और नाटपुत्र के रूप में जन्म लिया था, जाति की जातिने मानों उन्हीं की आत्माके अन्तर्गत पैठ अपना निश्चय, दयानिश्चय प्रकट किया।

जो तितिक्षा बाबू हरिश्चन्द्र में थी वही हमारे पूर्वजों में थी। पूर्वजों ने भगवान बुद्ध को परमात्मा का अवतार मान लिया जैसे बाबू हरिश्चन्द्र ने महावीर और उनके पहलेके तीर्थंकर पार्श्वनाथ को अवतार कहा। तब क्या अचरज है कि पूजार्ह अर्हन्त महावीर की स्मृति में हिन्दू जातिने एक महोत्सव चलाया?

जैन को नास्तिक भाखै कौन।
परम धरम जो दया अहिंसा सोई आचरत जौन॥
सत्कर्मन को फल नित मानत अति विवेक के भौन॥
तिन के मतहिं विरुद्ध कहत जो महा मूढ़ है तौन॥

(हरिश्चन्द्र)

(पाटलिपुत्रसे उद्धृत)

प्राचीन खोज।

भीलसा।

विजयमण्डलमन्दिर—आदिमें यह मन्दिर वैष्णव या जैन था। वर्तमानमें वेदिकादिके चिह्न बिलकुल मिट गये हैं। मन्दिरकी सुन्दर कारीगरी और चित्रादिसे विदित हुआ कि यह बहुत प्राचीन है। खंभोंकी नक्काशी पुराने ढंग की है। प्रत्येक खंभे पर बारह लहरें पड़ी हुई हैं।

वज्रमन्द जैनमन्दिर—यह मंदिर ग्यारसपुरकी ओर मलाडियन पर्वतकी तलहटीमें है। पहले बहुत सुन्दर रहा होगा; पर वर्तमानमें खण्डहर हो रहा है। इसकी मरम्मत किसी भद्दे समयमें हुई है। जिन खंभों पर मूर्तियाँ विराजमान हैं वे किसी अन्य प्राचीन मन्दिरसे लाये गये हैं। मन्दिरमें तीन वेदिका हैं। मध्यकी वेदिकामें हाथियोंके ऊपर सिंहासन पर एक पद्मासन मूर्ति है। दाहिनी ओर एक खड्गासन–मूर्ति है और उसके दोनों ओर कई छोटी छोटी खड्गासन मूर्तियाँ हैं। इसके बादकी वेदिकामें दो सिंहों पर रक्खे हुए सिंहासन पर भी जैनमूर्ति विराजमान है। ई० सन् ६९० के पहलेका यह मन्दिर मालूम होता है।

इसी ग्राममें एक मन्दिरमें मिले हुए चार खंभे और एक तोरण बहुत ही सुन्दर हैं। ये उसी समय के बने हुए मालूम होते हैं जिस समयका उक्त प्राचीन मन्दिर है।

गरूरमलका मन्दिर—बारूके समीप पथारी ग्राममें यह मन्दिर है। इसके भीतर देवोंकी मूर्तियाँ नहीं हैं। कहा जाता है कि एक ड़रियेने इसको अपनी स्त्रीकी यादगारमें बनाया था। मन्दिरके

भीतर गड़रियेकी स्त्रीकी सुन्दर मूर्ति है जो भीतके सहारे खड़ी है। उसके पास ही चार सेविकाओंकी मूर्तियाँ हैं । ये सब मूर्तियाँ पूरे कदकी हैं। मन्दिर पर एक बढ़िया तोरण भी है । एक मीनार खड़ा है, उस पर एक सिंहकी मूर्ति है। यह एक आदर्श जैनमन्दिर था ।

थोबन ।

थोबनसे पूर्वकी ओर पथरीले बनमें पार्श्वनाथके नामसे प्रख्यात जैनमन्दिरोंका एक समूह है। ये सब वणिकोंके बनवाये हुए हैं। ये बहुत प्राचीन नहीं हैं; परन्तु इनके बीचमें एक विष्णुका मन्दिर दशवीं शताब्दिका बना हुआ है जिसमें अनेक चित्र बने हुए हैं । एक जैनमूर्ति स्थापित करके जैनोंने इसकी प्रतिष्ठा भी करा डाली है। पहले यह मन्दिर बहुत सुन्दर रहा होगा । इसमें भीतर प्रवेश करते ही एक बुद्ध देवकी उकीरी हुई मूर्ति दृष्टि पड़ती है।

उज्जैन ।

भरतरी गुफा—यह प्राचीन स्थान जैनमन्दिरोंके बीचमें है। इसमें शताब्दियों पहलेकी प्राचीन जैनमूर्तियाँ स्थापित हैं ।

जुमा मसजिद—साफ़ मालूम होता है कि यह बहुत प्राचीन जैनमन्दिर है। इसमें लाल पत्थरके बहुत ही सुन्दर खंभे हैं; परन्तु इस जिले भरमें कहीं लाल पत्थर नहीं मिलता है ।

चैनी खंभा—यह लाल रेतीले पत्थरका बना हुआ है और जैनोंकी प्राचीन शिल्पकारीका सुन्दर नमूना है ।

(जयाजी प्रतापके एक अँगरेज़ी लेखसे)

विश्वंभरदास गार्गीय ।

सेठ देवचन्द-लालचन्द-पुस्तकोद्धार फण्ड।

यह बड़ी ही प्रसन्नताकी बात है कि जैनसाहित्यके प्रकाश करनेकी ओर जैनसमाजका ध्यान जा चुका है और उसके उद्योगसे दिन पर दिन अधिकाधिक ग्रन्थ प्रकाशित होते जाते हैं। इस विषयमें दिगम्बर सम्प्रदायकी अपेक्षा श्वेताम्बर सम्प्रदाय बहुत आगे बढ़ गया है और यही कारण है कि आज साहित्यसेवियोंमें सबसे अधिक चर्चा श्वेताम्बर सम्प्रदायके ग्रन्थोंकी है। इस सम्प्रदायके अनुयायियोंने जो अनेक ग्रन्थप्रकाशिनी संस्थायें स्थापित की हैं उनमें 'सेठ देवचन्दलालचन्द पुस्तकोद्धार फंड,' विशेष उल्लेखयोग्य है। इसे सूरतके प्रसिद्ध जौहरी सेठ देवचन्दलालचन्दजी अपने मृत्युपत्रमें ४९ हजारका दान करके स्थापित कर गये हैं। आगे इस फंडमें सेठजीके पुत्र गुलाबचन्दजीने और उनकी पुत्री श्रीमती जीवकोर बाईने पचीस पचीस हजार रुपया और भी दिये और इस तरह अब यह फंड लगभग एक लाख रुपयाका हो गया है। इसकी ओरसे श्वेताम्बरसम्प्रदायके संस्कृत, प्राकृत, गुजराती और अँगरेजी ग्रन्थ प्रकाशित किये जाते हैं। प्रत्येक ग्रन्थ लागतके या उससे भी कम मूल्य पर बेचा जाता है। साधु साध्वियों, असमर्थ श्रावकों, पाठशालाओं, मन्दिरों और पुस्तकालयोंके लिए बिनामूल्य ग्रन्थ देनेकी भी व्यवस्था है। संस्था अच्छे ढंगसे चल रही है। उसकी देखरेख ६ ट्रस्टियोंके हाथमें हैं। रुपया विश्वस्त बेंकों तथा प्रामिसरी नोटोंमें सुरक्षित है। अब तक इसकी ओरसे २३ ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके हैं जिन

सबका मूल्य लगभग १२) रु० होता है। हमारे पास संचालकोंने निम्न लिखित चार ग्रन्थ भेजनेकी कृपा की है:—

१ आनन्दकाव्यमहोदधि प्रथम मौक्तिक, (गुजराती)
२ पंचप्रतिक्रमण सूत्राणि .... (सं०प्राकृत)
३ दि कर्म-फिलोसोफी .... (अँगरेजी)
४ दि योग-फिलोसोफी .... (,,)

पहले ग्रन्थमें शालिभद्ररास, कुसुमश्रीरास, कुमारपाल-प्रस्ताविक काव्य, अशोकचन्द्र-रोहिणीरास और प्रेमलालक्ष्मीदास इन पाँच गुजराती काव्योंका संग्रह है। प्रारंभमें लगभग ६० पृष्ठका 'विवेचन' है जिसमें प्रत्येक काव्यके लेखकका इतिहास, काव्यका विशेषत्व आदि बातोंका विचार किया गया है। लगमग ५५० पृष्टका कपड़ेकी पक्की जिल्द बँधा हुआ ग्रन्थ है, तो भी मूल्य सिर्फ दश आना रक्खा गया है।

दूसरा ग्रन्थ संस्कृत और प्राकृत भाषाका है। इसमें स्तवनों और प्रतिकमणसूत्रोंका संग्रह है। सवा दोसौ पृष्ठका पक्की जिल्दका ग्रन्थ है। मूल्य सिर्फ चार आना।

तीसरा और चौथा ये दोनों ग्रन्थ अँगरजीके हैं। इनमें स्वर्गीय वीरचन्द राघवजी गांधी बी. ए. बैरिस्टर एट् लाके उन लेखों और व्याख्यानों संग्रह है जो उन्होंने अपने अमेरीकाके प्रवासमें स्थान स्थान पर दिये थे। ये दोनों ग्रन्थ बड़े ही महत्वके हैं और बड़े ही परिश्रमसे संग्रह किये गये हैं। उनका मूल्य भी बहुत ही कम अर्थात् पाँच पाँच आने है।

इस संस्थाकी दो वर्षकी संक्षिप्त रिपोर्ट हमारे पास आई है जिससे मालूम होता है कि पिछले वर्षके अन्तमें संस्थाके पास १११७२१ ≈)||| मौजूद रहे। दोनों वर्षमें लगभग ११०० पुस्तकें मुफ्त बाँटी गईं। पिछले वर्षमें अर्थात् सं० १९७० विक्रममें संस्थाकी ओरसे आठ ग्रन्थ प्रकाशित हुए हैं। इस तरह संस्थाकी दशा सब तरहसे संतोषयोग्य जान पड़ती है।

हमारी इस संस्थाके साथ पूर्ण सहानुभूति है और हम चाहते हैं कि जैनसमाजमें इस तरहकी और भी अनेक संस्थायें खुलें। क्या ही अच्छा हो यदि हमारे दिगम्बर सम्प्रदायके अनुयायी भी एक ऐसी ही संस्था स्थापित करें और उसके द्वारा अपने लुप्तप्राय साहित्यको जनसाधारणकी दृष्टि तक पहुँचानेका श्रेय प्राप्त करें। स्वर्गीय दानवीर सेठ माणिकचन्दजीके स्मारकमें जो फण्ड खोला गया है उसकी ओरसे एक संस्कृत-प्राकृत ग्रन्थमाला निकालनेका निश्चय हुआ है। क्या हमारे भाई इसी फण्डको बढ़ाकर कमसे कम २५–३० हजारका नहीं कर सकते हैं?

दुर्बुद्धि।

मैं एक कसबेकी सरकारी अस्पतालका डाक्टर हूँ। पुलिसके थानेके सामने मेरा मकान है। यमराजके साथ मेरी जितनी मित्रता थी दारोगा साहबके साथ भी उससे कम न थी। जिस तरह मणिसे वलयकी (कड़ेकी) और वलयसे मणिकी शोभा बढ़ती है उसी तरह मेरी मध्यस्थतासे दारोगा साहबकी और दारोगा साहबकी मध्यस्थतासे मेरी आर्थिक श्रीवृद्धि होती थी।

इन सब कारणोंसे दारोगा ललितचक्रवर्तीके साथ मेरी गहरी मित्रता थी। उनके किसी सम्बन्धीकी एक कन्या थी। दारोगा साहब उसके साथ विवाह करनेके लिए मुझसे सदा ही अनुरोध किया करते थे और इस तरह उन्होंने मुझे अपना बेदामका गुलाम बना रक्खा था। किन्तु मैंने अपनी एकमात्र मातृहीना कन्या सावित्रीको विमाताके हाथ सोंपना उचित न समझा। प्रतिवर्ष ही नये पंचांगके अनुसार विवाहके न जाने कितने मुहूर्त निकले और व्यर्थ चले गये। न जाने कितने योग्य और अयोग्य पात्र मेरी आँखोंके सामनेसे वर बनकर गृहस्थ बन गये; परन्तु मैं केवल उनके ब्याहोंकी मिठाइयाँ खाकर और लम्बी साँसें खींचकर ही रह गया।

सावित्रीने बारह पूरे करके तेरहवें वर्षमें पैर रक्खा। मैं विचार कर रहा था कि कुछ रुपयोंका इन्तजाम हो जाय तो लड़कीको किसी अच्छे घरमें ब्याह दूँ और उसके बाद ही अपने ब्याहकी चिन्ता करूँ। इसी समय हरनाथ मजूमदार आया और पैरों पर पड़कर रोने लगा। बात यह थी कि उसकी विधवा लड़की रातको एकाएक मर गई थी और इस मौकेको व्यर्थ खो देना अच्छा न समझकर उसके शत्रुओंने दारोगा साहबको एक बेनामका पत्र लिखकर सूचना दे दी थी कि विधवा गर्भवती थी। गर्भपात करनेका प्रयत्न किया गया, इसलिए इसमें उसकी भी जान चली गई। बस यह संवाद पाते ही पुलिसने हरनाथका घर घेर लिया और विधवाकी लाशका संस्कार करनेमें रुकावट डाल दी।

एक तो लड़कीका शोक व्याकुल कर रहा था और उस पर

यह असह्य अपवादकी चोट! बेचारा बूढ़ा अस्थिर हो उठा। बोला– आप डाक्टर भी हैं और दारोगा साहबके मित्र भी हैं, किसी तरह मुझे बचाइए।

लक्ष्मीजीकी लीला विचित्र है। जब वे चाहती हैं तब इस तरह बिना ही बुलाई छप्पर फोड़कर आजाती हैं। मैंने गर्दन हिलाकर कहा—'यह मामला तो बड़ा बेढब है!' और अपनी बातको प्रमाणित करनेके लिए दो चार कल्पित उदाहरण भी दे दिये। बूढ़ा हरनाथ काँप उठा और बच्चेकी नाईं रोने लगा।

अन्तमें मामला ठीक हो गया और हरनाथको अपने लड़कीके शवसंस्कार करनेकी आज्ञा मिल गई।

उसी दिन शामको सावित्रीने मेरे पास आकर करुणापूर्ण स्वरसे पूछा–" पिताजी, आज वह बूढ़ा ब्राह्मण तुम्हारे पैरों पड़कर क्यों रोता था?" मैंने उसे धमकाकर कहा–" तुझे इन बातोंसे क्या मतलब है! चल अपना काम कर!"

इस मामलेसे कन्यादान करनेका मार्ग साफ़ हो गया। लक्ष्मीजी बड़े अच्छे मौके पर प्रसन्न हुईं। विवाहका दिन निश्चित हो गया। एक ही कन्या थी, इसलिए खूब तैयारियाँ की गईं। घरमें कोई स्त्री नहीं थी, इस लिए पड़ोसियोंसे सहायता लेनी पड़ी। हरनाथ अपना सर्वस्व खो चुका था, तो भी मेरा उपकार मानता था और इसलिए इस काममें मुझे जी-जानसे सहायता देने लगा।

विवाहसमारंभ पूरा नहीं हो पाया। जिस दिन हल्दी चढ़ाई गई उसी दिन रात्रिको तीन बजे सावित्रीको हैज़ा हो गया। बहुत

उपाय किये गये, परन्तु लाभ कुछ भी नहीं हुआ। अन्तमें दवाइयोंकी शीशियाँ ज़मीन पर पटककर मैं भागा और हरनाथके पैरों पड़कर गिड़गिड़ाकर कहने लगा—"बाबा, क्षमा करो, इस पापीको क्षमा करो! सावित्री मेरी एक मात्र कन्या है। संसारमें इसे छोड़कर मेरा और कोई नहीं है।"

हरनाथ मेरे कथनका कुछ भी मतलब नहीं समझा; वह घबड़ाकर बोला—"डाक्टर साहब, आप यह क्या करते हैं? मैं आपके उपकारसे दबा हुआ हूँ; मेरे पैरोंको मत छुओ!"

मैंने कहा—"बाबा, तुम निरपराध थे तो भी मैंने तुम्हारा सर्वनाश किया है। मेरी कन्या उसी पापसे मर रही है।"

यह कहकर मैं सब लोगोंके सामने चिल्लाकर कहने लगा—"भाइयो, मैंने मनमाने रुपया लूटकर इस वृद्ध ब्राह्मणका सर्वनाश कर डाला है, अब मैं उसका फल भोग रहा हूँ। भगवन्, मेरी सावित्रीकी रक्षा करो।" इसके बाद मैं हरनाथके जूते उठाकर अपने सिरमें चटाचट मारने लगा; वृद्ध घबड़ा गया, उसने मेरे हाथसे जूते छीन लिये।

दूसरे दिन १० बजे हरिद्रा-रंग-रंजित सावित्री इस लोकसे बिदा हो गई!

इसके दूसरे ही दिन दारोगा साहबने कहा—"डाक्टर साहब, क्या चिन्ता कर रहे हो? घर-गिरस्तीकी सारसंभालके लिए एक आदमी तो चाहना ही पड़ेगा; फिर अब विवाह क्यों नहीं कर डालते?"

मनुष्यके मर्मान्तिक दुःखशोकके प्रति इस तरहकी निष्ठुर अश्रद्धा किसी शैतानको भी शोभा नहीं दे सकती! इच्छा तो हुई कि दारोगा

साहबको दो चार सुना दूँ; परन्तु समय समय पर मैं उनके सामने जिस मनुष्यत्वका परिचय दे चुका था उसकी याद आ जानेसे इस समय मेरा मुँह उत्तर देनेको नहीं खुल सका। उस दिन ऐसा मालूम हुआ कि दारोगाकी मित्रताने चाबुक मारकर मेरा अपमान किया है!

हृदय चाहे जितना व्यथित हो—चाहे जितना कष्ट आकर पड़े; परन्तु कर्मचक्र चलता ही रहता है—संसारके काम काज बन्द नहीं होते। सदाकी नाईं भूखके लिए आहार, पहरनेको कपड़े, और तो क्या चूल्हेके लिए ईंधन और जूतोंके लिए फीता तक पूरे उद्योगके साथ संग्रह किये बिना काम नहीं चलता।

यदि कभी कामकाजसे फुरसत पाकर मैं घरमें अकेला आकर बैठता था, तो बीचबीचमें वही करुणकण्ठका प्रश्न कानके पास आकर ध्वनित होने लगता था—" पिताजी, वह बूढ़ा तुम्हारे पैरों पड़कर क्यों रोता था? " और उस समय मेरे हृदयमें शूलकी सी वेदना होने लगती थी।

मैंने दरिद्र हरनाथके जीर्ण घरकी मरम्मत अपने खर्चसे करा दी। एक दुधारू गाय उसे दे दी और उसकी जो जमीन महाजनके यहाँ गिरवी रक्खी गई थी उसका भी उद्धार करा दिया।

मैं कन्याशोककी दुःसह वेदनासे कभी कभी रात रातभर करवटें बदलता पड़ा रहता था—घड़ीभरको भी नींद न आती थी। उस समय सोचता था कि यद्यपि मेरी कोमलहृदया कन्या संसारलीलाको शेष करके चली गई है तो भी उसे अपने बापके निष्ठुर दुष्कर्मोंके कारण

परलोकमें भी शान्ति नहीं मिल रही है—वह मानों व्यथित होकर यही प्रश्न करती फिरती है कि—"पिताजी तुमने ऐसा क्यों किया?"

कुछ दिन तक मेरा यह हाल रहा कि मैं ग़रीबोंका इलाज करके उनसे फ़ीसके लिए तकाज़ा न कर सकता था। यदि किसी लड़कीको कोई बीमारी हो जाती थी तो ऐसा मालूम होता था कि मेरी सावित्री ही सारे गाँवकी बीमार लड़कियोंके रूपमें रोग भोग रही है।

एक दिन मूसलधार पानी बरसा। सारी रात बीत गई, पर वर्षा बन्द न हुई। जहाँ तहाँ पानी ही पानी दिखाई देने लगा। घरसे बाहर जानेके लिए भी नावकी ज़रूरत पड़ने लगी!

उस दिन मेरे लिए मालगुज़ार साहबके यहाँसे बुलावा आया था। मालगुज़ारकी नावके मल्लाहोंको मेरा ज़रा भी विलम्ब सह्य नहीं हो रहा था; वे तकाजे पर तकाजे कर रहे थे।

पहले जब कभी ऐसे मौके पर मुझे कहीं बाहर जाना पड़ता था, तब सावित्री मेरे पुराने छातेको खोलकर देखती थी कि उसमें कहीं छिद्र तो नहीं है और फिर कोमल कण्ठसे सावधान कर देती थी कि "पिताजी, हवा बहुत तेज़ीसे चल रही है और पानी भी खूब बरस रहा है, कहीं ऐसा न हो कि सर्दी लग जाय।" उस दिन अपने शून्य शब्दहीन घरमें अपना छाता स्वयं खोजते समय मुझे उस स्नेहपूर्ण मुखकी याद आ गई और मैं सावित्रीके बन्द कमरेकी ओर देखकर सोचने लगा—जो मनुष्य दूसरेके दुःखोंकी परवा नहीं करता है, भगवान् उसे सुखी करनेके लिए उसके घरमें सावित्री जैसी स्नेहकी चीज़ कैसे रख सकता है? यह सोचते सोचते

मेरी छाती फटने लगी। उसी समय बाहरसे मालगुज़ार साहबके नौकरोंके तकाजेका शब्द सुन पड़ा और मैं किसी तरह शोक संवरण करके बाहर निकल पड़ा।

नाव पर चढ़ते समय मैंने देखा कि थानेके घाट पर एक किसान लँगोटी लगाये हुए बैठा है और पानीमें भीग रहा है। पास ही एक छोटी सी डोंगी बँध रही है। मैंने पूछा–"क्यों रे, यहाँ पानीमें क्यों भीग रहा है?" उत्तरसे मालूम हुआ कि कल रातको उसकी कन्याको साँपने काट खाया है, इस लिए पुलिस उसे रिपोर्ट लिखानेके लिए थानेमें घसीट लाई है। देखा कि उसने अपने शरीरके एक मात्र वस्त्रसे कन्याका मृत शरीर ढक रक्खा है। इसी समय मालगुज़ारके जल्दबाज़ मल्लाहोंने नाव खोल दी।

कोई एक बजे मैं वापस आ गया। देखा कि तब भी वह किसान हाथ पैरोंको सिकोड़कर छातीमें चिपटाये बैठा है और पानीमें भीग रहा है। दारोगा साहबके दर्शनोंका सौभाग्य उसे तब भी प्राप्त नहीं हुआ था। मैंने घर जाकर रसोई बनाई और उसका कुछ भाग किसानके पास भेज दिया; परन्तु उसने उसका स्पर्श भी न किया।

जल्दी जल्दी आहारसे छुट्टी पाकर मैं मालगुज़ारके रोगीको देखनेके लिए फिर घरसे बाहर हुआ। संध्याको वापस आकर देखा तो उस किसानकी दशा खराब हो रही है। वह बातका उत्तर नहीं दे सकता, मुँहकी ओर टकटकी लगाकर देखने लगता है। उस समय नदी, गाँव, थाना, मेघाच्छन्न आकाश और कीचड़मय पृथ्वी आदि सब चीजें उसे स्वप्नके जैसी मालूम होतीं

थीं ! बारबार पूछताछ करने पर मालूम हुआ कि उससे एकबार एक सिपाहीने आकर पूछा था कि ‘ तेरे पास कुछ रुपये हैं या नहीं ’ और इसके उत्तरमें उसने कह दिया था कि ‘ मैं बहुत ही ग़रीब हूँ, मेरे पास कुछ भी नहीं है । ’ सिपाही तब यह कहकर चला गया था, ‘ तो कुछ नहीं हो सकता, यहीं पड़े रहना पड़ेगा । ’

मैंने इस प्रकारके दृश्य सैकड़ों ही बार देखे थे, पर उनका मेरे चित्त पर कुछ भी असर नहीं पड़ा था; मगर उस दिन उस किसानकी दशा मुझसे नहीं देखी गई—मेरा हृदय विदीर्ण होने लगा । सावित्रीके करुणागद्गद कण्ठका स्वर जहाँ तहाँसे सुनाई पड़ने लगा और उस कन्यावियोगी वाक्यहीन किसानका अपरिमित दुःख मेरी छातीको चीरकर बाहर होने लगा ।

दारोगा साहब बेतकी कुर्सी पर बैठे हुए आनन्दसे हुक्का पी रहे थे । उनके पूर्वोक्त सम्बन्धी महाशय भी वहीं बैठे हुए गप्पें हाँक रहे थे जो कि अपनी कन्याका विवाह मेरे साथ करना चाहते थे । वे इस समय इसी कामके लिए वहाँ पधारे थे । मैं झपटता हुआ पहुँचा और दारोगा साहबसे चिल्लाकर बोला—“आप मनुष्य हैं या राक्षस ? ” इसके साथ ही मैंने अपने जीवनकी सारी कमाईके रुपयोंकी थैली उनके सामने पटक दी और कहा—“रुपया चाहिए तो ये ले लो, जब मरोगे तब इन्हें साथ ले जाना; परन्तु इस समय इस ग़रीबको छुट्टी दे दो, मैं इसकी कन्याका अन्तिम संस्कार करा दूँ ! ”

दारोगा साहबका जो प्रेम-मैत्री-विटप अनेक दुखियोंके आँसुओंके सेचनसे लहलहा रहा था, वह इस आकस्मिक आँधीसे गिरकर ज़मीनमें मिल गया!

(रवीन्द्रबाबूकी एक गल्पका अनुवाद ।)

मालवा-प्रान्तिक-सभाका वार्षिक अधिवेशन ।
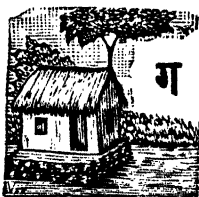
गत ७ नवम्बरसे ९ नवम्बरतक दि० जै० मालवा प्रान्तिक सभाका जल्सा खूब धूमधामके साथ हो गया । यह अधिवेशन सिद्धक्षेत्र सिद्धवरकूट पर हुआ था । हमारी जितनी प्रान्तिकसभायें हैं उनमें अब दूसरा स्थान मालवासभाको मिलना चाहता है । अभी तक एक बम्बई प्रान्तिकसभा ही ऐसी थी जो एक सभाके रूपमें काम करती थीं; परन्तु अब देखते हैं कि मालवासभा भी उसी मार्ग पर पैर बढ़ाती जाती है । लगभग चार पाँच हजार स्त्री पुरुषोंका जमाव हुआ था । यह जानकर पाठक आश्चर्य करेंगे कि बड़वाहकी एक धनिक विधवा बाईके उत्साह और अर्थव्ययसे यह अधिवेशन हुआ था । इस महिलारत्नका नाम श्रीमती केसरबाई है । जैनसमाजमें शायद यह पहला उदाहरण है जिसमें

एक स्त्रीने मन्दिरप्रतिष्ठादिके प्रचलित पुण्य कार्योंको छोड़कर सार्वजनिक सेवा करनेवाली सभाके लिए इतनी उदाहरण दिखलाई हो। इससे जान पड़ता है कि हमारे स्त्रीसमूहकी भी रुचि सभासुसाइटियोंकी ओर होती जाती है। ये अच्छे लक्षण हैं। स्वागतकारणी सभाने अधिवेशनका प्रबन्ध प्रशंसनीय पद्धतिसे किया था। इस काममें लगभग पाँच हजार रुपये खर्च हो गये। सभापतिका आसन धूलियानिवासी सेठ गुलाबचन्दजीको दिया गया था।

सभापतिका व्याख्यान।

आपका व्याख्यान, समायानुकूल और बहुत कुछ उदार विचारोंसे पूर्ण हुआ है। जैनग्रन्थोंको छपाकर प्रकाशित करना, जैनोंकी समस्त जातियोंमें रोटीबेटीव्यवहार होना, आदि ऐसे विपयोंका भी आपने प्रतिपादन किया है जिनके विषयमें अब तकके सेठ-सभापतियोंमेसे शायद ही किसीने जबान हिलाई हो। यद्यपि आपने इन बातोंको दबी जबानसे कुछ डरते हुए कहा है; पर कहा अवश्य है। वर्णाश्रम धर्म और राष्ट्रीयताके विषयमें आपने जो कुछ कहा है वह इस विषयकी सब बाजुओं पर विचार करके नहीं कहा है। वर्णको गुणकर्मानुरूप न मानकर जन्मसिद्ध माननेसे क्या क्या हानियाँ होती हैं, धर्मदृष्टिसे किसी मनुष्यको नीच अस्पर्श्य माननेका किसीको अधिकार है या नहीं और गुणकर्मसे नीचत्व उच्चत्व कहाँतक प्राप्त हो सकता है, इन सब बातों पर विचार करके इस प्रश्नकी मीमांसा होनी चाहिए

थी। जो लोग वर्णभेदके विरुद्ध हैं उनके वे सिद्धान्त नहीं हैं जो व्याख्यानमें बतलाये गये हैं। एकता और सार्वजनिक कामोंमें योग, इन दो विषयों पर बहुत ही उदारतापूर्वक चर्चा की गई है। इससे जान पड़ता है कि सभापति महाशय सार्वजनिक कामोंसे बहुत प्रेम रखते हैं। एकतामें उन्होंने दिगम्बर, श्वेताम्बर, स्थानकवासी, तेरहपंथ, वीसपंथ आदिके झगड़ोंको भूलकर सम्मिलित शक्तिसे काम करनेका उपदेश दिया है।

स्वागतकारिणी सभाके सभापति

श्रीयुत बाबू माणिकचन्द्रजी बी. ए. एल एल. बी. वकील खंडवा बनाये गये थे। विद्यार्थी-जीवनमें आप जैनसमाजके कार्योंमें बहुत योग दिया करते थे। भारतजैनहामण्डलकी आप जीजानसे सेवा करते थे; परन्तु इधर कई वर्षोंसे आपने इस ओरसे बिलकुल हाथ खींच लिया था। हर्षका विषय है कि मालवा प्रान्तिकसभा अब उन्हें फिर इस ओर खींच लाई है और हमें आशा दिला रही है कि बाबू माणिकचन्द्रजी जैनसमाजके कार्योंमें पहलेहीके समान फिर योग देने लगेंगे। आपका व्याख्यान पिछले अंकमें प्रकाशित हो चुका है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि वह आपकी योग्यताके सर्वथा अनुरूप हुआ है। जैनसभाओंमें इस प्रकारके व्याख्यान सुननेके अवसर बहुत कम प्राप्त होते हैं और इसका कारण यह है कि बहुत कम सभायें ऐसी हैं जो कभी भूल चूककर ऐसे योग्य पुरुषोंको सभापति चुन लिया करती हैं। इस तरहकी एक भूल बम्बई प्रान्तिकसभाने बाबू अजितप्रसादजीका चुनाव करके

की थी, या अबकी बार यह दूसरी भूल मालवा प्रान्तिकसभाने की है !

स्वागतकारिणी सभाके सभापतिका व्याख्यान !

जो लोग जैनसमाजकी उन्नतिमें दत्तचित्त हैं और उसकी भलाईमें लग रहे हैं उनके लिए यह व्याख्यान मार्गदर्शकका काम देगा। इसमें प्रायः सभी आवश्यकीय बातोंकी चर्चा की गई है और सभी बातों पर अपने स्वतंत्र मन्तव्य प्रकट किये गये हैं। जैनसमाजकी उन्नतिका आदर्श क्या होना चाहिए, इस विषयमें वे कहते हैं:— " जैनसमाजकी भावी उन्नतिका आदर्श भी अन्य जातियोंके समान यह होना चाहिए कि हमारी समाजरूपी इमारतके बनानेमें नीव हमारे प्राचीनकी हो, स्टाइल हमारी हो, परन्तु मसाला जहाँ अच्छा मिले वहाँसे लाकर उसे अपनी आवश्यकताओंके अनुकूल बनाकर दीवालें तथा छतें उसीकी बनाई जावें। नकल कभी अच्छा नहीं होती, वह चाहे प्राचीन पूर्वकी हो या अर्वाचीन पश्चिमकी हो। मेरी सम्मतिमें हमें भली बातें ग्रहण करनेमें जरा भी संकोच न करना चाहिए, चाहे वे प्राचीनकालसे मिलें या वर्तमान कालसे—पूर्वसे मिलें या पश्चिमसे। उन भली बातोंको हमें अपने उपयुक्त बनाकर उन्हें ग्रहण करनी चाहिए। रीतियें—रस्में इत्यादि किसीकी सम्पत्ति नहीं होतीं, उन पर सब कौमोंका हक है। चाहे कोई कुछ करे, पर हमारी समाज वर्तमान कालके प्रभावसे नहीं बच सकती। औरोंने जो सामाजिक विकास सम्बन्धी शोध किये हैं उनसे हमें लाभ उठना चाहिए। इत्यादि।" इन थोड़ीसी पंक्तियोंमें बहुत विचार करने योग्य बातें

कह दी गई हैं। इस आदर्शको स्वीकार कर लेनेसे प्राचीनता और अर्वाचीनताके अभिमानियोंकी पारस्पारिक खींचाखींची बहुत कुछ कम हो सकती है। जैनसाहित्यकी रक्षा और प्रसारके लिए बाबू साहबने बहुत अधिक जोर दिया है। कहा है कि, "जैनग्रन्थ इस प्रचुरताके साथ छपवाकर वितीर्ण किये जावें कि सारा संसार उनसे पूर्ण हो जावे और लोग उन्हें पढ़नेके लिए मजबूर हों।" आराके सिद्धान्त भवनके सम्बन्धमें जो जातिकी उदासीनता दिखलाई गई है हमारी समझमें उसके साथ साथ उसके संचालकोंकी भी उदासीनता और आलस्यका उल्लेख करना चाहिए था। संचालक यदि उत्साही प्रयत्नशील और सुयोग्य हों तो वे लोगोंकी उदासीनताको बहुत कुछ कम कर सकते हैं। सिद्धान्त भवनके कार्यकर्त्ता अभी तक अपने संग्रहीत पदार्थों और ग्रन्थोंकी एक सूची भी प्रकाशित नहीं कर सके हैं। तीनवर्षमे तो उसकी रिपोर्ट भी प्रकाशित नहीं हुई है। आगे उन्होंने जैनसमाजकी शिक्षासंस्थाओंकी आलोचना की है। वे कहते हैं कि—"एक दोको छोड़कर हमारी इन शिक्षा-सम्बन्धी संस्थाओंसे हमारी कौमको न वास्तविक लाभ हुआ है और न हो रहा है। इसका प्रधान कारण यह है कि हम इस कार्यको शिक्षासम्बन्धी उचित प्रणाली निश्चित किये विना कर रहे हैं। हमारी शिक्षाप्रणाली आवश्यकताओंके अननुरूप और समयके विपरीत है। ऐसी कोई भी शिक्षाप्रणाली सर्वसाधारणको प्रिय तथा स्वीकृत नहीं हो सकती जो उन्हें लौकिक शिक्षा प्रदान कर उनको लौकिक लाभ तथा लौकिक उन्नतिके और जीवननिर्वाहके मार्ग

प्रदान न करे। इसी कारण साधारण लौकिक शिक्षाके विषयमें सरकारी शिक्षापद्धतिके विरुद्ध एक स्वतंत्र पद्धति स्थापित कर पृथक् पाठशालाएँ कायम करनेकी जैनसमाजके लिए आवश्यकता नहीं। ऐसा करनेसे कुछ लाभ नहीं होगा। गवर्नमेंटकी शिक्षाप्रणालीमें जो त्रुटियाँ हैं, केवल उन्हींकी पूर्तिके लिए हमें खास उद्योग करना चाहिए। अर्थात् हमें अपने बालकोंको साधारण शिक्षा तो सरकारी पाठशालाओंमें दिलाना चाहिए और धार्मिक शिक्षाके लिए हमें स्वतंत्र प्रबन्ध कर लेना चाहिए।" इसमें सन्देह नहीं कि ये विचार बहुत कम लोगोंको पसन्द आवेंगे; परन्तु इनमें सत्यताका अंश बहुत है। जिन शहरोंमें सरकारी स्कूल हैं वहाँ एक स्वतंत्र पाठशाला स्थापित करना उस दशामें अच्छा हो सकता है जब उसका प्रबन्ध और उसकी शिक्षापद्धति सरकारी स्कूलोंसे अच्छी हो। नहीं तो स्वतंत्र पाठशालासे उलटी यह हानि होगी कि जो विद्यार्थी सरकारी स्कूलोंमें पढ़कर अच्छी योग्यता सम्पादन कर लेते, वे हमारी अस्तव्यस्त पाठशालामें पढ़कर मूर्ख रह जावेंगे। उन्हें छहढाला, मंगल, सूत्र, भक्तामर तो आवश्य आ जावेंगे; परन्तु और कुछ नहीं आवेगा। ऐसे स्थानोंमें दिनकी स्वतंत्र पाठशालायें न खोलकर दो घंटेके लिए रातकी पाठशालायें खोली जावें और उनमें जैनधर्मकी शिक्षा दी जावे तो बहुत लाभ हो। हम इस बातको नहीं मानते कि जैनसमाजको अपनी स्वतंत्र शिक्षा-संस्थायें खोलना ही न चाहिए अथवा कोई दूसरी स्वतंत्र शिक्षापद्धति जारी न करना चाहिए। इसकी हम बहुत आवश्यकता समझते हैं—अन्य

समाजोंने इसतरहकी कई संस्थायें खोली भी हैं; परन्तु ऐसी संस्थायें खोलना हँसी खेल नहीं है। इसके लिए बहुत बड़ी पूँजी और शिक्षाविज्ञानके अच्छे अच्छे विद्वान् संचालकोंकी आवश्यकता है। ऐसी संस्थायें कोरे न्याय–व्याकरण–धर्मशास्त्रके पण्डितोंके भरोसे नहीं खोली जा सकती हैं। इसलिए जबतक हमारेपास ऐसी संस्थायें खोलनेके साधन न हों तबतक छोटी छोटी स्वतंत्र संस्थायें न खोलकर सरकारी स्कूलोंसे ही लाभ उठाना चाहिए और धर्मशिक्षाका प्रबन्ध रात्रिकी पाठशालायें खोलकर कर देना चाहिए। आगे चलकर बाबू साहबने एक 'जैनशिक्षासमिति' स्थापित करनेकी और 'महावीर जैनकालेज' खोलनेकी आवश्यकता प्रकट की है। हमारी समझमें इन दोनों संस्थाओंकी जरूरत तो है; पर अभी इनके स्थापित होनेका–अच्छी तरह चल सकनेका समय नहीं आया है और इसका सबसे बड़ा कारण यह है कि अभी तक हमारे शिक्षित भाइयोंका ध्यान इस ओर बहुत ही कम आकर्षित हुआ है। हमारे यहाँ काम करनेवालोंकी इतनी कमी है कि कालेज तो बहुत बड़ी बात है–एक हाईस्कूलका अच्छी तरह चला लेना भी बहुत कठिन जान पड़ता है। बम्बईका जैनहाईस्कूल इसका प्रमाण है। इसके बाद आपने जैनसमाजके जातिभेद और विशेष करके उपभेदोंको मिटादेनेकी चर्चा करके बहुतसी कुरीतियोंको दूर करनेकी सूचना की है। समाजसुधारके प्रश्नका विचार करते हुए आपने जो नवयुवकोंको और पुराने विचारवालोंको सूचनायें की हैं वे बहुत महत्त्वकी हैं और उनसे आपकी दीर्घदृष्टिका परिचय

मिलता है। जहाँ आपने युवकोंको उद्धतता छोड़ने और धैर्यसे काम करने तथा अपने पक्ष पर स्थिर रहनेका उपदेश दिया है वहाँ बूढ़ोंको यह भी समझाया है कि वे नई पीढ़ीकी विचार-प्रगतिके बाधक न बनें और विना प्रजाके राजा और विना अनुयायियोंके मुखिया बननेका मौका न आने देवें। बीचमें और भी अनेक विषयोंकी चर्चा करके बाबूसाहबने अन्तमें कहा है कि "हमें सदा इस बातका ध्यान रखना चाहिए कि हम हिन्दू जातिके एक अंग हैं और हमें कदापि उससे पृथक् होनेकी चेष्टा न करनी चाहिए। हमको कभी न भूलना चाहिए कि हम केवल जैन ही नहीं हैं हम हिन्दू भी हैं। हम हिन्दुस्थानके निवासी हैं, अतएव इस देशकी भक्ति तथा सेवा करना हमारा धर्म है।" हम आशा करते हैं कि जैनसमाजके नेता बाबूसाहबके इन वाक्यों पर ध्यान रक्खेंगे और देशके सार्वजनिक कार्योंमें उसी तरह योग देंगे जिस तरह और लोग देते हैं। हमें अपने इस कर्तव्यको और इस अधिकारको कभी न भुला देना चाहिए। अभी तक हमारे प्रयत्न प्रायः अपने हिन्दू भाइयोंसे जुदा रहनेकी ओर ही होते रहे हैं।

प्रस्ताव।

सभाके जलसोंमें सब मिलाकर २१ प्रस्ताव पास हुए। उनमें-से कई प्रस्ताव महत्त्वके हुए। १ पोरवाड़ जातिकी जो दो तीन शाखायें हैं वे मिला दी जावें और उनमें परस्पर सम्बन्ध होने लगें। २ सिद्धवरकूटके आसपासके स्थानोंकी ऐतिहासिक खोज की जाय।

यह प्रस्ताव बिलकुल नया है। आशा है कि इसको अमलमें लानेके लिए भी कुछ उद्योग किया जायगा । ३ सभाकी ओरसे एक 'प्रभात' नामका मासिक पत्र निकाला जाय । ४ जैनसाहित्यको प्रकट करके उसका बहुलताके साथ प्रचार किया जाय । मालवा-प्रान्तिक सभाके अधिवेशनमें इस प्रकारका प्रस्ताव पास हो जाना यह बतलाता है कि हम अपने मार्गमें बराबर प्रगति करते जा रहे हैं। जब पहले अधिवेशनमें मुद्रित जैनग्रन्थोंके आद्य प्रचारक सेठ हीराचन्द नेमिचन्दजी सभापति हो चुके थे, तब इस अधिवेशनमें इस प्रस्तावका पास होना बिलकुल 'क्रमयुक्त' है—यह होना ही चाहिए था।

फुटकर बातें।

सभामें अनेक विद्वान् उपस्थित हुए थे। उनके कई व्याख्यान और शास्त्रीय चर्चायें हुईं। जैनमहिलापरिषत्की भी तीन बैठकें हुईं। कई स्त्रियोंके व्याख्यान हुए और कई प्रस्ताव पास किये गये। सबसे बड़ी महत्त्वकी बात यह हुई कि श्रीमती बेसरबाईने स्त्री-शिक्षाके प्रचारके लिए २५ हजार रुपयेकी रकम देना स्वीकार की! जैनसिद्धान्तपाठशाला मोरेना आदि संस्थाओंको लगभग दो हजार रुपयोंकी सहायता मिली।

अशान्तियोग।

इस समय हमारे समाजमें जो 'विचारभेद' हो रहा है उसकी साक्षी देनेके लिए अब प्रायः प्रत्येक ही सभामें अशान्तियोग आकर उपस्थित हो जाता है। इस जल्सेमें भी इसके कुछ समयके लिए

दर्शन हो गये । इस प्रकारकी घटनायें अब हमारे लिए बहुत परि-चित होती जाती हैं, इसलिए हमें इनसे कोई आश्चर्य या खेद नहीं होता है; तथापि यह जानकर हमें बहुत दुःख हुआ कि एक धनी महाशयने एक ज़रासी बात पर—बिना समझे ही एक वयोवृद्ध समाजसेवकका—नहीं, उसकी जातिभरका अपमान कर डाला । अवश्य ही उक्त सज्जनको इसका कुछ खेद नहीं हुआ है—वे अपने जीवनमें ऐसी बहुत सी घटनाओंका सामना कर चुके हैं; तथापि धनिक महाशयको—जो कि जैनसमाजके एक अगुएके रिक्त स्थानको भर देना चाहते हैं—बहुत सोच समझकर—परिणामका ख़याल रखकर अपने वचन निकालना चाहिए । बड़ोंका बड़प्पन इसीमें है ।

सेठीजी और जैनसमाज ।
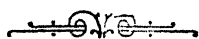
श्रीयुत बाबू अर्जुनलालजी सेठी आज १० महीनेसे जिस विपत्तिमें पड़े हैं उसका संवाद सर्वश्रुत हो चुका है । यह भी सबको मालूम है कि अभीतक उन पर कोई भी अपराध नहीं लगाया गया है । जिस सन्देहमें वे पकड़े गये हैं वह अभी तक सन्देह ही सन्देह है । सरकारकी शक्तिशालिनी और विचक्षण दृष्टि भी अभी तक उस सन्देहको सत्यके रूपमें परिणत नहीं कर सकी है । यदि उसे एक भी प्रमाण उनके अपराधी हो-

नेका मिलता तो वह मुकद्दमा चलाये बिना और सज़ा दिये बिना न रहती; परन्तु अब तक वह कोई भी सुदृढ़ प्रमाण नहीं ढूँढ़ सकी है और इसी लिए आगे प्रमाण मिलनेकी आशासे उन्हें हवालातमें सड़ा रही है। यद्यपि कानूनकी दृष्टिसे किसी व्यक्तिको इस तरह प्रमाणाभावसे वर्षोंतक हवालातमें डाल रखना अन्याय है और इस बातको गवर्नमेंट भी जानती है; परन्तु उसने अपनेको न्यायी और निर्दोषी बनाये रखनेके लिए एक उपाय कर लिया है और बहुत संभव है कि सेठीजीको जयपुरराज्यके हवाले कर रखनेमें उसका यही मतलब हो। गत ९ दिसम्बरको जो जयपुर–महाराजकी ओरसे सेठीजीके विषयमें एक आर्डर निकला है, उसका अभिप्राय यह है कि " इस पुरुषका राजनीतिक साज़िशोंसे गहरा सम्बन्ध हैं और यह जयपुर राज्यके नियमोंसे विरुद्ध है। ऐसे पुरुषका स्वतंत्र रखना जोखिमका है। इसलिए आज्ञा दी जाती है कि अर्जुनलाल सेठी ९ वर्ष तक या जब तक दूसरी आज्ञा न निकले हिरासतमें रक्खा जाय। " इससे भी यही मालूम होता है कि गवर्नमेंटके पास और जयपुरराज्यके पास इस समय कोई भी प्रमाण नहीं है जिससे सेठीजी पर मुकद्दमा चलाया जा सके और वे अपराधी बनाये जासकें। दिल्ली, आरा और कोटेके मुकद्दमे भी करीब करीब ख़तम हो चुके हैं; परन्तु उनमें भी कहीं कोई बात ऐसी नहीं निकली है जिससे सेठीजी पर जो सन्देह है उसे विश्वासके रूपमें बदलनेकी गुंजाइश हो। इन सब बातोंसे साफ़ मालूम होता है कि सन्देहके सिवाय और कोई कारण सेठीजीकी इस विपत्तिका नहीं है।

परन्तु हम पूछते हैं कि क्या सन्देह हमेशा ही सत्यका अवलम्बन करनेवाला होता है? झूठसे उसका क्या कुछ भी सम्बन्ध नहीं रहता है? क्या यह संभव नहीं है कि सेठीजी पर जिस अपराधका सन्देह किया गया है वह उन्होंने सर्वथा ही न किया हो—केवल कुछ ऊपरी बातोंपरसे अनुमान कर लिया गया हो? पुलिसके हाथों इस तरहके सन्देहोंमें नित्य ही अनेक आदमी फँसते हैं और अन्तमें वे निरपराध ठहरते हैं। फिर क्या कारण है जो हम सेठीजीके निर्दोष होनेपर विश्वास न करें? बल्कि और सन्देहास्पद व्यक्तियोंकी अपेक्षा तो सेठीजीके निर्दोष सिद्ध होनेकी बहुत अधिक संभावना है। कारण, और लोगोंको अपराधी सिद्ध करनेके लिए तो पुलिस कुछ न कुछ सुबूत तैयार रखती है और न्यायाधीश उन सुबूतों पर विचार करके दोषी निर्दोषी सिद्ध करते हैं; परन्तु सेठीजीके विषयमें तो पुलिसके पास एक भी सुबूत नहीं है और इसी कारण अब तक वे किसी न्याया-धीशके सामने खड़े नहीं किये गये हैं।

इसके सिवाय सेठीजी एक अनुभवी और विद्वान् पुरुष हैं। जैन-धर्मपर उनकी दृढ श्रद्धा है। परोपकारके लिए उन्होंने अपना जीवन दे डाला है। इस लिए उनके विषयमें हमको क्या, किसीको भी स्वप्नमें विश्वास नहीं हो सकता है कि उन्होंने कोई घृणित राजद्रोहका काम किया होगा। अवश्य ही किसी बड़े भारी भ्रममें पड़कर सरकार उन्हें राजद्रोही समझ रही है।

जैनसमाजकी ओरसे सेठीजीके विषयमें कोई बलवान् प्रयत्न नहीं हो रहा है। इसका कारण यह बतलाया जाता है कि जैन-

समाज शान्तिप्रिय और राजभक्त समाज है, इस लिए वह सेठीजी जैसे राजद्रोही आदमीके लिए कोई प्रयत्न करना भयप्रद समझता है। परन्तु वास्तवमें देखा जाय तो यह भय निर्मूल है और इसी लिए हमने ऊपर बतलाया है कि सेठीजीके राजद्रोही होनेका कोई भी सुबूत नहीं है; वे केवल सन्देहके कारण आपत्तिमें फँसे हुए हैं। इसलिए बड़ेसे बड़े राजभक्त समाजके लिए भी उनकी सहायता करनेमें ज़रा भी भयका कारण नहीं है।

किसी अपराधी समझेगये आदमीको बचानेके लिए—जबतक कि उस पर अपराध साबित नहीं हुआ है—न्यायसंगत प्रयत्न करना गवर्नमेंटकी दृष्टिमें भी कोई अपराध या राजद्रोह नहीं है। क्योंकि जबतक न्यायाधीशने उसको अपराधी सिद्ध नहीं किया है तबतक गवर्नमेंट स्वयं भी उसे वास्तविक अपराधी नहीं समझती। ऐसी दशामें कोई कारण नहीं है कि जैनसमाज सेठीजीको बचानेके लिए प्रयत्न न करे। इस प्रयत्नमें उसे राजद्रोहका ज़रा भी भय न करना चाहिए। यह तो एक तरहसे सरकारके न्यायविभागको सहायता पहुँचाना है—सरकारको अन्यायके कलंकसे बचानेका यत्न करना है। इसे तो हम राजभक्ति ही कहेंगे।

राजद्रोह करनेका हमारा उद्देश्य भी तो नहीं है। हम यह कहाँ चाहते हैं कि सेठीजी राजद्रोहका काम करके भी मुक्त हो जावें। नहीं, हमारा आशय तो यह है कि यदि वे वास्तवमें निरपराधी हैं और पुलिसके भ्रमसे कष्ट पा रहे हैं तो हमारे प्रयत्नसे उन्हें छुटकारा मिल जावे। निरपराधीको कष्टोंसे बचाना—उसकी सहायता

करना मनुष्य मात्रका कर्तव्य है। फिर जैनसमाजका तो यह बाना ही है कि दुखियोंका दुःख दूर करना और निर्बलोंको अत्याचारसे बचाना।

इसके सिवाय सेठीजी जैनधर्मके अनुयायी हैं, जैनसमाजके एकान्त हितैषी हैं। उसकी सेवाके लिए तो उन्होंने अपना जीवन दे डाला है। ऐसे पुरुषकी भी यदि जैनसमाज इस समय सहायता न करेगा तो उसका दयाधर्मका—परसेवाका बाना कहाँ रहेगा? यदि एक परोपकारी सधर्मी भाईकी—जैनीकी भी सहायता न हुई तो उसका वात्सल्य अंग कहाँ रहेगा?

एक और दृष्टिसे भी जैनसमाजको सेठीजीकी सहायता करना अपना परम कर्तव्य समझना चाहिए। इस समय जैनसमाजकी उन्नतिके लिए सबसे बड़ी आवश्यकता यह है कि सौ पचास स्वार्थत्यागी कर्मवीर पुरुष तैयार होवें और वे समाजकी सेवाके लिए अपना जीवन अर्पण कर देवें। परन्तु क्या जैनसमाज यह समझता है कि सेठीजी जैसे पुरुषोंकी ऐसी निःसहाय अवस्था देखकर भी आगे कोई पुरुष समाजसेवक बननेको उत्साहित और उत्सुक हो सकेगा? सेठीजी सबसे पहले पुरुष हैं जिन्होंने उच्च श्रेणीकी विद्या प्राप्त करके और धर्मशास्त्रोंका गहरा अध्ययन करके अपनी जाति और धर्मकी सेवाके लिए जीवन अर्पण कर दिया है। इस पुरुषरत्नने आज सात आठ वर्षसे अपना तन-मन-धन सब कुछ लगाकर जिस उत्साहसे सेवा की है वह जैनोंके इस युगके इतिहासमें अपूर्व है। ऐसे पुरुषको इतने बड़े संकटसे बचानेके लिए

हम यह नहीं कहते हैं कि मेमोरियल ही भेजा जाय। हमारा कहना तो केवल इतना ही है कि अब जो कुछ किया जाय, उन लोगोंकी सम्मतिसे किया जाय जो ऐसे मामलोंसे और कानूनोंसे परिचित हैं। ऐसे सज्जन यह अथवा ऐसे ही और जो जो उपाय उचित समझें उन्हें काममें लावें और तब तक उद्योग करते रहें जब तक कि सेठीजी छोड़ न दिये जावें अथवा उनके ऊपर कोई मुकद्दमा न चलाया जाय।

अन्तमें हम फिर इसी बातको दुहराते हैं कि सेठीजीकी सहायता करनेमें गवर्नमेंटकी नाराजी या एतराजीका कोई कारण नहीं है। यह कोई राजद्रोहका कार्य नहीं है। प्रत्येक दुखी प्राणीकी सहायता करना हमारा धर्म है। इसी धर्मके खयालसे हमें उनकी तनसे धनसे जिसतरह बन सके उसतरह सहायता करनी चाहिए। हम यह चाहते हैं कि वे यदि निरपराधी हों तो छूट जावें; किन्तु यदि वे अपराधी सिद्ध होंगे तो सारा जैनसमाज एक स्वरसे पुकार कर कहेगा कि उन्हें अवश्य दण्ड दिया जाय।

अशा है कि जैनसमाज हमारे इस लेख पर बहुत जल्द ध्यान देगा और सेठीजीके प्रति जो उसका कर्तव्य है उसके सम्पादन करनेमें तत्पर हो जायगा। इस कामके लिए दो चार सज्जनोंको शीघ्र आगे आना चाहिए और चन्दा एकत्र करके कामका आरंभ कर देना चाहिए।

विविध प्रसंग।

१ शिक्षापद्धति पर ध्यान दीजिए।

जैनसमाजकी अधिकांश पाठशालाओं और शिक्षा-संस्थाओंकी दशा सन्तोषप्रद नहीं है। इसका एक बड़ा भारी कारण यह है कि उनमें प्रायः जितने अध्यापक या पण्डित रक्खे जाते हैं उन्हें पढ़ानेका ढंग या शिक्षापद्धति नहीं आती। अपने पाण्डित्यके आगे वे शिक्षापद्धतिको कोई चीज़ ही नहीं समझते हैं। विद्यार्थियोंको पुस्तकें बँचवा देना—अपनी क्लिष्ट भाषामें अर्थ समझना देना (विद्यार्थी चाहे समझे या नहीं), उससे याद कर लानेकी ताकीद कर देना और दूसरे दिन रटा हुआ पाठ सुन लेना, इसके सिवाय वे और कुछ नहीं जानते हैं। फल इसका यह होता है कि उनके पास विद्यार्थी वर्षों पढ़ा करते हैं, पर बेचारोंको कुछ भी बोध नहीं होता है। स्मरण शक्तिके सिवाय उनकी और किसी भी शक्तिसे काम नहीं लिया जाता है और इस तरह वे प्रतिभाहीन कल्पना-हीन रट्टू तोते बना दिये जाते हैं। हमने इस तरहके कई अभागी विद्यार्थियोंको देखा है और उनकी जीवनकी इस दुर्दशा पर अ-फ़सोस किया है। इस समय हमारे पास एक सज्जनकी चिट्ठी आई है जिसे हम यहाँ पर प्रकाशित कर देते हैं और आशा करते हैं कि शिक्षासंस्थाओंके संचालकोंका ध्यान इस ओर जावेगा और वे

शिक्षापद्धतिकी अच्छी जानकारी रखनेवाले अध्यापकोंको ही अपने यहाँ मुकर्रर करेंगे। क्या ही अच्छा हो यदि स्याद्वादविद्यालय काशी और जैनसिद्धान्तपाठशाला मोरेना आदिमें शिक्षापद्धति सिखलानेका प्रबन्ध कर दिया जावे और जो विद्यार्थी वहाँसे अध्यापकी करनेके लिए निकलें वे शिक्षापद्धतिके जानकार होकर निकलें। इस चिट्ठीसे इस बातका भी पता लगेगा कि पढ़ानेकी पद्धतिमें भेद होनेसे विद्यार्थियोंकी योग्यतामें कितना आकाश—पातालका अन्तर हो जाता है।

" महाशय, मेरे गाँवसे दो लड़के विशेष शिक्षाप्राप्त करनेके लिए लगभग एकही समयमें दो स्थानोंको भेजे गये थे। दोनों लड़के हिन्दीकी पाँच कक्षायें पढ़े हुए थे और स्कूलमें दोनोंकी योग्यता लगभग एकही सी समझी जाती थी। इनमेंसे एक लड़का जयपुरकी शिक्षाप्रचारक समितिमें भरती हुआ और दूसरा एक प्रसिद्ध जैनसंस्कृतपाठशालामें भरती हुआ जिसका कि मैं उल्लेख नहीं करता चाहता हूँ। इस पाठशालाका मासिक खर्च लगभग २५०) रुपया है और कई बड़ी बड़ी तनख्वाह पानेवाले अध्यापक हैं। पाठशालाके साथ एक छात्रालय भी है। लगभग तीन तीन वर्ष पढ़कर उक्त दोनों विद्यार्थी यहाँ अपने घर आये हुए हैं। मैंने समझा था कि इन दोनोंकी योग्यता लगभग एकसी ही होगी; परन्तु जब मैंने परीक्षा ली तब मेरे आश्चर्यका ठिकाना न रहा। यहाँ मैं यह निवेदन कर देना चाहता हूँ यह परीक्षा एक या दो दिनमें कुछ प्रश्न करके ही नहीं कर ली गई है; बल्कि इनके

साथ महीनों रह करके मैंने इनकी योग्यताका पता लगाया है। समितिका विद्यार्थी अँगरेजी तो चौथी कक्षातक पढ़ा है—तीसरी अँगरेजीमें तो वह सरकारी स्कूलमें भरती ही हो गया है। संस्कृतमें उसकी इतनी योग्यता है कि हितोपदेश आदिकी सरल संस्कृत सुगमतासे समझ लेता है। धर्मविषयमें वह रत्नकरंडश्रावकाचार, द्रव्यसंग्रह आदि पुस्तकें पढ़ा है। इसके सिवाय जैनधर्मकी स्थूल बातोंका उसे अच्छा ज्ञान है, उसकी धर्मविषयक शंकायें सुनने योग्य होती हैं। हिन्दीकी उसकी इतनी अच्छी योग्यता है कि उसने बीसों अच्छी अच्छी पुस्तकें पढ़ डाली हैं, सरस्वती आदि उच्च श्रेणीके पत्रोंको पढ़नेका उसे बड़ा शौक है, छोटी छोटी तुकबन्दियाँ कर लेता है और निबन्ध लिख लेता है। भूगोल, इतिहास, सायन्स आदिका भी उसे ज्ञान है। उसे फुटबाल क्रिकेट आदि खेल खेलना आता है और शुद्ध सभ्य वार्तालाप करना आता है। यद्यपि उसका नैतिक चरित बहुत अच्छा है तथापि उसमें चापल्य बहुत है। जैनसमाजमें क्या हो रहा है, देशमें किन बातोंका आन्दोलन जारी है, इसका भी उसे ज्ञान है। मैं इस लड़केकी योग्यतासे इतना सन्तुष्ट हुआ हूँ कि यदि आज समितिका अस्तित्व होता, तो मैं उसमें अपने यहाँके दशबीस लड़कोंको भरती कराये बिना न रहता—उनके निर्वाहके लिए मैं घरघर भीख माँगकर भी रुपये संग्रह कर देता। दूसरा लड़का व्याकरणमें लघुकौमुदी षड्लिंग पर्यन्त पढ़ा है और साहित्यमें हितोपदेशके १० पृष्ठ पढ़ा है। मैंने कई श्लोकोंका अर्थ पूछा; परन्तु वह अच्छी तरह न बता सका।

धर्मशास्त्र उसे बिलकुल नहीं पढ़ाया गया; धर्मकी स्थूल बातें भी वह नहीं समझता है। पहले वह बहुत चंचल था; परन्तु अब सुस्तसा हो गया है। तन्दुरुस्ती भी ख़राब हो गई है। हिन्दी जितनी स्कूलमें पढ़ा था उससे एक अक्षर अधिक नहीं जानता। देश समाज और साहित्यका उसे ज़रा भी परिचय नहीं है। पाठ-शालाका संचालन किस ढंगसे होता होगा और उसके अध्याप-कोंका शिक्षापद्धतिसे कहाँ तक परिचय है इसका ज्ञान भी उक्त विद्यार्थीकी दिनचर्यासे हो जाता है। पाठशालाके छात्रालयमें रहते समय वह सबेरे ६ बजे सोकर उठता था, ८ बजेसे पाठ याद करनेको बैठता था, ९॥ के बाद १०—१५ मिनिटमें उसे पाठ दे दिया जाता था और पिछला सुन लिया जाता था। फिर भोजन करता था। आगे २ बजेसे ४॥ बजे तक फिर रटता था। बस, इस तरह दिन समाप्त हो जाता था! यह एक ग़रीबका लड़का है। इसके पिताको आशा थी कि यह बाहर रहकर पढ़ेगा तो सुयोग्य हो जायगा; परन्तु उस बेचारेकी आशा पर पानी फिर गया। मुझे भी बहुत दुःख हुआ। अब मैंने कोशिश करके उसे एक अँगरेज़ी स्कूलमें भरती होनेका प्रबन्ध करा दिया है। यदि रातदिनकी रटन्तकी मारसे उसकी बुद्धिमें कुछ चेतनता शेष रही होगी, तो शायद इस प्रयत्नमें उसे कुछ सफलता प्राप्त हो जाय। न जाने उक्त संस्कृतपाठशालाने ऐसे कितने होन-हार लड़कोंकी बुद्धिकी बाढ़को इस तरह हानि पहुँचाई होगी। क्या आप इस विषयमें कुछ आन्दोलन नहीं कर सकते हैं? मेरी समझमें तो इस तरहकी पाठशालाओंकी अपेक्षा पाठशालाओंका

न होना अच्छा है। संस्कृतशिक्षाकी इस तरह बदनामी करनेसे क्या लाभ है ? क्या ऐसी ही संस्थाओंसे संस्कृतकी और जैनधर्मकी उन्नति होगी ? क्या कोरे व्याकरण और न्यायसे ही हमारी अवश्यकताओंकी पूर्ति हो जायगी । जो शिक्षापद्धतिसे सर्वथा अनभिज्ञ हैं और संसारमें क्या हो रहा है इसकी जिन्हें कभी हवा भी नहीं लगती है, ऐसे लोगोंके हाथमें मालूम नहीं हमारा समाज भी क्यों इतनीं बड़ी बड़ी संस्थायें सौंप देता है। क्या पाठ दे देना और सुन लेना, बस इतना ही काम अध्यापकोंका है ? संस्कृतशिक्षापद्धतिका मतलब क्या यही है कि विद्यार्थियोंको सारी दुनियासे अलग खींचकर केवल न्याय और व्याकरणके सूत्र रटा देना ? यदि आप उचित समझें तो मेरी इस चिट्ठीको जैनहितैषीमें प्रकाशित कर दें और समाजका ध्यान इस ओर आकर्षित करनेकी कृपा करें कि संस्थाओंके चलानेवाले शिक्षाक्रम और शिक्षापद्धतिको अच्छी बनानेका यत्न करें, नहीं तो उनकी संस्थाओंसे समाजका कोई लाभ न होगा।

—एक स्कूलमास्टर।"

---

२ सहायक फण्ड।

जैनधर्म्म सर्व धर्म्मोंमें श्रेष्ठ इसी कारणसे माना जाता है कि 'अहिंसा परमो धर्मः' के नियमको हम जैनी अधिक काममें लाते हैं। अपना धन आहार, औषध, विद्या तथा अभयदानमें लगाकर सफल करते हैं। इससे हमको भी आनन्द होता है और पात्रोंको

भी आनन्द मिलता है; परन्तु बहुतसे लोगोंका संकट मालूम नहीं होता है तथा जो मनुष्य संकटमें होते हैं उनको इस बातका पता लगानेमें भी बड़ा संकट होता है कि कहाँ सहायता मिल सकती है। इसलिए 'भारतजैनमहामण्डल' एक सहायक फण्ड खोलता है जिससे जो महाशय दुःखनिवारणमें सहायता देना चाहते हों वे अपना धन पुण्यमें लगा सकें और जिनको सहायता लेनी हो वे आसानीसे सहायता पासकें। इस संसारमें दुःख बहुत बहुत प्रकारके हैं और हरएक प्राणी किसी न किसी दुःखसे ग्रसित है। यह असम्भव है कि हर एकको हर प्रकार सहायता मिल सके। इस फण्डसे केवल जैनधर्मियोंका अचानक संकट या आपत्ति निवारण करनेका यत्न किया जावेगा। दुष्कालमें निर्धनोंकी सहायता और पशुरक्षा इसमें शामिल है। औषधसे सहायता देना, जो बिना रोज़गार हो उसको रोज़गारमें लगाना, इस फण्डका साधारण काम होगा। एकाएक मकान गिर जाने पर, आग लग जाने पर, या लुटजाने पर जो संकट आजावे उसको मिटानेमें इस फंडका उपयोग किया जावेगा। 'दया धर्मका मूल है।' जो साधर्मी दुखित हैं उनकी सहायता करना सबसे बड़ा दयाका काम है। इसलिए आशा है कि सर्व भाई जो सहायता इस फंडमें दे सकते हैं वे अवश्य करेंगे और इस फंडमें द्रव्य भेजेंगे। हम विश्वास दिलाते हैं कि यह द्रव्य बहुत विचारके साथ खर्च होगा। जो भाई द्रव्य भेजेंगे उनको रसीद मिलेगी और इसका हिसाब छट्ठे महीने प्रकाशित किया जावेगा। जिस समय कोई महाशय किसी प्रकारका दान करें वे इस दुःखनिवारक फण्डको

न भूलें। यह सबसे प्रार्थना है कि जहाँ कहीं किसीको यह जान पड़े कि इस फण्डसे सहायता मिलनी चाहिए वह नीचे लिखे पते-पर पूरा हाल लिखकर सूचित करें—

चेतनदास बी. ए., सहारणपुर।

---

३ जैकोबीका अन्तिम व्याख्यान।

श्वे०जैन-कान्फरस-हेरल्डमें डा० जैकोबीका अन्तिम व्याख्यान अँगरेजीमें प्रकाशित हुआ है। उसमें कई बातें जानने योग्य हैं। पट्टणके भंडारमें ग्रन्थोंका निरीक्षण करते समय उन्हें अकस्मात् एक ग्रन्थ हाथ लग गया। यह 'अपभ्रंश भाषा' का है और धनपालका बनाया हुआ है। अब तक इससे पहले अपभ्रंश-भाषाका कोई भी ग्रन्थ न मिला था। इसके बाद उन्हें राजकोटमें एक 'नेमिनाथचरित' भी मिला जिसका कुछ भाग अपभ्रंश भाषामें लिखा हुआ है। इन दो ग्रन्थोंके मिल जानेसे साहित्य-संसारमें एक नई चर्चा शुरू हो जायगी। डा० जैकोबी इन ग्रन्थोंको अपने साथ ले गये हैं। वे इन्हें बहुत जल्दी अपभ्रंश भाषाके व्याकरणसहित प्रकाशित करेंगे। यहाँ कई विद्वानोंके पास उनके पत्र आये हैं जिनमें उन्होंने अपभ्रंश भाषाके ग्रन्थोंके विषयमें बहुत कुछ पूछताँछ की है। बस अब उन्हें अपभ्रंश भाषाकी धुन सवार हो गई है। इन यूरोपियन विद्वानोंमें यह बड़ा गुण है कि हर चीजकी खूब ही खोज करते हैं और उसके लिए बड़ा परिश्रम करते हैं। दूसरी बात व्याख्यानमें यह कही

गई है कि पट्टणमें मेरी भेट हिम्मतविजयजीसे हुई। ये जैन-शिल्पशास्त्रके बहुत अच्छे ज्ञाता हैं। जैनमन्दिरोंके ढाँचे, उनके भाग आदिका हाल उन्हें खूब मालूम है। बहुत से भागोंके उन्हें–खास खास नाम मालूम हैं। उनके पास एक पुस्तकालय है जिसमें सैकड़ों संस्कृत और प्राकृत ग्रन्थ केवल मन्दिर-निर्माण-विद्याके ही विषयके हैं। (खेद है कि ये महाशय न तो उन ग्रन्थोंको ही प्रकाशित करते हैं और न अपने ज्ञानको ही। हमारे देश-वासियोंकी यही तो विशेपता है।)

—संशोधक।

---

४ सर्वसाधारणजनोंमें शिक्षाका प्रचार।

यह कहनेकी आवश्यकता नहीं है कि जैनसमाजका भी भारत-वर्षके–अपने प्यारे देशके साथ वही सम्बन्ध है जो दूसरे समाजोंका है। अर्थात् हम केवल जैन ही नहीं हैं, भारतवासी भी हैं। इसलिए जिस तरह हमारा यह कर्तव्य है कि अपने समाजमें शिक्षाका प्रचार करें, उसी तरह यह भी है कि अपने देशमें—देशके तमाम मनुष्योंमें भी शिक्षाका विस्तार करें। यह बात हमें अच्छी तरह समझ लेना चाहिए कि जबतक अन्य सभ्य देशोंकी भाँति हमारे यहाँ भी शिक्षाका प्रचार बहुलताके साथ न होगा तबतक हमारा देश जीवन-की दौड़में दूसरोंकी बराबरी कदापि न कर सकेगा। हम यह नहीं चाहते हैं कि अपने समाजमें शिक्षाप्रचारके लिए हम जो उद्योग कर रहे हैं उसमें किसी तरह शिथिलता आ जावे; नहीं, उसे तो

हमें बढ़ाते ही जाना चाहिए, साथ ही सर्वसाधारणजनोंकी शिक्षाके कार्यमें भी हमें हाथ बँटाना चाहिए । सबसे पहले तो हमें यह चाहिए कि जहाँ जहाँ हमारी निजी संस्थायें हैं वहाँ यदि अन्य लोगोंके पढ़ने लिखनेका कुछ प्रबन्ध नहीं है—कोई अन्य स्कूल पाठशाला नहीं है तो अपनी पाठशालामें ही औरोंके लिखाने पढ़ानेका प्रबन्ध कर देना चाहिए । यदि अन्य विद्यार्थी हमारी धर्मशिक्षा लेना पसन्द न करें तो उन्हें केवल लिखना पढ़ना सिखलानेका ही प्रबन्ध कर देना चाहिए । जहाँ हमारी रात्रिकालमें लगनेवाली पाठशालायें हैं वहाँ अड़ोस-पड़ोसके उन जैनेतर लड़के-लड़कियोंको लिखना पढ़ना सिखलानेका इन्तजाम कर देना चाहिए जो दिन भर काम धंदा या मजदूरी करके अपने माबापोंकी सहायता करते हैं और इस कारण दिनके स्कूलोंमें पढ़ने नहीं जा सकते हैं । इस तरह-के प्रयत्नोंसे हमारा दूसरोंके साथ प्रेमभाव बढ़ेगा और हमारे अल्प व्यय और परिश्रमसे ही दूसरोंको बहुत लाभ पहुँचेगा । इसके बाद जिन स्थानोंमें हमारी संख्या थोड़ी हो और दूसरोंकी भी शक्ति पाठशालायें स्थापित करनेकी न हो वहाँ हमें उनके साथ मिलकर साधारण लिखना-पढ़ना सिखलाने योग्य पाठशालायें खोलकर अपना और उनका हित करना चाहिए । जहाँ कोई पाठशालादि स्थापित करनेका प्रबन्ध बिल्कुल न हो सकता हो वहाँ हमें चाहिए कि यदि हम थोड़ा बहुत जितना कुछ पढ़े-लिखे हैं वही अपने अड़ोस-पड़ोसके १०–५ लड़कोंको घंटे आधघंटेके लिए एकट्ठा करके पढ़ा दिया करें । शिक्षित व्यक्ति मात्रको प्रत्येक निरक्षर बालक-बालिका,

स्त्री-पुरुषको पढ़ाने लिखानेका व्रत ग्रहण कर लेना चाहिए। जो पढ़े लिखे नहीं हैं किन्तु समर्थ हैं उन्हें धनकी सहायता करके एक दो बालकोंको शिक्षित बनानेकी प्रतिज्ञा करना चाहिए। नगरों और कस्बोंकी अपेक्षा गाँव-खेड़ोंमें शिक्षाप्रचारके उद्योगकी बड़ी ज़रूरत है। इसके लिए यदि कुछ चलते-फिरते शिक्षक रक्खे जावें और यदि वे प्रत्येक गाँवमें दो दो चार चार महीने ठहरकर वहाँके लड़कोंको पढ़ना लिखना सिखलावें तो बहुत लाभ हो सकता है। यदि कुछ छोटी छोटी सुन्दर प्रारंभिक पाठ्य पुस्तकें तैयार की जावें और वे बहुत ही सस्ती लागतके मूल्यमें या मुफ्तमें बाँटी जावें तो बहुत लाभ हो। इस तरह जैसे बने तैसे प्रत्येक देशवासीको देशमें शिक्षा-प्रचारके लिए यत्न करना चाहिए।

५ एक स्त्रीरत्नका अन्त।

मिशन कालेज इन्दौरके प्रोफेसर बाबू रघुवरदयालजी जैनी एम. ए. की सुशीला गृहिणी श्रीमती कुन्दनबाईकी मृत्युका संवाद सुनकर हमें बहुत दुःख हुआ। बाबू साहब हमारे मित्र हैं। उनके द्वारा हमें विदित हुआ कि स्वर्गीया कुन्दनबाई एक स्त्रीरत्न थीं। उनका स्वभाव बहुत ही अच्छा था। शिक्षा भी उन्हें बहुत अच्छी मिली थी। उनमें अपने विद्वान् पतिको सब तरहसे प्रसन्न रखने योग्य योग्यता भी थी। उनका रहन-सहन देशी ढंगका था और वह बहुत ही पवित्र सादा और मोहक था। वे दयालु, उदार, और धर्ममें प्रेम रखनेवाली थीं। धार्मिक पुस्तकोंके स्वाध्याय करने और संग्रह करनेका उन्हें बहुत शौक था।

अपनी अड़ोस पड़ोसकी दूसरी बहनोंको भी वे पुस्तकें पढ़नेके लिए देती थी। उनकी मृत्युसे बाबू साहबके हृदय पर गहरी चोट लगी है। बाबू साहबने उनकी स्मृतिमें २५ रु० की जैनधर्मकी पुस्तकें वितरण करके उनके एक प्यारे कार्यका सम्पादन किया है।

६ चन्द्रगुप्तका जैनत्व ।

प्रसिद्ध इतिहासज्ञ मि० विन्सेंट ए. स्मिथने अपने बहुमूल्य ग्रन्थ 'भारतवर्षका प्राचीन इतिहास' का तीसरा संस्करण संशोधन करके प्रकाशित किया है। इसमें उन्होंने चन्द्रगुप्त मौर्यके जैन होने और राजपाट छोड़कर जैनमुनि हो जानेकी **'संभावना'**को स्वीकार किया है। शायद आगामी अन्वेषणोंमें वे इस बातको बिलकुल सत्य स्वीकार कर लें। —संशोधक।

७ शाकटायनके विषयमें खोज ।

प्रो० पाठकने इंडियन एंटिक्वेरीमें एक लेख प्रकाशित करवाया है जिसमें उन्होंने जैन-शाकटायनको महाराज अमोघवर्षका समकालीन बतलाया है। इस विषयमें उन्होंने कई प्रमाण भी दिये हैं। अमोघवृत्ति नामक टीका स्वयं शाकटायनकी ही बनाई हुई है। उसे उन्होंने महाराज अमोघवर्षके नाम स्मरणार्थ बनाया था। शाकटायनके विषयमें उनका विश्वास है कि वे श्वेताम्बरी थे। विद्वानोंको उक्त लेख पर विचार करना चाहिए।

क्या जैनजति जीवित रह सकती है ?

जिस समय सारा संसार अपनी उन्नतिकी आशा करता है, समस्तजतियाँ अपने सुधारके स्वप्न देखती हैं और सब कोई अपने समृद्धिशाली भविष्यकी ओर प्रसन्नचित्त दृष्टिपात करते हैं, उस समय उपर्युक्त प्रश्न असंगत प्रतीत होता है। अवश्य उस प्रश्नके उपस्थित करनेमें कुछ 'फैशन' के विचारकी आवश्यकता नहीं है; अपनी वास्तविक दशाका चित्र सदैव अपने सामने रखना ही अपनी त्रुटियोंकी पूर्तिमें सहायता दे सकता है।

परन्तु क्या जाति भी कभी मृत्युको प्राप्त हो सकती है ? जिस प्रकार मनुष्यकी शारीरिक शक्तियोंके दौर्बल्यसे उसकी जीवनलीलाका अंत होना हम नित्यप्रति देखते हैं उस ही प्रकार समाज और जातिके अस्तित्वका भी अंत होना कुछ आश्चर्यकारी नहीं है। जातिमें भी ऐसी शक्तियाँ हैं कि जिनमें दुर्बलता आ जाने पर जाति मृत्युपथ पर वेगसे अग्रसर होने लगती है।

हम देखते हैं कि प्रतिवर्ष जैनधर्मानुयायियोंकी सख्या घट रही है। २० वर्षमें १४ लाखसे १२ लाख हो जाना इस घटतीके वेगको सूचित करता है। जरा विचारकी बात है कि यदि इसही प्रकार घटती होती रही तो अबसे सौ सवा सौ वर्षमें क्या ऐसी कोई जाति शेष रह जायगी जो अपने आपको जैनी कहे ?

इसका कारण जाननेका बहुतोंने प्रयत्न किया है और उन्होंने अपनी सम्मति समय समय पर प्रगट भी की है। अनैक्य, बालविवाह, वृद्धविवाह, और परस्पर विवाहसम्बन्ध न होनेसे इस जैनजातिके अन्तर्गत बहुतसी अल्पसंख्यक जातियों-का सर्वनाश होचुका है और बड़ी बड़ी जातियोंकी संख्या भी वेगसे घट रही है। इन विषयों पर बहुत विचार प्रकट किये जाचुके हैं; परन्तु आज जैनजातिकी जिस शक्तिके रोगग्रस्त होनेका वृत्तान्त सुनानेके लिए मैं उपस्थित हुआ हूं उस पर बहुत कम ध्यान दिया गया है और अवसर ऐसा आगया है कि यह रोग बढ़कर उस शक्तिका सर्वथा नाश करनेहीवाला प्रतीत होता है।

मनुष्यके शरीरमें भी यह शक्ति होती है और यदि इसमें कुछ भी न्यूनता आ जाय तो मनुष्यका इस संसारमें जीवित रहना यदि नितान्त असम्भव नहीं तो बहुत कठिन अवश्य ही होजाय। परन्तु प्रकृति ऐसी बुद्धिमती है कि उसने इस शक्तिमें न्यूनाधिक करनेका अधिकार मनुष्योंको दिया ही नहीं और इस कारण मनुष्यके शरीरमें इसकी कमी कभी दृष्टिगोचर नहीं होती । तो भी हम यह आसानीसे समझ सकते हैं कि इसकी न्यूनताका परिणाम मनुष्यके शरीर पर क्या होगा ।

परन्तु इससे प्रथम इस शक्तिको जान लेना अत्यावश्यक है। शरीरमें हाथ, पाँव, नाक, कान, आदि पृथक् पृथक् अंगोपांग हैं। प्रकृतिका नियम है कि प्रत्येक दूसरेसे सहानुभूति रखता है, उसका आदर करता है, और समय पड़ने पर बिना संकोच सहायता करता है। यह आदर, यह सहानुभूति और यह सहायता ऐसी शक्ति है कि प्रत्येक अंग इसके कारण अपना कार्य निःसंशय प्रतिपादन करता है। पाँव शरीरको एक स्थानसे दूसरे स्थान पर लेजानेमें यह विचार नहीं करता कि कहीं ठोकर लगकर मुझे चोट न लग जाय, कहीं गढ़ेमें गिरकर मैं अपना नुकसान न कर लूँ। क्योंकि उसे दृढ़ विश्वास है कि आँखें सदैव उसे ठोकर खानेसे बचावेंगी और हाथ उसको गिरने पर भी सहायता देंगे। काँटा लगने पर पाँवको विशेष चिंता नहीं होती। क्योंकि आँख और हाथ विना प्रार्थना किये ही स्वयं कष्ट निवारण करनेको प्रस्तुत रहते हैं। आँखको भी कभी इस बातकी चिंता करनेका अवसर नहीं मिलता है कि कोई वस्तु आकर मुझ पर आघात न कर दे। क्योंकि वह जानती है कि पलकें तुरन्त ही उसे आघातसे बचानेके लिए अपना शरीर तक छोड़नेसे न चूकेंगी। इसही प्रकार प्रत्येक अंग अपना अपना कार्य शरीरके वास्ते निडर होकर सम्पादन करता है।

परन्तु मान लीजिए कि किसी प्रकार इस आदरका, इस सहानुभूतिका और इस सहायताके भावका अभाव हो जाय तो क्या शरीर कुछ भी कार्य कर सकेगा? क्या पाँव बिना हाथ और आँखकी सहायताके शरीरको चला सकता है; और चलावेहीगा क्यों ? यदि चलाया भी तो कहीं ठोकर खाकर, या गढ़ेमें गिरकर, अपनी हानिके साथ साथ सारे शरीरकी हानि करेगा । क्या पेट बिना दाँतोंके भोजन पचा सकता है ? यदि कभी हिम्मत करे भी, तो क्या अजीर्ण आदि रोगोंसे अपने आपको और सारे शरीरको नुकसान नहीं पहुँचावेगा ? गरज यह है कि इस सहानुभूतिके अभावसे कोई भी अंग शरीरकी सेवा नहीं कर सकता ।

ठीक इसही प्रकार जातिके सुसंगठित रहनेके लिए इस सहानुभूतिकी अत्यन्त आवश्यकता है। यह ही वह शक्ति है जिसके भरोसे प्रत्येक मनुष्य अपनी जातिके लिए कुछ काम कर सकता है। इसहीके सहारे मनुष्य जातिके लिए अपने स्वार्थका त्याग कर सकता है और यही उसे अपने कार्यसे विचलित होनेसे रोक रखती है। वह जानता है कि यदि उस पर कुछ कठिनाई पड़ेगी तो समाज उसको दूर करनेका प्रयत्न करेगा। उसे विश्वास है कि अवसर आने पर जाति उसे अकेला नहीं छोड़ देगी। उसे इसका भी भरोसा है कि यदि वह जातिको अपना जीवन समर्पण कर चुका है तो जाति भी उसके जीवनको बहुमूल्य समझती है और इस लिए वह उसे कदापि दुःख नहीं पाने देगी। वह जानता है कि उस पर कष्ट आने पर उसके बालबच्चोंकी रक्षा करना जाति अपना परम कर्तव्य समझेगी। इसी विश्वास पर निश्चिन्त होकर वह जातिकी सेवा करता है, अपने स्त्री पुत्रादिकोंकी कुछ भी परवा न कर, अपने स्वास्थ्यकी भी उपेक्षा कर वह कर्तव्यका पालन करता है और तब ही जाति सुसंगठित रह सकती है। तब ही जातिको शिक्षाप्रचार, सामाजिक सुधार इत्यादि आवश्यक कार्योंके लिए प्रयत्न करनेवाला एक सेवक मिलता है और वह जाति कालसे युद्ध करनेमें सफल हो सकती है।

अब मान लीजिए कि किसी समाजमें इस ही शक्तिका अस्तित्व न हो, सेवकोंमें और जातिमें सहानुभूति न हो, समय पड़ने पर जाति अपने उद्धारकका साथ न दे, कष्टमें उसे अकेला छोड़ दे और उसकी असमर्थतामें उसके स्त्री पुत्रोंका पालन न करे तो उस महान् आत्माका तो अवश्य कुछ न बिगड़ेगा; परन्तु अन्य जो कोई जातिसेवा करनेका विचार करता हो, और यह चाहता हो कि स्वार्थका त्यागकरके समाजसुधारके लिए कुछ काम करना चाहिए, कहिए उस पर इस सहानुभूतिके अभावका क्या प्रभाव पड़ेगा? माना कि यदि वह वास्तवमें उच्च आत्मा है, यदि वास्तवमें उसकी इच्छा प्रबल है तो वह कदापि इससे पीछे न हटेगा; परन्तु साधारणतः हमारे दुर्भाग्यसे ऐसी उच्च आत्मायें अधिक नहीं होती और जो आत्मायें बहुत उन्नत न होकर भी समाजसेवा करनेको उद्यत होतीं हैं उनके लिए यह नितान्त कठिन है कि वे अपने आपको बिना सहायता और सहानुभूतिके कष्टमें डाल दें। और यदि डाल भी दिया तो जातिको विशेष लाभ न होगा, वरन् होनहार नवयुवकोंके सामने दुःख और कठिनाईयोंका चित्र आवश्यकतासे भी अधिक सजीव भावसे खिंच जायगा और इसकारण उनको कभी

समाजके लिए कार्य करनेका साहस न होसकेगा और बिना ऐसे आत्मत्यागियोंके असम्भव है कि जाति समयकी आवश्यकताओंको पूरी कर सके। निःसंदेह वह सबसे पीछे रहकर नाशको प्राप्त होजायगी।

क्या जैनसमाजकी ऐसी दशा है ? क्या जैनजाति अपने लिए सर्वस्व त्याग करनेवालोंकी सहायता नहीं करती ? क्या उनके कष्ट निवारण करनेका प्रयत्न नहीं करती ? इनका उत्तर केवल एक बातसे दिया जा सकता है कि पं० अर्जुनलालजी सेठी आज प्रायः १० माससे जेलमें सड़ाये जा रहे हैं। किस अपराध पर ? किस कुसूर पर ? परमात्मा जाने ! क्यों कि आजतक न कोई अभियोग चलाया गया और न कहीं प्रमाणित हुआ कि उन्होंने अमुक अपराध किया है। ऐसी दशा होने पर भी जैनसमाजने क्या किया ? क्या सरकारतक अपनी पुकार सुनाई ? क्या श्रीमान् लार्ड हार्डिजके कानोंतक बात पहुँचाई ? क्या न्यायशीला गवर्नमेंटका ध्यान इस ओर अकर्षित कराया ? क्या इसके लिए सभायें कीं और तार भेजे ? क्या किसी प्रकारका अन्दोलन किया ? बड़े दुःखके साथ कहना पड़ता है कि इनमेंसे कुछ भी नहीं किया। क्यों ? कुछ लोग कहते हैं कि यह सब 'सिडीशन' (राजद्रोह) समझा जाता है और सरकार अप्रसन्न होती है, इस कारण चुप रहना ही ठीक था। यह ठीक है कि आजकल मामूली सी बातें भी सिडीशन समझ ली जाती हैं; परन्तु न्यायके लिए प्रार्थना करना, अत्याचारसे बचानेकी पुकार करना और निर्दोषीकी सहायताके लिए सरकार तथा जनताको उत्तेजित करना भी यदि सिडीशन समझा जा सके तो कहना होगा कि इस बीसवीं शताब्दिमें भी अभी न्यायप्रियता नहीं आई। जब एक छोटे राज्यको पड़ौसी जर्मनीके अत्याचारसे बचानेके लिए इंग्लेंड अरबों रुपये खर्च कर सकता है और लाखों मनुष्योंकी क्षति भी सहनेके लिए तैयार है, तब क्या वह न्यायप्रिय राज्य हमारे क्रन्दनको सिडीशन समझेगा ? नहीं, कदापि नहीं। यह केवल बहाना मात्र है और ऐसा बहाना यही सूचित करता है कि सहानुभूति हमारे यहाँसे हवा हो गई। जब जेलके दुःखोंसे भी हृदय नहीं पिघला, जब स्त्री-पुत्रादिकोंका वियोगदृश्य भी कठोर हृदयोंको न हिला सका, जब जिनदर्शन करनेकी मनाई भी धार्मिकोंको दुःखित न कर सकी, जब ८ दिन निराहार रहने पर भी जातिको रुलाई न आई, जब निरपराध ५ वर्षकी कैदकी आज्ञाने भी आँखें न खोलीं तो कहना होगा कि यद्यपि दया

और वात्सल्य किसी समय जैनजातिके भूषण थे, परन्तु आज उन हृदयोंसे जिनमें उन्हीं महर्षियोंके रक्तका संचार है धर्म और दयाका निरादरपूर्वक बहिष्कार कर दिया गया है।

भारतसरकारसे इस विषयमें हमें यही पूछना है कि क्या इसीको न्याय कहते हैं? क्या इस शताब्दीमें भी बिना अदालतमें मुकद्दमा चलाये किसी व्यक्तिको अधिकार है कि किसी भी मनुष्यकी स्वतंत्रता छीन ले? क्या आज भी ब्रिटिश छत्रकी छायामें ऐसा हो सकता है? तो क्या यह ब्रिटिश न्यायकी दुहाई प्रवञ्चना मात्र है? यदि सेठीजी अपराधी हैं तो क्यों नहीं प्रमाणित किये जाते? यह कहनेसे काम न चलेगा कि यह तो जयपुर राज्यका मामला है, हम कुछ नहीं कर सकते। क्योंकि प्रथम तो जनताको निश्चय है खास सरकारने ही पकड़कर उनको पीछेसे जयपुर भेज दिया था और दूसरे वह यह भी जानती है कि जब जब देशी राज्योंने अन्याय किया है तब तब भारतसरकारने हस्तक्षेपकर ब्रिटिश साम्राज्यको कलंकसे बचाया है। फिर इस बार देर क्यों?

जैनियो, यदि तुम्हें अपनी जातिको जीवित रखना है, यदि तुम्हें अपना नाम इस संसारसे सदाके लिए मिटा नहीं देना है, यदि तुम्हें जैनधर्मसे प्रीति है और उसके लिए मरनेवालोंसे भी स्नेह है तो यह अवसर हाथसे न जाने दो। सेठीजी जैसा सच्चा सुहृद तुम्हें न मिलेगा। तुम सच्चे हितैषीकी आशा ही करते रहोगे; परन्तु कदापि उसे न पा सकोगे। तुम सेठीजी पर दया न करो, उनके पुत्रके जीवन बिगड़ जानेका भी खयाल न करो; परन्तु अपनी जाति पर तो दया करो; उसे तो सर्वनाशसे बचानेका प्रयत्न करो। जैनजाति भी संसारमें रहकर एक उद्देश्य पूरा कर सकती है—उस उद्देश्य—जैनधर्म—की ओर तो उपेक्षाकी दृष्टिसे न देखो। क्या तुम चाहते हो कि अब कोई युवक जातिसेवा करनेके लिए उद्यत न हो? क्या तुम्हें यह रुचिकर होगा कि होनहार उत्साही पुरुष जैनजातिकी सेवाको छोड़कर अन्य किसी कार्यमें अपनी शक्तियोंका प्रयोग करने लगें? यदि नहीं, तो साहस करके उस महत्पुरुषकी सहायताके लिए तैयार हो जाओ। समाचारपत्रों द्वारा अपना रोना सरकारको सुनाओ, सभाओं द्वारा अपना करुणनाद दिल्लीतक पहुँचाओ, डेपूटेशन द्वारा श्रीमान् वाइसरायके कानोंतक अपनी पुकार पहुँचाओ,—इसतरह अपना कर्तव्य पालन करो; फिर यह सम्भव नहीं कि सुनाई न हो,—भरे हुए हृदयोंकी आहको संसारकी कोई भी शक्ति नहीं रोक सकती।

—चिन्तितहृदय।

सहयोगियोंके विचार ।

नये वर्षके इस अंकसे उक्त स्तंभ शुरू किया जाता है। इसमें जैन और जैनेतर सामयिक पत्रोंमें प्रकाशित हुए लेख, लेखांश, उनके अनुवाद या संक्षिप्त सार प्रकाशित किये जावेंगे । जैनहितैषीके पाठकोंको यह ज्ञान होता रहे कि दूसरे पत्रोंमें इस समय किस प्रकारके विचार प्रकट हो रहे हैं, उनमें किस ढंगका साहित्य प्रकाशित हो रहा है और जैनधर्मके विषयमें कहाँ कहाँ क्या चर्चा हो रही है, इसी अभिप्रायसे यह स्तंभ प्रारंभ किया गया है । जहाँ तक होगा, इसमें वे ही लेख प्रकाशित किये जायँगे जो बहुत महत्त्वके होंगे अथवा जिनकी ओर जैनसमाजकी दृष्टि विशेषरूपसे आकर्षित करनेकी आवश्यकता होगी । इससे एक बड़ा भारी लाभ यह भी होगा कि जो भाई दूसरे पत्र नहीं पढ़ते हैं उनको एक जैनहितैषीके पढ़नेसे ही जैनसंसारकी प्रायः सब ही जानने-योग्य बातोंका ज्ञान होता रहेगा । परन्तु पाठकोंको यह स्मरण रखना चाहिए कि इस स्तंभके लेखोंका किसी भी प्रकारका उत्तरदायित्व हम पर न रहेगा । लेखोंका परिचय करा देना भर हमारा काम है, उनकी और सब जिम्मेवारियाँ उनके लेखकों पर हैं । आशा है कि हमारा यह नया प्रयत्न पाठकोंको पसन्द आयगा और वे इस स्तंभसे बहुत लाभ उठावेंगे । उच्चश्रेणीके अँगरेजी बंगला आदिके मासिक पत्र इस स्तंभके द्वारा अपने पाठकोंकी ज्ञानवृद्धिमें बहुत बड़ी सहायता पहुँचाते हैं ।—सम्पादक ।

प्रार्थना ।

हे सर्वज्ञ, आप हमें सम्यग्ज्ञानकी भीख दीजिए, जिसके द्वारा हम अपने पवित्र धर्मप्रचारके लिए यत्न करें—उसके निर्दोष तत्त्वोंका संसारमें प्रचार करें । हमारे देश और जातिको अज्ञानरूपी बादलोंकी घनघोर काली घटाओंने ढक रक्खा है उन्हें नष्टकर ज्ञानका उज्ज्वल प्रकाश हो । उस सुन्दर प्रकाशसे देश और जातिका कष्ट दूर हो, उनकी आर्थिक, नैतिक दशा सुधरे, परस्परमें प्रेमतत्त्वका प्रसार हो

और सारे संसारमें दया, अहिंसा, शान्ति, उदारता, वीरता, शालीनता आदिकी प्रकाशमान ज्योति जगमगे।

हे अनन्त शक्तिशालिन्, आप हमें कुछ शक्तियोंका दान दीजिए, जिससे हम अपनी शताब्दियोंकी निर्बलता और कायरताको नष्टकर बलवान् बनें। हम अपने देश और जातिकी सेवामें अपने जीवनका भोग दे सकनेमें समर्थ हों। हमारा जीवन-प्रवाह स्वार्थकी ओर न जाकर परार्थकी ओर जाए। हम विषय-वासनाके गुलाम न बनकर जयी, साहसी और कर्तव्यशील बनें।

हे दयासागर, आप हमें दयाकी भी कुछ भीख दीजिए, जिससे हम पहले अपने हृदयमें दयाका सोता बहावें और फिर उसे अनन्त हृदयरूपी क्यारियोंमें लेजाकर सारे संसारमें दयादेवीका पवित्र साम्राज्य स्थापित कर दें। यद्यपि आपने दया करना हमारे जीवनका मुख्य लक्ष्य बताया था, पर अज्ञानसे उसे हम भूलकर निर्दयताके उपासक बन गये-दूसरोंके दुःखों पर सहानुभूति बतलाकर उन्हें दूर करना हमने सर्वथा छोड़ दिया। इसलिए हे नाथ, हमारे लिए उक्त गुणोंकी बड़ी जरूरत है। आप हमारी इन जरूरतोंको पूरी कीजिए।
(सभापतिका व्याख्यान) —सत्यवादी अंक १०।

निर्माल्य द्रव्य।

जैनमित्रमें बहुत समयसे निर्माल्य द्रव्यकी चर्चा चल रही है। नहीं कहा जा सकता कि आगे यह चर्चा और कब तक चलती रहेगी; परन्तु ऐसा मालूम होता है कि आगे अब इस विषयसे पाठक ऊब जावेंगे। हमारे पिछले समयके आचार्योंने क्रियाकांडको इतना अधिक महत्त्व क्यों दिया था इस विषयमें हम आगे विस्तारसहित लिखना चाहते हैं। इस समय हम इतना ही कहते हैं कि यदि क्रियाकाण्डको एक ओर रखकर—गौण मानकर ज्ञानकाण्डको अधिक महत्त्व दिया जाय और उसके अनुसार समाजका भी रुख बदला जाय तो फिर निर्माल्य द्रव्यकी इतनी चर्चा करनेकी अवश्यकता ही न रहे। पंचकल्याण पूजा, ३६० विधान, अष्टद्रव्यपूजा आदि सब मिलकर सम्यग्दर्शनके (?) एक अंग हैं। वास्तवमें जैनधर्मके नियमानुसार क्षमा, मार्दव, आर्जव आदि सद्गुणोंको धारण करके संसारमें जिस शान्तिसुखकी प्राप्ति करना चाहिए उसको एक ओर रखकर अथवा उन गुणोंकी प्राप्ति करनेके लिए प्रयत्न करना छोड़कर हमारे भाई मालूम होता है

कि केवल कर्माधीन हो रहे हैं । यदि भगवानके आगे टोकरी भर फूल या सेरभर चावल चढ़ाये गये अथवा किसीने ५० रुपया देकर भक्तामर विधान करवाया, तो वह देवके सम्मुख अर्पण किया हुआ द्रव्य निर्माल्य हो गया, इसमें कोई सन्देह नहीं; परन्तु इस पर एक आदमी कहता है कि उस निर्माल्यको खाना नहीं चाहिए, दूसरा कहता है कि खावें नहीं तो क्या करें ? और तीसरा कहता है कि क्यों ? खानेमें हानि क्या है ? परन्तु हमारी समझमें इतनी चर्चा करनेकी अपेक्षा यह अच्छा है कि क्रियाकाण्डका जो अतिरेक हो गया है उसे धीरे धीरे कम करके ज्ञानका मार्ग विस्तृत किया जाय । इससे स्वयं ही निर्माल्य द्रव्यकी उलझन सुलझ जायगी । शास्त्र भी क्या हैं ? अपने अपने समयकी सामाजिक परिस्थितिके अनुसार उनकी रचना की जाती है । हमारे बड़े बड़े चैत्यालयोंमें जो प्राचीन कालकी मूर्तियाँ हैं ज़रा उनकी ओर तो अच्छी तरहसे देखो । वे तुमसे यह नहीं कह रही हैं कि " हमारे आगे पूजनसामग्रीकी राशि लगाया करो और निर्माल्यद्रव्यसम्बन्धी चर्चामें सिरपच्ची किया करो । " वे यह कहती हैं कि " भक्तजनो, हम सरीखे वीतराग बननेका प्रयत्न करो । रागी बनकर पूजनसामग्रीके ढेर लगानेको ही सब कुछ मत समझ बैठो । पूजनसामग्री यदि न हो तो हानि नहीं; परन्तु रागरहित हुए बिना तुम्हें हम अपनी बराबरीके नहीं समझ सकेंगी । रागरहित होनेके लिए अपनेमें उत्कृष्ट दशधर्म पालन करनेके योग्य शक्ति संचय करो । " गरज यह कि क्रियाकाण्डको अधिक महत्त्व न देकर जिन उपायोंसे ज्ञानका और सद्गुणोंका प्रसार अधिकाधिक हो उनको काममें लाओ । इससे निर्माल्यद्रव्यचर्चाका फैसला स्वयं ही हो जायगा, नहीं तो इस व्यर्थवादकी समाप्ति होना असंभव है । **प्रगति आणि जिनविजय** ता. ८ नवम्बर १९१४ ।

गोत्रीय चर्चा ।

गोत्रोंकी उत्पत्ति एक गाँवमें रहनेके कारण, एक ऋषिका उपदेश माननेके कारण अथवा ऐसे ही और कारणोंसे हुई है । जैसे पाटनके रहनेवाले पाटनी, गर्गऋषिके अनुयायी गार्गीय, और सोने लोहेके व्यापारी सोनी लुहाड़ा आदि । इससे यह नहीं सिद्ध होता कि एक गोत्रके सब लोग एक ही कुटुम्बके हैं और इस लिए उनमें पारस्परिक विवाहसम्बन्ध नहीं होनेके विषयमें कोई सबल कारण नहीं है । क्या एक गाँवके रहनेवाले लड़के—लड़कियोंका विवाह नहीं

होता ? लेखककी रायमें इस गोत्रकल्पनाको उठा देना चाहिए और प्रत्येक जैनीको चाहे वह किसी भी जातिका या गोत्रका हो यदि अपना कुटुम्बी नहीं है तो बे-रोकटोक आपसमें विवाहसम्बन्ध करना चाहिए । पद्मावती पुरवारोंमें गोत्र नहीं हैं, इस कारण उनमें ऐसा होता भी है। गोत्रकल्पनाका शास्त्रोंमें उल्लेख नहीं मिलता। यह आधुनिक है। जैनजातिके ह्रासमें गोत्रोंका झगड़ा भी एक कारण है। किसी किसी जातिमें तो छह छह सात सात गोत्र बचाये जाते हैं। इससे बहुत हानि हो रही है। इस विषयमें विद्वानोंको शान्तितापूर्वक विचार करना चाहिए। -रूपचन्द अचरजलाल। **जैनमित्र** अंक १, २।

सूर्यकी धूपकी उपकारिता।

सूर्यकी धूपको सेवन करनेसे अनेक प्रकारके रोग दूर होते हैं। आजकल अनेक विलायती चिकित्सक दुर्बल बालकों और युवक पुरुषोंको स्वास्थ्योन्नतिके लिए धूपसेवनकी सलाह देते हैं। जनेवा नगरके डा० प्रोफेसर रोगेटने रोगी बालकोंके लिए एक 'आलोक चिकित्सालय' स्थापित किया है। इसमें नित्य बालकोंको बिना वस्त्र—खुले शरीर धूपसेवन कराया जाता है। इससे थोड़े ही दिनोंमें बालक आरोग्य और बलवान् बन जाते हैं। सवेरे नौ दश बजे और तीसरे पहर तीन चार बजे धूपसेवनका उत्तम समय है। किसी किसी रोगीको दो पहरकी तीक्ष्ण धूपमें भी रखनेकी आवश्यकता होती है। एकबारमें १० मिनिटसे लेकर एक घंटातक धूपका सेवन ठीक हो सकता है। हमारे देशमें शीतकालमें धूपमें बैठनेकी प्रथा बहुत समयसे प्रचलित है।-**वैद्य, सं० ११।**

भगवान् महावीरका सेवामयजीवन और सर्वोपयोगी मिशन।

ज्ञातिभेद, अज्ञानमूलक क्रियाओं और बहमोंको देशसे निकाल बाहर करनेके लिए जिस महावीर नामक महान् सुधारक और विचारकने तीस वर्षतक उपदेश दिया था वह उपदेश प्रत्येक देश, प्रत्येक समाज और प्रत्येक व्यक्तिका उद्धार करनेके लिए समर्थ है। परन्तु धर्मगुरुओं या पण्डितोंकी अज्ञानता और श्रावकोंकी अन्धश्रद्धाके कारण आज वे महावीर और वह जैनधर्म अनादृत हो रहा है। सायन्सका हिमायती, सामान्य बुद्धि (Common Sense)

को विकसित करनेवाला, अन्तःशक्तिको प्रकाशित करनेकी चाबी देनेवाला, प्राणिमात्रको बन्धुत्वकी साँकलसे जोड़नेवाला, आत्मबल अथवा स्वात्मसंश्रयका पाठ सिखला कर रोवनी और कर्मवादिनी दुनियाको जवाँमर्द तथा कर्मवीर बनानेवाला, एक नहीं किन्तु पचीस दृष्टियोंसे प्रत्येक वस्तु और प्रत्येक घटना पर विचार करनेकी विशालदृष्टि अर्पण करनेवाला और अपने लाभको छोड़कर दूसरोंका हित साधन करनेकी प्ररेणा करनेवाला—इस तरहका अतिशय उपकारी व्यावहारिक (Practical) और सीधासादा महावीरका उपदेश भले ही आज जैनसमुदाय समझनेका प्रयत्न न करे, परन्तु ऐसा समय आ रहा है कि वह प्रार्थनासमाज, ब्रह्मसमाज, थिओसोफिकल सुसाइटी और यूरोप अमेरिकाके संशोधकोंके मस्तकमें अवश्य निवास करेगा।

सारे संसारको अपना कुटुम्ब माननेवाले महावीर गुरुका उपदेश न पक्षपाती है और न किसी खास समूहके लिए है। उनके धर्मको 'जैनधर्म' कहते हैं, परन्तु इसमें 'जैन' शब्द केवल 'धर्म' का विशेषण है। जडभाव, स्वार्थबुद्धि, संकुचित दृष्टि, इन्द्रियपरता, आदि पर जय प्राप्त करानेकी चाबी देनेवाला और इस तरह संसारमें रहते हुए भी अमर और आनन्दस्वरूप तत्त्वका स्वाद चखानेवाला जो उपदेश है उसीको जैनधर्म कहते हैं और यही महावीरोपदेशित धर्म है। तत्त्ववेत्ता महावीर इस रहस्यसे अपरिचित नहीं थे कि वास्तविक धर्म, तत्त्व, सत्य अथवा आत्मा काल, क्षेत्र, नाम आदिके बन्धन या मर्यादाको कभी सहन नहीं कर सकता और इसी लिए उन्होंने कहा था कि "धर्म उत्कृष्ट मंगल है और धर्म और कुछ नहीं अहिंसा, संयम और तपका एकत्र समावेश है।" उन्होंने यह नहीं कहा कि 'जैनधर्म ही उत्कृष्ट मंगल है' अथवा 'मैं जो उपदेश देता हूँ वही उत्कृष्ट मंगल है।' किन्तु अहिंसा (जिसमें दया, निर्मल प्रेम, भ्रातृभावका समावेश होता है), संयम (जिससे मन और इन्द्रियोंको वशमें रखकर आत्मरमणता प्राप्त की जाती है) और तप (जिसमें परसेवाजन्य श्रम, ध्यान और अध्ययनका समावेश होता है) इन तत्त्वोंका एकत्र समावेश ही धर्म अथवा जैनधर्म है और वही मेरे शिष्योंको तथा सारे संसारको ग्रहण करना चाहिए, यह जताकर उन्होंने इन तीनों तत्त्वोंका उपदेश विद्वानोंकी संस्कृत भाषामें नहीं; परन्तु उस समयकी

जनसाधारणकी भाषामें प्रत्येक वर्णके स्त्रीपुरुषोंके सामने दिया था और जातिभेदको तोड़कर क्षत्रिय महाराजाओं, ब्राह्मण पण्डितों और अधमसे अधम गिने जानेवाले मनुष्योंको भी जैन बनाया था तथा स्त्रियोंके दर्जेको भी ऊँचा उठाकर वास्तविक सुधारकी नीव डाली थी। उनके 'मिशन' अथवा 'संघ' में पुरुष और स्त्रियाँ दोनों हैं और स्त्री-उपदेशिकायें पुरुषोंके सामने भी उपदेश देती हैं। इन बातोंसे साफ़ मालूम होता है कि महावीर किसी एक समूहके गुरु नहीं, किन्तु सारे मनुष्यसमाजके सार्वकालिक गुरु हैं और उनके उपदेशोंमेंसे वास्तविक सुधार और देशोन्नति हो सकती है। इस लिए इस सुधारमार्गके शोधक समयको और देशको तो यह धर्म बहुत ही उपयोगी और उपकारी है। इसलिए केवल श्रावककुलमें जन्मे हुए लोगोंमें ही छुपे हुए इस धर्मरत्नको यत्नपूर्वक प्रकाशमें लानेकी बहुत ही आवश्यकता है।

प्राचीन समयमें इतिहास इतिहासकी दृष्टिसे शायद ही लिखे जाते थे। श्वेताम्बर और दिगम्बर सम्प्रदायके जुदा जुदा ग्रन्थोंसे, पाश्चात्य विद्वानोंकी पुस्तकोंसे तथा अन्यान्य साधनोंसे महावीरचरित तैयार करना पड़ेगा। किसी भी सूत्रमें या ग्रन्थमें महावीर भगवान्का पूरा जीवनचरित नहीं है और जुदा जुदा ग्रन्थकारोंका मतभेद भी है। उस समय दन्तकथायें, अतिशयोक्तियुक्त चरित और सूक्ष्म बातोंको स्थूलरूपमें बतलानेके लिए उपमामय वर्णन लिखनेकी अधिक पद्धति थी और यह पद्धति केवल जैनोंमें ही नहीं किन्तु ब्राह्मण, ईसाई आदिके सभी ग्रन्थोंमें दिखलाई देती है। इस लिए यदि आज कोई पुरुष पूर्वके किसी महापुरुषका बुद्धिगम्य चरित लिखना चाहे तो उसके लिए उपर्युक्त स्थूल वर्णनों, दन्तकथाओं और भक्तिवश लिखी हुई आश्चर्यजनक बातोंमेंसे खोज करके वास्तविक मनुष्यचरित लिखनेका— यह बतलानेका कि अमुक महात्मा किस प्रकार और कैसे कामोंसे उत्क्रान्त होते गये और उनकी उत्क्रान्ति जगतको कितनी लाभदायक हुई—काम बहुत ही जोखिमका है।

मगधदेशके कुण्डग्रामके राजा सिद्धार्थकी रानी त्रिशलादेवीके गर्भसे महावीरका जन्म ई० स० से ५९८ वर्ष (?) पहले हुआ। श्वेताम्बर ग्रन्थकर्ता कहते हैं कि पहले वे एक ब्राह्मणीके गर्भमें आये थे; परन्तु पीछे देवताने उन्हें त्रिशला क्षत्रियाणीके गर्भमें ला दिया! इस बातको दिगम्बरग्रन्थकर्त्ता स्वीकार नहीं करते

ऐसा मालूम होता है कि ब्राह्मणों और जैनोंके बीच जो पारस्परिक स्पर्धा बढ़ रही थी उसके कारण बहुतसे ब्राह्मण विद्वानोंने जैनोंको और बहुतसे जैनाचार्योंने ब्राह्मणोंको अपने अपने ग्रन्थोंमें अपमानित करनेके प्रयत्न किये हैं। यह गर्भसंक्रमणकी कथा भी उन्हीं प्रयत्नोंमेंका एक उदाहरण जान पड़ता है। इससे यह सिद्ध किया गया है कि ब्राह्मणकुल महापुरुषोंके जन्म लेनेके योग्य नहीं है। इस कथाका अभिप्राय यह भी हो सकता है कि महावीर पहले ब्राह्मण और पीछे क्षत्रिय बने, अर्थात् पहले ब्रह्मचर्यकी रक्षापूर्वक शक्तिशाली विचारक (Thinker) बने, पूर्व भवोंमें धीरे धीरे विचार बलको बढ़ाया–ज्ञानयोगी बने और फिर क्षत्रिय अथवा कर्मयोगी—संसारके हितके लिए स्वार्थत्याग करनेवाले वीर बने।

बालक महावीरके पालन पोषणके लिए पाँच प्रवीण धायें रक्खी गई थीं और उनके द्वारा उन्हें बचपनसे वीररसके काव्योंका शौक लगाया गया था। दिगम्बरोंकी मानताके अनुसार उन्होंने आठवें वर्ष श्रावकके बारह व्रत अंगीकार किये और जगत्के उद्धारके लिए दीक्षा लेनेके पहले उद्धारकी योजना हृदयंगत करनेका प्रारंभ इतनी ही उम्रसे कर दिया। अभिप्राय यह कि वे बालब्रह्मचारी रहे। श्वेताम्बरी कहते हैं कि उन्होंने ३२ वर्षकी अवस्था तक इन्द्रियोंके विषय भोगे—ब्याह किया, पिता बने और उत्तम प्रकारका गृहवास (जलकमलवत्) किस प्रकारसे किया जाता है इसका एक उदाहरण वे जगतके समक्ष उपस्थित कर गये। जब दीक्षा लेनेकी इच्छा प्रकट की तब मातापिताको दुःख हुआ, इससे वे उनके स्वर्गवासतक गृहस्थाश्रममें रहे। २८ वें वर्ष दीक्षाकी तैयारी की गई किन्तु बड़े भाईने रोक दिया। तब दो वर्ष तक और भी गृहस्थाश्रममें ही ध्यान तप आदि करते हुए रहे। अन्तिम वर्षमें श्वेताम्बर ग्रन्थोंके अनुसार करोड़ों रुपयोंका दान दिया। महावीर भगवानका दान और दीक्षामें विलम्ब ये दो बातें बहुत विचारणीय हैं। दान, शील, तप और भावना इन चार मार्गोंमेंसे पहला मार्ग सबसे सहज है। अँगुलियोंके निर्जीव नखोंके काट डालनेके समान ही 'दान' करना सहज है। कच्चे नखके काटनेके समान 'शील' पालना है। अँगुली काटनेके समान 'तप' है और सारे शरीरपरसे स्वत्व उठाकर आत्माको उसके प्रेक्षकके समान तटस्थ बना देना 'भावना' है। यह सबसे कठिन है। इन चारोंका क्रमिक रहस्य

अपने दृष्टान्तसे स्पष्टकर देनेके लिए भगवानने पहले दान किया, फिर संयम अंगीकार किया और संयमकी ओर लौ लग गई थी तो भी गुरुजनोंकी आज्ञा जबतक न मिली तब तक बाह्य त्याग नहीं लिया। वर्तमान जैनसमाज इस पद्धतिका अनुकरण करे तो बहुत लाभ हो।

३० वर्षकी उम्रमें भगवानने जगदुद्धारकी दीक्षा ली और अपने हाथसे केशलोच किया। अपने हाथोंसे अपने बाल उखाड़नेकी क्रिया आत्माभिमुखी दृष्टिकी एक कसौटी है। प्रसिद्ध उपन्यास लेखिका मेरी कोरेलीके 'टेम्पोरल पावर' नामक रसिकग्रंथमें जुल्मी राजाको सुधारनेके लिए स्थापित की हुई एक गुप्तमण्डलीका एक नियम यह बतलाया गया है कि मण्डलीका सदस्य एक गुप्त स्थानमें जाकर अपने हाथकी नसमेंसे तलवारके द्वारा खून निकालता था और फिर उस खूनसे वह एक प्रतिज्ञापत्रमें हस्ताक्षर करता था! जो मनुष्य जरासा खून गिरानेमें डरता हो वह देशरक्षाके महान् कार्यके लिए अपना शरीर अर्पण कदापि नहीं कर सकता। इसी तरह जो पुरुष विश्वोद्धारके 'मिशन'में योग देना चाहता हो उसे आत्मा और शरीरका भिन्नत्व इतनी स्पष्टताके साथ अनुभव करना चाहिए कि बाल उखाड़ते समय ज़रा भी कष्ट न हो। जब तक मनोबलका इतना विकास न हो जाय तब तक दीक्षा लेनेसे जगत्का शायद ही कुछ उपकार हो सके।

महावीर भगवान् पहले १२ वर्ष तक तप और ध्यानहीमें निमग्न रहे। उनके किये हुए तप उनके आत्मबलका परिचय देते हैं। यह एक विचारणीय बात है कि उन्होंने तप और ध्यानके द्वारा विशेष योग्यता प्राप्त करनेके बाद ही उपदेशका कार्य हाथमें लिया। जो लोग केवल 'सेवा करो,—सेवा करो'की पुकार मचाते हैं उनसे जगतका कल्याण नहीं हो सकता। सेवाका रहस्य क्या है, सेवा कैसे करना चाहिए, जगतके कौन कौन कामोंमें सहायताकी आवश्यकता है, थोड़े समय और थोड़े परिश्रमसे अधिकसेवा कैसे हो सकती है, इन सब बातोंका जिन्होंने ज्ञान प्राप्त नहीं किया—अभ्यास नहीं किया, वे लोग संभव है कि लाभके बदले हानि करनेवाले हो जायँ। 'पहले ज्ञान और शक्ति प्राप्त करो, पीछे सेवाके लिए तत्पर होओ' तथा 'पहले योग्यता और पीछे सार्वजनिक कार्य' ये अमूल्य सिद्धान्त भगवानके चरितसे प्राप्त होते हैं। इन्हें प्रत्येक पुरुषको सीखना चाहिए।

योग्यता सम्पादन करनेके बाद भगवानने लगातार ३० वर्षों तक परिश्रम करके अपना 'मिशन' चलाया। इस 'मिशन' को चिरस्थायी बनानेके लिए उन्होंने 'श्रावक-श्राविका' और 'साधु-साध्वियों'का संघ या स्वयंसेवक-मण्डल बनाया। क्राइस्टके जैसे १२ एपोस्टल्स थे वैसे उन्होंने ११ गणधर बनाये और उन्हें गण अथवा गुरुकुलोंकी रक्षाका भार दिया। इन गुरुकुलोंमें ४२०० मुनि, १० हजार उम्मेदवार मुनि, और ३६ हजार आर्यायें शिक्षा लेती थीं। उनके संघमें १५९००० श्रावक और ३००००० श्राविकायें थी। रेल, तार, पोस्ट आदि साधनोंके बिना तीस वर्षमें जिस पुरुषने प्रचारका कार्य इतना अधिक बढ़ाया था, उसके उत्साह, धैर्य, सहनशीलता, ज्ञान, वीर्य, तेज कितनी उच्चकोटिके होंगे इसका अनुमान सहज ही हो सकता है।

पहले पहल भगवानने मगधमें उपदेश दिया। फिर ब्रह्मदेशसे हिमालय तक और पश्चिम प्रान्तोंमें उग्र विहार करके लोगोंके वहमोंको, अन्धश्रद्धाको, अज्ञान-तिमिरको, इन्द्रियलोलुपताको और जड़वादको दूर किया। विदेहके राजा चेटक, अंगदेशके राजा शतानीक, राजगृहके राजा श्रेणिक और प्रसन्नचन्द्र आदि राजा-ओंको तथा बड़े बड़े धनिकोंको अपना भक्त बनाया। जातिभेद और लिंगभेदका उन्होंने बहिष्कार किया। जंगली जातियोंके उद्धारके लिए भी उन्होंने उद्योग किया और उसमें अनेक कष्ट सहे।

महावीर भगवान् एटोमेटिक (Automatic) उपदेशक न थे, अर्थात् किसी गुरुकी बतलाई हुई बातों या विधियोंको पकड़े रहनेवाले (conservative) कन्स-रवेटिव पुरुष नहीं थे; किन्तु स्वतंत्र विचारक बनकर देशकालके अनुरूप स्वांगमें सत्यका बोध करनेवाले थे। श्वेताम्बरसम्प्रदायके उत्तराध्ययन सूत्रमें जो केशी स्वामी और गौतमस्वामीकी शान्त-कान्फरेंसका वर्णन दिया है उससे मालूम होता है कि उन्होंने पहले तीर्थंकरकी बाँधी हुई विधिव्यवस्थामें फेरफार करके उसे नया स्वरूप दिया था। इतना ही नहीं, उन्होंने उच्च श्रेणीके लोगोंमें बोली जानेवाली संस्कृत भाषामें नहीं किन्तु साधारण जनताकी मागधी भाषामें अपना उपदेश दिया था। इस बातसे हम लोग बहुत कुछ सीख सकते हैं। हमें अपने शास्त्र, पूजापाठ, सामायिकादिके पाठ, पुरानी, साधारण लोगोंके लिए दुर्बोध

भाषामें नहीं किन्तु उनके रूपान्तर, मूलभाव कायम रखके वर्तमान बोलचालकी भाषाओंमें, देशकालानुरूप कर डालना चाहिए।

महावीर भगवान्‌का ज्ञान बहुत ही विशाल था। उन्होंने षड्द्रव्यके स्वरूपमें सारे विश्वकी व्यवस्था बतला दी है। शब्दका वेग लोकके अन्त तक जाता है, इसमें उन्होंने बिना कहे ही टेलीग्राफी समझा दी है। भाषा पुद्गलात्मका होती है, यह कह कर टेलीफोन और फोनोग्राफके अविष्कारकी नीव डाली है। मल, मूत्र आदि १४ स्थानोंमें सूक्ष्मजीव उत्पन्न हुआ करते हैं, इसमें छूतके रोगोंका सिद्धान्त बतलाया है। पृथ्वी, वनस्पति आदिमें जीव है, उनके इस सिद्धान्तको आज डाक्टर वसुने सिद्ध कर दिया है। उनका अध्यात्मवाद और स्याद्वाद वर्तमानके विचारकोंके लिए पथप्रदर्शकका काम देनेवाला है। उनका बतलाया हुआ लेश्याओंका और लब्धियोंका स्वरूप वर्तमान थिओसोफिस्टोंकी शोधोंसे सत्य सिद्ध होता है। पदार्थविज्ञान, मानसशास्त्र और अध्यात्मके विषयमें भी अढाई हजार वर्ष पहले हुए महावीर भगवान् कुशल थे। वे पदार्थविज्ञानको मानसशास्त्र और अध्यात्मशास्त्रके ही समान धर्मप्रभावनाका अंग मानते थे। क्योंकि उन्होंने जो आठ प्रकारके प्रभावक बतलाये हैं उनमें विद्या–प्रभावकोंका अर्थात् सायन्सके ज्ञानसे धर्मकी प्रभावना करनेवालोंका भी समावेश होता है।

भगवानका उपदेश बहुत ही व्यवहारी (प्राक्टिकल) है और वह आजकलके लोगोंकी शारीरिक, नैतिक, हार्दिक, राजकीय और सामाजिक उन्नतिके लिए बहुत ही अनिवार्य जान पड़ता है। जो महावीर स्वामीके उपदेशोंका रहस्य समझता है वह इस वितंडावादमें नहीं पड़ सकता कि अमुक धर्म सच्चा है और दूसरे सब झूठे हैं। क्योंकि उन्होंने स्याद्वादशैली बतलाकर नयनिक्षेपादि २५ दृष्टियोंसे विचार करनेकी शिक्षा दी है। उन्होंने द्रव्य (पदार्थप्रकृति), क्षेत्र (देश), काल (जमाना) और भाव इन चारोंका अपने उपदेशमें आदर किया है। ऐसा नहीं कहा कि ‘ हमेशा ऐसा ही करना, दूसरी तरहसे नहीं। ’ मनुष्यात्मा स्वतंत्र है, उसे स्वतंत्र रहने देना—केवल मार्गसूचन करके और अमुक देश कालमें अमुक रीतिसे चलना अच्छा होगा यह बतलाकर उसे अपने देशकालादि संयोगोंमें किस रीतिसे वर्ताव करना चाहिए यह सोच लेनेकी स्वतन्त्रता

दे देना—यही स्याद्वादशैलीके उपदेशकका कर्तव्य है। भगवानने दशवैकालिक सूत्रमें सिखलाया है कि खाते-पीते, चलते, काम करते, सोते हुए, हरसमय यत्नाचार पालो अर्थात् "Work with attentiveness or balanced mind" प्रत्येक कार्यको चित्तकी एकाग्रता पूर्वक—समतोलवृत्तिपूर्वक करो। कार्यकी सफलताके लिए इससे अच्छा नियम कोई भी मानसतत्त्वज्ञ नहीं बतला सकता। उन्होंने पवित्र और उच्चजीवनकी पहली सीढ़ी न्यायोपार्जित द्रव्य प्राप्त करनेकी शक्तिको बतलाया है और इस शक्तिसे युक्त जीवको 'मार्गानुसारी' कहा है। इसके आगे 'श्रावक' वर्ग बतलाया है जिसे बारह व्रत पालन करना पड़ते हैं और उससे अधिक उत्क्रान्त-उन्नत हुए लोगोंके लिए सम्पूर्ण त्यागवाला 'साधु-आश्रम' बतलाया है। देखिए, कैसी सुकर स्वाभाविक और प्राक्टिकल योजना है। श्रावकके बारह व्रतोंमें सादा, मितव्ययी और संयमी जीवन व्यतीत करनेकी आज्ञा दी है। एक व्रतमें स्वदेशरक्षाका गुप्त मंत्र भी समाया हुआ है, एक व्रतमें सबसे बन्धुत्व रखनेकी आज्ञा है, एक व्रतमें ब्रह्मचर्यपालन (स्वस्त्रीसन्तोष) का नियम है जो शरीरबलकी रक्षा करता है, एक व्रत बालविवाह, वृद्धविवाह और पुनर्विवाहके लिए खड़े होनेको स्थान नहीं देता है, एक व्रत जिससे आर्थिक, आत्मिक या राष्ट्रीय हित न होता हो ऐसे किसी भी काममें, तर्क वितर्कमें, अपध्यानमें, चिन्ता उद्वेग और शोकमें, समय और शरीरबलके खोनेका निषेध करता है और एक व्रत आत्मामें स्थिर रहनेका अभ्यास डालनेके लिए कहता है। इन सब व्रतोंका पालन करनेवाला श्रावक अपनी उत्क्रान्ति और समाज तथा देशकी सेवा बहुत अच्छी तरह कर सकता है।

जब भगवान्‌की आयुमें ७ दिन शेष थे तब उन्होंने अपने समीप उपस्थित हुए बड़े भारी जनसमूहके सामने लगातार ६ दिन तक उपदेशकी अखण्डधारा बहाई और सातवें दिन अपने मुख्य शिष्य गौतम ऋषिको जान बूझकर आज्ञा दी कि तुम समीपके गाँवोंमें धर्मप्रचारके लिए जाओ। जब महावीरका मोक्ष हो गया, तब गौतम ऋषि लौटकर आये। उन्हें गुरुवियोगसे शोक होने लगा। पीछे उन्हें विचार हुआ कि "अहो मेरी यह कितनी बड़ी भूल है! भला, महावीर भगवान्‌को ज्ञान और मोक्ष किसने दिया था? मेरा मोक्ष भी मेरे ही हाथमें है। फिर उनके लिए व्यर्थ ही क्यों अशान्ति भोगूँ?" इस पौरुष या मर्दानगीसे

भरे हुए विचारसे—इस स्वावलम्बनकी भावनासे उन्हें कैवल्य प्राप्त हो गया और देवदुन्दुभी बज उठे ! " तुम अपने पैरों पर खड़े रहना सीखो; तुम्हें कोई दूसरा सामाजिक, राजकीय या आत्मिक मोक्ष नहीं दे सकता, तुम्हारा हरतरहका मोक्ष तुम्हारे ही हाथमें है ।" यह महामंत्र महावीर भगवान् अपने शिष्य गौतमको शब्दोंसे नहीं किन्तु बिना कहे सिखला गये और इसी लिए उन्होंने गौतमको बाहर भेज दिया था । समाजसुधारकोंको, देशभक्तों और आत्ममोक्षके अभिलाषियोंको यह मंत्र अपने प्रत्येक रक्तबिन्दुके साथ प्रवाहित करना चाहिए ।

महावीर भगवान्के उपदेशोंका विस्तृत विवरण करनेके लिए महीनों चाहिए । उन्होंने प्रत्येक विषयका प्रत्यक्ष और परोक्षरीतिसे विवेचन किया है । उनके उपदेशोंका संग्रह उनके बहुत पीछे देवर्धिगणिने-जो उनके २७ वें पट्टमें हुए हैं-किया है और उसमें भी देशकाल और लोगोंकी शक्ति वगैरहका विचार करके कितनी ही तात्त्विक बातों पर स्थूल अलंकारोंकी पोशाक चढ़ा दी है जिससे इस समय उनका गुप्त भाव अथवा Mysticism समझनेवाले पुरुष बहुत ही थोड़े हैं । इन गुप्त भावोंका प्रकाश उसी समय होगा जब कुशाग्रबुद्धिवाले और आत्मिक आनन्दके अभिलाषी सैकड़ों विद्वान् सायन्स, मानसशास्त्र, दर्शनशास्त्र आदिकी सहायतासे जैनशास्त्रोंका अभ्यास करेंगे और उनके छुपे हुए तत्त्वोंकी खोज करेंगे । जैनधर्म किसी एक वर्ण या किसी एक देशका धर्म नहीं; किन्तु सारी दुनियाके सारे लोगोंके लिए स्पष्ट किये हुए सत्योंका संग्रह है । जिस समय देशविदेशोंके स्वतंत्र विचारशाली पुरुषोंके मस्तक इसकी ओर लगेंगे, उसी समय इस पवित्र जैनधर्मकी जो इसके जन्मसिद्ध ठेकेदार बने हुए लोगोंके हाथसे मिट्टी पलीद हो रही है वह बन्द होगी और तभी यह विश्वका धर्म बनेगा ।

(प्रार्थनासमाज–बम्बईके वार्षिकोत्सवके समय दिया हुआ श्रीयुत वाडीलाल मोतीलाल शाहका संक्षिप्त व्याख्यान ।)

—**जैनकान्फरेंस हेरल्ड**, अंक १०-११-१२ ।

पुस्तक-परिचय ।

१ स्वप्नवासवदत्तम् ।
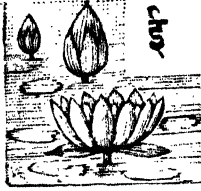
ईस्वीसन्‌से पहले 'भास' नामके एक कवि हो गये हैं। वे महाकवि कालिदाससे भी पहले हुए हैं । कालिदासादिने अपने ग्रन्थोंमें उनका स्मरण किया है। अभीतक उनका कोई भी ग्रन्थ प्राप्य नहीं था; परन्तु अब त्रावणकोरके प्राचीन पुस्तकालयमें उनके एक साथ तेरह ग्रन्थ मिल गये हैं और उनमेंसे १० ग्रन्थ उक्त राज्यने उत्तम रीतिसे सम्पादन कराके प्रकाशित भी करा दिये हैं । ये तेरहों ग्रन्थ नाटक हैं और संस्कृत साहित्यके प्रशंसनीय रत्न हैं । हर्षका विषय है कि पं० बाबूलाल मयाशंकर दुबे, राजनांदगांव (सी. पी.) ने उक्त नाटकोंमेंसे इस एक नाटकका हिन्दी गद्यपद्यमय अनुवाद भी प्रकाशित कर दिया और इस तरह उनकी कृपासे अब हिन्दीभाषाभाषी भी भासकी कृतिका कुछ परिचय पा सकेंगे। अनुवाद साधारणतः अच्छा हुआ है। भूमिकामें भासके सम्बन्धकी बहुतसी जानने योग्य बातें लिखी गई हैं। प्रारंभमें भासके नाटकोंकी संस्कृत-सूक्तियोंका जो संग्रह किया गया है वह बहुत अच्छा है। हिन्दीभाषियोंके उपकारके लिए उनका अर्थ भी लिखदेना चाहिए था। पुस्तकका मूल छह आना है।

२ कार्यविवरण पहला और दूसरा भाग।

कलकत्तेके तृतीय हिन्दी साहित्यसम्मेलनका विवरण दो भागोंमें प्रकाशित हुआ है। पहले भागमें सभापति महाशयका विशाल व्याख्यान और दूसरे कामोंका क्रमबद्ध वर्णन है। दूसरे भागमें उन लेखोंका संग्रह है जो सम्मेलनमें पढ़े गये थे अथवा पढ़नेके लिए आये थे। इनमें कई अच्छे अच्छे विद्वानोंके लिखे हुए हैं। हिन्दीहितैषी मात्रको ये विवरण पढ़ना चाहिए। इनसे बहुत ज्ञान प्राप्त होगा और हिन्दीकी वर्तमान अवस्था पर विचार करनेमें सुभीता होगा। बहुत करके ये हिन्दीसाहित्यसम्मेलन कार्यालय इलाहाबादसे मिल सकेंगे । मूल्य मालूम नहीं।

३ नवनीत ।

हिन्दीका मासिक पत्र है। इसे बनारसकी ग्रन्थप्रकाशक समिति निकालती है। दूसरे वर्षकी तीसरी संख्या हमारे सामने है। इसमें यूरोपके वर्तमान युद्धके सम्बन्धकी सभी जानने योग्य बातें लिखी गई हैं जो बड़े परिश्रमसे संग्रह की गई हैं। इस युद्धके विषयमें जिन्हें कुछ जानना हो, वे इस अंकको अवश्य ही आद्यन्त पाठ कर जायँ। इस अंकमें एक १०पेजके उपन्यासको छोड़कर शेष ७०पेज युद्धकी ही बातोंसे भरे हुए हैं। वार्षिक मूल्य २।) और एक अंकका मूल्य ।) है।

४ वैष्णवसर्वस्व ।

यह वैष्णवोंके निम्बार्क सम्प्रदायका मासिक पत्र है। हाल ही निकला है। प्रकाशक, श्रीछबीलेलाल गोस्वामी, सुदर्शन प्रेस वृन्दावन । वार्षिक मूल्य दो रुपया । जो महाशय इस सम्प्रदायके सम्बन्धमें कुछ जानना चाहें वे इसे अवश्य मँगावें ।

५ स्वामी-शिष्यसंवाद ।

इसमें स्वामी विवेकानन्द और उनके शिष्यके बीचमें जो वार्तालाप हुए थे वे लिखे गये हैं। गुजरातीमें स्वर्गीय भग्गूभाई फतेहचन्द जी (सम्पादक जैन) ने इसका अनुवाद किया था। मेसर्स मेघजी हीरजी कम्पनी, पायधूनी, बम्बई इसके प्रकाशक हैं। श्रीयुत मेघजी भाईने अपने विवाहके समय अपने इष्टमित्रोंमें वितरण करनेके लिए यह पुस्तक छपाई थी। बड़ी ही अच्छी पुस्तक है। धार्मिक राष्ट्रीय भावोंसे सराबोर है। हमने इसके प्रारंभके दो लेख पढ़े, पर हमें उनमें कोई बात ऐसी न मालूम हुई जो जैनधर्मके विरुद्ध हो। हमारी समझमें यह प्रत्येक भारत-वासीके पढ़ने और मनन करनेके योग्य पुस्तक है। जैनभाईयोंके द्वारा इसप्रकारके सार्वजनिक विचारोंका प्रचार होना बहुत ही आशाजनक है।

६ दिगम्बरजैनका खास अंक ।

पिछले वर्षोंकी नाईं इस वर्ष भी दिगम्बरजैनका दीपमालिकाका विशाल अंक खूब ठाटबाटसे निकला है । सब मिलाकर ५० चित्र हैं । एक चित्र रंगीन हैं। लेख भी पहलेके ही समान अँगरेज़ी, संस्कृत, प्राकृत,

हिन्दी, गुजराती और मराठी इन छह भाषाओंके हैं। अबकी बार दो चार लेख और चित्र महत्त्वके हैं। इसमें सन्देह नहीं कि कापड़ियाजी बड़े ही परिश्रम; अध्यवसाय और अर्थव्ययसे खास अंक तैयार कराते है; और इस विषयमें उनके उत्साहकी सभी प्रशंसा करते हैं; परन्तु हमारी समझमें उनका परिश्रम और अर्थव्यय बहुत ही कम सफल होता है। साधारणजनता अन्तरंगकी अपेक्षा बहिरंग ही अधिक पसन्द करती है, चित्रादि नयनाभिराम चीज़ोंका सर्वत्र ही अधिक आदर होता है, और उपहारकी पुस्तकें भी उसके ग्राहकोंको बहुत मिलती हैं इसलिए संभव है कि दिगम्बरजैनकी ग्राहकसंख्या संतोषप्रद हो; परन्तु हमारी समझमें ग्राहकसंख्या अधिक होना ही सफलताका प्रमाण नहीं है। पहले भी हम कई बार लिख चुके हैं और अब भी मित्रभावसे लिखते हैं कि सहयोगीको बाहरी ठाटवाटके साथ अपना अन्तरंग भी अच्छा बनाना चाहिए। अच्छे लेखों और प्रगतिशील साहित्यके प्रचारकी ओर उसे विशेष दृष्टि देना चाहिए। इस समय जैनसमाजको चित्रोंकी ज़रूरत नहीं है, उसे चाहिए अपनी उन्नतिका मार्ग दिखानेवाले समयोपयोगी लेख, और हम देखते हैं कि सहयोगीका इस ओर बहुत ही कम ध्यान है। इस अंकका अधिकांश ऐसे लेखोंसे भरा गया है जो इस बहुमूल्य अंकके लिए सर्वथा अयोग्य हैं। कुछ हिन्दीकी कवितायें ऐसी हैं जो हिन्दीके प्रसिद्ध पत्रोंसे उड़ाकर काट छाँटकर कई जैनकवियोंने (?) अपने नामसे प्रकाशित करा दी हैं। जो दोचार अच्छे लेख हैं, वे बहुतसे घास-फूसके भीतर बिलकुल छुप गये हैं। हम नहीं कह सकते कि अन्य भाषाओंकी शुद्धताकी ओर कितना ध्यान दिया गया है, पर बेचारी हिन्दीकी तो बहुत ही दुर्दशा की गई है। प्राकृतके लेखोंसे क्या लाभ होगा, यह हम नहीं समझ सके। संस्कृतके लेख भी विशेष लाभदायक नहीं हो सकते। उनमें कुछ तथ्य भी नहीं है। अनेक भाषाओंकी गड़बड़की अपेक्षा यदि कोई एक ही भाषाका प्राधान्य रक्खा जाय तो अधिक लाभ हो। उपहारकी पुस्तकोंमें भी सहयोगीको इस बातका ध्यान रखना चाहिए। जहाँतक हम जानते हैं उसके हिन्दी जाननेवाले ग्राहकोंकी संख्या आधीसे अधिक होगी। ऐसी दशामें जिन ग्राहकोंकी मातृभाषा गुजराती है वे तो हिन्दी पुस्तकोंसे थोड़ा बहुत लाभ उठा भी सकते होंगे; परन्तु जिनकी मातृभाषा हिन्दी है उनमें सौ पचास ही ऐसे होंगे जो गुजराती पुस्तकोंसे कुछ

लाभ उठा सकें। ऐसी अवस्थामें सहयोगीको या तो उपहारकी समस्त पुस्तकें हिन्दीमें ही निकालना चाहिए, या हिन्दी ग्राहकोंको हिन्दी और गुजराती ग्राहकोंको गुजरातीकी पुस्तकें देना चाहिए। उपहारकी पुस्तकें भी कुछ समझ बूझकर निकालना चाहिए। चित्रोंके विषयमें भी सहयोगी सीमासे अधिक उदारता दिखलाता है। जिस श्रेणीके लोगोंके चित्रोंको वह स्थान दे देता है उससे हम समझते हैं कि अभी नहीं तो थोड़े ही समयमें लोगोंके हृदयसे इस बातका महत्त्व ही उठ जायगा कि किसी पुरुषका चित्र प्रकाशित होना उसके श्रेष्ठत्व या गौरवका भी द्योतक है। आशा है कि सम्पादक महाशय हमारी इन सूचनाओं पर ध्यान देनेकी कृपा करेंगे और इन्हें किसी बुरे अभिप्रायसे लिखी हुई न समझेंगे।

७ जैनतत्त्वप्रकाशिनी सभा इटावाके ट्रेक्ट।

सृष्टिवादपरीक्षा, जैनधर्म, जैनफिलासफी, जैनियोंका तत्त्वज्ञान और चारित्र, वृद्धविवाह, बालविवाह, और ईश्वरास्तित्व ये सात ट्रेक्ट हमें समालोचनाके लिए मिले हैं। इनमेंसे पहले चार ट्रेक्ट जैनहितैषीमें प्रकाशित हो चुके हैं। प्रकाशक महाशय इन पर यह लिखना भूल गये हैं कि ये जैनहितैषीसे उद्धृत किये गये हैं। इतना लिख देनेमें कुछ हर्ज़ न था। पाँचवें ट्रेक्टमें वृद्धविवाहकी और छट्ठेमें बाल्यविवाहकी एक एक कल्पित कहानी उपन्यासके ढंग पर लिखी गई है। ये अच्छे नहीं हैं—कई जगह अश्लीलता आगई है। सातवेंमें पं० पुत्तूलालजीका लिखा हुआ एक निबन्ध है। पाँचों ट्रेक्ट प्रचार करनेके योग्य हैं। मिलते भी बहुत सस्ते हैं। बाबू चन्द्रसेनजी मंत्रीसे मँगाना चाहिए।

८ सप्तव्यसननिषेध।

इसे वीरपुत्र आनन्दसागरजीने लिखा है और रायसाहब सेठ केसरीसिंहजी रतलामने प्रकाशित कराया है। प्रकाशक, ग्रन्थकर्ता और उनके गुरुके चित्र भी हैं। पुस्तककी भाषा अच्छी नहीं है। जगह जगह अँगरेज़ीके शब्द बिना कारण दिये हैं। इसमें पानीका अर्थ 'वाटर' लिखनेका इसके सिवाय और क्या कारण हो

सकता है कि ग्रन्थकर्त्ताको लोग अँगरेज़ीका जानकार समझें। जो कुछ हो पुस्तक बिना मूल्य मिलती है, इस लिए अच्छे अभिप्रायसे ही प्रकट की गई जान पड़ती है। साधारण पढ़े लिखे भाइयोंको इससे लाभ उठाना चाहिए।

९ दयास्वीकार मांसतिरस्कार।

इसे बाबू बुद्धमलजी पाटणीने लिखा है और रायबहादुर सेठ कल्याणमलजी इन्दोरवालोंकी सहायतासे भारतजैनमहामंडलके जीवदयाविभागके मंत्री बाबू दयाचन्द्रजी बी. ए. लखनऊने छपाया है। हितैषीके आकारके ११२ पृष्ठ हैं। अभीतक इस विषयके जितने ट्रेक्ट निकले हैं उन सबसे यह पुस्तक बड़ी है। इसकी रचनाशैली कुछ शास्त्रीय ढंगकी हो गई है और बहुतसी बातें विषयसे बाहरकी लिख दी गई हैं। जैसे जैनधर्मकी उत्कृष्टताके विषयमें लोकमान्य पं० बालगंगाधर तिलककी सम्मति; इसकी जरूरत न थी क्योंकि यह पुस्तक विशेषकर जैनेतरोंके लिए लिखी गई है। तो भी दया और मांसके त्यागके सम्बन्धकी सैकड़ों बातोंका इसमें संग्रह कर दिया गया है। इसके लिए लेखक महाशयने अच्छा परिश्रम किया है। ऐसी पुस्तकोंका जितना ही प्रचार किया जासके उतना ही अच्छा है। बहुत करके यह पुस्तक मुफ्तमें बाँटी जाती है। आरंभमें सेठ कल्याणमलजीका संक्षिप्त जीवनचरित दिया गया है जिससे उनकी उदारताका परिचय मिलता है।

१० प्रभुजन्मोत्सवगीत।

हितैषीके पाठकोंको श्रीयुत दत्तात्रय भीमाजी रणदिवेका परिचय कईबार कराया जा चुका है। आप मराठीके नामी कवियोंमेंसे एक हैं। यह बहुत ही छोटी सी पुस्तक आपहीकी रचना है। इसे पढ़कर जान पड़ता है कि आप कैसे प्रतिभाशाली कवि हैं। इसमें आदिनाथ भगवानके जन्मोत्सवका और अभिषेकका बिलकुल नयी शैलीका वर्णन है। जहाँतक हम जानते हैं जैनधर्मके पिछले साहित्यमें इस जोड़की कविता शायद ही कोई हो। हमारे हिन्दीके पाठक इस कविताके रसका कुछ आस्वादन कर सकें, इसलिए हम यहाँ पर इसकी कुछ पंक्तियोंका भावार्थ लिख देते हैं:—

हे जीवदया, आज यह तेरा मुख प्रसन्न क्यों हो उठा है? तेरे अधर पर यह मुसकुराहट और गालों पर ललाई क्यों झलक रही है? हे बुद्धिदेवी, आज तू आनन्दके मारे नृत्य क्यों कर रही है? सदासे तेरे पैरोंमें जो गुलामीकी बेड़ी पड़ी हुई थी, वह कैसे टूट गई? भाई विवेक, आज तू आकाशमें उड़ाने क्यों भर रहा है? ये सुन्दर पंखे तुझे फिरसे किसने दे दिये? चिरकालकी निद्रासे आज तू जाग कैसे उठा? क्या तेरे कानोंमें किसीने शंख फूँक दिया है? प्यारी समता, आज तेरे शरीर पर ये हर्षके अंकुर क्यों उठ रहे हैं? इतना सुख तुझे किस कारण हो रहा है? हे अनाथ पशुओ और दीन जन्तुओ, तुम इस तरह आशाके नेत्रोंसे किसकी ओर देख रहे हो? तुम्हारे दुःखोंको दूर करनेवाला कौन आ गया? भला बतलाओ तो सही कि तुम्हारा मूकरोदन किसके कानोंतक पहुँच गया और तुम्हारी गूँगी पुकार सुनकर किसका हृदय पिघल गया?

* * * *

अरे भाई, तुम यह क्या पूछे रहे हो? जिस तरह तुम्हें तुम्हारी बुद्धिने छोड़ दिया है उस तरह क्या कानोंने भी छोड़ दिया? सुनते नहीं हो कि आज सम्पूर्ण अनाथोंका संरक्षक और दुर्बलोंका सहायक प्रभु स्वर्गसुखोंको छोड़कर पददलितों–पतितोंको ऊपर उठानेके लिए, भयभीतोंको अभय देनेके लिए, जीवमात्रके साथ मित्रता रखना सिखलानेके लिए और अखिल प्राणियोंको जीवनदान देनेके लिए नीचे उतरा है। वसन्त ऋतुके समान उससे सारी जड-चेतन–सृष्टि प्रफुल्लित हो जायगी। सुनो, उसके ये जन्ममहोत्सवके बाजोंकी धुनि सुनाई दे रही है और देखो, यह अयोध्यापुरी आनन्दसे किस तरह नृत्य कर रही है!

* * * *

समस्त जनोंका प्यारा वसन्त अपने आगमनसे सबको सुखी कर रहा था। सृष्टिसुन्दरी आनन्दमें तल्लीन हो रही थी। उसकी गोदीमें ऐसा कोई न था जो हीन दीन हो–सभी प्रसन्न थे। वृक्ष और लतायें पत्तों और फूलोंसे लद रही थीं। वायु भी फूलोंकी सुगन्धिसे भरा हुआ मन्द मन्द बह रहा था और इन सबको ही नीचा दिखलानेके लिए मानों निसर्ग–गायकोंके नायक पिक

(कोयल) मीठे स्वर अलाप रहे थे ! इस तरहके इस अत्यन्त सुखप्रद और मंगलमय समयमें मानों मूर्तिमती मांगल्य देवता ही सन्तानवती हुई—नाभिराजाकी रमणी रमणीभूषण मरुदेवीने एक अनुपम सुतमणिको जन्म दिया; जिस तरह पूर्वदिशा वासरमणि (सूर्य) को जन्म देती है। इत्यादि।

पुस्तकका मूल्य 'तीन पैसा' है। यह लेखकके पास 'रास्त्याची पेठ घर नं० १०२, पूने' के पतेसे मिल सकेगी।

११ महावीर अंक (उत्तरार्ध)।

श्वे० जैनकान्फरेंस हेरल्डके महावीर अंकका परिचय हम पहले दे चुके हैं; अब उसका दूसरा भाग भी उसके विद्वान् सम्पादकने प्रकाश किया है। इसमें भी कई अच्छे अच्छे लेख प्रकाशित हुए हैं। जो सज्जन महावीर भगवान्के सम्बधमें विशेष ज्ञान सम्पादन करना चाहें और गुजराती जानते हों उन्हें यह अंक और इसके पहलेका अंक मँगाकर अवश्य पढ़ना चाहिए। इसमें कई लेख जैनेतर विद्वानोंके लिखे हुए भी हैं। इस अंकके एक लेखका संक्षिप्त अनुवाद हमने अन्यत्र प्रकाशित किया है। महावीरका विस्तृत चरित लिखनेमें इन सब लेखोंसे बहुत सहायता मिलेगी। विद्वानोंको इनका संग्रह कर रखना चाहिए। इस अंकका मूल्य आठ आना है।

नीचे लिखी पुस्तकें सादर स्वीकार की जाती हैं:—

१ रिपोर्ट—स्याद्वाद महाविद्यालय काशीकी, दशवें वर्षकी।
२ रिपोर्ट—जैनपाठशाला सदर बाजार मेरठकी, द्वितीय वर्षकी।
३ रिपोर्ट—जैनविद्यालय कूचा सेठ देहलीकी, तीसरे वर्षकी।
४ रिपोर्ट—जैन सेन्ट्रल लायब्रेरी और संस्कृत पाठशाला बम्बईकी, चौथी।
५ उपदेशक भजनावली—प्रकाशक, वैश्यसभा भिवानी (हिसार)।
६ अव्ययवृत्तिः—प्र०, उमादत्त हंसराज, कसूर (हिसार)।
७ साक्षात् मोक्ष—प्र०, जैनज्ञानप्रसारक मंडल, सिरोही।
८ साधुगुणपरीक्षा—प्र०, साधुमार्गी जैन सभा, बड़नगर।
९—१० बाल्यविवाह, वृद्धविवाह—प्र०, मालवा प्रान्तिक सभा, बड़नगर।
११ प्रार्थनास्तोत्र—प्र०, मंत्री जैनविद्यालय कूचा सेठ, देहली।
१२ गुणस्थानदर्पण—मिलनेका पता, रावत शेरसींग गौडवंशी, रतलाम।

१३ दानवीर सेठ माणिकचन्द यांचें जीवनचरित्र–प्र०, बन्दे जिनवरम् प्रेस, निपाणी (बेळगांव)।

१४ श्रीमद्विजयानन्द द्वात्रिंशिका (संस्कृत)–सोहनलाल बत्तनलाल जौहरी, देहली।

१५ महावीरचरित्र–ले०, ब्रह्मचारी शीतलप्रसादजी। प्र०, पं० पन्नालालजी जैन, मैदागिनी जैनमन्दिर, बनारस।

१६ दशलक्षण धर्म कथासहित (हिन्दी)
१७ त्रेपन क्रिया विवरण
१८ उपदेश माला
} प्रकाशक, दिगम्बर जैन पुस्तकालय सूरत।

१९ भारतीय किसान
२० मनुष्यके कर्तव्यका परिचय
२१ अमेरिकाका गृहप्रबन्ध
} प्रकाशक, बाबू नारायण-प्रसाद अरोड़ा बी. ए. कानपुर

२२ सप्तव्यसननिषेध–प्र०, मूलचन्द बड़कुर, दमोह (सी. पी.)

२३ तीन वर्षकी रिपोर्ट–जैन अनाथरक्षक सुसाइटी, देहली।

२४ जैनपुष्पमाला–प्र०, पन्नालाल जैनी, बिसाना, हाथरस।

२५ रत्नाकरपच्चीसी–प्र०, मावजी दामजी शाह, जैन हाईस्कूल, बम्बई।

२६ देवपरीक्षा–प्र०, आत्मानन्द पुस्तकप्रचारक मंडल, देहली।

२६ ढूँढकमतके नेता–प्र०, वसन्त, सिकन्दराबाद (बुलन्दशहर)।

समाचार।

—श्रीयुत बाबू जुगमंदरलालजी जैनी एम. ए. बैरिस्टर एट्ला इन्दौरकी चीफ कोर्टके सेकिन्ड जज नियत हुए हैं।

—इटावाका ‘ जैनतत्त्व प्रकाशक ’ फिर निकलने गगा है। तीन चार अंक निकल गये हैं। बाबूचन्द्रसेनजी सम्पादन करते हैं।

—सत्यवादीका सम्पादन–कार्य पं० उदयलालजीने छोड़ दिया है। अब पं० खूबचन्द्रजी शास्त्री उसका सम्पादन करेंगे।

—यूरोपका महाभारत खूब ज़ोरशोरसे ज़ारी है। फिलहाल शान्तिकी कोई आशा नहीं।

—इन्दौरका श्राविकाश्रम भी खुल गया।

—स्याद्वादपाठशालाका वार्षिकोत्सव सफलताके साथ पूर्ण हुआ।

दानवीर सेठ माणिकचन्दजीका स्मारक।

यह जानकर पाठकोंको प्रसन्नता होगी कि स्वर्गीय दानवीर सेठ माणिकचन्द जे. पी. के स्मरणार्थ एक 'ग्रन्थमाला' निकालनेका निश्चय किया गया है। इसमें संस्कृत और प्राकृतके प्राचीन जैनग्रन्थ प्रकाशित होगें और लागत मात्रके मूल्यपर बेचे जावेंगे। प्रत्येक ग्रन्थकी कुछ प्रतियाँ मुफ्त भी बाँटी जावेंगी। ऐसा प्रबन्ध किया जा रहा है कि बहुत जल्दी एक दो ग्रन्थ प्रकाशित कर दिये जावें। शास्त्रदान करनेवालोंके सुभीतेके लिए एक योजना यह भी की जायगी कि जो धर्मात्मा किसी ग्रन्थकी सो दोसौ या इससे अधिक प्रतियाँ दानके लिए खरीदना चाहेंगे उनका स्मरणपत्र भी उन प्रतियोंमें छपवा दिया जायगा।

ग्रन्थप्रचार और ग्रन्थोद्धार यह स्वर्गीय सेठजीका बहुत ही प्यारा कार्य था। इसलिए यह 'ग्रन्थमाला' का निकलना उनका बहुत ही अनुरूप और उचित स्मारक होगा। जो सज्जन सेठजीके उपकारोंको भूले नहीं हैं—उनके प्रति जिनकी आदरबुद्धि है आशा है कि उन्हें यह कार्य बहुत पसन्द आयगा और वे इसमें हर तरहसे सहायता पहुँचावेंगे। अभी तक स्मारक फंडमें लगभग चार हजार रुपयेका चन्दा हुआ है जो लगभग वसूल हो चुका है। हम चाहते हैं कि यह फंड कमसे कम दशहजार रुपयेकी अवश्य हो जाय जिससे थोड़ेही समयमें इसके द्वारा सैकड़ों प्राचीन ग्रन्थोंका उद्धार हो जाय और उनके दर्शन घर घर होने लगें।

ग्रन्थमालाकी नियमावली बन रही है जो शीघ्र ही प्रकाशित होगी। जो महाशय इस विषयमें कुछ सूचनायें करना चाहें या सम्मतियाँ देनेकी इच्छा करें वे मुझसे से पत्रव्यवहार करें।

नाथूराम प्रेमी,

हीराबाग पो० गिरगांव—बम्बई।

आवश्यक प्रार्थना ।
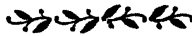
जैनहितैषीके पाठकोंको यह बतलानेकी जरूरत नहीं है कि यह पत्र जैनसमाजकी और जैनसाहित्यकी कितनी सेवा कर रहा है और इसका प्रचार अधिकताके साथ होनेकी कितनी आवश्यकता है। इस सालका उपहार तो ग्राहकोंके हाथमें मौजूद ही है। इसे देखकर यह भी मालूम किया जा सकता है कि जैनहितैषीका वास्तविक उद्देश्य क्या है ? यह जैनसमाजकी भलाईके लिए निकलता है या कमाईके लिए। यदि पाठकोंकी समझमें हितैषीसे वास्तवमें ही समाजका कुछ हित होता हो तो हम उनसे प्रार्थना करते हैं कि वे इस समय इसके कुछ ग्राहक बढ़ानेका प्रयत्न अवश्य करें। आपलोग यदि थोड़ी सी भी कोशिश करेंगे तो सहज ही इसके दोसौ चारसौ ग्राहक बढ़ जावेंगे। इस सालके साधारणोपयोगी उपहार ग्रन्थोंका जुदा मूल्य डाँकखर्चसहित २) है। इस लिए जैनहितैषी केवल १२ पैसोंमें मिलेगा जो कि १२ अंकोंके डाँकखर्चमें ही लग जावेंगे। ये ग्रन्थ जिस किसीको भी बतलाये जावेंगे वही थोड़ीसी प्रेरणा करनेपर ग्राहक बननेको तैयार हो जायगा। केवल जैनी ही नहीं, इन ग्रन्थरत्नोंके मोहसे अजैनी भी ग्राहक बन जावेंगे। इस लिए पाठकोंसे बारबार प्रार्थना है कि वे इस वर्ष ग्राहक बढ़ानेकी कोशिश ज़रूर करें।

इस वर्ष लड़ाईके कारण कागज और छपाईका भाव बहुत बढ़ गया है इसलिए ग्राहकोंकी संख्या यथेष्ट न होगी तो हमें बहुत घाटा उठाना पड़ेगा।

ग्राहक जितने ही अधिक होंगे, पत्रकी पृष्ठसंख्या हम उतनी ही अधिक बढ़ानेका प्रबन्ध करेंगे। ग्राहकसंख्या बढ़े बिना कोई भी पत्र तरक्की नहीं कर सकता।

इस वर्ष हमें कोई भी महाशय जैनहितैषीको मुफ्तमें या आधे पौने मूल्यमें मँगानेके लिए लाचार न करें।

जिन संस्थाओंमें हितैषी बिनामूल्य जाता है उनके संचालकों और विद्यार्थियोंसे खास तौरसे प्रार्थना है कि वे परिश्रम करके हमें इस वर्ष कुछ ग्राहक जुटा देनेकी कृपा करें। **मैनेजर, जैनहितैषी।**

नये छपे हुए जैन ग्रन्थ।

भक्तामरचरित।

इसमें प्रत्येक श्लोक, उसका अर्थ, प्रत्येक श्लोककी विस्तृत कथा, हिन्दी कविता, प्रत्येक श्लोकका मंत्र और यंत्र ये सब बातें छपाई गई हैं। कथायें बड़ी विलक्षण हैं। उनमें किस पुरुषने किस मंत्रका किस तरह जाप किया, उसको कैसी कैसी तक़लीफें भोगनी पड़ीं और फिर अन्तमें उसे किस तरह मंत्रकी सिद्धि हुई इन सब बातोंकी आश्चर्य-जनक घटनाओंका वर्णन किया है। भाषा बहुत सरल बनाई गई है। यह मूल संस्कृत ग्रन्थका नया अनुवाद है। कपड़ेकी सुन्दर जिल्द बँधी हुई पुस्तक है। मूल्य सवा रुपया।

श्रेणिकचरित।

यह अन्तिम तीर्थंकर महावीर भगवान्के परम भक्त महाराजा श्रेणिकका जो इतिहासज्ञोंमें विम्बिसारके नामसे विख्यात हैं—चरित है। इसे श्रेणिकपुराण भी कहते हैं। इसका अनुवाद मूल संस्कृत ग्रन्थ परसे पं. गजाधरलालजीने किया है। आज कलकी बोलचालकी भाषा-में है, पुष्ट चिकना कागज़, उत्तम छपाई, कपड़ेकी पक्की जिल्द, पृष्ठ संख्या ४०० । मूल्य १॥।)

धर्मप्रश्नोत्तरश्रावकाचार।

श्रीसकलकीर्ति आचार्यके संस्कृत ग्रन्थका सरल अनुवाद। इसमें प्रश्न और उत्तरके रूपमें श्रावकाचारकी सारी बातें बड़ी ही सरलतासें सम-झाई गई हैं। सब भाईयोंको मँगाकर पढ़ना चाहिए। साधारण पढ़े लिखे लोगोंके बड़े कामका ग्रन्थ है। मूल्य दो रुपया।

नाटक समयसार भाषाटीकासहित ।

कविवर पं० बनारसीदासजीके भाषा नाटकसमयसारको कौन नहीं जानता । उनकी भाषा कविता जैनसाहित्यमें शिरोमाणि समझी जाती है । इस अध्यात्मकी कविताका अर्थ सबकी समझमें नहीं आता था, इस कारण श्रीयुत नाना रामचन्द्र नाग (जैन ब्राह्मण) ने भाषा बचनिका सहित इस ग्रन्थको खुले पत्रोंमें छपाया है । छपाई सुन्दर है । मूल्य २॥)

बालक-भजनसंग्रह (द्वितीयभाग)।

इसमें नई तर्ज़के, नई चालके २१ भजनोंका संग्रह है। इसके बनानेवाले लाला भूरामलजी (बालक) मुशरफ जयपुर निवासी हैं । मूल्य डेड़ आना ।

महेन्द्रकुमार नाटकके गायन ।

जयपुरकी शिक्षाप्रचारकसामिति जो महेन्द्रकुमार नामका नवीन विचारोंसे परिपूर्ण नाटक खेलती थी उसमेंके गायन छपाये गये हैं । बड़े अच्छे हैं । मूल्य एक आना ।

विश्वतत्त्व चार्ट ।

यह बढ़िया काग़ज़ पर छपा हुआ नकशा है । इसमें जैनधर्मके अनुसार सात तत्त्व और उनका विस्तार बतलाया है । जैनधर्मकी सारी बातें इसमें आ गई हैं । प्रत्येक मन्दिरमें जड़वाकर टाँगने लायक है । मूल्य दो आना ।

आराधना कथाकोश ।

जैनकथाओंका भंडार । मूल संस्कृतसहित सुन्दरतासे छपा है । भाषा बोलचालकी सबके समझने योग्य है । पहले भागका मूल्य १।)

अनित्यभावना ।

श्रीपद्मनन्दि आचार्यका अनित्यपंचाशत मूल और उसका अनुवाद अनुवाद बाबू जुगलकिशोरजी मुख्तारने हिन्दी कवितामें किया है शोक दुःखके समय इस पुस्तकके पाठसे बड़ी शान्ति मिलती है मूल्य डेढ़ आना ।

पंचपरमेष्ठीपूजा ।

संस्कृतका यह एक प्राचीन पूजाग्रन्थ है । इसके कर्त्ता श्रीयशोनन्दि आचार्य हैं । इसमें यमक और शब्दाडम्बरकी भरमार है । पढ़नेमें बड़ा ही आनन्द आता है । जो भाई संस्कृत पूजापाठके प्रेमी हैं उन्हें यह अवश्य मँगाना चाहिए । अच्छी छपी है । मूल्य चार आना ।

चौवीसी पाठ (सत्यार्थयज्ञ) ।

यह कवि मनरँगलालजीका बनाया हुआ है । इसकी कविता पर मुग्ध होकर इसे लाला अजितप्रसादजी एम. ए. एल एल. बी. ने छपाया है । कपड़ेकी जिल्द बँधी है । मूल्य ॥)

जैनार्णव ।

इसमें जैनधर्मकी छोटी बड़ी सब मिलाकर १०० पुस्तकें हैं । सफ़रमें साथ रखनेसे पाठादिके लिए बड़ी उपयोगी चीज़ है । बहुत सस्ती है । कपड़ेकी जिल्द सहित मूल्य १।)

श्रीपालचरित ।

पहले यह ग्रन्थ छन्द बंध छपा था । अब पं. दीपचन्दजीने सरल बोलचालकी भाषामें कर दिया है जिससे समझनेमें कठिनाई नहीं पड़ती । पक्की कपड़ेकी जिल्द बँधी है । मूल्य १)

धर्मरत्नोद्योत।

यह ग्रन्थ आरा निवासी बाबू जगमोहनदासका बनाया हुआ है। कवितामें है। जैनधर्मसम्बन्धी पचासों बातें कवितामें समझाई गई हैं। कविता सरल और अच्छी है। निर्णयसागर प्रेसमें बढ़िया एन्टिक काग़ज़ पर छपाया गया है। मूल्य एक रुपया।

जैनगीतावली।

विवाहादिके समय स्त्रियोंके गाने योग्य गीत। ये गालियोंकी चालमें धार्मिक गीत हैं। बुन्देलखंडकी स्त्रियोंमें बहुत प्रचार है। मूल्य ।)

सुशीला उपन्यास।

इस उपन्यासकी प्रशंसाकी ज़रूरत नहीं। दूसरी बार सुन्दरतासे छपा है। इसमें मनोरंजनके साथ जैनधर्मका सार भर दिया गया है। पक्की कपड़ेकी जिल्द। मू० १।)

कर्नाटक--जैनकवि।

कर्नाटक देशमें जो नामी नामी जैन कवि हुए हैं उनका इसमें ऐतिहासिक परिचय दिया गया है। सब मिलाकर ७५ कवियोंका इतिहास है। बड़े महत्त्वकी पुस्तक है। मूल्य लागतसे भी कम आधा आना है।

जिनशतक।

यह श्रीमान् समन्तभद्र स्वामीका बिलकुल अप्रसिद्ध ग्रन्थ है। बहुत ऊँचे दर्जेका संस्कृत चित्रकाव्य है। हिन्दीजाननेवाले भी इसका कुछ अभिप्राय समझ सकें इस लिए मूल श्लोकोंका भावार्थ भी लिख दिया है। इस ग्रन्थकी संस्कृत टीकायें लिखनेमें बड़े बड़े आचार्योंकी अक्ल चकराई है। मूल्य ।।।)

जम्बूस्वामीचरित ।

यह भी कवितासे बदलकर सादी बोलचालकी भाषामें कर दिया गया है । अन्तिम केवली जम्बूस्वामीका पवित्र चरित्र है । मूल्य ।)

दशलक्षणधर्म ।

इसमें उत्तम क्षमादि दशधर्मोंका विस्तृत व्याख्यान है । रत्नकरंडवचनिका आदिग्रन्थोंके आधारसे नये ढंगसे लिखा गया है । भाषा बोलचालकी है । साथमें दशलक्षण व्रत कथा भी है । शास्त्रसभामें बाँचने योग्य है । भादोंके तो बड़े कामकी चीज़ है । मूल्य पाँच आना ।

आत्मशुद्धि ।

यह पुस्तक लाला मुंशीलालजी एम. ए. की लिखी हुई हालही प्रकाशित हुई है । विषय नामसे ही स्पष्ट है । जैनग्रन्थोंके आधारसे लिखी गई है । इसमें 'शील और भावना' भी शामिल है । मूल्य ।)

गृहिणीभूषण ।

स्त्रियोंके लिए बड़ी ही उपयोगी पुस्तक है । जैनस्त्रियोंके सिवाय दूसरी स्त्रियाँ भी लाभ उठा सकती हैं । स्त्रियोंके कर्तव्य, व्यवहार, विनय, लज्जा, शील, गृहप्रबन्ध, बच्चोंका लालनपालन, पातिव्रत, परोपकार आदि-सभी विषयोंकी इसमें सुन्दर शिक्षा दी गई है । भाषा शुद्ध और सरल है । जैनसमाजमें स्त्रीशिक्षाकी इससे अच्छी और कोई पुस्तक प्रचलित नहीं । मूल्य आठ आना ।

शान्तिकुटीर ।

यह बहुत ही सुन्दर और शिक्षाप्रद उपन्यास है । प्रतिभा उपन्यासके लेखककाही यह लिखा हुआ है । इससे इसकी प्रशंसा करना व्यर्थ है । १५ जनवरी तक तैयार हो जायगा । मूल्य १)

मैनेजर, **जैनग्रन्थरत्नाकर कार्यालय**, गिरगाँव, बम्बई ।

सर्वसाधारणोपयोगी हिन्दी ग्रन्थ ।

स्वर्गीय जीवन ।

यह अमेरिकाके आध्यात्मिक विद्वान डा० राल्फ वाल्डो ट्राइनके सुप्रसिद्ध ग्रन्थ In Tune with the infinite का हिन्दी अनुवाद है। पवित्र, शान्त, नीरोगी और सुखमय जीवन कैसे बन सकता है, मानसिक प्रवृत्तियोंका शरीर पर और शारीरिक प्रकृतियोंका मन पर क्या प्रभाव पड़ता है आदि बातोंका इसमें बड़ा हृदयग्राही वर्णन है। प्रत्येक सुखाभिलाषी स्त्रीपुरुषको यह पुस्तक पढ़ना चाहिए। इसमें विश्वका उत्कृष्ट तत्त्व, मनुष्यजीवनका परम सत्य, शारीरिक आरोग्यता और शक्ति, प्रेमका परिणाम, पूर्ण शान्तिकी सिद्धि, पूर्ण शक्तिकी प्राप्ति, समृद्धिशाली होनेका नियम, महात्मा सन्त और दूरदर्शी बननेके नियम, सब धर्मोंका असली तत्त्व, सर्वश्रेष्ठ धन प्राप्त करनेकी रीति, ये दश अध्याय हैं। इसके विषयमें सरस्वतीके सम्पादक महाशय लिखते हैं:—"जगदात्मासे ऐक्य स्थापना और आत्मानन्दका सुखानुभव प्राप्त करनेके विषयमें ट्राइन महोदयको जो अनुभव हुए हैं उन्हींका इसमें वर्णन है। पुस्तक दिव्य विचारोंसे परिपूर्ण है। अध्यात्मका थोड़ासा भी ज्ञान प्राप्त करनेकी इच्छा रखनेवालोंको अवश्य अवलोकन करना चाहिए।" मूल्य ॥≋) ग्यारह आने।

बाबू मैथलीशरणजी गुप्तके काव्य ग्रन्थ।

हिन्दीके सुप्रसिद्ध कवि बाबू मैथिलीशरणजीको कौन नहीं जानता। अपने ग्राहकोंके सुभीतेके लिए हमने उनके सब ग्रन्थ विक्रीके लिए मँगाकर रक्खे हैं। बाजिब मूल्य पर भेजे जाते हैं:—

भारतभारती, सादी	१)	रंगमें भंग	।)
,, राजसंस्करण	२)	पद्यप्रबन्ध	॥=)
जयन्द्रथवध काव्य	॥)	मौर्यविजय	।)

जयन्त नाटक।

कविशिरोमाणि शेक्सपियरके 'हेम्लेट' का हिन्दी अनुवाद। इस नाटककी प्रशंसा करना व्यर्थ है। अनुवादके विषयमें इतना कह देना काफी होगा कि इसे बिलकुल देशी पोशाक पहना दी गई है और इस कारण इस देशवासियोंके लिए यह बहुत ही रुचिकर होगा। रूपान्तरित होने पर भी यह अपने मूलके भावोंकी खूब सफलताके साथ रक्षा कर सका है। रंगमंच पर अच्छी तरह खेला जा सकता है। मूल्य ।||)

चित्रशाला प्रेसके हिन्दी ग्रन्थ ।

पूनेके चित्रशाला प्रेससे हिन्दीके जो अच्छे अच्छे ग्रन्थ प्रकाशित हुए हैं उनके विक्रय करनेका भी हमने प्रबन्ध किया है। इस प्रेसके ग्रन्थ सुन्दर और उत्तम होने पर भी कम मूल्यमें बेचे जाते हैं:-

१ **दासबोध**—महाराष्ट्रके सुप्रसिद्ध साधु रामदासका बनाया हुआ राष्ट्रीय ग्रन्थ है। ये वे ही साधु हैं जो वीरकेसरी शिवाजीके गुरु थे और जिनके उपदेशसे शिवाजीने महाराष्ट्र साम्राज्य स्थापित किया था। हिन्दीके प्रसिद्ध लेखक पं० माधवराव सप्रे बी. ए. ने इसका अनुवाद किया है। मूल्य २)

२ **भारतीय युद्ध**—महाभारतका यह एक तरहका सार है। इसमें कथानककी नैतिक बातोंपर बहुत जोर दिया गया है और महाभारतकी कूटनीतिका बहुत अच्छी तरह खुलासा किया गया है। पात्रोंका आचरण बड़ी ही मार्मिकताके साथ समझाया गया है। इसमें लोकमान्य महात्मा तिलककी लिखी हुई एक विस्तृत प्रस्तावना है। भिन्न भिन्न प्रसंगोंके १७ सुन्दर चित्र भी दिये गये हैं। मूल्य १)

३ **अँगरेजी प्रवेश**—मूल्य आठ आना ।

४ **सचित्र अक्षर बोध**—बालकोंके लिए बहुतही उपयोगी ।=)

५ **चित्रमय जापान**—जापान सम्बन्धी ८४ चित्र और उनका परिचय । मूल्य १)

६ **राजा रविवर्माके प्रसिद्ध चित्र**—विवरणसहित । मूल्य १)

७ **वर्णमालाके रंगीन ताश**—चार आने ।

८ **सचित्र भगवद्गीता**—रेशमी जिल्द ।=), सादी ।)

हिन्दी-ग्रन्थरत्नाकर-सीरीजकी नई पुस्तकें

स्वदेश—जगत्प्रसिद्ध कविसम्राट् डा० रवीन्द्रनाथ टागोरके ८ निबन्धोंका संग्रह । जो लोग असली भारतवर्षके दर्शन करना चाहते हैं, भारतके समाजतंत्र और राष्ट्रतंत्रका रहस्य समझना चाहते हैं, पूर्व और पश्चिमके भेदको हृदयंगम करना चाहते हैं और सच्चे स्वदेशसेवक बनना चाहते हैं उन्हें यह निबन्धावली अवश्य पढ़ना चाहिए । यह सीरीजकी आठवीं पुस्तक है । मूल्य दश आने ।

चरित्रगठन और मनोबल—यह प्रसिद्ध अमेरिकन विद्वान् राल्फ वाल्डो ट्राइनके अँगरेजी ग्रन्थ ' कैरेक्टर बिल्डिंग—थाट पावर ' का हिन्दी अनुवाद है । इसमें इस बातको बहुत अच्छी तरहसे बतला दिया है कि मनुष्य अपने चरित्रको जैसा चाहे वैसा बना सकता है । मानसिक विचारोंका चरित्र पर बहुत गहरा प्रभाव पड़ता है । प्रत्येक बालक युवक वृद्धके बाँचने लायक है । इसमें कोई भी बात जैनधर्मसे विरुद्ध नहीं है । सीरीजकी यह नवीं पुतक है । मूल्य तीन आने ।

मैनेजर, **हिन्दी-ग्रन्थरत्नाकर कार्यालय**
हीराबाग, पो० गिरगाँव, बम्बई ।

सनातनजैनग्रंथमालाके नये नियम।

इस ग्रंथमालामें, जैनदर्शन, सिद्धांत, न्याय, अध्यात्म, काव्य, साहित्य, पुराण, इतिहासादि जैनाचार्यकृत सर्व प्रकारके प्राचीन ग्रंथ संस्कृत, प्राकृत, तथा संस्कृत टीकासहित बड़ी शुद्धतापूर्वक छपते हैं वा छपेंगे। प्रत्येक खंड रायल वा सुपर-रायल १० फारमसे (८० पृष्ठसे) कमका नहिं होता। इसकी न्योछावर १२ अंकोंकी सर्वसाधारण जैनी भाइयोंसे वा जैनमंदिर वा जैन संस्थाओंसे १०) रुपये और फुटकर एक एक अंककी २) रु. की जाती है। धनाढ्य रईसोंसे उनके पदस्थानुसार अधिक ली जाती है। डांक खर्च जुदा है सो प्रत्येक अंक (खो जानेके डरसे) पोष्टेजके वी. पी. से भेजा जाता है। इस ग्रंथमालाके १६ अंकोंमें नीचे लिखे आठ ग्रंथ पूर्ण हो गये वा हो जायँगे। आगेको शाकटायन व्याकरण, पद्मपुराण व श्लोकवार्तिकादि छपेंगे। यह ग्रंथमाला प्रत्येक जिनवाणी भक्त जैनीके सिवाय प्रत्येक मंदिरजी पाठशाला, पुस्तकालय संस्थामें संग्रह करके भगवानकी प्रतिमाजीकी तरह इनका भी नित्य दर्शन पूजन विनय करना चाहिये। ये ग्रंथ संस्कृत हैं हमारे कामके नहीं ऐसा समझ इनकी उपेक्षा व अविनय नहिं करना चाहिये। देवगुरु शास्त्रकी बराबर भक्तिपूजा विनय करना चाहिये। इन आर्षग्रंथोंकी रक्षा व प्रचार करना ही जैनधर्मकी रक्षा है।

ग्रंथमालाके ग्राहक न होकर फुटकर ग्रंथ लेनेवालोंके लिये मूल्यका नियम।

ग्रंथ	मूल्य
१-२। आप्तपरीक्षा सटीक और पत्रपरीक्षा मूल एक साथ	२)
३। समयप्राभृत दो टीकासहित	५)
४। राजवार्तिकजी पांच अध्याय	५)
४। „ शेष पांच अध्याय	५)
५। जैनेंद्रप्रक्रिया गुणनंदी कृत प्राचीन	१॥)
६। शब्दार्णव, चंद्रिका जैनेंद्रव्याकरणकी लघुवृत्ति	५)
७-। आप्तमीमांसा (देवागम) अकलंक भाष्य और वसुनंदिवृत्ति सहित तथा प्रमाणपरीक्षा	२)
९। शब्दानुशासनकी (शाकटायन व्याकरणकी चिंतामणि नामक) लघुवृत्ति प्रथम खंड	२)
१०। जैनेंद्रसूत्रपाठ असली छपता है	।)
शाकटायनप्रक्रिया पूर्ण सूत्र पाठसहित	२)
शाकटायन धातुपाठ	।=)
गणरत्नमहोदधि	२)

मिलनेका पता—**पन्नालाल बाकलीवाल,**
ठि. मदागिन जैनमंदिर पो. **बनारस सिटी.**

नोट—ये सब ग्रन्थ जैनग्रन्थरत्नाकर कार्यालय बम्बईमें भी मिलते हैं।

-:राष्ट्रीय ग्रन्थः-

१ सरल-गीता। इस पुस्तकको पढ़कर अपना और अपने देशका कल्याण कीजिये। यह श्रीमद्भगवद्गीताका सरल-हिन्दी अनुवाद है। इसमें महाभारतका संक्षिप्त वृत्तान्त, मूल श्लोक, अनुवाद और उपसंहार ये चार मुख्य भाग हैं। सरस्वतीके सुविद्वान संपादक लिखते हैं कि यह 'पुस्तक दिव्य है।' मूल्य ।।।)

२ जयन्त। शेक्सपियरका इंग्लैंडमें इतना सम्मान है कि वहांके साहित्यप्रेमी अपना सर्वस्व उसके ग्रन्थोंपर न्योछावर करनेंके लिए तैयार होते हैं। उसी शेक्सपियरके सर्वोत्तम 'हैम्लैट' नाटकका यह बड़ा ही सुन्दर अनुवाद है। मूल्य ।।।=); सादी जिल्द ।।।)

३ धर्मवीर गान्धी। इस पुस्तकको पढ़कर एक बार महात्मा गान्धीके दर्शन कीजिये, उनके जीवनकी दिव्यताका अनुभव कीजिये और द० आफ्रिकाका मानचित्र देखते हुए अपने भाइयोंके पराक्रम जानिये। यह अपूर्व पुस्तक है। मूल्य ।)

४ महाराष्ट्र-रहस्य। महाराष्ट्र जातिमें कैसे सारे भारतपर हिन्दू साम्राज्य स्थापित कर संसारको कंपा दिया इसका न्याय और वेदान्तसंगत ऐतिहासिक विवेचन इस पुस्तकमें है। परन्तु भाषा कुछ कठिन है। मूल्य-)।।

५ सामान्य-नीतिकाव्य। सामाजिक रीतिनीतिपर यह एक अनूठा काव्य ग्रन्थ है। सब सामयिक पत्रोंने इसकी प्रशंसा की है। मूल्य ≈)

इन पुस्तकोंके अतिरिक्त हम हिन्दीकी चुनी हुई उत्तम पुस्तकें भी अपने यहाँ विक्रयार्थ रखते हैं।

नवनीत-मासिक पत्र। राष्ट्रीय विचार। वा० मूल्य २)

यह अपने ढंगका निराला मासिक पत्र है। हिन्द देश, जाति और धर्म इस पत्रके उपास्य देव हैं। आत्मिक उन्नति इसका ध्येय है। इतना परिचय पर्याप्त न हो तो ।-) के टिकट भेजकर एक नमूनेकी कापी मंगा लीजिये।

ग्रन्थप्रकाशक समिति, नवनीत पुस्तकालय.

पत्थरगली, काशी.

दद्रुदमन—दादकी अकसीर दवा फी डबी ।)

दन्तकुमार—दांतोंकी रामबाण दवा । डबी ।)

नोट—सब रोगोंकी तत्काल गुण दिखानेवाली दवाओंकी बड़ी सूची मँगा देखिये ।

चित्रशाला स्टीम प्रेस, पूना सिटिकी अनोखी पुस्तकें ।

सचित्र अक्षरलिपि—यह पुस्तक भी उपर्युक्त "सचित्र अक्षरबोध" के ढंगकी है। इसमें बाराखडी और छोटे छोटे शब्द भी दिये हैं। वस्तुचित्र सब रंगीन हैं। आकार उक्त पुस्तकसे छोटा है। इसीसे इसका मूल्य दो आने हैं।

सस्ते रंगीन चित्र—श्रीदत्तात्रय, श्रीगणपति, रामपंचायतन, भरतभेट हनुमान, शिवपंचायतन, सरस्वती, लक्ष्मी, मुरलीधर, विष्णु, लक्ष्मी, गोपीचन्द, अहिल्या, शकुन्तला, मेनका, तिलोत्तमा, रामवनवास, गजेंद्रमोक्ष, हरिहर भेट, मार्कण्डेय, रम्भा, मानिनी, रामधनुर्विद्याशिक्षण, अहिल्योद्धार, विश्वामित्र मेनका, गायत्री, मनोरमा, मालती, दमयन्ती और हंस, शेषशायी, दमयन्ती इत्यादिके सुन्दर रंगीन चित्र। आकार ७×५, मूल्य प्रति चित्र एक पैसा।

श्री सयाजीराव गायकवाड बड़ोदा, महाराज पंचम जार्ज और महारानी मेरी, कृष्णाशिष्टाई, स्वर्गीय महाराज सप्तम एडवर्डके रंगीन चित्र, आकार ८×१० मूल्य प्रति संख्या एक आना।

लिथोंके बढियाँ रंगीन चित्र—गायत्री, प्रातःसन्ध्या, मध्याह्न सन्ध्या, सायंसन्ध्या प्रत्येक चित्र ।) और चारों मिलकर ॥) नानक पंथके दस गुरू, स्वामी दयानन्द सरस्वती, शिवपंचायतन, रामपंचायतन, महाराज जार्ज, महारानी मेरी। आकार १६ × २० मूल्य प्रति चित्र ।) आने।

अन्य सामान्य—इसके सिवाय सचित्र कार्ड, रंगीन और सादे, स्वदेशी बटन, स्वदेशी दियासलाई, स्वदेशी चाकू, ऐतिहासिक रंगीन खेलनेके ताश, आधुनिक देशभक्त, ऐतिहासिक राजा महाराजा, बादशाह, सरदार, अंग्रेजी राजकर्ता, गवर्नर जनरल इत्यादिके सादे चित्र उचित और सस्ते मूल्य पर मिलते हैं। स्कूलोंमें किंडरगार्डन रीतिसे शिक्षा देनेके लिये जानवरों आदिके चित्र सब प्रकारके रंगीन नकशे, ड्राईंगका सामान, भी योग्य मूल्यपर मिलता है। इस पतेपर पत्रव्यवहार कीजिये।

मैनेजर चित्रशाला प्रेस,
पूना सिटी।

जैनहितैषीके नियम ।

१ इसका वार्षिक मूल्य पोस्टेजसहित १॥) है ।

२ उपहार लेनेवाले ग्राहकोंको उपहार खर्च जुदा देना पड़ता है । इस वर्ष यह खर्च ॥=) दश आना रक्खा गया है । अर्थात् जो भाई उपहारके ग्रन्थोंसहित वी. पी. मँगावेंगे उन्हें २=) दो रुपया तीन आना देना होगा ।

३ इसका वर्ष दिवालीसे शुरू होता है । शुरू सालसे ही ग्राहक बनाये जाते हैं, बीचसे नहीं । जो सज्जन बीचमें ग्राहक बनेंगे उन्हें तब तकके निकले हुए अंक भी लेना होंगे ।

४ जो भाई खोया हुआ अंक फिरसे मँगावें उन्हें तीन आनेके टिकिट भेजना चाहिए ।

५ प्रबन्धसम्बन्धी पत्रव्यवहारादि इस पतेसे करना चाहिए:—

मैनेजर, जैनहितैषी
जैनग्रन्थरत्नाकर कार्यालय
हीराबाग, पो० गिरगाँव, बम्बई ।

उपहारकी सूचना ।

जिन ग्राहकोंने हमारे पास उपहार रवाना करनेकी आज्ञा भेज दी थी उनकी सेवामें इस अंकके साथ उपहारके ग्रन्थ वी. पी. से भेज दिये गये हैं; परन्तु जिन्होंने उपहारके विषयमें कुछ भी सूचना नहीं दी थी उनके पास केवल जैनहितैषी ही एक रुपया नौ आनेके वी. पी. से भेज दिया गया है। बिना मँगाये उपहार न भेजनेका कारण यह है कि यदि वी. पी. वापस हो जाता तो हमें उपहारके ग्रन्थोंका डांकखर्च—जो लगभग तीन आनेके होता है—व्यर्थ लग जाता; परन्तु इससे उन्हें अधीर न होना चाहिए; उपहारके ग्रन्थ भेजनेके लिए हम अब भी तैयार हैं ! इस सूचनाको पढ़ते ही वे हमें एक कार्डसे सूचित कर देवें कि उपहारके अमुक तरहके ग्रन्थ हमारे पास भेज दो। हम तत्काल ही ।।=) ग्यारह आनेका वी. पी. करके उपहारग्रन्थ भेज देंगे।

पर कार्ड लिखते समय कौनसा उपहार भेजा जावे सो साफ साफ लिख देना चाहिए ! या तो धर्मविलास और नेमिचरित ये दो जैनग्रंथ मँगा ... मोक्षमार्ग ... और कठिनाईसे विद्याभ्यास इन दो सर्वसाधारण ... ग्राहकको एक ही तरहके दो ग्रन्थ मिल सकते हैं, ... ।

... और बहुमूल्य हैं कि उन्हें देखकर अवश्य ही ... हैं मँगाये बिना न रहेंगे। परन्तु उपहारके ... कम हैं कि हम इन्हें बहुत समय तक न दे ... ना चाहें उन्हें शीघ्रता करना चाहिए। ... मिलेगी उनसे चार आने अधिक लिये ... आनेका वी. पी. किया जायगा।

—मैनेजर, जैनहितैषी।

... the Bombay Vaibhav Press, Servants ... Gujarat Road, Girgaon Bombay, & ... ar C. P. Tank Girgaon Bombay.

Reg. No. B. 719.

जैनहितैषी।

साहित्य, इतिहास, समाज और धर्मसम्बन्धी
लेखोंसे विभूषित

मासिकपत्र।

सम्पादक और प्रकाशक—नाथूराम प्रेमी।

ग्यारहवाँ भाग। | पौष। श्रीवीर नि०संवत २४४१ | ३ रा अंक।

विषयसूची। पृष्ठ.

वार्षिक मूल्य उपहार सहित २।=)।
वर्षके प्रारंभसे ग्राहक बनाये जाते हैं।

पत्रव्यवहार करनेका पता—
मैनेजर, जैनग्रन्थरत्नाकर कार्यालय, बम्बई।

जैनहितैषीके उपहार-ग्रन्थ

अब पूर्वनिश्चित मूल्यमें न मिलेंगे।

अब यदि आप मँगावेंगे तो,

चार आने ज्यादह देना होंगे।

अर्थात्

अब दो रुपये सात आनेका वी. पी.

भेजा जायगा।

इससे एक पैसा भी कम नहीं।

चिट्ठी लिखते समय यह साफ़ साफ़ लिखना मत भूल जाइए कि उपहारके दो तरहके ग्रन्थोंमेंसे कौन तरहके ग्रन्थ चाहिए:—

आत्मोद्धार और कठिनाईमें विद्याभ्यास

अथवा

धर्मविलास और नेमिचरित।

अपना ग्राम, पता, ग्राहक नं० आदि साफ़ लिखिए

जैनहितैषी।

श्रीमत्परमम्भीरस्याद्वादामोघलाञ्छनम्।
जीयात्सर्वज्ञनाथस्य शासनं जिनशासनम्॥

११ वाँ भाग { पौष, वीर नि० सं० २४४१। } अंक ३

विविध प्रसंग।

१ जैनसाहित्यकी समालोचना।

जैन-साहित्यको अन्य साहित्योंकी बराबरीका आसन दिलानेके लिए-संसारकी दृष्टि उसकी ओर आकर्षित करनेके लिए जिस तरह उच्चश्रेणीके जैनसाहित्यको प्रकाशित करनेकी और उसकी आलोचनात्मक चर्चा करनेकी आवश्यकता है उसी तरह जो निम्नश्रेणीका रद्दी और दुर्बल साहित्य है उसकी कड़ी समालोचना होनेकी भी जरूरत है। हमें यह स्मरण रखना चाहिए कि हमारे साहित्यका एक अंश जितना ही उत्कृष्ट मार्मिक और विविधगुणसम्पन्न है उसी तरह उसका एक अंश—विशेष करके वह जो पिछले समयमें भट्टारकों

तथा उनके शिष्यों द्वारा निर्मित हुआ है—बहुत ही गिरा हुआ उथला और गुणहीन है। इस बातका उल्लेख हम और भी कई बार कर चुके हैं और ऐसे कुछ ग्रन्थोंकी समालोचना प्रकाशित करनेका उद्योग भी कर रहे हैं। हर्षका विषय है कि इस ओर हमारे एक सहयोगीका भी ध्यान आकर्षित हुआ है। जैनहितेच्छुके ९–१० अंकमें सूरतके 'दिगम्बरजैन आफिस' से प्रकाशित हुए 'श्रीपाल-चरित्र' की २०–२१ पृष्ठकी विस्तृत समालोचना प्रकाशित हुई है। हम सिफारिश करते हैं कि जो सज्जन गुजराती भाषा समझ सकते हों उन्हें उक्त समालोचना अवश्य पढ़ना चाहिए और देखना चाहिए कि जो ग्रन्थ हमारे समाजमें अधिकतासे प्रचलित हैं और धार्मिक भावोंकी जागृति करनेवाले बतलाये जाते हैं उनका साहित्य किस श्रेणीका है और उनसे लोगोंको कैसी शिक्षायें मिलती हैं। समालोचनाके प्रत्येक अंशसे हम सहमत नहीं हैं तो भी हम उसकी प्रशंसा किये बिना नहीं रह सकते—वह बहुत अच्छे ढंगसे लिखी गई है। ज़रूरत है कि इस प्रकारकी समालोचनायें और भी प्रकाशित की जायँ और उनके द्वारा निम्न साहित्यको नीचे गिराकर प्राचीन उत्कृष्ट साहित्यका गौरव और आदर बढ़ाया जावे।

---

२ रामायणके बन्दर कौन थे ?

बाल्मीकि–रामायणमें रामचन्द्रकी सेनाके हनुमान, जांबवन्त, सुग्रीव आदिको बन्दर, रीछ आदि बतलाया है। सनातनधर्मी भाइयोंका

यही विश्वास है कि हनुमान आदि मनुष्य नहीं थे; वे बन्दर रीछ आदि प्राणियोंमेंसे थे । किन्तु यह बात आजकलके विचारशील विद्वानोंको असंभव मालूम होती है । इस विषयमें वे तरह तरहके अनुमान करते हैं। कोई उन्हें अनार्य जातिके मनुष्य, कोई द्रविड़ जातीय मनुष्य और कोई वानरादिके समकक्षी मनुष्य कल्पित करते हैं। इस विषयमें मराठी 'विविधज्ञानविस्तार' में कई लेख निकल चुके हैं। सितम्बरके अंकमें एक महाशयने यह सिद्ध किया है कि वे लेमूरियन जातिके प्राणी थे । जहाँ पर इस समय हिन्दमहासागर है, वहाँ एक समय एक बड़ा भारी भूखण्ड था । वह सण्डा द्वीपसे एशियाके दक्षिण तटको घेरता हुआ आफ्रिकाके पूर्वतट तक विस्तृत था। इस प्राचीन विशाल खण्डको एक विद्वान्ने लेमूरिया नाम दिया है; क्योंकि उसमें बन्दर सरीखे प्राणी रहते थे। लेमूरिया एक प्रकारके मनुष्योंसे मिलते हुए बन्दर थे। इसका प्रतिवाद दिसम्बरके अंकमें श्रीयुक्त चिन्तामणि विनायक वैद्य एम. ए. एल एल. बी. नामक प्रसिद्ध विद्वान्ने किया है। आपने रामचन्द्रका समय ईस्वी सन्से लगभग चार हजार वर्ष पहले अनुमान किया है और इसमें मुख्य प्रमाण यह दिया है कि महाभारतके युद्धमें दुर्योधनकी ओरसे लड़नेवाला कोसलाधिपति बृहद्बल नामका राजा रामका वंशज था। पुराणोंमें और महाभारतमें इसका उल्लेख है । यह रामकी ३० वीं पीढ़ीमें था। एक पीढ़ीके यदि ३० वर्ष गिने जावें तो महाभारतसे लगभग ९०० या हजार वर्ष पहले रामचन्द्रका समय आता है। महाभारतका समय ई० सन् से ३१०१ वर्ष पहले

प्रायः सिद्ध हो चुका है और विश्वासके योग्य है। इस हिसाबसे ई० सन्के चार हज़ार वर्ष पहले रामचन्द्रकी वानर-सेना थी। परन्तु भूगर्भशास्त्रज्ञ विद्वानोंके मतसे उस समय हिन्दुस्तानकी और हिन्दमहासागरकी स्थिति जैसी इस समय है लगभग वैसी ही थी—महासागरके स्थानमें कोई बड़ा भारी भूखण्ड न था और न उस समय लेमूरियन जातिके बन्दरोंका अस्तित्व ही संभव है। अतएव रामायणमें जो वानरोंका वर्णन है वह बिलकुल काल्पनिक है। आगे चलकर वैद्य महाशयने उक्त वानरोंके विषयमें जो अनुमान किया है वह जैनरामायण या पद्मपुराणसे बिलकुल मिलता हुआ है। वे लिखते हैं कि "मैंने रामायणके विषयमें एक अँगरेज़ी ग्रन्थ लिखा है। उसमें मैंने बतलाया है कि इन हनुमानादिके निशानों पर—ध्वजाओं पर—वानरादिके चिन्ह होंगे और उन्हीं चिन्होंके कारण उन्हें वानरादि नाम मिले होंगे। एक जातिकी ध्वजा पर बन्दरका चित्र होगा, दूसरीकी ध्वजापर रीछका, तीसरी पर गीधका और इस कारण उन लोगोंको वानर, रीछ, गृध्र नामसे पुकारते होंगे। निशानों पर जानवरोंके चित्र बनवानेकी पद्धति आजकलके सुसभ्य राष्ट्रोंमें भी ज़ारी है। अँगरेज़ोंके निशान पर सिंह, रशियनोंके निशान पर रीछ, और जर्मनोंके निशान पर गरुड़ है!....इस तरह ध्वजचिन्होंके कारण जुदाजुदा जातिके लोगोंकी वानर रीछ आदि संज्ञा पड़ गई होगी और आगे रामायणके लिखनेवालोंको ये संज्ञायें वास्तविक मालूम हुई होंगी—वाल्मीकिजीने उन्हें साक्षात् वानरादि ही समझ लिया होगा। दक्षिणमें अब भी

बहुतसे वंश और देश जानवरोंके नामोंसे प्रसिद्ध हैं। देशस्थ ब्राह्मणोंके टट्टू, रेडे (पाड़ा या भैंसा) आदि उपनामों या अटकोंको तो सभी जानते हैं; परन्तु दक्षिणके इतिहासमें माहिषिक और मूषक लोगों तकका पता लगता है। वर्तमान महसूरराज्य माहिषोंका ही वंशज है और महिषपुरका अपभ्रंश होकर महसूर बन गया है।" जैनोंके यहाँ जो राम-रावणकी कथा है उसमें भी यही कहा है कि वानरवंशी वे कहलाते थे जिनकी ध्वजाओंमें तथा मुकुटोंमें वानरका चिन्ह था। वे श्रेष्ठ क्षत्रिय मनुष्य थे; जंगली लोग या बन्दर नहीं थे। जैनरामायणमें यह भी बतलाया है कि वानरवंशियोंके कुलमें वानरका चिन्ह क्यों पसन्द किया गया था। इसके विषयमें एक कथा भी लिखी है। जैनरामायणकी बतलाई हुई यह बात उस समय और भी विशेष महत्त्वकी और माननीय जान पड़ने लगती है जब कि हम उसकी प्राचीनताका विचार करते हैं। इस विषयके उपलब्ध संस्कृत ग्रन्थोंमें सबसे प्राचीन कथाग्रन्थ संस्कृत पद्मपुराण है जो कि रविषेणाचार्यका बनाया हुआ है और जो वीर निर्वाण संवत् १२०४ में अर्थात् आजसे लगभग सवा बारह सौ वर्ष पहले बना है। अभी-तक लोग इसे ही सबसे पहला रामकथाका जैनग्रन्थ समझते थे; परन्तु अभी हाल ही 'पउमचरिय' नामक प्राकृत ग्रन्थका पता लगा है जो कि उससे बहुत पहले वीर निर्वाण संवत् ५३० अर्थात् विक्रम संवत् ६० का बना हुआ है। अर्थात् आजसे लगभग दो हजार वर्ष पहले भी जैनसम्प्रदायके अनुयायियोंका यह विश्वास था कि वानरवंशी लोग बन्दर नहीं किन्तु मनुष्य थे—ध्वजाओंमें

वानरका चिन्ह रहनेके कारण वे वानरवंशी कहलाते थे। इसी बात-को माननीय वैद्यजीने कहा है। हमें विश्वास है कि वैद्यमहा-शयने जैनरामायणके इस भागका अवलोकन अवश्य किया होगा; क्योंकि आपका जैनोंमे अच्छा परिचय रहा है। यदि न किया हो तो हम आशा करते हैं कि अब अवश्य ही करेंगे और इस विषयको और भी अधिक स्पष्ट रूपमें विद्वानोंके समक्ष उपस्थित करेंगे।

---

३ सबसे प्राचीन जैन ग्रन्थ।

पुराणोंमें सबसे पुराना जैनपुराण श्रीरविषेणाचार्यका पद्म-पुराण समझा जाता है। यह वीर निर्वाण संवत् १२०४ का बना हुआ है। यथा:—

द्विशताभ्यधिकेन समा सहस्रे समतीतेर्धचतुर्थवर्षसंयुक्ते।
जिनभास्करवर्द्धमानसिद्धे चरितं पद्ममुनेरिदं निबद्धम्॥

अब तक इसके पहलेका बना हुआ कोई भी पुराण उपलब्ध नहीं था। हरिवंशपुराण, आदिपुराण आदि भी इसके पीछेके बने हुए हैं। पुष्पदन्त कविके प्राकृतपुराण तो आदिपुराणसे भी पीछेके हैं। जहाँ तक हम जानते हैं अभीतक श्वेताम्बर-सम्प्रदायका भी कोई पुराण ग्रन्थ इससे पहलेका प्राप्त नहीं हुआ है। परन्तु अभी एक नये ग्रन्थका पता लगा है जिसका नाम 'पउमचरिय' है और पाठक यह जानकर और भी प्रसन्न होंगे कि इस ग्रन्थको भावनगरकी जैनधर्मप्रसारक सभाने छपा कर प्रकाशित भी कर दिया है।

यह ग्रन्थ प्राकृत भाषामें है और इसमें पउमचरियं– (पद्म चरित) या रामचन्द्रजीका चरित वर्णित है। ग्रन्थ बड़ा है। ११८ उद्देश या अध्यायोंमें विभक्त है । पत्राकार ३२६ पृष्ठोंमें छपा है। कागज़ और छपाई बहुत अच्छी है। शुद्धताके विषयमें इतना ही कहना काफ़ी होगा कि इसका संशोधन जर्मनीके सुप्रसिद्ध विद्वान् डाक्टर हर्मन जैकोबीके हाथसे हुआ है। युद्ध शुरू हो जानेके कारण जैकोबी महाशयकी लिखी हुई भूमिका इसके साथ सम्मिलित नहीं हो सकी है, इस लिए इस ग्रन्थके सम्बन्धकी विशेष ऐतिहासिक और तात्त्विक बातें जाननेके एक अच्छे मार्गसे हम कुछ दूर जा पड़े हैं। तो भी आशा की जाती है कि जब तक जैकोबी महाशयकी भूमिका प्रकाशित नहीं होती है तब तक हमारे देशी विद्वान् ही इस ग्रन्थका अध्ययन मनन करके इसके विषयमें कुछ अधिक प्रकाश डालनेका प्रयत्न करेंगे।

इस ग्रन्थके रचयिताका नाम विमलसूरि या विमलाचार्य है। ग्रन्थके अन्तमें वे अपना परिचय इस प्रकार देते हैं:–

राहू नामायरिओ ससमयपरसमयगहियसब्भाओ।
विजओ य तस्स सीसो नाइलकुलवंसनंदियरो॥ ११७॥
सीसेण तस्स रइयं राहवचरियं तु सूरिविमलेणं।
सोऊणं पुव्वगए नारायणसीरिचरियाइं॥ ११८॥
जेहि सुयं ववगयमच्छरेहिं तब्भत्तिभावियमणेहिं।
ताणं विहेउ बोहिं विमलं चरियं सुपुरिसाणं॥ ११९॥

इइ नाइलवंसदिणयर राहूसूरिपसीसेण महप्पेण पुव्वहरेण विमलायरिएण विरइयं सम्मत्तं पउमचरियं॥

अर्थात्—अपने धर्म और दूसरे धर्मोंके विषयमें सद्भावको धारण करनेवाले एक 'राहु' नामके आचार्य थे। वे नागिलवंशके थे। उनके शिष्यका नाम विजय था। विजयके शिष्य विमलसूरिने यह राघवचरित (रामचन्द्रका चरित) अपने पहलेके नारायण-बलभद्रके चरितोंको श्रवण करके बनाया। जो लोग मत्सरको छोड़कर भक्तिभावसे सुनते हैं उन्हें सत्पुरुषोंके विमल चरित बोधिके अर्थात् दर्शन-ज्ञान-चरित्रके कारण होते हैं।

ग्रन्थकर्ता इसकी रचनाका मूल और रचना-समय इस प्रकार बतलाते हैं:—

एयं वीरजिणेण रामचरियं सिट्ठं महत्थं पुरा,
पच्छाखंडलभूइणा उ कहियं सीसाण धम्मासयं।
भूओ साहुपरंपराए सयलं लोये ठियं पायडं,
एत्ताहे विमलेण सुत्तसहियं गाहानिबद्धं कयं॥ १०२॥
पंचेव य वाससया दुसमाए तीसवरिससंजुत्ता।
वीरे सिद्धमुवगए तओ निबद्धं इमं चरियं॥ १०३॥

अर्थात्—इस तरह पहले भगवान् महावीरने रामचरित कहा था। उनके बाद इन्द्रभूति गणधरने अपने शिष्योंसे कहा था। फिर यह साधुओंकी परम्पराके द्वारा प्राकृतिक रूपमें इस लोकमें चला आ रहा था, सो अब विमलसूरिने इसे गाथाओंमें बनाया। यह सूत्रसहित है। अर्थात् इसका मूल कथाभाग परम्परागत ज्योंका त्यों है। यह चरित दुःषमकालमें उस समय बना जब महावीरभगवान्को मुक्त हुए ५३० वर्ष हुए थे।

इससे साफ़ साफ़ मालूम होता है कि यह आजसे १९११ वर्ष

पहले अर्थात् विक्रमसंवत् ६० का बना हुआ है और इस कारण यह बात भी कही जा सकती है कि अभी तक केवल पुराण ही नहीं और भी जितने दिगम्बर जैनग्रन्थ उपलब्ध हैं उन सबसे यह प्राचीन है । उमास्वामी, कुन्दकुन्दाचार्य आदिके विषयमें कहा जाता है कि वे विक्रमकी पहली शताब्दिमें हुए हैं; परन्तु इसके लिए अभी तक कोई अच्छा प्रमाण नहीं मिला है; बल्कि साधुपरम्पराका विचार करनेसे वे तीसरी चौथी शताब्दिके लगभगके सिद्ध होते हैं । ऐसी अवस्थामें इसी ग्रन्थको सबसे अधिक प्राचीनता प्राप्त होती है और इसके निर्माणका समय बिलकुल निश्चित है—अनुमानोंके आधार पर इसकी स्थिति नहीं है ।

दिगम्बरसम्प्रदायके ग्रन्थोंके अनुसार श्वेताम्बरसंघकी उत्पत्ति विक्रमकी मृत्युके १३६ वर्ष बाद हुई है और श्वेताम्बर ग्रन्थोंके अनुसार दिगम्बरोंकी उत्पत्ति भी लगभग इसी समयमें हुई है । अर्थात् विक्रमादित्यकी या शक विक्रमकी दूसरी शताब्दिमें जैनधर्ममें दिगम्बर और श्वेताम्बर दो भेद हो गये हैं । यदि यह सच है तो कहना होगा कि यह 'पउमचरिय' उस समयका बना हुआ है जब कि महावीर भगवान्का धर्म भेदोपभेदरहित था; उसमें दिगम्बर—श्वेताम्बर भेदोंका जन्म नहीं हुआ था । यदि इन्द्रनन्दिकृत श्रुतावतारमें बतलाई हुई मुनिपरम्परा ठीक है तो कहना होगा कि एकादशांगधारी पाँचवें आचार्य कंसाचार्यके समयमें यह ग्रन्थ रचा गया है ।

श्रीरविषेणाचार्यके पद्मपुराणको सामने रखकर हमने इस ग्रन्थके

कुछ अंश मिलाये तो मालूम हुआ कि संस्कृत पद्मपुराण इसको सामने रखकर इसकी छाया पर कुछ विस्तारके साथ बनाया गया है। बहुतसे पद और भाव बिल्कुल एकसे मिलते हैं। रचनाक्रम और कथानुसन्धान भी प्रायः एकसा है।

इस समय हम इस ग्रन्थका स्वाध्याय कर रहे हैं। आगे चलकर हम इसके विषयमें एक विस्तृत लेख लिखना चाहते हैं। उस समय हम इन दोनोंकी रचनाका अधिक स्पष्टताके साथ मिलान करेंगे और यह भी बतला सकेंगे कि इसमें कोई बात ऐसी है या नहीं जो दिगम्बर या श्वेताम्बर सम्प्रदायकी खास बात हो और जिससे कहा जा सके कि इसके कर्त्ता किस सम्प्रदायके थे। अभी तक हमने इसका जितना अंश देखा है उसमें कोई बात, ऐसी नहीं मिली। हम आशा करते हैं कि दिगम्बर और श्वेताम्बर दोनों सम्प्रदायके विद्वान् इस ग्रन्थका स्वाध्याय करेंगे और इसकी प्राचीनता साम्प्रदायिकता आदिके सम्बन्धमें अपने अपने विचार प्रकट करेंगे।

यद्यपि यह ग्रन्थ प्राकृतमें है और साथमें टीका या संस्कृतच्छाया-आदि साधन भी नहीं है, तो भी भाषा इतनी सरल और रचना इतनी कोमल तथा सुन्दर है कि साधारण संस्कृतके जाननेवाले भी परिश्रम करनेसे इसे लगा सकेंगे।

ग्रन्थका मूल्य ढाई रुपया है। मंत्री जैनधर्मप्रसारक सभा, भावनगरसे इसकी प्राप्ति हो सकती है।

---

४ अकालवार्द्धक्य और अल्पायु।

हमारे देशमें आजकल मनुष्योंकी आयु बहुत कम होने लगी है और बुढ़ापा तो यहाँ बहुत ही जल्दी आ जाता है। पचास पूरे होनेके पहले ही हमारे यहाँके स्त्रीपुरुष बूढ़े हो जाते हैं—उनमें काम करनेकी शक्ति नहीं रहती। इसके विरुद्ध विदेशोंमें, विशेषकर यूरोपमें, पचास वर्ष जवानीके मध्यकालमें समझे जाते हैं और अस्सी अस्सी नब्बे नब्बे वर्षकी उमर तक वहाँवाले अच्छी तरह काम-काज करते हैं। वास्तवमें देखा जाय तो बड़े बड़े महत्त्वके कार्य पचास वर्षके बाद ही किये जा सकते हैं; क्योंकि उस समय बुद्धि परिपक्व हो जाती है और सैकड़ों बातोंका अनुभव हो जाता है। शास्त्रमें लिखा है कि ' पंचाशोर्द्ध्वं वनं व्रजेत् ' परन्तु हमारे यहाँके महापुरुषोंकी पचासके बाद वन जानेकी शक्ति तो नहीं रहती है, वे स्वर्ग अवश्य चले जाते हैं! इससे देशकी जो क्षति होती है उस-का अन्दाज नहीं किया जा सकता। देशहितैषियोंको इस विषयमें विशेषताके साथ विचार करना चाहिए और अल्पायु और अकालमें बुढ़ापा आ जानेके कारणको खोजकर उनसे बचनेकी शिक्षाका प्रचार करना चाहिए। अगहनकी 'भारती' पत्रिकामें एक विद्वान् लेखकने इसके दो प्रधान कारण बतलाये हैं:—एक तो बाल्यविवाह और दूसरा सीमासे अधिक मानसिक परिश्रम। बाल्यविवाहके विषयमें वे कहते हैं कि कच्ची उम्रके मातापिताकी सन्तान कभी बलवान् और दीर्घायु नहीं हो सकती। यह कच्ची उम्रका ब्याह शिक्षितों और अशिक्षितों दोनोंके लिए एकसा हानिकर है। अशि-

क्षित तो बेचारे कुछ जानते नहीं; परन्तु शिक्षितोंकी पुत्रकन्याओंके ब्याहकी अवस्था जितनी चाहिए उतनी क्यों नहीं बढ़ रही है, इसका कारण नहीं मालूम होता। बाल्यविवाहकी हानियाँ सब ही जानते हैं और बाल्यविवाह न करनेवाले पर कोई दण्ड किया जाता हो अथवा और कोई बड़ी रुकावट हो सो भी नहीं है; तो भी लड़कियोंका विवाह ९-१० वर्षमें कर ही दिया जाता है। अनेक युवक विद्यार्थी-अवस्थामें विवाह करनेके लिए बिलकुल रजामंद नहीं होते, तो भी पितामाताके आग्रहके मारे उन्हें विवश हो जाना पड़ता है। यदि हम सब मिलकर यह निश्चय कर लें कि अपने भाई-बेटोंका ब्याह १९-२० वर्षके पहले और अपनी बहिन-बेटियोंका ब्याह १५-१६ वर्षके पहले न करेंगे तो हमें इसके लिए कोई पंचायती या बिरादरी कुछ कह नहीं सकती। इस अपराधमें कोई जातिसे अलग कर दिया गया हो ऐसा अभीतक कहीं भी नहीं देखा सुना। यदि थोड़ासा मानसिक बल हो--दिलकी मजबूती हो--तो कमसे कम शिक्षितोंमेंसे तो इस प्रथाका काला मुंह हो सकता है।

इसके बाद दूसरे कारणका विचार करते हुए लेखक महाशय कहते हैं कि मस्तकसे अधिक काम लेनेसे--सोच विचार अधिक करनेसे और उसके साथ ही शरीरसेवा पर ध्यान न देनेसे भी जल्दी बुढ़ापा आ जाता है और आयु घट जाती है। शरीरको बचाकर मानसिक कार्य करनेसे एक तो काम अधिक किया जाता है और दूसरे उम्र भी अच्छी मिलती है। इस विषयमें मेरे कुछ अनुभूत नियम हैं जिनसे मैंने बहुत लाभ उठाया है। १ सप्ताहमें कुछ

दिन मानसिक श्रम करनेके बाद सातवें दिन पूरा विश्राम करना चाहिए। एक दिन लिखना पढ़ना बन्द रखनेसे आगेके छह दिनोंमें उत्साहके साथ अधिक काम किया जाता है । २ शामको पाँच साढ़े पाँचके बाद आठ बजे तक किसी भी मानसिक श्रम करनेवाले पुरुषको घर नहीं रहना चाहिए । इस समय थोड़ेसे परिश्रमकी और शुद्ध वायु-सेवनकी बहुत बड़ी आवश्यकता है । ३ लम्बी छुट्टियोंमें आरोग्य-प्रद स्थानोंमें हवा बदलनेके लिए जाना चाहिए । यह बड़ा ही लाभकारी है । इससे मनकी थकावट मिट जाती है, मस्तक ठिकाने आ जाता है, शरीरका श्रम बढ़ जाता है, स्वास्थ्य सुधर जाता है और एक तरहकी नई शक्ति आ जाती है । ३ दूध, घी आदि पौष्टिक पदार्थोंका आहार करना चाहिए । दुग्ध जीवनदाता है । शुद्ध दूधका सेवन बहुत उपकारी है ।

आशा है कि शिक्षित भाई लेखककी बातों पर ध्यान देंगे और शरीररक्षाके विषयमें अधिक सावधान हो जायँगे ।

---

५ जैन-जनसंख्याके ह्रासका प्रश्न ।

दिसम्बरकी छुट्टियोंमें रायकोट नामक स्थानमें स्थानकवासी भाइयोंकी पंजाब प्रान्तिक कान्फरेन्सका जल्सा हुआ था । उसकी रिपोर्टसे मालूम हुआ कि स्थानकवासी जैन भाइयोंमें भी जैनोंकी जन-संख्या घटनेकी चर्चा होने लगी है और उसकी ओर पढ़े लिखे लोगोंका ध्यान विशेषरूपसे आकर्षित हुआ है । पटियालाके लाला रामलालजी ओवरसियरने इस विषयको उपस्थित करते हुए

कहा कि " हम लोगोंमें लड़कियोंकी संख्या कम है और फिर बहुतसे धनी मानी लोग वो दो तीन तीन या इससे ज्यादा दफे शादी करते हैं। इन दो कारणोंसे निर्धन कुटुम्बके लड़कोंको कन्यायें नहीं मिलती है और उन्हें कुँवारे रहकर ही अपना जीवन व्यतीत करना पड़ता है। अत एव विधवाविवाहकी छूट देकर यह नियम बना देना चाहिए कि ३१ वर्षकी उम्रके बाद यदि किसीको शादी करना हो तो वह विधवाके साथ करे—कन्याके साथ नहीं। इसके सिवाय अनाथाश्रम खोलकर उसमें अन्य लोगोंकी निराधार बालिकाओंको दाखिल करके पालने और पढ़ाने लिखानेका प्रबन्ध करना चाहिए और जब वे बालिकायें विवाहयोग्य हो जावें तब उनकी शादियाँ निर्धन जैन भाइयोंके साथ करना चाहिए।" लाला भोजराजजीने इस प्रस्तावका अनुमोदन किया और कहा कि " रोड़ा जैनी दूसरोंकी कन्यायें लेते तो हैं परन्तु देते नहीं हैं। उन्हें देना भी चाहिए। पटियालामें १००० जैनी हैं जिनमें ३०० स्त्री और ७०० पुरुष हैं। इस तरह पुरुषोंकी संख्या ज्यादा होनेसे उनकी शादीके लिए एक अनाथालयकी अवश्य ही बहुत जरूरत है।" लाला प्रभुदयालजीने कहा कि " कुरुक्षेत्रमें कुछ समय पहले जैनोंके १०० घर थे; परन्तु अब सिर्फ तीन घर रह गये हैं—सब कुँवारे ही मर गये ! इस तरह जैनोंकी आबादी घटती जा रही है।" साथमें उन्होंने यह भी कहा कि " हिन्दुस्तानमें ईसाइयोंकी संख्यामें ९० लाखकी वृद्धि हुई है जब कि हिन्दुओंमें एक करोड़का घाटा पड़ा है। इसलिए हमें जागृत होना

चाहिए और ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य हिन्दुओंकी लड़कियोंके साथ शादी करना चाहिए। नहीं तो जैनोंका अस्तित्व रहना कठिन है।" यद्यपि इस चर्चासे सभामें कुछ क्षोभसा उत्पन्न हो गया और प्रस्ताव भी पास न हुए—सभापतिने यह कहकर टाल दिया कि अभी जैन कौम इन प्रस्तावोंके लिए तैयार नहीं है; तथापि इससे इस बातका पता अवश्य लगता है कि इस संख्याकी कमीके प्रश्नने नवयुवकोंको उद्विग्न कर दिया है और अब वे इसे किसी तरह हल कर डालना चाहते हैं। हमारी समझमें अब जैनोंकी प्रत्येक जातिके मुखियोंको शीघ्र चेत जाना चाहिए और यदि उन्हें विधवाविवाह जैसे प्रस्ताव अभीष्ट नहीं हैं तो जैनसमाजको इस क्षयरोगसे बचानेके लिए दूसरे उपायोंका अवलम्बन करना चाहिए। १ जैनोंकी सम्पूर्ण जातियोंमें परस्पर विवाहसम्बन्ध जारी कर दिया जाय। २ गोत्र या साँखें टालनेके नियम ढीले कर दिये जायँ। ३ पतित स्त्री-पुरुष प्रायश्चित्त देकर फिर जातिमें मिला लिये जायँ। ४ विवाहोंका खर्च घटाया जाय और खर्चके नियम इतने सुगम कर दिये जायँ कि गरीब से गरीब वर कन्याका विवाह बिना कठिनाईके हो जाय। ५ स्त्रीके समान पुरुषको भी पुनर्विवाह करनेकी मनाई कर दी जाय। कमसे कम यह नियम तो जरूर कर दिया जाय कि जिनके पहले विवाहसे कुछ सन्तान हो वह पुनर्विवाह न कर सके अथवा ३५ या ४० वर्षकी उम्र हो जाने पर कोई भी पुरुष दूसरा विवाह न कर सके। ६ प्रत्येक पंचायत इस बातका ध्यान रक्खे कि हमारी जातिमें कोई युवक कुँवारा तो नहीं है। यदि हो तो उसके विवाहका

प्रबन्ध करा दिया जाय और यदि उसको जैनजातिमें लड़की न मिलती हो तो जैनेतर ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य वर्णोंकी भी लड़की लेनेमें कोई रुकावट न डाली जाय । ७ विवाहकी उम्र बढ़ा दी जाय । २०–१६ के पहले किसी वर कन्याका विवाह न हो सके। इससे अल्पायु और दुर्बल सन्तान कम होने लगेगी जो कि जातिके क्षयका एक कारण है । ८ गर्भरक्षा, सन्तानपालनपोषण, आरोग्यताके नियम आदि बातोंकी शिक्षाका खास तौरसे प्रचार किया जाय जिससे अकालमरण कम हो जावें और पुष्ट सन्तानोंकी वृद्धि हो । ९ भाग्यवादकी जगह पुरुषार्थवादकी शिक्षाका विस्तार किया जाय जिससे लोग प्लेग हैजा आदि बीमारियोंके समय अपनी रक्षा करनेमें विशेष सावधान हो जायँ । १० शारीरिक श्रमका महत्त्व बढ़ाया जाय जिससे लोग परिश्रम करनेको बेइज्जती-का काम न समझें और फ़िजूलखर्ची तथा विलाससामग्रियोंकी वृद्धि रोकी जाय । इत्यादि उपायोंसे हमारा क्षय होना बन्द हो सकता है और दूसरोंके समान हमारी संख्या भी बढ़ सकती है ।

---

६ डाक्टर टी. के. लद्दूका व्याख्यान ।

गत दिसम्बरकी छुट्टियोंमें स्याद्वादमहाविद्यालय काशीका वार्षिको-त्सव हो गया । अबकी बार क्वीन्सकालेज बनारसके संस्कृत प्रोफेसर डा० तुकाराम कृष्ण लद्दू बी. ए. (केन्टब), पी. एच. डी. ने सभापतिका आसन स्वीकार किया था । आपने इस अवसर पर संस्कृत और अँगरेज़ीमें दो सुन्दर व्याख्यान दिये । यह एक बहुत

अच्छी बात है कि हम अपनी संस्थाओंमें अजैनविद्वानोंको बुलाने लगे हैं और अपने धर्मसाहित्यादिके विषयमें उनके विचार सुनने लगे हैं। एक दृष्टिसे यह पद्धति बहुत लाभदायक है। इससे जैन-धर्मके विषयमें सर्व साधारण जनोंमें जो भ्रमपूर्ण विचार फैल रहे हैं, वे दूर होते हैं, जैनधर्मके प्रति उनकी सहानुभूति बढ़ती है और उनके साथ हमारा सौहार्द बढ़ता है। इसके सिवाय जैनेतर विद्वानोंमें जैनसाहित्यके अध्ययन मनन करनेका उत्साह भी उत्पन्न होता है। इस पद्धतिसे हम एक लाभ और भी उठा सकते हैं; परन्तु अभी तक हम उसके लिए तैयार नहीं जान पड़ते हैं और इसी लिए हम अपने उत्सवोंमें जिन विद्वानोंको अपना सभापति बनाते हैं उनसे केवल अपने धर्मसाहित्यकी और अपनी प्रशंसा ही सुनना चाहते हैं और सभ्यताके ख़यालसे या लिहाज़से वे भी हमारी इच्छाके अनुसार ही अपना व्याख्यान सुना जाते हैं। यदि हम कुछ सहनशील हो जावें और ये प्रतिष्ठित विद्वान् अपने व्याख्यानोंमें हमारी कुछ त्रुटियोंकी भी आलोचना किया करें, समयके परिवर्तनसे हमारे धार्मिक विश्वासोंमें जो उलट–पलट हो गया है उसकी चर्चा किया करें और हमारे आलस्य तथा प्रमादके विषयमें दो चार चुटकियाँ ले दिया करें तो उनका हम पर बहुत प्रभाव पड़ सकता है और हम अपनी त्रुटियोंको पूर्ण करनेके लिए सचेत हो सकते हैं। आशा है कि हमारे अगुए इस ओर ध्यान देंगे और इस बातकी कोशिश न करके कि सभापति हमारी इच्छानुसार ही कहें उनसे निष्पक्षभावसे यथार्थ आलोचना करनेकी प्रेरणा किया

करेंगे। हमारी संस्थाओंमें अब तक अनेक अजैन विद्वानोंके व्याख्यान हो चुके हैं और इसमें सन्देह नहीं कि उनमेंसे कई एक बहुत ही महत्त्वके हुए हैं; परन्तु अभी तक उनमेंसे किसीमें भी हमें ऐसे वाक्य सुननेको नहीं मिले जिनसे हम अपनी त्रुटियोंसे सावधान हो जायँ। कई व्याख्यानोंमें तो हमको अपनी निरर्थक और अयथार्थ प्रशंसा सुननी पड़ी है जो दूसरों पर हमारा झूठा प्रभाव भले ही डाले, पर हमारे लिए हानिहार ही होगी। हमे अभीसे अपनी प्रशंसा सुननेका व्यसन न डाल लेना चाहिए। गतवर्ष डा० सतीशचन्द्र विद्याभूषण महाशयके व्याख्यानके शेषांशमें जो जैनसंस्थाओंकी और उनके संचालकोंकी प्रशंसा की गई थी, उसे पाठकोंने पढ़ा ही होगा। लद्दू महाशयने भी अपनी व्याख्यानमें यद्यपि उतनी प्रशंसा नहीं की है तो भी की अवश्य है और इसी लिए इस सम्बन्धमें हमें ये पंक्तियाँ लिखनी पड़ी हैं।

प्रो० लद्दू महाशयके दोनों व्याख्यानोंका अभिप्राय लगभग एक ही है; तो भी संस्कृतकी अपेक्षा अँगरेज़ी व्याख्यानमें उन्होंने बहुत सी जानने योग्य बातें कही हैं। जैनधर्म बौद्धधर्मसे प्राचीन है इसका उल्लेख करते हुए उन्होंने कहा कि "ई० सन्से कई शताब्दि पहलेके बौद्धग्रन्थोंमें जैनसम्प्रदायका उल्लेख मिलता है; परन्तु उनमें ऐसा कोई कथन कहीं पर नहीं है कि जिससे जैनमतको नवीन मत या हालका मत कहा जाय। यह भी कहीं स्पष्टरूपसे नहीं लिखा कि जैनमत कबसे है। जैनसूत्रोंसे भी—जो कि जैकोबीके विचारानुसार उत्तरीय बौद्धोंके प्राचीनसे भी प्राचीन

ग्रन्थोंसे कम प्राचीन नहीं हैं—पता लगता है कि महावीर स्वामीके कुछ शिष्य बुद्धदेवके पास उनके मतका खण्डन करनेके लिए गये थे। बौद्धग्रन्थोंमें भी ऐसी घटनाओंका उल्लेख है। इससे मालूम होता है कि जैनधर्म बौद्धधर्मसे प्राचीन है। " आगे चलकर उन्होंने दोनों मतोंकी भिन्नता सिद्ध करते हुए कहा कि " जैनमतके कुछ सिद्धान्त बौद्धधर्मसे बिल्कुल विपरीत हैं। स्वयं बुद्धदेवका निर्वाणके विषयमें क्या विश्वास था यह हमें मालूम नहीं। कारण, एक शिष्यके प्रश्न करने पर उन्होंने उसे यों ही टाल दिया था। परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि बौद्ध ब्राह्मणोंके समान किसी एक सर्वव्यापी आत्माको नहीं मानते। और तो क्या उनके सिद्धान्तमें स्वयं आत्माके अस्तित्वकी भी आवश्यकता नहीं है। जैनी आत्माको सर्वव्यापी तो नहीं मानते, परन्तु मानते अवश्य हैं। बौद्ध मतमें जो पाँच स्कन्ध तथा उनके भेद प्रभेद माने गये हैं जैनमत उन्हें नहीं मानता। जैनधर्मके माननेवाले केवल जानवरों और पेड़ोंमें ही नहीं किन्तु जल और खानिसे ताजी निकली हुई धातुओंमें भी जीव मानते है। इस बातमें ये हिन्दुओंसे भी बढ़ गये हैं और इसीसे इनके अहिंसाक्षेत्रका विस्तार बहुत बढ़ गया है। जैनोंमें हिन्दुओंके समान आत्मीक उन्नतिके भिन्न भिन्न आश्रम हैं; परन्तु बौद्धमतमें ऐसे कोई आश्रम नहीं है॥ " कुणकके द्वारा श्रेणिकके मारे जानेके विषयमें ल्दूमहाशयने एक नई कल्पना की है। कहा है कि " वैशालीका राजा चेटक महावीर भगवानका मामा था। चेटककी कन्या चेलना मगधनरेश बिम्बिसार या श्रेणिकके साथ ब्याही गई थी। श्रेणिक शेष-

नाग (शिशुनाग) कुलका राजा था। उसने ई०सन्से ५३० वर्ष पूर्वसे ५०२ वर्ष पूर्वतक राज्य किया। बिम्बिसारका पुत्र अजातशत्रु या कुणिक था। यह कथा प्रसिद्ध है कि बिम्बिसारने अपने पुत्रको राज्यका कार्य सौंपकर एकान्तवास धारण कर लिया था; तथापि उसने पिताको मारकर राज्य पद प्राप्त किया। पीछे उसे पिताके वधका बड़ा पश्चात्ताप हुआ और वह आत्महितके उपदेशके लिए बुद्धदेवके पास गया और उन्होंने उसे अपने धर्मका उपासक बना लिया।.... बिम्बिसार और अजातशत्रुका बौद्ध और जैन दोनों ही धर्मके ग्रन्थोंमें उल्लेख है। जैनशास्त्रोंमें लिखा है और यह सच भी मालूम होता है कि महावीरके प्रतिष्ठित वैभवशाली सम्बन्धी जैनधर्मसे प्रेम और सहानुभूति रखते थे। अतः यह संभव है कि चेटक और बिम्बिसार (श्रेणिक) जैन थे और अजातशत्रु (कुणिक) भी कमसे कम अपने जीवनके पूर्व भागमें जैन था। अपने पिछले जीवनमें जनकवधके शोकसे दुखी होकर बुद्धदेवके उपदेशसे उसने बौद्धधर्म धारण कर लिया था। अब विचारनेकी बात यह है कि जब बिम्बिसारने अपने पुत्रके लिए राज्यकार्य छोड़ दिया था तब अजातशत्रु उसे क्यों मारता? उसको अपने पितासे राज्यके सम्बन्धमें डरनेका कोई कारण ही न था। वास्तवमें अजातशत्रुने इस कारण बौद्धमतको अंगीकार किया कि उसने वैशालीके राज्यको अपने अधिकारमें कर लिया था और वह महावीर जिनके मामाका राज्य था। वैशालीका राज्य लेलेने-पर—जब महावीरका निर्वाण हो चुका था—अजातशत्रु जैनी न रह सका और उसने अपना मत बदल लिया। वैशाली राज्यसे जैनधर्मको

बहुत सहायता मिलती होगी; परन्तु अजातशत्रुका उस पर अधिकार हो जानेसे वह सहायता बन्द हो गई होगी। इस कारण यह संभव है कि जैनोंने उसके विषयमें पिताके वधकी बात गढ़ ली हो कि जिससे लोगोंको यह मालूम हो कि इस घोर पापके कारण जैनोंने उससे सहायता लेना छोड़ दी है और बौद्धमतके वृद्धि-रूप प्रभावको रोकनेके लिए प्रसिद्ध कर दिया हो कि बौद्धमतमें पितृवध तक किया जाता है। संभव है कि मेरे इस अनुमानसे प्राचीन इतिहासकी एक ग्रन्थि सुलझ हो जावे"। हमारी समझमें जैनोंपर जो यह अपराध लगाया जाता है कि उन्होंने धर्मद्वेषके कारण अजातशत्रुको पिताका वध करनेवाला बतलाया है, सर्वथा असत्य है। क्योंकि जैनकाथाकरोंने तो अजातशत्रुको उलटा पिता-वधके अपराधसे बचानेकी चेष्टा की है। उन्होंने लिखा है कि अजातशत्रु श्रेणिकको बन्धमुक्त करनेके लिए जा रहा था कि श्रेणिकने भयभीत होकर स्वयं अपने प्राण दे दिये; पुत्रने उन्हें नहीं मारा! हाँ, इस बातका उत्तर जैनकथासे नहीं मिलता कि श्रेणिक किस कारण कैद किये गये थे। आगे चलकर श्रवण-बेलगुलके उस शिलालेखकी चर्चा की गई है जिसमें प्रभाचन्द्र और भद्रबाहुका उल्लेख है। लद्दूमहाशयने डा० विंसेंट स्मिथके इतिहासके आधारसे कई युक्तियाँ देकर यह सिद्ध किया है कि प्रभा-चन्द्र ही चन्द्रगुप्त मौर्य थे; उनका यह जिनदीक्षा लेनेके बादका नाम था। उनके कथनका सार यह है कि शिलालेखमें यद्यपि गुरु-परम्परामें पहले एक भद्रबाहुका उल्लेख करके आगे भद्रबाहुका नाम

फिरसे लिया गया है; परन्तु इससे उन्हें दूसरे भद्रबाहु न समझना चाहिए—वे अन्तिम श्रुतकेवली भद्रबाहु ही थे। शिलालेख दूसरे भद्रबाहुसे भी ९०० वर्ष बादका है, इस लिए उसमें आचार्य परम्परा बतलानेके लिए भद्रबाहु श्रुतकेवलीके पीछेके आचार्योंका नाम आना आश्चर्यजनक नहीं है। दूसरे भद्रबाहुके समयमें चन्द्रगुप्त मौर्यका होना असंभव है; पर पहले भद्रबाहु (अन्तिम श्रुतकेवली) से उनके समयका मिलान खा सकता है। यद्यपि लेखमें प्रभाचन्द्र नाम है, चन्द्रगुप्त नहीं है; परन्तु जिस पर्वत पर यह लेख है उसका नाम चन्द्रगिरि है और 'चन्द्रगुप्त-बस्ती' नामका एक प्राचीन मन्दिर और मठ भी है। इसके सिवा सिरंगापट्टममें सातवीं और नवीं शताब्दिके कई लेख हैं जिनमें भद्रबाहु और चन्द्रगुप्त मुनीन्द्रका उल्लेख है। इन सब बातोंसे सिद्ध होता है कि चन्द्रगुप्त और प्रभाचन्द्र एक ही थे। अच्छा होता यदि लट्टूमहाशय इस विवादग्रस्त प्रश्नको हल करनेके लिए अपनी ओरसे भी कुछ और प्रबल प्रमाण देते और चन्द्रगुप्त मौर्यका जैन होना अच्छी तरह सिद्ध कर देते। इसके आगे व्याख्याताने जैनधर्मके तत्त्वोंकी चर्चा की है; परन्तु उसमें कोई विशेषता नहीं जान पड़ती। उनका इस विषयका अध्ययन बहुत ही ऊपराऊपरी जान पड़ता है। व्याख्यानके प्रारंभमें इस बातको उन्होंने स्वीकार भी किया है। पर वे आशा दिलाते हैं कि आगे मैं इस विषयकी ओर विशेष ध्यान दूँगा और इस लिए जैनसमाजकी ओरसे वे धन्यवादके पात्र हैं।

७. सुमेरचन्द्र जैनबोर्डिंग हाउस, प्रयाग।

यह बोर्डिंग हाउस लगभग तीन वर्षसे स्थापित है। स्व० बाबू सुमरेचन्दजीकी धर्मपत्नीने इसे २९ हजारकी रकम देकर स्थापित किया है। इलाहाबाद यू. पी. में शिक्षाका प्रधान केन्द्रस्थल है। वहाँ दूरदूरके विद्यार्थी उच्चश्रेणीकी शिक्षा प्राप्त करनेके लिए आया करते हैं। यदि उनके एकत्र रहनेकी व्यवस्था हो तो बहुत लाभ हो सकते हैं। उनके लिए उच्चश्रेणीकी धार्मिक शिक्षाका पूरा पूरा प्रबन्ध न भी हो सके तो भी अपने साधर्मियों और सजातियोंमें मिल जुलकर रहनेसे उनमें जातिप्रेम, धर्मकी सेवाके विचार अनेक तरहसे पुष्ट होते हैं और यह साधारण लाभ नहीं है। यही सोचकर यह बोर्डिंग खोला गया है। इससमय १९ विद्यार्थी काले-जोंकी उच्च श्रेणियोंमें पढ़नेवाले हैं। आगे इससे भी अधिक होनेकी संभावना है। इन विद्यार्थियोंने एक सभा खोल रक्खी है जिसकी कारवाई देखकर जान पड़ता है कि विद्यार्थी उत्साही हैं और वे अपने आगामी जीवनमें जैनसमाजकी अच्छी सेवा करेंगे। उनमें धार्मिक और जातीय भाव बढ़ रहे हैं। इस संस्थाकी जो दूसरे वर्षकी रिपोर्ट हमारे पास आई है उससे मालूम होता है कि संस्थामें खर्चकी बहुत संकीर्णता है। पिछले वर्षमें लगभग १२००) का खर्च हुआ है जो कि अमदनीसे सौ सवासौ रुपया कम है। आगे इससे भी कम आमदनी हो जायगी; क्यों कि ध्रुवफंडकी रकममेंसे ९ हजारकी एक इमारत खरीद ली गई है।

जैनसमाजको इस संस्थाकी ओर ध्यान देना चाहिए और इसे एक विशालरूपमें स्थायी कर देना चाहिए जिससे इसमें कमसे

कम पचास विद्यार्थी निरन्तर निवास करते रहें और दशबीस निर्धन विद्यार्थीको छात्रवृत्तियाँ भी मिलती रहें। सबसे पहले हम श्रीयुत बाबू सुमेरचन्दजीकी धर्मपत्नीका ही ध्यान इस ओर अकर्षित करते हैं। हम समझते हैं कि इन दो तीन वर्षोंमें उन्हें अपनी इस संस्थाके फ़ायदे मालूम होगये होंगे, इस लिए अब इसे स्थायी बना देनेमें उन्हें और विलम्ब न करना चाहिए। अन्य धर्मात्मा सज्जनोंको भी चन्देसे, मासिकवृत्तियोंसे, पुस्तकोंसे, तथा पढ़ने लिखनेके और और साधनोंसे संस्थाकी सहायता करते रहना चाहिए।

८. श्रीमती गुलाबबाईकी राखी।

एक राजपूतरमणीने संकटके समय एक अपरिचित राजपूत युवाके पास राखी भेजी थी और उसका फल यह हुआ था कि उस युवाने प्राणोंकी बाजी लगाकर उस रमणीकी रक्षा की थी। श्रीयुत बाबू अर्जुनलालजी सेठी बी. ए. की सहधर्मिणी श्रीमती गुलाबबाईने भी इस घोर संकटके समयमें अपने जैनभाइयोंके पास राखी भेजी है और आशा की है कि वे उनकी सहायता करेंगे; उनके प्राणपतिको विपत्तिसे मुक्त करनेके लिए कोई प्रयत्न बाकी न रक्खेंगे। राखीके साथ जो पत्र है उसे पढ़कर रुलाई आती है और हमें विश्वास नहीं कि उसे सुनकर किसी सहृदयकी आँखोंमें दोचार आँसू आये बिना रह जावेंगे। अब देखना यह है कि अपनेको राजपूतोंकी सन्तान बतलानेवाली दयापरायण जैनजाति इस राखीकी पत कहाँतक रखती है और अपने समाजके एक सेवकके छोटे छोटे बच्चों और स्त्रीके प्रति उसकी सहानुभूतिका स्रोत कुछ काम कर सकता है या नहीं।

९. सहायता कीजिए ।

जैनमित्रके सम्पादक श्रीयुत ब्र० शीतलप्रसादजीने सेठीजीके कुटुम्बकी सहायताके लिए और दूसरे प्रयत्न करनेके लिए एक फण्ड खोला है। हम अपने पाठकोंसे निवेदन करते हैं कि वे अपनी शक्तिके अनुसार कुछ न कुछ सहायता इस फण्डमें अवश्य दें और अपने मित्रबन्धुओंसे भी दिलवावें । रुपया जैनमित्र आफिस, गिरगाँव—बम्बईके पतेसे या काशीके पतेसे भेजना चाहिए ।

जयपुरराज्य, अँगरेज़ सरकार और सेठीजीका मामला ।

पाचोरा (खानदेश) में सेठ बच्छराज रूपचन्दजी एक उदार धनिक हैं। आप स्थानकवासी जैन हैं । आपने पाचोरामें जैन और अजैन सबके पढ़नेके लिए एक स्कूल बनवाया है। ता० ७ दिसम्बरको पूर्वखानदेशके कलेक्टर ओटो रोथफील्ड साहबके हाथसे यह स्कूल खुलवाया गया। उस समय आसपासके बहुतसे जैन अजैन सज्जन आमंत्रित होकर आये थे। साहब बहादुरने द्वारोद्घाटन करते समय सेठ बच्छराजजीको उनकी इस उचित दानशीलताके उपल-

क्ष्यमें धन्यवाद दिया और जैन जातिके सम्बन्धमें बहुत ही अच्छे शब्द कहे। उन्होंने कहा कि "जैन जाति दयाके विषयमें विशेष रूपसे प्रसिद्ध है और दयाके कार्योंमें वह हज़ारों रुपया ख़र्च करती है। जैनोंकी मुखकी रचनासे और उनके नामोंसे जान पड़ता है कि वे पहले क्षत्रिय थे। जैन बहुत ही शान्तिप्रिय हैं।"

जैनोंके लिए यह बहुत ही सन्तोषका विषय है कि उनके विषयमें एक प्रतिष्ठित यूरोपियन अफसरके मुँहसे इतने अच्छे शब्द निकले। परन्तु इन शब्दोंके जाननेकी जैनोंको उतनी ज़रूरत नहीं है जितनी कि देशी राज्योंको है। कुछ समय पहले जामनगर राज्यने अपनी प्रजाके एक धनवान् किन्तु निर्दोष जैनको क़ैद करके उसकी सारी सम्पत्ति ज़ब्त करली थी और उसे बहुत ही कष्ट दिया था। अन्तमें सार्वजनिक पुकार सुनकर ब्रिटिश सरकारने उस पर दया की और उसे मुक्त कराया। इसी तरहकी एक विपत्ति जयपुर राज्यमें भी एक जैनभाई पर आपड़ी है। स्वार्थत्यागी और सुप्रसिद्ध विद्वान् पं० अर्जुनलालजी सेठी बी. ए. को जयपुर राज्यने भी बिना किसी अपराधके हवालातमें रख छोड़ा है और जैसा कि सुना गया है राज्यने पाँच वर्ष तक इसी तरह क़ैदमें सड़ाते रहनेका भी निश्चय कर लिया है।

मि० ओटो रोथफ़ील्ड जैसे ब्रिटिश अफसरोंका यह कहना बिलकुल सत्य है कि "जैन बहुत ही शान्तिप्रिय हैं।" लार्ड कर्जनने भी यही कहा था और मिसिस एनीबिसेंटने अभी कुछ ही दिन पहले अपने 'कोमन विल' पत्रमें जैन जातिकी राजनिष्ठा और

शान्तिप्रियताका उल्लेख करके अर्जुनलालजी जैसे सुशिक्षित जैन राजद्रोह करेंगे यह माननेसे साफ़ इंकार किया है। परन्तु जैनोंको जो यह ब्रिटिश सर्टिफिकेट मिला है, सो शहद्से लपटा हुआ है। सच बात तो यह है कि जैनजाति बहुत ही निर्बल निरीह और नाचीज़ है। वह मि० रोथफील्डके बतलाये हुए असली क्षत्रियत्वको खो बैठी है और बहुत ही पोच कमज़ोर बन गई है। यदि ऐसा न होता तो ऐसी शान्त निरपराध और साहूकार प्रजा पर इस प्रकारका अत्याचार या जुल्म कभी न हो सकता। सब जगह दुबले ही सताये जाते हैं। नरम पिलपिली चीज़में सभी कोई उंगली घूँसना चाहता है। ईद बकरीकी ही होती है, बाघकी ईद कहीं भी सुनाई नहीं दी। जैन यदि मि० रोथफील्डके कथनानुसार वास्तवमें क्षत्रिय होते तो अपनी सारी जातिको और धर्मको कलंक लगानेवाले इस जुल्मको वे कभी सहन न करते और इन दश महिनोंमें कोई न कोई उचित उपचार किये बिना न रहते।

अभी अभी कुछ सज्जनोंने श्रीयुत अर्जुनलालजीके छुटकारेके लिए जयपुर राज्यको प्रार्थनापत्र भेजना शुरू किये हैं; परन्तु इस तरहकी भिक्षाओंसे हो क्या सकता है? जो राज्य निरपराधी नागरिकोंको किसी प्रकारका दोष सिद्ध हुए बिना ही जेलमें ठूँस दिया करते हैं; जिनमें बस, इतना ही प्रजाप्रेम है—इतना ही स्वदेश प्रेम है—अपने राज्यके सारे भारतवर्षमें आदृत और पूजित होनेवाले हीराओंके प्रति इसी प्रकारका अभिमान है, वे राज्य क्या इस योग्य हो सकते हैं कि उनसे प्रार्थना की जाय या उनके आगे

हाहा खाई जाय ? प्रार्थनाकी यथार्थता और प्रार्थियोंके हृदयकी पीड़ा समझनेकी योग्यता रखनेवाले मस्तक और हृदयोंकी क्या उनमें संभावना हो सकती है ? मि० रोथफील्ड, आप जैनोंके नामों परसे भले ही उन्हें क्षत्रिय ठहराइए; परन्तु उनके मुंहपरसे तो उन्हें—मैं स्वयं जैन हूँ तो भी—क्षत्रिय नहीं मान सकता। जिनके मुँह पर क्षत्रियके लक्षण हों उनके हृदयमें क्या क्षात्रियोंके शौर्य और स्वदेशप्रेमका अभाव हो सकता है ? अफसोस कि अँगरेज़ तो हमें क्षत्रिय बनाना चाहते हैं; परन्तु हम स्वयं 'दास' ही बने रहनेमें ख़ुश हैं—हम अपने नामोंके साथ 'दास' पदको जोड़ने भी लगे हैं। रोथफील्ड साहबके इन क्षत्रियोंके हाथमें प्रार्थना करने या हाहा खानेकी तरवार और ख़ुशामदकी ढाल, बस ये दो ही तो हथियार रह गये हैं। इन क्षत्रियोंकी यदि जयपुर राज्य कुछ सुनाई न करेगा तो फिर बहुत हुआ तो ये ब्रिटिश सरकारके पास पुकार मचानेका—विनती करनेका हथियार उठानेकी बहादुरी दिखलावेंगे। भला, यह हमारे कितने दुर्भाग्यकी बात है कि हमें देशी राजाओंके दुःखोंके मारे विदेशी राजाकी शरण लेनी पड़ती है। संभव है कि राजनीतिकी कोई कलम ऐसी निकल आवे जिससे ब्रिटिशसरकार भी एक देशीराज्यके इस काममें हस्तक्षेप करनेसे इंकार कर देवे। ऐसी दशामें भी हमें आशा नहीं है कि इस विषयमें जैनजातिके अगुए शान्ति, सत्य, राजनिष्ठा और धर्मानुकूल रीतिसे भी कोई उपाय करनेके लिए एकट्ठा होंगे। मि० गांधीने जो निष्क्रिय प्रतिरोध या शान्तविरोध (Passine Resistence) का शस्त्र दक्षिण आफ्रिकामें उठाया था वह अथवा उससे मिलता हुआ

दूसरा कोई हथियार भी ये रोथफील्डके क्षत्रिय नहीं उठा सकते। तब क्या करना चाहिए? क्या विनतियाँ या प्रार्थनायें न की जावें? नहीं, बिलकुल नहीं। क्या हम देखते नहीं हैं कि इस तरहके सैकड़ों भिखारी रोटीके टुकड़ोंके लिए प्रार्थना करते करते थक कर मर चुके हैं? शासनके मदके साथ दयाका रहना बहुत ही कठिन है। और भीख माँगी ही क्यों जावे और किससे माँगी जावे? क्या देशके एक देशी राजाके विरुद्ध विदेशी राजासे? क्या यह माँगी हुई भीख मिल जावेगी? मिलना असंभव नहीं है; तथापि मेरी समझमें ऐसी भिक्षा माँगनेकी अपेक्षा एक स्वदेशी नागरिककी चिता जो एक स्वदेशी राजाने चेताई है और जिसकी धधकती हुई ज्वालाको उसके स्वधर्मी भाई तमाशगीर बनकर मजेसे देख रहे हैं, उस चितामें चुपचाप जल जाना ही एक क्षत्रिय जैन स्वयंसेवकके लिए अधिक शोभास्पद होगा। याद रखना चाहिए कि इस चिताकी भस्म पर भविष्यके देशभक्त युवक स्मरणस्तंभ खड़ा करेंगे और उसमें निम्नलिखित लेख लिखेंगे:—

जयपुरनिवासी, क्षत्रियवंशी

जैनस्वयंसेवक श्रीयुत अर्जुनलालजी सेठीने

अपने उच्चतम धर्म और प्रियतम देशकी गौरवरक्षार्थ

दयाकी भिक्षा नहीं माँगकर, (अपूर्व स्वार्थत्यागकर)

कृतघ्न और कर्तव्यहीन जैनोंको रुलाकर

जागृत करनेके लिए

और

स्वदेशाभिमान, स्वप्रजापालन और राजकर्तव्यका

अपने राजाको ज्ञान करानेके लिए

इस स्थल पर

साहसपूर्वक आत्मोत्सर्ग किया है,

इस अन्तिम प्रार्थनाके साथ कि—

मेरी भस्ममेंसे

देश और धर्मका गौरव बढ़ानेवाले अनेक सच्चे

क्षत्रिय जैनपुत्र उत्पन्न हों !

*** इतना लिखे जानेके बाद मालूम हुआ कि जयपुर राज्यने ता० ९ दिसम्बरको यह आज्ञा निकाली है कि " अर्जुनलालजी सेठीका राजनीतिक षड्यंत्रोंमे निकट सम्बन्ध है और उसका यह आचरण राज्यनियमके विरुद्ध है। ऐसे पुरुषको स्वतंत्र रखना भयंकर है, इस लिए पाँच वर्ष तक या जबतक दूसरा हुक्म न निकले तबतक वह हिरासतमें रक्खा जाय।" पाठकोंको मालूम होगा कि आरा महन्तकेस और दिल्ली षड्यंत्र केसमें पं० अर्जुनलालजी सेठी बी. ए. सन्देहके कारण पकड़े गये थे; परन्तु नियमानुकूल जाँच पड़ताल करनेसे उन पर कोई अपराध सिद्ध नहीं हुआ। ऐसे भयंकर अपराधका ज़रा भी सुबूत मिलता तो ब्रिटिश सरकार उन्हें कठिनसे कठिन दण्ड दिये बिना नहीं रहती और ऐसा होना ही चाहिए; परन्तु जब ब्रिटिश सरकार पूरी पूरी छानबीन कर

चुकनेके अन्तमें उन्हें दोषी या दण्डपात्र कहनेसे इंकार करती है तब मालूम नहीं होता कि जयपुर राज्यने आठ महीनेसे बिना अपराध प्रमाणित किये किस आधारसे हिरासतमें डाल रक्खा है। क्या ब्रिटिश राज्यके अधिकारी और सरकारी वकील अपराध समझनेकी या दण्ड देनेकी शक्ति नहीं रखते हैं जिससे जयपुर राज्यको ब्रिटिश राज्यकी रक्षाके लिए यह कष्ट उठानेकी आवश्यकता आ पड़ी है? क्या जयपुर स्टेट यह सिद्ध करना चाहता है कि ब्रिटिश राज्य एक देशी राज्यकी मददके बिना अपनी रक्षा करनेमें समर्थ नहीं है? और यदि अर्जुनलालजी सचमुच ही अपराधी हैं तो फिर उनके ऊपर खुल्लमखुल्ला मुकद्दमा चलाकर सजा देनेमें क्यों आनाकानी की जाती है? क्या राजद्रोहीको सिर्फ नजरकैदमें रखनेकी ही सजा काफी है? सिर्फ एक सन्देह या बहमसे किसी गरीब प्रजाको बिना अपराध सिद्ध किये महीनों नजरकैद रखना और फिर पांच वर्ष तक कैदमें रखनेकी आज्ञा दे डालना, इसके लिए क्या किसी अँगरेजी या देशी कानूनका आधार है? यह भी मालूम हुआ कि अभी कुछ ही दिन पहले देवदर्शन बन्द कर देनेके कारण सेठीजीने ८—१० दिन तक अन्नपानीका स्पर्श नहीं किया था। इससे जयपुर राज्य और वायसराय साहबकी सेवामें जैनोंकी ओरसे क्षमायाचनाके लिए बीसों तार भेजे गये थे। परन्तु मेरी समझमें राजद्रोहका सन्देह होने पर—भले ही वह झूठा ही क्यों न हो—दयाकी याचना कदापि ठीक नहीं हो सकती। दया नहीं, हम केवल न्याय चाहते हैं और हमारी यह मँगनी भिक्षा नहीं

किन्तु फ़र्याद है। यदि कोई जैन किसी और कारणसे फाँसी पर लटकाया दिया जाता तो हम लोग उसके लिए इस तरह की मँगनी न करते; परन्तु जब एक जैन–सुशिक्षित जैन ग्रेज्युएट पर राजद्रोहका सन्देह प्रकट किया जा रहा है और इससे सारी जैन-जाति पर–जिसमें आज तक कभी किसी प्रकारके राजद्रोहकी घटना नहीं हुई है, जिसको बड़े बड़े ब्रिटिश अधिकारी शान्तसे शान्त राजभक्त प्रजा बतलाते हैं और जिस जातिमें सारी दुनियाकी सारी जातियोंकी अपेक्षा छोटेसे छोटे अपराध भी बहुत ही कम होते हैं–एक भयंकर कलंक लगाया जा रहा है, तब यह पुकार उठानी पड़ी है और कहना पड़ा है कि या तो अर्जुनलालजी सेठी पर नियमानुसार राजद्रोहका अपराध प्रमाणित करके उन्हें कठिन दण्ड दो या दयाके लिए नहीं किन्तु देशके गौरवके लिए, न्यायके लिए, प्रजापालनके ऊँचे धर्मकी रक्षाके लिए उन्हें निर्दोष प्रकट करके शीघ्र छोड़ दो।

राजद्रोह? जयपुरमें राजद्रोह!? बिलकुल झूठ! सर्वथा असंभव! ब्रिटिश शासनके असाधारण राजनिष्ठ जयपुर राज्यमें राजद्रोहियोंके रहने या जन्म लेनेकी बात कहना एक तरहसे जयपुर राज्यका अपमान या 'लाइबल' करना है। यूरोपमें लड़ाईका प्रारंभ होते ही जो मारवाड़ी ढूँढारी जैन अपने अपने गाँवोंको नौ दो ग्यारह हो गये थे, उस डरपोक जातिके जैनबालकोंमें–और सो भी उसमें, जिसकी अँगरेजी विद्याके जीतोड़ परिश्रमसे शारीरिक सम्पत्ति बिलकुल लुट गई है–खून और राजद्रोह करनेकी शक्तिकी क्या कभी

संभावना हो सकती है? यह हवाई ख़याल—यह बहमका भूत जैन-जातिकी चिरकालकी कीर्तिको मैली कर देगा और इस बिलकुल असत्य तथा हानिकारक भ्रमको स्थान देगा कि जयपुर राज्यमें भी ब्रिटिश-शासनके विरुद्ध विचारोंको पोषण मिलता होगा। इसी लिए हम चाहते हैं कि इस प्रश्न पर गंभीरतासे विचार किया जाय और उस मार्गको अंगीकार करनेकी दूरंदेशी दिखलाई जाय जिससे कि राज्य और जैनप्रजा दोनोंका विशेष हित हो।

हिरासतमें देवदर्शनकी रुकावट! और सो भी हिन्दूराज्यमें! हिन्दमाता, अब तुझे भविष्यके सुखकी झूटी आशायें देकर अपने सन्तानोंको व्यर्थ ही भुलाये रखनेकी चेष्टा न करनी चाहिए। जिस दुर्भाग्यसे आर्यभूमिके पैरोंमें मुग़ल आदि राजाओंकी बेड़ी पड़ी थी उसकी अपेक्षा यह दुर्भाग्य बहुत ही दुःखदायक है कि आर्यधर्मरक्षक राजाओंकी धर्मभावना पर जड़वादियोंका इतना गहरा प्रभाव पड़ गया! इस दुःखको सहनेकी अपेक्षा तो यही अच्छा है कि हिन्दका बिलकुल ही अन्त हो जाय। मेरा विश्वास है कि धर्म-भावनाकी सबसे अधिक आवश्यकता अपराधियोंके लिए—जेलके कैदियोंके लिए है और सभ्य देशोंकी जेलोंमें तो धर्मोपदेशका खास प्रबन्ध रहता है—कैदियोंको धर्मग्रन्थ भी बाँचनेके लिए दिये जाते हैं कि जिससे उनमें नीति और धर्मके भाव उत्पन्न होकर बढ़ते रहें। जो हिन्दूराज्य स्वयं मूर्तिपूजक है और जो सैकड़ों देवमन्दिरोंके खर्चके लिए राजभंडारसे हज़ारों रुपया प्रतिवर्ष देता है, वह मालूम नहीं किस धर्मदृष्टिसे जिनदेवके दर्शन करनेकी अपने एक कैदीको

मनाई करता है। क्या जयपुर राज्यको यह भय है कि छोटेसे छोटे जीवकी रक्षाका उपदेश देनेवाले और कानोंमें कीले ठोकनेवाले शत्रुको तथा अत्यन्त दुःखप्रद डंक मारनेवाले साँपको भी क्षमा कर देनेवाले जिनदेवकी मूर्तिके दर्शनसे एक कैदीको खून या राजद्रोह करनेकी उत्तेजना मिलेगी? यह बात निःसन्देह होकर कही जा सकती है कि किसी भी दयासागर और शान्तदेवकी मूर्ति मनुष्यको कोई बुरा काम करनेमें प्रवृत्त या उत्तेजित नहीं कर सकती। तब क्या एक हिन्दूराज्यके लिए हिन्दुओंके धर्मव्रत—देवदर्शनके नियमको जबर्दस्ती बन्द कराना उचित हो सकता है? किसी मनुष्यने चाहे जितना बड़ा अपराध किया हो; परन्तु उसे उसके धर्मसे भ्रष्ट करनेकी किसी भी सरकारको सत्ता नहीं है। अपराधीको शारीरिक कष्ट पहुँचानेके लिए कड़ेसे कड़े नियम बनाये गये हैं; परन्तु उसके धर्ममें अन्तराय डालनेकी सत्ता आज तक किसी परमेश्वरने, देवने या प्रजाने किसी भी राजाको नहीं दी है।

अलाहाबादके 'लीडर' में सेठीजीके सम्बन्धमें 'जस्टिस' नामधारी महाशयने जो लेख छपवाया है वह प्रायः सभी प्रसिद्ध पत्रोंमें प्रकाशित हो चुका है। उसमें ब्रिटिश सरकारसे सेठीजीके विषयमें बीसों प्रश्न किये गये हैं जिन सबका सारांश यह है कि किसी प्रकारका अपराध सिद्ध न होने पर जयपुर राज्यके द्वारा उनको व्यर्थ कष्ट क्यों दिलाया जा रहा है?

जस्टिसके प्रश्नोंसे अदूरदर्शी लोग इस तरहका अनुमान करने लगते हैं कि सेठीजीको कैद रखनेके लिए ब्रिटिश सरकारने ही शायद कुछ

युक्ति की होगी; परन्तु राजभक्त भारतवासियोंको अपने मस्तकमें इस तरहके अनुमानको क्षण भरके लिए भी न टिकने देना चाहिए। जो अँगरेज़ी सरकार बेल्जियम सरीखे ग़ैर देशकी रक्षाके लिए अपने लाखों मनुष्योंको कटा डालनेकी उदारता और न्याय-प्रियता प्रकट करती है वह अपनी निरीह प्रजाके एक मनुष्यको अपराधकी जाँच किये बिना ही हिरासतमें रक्खेगी, रखवावेगी या कोई चाल चलेगी, इस बात पर ज़रा भी विश्वास नहीं किया जा सकता। यदि थोड़ी देरके लिए यह बात मान भी ली जाय, तो भी जयपुर राज्य इस मामलेमें निर्दोष सिद्ध नहीं हो सकता। जयपुर राज्यने अपने हृदयसे विरुद्ध—किसीके कहने मात्रसे एक अपनी ही निर्दोष प्रजाको बन्धनमें डाल रक्खा है, इससे क्या इस इतने बड़े पहली श्रेणीके देशी राज्यके चरित्रबलकी कमीका प्रमाण नहीं मिलता है? और देवदर्शनकी मनाई भी क्या अँगरेज़ अफ-सरोंकी आज्ञासे हुई होगी? क्या इस तरहकी ज़रा ज़रासी बातोंके हुक्म भी उसी तरफ़से आते होंगे? इससे साफ़ समझमें आता है कि इस बेक़ानूनी दयारहित मामलेका सारा उत्तरदायित्व जयपुर-राज्यके ही सिर पर है। बेचारे देशी राज्य इतना भी नहीं जानते हैं कि राजभक्तिका इस तरहका अमर्यादित स्वाँग बनानेकी तैयारीमें हम अपने राज्यमें राजद्रोहका अस्तित्व सिद्ध कर डालनेकी बड़ी भारी भूल कर रहे हैं और साथ ही अपनी प्रजाके हृदयमें अरुचि उत्पन्न कराके अपना ही अहित कर रहे हैं। चाहे जो हो, पर समझदार भारतवासियोंको तो भारतके एक देशी

राजाके विरुद्ध, विदेशी सरकारसे उचित सहायता माँगनेकी भी कोशिश न करना चाहिए । जब बाढ़ ही खेतको खाने लगी तब न्यायकी प्रार्थना करनेके लिए बाहर किसके पास दौड़ा जाय ! तब और क्या उपाय किया जाय ? कुछ नहीं, सहना—सहना और स्वदेशी राजाओंकी इस प्रकारकी बुद्धिके लिए आँसू बहाना, बस यही एक अच्छा मार्ग है । संभव है कि इन स्वदेशाभिमानी आँसुओंके प्रवाहसे देशी राजाओंके हृदय धुलकर निर्मल बन जावें और विदेशी सरकारका भी इस मामलेमे भारतवासियोंकी राजभक्तिके विषयमें विशेष ऊँचा खयाल हो जावे।

माननीय वायसराय साहबके पास सैकड़ों अर्जियाँ कभीकी पहुँच चुकी हैं; तो भी अब तक उनका कोई फल नहीं हुआ है । कानपुरके मसजिदसम्बन्धी दंगेमें हमारे इस प्रजाप्रिय अफसरने स्वयं बीचमें पड़कर सैकड़ों मुसलमानोंको छोड़ दिया था । यह सच है कि जैनजाति एक रोवनी, साहसहीन और निरीह जाति है, इस लिए इससे किसी प्रकारका भय नहीं है, तथापि यह भी एक भारतवासी प्रजा है, केवल इसी नातेसे इसकी प्रार्थनाओं पर ध्यान देनेमें किसी तरहकी ढील न होना चाहिए। ऐसी शान्त और राजभक्त जाति पर राजद्रोहका कलंक लग जाना जिस तरह जैन जातिके लिए बुरा है उसी तरह प्रजाप्रिय सरकारके लिए भी अहितकारक है । यह एक सामान्य नियम है कि चोरी नहीं करनेवालेको यदि लोग चोर समझकर चोर कहने लगें, तो वह कुछ दिनोंमें अपना ' अचौर्य ' का अभिमान भूलकर चोरी करनेमें प्रवृत्त हो जायगा । जिस तरह वह चोरी नहीं

करनेवाला ज़बर्दस्ती चोर बनाया जाता है उसी तरह एक राजभक्त शान्त जाति पर राजद्रोहका झूठा दोष मढ़ दिया जायगा तो इस जातिमें भी यह छूतकी बीमारी फैल जानेका बड़ा भारी भय है; क्योंकि यह एक स्वाभाविक परिणाम है। वर्तमान युद्धको देखते हुए विचारशील सरकारको चाहिए कि वह बहमों और शंकाओं पर रची जानेवाली भयंकर इमारतोंको इशारा मिलते ही—पता पाते ही गिरा दे और हर तरहसे प्रजाके सम्पूर्ण अंगोंको अपने पूर्ण विश्वास और प्यारमें रखनेका यत्न करे। जैनजाति प्रार्थना करे या न करे, जब सार्वजनिक पत्रोंने इस विषयमें आवाज़ उठाई है तब उसी आवाज़ परसे ही प्रजाप्रिय वायसरायको इस मामलेमें आगे बढ़कर प्रजाके असन्तोषको शान्त कर देना चाहिए। जहाँ तक हम जानते हैं इस तरहके मामलोंमें माननीय वायसरायका दयाभाव, अनुभव और राजनीतिपाटव बहुत ही बढ़ा चढ़ा है।

बम्बई,

ता. २६-१-१५] वाडीलाल मोतीलाल शाह।

लुकमानका कौल।

(कुत्ता घृणित क्यों समझा जाता है ?)

१—किसीने यह लुक़मानसे जाके पूछा।
ज़रा इसका मतलब तो समझाइएगा ॥
२—ज़मानेमें कुत्तेको सब जानते हैं।
'वफ़ादार' भी उसको सब मानते हैं ॥

३—यह करता है जाँ अपने मालिक पै क़ुरबाँ ।
खिलौना है बच्चोंका घरका निगहबाँ ॥
४—भरा है वह खूने-मुहब्बत रगोंमें ।
सगोंमें न देखा जो देखा सगोंमें ॥
५—जहाँमें है मशहूर इसकी भलाई ।
मगर नाममें है क्या इसके बुराई ?
६—किसी आदमीको कहें हम जो कुत्ता ।
तो मुँह पर वहीं दे पलट कर तमाचा ॥
७—पड़े मार खाकर भी वह दुम दबाना ।
कि दुशवार होजाय पीछा छुड़ाना ॥
८—कहा उससे 'लुक़मान' ने बात यह है ।
खुली बात है कुछ मुइँम्मा नहीं है ॥
९—यह माना, है बेशक वफ़ादार कुत्ता ।
बड़ा जाँनिसार और ग़मख्वार कुत्ता ॥
१०—मगर किससे है उसकी यह खैरख्वाही ।
यह टुकड़ों पै है सबके घरका सिपाही ॥
११—फ़क़त आदमी पर है सब जाँनिसारी ।
मगर क़ौमकी क़ौम दुश्मन है सारी ॥
१२—यह रखता है दिलमें मुहब्बत पराई ।
खटकते हैं इसकी निगाहोंमें भाई ॥

---

१ प्राण । २ बलि । ३ रखवाला । ४ कुत्तोंमें । ५ जहानमें—दुनियामें । ६ कठिन । ७ गूढ़बात । ८ प्राणन्योछावर करनेवाली । ९ क्षमावान् ।

१३—नज़र आए उसको अगर ग़ैर कुत्ता ।
तो फिर देखिये उसका त्यौरी बदलना ॥
१४—बुरा क्यों न मानेंगे अहले-हमैय्यत[1] ।
कि ग़ैरोंसे उलफ़त[2] सगोंसे अदावत ॥
१५—न जिसने कभी क़ौमको क़ौम जाना ।
कहे क्यों न 'मरदूद' उसको ज़माना ॥
(आर्य-गजटसे)

दान और शीलका रहस्य ।

दान ।

मनुष्यको पैदा होते ही सहायता—दया—दानकी आवश्यकता होती है । उसे प्रकृति प्रकाश और हवासे सहायता देती है, माता दूधका दान देती है, पिता वस्त्रादिकी आवश्यकता पूरी करके दया दिखाता है और कुटुम्बीजन बोलना चलना सिखाते हैं । सहायता-दया—दान विना आदमी कदापि जीवित नहीं रह सकता । जिन जीवनोपयोगी पदार्थोंको हम दूसरोंसे लेकर जीवित रहते हैं, वे पदार्थ दूसरोंको न देकर जीवित रहना क्या मनुष्यत्व कहा जा सकता है ? जो मनुष्य दूसरोंकी सहायताके विना क्षणभर जीवित नहीं

---

१ स्वात्माभिमानी । २ प्रेम ।

रह सकता वह यदि दूसरोंके प्रति उदारता न दिखाकर अपनी इंद्रियोंकी तृप्तिमें ही मस्त रहे तो क्या उसका यह कार्य असभ्य नहीं होगा? क्या यह कम पशुपन है? मनुष्यताका सबसे प्रथम यदि कोई लक्षण हो सकता है, धर्मका सर्वोत्कृष्ट मूल सिद्धान्त यदि कोई माना जा सकता है, तो वह 'दान' या आचरणमें लाई गई 'दया' अथवा व्यवहारमें लाई गई 'सहृदयता' ही है। यह बात डंकेकी चोट कही जा सकती है कि जहाँ ऐसी सहृदयता नहीं, जहाँ ऐसी आर्द्रता नहीं, जहाँ दान नहीं, जहाँ हृदयका औदार्य नहीं, वहाँ धर्मका अंश भी नहीं,—मनुष्यत्वका नाम मात्र भी नहीं। यदि कोई व्यक्ति किसी भी धर्मकी कठिनसे कठिन क्रियाओंको चौबीसों घंटे सौ वर्ष पर्यंत करता रहा हो; परन्तु सहाय-दया-दानके तत्त्वोंसे विमुख रहा हो तो उसकी मनुष्य या महात्माके नामसे पहचाने जानेवाली आकृतिको हम सिवाय पशुके और कोई नाम नहीं दे सकते। क्योंकि जहाँ नींव ही नहीं है, वहाँ मकानकी क्या चर्चा? जहाँ केवल स्वार्थहीकी संकुचित सीमा लोहेकी साँकलोंसे दृढ़ताके साथ रक्षित हो, वहाँ अमर्यादित देवका निवास किस प्रकार हो सकता है? जहाँ निरंतर पाशव वृत्तियोंका स्मरण किया जाता है, वहाँ देवकी आकृति कैसे प्रकट हो सकती है? गरज यह है कि जहाँ आर्द्रता—दया—सहानुभूति—सहायता करनेकी उमँग—दान देनेका उल्लास—नहीं, वहाँ धर्म या मनुष्यत्वका होना सर्वथा असम्भव है। जो दान या दया, इज्जतके लिए, बड़प्पनके लिए, बदलेके लिए या स्पर्द्धासे की जाती है, उसे आत्मिक या वास्तविक धर्ममें कोई

स्थान नहीं मिल सकता । अर्थात् न वह सच्चा दान है और न सच्ची दया है। धर्ममें—आत्मामें—मनुष्यत्वमें केवल तुम्हारे ही आशयकी तुम्हारे—परिणामोंकी क़ीमत है; बाह्यरूप, दिखावा या कृत्योंकी नहीं । हृदयको ही मनुष्य कह सकते हैं, शरीरको नहीं । शरीर तो केवल हृदयकी आज्ञाओंका पालन करनेवाला यंत्र है । अतः मनुष्यके कृत्योंकी परीक्षा उसके हृदयगत भावोंके या परिणामोंके आधारसे ही होती है और हृदय ही शुद्धाशयपूर्वक किये हुए शुभकर्मोंकी कसरतसे धीरे धीरे अधिकाधिक विकसित होता हुआ अन्तमें अमर्यादित बन जाता है तथा आत्माको देवगति या सिद्धगति प्राप्त करा देता है । यदि किसी सभामें एक मनुष्यको बड़ा बनाकर उसको खूब चढ़ाया जाय—तारीफ़ें की जायँ और वह दशलाख रुपये किसी कार्यमें दे दे, तो इससे यह न समझना चाहिए कि उसने दया की है, दान किया है या आर्द्रता दिखाई है । इससे उसका हृदय विकसित नहीं होगा; उसका आत्मा प्रफुल्लित नहीं होगा । यद्यपि यह नहीं कहा जा सकता है कि उसका किया हुआ दान निरुपयोगी है; क्योंकि जिन लोगोंका वह किसी न किसी समयमें ऋणी बना था, उनका उसने ऋण चुकाया है, और उन लोगोंने भी उससे लाभ उठाया है; परन्तु उसको सिवाय प्रतिष्ठित बननेके—प्रशंसा प्राप्त करनेके—और कुछ लाभ नहीं हुआ; दैवी लाभसे वह वँचित ही रहा । जिस मनुष्यका हृदय ही आर्द्र है, जिसमें दया-दान-सहायताके अँकुर मौजूद हैं, वह जहाँ कहीं आर्थिक शारीरिक या ज्ञानसंबंधी सहायताकी आव-

श्यकता देखता है, वहीं यथाशक्ति सहायता करता है; परन्तु वह केवल हृदयकी उमँगसे ही करता है। यह सहायता उसने गुप्त रीतिसे की हो, चाहे प्रकटरूपसे (उस समय जैसा मौक़ा हो); किन्तु उसका हृदय उससे उल्लसित होता है, विकसित होता है, और एक अपूर्व आनन्दका अनुभव करता है। इस तरह दानगुण यह दशलक्षण धर्मका, आत्माकी उपासनाका, ईश्वरकी भक्तिका प्रथम मंत्र है—प्रथम सोपान अथवा सीढ़ी है—मूल सिद्धान्त है। द्रव्यत्यागी योगी द्रव्य नहीं रखते, केवल इतने ही कारणसे वे इस दानगुणसे विमुख नहीं रह सकते। यह पहले ही कहा जा चुका है कि केवल द्रव्यदान ही दान नहीं है—धनी ही दान कर सकता हो, ऐसा नहीं है। हृदयकी आर्द्रता और आन्तरिक सहानुभूति ही दानकी जननी है; इसलिए दयामूर्ति संत तो गृहस्थोंकी अपेक्षा भी अनन्तगुणा दान कर सकते हैं—अनन्तगुणा उपकार कर सकते हैं। जीवनको सह्य बनानेवाले, आश्वासन दिलानेवाले, मनको उत्साहित करनेवाले, शान्तिको देनेवाले उनके वचन और मुखमुद्रा लाखों करोड़ोंके दान से भी विशेष क़ीमती हैं। ज्ञानके साधन पूरे करनेवाली किसी न किसी प्रकारकी शक्तिके होने पर भी, जो साधु या त्यागी ब्रह्मचारी इस विषयमें उदसीनता या लापरवाही बताते हैं और अपनी कीर्ति, पूजा या ख्यातिके लिए अपने भक्तोंसे ख़र्च—परिश्रम या टाटबाट करवाते हैं और इसको धर्मप्रभावनाका नाम देते हैं, उनमें धर्मका पहला और मूलतत्त्व दान (दया) बिलकुल नहीं है। उनसे हमलोग

हानिके सिवा किसी प्रकारके लाभकी ज़रा भी आशा नहीं कर सकते ।

शील ।

जहाँ दान नहीं वहाँ शील या चारित्र कदापि नहीं ठहर सकता। हृदयकी विशालताके बिना क्षमाबुद्धि, सहनशीलता, इन्द्रियनिग्रह और वृत्तिसंक्षेपका होना सर्वथा असंभव है । वीर भगवान्ने दानके पश्चात् शीलका उपदेश दिया है; परन्तु यह स्मरण रखना चाहिए कि केवल ब्रह्मचर्यपालनको ही शील नहीं कहते हैं; यह चारित्र (Character) के अर्थमें भी आता है । [illegible] गुणका स्पष्ट ज्ञान होनेके लिए, बारह व्रतों [illegible] मैंने इन व्रतोंका स्वरूप इस तरह समझा है:—

(१) ऐसी सावधानीसे—यत्नाचारसे (Guardedy–thoughtfully) कार्य करो, वचन कहो और विचार करो कि जिससे किसी जीवको कष्ट न पहुँचे। ऐसी कोशिश करो, जिससे कमसे कम जीवोंको कमसे कम कष्ट पहुँचे । (अहिंसा)

(२) जिस बातको तुम जिस रूपमें जानते हो—मानते हो, उसको उस ही रूपमें प्रकट करो । लाभ या डरसे उसमें किसी प्रकारकी तबदीली न करो । लोकभय, नैतिक निर्बलता और लोकेषणाको कुएमें फेंक दो । इसी तरह हँसी दिल्लगी करना, पर निन्दा करना, फ़िज़ूल गप्पें हाँकना आदि हानिकारक या लाभहीन—निरर्थक प्रवृत्तिमें वचनबलका भी दुरुपयोग मत करो। (सत्य)

(३) जिस चीज़ पर, जिस मनुष्य पर, जिस हक़ पर या जिस कीर्ति पर तुम्हारा वास्तविक अधिकार न हो, उस पर अधिकार करनेकी कोशिश कभी मत करो—दूसरेके हक़में दख़ल मत दो। (अचौर्य)

(४) तुम्हें जिस वीर्य या पराक्रमकी प्राप्ति हुई है, वह तुम्हारी और दूसरोंकी उन्नति करनेके लिए सबसे प्रधान और उत्तम साधन है। उसको पाशविक प्रवृत्तियोंके संतुष्ट करनेमें मत खोओ। उच्च आनन्दकी पहचान करना सीखो। यदि बन सके तो अखण्ड ब्रह्मचारी रहो, नहीं तो ऐसी स्त्री खोजकर अपनी सहचारिणी बनाओ जो तुम्हारे विचारोंमें वाध[illegible] द्रव्यदा और उसहीसे संतुष्ट रहो। अगर सहचारिणी बननेके यो[illegible] न[illegible] न मिले, या मिलने पर वह तुमको प्राप्त न हो सके, तो अविवाहित रहनेका ही प्रयास करो। विवाहित स्थिति चारों तरफ़ उड़ती हुई मनोवृत्तियोंको रोकनेके लिए—संकुचित या मर्यादित करनेके लिए है। वह यदि दोनोंके या एकके असंतोषका कारण हो जाय तो उलटी हानिकारक होगी। अतः अपनी शक्ति, अपने विचार, अपनी स्थिति, अपने साधन और पात्रीकी योग्यता इन सबका विचार करके ही ब्याह करो; नहीं तो कुँवारे रहो। यह माना जाता है कि ब्याह करना ही मनुष्यका मुख्य नियम है और कुँवारा रहना अपवाद है; परन्तु तुम्हें इसके बदले कुँवारा रहकर ब्रह्मचर्य पालना या सारी अथवा मुख्य मुख्य बातोंकी अनुकूलता होने पर ब्याह करना, इसे ही मुख्य नियम बना लेना चाहिए। विवाहित जीवनको विषयवासनाके

लिए, अमर्यादित, यथेच्छ, स्वतंत्र मानना सर्वथा भूल है । वासनाओंको कम करना और आत्मिक एकता करना सीखो । अश्लील शब्दोंसे, अश्लील दृश्योंसे और अश्लील कल्पनाओंसे सदैव दूर रहो । तुम किसीके सगाई ब्याह मत करो । क्योंकि तुम्हें इसका किसीने अधिकार नहीं दे रक्खा है । विवाहके आशयको नहीं समझनेवाले और सहचारीपनके कर्तव्यको नहीं पहचाननेवाले पात्रोंको जो मनुष्य एक दूसरेकी बलात् प्राप्त हुई दासता या गुलामीमें पटकता है, वह चौथे व्रतका अतिक्रम करता है, दयाका खून करता है, चोरी करता है । (ब्रह्मचर्य)

(९) परिग्रह अथवा मालिकीकी इच्छाको कम करो । मैं सबको भोगूँ, मैं करोड़प[illegible] [illegible]लोंका मालिक बनूँ, इस तरहके मैं-मैं-मय, स्वार्थमय, संकीर्ण विचारों[illegible] जितना बने उतना कम करो । इस आज्ञाका यह उद्देश नहीं है; कि तुम नँगे ही फिरो, घरबार रहित बँगबा बन जाओ, भूखे मरो, कुटुंबका पालन पोषण न करो, उसे यों ही मरने दो, किन्तु यह मतलब है कि लोभप्रकृति, मोहप्रकृति, ममत्वभाव और जड़ पदार्थोंकी प्राप्तिमें ही आनन्द मानना, इन बातोंका परित्याग करो और सचाईसे, बुद्धिमानीसे, जी जानसे व्यवस्थापूर्वक किये हुए उद्यमसे जो धन तुम्हें प्राप्त हो, उसे अपनी और अपने आश्रितोंकी आवश्यकता पूरी करनेमें खर्च करो । इसके सिवाय जो द्रव्य बचे उसे उस पर ममत्व न रखते हुए औरोंकी आवश्यकतायें पूरी करनेमें बड़े आनंदसे व्यय करो । परिग्रह पर जितना कम ममत्व रक्खोगे उतनी ही तुम्हें विशेष शांति मिलेगी । (अपरिग्रह)

(६) निरर्थक, उपयोगरहित, भ्रमण भी जितना बन सके उतना कम करो। (दिग्व्रत)

(७) उपभोग और परिभोगकी लालसाको मर्यादित करो। अपनी आदतोंको सादी, आत्मसंयमी, नियमित और मिताहारी बनाओ। तुम्हारी आवश्यकतायें जितनी कम होंगी उतनी ही तुम्हारी चिन्तायें, उपाधियाँ और लालच भी कम होंगे और अधिक महत्त्वकी बातोंकी ओर जी लगानेके लिए भी विशेष समय मिलेगा। देखादेखीसे, झूठे खानदानी खयालसे, हम बड़े और अच्छे दिखेंगे इस तरहकी मूर्खतायुक्त लोलुपतासे, मिथ्या आडम्बरकी इच्छासे और गुणदोष [illegible] बुद्धिके अभावसे गैरजरूरी आवश्यकतायें उत्पन्न होती हैं, और वे शारीरिक निर्बलता, मानसिक अधमता और बुद्धिहीनताको जन्म देती हैं। अतः उपभोग परिभोगके पदार्थ आवश्यकतानुसार—वे ही जो उपयोगके सिद्धान्तको उत्तर दे सकें—रक्खो। (भोगोपभोगपरिमाण)

(८) व्यर्थ कार्योंमें अपने मन, वचन और कायकी प्रवृत्ति न करो। लड़ाई झगड़ा, निंदा, दुर्ध्यान, चिन्ता, कुतर्क, खेद और भयमें शरीरसंपत्ति, धनसम्पत्ति, समयसम्पत्ति तथा संकल्पसम्पत्तिको नष्ट मत करो। आर्त्तध्यान अथवा चिंता करना और रौद्रध्यान अथवा किसी पर क्रोधमय विचार करना, ये दोनों बुरे और निन्दनीय कर्म हैं; आनन्दमय और वीरत्वमय आत्मप्रभुका द्रोह करनेवाले हैं। इससे मनुष्यत्व क्षीण होता है। (अनर्थदण्डविरति)

(९) प्रतिदिन नियमित समय पर ही, बने उतने समयतक,

समतोलवृत्ति—साम्यभाव रखनेका अभ्यास करो—मुहाविरा डालो। (सामायिक)

(१०) अपने देशके बाहरसे आई हुई चीजोंको यथासम्भव काममें न लाओ । स्वदेशप्रेम और स्वदेशाभिमान रक्खो, स्वदेशको बुभुक्षित बनानेमें साधनभूत मत बनो । (देशव्रत)

(११) प्रतिमास एक वार जब कभी फुरसत मिले, अनुकूलता हो और शारीरिक व मानसिक स्थिति ठीक हो तब भूखे रहो कि जिससे शरीर नीरोग व सहनशील बने और इस स्थितिमें २४ या १२ घण्टे आत्मानुभव या आत्मविचारोंमें व्यतीत करो । (प्रोषधोपवास)

(१२) जब कभी [illegible] पुरुषोंकी भक्ति—सेवा करनेका अवसर आजाय तब बड़े उत्साहके साथ उनकी सेवा करो । जो संसारके उपकारमें ही अपना जीवन व्यतीत करते हैं, और जिनको अपने शरीरकी सार सँभाल करनेकी भी फुरसत नहीं रहती है, उनके अस्तित्वकी, आरोग्यताकी और प्रवृत्तिकी जगतको बहुत आवश्यकता रहती है । इस लिए उनकी आवश्यकताओंको जानकर उन्हें पूरी करना उपकृत वर्गका कर्तव्य है । उनके प्रचार कार्योंका निर्वाह करनेके लिए, अपने शरीरबल, द्रव्यबल, समय और बुद्धि आदिका उत्सर्ग करना चाहिए, उनकी मुश्किलों और दुःखोंमें सहानुभूति दिखाकर, उनको दूर करनेके लिए यथाशक्ति प्रयत्न करना चाहिए और उनके जयमें अपना जय—समाजका जय—मानना चाहिए । (अतिथिसंविभाग) *

कृष्णलाल वर्मा ।

---

* जैनहितेच्छुसे अनुवादित ।

वैश्य ।

(कविवर श्रीयुक्त बाबू मैथिलीशरण गुप्तकृत भारत–भारतीसे उद्धृत)

(१)

जो ईशके ऊरुज अतः जिनपर स्वदेशास्थिति रही,
व्यापार, कृषि, गोरूपमें दुहते रहे जो सब मही ।
वे वैश्य भी अब पतित होकर नीच पद पाने लगे,
बनिये कहा कर वैश्यसे 'बक्काल' कहलाने लगे ॥

(२)

वह लिपि कि जिसमें 'सेठ' को 'सठ' ही लिखेंगे सब कहीं,
सीखी उन्होंने और उनकी हो चुकी शिक्षा वहीं ।
हा ! वेदके अधिकारियोंमें आज [illegible]ता,
है शेष उनके 'गुप्त' पदमें कि[illegible]गुणोंका गूढ़ता ?

(३)

कौशल्य उनका अब यहाँ बस तौलनेमें रह गया,
उद्यम तथा साहस दिवाला खोलनेमें रह गया ।
करने लगे हैं होड़ उनके वचन कच्चे सूतसे,
करते दिवाली पर परीक्षा भाग्यकी वे द्यूतसे ॥

(४)

वाणिज्य या व्यवसायका होता शऊर उन्हें कहीं–
तो देशका धन यों कभी जाता विदेशोंको नहीं ।
है अर्थ सट्टा फाटका उनके निकट व्यापारका,
कुछ पार है देखो भला उनके महा अविचार का ?

(५)

बस हाय पैसा ! हाय पैसा ! ! कर रहे हैं वे सभी,
पर गुण विना पैसा भला क्या प्राप्त होता है कभी ?

---

१ मुड़िया या सराफी ।

सब से गये बीते नहीं क्या आज वे हैं दीखते,
वे देख सुनकर भी सभी कुछ क्या कभी कुछ सीखते?

(६)

बस अब विदेशोंसे मँगाकर बेचते हैं माल वे,
मानों विदेशी वाणिजोंके हैं यहाँ दल्लाल वे।
वेतन सदृश कुछ लाभ पर वे देशका धन खो रहे,
निर्द्रव्य कारीगर यहाँके हैं उन्हींको रो रहे॥

(७)

उनका द्विजत्व विनष्ट है, है किन्तु उनको खेद क्या?
संस्कारहीन जघन्यजोंमें और उनमें भेद क्या?
उपवीत पहनें देख उनको ध[illegible]भाग्य सराहिए,
पर तालियोंके बाँ[illegible]जु भी तो चाहिए!

(८)

चन्दा किसी शुभकार्यमें दो चारसौ जो है दिया-
तो यज्ञ मानों विश्वजित ही है उन्होंने कर लिया!
बनवा चुके मन्दिर कुआँ या धर्मशाला जो कहीं,
हा स्वार्थ! तो उनके सदृश सुर भी सुयशभागी नहीं!

(९)

औदार्य उनका दीखता है एकमात्र विवाहमें,
बहजाय चाहे वित्त सारा नाचरंग-प्रवाहमें!
वे वृद्ध होकर भी पता रखते विषयकी थाहका,
शायद मरे भी जी उठें वे नाम सुनकर व्याहका!

(१०)

उद्योग बलसे देशका भंडार जो भरते रहे,
फिर यज्ञ आदि सुकर्ममें जो व्यय उसे करते रहे।
वे आज अपने आप ही अपघात अपना कर रहे,
निज द्रव्य खोकर घोर अघके घट निरन्तर भर रहे॥

उदासीन-आश्रम।
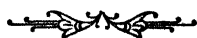
त्राश्रम, श्राविकाश्रम, अनाथाश्रमके बाद जैनसमाजका ध्यान अब उदासीनाश्रमोंकी ओर भी गया है। इस वर्ष दो उदासीनाश्रम स्थापित हुए हैं—एक तक्कूगंज इन्दौरमें और दूसरा कुण्डलपुर (दमोह) में।

बहुत लोग मखौल करते हैं कि जैनसमाज गृहस्थाश्रमकी उन्नतिके जितने उपाय हैं उन सबको कर चुका है—विद्यालय, छात्राश्रम आदि सब कुछ स्थापन [illegible] और कोई करने लायक काम उसकी दृष्टिमें शेष रहा नहीं हैं, इसलिए अब उसने उदासीनाश्रम स्थापित करनेकी ठानी है। इसमें वे लोग रहेंगे जो इन सब उन्नतिके कामोंसे उदासीन हो चुके हैं। परन्तु हमारी समझमें केवल 'उदासीन' इस नामसे ही इस तरहके अनुमान लगाकर मखौल करना ठीक नहीं है। वास्तवमें देखा जाय तो अब जैनसमाजका काम उदासीनाश्रमोंके स्थापित किये बिना चल ही नहीं सकता—उदासीनोंकी उसे बड़ीभारी जरूरत है। क्योंकि जिस परिमाणसे उसकी सार्वजनिक संस्थायें खुलती जाती हैं उस परिमाणसे उसमें काम करनेवाले नहीं बढ़ते हैं। जिस संस्थाको देखिए उसीमें यह त्रुटि बतलाई जाती है कि अच्छे काम करनेवानेवाले आदमी नहीं हैं और सुयोग्य कार्यकर्त्ताओंके बिना रुपया खर्च होते हैं तो भी संस्थाओंकी दशा अच्छी नहीं।

अच्छे अध्यापक नहीं मिलते, अच्छे उपदेशकोंका अभाव है, शिक्षाप्रचारक नहीं हैं, चारित्रसुधारक नहीं हैं, दूसरोंके दुःखोंमें दुखी होनेवाले नहीं है और परोपकारके—स्वार्थत्यागके भाव जागृत करनेवाले मूर्तिमन्त उदाहरण नहीं हैं। इसलिए जैनसमाजके लिए आवश्यक हुआ है कि वह उदासीनाश्रम स्थापित करे और उनके द्वारा इस प्रकारके काम करनेवाले तैयार करे।

तनख्वाह देकर—रुपया देकर काम करनेवाले प्राप्त किये जा सकते हैं; परन्तु जैनसमाजमें शिक्षाकी और योग्यताकी इतनी कमी है कि इसमें वेतन देकर भी अच्छे कार्यकर्त्ता प्राप्त नहीं किये जा सकते। इसके सिवाय वैत...... -कर्त्ता उतना अच्छा कार्य नहीं कर सकते हैं जितना अच्छा कि स्वार्थत्यागी पुरुष कर सकते हैं। और, संस्थायें केवल बाहरी शक्तियोंसे चल भी तो नहीं सकती हैं—अच्छी उन्नति भी तो नहीं कर सकती हैं जब तक कि उनमें कुछ आध्यात्मिक शक्तियाँ काम नहीं करती हों और ये शक्तियाँ सच्चे स्वार्थत्यागी पुरुषोंमें ही दर्शन देती हैं। अतएव आवश्यकता है कि जैनसमाजमें आध्यात्मिक शक्तिसम्पन्न पुरुष भी तैयार किये जावें और इसीके लिए उदासीनाश्रमोंका उपयोग करना चाहिए।

जनसेवाका कार्य सर्वोत्तम रीतिसे स्वार्थत्यागी पुरुष ही कर सकते हैं। जिन्होंने अपने जीवनको दूसरोंके उपकारके लिए अर्पण कर दिया है उन्हींका समाज पर सबसे अधिक प्रभाव पड़ता है। विशेषकर जैनसमाजमें तो त्यागी वैरागियोंको छोड़कर दूसरोंकी बातका प्रायः असर ही नहीं पड़ता है। क्योंकि इस समाजमें चिरकालसे

वैराग्यकी—स्वार्थत्यागकी ही पूजा होती आई है। अतएव अपनी संस्थाओंकी सहायताके लिए, उनके प्रति प्रीति उत्पन्न करानेके लिए जब तक स्वार्थत्यागी या उदासीन तैयार न होंगे तब तक उनकी दशा संतोषजनक नहीं हो सकेगी।

हम नहीं कह सकते कि उदासीनाश्रमके स्थापकों और संचालकोंने 'उदासीन' का अर्थ क्या निश्चित किया है; परन्तु यदि ये आश्रम जैनसमाजकी उन्नतिके लिए स्थापित हुए हैं तो 'उदासीन' का अर्थ स्वार्थत्यागी परोपकारी ही होगा। जो अपनी स्वार्थवासनाओंसे—भोगलालसाओंसे उदासीन हो चुका है—अपने सुखकी, आरामकी, मानापमानकी जिसे पर[illegible] रही है, गृहकी संकीर्ण परिधिका उल्लंघन करके जिसके प्रेमकी सीमा सारे विश्वमें व्याप्त हो गई है और इस कारण जो जीवमात्रकी भलाई करनेके लिए तत्पर हो गया है, उसे ही हम उदासीन कहते हैं। ऐसे उदासीन ही जैनसमाजको लाभ पहुँचा सकते हैं और इन्हींके लिए आश्रमकी जरूरत है।

यहाँ प्रश्न होता है कि ऐसे लोग तो यों ही समाजसेवाका कार्य करेंगे, उनके लिए आश्रमोंकी क्या आवश्यकता है? उत्तर यह है कि मनुष्यके विचार सदा स्थिर नहीं रहते हैं। इस समय किसी पुरुषके हृदयमें जो स्वार्थत्यागके विचार उत्पन्न हुए हैं संभव है कि वे थोड़े दिन पीछे न रहें। इस लिए उत्पन्न हुए विचारोंको स्थिर रखने और दृढ बनानेके लिए, विचारोंके अनुसार काम करनेकी योग्यता प्राप्त करानेके लिए और अनेक विचारों

को एक साथ मिलाकर विशेष शक्तिके साथ काम करना सिखलाने-के लिए कोई साधन चाहिए और हमारी समझमें उदासीनाश्रम इसके लिए बहुत अच्छा साधन है।

अभी तक यह मालूम नहीं हुआ है कि ये आश्रम अपना काम किस ढंगसे और किस पद्धतिसे चलावेंगे, इस लिए यदि इस विष-यमें हम अपने विचारोंको संक्षेपमें निवेदन कर दें तो कुछ अनुचित न होगा।

जिन लोगोंके हृदयमें वास्तविक स्वार्थत्याग और परार्थपरताके भाव उत्पन्न हुए हैं वे ही लोग आश्रममें भरती किये जावें। बस, यही एक बात उनकी जाँचकी कसौटी होनी चाहिए। सबसे पहले उन्हें योग्यताका सम्पादन कराया जाय। योग्यताको हम दो भागोंमें बाँटते हैं—एक तो ज्ञानसम्बन्धी योग्यता और दूसरी चारित्रसम्बन्धी योग्यता। इन दोनों योग्यताओंके बिना आज कलके समयमें न कोई काम ही अच्छी तरह किया जा सकता है और न सफलता ही प्राप्त हो सकती है। इस समय ज्ञान और चारित्र दोनोंकी आवश्यकता है। आश्रमवासियोंको धार्मिक और व्यावहारिक दोनों प्रकारकी उच्चश्रेणीकी शिक्षा प्राप्त करना चाहिए। इसके बिना इस ज्ञान विज्ञानके युगमें कोई काम नहीं किया जा सकता। चारित्रसम्बन्धी योग्यताको हम बहुत ही आवश्यक समझते हैं, क्योंकि इसके बिना परार्थ तो कठिन बात है स्वार्थसाधनके काम भी अच्छी तरह सम्पन्न नहीं हो सकते। जिसने इन्द्रियों और मनको वशमें रखनेका अभ्यास नहीं किया, अपनी आवश्यकताओंको

क्रम नहीं किया, कष्ट सहनेकी आदत नहीं डाली, ब्रह्म-चर्यकी रक्षाकरके शारीरिक और मानसिक शक्तियोंको नहीं बढ़ाया, ध्यानके द्वारा मनको एकाग्र करनेका अभ्यास नहीं किया, इष्टानिष्टमें साम्य भाव रखनेका प्रयत्न नहीं किया और अपने हृदयको जीवमात्रके हितके लिए करुणातत्पर नहीं बनाया वह दूसरोंकी उन्नति—दूसरोंकी भलाई कभी नहीं कर सकता। इस लिए इस प्रकारके चारित्रका अभ्यास आश्रममें अवश्य कराना चाहिए। काम करनेके लिए और उनमें सफलता प्राप्त करनेके लिए कुछ आध्या-त्मिक शक्तियोंकी ज़रूरत होती है और वे शक्तियाँ पवित्र चारित्र तथा तप आदिके विना प्राप्त नहीं हो सकतीं।

उदासीनोंको कमसे कम तीन वर्षतक ज्ञान और चारित्रसम्बन्धी योग्यता प्राप्त करते रहनेके बाद काममें हाथ लगाना चाहिए और काम भी उन्हें उनकी योग्यताके अनुसार छोटे बड़े सौंपना चाहिए; परन्तु काम करते हुए भी उन्हें अपनी योग्यता बढ़ानेका क्रम ज़ारी रखना चाहिए।

आश्रमके प्रधान संचालक जो स्वयं भी उदासीन हों, उदासी-नोंको उनकी योग्यताका विचार करके काम सौंपें। जगह जगह जाकर उपदेश देना, व्याख्यान देना, पाठशालाओंमें अध्यापकीका काम करना, शास्त्रसभाओंमें उपदेश देना, आवश्यकता होनेपर घर घर जाकर उपदेश देना, पुस्तकें लिखना, लेख लिखना, ग़रीबोंकी सहायता करना, रोगियोंकी सेवा करना, इत्यादि सब तरहके परो-

प्रकारके काम उन्हें सौंपे जावें और वे छोटेसे छोटा और बड़ेसे बड़ा काम करनेके लिए हर समय तत्पर रहें।

ये आश्रम उसी ढंगके होना चाहिए जैसी कि माननीय गोखलेकी 'सर्वेंट आफ इंडिया सुसाइटी' (भारतसेवकसमिति) है। जिस तरह उसके मेम्बर राजनीतिको आगे रखकर सब काम करते हैं उसी तरह इन आश्रमोंके उदासीनोंको धर्मको और चारित्रको आगे रखकर काम करना चाहिए।

उदासीनाश्रमोंको हम इसी रूपमें देखना चाहते हैं और जहाँतक हम सोच सकते हैं जैनसमाजका कल्याण भी ऐसे ही आश्रमोंसे हो सकता है। इसके विपरीत यदि इनमें

नारि मुई घर संपति नासी,
मूड़ मुड़ाय भये सन्यासी।

इस अवस्थाके सन्यासियों या उदासीनोंकी पालना होगी, अथवा जिन्हें सच्चा वैराग्य तो हुआ नहीं है किन्तु गृहस्थाश्रमको अच्छी तरह चलाने योग्य पुरुषार्थके अभावमें उसे झंझट समझकर जो केवल अपनी सुखशान्तिके लिए दुनियादारीकी रस्सी तुड़ाकर भाग आये हैं उन्हें भरती किया जायगा, तो ऐसे आश्रमोंकी कोई जरूरत नहीं है। जो अपने स्वार्थसे—अपनी ही सुख शान्तिसे उदासीन नहीं हुए हैं और दूसरोंके कल्याणमें जिन्होंने अपने आपको नहीं भुला दिया है, उन नामके उदासीनोंसे जैनसमाजका क्या कल्याण हो सकता है?

ऐसे उदासीनोंकी इस समय कमी भी नहीं हैं। सैकड़ों ऐलक,

क्षुल्लक, त्यागी, ब्रह्मचारी, प्रतिमाधारी जहाँ तहाँ पुज रहे हैं। उनके भोजनवस्त्रोंकी, पूजाप्रतिष्ठाकी, जयजयकारकी जैनसमाज बराबर चिन्ता रखता है। फिर उनके लिए जुदा आश्रमोंके खोलनेकी ज़रूरत ही क्या है?

यदि यह कहा जाय कि इन लोगोंकी शिक्षाका और चारित्र-सुधारका प्रयत्न आश्रमोंमें किया जायगा तो यह असंभव मालूम होता है। क्योंकि इनमें अशिक्षितोंकी संख्या ही अधिक है। ये जैनसमाजमें स्वच्छन्द विहार करते हैं और खूब पूजाप्रतिष्ठा पाते हैं। इसलिए इन्हें किसी शासन या शृङ्खलामें रखना बहुत ही कठिन होगा। पढ़ने लिखनेमें इनका चित्त भी नहीं लग सकता।

कुछ महाशयोंकी यह राय है कि जो इस समय गृहत्यागी नहीं हैं—घरगिरस्तीमें रहकर ही धर्मध्यान करते हैं और शान्तपरिणामी हैं, वे इन आश्रमोंमें रहेंगे। परन्तु जो केवल अपना आत्म-कल्याण करनेकी इच्छा रखते हैं, अपने ही लिए सामायिक स्वाध्याय करते हैं, जिनका सारा दिन चूल्हा चक्की और खानपानकी शुद्धताके विचारोंमें ही बीत जाता है वे पवित्र और आदरणीय भले ही हों; पर उनसे जैनसमाजका कल्याण नहीं हो सकता है और इसीलिए हमारी समझमें उन लोगोंके लिए हमें कोई संस्था खोलनेकी ज़रूरत नहीं है; वे अपना कल्याण अपने घरोंमें ही रहकर कर सकते हैं।

बात यह है कि इस समय हमें कर्मवीर चाहिए। कर्म करना छोड़कर—संसारको भुलाकर शान्ति चाहनेवालोंकी इस समय हमें

कोई आवश्यकता नहीं है। जो संसारसे दूर भागना चाहते हैं और उसके साथ ही परोपकारकर्मसे भी दूर रहना चाहते हैं वे हमारा क्या भला करेंगे?

आशा है कि उदासीनाश्रमोंके संचालक इस लेख पर ध्यान देंगे और ऐसा प्रयत्न करेंगे जिससे ये आश्रम जैनसमाजकी प्रगतिमें कुछ सहायक हों—उसमें बाधा डालनेवाले या निष्कर्मा बनकर हमारे लिए भारभूत न हों।

हृदयोद्गार।

[श्रीयुक्त बाबू अर्जुनलालजी सेठी बी. ए. के बनाये हुए 'महेन्द्रकुमार' नाटकसे उद्धृत एक पद्य।]

कब आयगा वह दिन कि बनूँ साधु विहारी ॥ टेक ॥

दुनियामें कोई चीज़ मुझे थिर नहीं पाती,
और आयु मेरी यों ही तो बीती है जाती।
मस्तक पै खड़ी मौत वह सबहीको है आती,
राजा हो चाहे राणा हो हो रंक भिखारी ॥ १ ॥

संपत्ति है दुनियाकी वह दुनियामें रहेगी,
काया न चले साथ वह पावकमें दहेगी।
इक ईंट भी फिर हाथसे हर्गिज न उठेगी,
बँगला हो चाहे कोठी हो हो महल अटारी ॥ कब० ॥ २

बैठा है कोई मस्त हो मसनदको लगाये,
माँगे है कोई भीख फटा वस्त्र बिछाये।

अंधा है कोई कोई बधिर हाथ कटाये,
व्यसनी है कोई मस्त कोई भक्त पुजारी ॥ कब० ॥ ३

खेले हैं कई खेल धरे रूप घनेरे,
स्थावरमें त्रसोंमें भी किये जाय बसेरे।
होते ही रहे हैं यों सदा शाम सबेरे,
चक्करमें घुमाता है सदा कर्म मदारी ॥ कब० ॥ ४

सबहीसे मैं रक्खूँगा सदा दिलकी सफ़ाई,
हिन्दू हो मुसलमान हो हो जैन ईसाई।
मिल मिलके गले बाँटेंगे हम प्रीति मिठाई,
आपसमें चलेगी न कभी द्वेष-कटारी ॥ कब० ॥ ५

सर्वस्व लगाके मैं करूँ देशकी सेवा,
घर घर पर मैं जा जाके रखूँ ज्ञानका मेवा।
दुःखोंका सभी जीवोंके हो जायगा छेवा,
भारतमें देखूँगा न कोई मूर्ख अनारी ॥ कब० ॥ ६

जीवोंको प्रमादोंसे कभी मैं न सताऊँ,
करनोंके विषय हेयमें अब मैं न लुभाऊँ।
ज्ञानी हूँ सदा ज्ञानकी मैं ज्योति जगाऊँ,
समतामें रहूँगा मैं सदा शुद्धविचारी ॥ कब ॥ ७

नोट—जिस पुरुषश्रेष्ठकी ऐसी पवित्र उदार और शान्त भावनायें हो, उसकी राजद्रोह और नरहत्या जैसे नीच कर्मोसे भी सहानुभूति होगी, इस बातकी हम लोग तो कल्पना भी नहीं कर सकते हैं।

—सम्पादक।

सहयोगियोंके विचार।

प्रार्थना।

जैनोंके अन्तरमें छुपे हुए परमेश्वर, तू अपना वास्तविक स्वरूप प्रकट कर! सर्व शक्तिमान् होकर भी आज तू भीरु, खुशामदी, संकीर्ण, बहमी, और अज्ञानहीमें आनन्द मनानेवाला बन गया है। इसके कारण अब तो कुछ लज्जित हो और अपनी ईश्वरतामें बट्टा लगानेके अपराधसे मुक्त होनेके लिए जनसेवारूप प्रायश्चित्त लेकर पवित्र बन तथा अपना ज्ञानमय चारित्रमय वीर्यमय प्रकाशित स्वरूप फिर धारण कर! जब तू स्वयं परमेश्वर है तब तुझे प्रकाशित करनेके लिए और दूसरे किस परमेश्वरकी प्रार्थना करनेकी आवश्यकता हो सकती है? तू स्वयं ही अपनी सहायता कर, तुझे चारों ओरसे जिन मर्यादाकी संकलोंने जकड़ रक्खा है उन्हें स्वयं ही एक महावीरके समान तोड़ताड़कर अलग कर और अपना दिव्य स्वरूप प्रकट कर!

—जैनहितेच्छुके खास अंकका मुखपृष्ठ।

जैनजातिको जीना है या मरना?

जब भारतकी जैनेतर जातियाँ इस प्रश्नके विचारमें लीन हो रहीं हैं कि 'आगे कैसे बढ़ें?' तब जैनजातिके आगे यह प्रश्न खड़ा हुआ है कि 'जीते रहना या मर जाना?' जो मनुष्य जीना चाहता है वह बाहरके पदार्थोंको खुराकके रूपमें ग्रहण करता है, उन्हें पचाता है और शरीरके रक्तके रूपमें उनका रूपान्तर करता है, अर्थात् उन्हें अपने शरीरका ही एक भाग बना लेता है। परन्तु जैनसमाजरूपी मनुष्य ऐसा नहीं करना चाहता। बाहरी मनुष्योंको अपने शरीरका भाग बना लेनेकी चिन्ता तो दूर रही, वह अपने शरीरके अवयवोंको भी शरीरसे जुदा करनेमें बहादुरी दिखला रहा है। तब बतलाइए कि यह जैनसमाज जीता कैसे रह सकता है? जैनधर्म जब महावीर भगवान्के हाथसे पुनरुज्जीवित हुआ तब वह एक जीवित समाजका धर्म था। उस समय जैनेतरोंको जैनसमाजमें आने दिया जाता था, उन्हें तत्त्वज्ञान सिखलाया जाता था

और फिर पक्का जैन बन जानेका सुभीता कर दिया जाता था । जैनधर्मका क्षेत्र आज कलके समान संकीर्ण न था; इसके विस्तृत मैदानमें सारी मानव जातिको टिकनेके लिए जगह मिलती थी । (हाथी, सर्प आदि भयानक प्राणी भी इस मैदानमें खड़े हो सकते थे ।) स्वाध्याय (अभ्यास), प्रामाणिकता निर्भय स्वातन्त्र्य, कोमल मनोवृत्तियाँ और सुदृढ चारित्र, ये उस समयके जैनोंको प्रसिद्धिमें लानेवाले तत्त्व थे । उस समयकी धार्मिक श्रद्धाकी जड़में बुद्धि और विचार शक्ति थी, इस लिए उनकी वह श्रद्धा उन्हें प्रसन्नतापूर्वक प्राण न्योछावर कर देनेकी प्रेरणा कर सकती थी । उनमें इतनी सचाई और साख़ थी कि जैन जो शब्द बोलते थे वे ' दस्तावेज ' के समान पक्के समझे जाते थे। उनके शब्दरूप 'दस्तावेज' को कोई स्वार्थ, डर या विघ्न बदल नहीं सकता था। पूर्वके जैन इसी नमूनेके थे । वे जन्मसे जैन कहलवानेके लिए मग़रूर न थे; परन्तु जैनधर्मको सीखकर, जैनजीवन व्यतीत करनेका प्रारंभ करनेमें ही जैनत्व मानते थे और ऐसे जैनसमाजके एक सभ्यके रूपमें प्रकट होनेको मग़रूरी समझते थे ।

और अब ? अब हमारे जैन न तो पूर्वके जैनोंके ही अनुयायी रहे हैं और न पश्चिमके वास्तविक अनुकरण करनेवाले बने हैं । हममेंसे कितनेक तो अपने पूर्वजोंके रिवाज़ों और क्रियाओंके बाह्यरूपको पकड़कर बैठ रहे हैं और कितने ही पश्चिमकी वानरी नकल करनेमें लग पड़े हैं । हम न तो अपने पूर्वजोंकी बनाई हुई क्रियाओं और नियमोंका गुप्त रहस्य और सच्ची विधियाँ समझते हैं और न यह जानते है कि पश्चिमके रिवाज़ क्यों और कैसी परिस्थितियोंमें ज़ारी हुए हैं और वे हमारे लिए कितने अंशोंमें अनुकूल और कितनोंमें प्रतिकूल हैं। वीर परमात्माकी स्थापितकीहुई गद्दीके हक़दार ऐरे गैरे जिनके जीमें आया वे ही बनने लगे हैं । मन्दिरों, धर्मस्थानों, सार्वजनिक जैनसंस्थाओं और भंडारोंकी मालिकी भी ऐसे ही लोगोंके हाथोंमें जाने लगी है । क्यों ? इसलिए कि उनके हक़के विरुद्ध आन्दोलन उठानेवाले नहीं मिलते हैं । कूपर कवि कहता है कि "मुझे जो कुछ नज़र आता है उस सबका मैं महाराजा हूँ; मेरे हक़के विरुद्ध पुकार मचानेवाला कोई भी नहीं है !" जैनसमाजकी भी यही दशा हो रही है । अपने शास्त्रोंकी रक्षा करनेका हक़, संस्थाओं और फंडोंकी मालिकीका हक़ ये सब हक़

किसीके सौंपे बिना ही जिसके जीमें आया है वही दबा बैठा है । इससे क्या सूचित होता है ? यही कि जैनसमाजमें घुन लग गया है; इतना ही नहीं बल्कि जैनसमाजका अन्तसमय आ पहुँचा है ।

यहाँ लोग भ्रममें न पड़ जावें इसके लिए हम यह कह देना चाहते हैं कि ' **जैनसमाजका** अन्त आ पहुँचा है ' इसका अर्थ यह नहीं है कि ' **जैनधर्मका** अन्त समय आ पहुँचा है ।' क्योंकि जैनधर्मका सत्य स्वरूप अमर है । सत्य या तत्त्व कभी मरते नहीं हैं । स्वयं जैनोंकी औंधी प्रवृत्ति-उलटी चाल भी इस अमर तत्त्वको नहीं मार सकती है । महावीर भगवानके समवसरणके समय जैनधर्ममें जो मिठास और शक्ति थी वही आज भी है और आगे भी रहेगी । मेरा विश्वास है कि जैनधर्मने पश्चिममें पुनर्जन्म ग्रहण कर लिया है । जैनधर्मके दयाके सिद्धान्तने यूरोप अमेरिकामें अनेक ह्यूमेनीटेरियन संस्थाओंको जन्म दिया है । जैनधर्मके गंभीर तत्त्वज्ञानने कितने ही अँगरेज़ भाइयों और बहिनोंके हृदयों पर विजय पाई है । जैनधर्मके प्राचीन तत्त्वग्रन्थोंने पश्चिमके विद्वानोंके मुँहसे प्रशंसा और प्रेमके शब्द कहलवाये हैं । जैनधर्मकी ' सहधर्मी ' रूप ' ज्ञाति ' यूरोपियन बुद्धिको सन्तोषित करनेवाली सिद्ध हुई है । इस तरह, जैनधर्म कुछ मर नहीं गया है,—उसने तो नया जीवन पालिया है; केवल उसका बाहरी स्वरूप बदल गया है ।

अपने सार्वजनिक भंडारोंके अप्रबन्धके सम्बन्धमें मैं ऊपर एक जगह इशारा कर चुका हूँ । हमारे सामाजिक विषय भी ऐसी ही गड़बड़ों और झंझटोंमें हैं । अपने लोगोंके विचारों और कार्योंकी स्वच्छन्दता पर काबू रख सकें, इस तरहके प्रबल सार्वजनिक मत (पब्लिक ओपीनियन) का हमारे यहाँ अभाव है । इस लिए जिसकी मर्ज़ीमें जो आता है वह करता है और कहता है; सार्वजनिक मतके रूपमें कोई अंकुश ही नहीं है । जहाँ तहाँ जैनधर्मके विरुद्ध रीति-रवाज़ रहन-सहन और आचरण देखे जाते हैं; उनके लिए कोई दण्ड या चेतावनी देनेकी कोई पद्धति ही नहीं है । यदि कभी किसी सच्चे या कल्पित धर्मविरुद्ध कार्यके विरुद्ध आवाज़ उठाई जाती है तो उसका असर मोमके खिलौनेंके असरसे अधिक नहीं होता । शिक्षाके विषयमें जैन अपनी पड़ोसी जातियोंसे पीछे नहीं हैं इसका

पता मनुष्यगणनाकी रिपोर्टसे लगता है; परन्तु मनुष्यगणनाकी रिपोर्टके भरोसे बैठे रहनेसे काम नहीं चलता; क्योंकि विशाल विश्वमें हमारी संख्या केवल १०-१२ लाख ही है ! यह क्या हमारी प्रतापपूर्ण इतिहास रखनेवाली जातिके लिए कम लज्जाका विषय है ? हममें यदि शिक्षाकी अधिकता होती तो हमारे भाई दूसरे धर्मोंमें नहीं जा सकते और हम दूसरोंको अपने उदार तत्त्व समझाकर जैनगणनामें वृद्धि किये बिना न रहते। क्या हमें अपने इतने ओछे ज्ञानसे-अल्पशिक्षासे निर्वाणकी बातें करते समय लज्जा न आनी चाहिए ? हम कहा करते हैं कि पहलेके जैन व्यापारसे अगणित धन पैदा करते थे; परन्तु इस समयके जैनोंके हाथमें बतलाइए कहाँ है वैसा व्यापार और धन ? जैनोंका प्रायः प्रत्येक खाता-प्रत्येक संस्था धनकी तंगीसे मृतप्राय हो रही है। हममें ' पब्लिक स्प्रिट '-सार्वजनिक जोशका अंश भी कहाँ है और हो भी कहाँसे ? जो मनुष्य मरनेकी तैयारीमें है वह क्या नृत्य कर सकता है ? जैनजाति जब मरणशय्या पर पड़ी दिख रही है तब सार्वजनिक जोश और स्वार्थत्यागके तत्त्वके अभावमें (मरनेके सिवाय) और दूसरे किस परिणामकी आशा की जा सकती है ? लापरवाही (अनवधानता), अश्रद्धा और अन्धश्रद्धा ये तीन शत्रु हमारी जातिको घोंट घोंटकर मार रहे हैं। हमारे बड़े बूढ़े तो केवल दूसरोंको मिथ्याती और भ्रष्ट कहनेमें ही धर्मपालनकी समाप्ति समझते हैं और नौजवान भाई जड़वाद और नास्तिकताकी बढ़तीहुई दुनिया और जड़वादमूलक सुधारोंके उपदेशकी ओर आकर्षित होकर जैनबन्धनसे छूट जानेमें ही आनन्द मानने लगे हैं।

जो लोग निष्पक्ष होकर शान्तिके साथ विचार कर सकते हैं उन्हें यह विश्वास हुए बिना न रहेगा कि मैंने अपनी जातिकी दशाका जो स्वरूप बतलाया है उससें जरा भी अतिशयोक्ति नहीं है। हमारे सामाजिक बन्धन शिथिल हो गये हैं, अविद्याने हमारे यहाँ अड्डा जमा रक्खा है। न हमारे यहाँ कोई उत्तम प्रकारकी सामाजिक संस्था रही है और न राष्ट्रीय। हमारी संख्या दिनपर दिन कम होती जाती है, हमारी लक्ष्मी उड़ती जाती है और हम विनाश तथा मृत्युके मार्ग पर जा पहुँचे हैं।

परन्तु क्या अब इस भयंकर पतनको हम रोक नहीं सकते हैं ? क्या

रोग बिलकुल ही असाध्य हो चुका है? नहीं, प्रबल प्रयत्न किया जाय तो संसारमें कोई भी काम अशक्य नहीं है। यदि हम अब भी चेत जावें, सुव्यवस्थित नियमोंकी रचना करें, अपने समाजमें विद्याका प्रचार करें, पूर्व और पश्चिमकी गार्हस्थ्य रचनाका अध्ययन-अभ्यास करके जो बातें अपने लिए अनुकूल और कल्याणकारी हों उन सबको संचय करके उस पर अपने गृहसंसारकी नींव जमावें, जैनधर्मरूपी सुन्दर महलका द्वार सबके लिए खुला रक्खें, अपने हृदयको उदार बनावें, व्यापार और बैंकिंगके लिए एकता करें, आरोग्यविद्याके ज्ञानका और शुद्ध अध्यात्मविद्याका अपने समाजमें प्रेम उत्पन्न करें—ये सब बातें यदि हम कर सकें तो अब भी बचे रहनेका समय है—बारहवें घण्टेका ६० वाँ मिनिट अब भी हमारे हाथमें है। इतनेमें यदि हम कुछ तदबीर कर गुज़रेंगे तो मृत्युसे बच सकते हैं। —जे. एल. जैनी एम. ए. बार एट् ला।

(अँगरेज़ी जैनगज़टसे)

स्त्रियोंका आदर।

हमारे देशमें जब उन्नति हो रही थी तब स्त्रियोंका खूब आदर था और वे शिक्षिता थीं। किन्तु जबसे उनका आदर कम होकर शिक्षा भी कम होगई है तभीसे अवनतिने यहाँ प्रवेश किया है। इसलिए यह कहना ही ठीक जंचता है कि अशिक्षणके रिवाज़ पर लात मारकर स्त्रियोंको खूब शिक्षित करना हमारे लिए पथ्य है। दूसरा कोई भी मार्ग हमारे कल्याणका नहीं है। बहुत पुराने जमानेको जाने दीजिए, महावीरके जन्मको केवल ढाई हज़ार वर्ष ही बीते हैं। उनके पिता अपनी पत्नीका कैसा आदर करते थे? देखिए:—

आगच्छन्तीं नृपो वीक्ष्य प्रियां संभाष्य स्नेहतः।
मधुरैर्वचनैस्तस्यै ददौ स्वार्धासनं मुदा॥

अर्थ:—राजा **सिद्धार्थने** अपनी प्रियाको कचहरीमें आते देखकर मधुर वाक्योंसे प्रेमपूर्वक आलाप किया और प्रसन्न होते हुए अपना अर्ध सिंहासन बैठनेको दिया, जिस पर कि वे जाकर बैठीं।

इससे यह ज्ञात होगा कि थोड़े ही पहले बड़े बड़े राजा लोग भी अपनी स्त्रियोंका कितना सत्कार करते थे। अथवा यह कल्पना करनी चाहिए कि जो

स्त्रीका इतना भारी आदर करते हैं उन्हींके घरमें तीर्थंकर सरीखे पुत्र उत्पन्न हो सकते हैं, जो कि तीनों लोकका उद्धार कर अपना भी परम कल्याण करनेवाले हैं। इस उदाहरणको देखकर उन्हें संतोष करना चाहिए जो स्त्रीको सदा पैरोंमें कुचलना पसंद करते हैं; अपनी केवल दासी समझते हैं और उसका आदर करनेमें या होने देनेमें पुरुषजातिका अनादर समझते हैं या पाप समझते हैं।

—पं० वंशीधर शास्त्री।

(जैनमित्र, अंक ६)

आदर्शका अदर्शन।

समाजनेता महाशयो, आपलोग रूढियोंके, समाजके, धर्मगुरुओंके और राजाके झूठे—माने हुए डरसे लोगोंके सामने वास्तविक आदर्श नहीं रखते हैं और सत्यका जानबूझकर खून करते हैं; परन्तु याद रखिए आपको इसका बदला ज़रूर मिलेगा। समाजके एक समूहको वर्षोंतक दुःखमें पड़े रखनेवाले-पापमें डालनेवाले आप ही लोग हैं। आप दूसरोंको 'पुनर्जन्म' और 'कर्म' के सिद्धान्तका उपदेश दिया करते हैं; परन्तु इस सिद्धान्तमें यदि आपको ही श्रद्धा होती तो वास्तविक आदर्शको समाजके सामने निडर होकर रखनेमें आप कभी आनाकान न करते। लड़ाईके मैदानमें दश बीस रुपये महीनेकी तनख्वाहके लिए प्राणन्योछावर करदेनेका साहस करनेवाले तो बहुत मिलते हैं; परन्तु सत्यका जो स्वरूप आपने समझा हो वही स्वरूप समाजको आदर्शके रूपमें समझानेकी हिम्मत बहुत थोड़े लोगोंमें होती है। यदि मैं किसी बातका सत्यस्वरूप स्पष्टशब्दोंमें प्रतिपादन करूँगा तो अमुक प्रचलित रीति या रूढ़ी पर चोट पहुँचेगी और इससे उस रूढ़ीके गुलाम मेरी निन्दा करेंगे, अगुए शत्रु बन जावेंगे, धर्मगुरु या पण्डितजन अपनी भेड़ोंको मेरे विरुद्ध उत्तेजित कर देंगे, और प्रचलित राजनीतिके किसी नियमका भंग होनेसे मुझे सज़ा मिलेगी। इस प्रकारके भयोंके वशीभूत होनेका परिणाम यह हुआ है कि वास्तविक आदर्शका दर्शन इस देशमें बहुत कठिन होगया है और यही इस देशके आत्मिक मरणका कारण है। इस आत्मिक मरणसे राजकीय परतंत्रता आदि अनेक फल उत्पन्न होते हैं। —समयधर्म।

जैनहितेच्छु अंक ९-१०।

गोत्रोंकी झंझट और जातिके ग़रीब।

अब खण्डेलवाल-जातिका अस्तित्व कायम हुआ तब गोत्र थे या नहीं, इस विषयमें हम कुछ भी कह नहीं सकते। पर परम्पराकी किंवन्दती ऐसी है कि "खण्डेला एक बड़ा शहर था। उसके अधिकारमें चौरासी गाँव थे। जब जिनसेनाचार्यके उपदेशसे खण्डेला और उसके प्रान्तवर्ति गाँवोंके रहनेवाले जैनी हुए तब गाँवके नाम पर तो खण्डेलवाल-जातिका नाम संस्करण हुआ और जो चौरासी गाँव थे, उनके नाम पर गोत्रोंकी कल्पना हुई।" यदि यह किंवदन्ती सत्य है तो कहना पड़ेगा कि वास्तवमें गोत्रोंका असली स्वरूप कुछ नहीं है। जैसे दक्षिणीयोंमें वीजापुरके रहनेवाले बीजापुरकर और कोल्हापूरके रहनेवाले कोल्हापुरकर कहलाते हैं, वैसे ही बाकली गाँवके रहनेवाले बाकलीवाल, और काशली गाँवके रहनेवाले काशलीवाल कहलाने लगे और ऐसी हालतमें एक गोत्रमें भी यदि परस्पर शादी व्याह होने लगे तो हमारी समझमें कोई हानि नहीं। क्योंकि पहले भी तो एक गाँवके रहनेवालोंमें व्याह शादी होते थे। हम नहीं कह सकते कि खण्डेलवाल जातिमें व्याह शादीके समय यह परस्पर गोत्रोंके मिलानेकी झंझटका कबसे सूत्रपात हुआ। पर पहले जब मामाकी लड़कीसे व्याह होता था तब यह कहा जा सकता है कि यह पद्धति पुरानी नहीं है। इसके लिए और भी एक सुबूत यह है कि महाराष्ट्र-प्रान्तके खण्डेलवालोंमें अब भी सिर्फ दो ही गोत्र टाले जाते हैं। इस विषयको बिलकुल नया देखकर बहुतसे लोग हमसे सवाल करेंगे कि "तुम इन गोत्रोंके बचावको झंझट क्यों समझते हो और इसके उठा देनेसे लाभ क्या?" इसका उत्तर यह है कि यदि जातिमें आज सरीखी अँधाधुन्धी नहीं होती, और पहले सरीखी उसकी शृंखला बनी रहती तो शायद इस विषय पर चर्चा करनेकी आवश्यकता नहीं भी पड़ती। क्योंकि उससे जातिके गरीबोंका काम अच्छी तरह चल सकता था। पर अब वह बात नहीं रही। धनवानोंका तो हर किसी तरह काम चल जाता है और बेचारे ग़रीब रोते ही रह जाते हैं। इसका कारण है, पहले चौरासी गोत्रोंका अस्तित्त्व था, तब तो गोत्रोंके भी बचावमें विशेष तरद्दुत नहीं उठाना पड़ती थी, पर अब कठिनतासे २५-३० गोत्रोंका अस्तित्व मिलता है। सो होता क्या है कि जो धनवान् होते हैं उनके यहाँ तो अपनी लड़के लड़कीका व्याह करनेके लिए हज़ारों चातककी तरह नेत्र लगाये रहते हैं। ऐसी हालतमें उनकी एक जगह गोत्र अड़ भी जाय तो दूसरी

जगह, दूसरी जगह अड़ जाय तो तीसरी जगह और तीसरी जगह भी अड़ जाय तो चौथी जगह, मतलब यह कि कहीं न कहीं उनका चन्द्र रोहिणीकासा योग तो मिल ही जाता है। पर कष्ट है तो बेचारे गरीबोंको। क्योंकि एक तो वे बड़ी ही कठिनतासे थोड़ा बहुत पैसा इकट्ठा कर पाते हैं और इससे भी अधिक कठिनतासे या बड़ी दौड़ धूप करके वे कहीं अपना योग मिलाते हैं और वैसी हालतमें कहीं गोत्रोंका पचड़ा आकर अटक गया तो बस फिर रहे वे निरंजनके निरंजन ही। वे धनवान् तो हैं हीं नहीं जो उन्हें भी मेघ समझकर हज़ारों चातक उनकी ओर भी टकटकी लगाये हुए हों। और फिर एक बात है, कहीं तो ४ लड़केकी और ४ लड़कीकी ऐसी आठ गोत्रें बचाई जाती हैं और यदि किसीके दो या तीन ब्याह हुए हों तो १०—१२ तक या इससे भी और आगे नम्बर पहुँचता है। ये सब असुविधाएँ हैं और खासकर गरीबोंके मरणकी कारण हैं। जातिका जीवन उसकी बढ़वारी पर टिका हुआ है। तब हमें गरीबोंको भी जीता रखना पड़ेगा। हम चाहते हैं उन्हें सब तरहसे सुभीता हो, इसीलिए गोत्रोंको एक अनावश्यक झंझट समझते हैं और यदि यह उठा दिया जाय तो जातिका बहुत कल्याण हो सकता है—साधारण स्थितिवालोंको भी थोड़ा बहुत सुभीता हो सकता है। यह हमारी कमजोरी और कायरता है जो ऐसी अनिष्ट रूढ़ियोंको उठा देनेसे हम काँपते हैं। माना जा सकता है कि यह गोत्रोंका टालना कभी किसी सुभीतेके लिए चला और उस समयके लिए ज़रूरी भी हो, पर इस समय तो इसकी कोई ज़रूरत नहीं दिखती, किन्तु और उलटा हमारी इससे अत्यन्त हानि हो रही है। इसलिए हमें उचित है कि हम इस चिरसंगिनी रूढि-राक्षसीका जातिसे काला मुँह करें। —सत्यवादी, अंक ११-१२।

AN INSIGHT INTO JAINISM.

अर्थात्

जैनमतादिग्दर्शन।

इस पुस्तकमें बाबू ऋषभदासजी, बी. ए. ने जैनधर्मके प्रायः सभी मुख्य मुख्य विषयों पर महत्वशाली लेख लिखे हैं। यह पुस्तक अंग्रजी जाननेवाले जैनी अजैनी सभी महाशयोंके लिए बड़ी लाभदायक है। इसकी बहुत ही थोड़ी प्रतियां रहगई हैं। मूल्य केवल चार आने।

नये छपे हुए जैन ग्रन्थ ।

भक्तामरचरित ।

इसमें प्रत्येक श्लोक, उसका अर्थ, प्रत्येक श्लोककी विस्तृत कथा, हिन्दी कविता, प्रत्येक श्लोकका मंत्र और यंत्र ये सब बातें छपाई गई हैं। कथायें बड़ी विलक्षण हैं । उनमें किस पुरुषने किस मंत्रका किस तरह जाप किया, उसको कैसी कैसी तकलीफें भोगनी पड़ीं और फिर अन्तमें उसे किस तरह मंत्रकी सिद्धि हुई इन सब बातोंकी आश्चर्य-जनक घटनाओंका वर्णन किया है। भाषा बहुत सरल बनाई गई है। यह मूल संस्कृत ग्रन्थका नया अनुवाद है । कपड़ेकी सुन्दर जिल्द बँधी हुई पुस्तक है । मूल्य सवा रुपया ।

श्रेणिकचरित ।

यह अन्तिम तीर्थंकर महावीर भगवान्के परम भक्त महाराजा श्रेणिकका जो इतिहासज्ञोंमें विम्बिसारके नामसे विख्यात हैं—चरित है । इसे श्रेणिकपुराण भी कहते हैं । इसका अनुवाद मूल संस्कृत ग्रन्थ परसे पं. गजाधरलालजीने किया है । आज कलकी बोलचालकी भाषा-में है, पुष्ट चिकना कागज, उत्तम छपाई, कपड़ेकी पक्की जिल्द, पृष्ठ संख्या ४०० । मूल्य १॥)

धर्मप्रश्नोत्तरश्रावकाचार ।

श्रीसकलकीर्ति आचार्यके संस्कृत ग्रन्थका सरल अनुवाद । इसमें प्रश्न और उत्तरके रूपमें श्रावकाचारकी सारी बातें बड़ी ही सरलतासे सम-झाई गई हैं । सब भाईयोंको मँगाकर पढ़ना चाहिए । साधारण पढ़े लिखे लोगोंके बड़े कामका ग्रन्थ है । मूल्य दो रुपया ।

नाटक समयसार भाषाटीकासहित।

कविवर पं० बनारसीदासजीके भाषा नाटकसमयसारको कौन नहीं जानता। उनकी भाषा कविता जैनसाहित्यमें शिरोमणि समझी जाती है। इस अध्यात्मकी कविताका अर्थ सबकी समझमें नहीं आता था, इस कारण श्रीयुत नाना रामचन्द्र नाग (जैन ब्राह्मण) ने भाषा बचनिकासहित इस ग्रन्थको खुले पत्रोंमें छपाया है। छपाई सुन्दर है। मूल्य २॥)

बालक-भजनसंग्रह (द्वितीयभाग)।

इसमें नई त र्जे, नई चालके २१ भजनोंका संग्रह है। इसके बनानेवाले लाला भूरामलजी (बालक) मुशरफ जयपुर निवासी हैं। मूल्य डेढ़ आना।

महेन्द्रकुमार नाटकके गायन।

जयपुरकी शिक्षाप्रचारकसमिति जो महेन्द्रकुमार नामका नवीन विचारोंसे परिपूर्ण नाटक खेलती थी उसमेंके गायन छपाये गये हैं। बड़े अच्छे हैं। मूल्य एक आना।

विश्वतत्त्व चार्ट।

यह बढ़िया कागज़ पर छपा हुआ नकशा है। इसमें जैनधर्मके अनुसार सात तत्त्व और उनका विस्तार बतलाया है। जैनधर्मकी सारी बातें इसमें आ गई हैं। प्रत्येक मन्दिरमें जड़वाकर टाँगने लायक है। मूल्य दो आना।

आराधना कथाकोश।

जैनकथाओंका भंडार। मूल संस्कृतसहित सुन्दरतासे छपा है। भाषा बोलचालकी सबके समझने योग्य है। पहले भागका मूल्य १।)

अनित्यभावना ।

श्रीपद्मनन्दि आचार्यका अनित्यपंचाशत मूल और उसका अनुवाद। अनुवाद बाबू जुगलकिशोरजी मुख्तारने हिन्दी कवितामें किया है। शोक दुःखके समय इस पुस्तकके पाठसे बड़ी शान्ति मिलती है। मूल्य डेढ़ आना।

पंचपरमेष्ठीपूजा ।

संस्कृतका यह एक प्राचीन पूजाग्रन्थ है। इसके कर्त्ता श्रीयशोनन्दि आचार्य हैं। इसमें यमक और शब्दाडम्बरकी भरमार है। पढ़नेमें बड़ा ही आनन्द आता है। जो भाई संस्कृत पूजापाठके प्रेमी हैं उन्हें यह अवश्य मँगाना चाहिए। अच्छी छपी है। मूल्य चार आना।

चौवीसी पाठ (सत्यार्थयज्ञ) ।

यह कवि मनरँगलालजीका बनाया हुआ है। इसकी कविता पर मुग्ध होकर इसे लाला अजितप्रसादजी एम. ए. एल एल. बी. ने छपाया है। कपड़ेकी जिल्द बँधी है। मूल्य ॥)

जैनार्णव ।

इसमें जैनधर्मकी छोटी बड़ी सब मिलाकर १०० पुस्तकें हैं। सफ़रमें साथ रखनेसे पाठादिके लिए बड़ी उपयोगी चीज़ है। बहुत सस्ती है। कपड़ेकी जिल्द सहित मूल्य १।)

श्रीपालचरित ।

पहले यह ग्रन्थ छन्द बंध छपा था। अब पं. दीपचन्दजीने सरल बोलचालकी भाषामें कर दिया है जिससे समझनेमें कठिनाई नहीं पड़ती। पक्की कपड़ेकी जिल्द बँधी है। मूल्य १)

जम्बूस्वामीचरित ।

यह भी कवितासे बदलकर सादी बोलचालकी भाषामें कर दिया गया है । अन्तिम केवली जम्बूस्वामीका पवित्र चरित्र है । मूल्य ।)

दशलक्षणधर्म ।

इसमें उत्तम क्षमादि दशधर्मोंका विस्तृत व्याख्यान है । रत्नकरंडवचनिका आदि ग्रन्थोंके आधारसे नये ढंगसे लिखा गया है । भाषा बोलचालकी है । साथमें दशलक्षण व्रत कथा भी है । शास्त्रसभामें बाँचने योग्य है । भादोंके तो बड़े कामकी चीज़ है । मूल्य पाँच आना ।

आत्मशुद्धि ।

यह पुस्तक लाला मुंशीलालजी एम. ए. की लिखी हुई हालही प्रकाशित हुई है । विषय नामसे ही स्पष्ट है । जैनग्रन्थोंके आधारसे लिखी गई है । इसमें ' शील और भावना ' भी शामिल है । मूल्य ।)

गृहिणीभूषण ।

स्त्रियोंके लिए बड़ी ही उपयोगी पुस्तक है । जैनस्त्रियोंके सिवाय दूसरी स्त्रियाँ भी लाभ उठा सकती हैं । स्त्रियोंके कर्तव्य, व्यवहार, विनय, लज्जा, शील, गृहप्रबन्ध, बच्चोंका लालनपालन, पातिव्रत, परोपकार आदि-सभी विषयोंकी इसमें सुन्दर शिक्षा दी गई है । भाषा शुद्ध और सरल है । जैनसमाजमें स्त्रीशिक्षाकी इससे अच्छी और कोई पुस्तक प्रचलित नहीं । मूल्य आठ आना ।

महावीरचरित ।

श्रीयुक्त ब्रह्मचारी शीतलप्रसादजीने हालहीमें लिख कर प्रकाशित कराया है । अन्तिम तीर्थंकर भगवान् महावीरका साधारण परिचय पानेके लिए इसे ज़रूर पढ़ना चाहिए । मूल्य एक आना ।

अकलंकचरित ।

इसमें अर्थसहित अकलंकाष्टक, अकलंकदेवका चरित, अकलंकाष्टकका पद्यानुवाद और अकलंकदेवका कुछ ऐतिहासिक परिचय दिया है । फिरसे छपा है । मू० तीन आना ।

हिन्दी भक्तामर–और कल्याणमंदिर ।

दोनोंका जुदा जुदा मूल्य एक एक आना है । यह दोनों स्तोत्रोंका पं. गिरिधर शर्माका खड़ी बोलीमें किया हुआ पद्यानुवाद है ।

सीताचरित ।

इसमें सती सीताजीका पवित्र चरित है । बाबू दयाचन्द्रजी गोयलीय बी. ए. ने नये ढंगसे शिक्षाप्रद बनकर लिखा है । भाषा भी सहज है । स्त्री–पुरुष सब लाभ उठा सकते हैं । मूल्य तीन आना ।

प्रद्युम्नचरितसार ।

बड़े प्रद्युम्नचरितकी कथाका सार भाग इसमें दिया गया है । भाषा सरल है । लेखक; बाबू दयाचन्द्रजी गोयलीय बी. ए. । मूल्य छह आना ।

सूतकी मालायें

जाप देनेके लिए बहुत अच्छी होती हैं । एक रुपयेकी दशके हिसाबसे हमारे यहाँ हर समय मिलती हैं ।

मैनेजर, जैनग्रन्थरत्नाकर कार्यालय,
हीराबाग, पो० गिरगाँव, बम्बई ।

सर्वसाधारणोपयोगी हिन्दी ग्रन्थ।

स्वर्गीय जीवन ।

यह अमेरिकाके आध्यात्मिक विद्वान डा० राल्फ वाल्डो ट्राइनके सुप्रसिद्ध ग्रन्थ In Tune with the infinite का हिन्दी अनुवाद है। पवित्र, शान्त, नीरोगी और सुखमय जीवन कैसे बन सकता है, मानसिक प्रवृत्तियोंका शरीर पर और शारीरिक प्रकृतियोंका मन पर क्या प्रभाव पड़ता है आदि बातोंका इसमें बड़ा हृदयग्राही वर्णन है। प्रत्येक सुखाभिलाषी स्त्रीपुरुषको यह पुस्तक पढ़ना चाहिए। मूल्य ॥≥) ग्यारह आने।

बाबू मैथिलीशरणजी गुप्तके काव्य ग्रन्थ।

हिन्दीके सुप्रसिद्ध कवि बाबू मैथिलीशरणजीको कौन नहीं जानता। अपने ग्राहकोंके सुभीतेके लिए हमने उनके सब ग्रन्थ विक्रीके लिए मँगाकर रक्खे हैं। वाजिब मूल्य पर भेजे जाते हैं:—

भारतभारती, सादी	१)	रंगमें भंग	।)
,, राजसंस्करण	२)	पद्यप्रबन्ध	॥=)
जयद्रथवध काव्य	॥)	मौर्यविजय	।)

जयन्त नाटक।

कविशिरोमाणि शेक्सपियरके 'हेम्लेट' का हिन्दी अनुवाद। इस नाटककी प्रशंसा करना व्यर्थ है। अनुवादके विषयमें इतना कह देना काफी होगा कि इसे बिलकुल देशी पोशाक पहना दी गई है और इस कारण इस देशवासियोंके लिए यह बहुत ही रुचिकर होगा। रूपान्तरित होने पर भी यह अपने मूलके भावोंकी खूब सफलताके साथ रक्षा कर सका है। रंगमंच पर अच्छी तरह खेला जा सकता है। मूल्य ॥)

हिन्दी-ग्रन्थरत्नाकर-सीरीजकी नई पुस्तकें

स्वदेश—जगत्प्रसिद्ध कविसम्राट् डा० रवीन्द्रनाथ टागोरके ८ निबन्धोंका संग्रह। जो लोग असली भारतवर्षके दर्शन करना चाहते हैं, भारतके समाजतंत्र और राष्ट्रतंत्रका रहस्य समझना चाहते हैं, पूर्व और पश्चिमके भेदको हृदयंगम करना चाहते हैं और सच्चे स्वदेशसेवक बनना चाहते हैं उन्हें यह निबन्धावली अवश्य पढ़ना चाहिए। यह सीरीजकी आठवीं पुस्तक है। मूल्य दश आने।

चरित्रगठन और मनोबल—इसमें इस बातको बहुत अच्छी तरहसे बतला दिया है कि मनुष्य अपने चरित्रको जैसा चाहे वैसा बना सकता है। मानसिक विचारोंका चरित्र पर बहुत गहरा प्रभाव पड़ता है। सीरीजकी यह नवीं पुतक है। मूल्य तीन आने।

आत्मोद्धार—यह सीरीजका दशवाँ ग्रन्थ है। यह अमेरिकाकी नीग्रो (हबशी) जातिके नेता डा० बुकर टी. वाशिंगटनका आत्मचरित है। वाशिंगटन एक अतिशय दरिद्र गुलामकी झोपड़ीमें पैदा हुए थे। शिक्षाका कोई इन्तजाम न था। उनकी जातिका पशुओंके बराबर भी हक न था। ऐसे मनुष्यने अपनी उद्योगप्रियता, दृढविश्वास, अश्रान्त परिश्रम और परोपकार शीलतासे इस समय जो प्रतिष्ठा प्राप्त की है

उसका इसमें सिलासिलेवार बड़ा ही मनोरंजक आकर्षक और शिक्षाप्रद वर्णन है। भारतवर्षके लिए यह पुस्तक कल्पवृक्षके तुल्य है। यह घर घर पढ़ी जाना चाहिए। कोई भी मनुष्य इसे विना पढ़े न रहे। इससे जो जो शिक्षायें मिल सकती हैं उनका वर्णन नहीं हो सकता। मूल्य सादी जिल्दका १) पक्की जिल्दका १।) सवा रुपया। यह जैनहितैषीके उपहारमें भी दिया गया है।

शान्तिकुटीर—यह सीरीजका ग्यारहवाँ ग्रन्थ है। यह बाबू अविनाशचन्द्रदास एम. ए. बी. एल. के बंगला ग्रन्थका अनुवाद है। अर्थात् 'प्रतिभा'के और इसके मूल लेखक एक ही हैं। जिन सज्जनोंने 'प्रतिभा'-को पढ़ा है उनको इसकी उत्तमताका परिचय देनेकी ज़रूरत नहीं है। क्योंकि यह भी उसीके ढंगका सुन्दर, भावपूर्ण, पवित्र और शिक्षाप्रद है। इसमें भी प्रकृतिका बहुत ही अच्छा वर्णन है और सादा पवित्र और लोकहितकारी जीवन कैसा होता है यह बतलाया गया है। गार्हस्थ्यजीवनका इससे अच्छा, उन्नत और उदार आदर्श शायद ही और कहीं मिले। बालक—बालिका स्त्रीपुरुष सब ही इसे निःसंकोच होकर पढ़ सकते हैं। हिन्दीमें इस ढंगके उपन्यास बहुत ही कम हैं। मूल्य सादी जिल्दका ॥।) पक्की जिल्दका एक रुपया।

बूढ़ेका ब्याह।

एक सामाजिक काव्य है। एक १० वर्षकी लड़की और साठ वर्षके बूढ़ेके ब्याहकी कथाको लेकर इसकी रचना की गई है। रचना बहुत सुन्दर है। इसके लेखक हिन्दीके प्रसिद्ध कवि श्रीयुक्त सय्यद अमीर अली सा० हैं। साथमें पाँच सुन्दर चित्र दिये हैं। छपाई सफाई और आवरण पृष्ठको देखकर पाठक मुग्ध हो जावेंगे। मूल्य छह आना।

प्रेमप्रभाकर ।

रूसके प्रसिद्ध विद्वान् महार्षि टाल्सटायकी शिक्षाप्रद कहानियोंका हिन्दी अनुवाद । बालक, वृद्ध, युवा सबके पढ़ने लायक । मूल्य एक रुपया ।

शुश्रूषा ।

इन्दौरके नामी डाक्टर ताम्बेसाहबकी प्रसिद्ध पुस्तकका अनुवाद है । निरोगी रहनेके लिए और रोगियोंकी सेवा सिखानेके लिए यह पुस्तक बहुत अच्छी है । इसे पं० गिरिधर शर्माने लिखा है । मूल्य एक रुपया ।

कठिनाईमें विद्याभ्यास ।

बडी बड़ी कठिनाइयोंके रहते हुए भी जिनके हृदयमें विद्याके प्रति भक्ति होती है वे किस तरह विद्वान् बन जाते हैं, मोची, कुम्हार, खेतिहर बढ़ई, मल्लाहों जैसे नीच कुलोंमें भी जन्म लेकर दरिद्रताके दुःखोंमें पड़े रहकर भी उद्योगी पुरुष कैसे बड़े बड़े विद्वान बन गये हैं, अन्धों और पतितोंने भी अपनी विद्यावृद्धि किस तरह की है, इन सब बातोंके ऐतिहासिक उदाहरण इस पुस्तकमें दिये हुए हैं । पढ़कर तबियत फड़क उठती है । विद्याभिरुचि उत्पन्न करने—और उद्योगसे प्रेम करना सिखानेके लिए यह पुस्तक जादूका काम करती है । प्रत्येक भारतवासीके कानों तक इसके शब्द पहुँचना चाहिए। विद्यार्थियोंको तो अवश्य पढ़ना चाहिए । अँगरेजीमें इसकी लाखों प्रतिया बिक चुकी हैं । भाषा सुगम है । मूल्य ॥) पक्की जिल्दका दश आना ।

विद्यार्थीजीवनका उद्देश्य ।

एक छोटासा निबन्ध है । एक नामी विद्वान्के उर्दू निबन्धका अनुवाद है । अनुवादक बाबू दयाचन्द्रजी गोयलीय बी. ए. । विद्यार्थी मात्रको पढ़ना चाहिए । मूल्य एक आना ।

दियातले अँधेरा ।

एक छोटीसी शिक्षाप्रद गल्प है। पढ़कर आप बहुत प्रसन्न होंगे और यदि आप अपनी स्त्रीको पढ़ानेमें लापरवाही करते होंगे तो चिन्तापूर्वक पढ़ाने लगेंगे। मूल्य डेढ़ आना।

सदाचारी बालक ।

यह भी एक छोटीसी सुन्दर गल्प है। बालकों और विद्यार्थियोंके कामकी है। मूल्य डेढ़ आना।

सामाजिक चित्र ।

इस गल्पमें एक उदारहृदय युवाके सुन्दर चरित्रका चित्र खींचा गया है। मूल्य एक आना।

मनोहर सच्ची कहानियाँ ।

राजपूतानेके प्रसिद्ध प्रसिद्ध वीर पुरुषों और वीरबालाओंकी कहानियाँ फड़कती हुई भाषामें लिखी गई हैं। इसके लेखक पं० द्वारकाप्रसादजी चतुर्वेदी हैं। मूल्य आठ आना।

कहानियोंकी पुस्तक ।

यह लाला मुशीलालजी एम. ए. की लिखी हुई है। इसमें छोटी छोटी सच्ची कहानियोंका संग्रह है जो कि बहुत ही शिक्षाप्रद हैं। विद्यार्थियोंके विशेष कामकी है। मूल्य पाँच आना।

-ःराष्ट्रीय ग्रन्थः-

१ सरल-गीता । इस पुस्तकको पढ़कर अपना और अपने देशका कल्याण कीजिये । यह श्रीमद्भगवद्गीताका सरल-हिन्दी अनुवाद है । इसमें महाभारतका संक्षिप्त वृत्तान्त, मूल श्लोक, अनुवाद और उपसंहार ये चार मुख्य भाग हैं । सरस्वतीके सुविद्वान संपादक लिखते हैं कि यह 'पुस्तक दिव्य है ।' मूल्य ॥।)

२ जयन्त । शेक्सपियरका इंग्लैंडमें इतना सम्मान है कि वहांके साहित्यप्रेमी अपना सर्वस्व उसके ग्रन्थोंपर न्योछावर करनेके लिए तैयार होते हैं । उसी शेक्सपियरके सर्वोत्तम 'हेम्लैट' नाटकका यह बड़ा ही सुन्दर अनुवाद है । मूल्य ॥।=); सादी जिल्द ॥।)

३ धर्मवीर गान्धी । इस पुस्तकको पढ़कर एक बार महात्मा गान्धीके दर्शन कीजिये, उनके जीवनकी दिव्यताका अनुभव कीजिये और द० अफ्रिकाका मानचित्र देखते हुए अपने भाइयोंके पराक्रम जानिये । यह अपूर्व पुस्तक है । मूल्य।)

४ महाराष्ट्र-रहस्य । महाराष्ट्र जातिमें कैसे सारे भारतपर हिन्दू साम्राज्य स्थापित कर संसारको कंपा दिया इसका न्याय और वेदान्तसंगत ऐतिहासिक विवेचन इस पुस्तकमें है । परन्तु भाषा कुछ कठिन है । मूल्य-)॥

५ सामान्य-नीतिकाव्य । सामाजिक रीतिनीतिपर यह एक अनूठा काव्य ग्रन्थ है । सब सामयिक पत्रोंने इसकी प्रशंसा की है । मूल्य =)

इन पुस्तकोंके अतिरिक्त हम हिन्दीकी चुनी हुई उत्तम पुस्तकें भी अपने यहाँ विक्रयार्थ रखते हैं ।

नवनीत-मासिक पत्र । राष्ट्रीय विचार । वा० मूल्य २)

यह अपने ढंगका निराला मासिक पत्र है । हिन्द देश, जाति और धर्म इस पत्रके उपास्य देव हैं । आत्मिक उन्नति इसका ध्येय है । इतना परिचय पर्याप्त न हो तो ।-) के टिकट भेजकर एक नमूनेकी कापी मंगा लीजिये ।

दद्रुदमन—दादकी अकसीर दवा फी डबी ।)

दन्तकुमार—दांतोंकी रामबाण दवा । डबी ।)

नोट—सब रोगोंकी तत्काल गुण दिखानेवाली दवाओंकी बड़ी सूची

चित्रशाला स्टीम प्रेस, पूना सिटिकी अनोखी पुस्तकें।

चित्रमयजगत्—यह अपने ढंगका अद्वितीय सचित्र मासिकपत्र है। " इलेस्ट्रेटेड लंडन न्यूज " के ढंग पर बड़े साइजमें निकलता है। एक एक पृष्ठमें कई कई चित्र होते हैं। चित्रोंके अनुसार लेख भी विविध विषयके रहते हैं। साल भरकी १२ कापियोंको एकमें बंधा लेनेसे कोई ४००, ५०० चित्रोंका मनोहर अलबम बन जाता है। जनवरी १९१३ से इसमें विशेष उन्नति की गई है। रंगीन चित्र भी इसमें रहते हैं। आर्टपेपरके संस्करणका वार्षिक मूल्य ५॥) डॉ० व्य० सहित और एक संख्याका मूल्य ॥) आना है। साधारण कागजका वा० मू० ३॥) और एक संख्याका ।=) है।

राजा रविवर्माके प्रसिद्ध चित्र—राजा साहबके चित्र संसारभरभरमें नाम पा चुके हैं। उन्हीं चित्रोंको अब हमने सबके सुभीतेके लिये आर्ट पेपरपर पुस्तकाकार प्रकाशित कर दिया है। इस पुस्तकमें ८८ चित्र मय विवरणके हैं। राजा साहबका सचित्र चरित्र भी है। टाइटल पेज एक प्रसिद्ध रंगीन चित्रसे सुशोभित है। मूल्य है सिर्फ १) रु०।

चित्रमय जापान—घर बैठे जापानकी सैर। इस पुस्तकमें जापानके सृष्टि-सौंदर्य्य, रीतिरवाज, खानपान, नृत्य, गायनवादन, व्यवसाय, धर्मविषयक और राजकीय, इत्यादि विषयोंके ८४ चित्र, संक्षिप्त विवरण सहित हैं। पुस्तक अव्वल नम्बरके आर्ट पेपर पर छपी है। मूल्य एक रुपया।

सचित्र अक्षरबोध-छोटे २ बच्चोंको वर्णपरिचय करानेमें यह पुस्तक बहुत नाम पा चुकी है। अक्षरोंके साथ साथ प्रत्येक अक्षरको बतानेवाली, उसी अक्षरके आदिवाली वस्तुका रंगीन चित्र भी दिया है। पुस्तकका आकार बड़ा है। जिससे चित्र और अक्षर सब सुशोभित देख पड़ते हैं। मूल्य छह आना।

वर्णमालाके रंगीन ताश—ताशोंके खेलके साथ साथ बच्चोंके वर्णपरिचय करानेके लिये हमने ताश निकाले हैं। सब ताशोंमें अक्षरोंके साथ रंगीन चित्र और खेलनेके चिन्ह भी हैं। अवश्य देखिये। फी सेट चार आने।

सचित्र अक्षरलिपि—यह पुस्तक भी उपर्युक्त "सचित्र अक्षरबोध" के ढंगकी है। इसमें बाराखडी और छोटे छोटे शब्द भी दिये हैं। वस्तुचित्र सब रंगीन हैं। आकार उक्त पुस्तकसे छोटा है। इसीसे इसका मूल्य दो आने हैं।

सस्ते रंगीन चित्र—श्रीदत्तात्रय, श्रीगणपति, रामपंचायतन, भरतभेट हनुमान, शिवपंचायतन, सरस्वती, लक्ष्मी, मुरलीधर, विष्णु, लक्ष्मी, गोपीचन्द, अहिल्या, शकुन्तला, मेनका, तिलोत्तमा, रामवनवास, गजेंद्रमोक्ष, हरिहर भेट, मार्कण्डेय, रम्भा, मानिनी, रामधनुर्विद्याशिक्षण, अहिल्योद्धार, विश्वामित्र मेनका, गायत्री, मनोरमा, मालती, दमयन्ती और हंस, शेषशायी, दमयन्ती इत्यादिके सुन्दर रंगीन चित्र। आकार ७×५, मूल्य प्रति चित्र एक पैसा।

श्री सयाजीराव गायकवाड बड़ोदा, महाराज पंचम जार्ज और महारानी मेरी, कृष्णशिष्टाई, स्वर्गीय महाराज सप्तम एडवर्डके रंगीन चित्र, आकार ८×१० मूल्य प्रति संख्या एक आना।

लिथोके बढियाँ रंगीन चित्र—गायत्री, प्रातःसन्ध्या, मध्याह्न सन्ध्या, सायंसन्ध्या प्रत्येक चित्र।) और चारों मिलकर ॥) नानक पंथके दस गुरू, स्वामी दयानन्द सरस्वती, शिवपंचायतन, रामपंचायतन, महाराज जार्ज, महारानी मेरी। आकार १६ × २० मूल्य प्रति चित्र ।) आने।

अन्य सामान्य—इसके सिवाय सचित्र कार्ड, रंगीन और सादे, स्वदेशी बटन, स्वदेशी दियासलाई, स्वदेशी चाकू, ऐतिहासिक रंगीन खेलनेके ताश, आधुनिक देशभक्त, ऐतिहासिक राजा महाराजा, बादशाह, सरदार, अंग्रेजी राजकर्ता, गवर्नर जनरल इत्यादिके सादे चित्र उचित और सस्ते मूल्य पर मिलते हैं। स्कूलोंमें किंडरगार्डन रीतिसे शिक्षा देनेके लिये जानवरों आदिके चित्र सब प्रकारके रंगीन नकशे, ड्राईंगका सामान, भी योग्य मूल्यपर मिलता है। इस पतेपर पत्रव्यवहार कीजिये।

मैनेजर चित्रशाला प्रेस,
पूना सिटी।

श्रीपरमात्मने नमः ।

रिपोर्ट

भारतीयजैनसिद्धांतप्रकाशिनीसंस्थाकी

वी.नि.सं. २४३९ से २४४० की दीवालीतक ।

जिसको

पन्नालाल बाकलीवाल

मंत्री–भारतीयजैनसिद्धांतप्रकाशिनीसंस्था काशीने

बनारसके

चंद्रप्रभाप्रेसमें बाबू–गौरीशंकरलालके प्रबंधसे छपाया ।

वीरनिर्वाण संवत् २४४१ इस्वी सन् १९१५ ।

जैनप्रेसकी आवश्यकता।

यहां बनारसमें कोई प्रेस ५-६ फारमसे जियादा काम नहिं देता संस्कृतका काम बड़ा ही कठिन है ५-६ बार प्रूफ देखे विना ग्रंथ शुद्ध नहिं हो सकते। यहांके प्रेस ४ बारसे जियादा शुद्ध करनेको प्रूफ नहिं देते। सो भी सामको प्रूफ देते हैं सवेरे ही ८ बजे ८ पेज शुद्धहुये चाहते हैं। हमारे संपादक सब उच्च कक्षाके विद्यार्थी हैं विद्यार्थियों को पढने घोकनेका प्रातःकाल ही उत्तम समय है। इसलिये रात्रिको ही निद्रा छोड़ शोधना पड़ता है। दिनभरकी कड़ी पढ़ाईसे मगूज खाली होजाता है ऐसी अवस्थामें इन प्राचीन महान् ग्रंथाकों संशोधन ठीक होना अत्यंत कष्टसाध्य है। यदि घरका प्रेस हो तौ ४ बारकी जगह ८ बार प्रूफ देख सकते हैं। रातको सवेरे न देखकर दुपहरको अच्छे मगजसे निराकुलतासे देखकर बहुत ही शुद्ध ग्रंथ छपा सकते हैं। इसके सिवाय जो काम दूसरोंके प्रेसमें २०००) रुपये देनेपर छपता है वह घरके प्रेसमें २०००)में ही छप जायगा। दूसरेके प्रेसमें कभी २ स्याही घटिया लगा देते हैं जल्दी जल्दी छापकर खराब छपाई कर देते हैं, घरके प्रेसमें अच्छे कारीगर रखकर धीरें २ निर्णयसागरप्रेसकी छपाईसे भी बढ़िया छपाई करके सुंदर मनोरंजक ग्रंथ निकाल सकते हैं। इसलिये यदि कोई महाशय इस संस्थाको कमसे कम २०००) रुपयेका दान व सहायता करैं तौ संस्थाका काम बहुत ही उत्तमतासे स्थायी चल सकता है। यदि कोई महाशय दान नहिं कर सकैं तौ २०००) रुपया ।।) या ।।।) सैकड़ेके ब्याजपर ही दें। यदि रकम जानेका डर हो तौ वे प्रेस, वगैरह सब सामान बतौर गिरवीके रख सकते हैं। आशा है कि चैत्रतक कोई महाशय इस प्रार्थना पर भी ध्यान देकर हमे सहायताकी स्वीकारता भेजेंगे।

प्रार्थी—पन्नालाल बाकलीवाल,

ठि—मदागिन जैनमंदिर पोष्ट·बनारस सिटी।

श्रीवीतरागाय नमः ।

भारतीयजैनसिद्धांतप्रकाशिनीसंस्थाकाशीकी द्विवार्षिक-रिपोर्ट ।

वी. नि. सं. २४३९ से २४४० की दीवाली तक।

संस्थाकी उत्पत्तिके कारण ।

पाठकमहाशय मैं बंबईके निवास तथा रोजगारसे विरक्त होकर किसी तीर्थस्थानमें रहकर किसी भी धार्मिक संस्थाकी सेवा करके शेषजीवन बितानेकी इच्छासे निकला था. फिरते घूमते शेषमें जब हस्तिनापुरके नवीन स्थापित ऋषभब्रह्मचर्याश्रममें चार महीने निवास किया तो वहीं पर बंगला अखबारोंके पढनेसे विचार हुआ कि— "इस समय बंग देशमें साहित्यकी उन्नति व नवीन विषयकी खोज में विद्वानोंकी बड़ी भारी उत्कंठा है । यदि वहांपर बंगभाषामें कुछ जैनग्रंथ प्रकाशित करके जैनधर्मका परिचय कराया जाय तो चिरकालसे मत्स्यमांसभोजी कालीभक्त बंगाली विद्वानोंके हृदय में अहिंसाधर्मका प्रकाश वा प्रभाव अवश्य ही पड़ सकता है" ऐसा विचार होनेपर बंगभाषाके साहित्यसे अनभिज्ञ होतेहुये भी मैंने वहीं पर 'जैनधर्मका परिचय' और 'जैनसिद्धांतप्रवेशिका' नामकी दो पुस्तकोंका बंगानुवाद कर डाला और अपने एक प्राचीन मित्र बंगाली विद्वान् से भाषाका संशोधन कराकर प्रेसकापी भी तैयार कराकर मंगाली परंतु छपानेकेलिये द्रव्य व बंगला प्रेसका प्रबंध वहां जंगलमें होना असंभव था । तब विचार किया गया

कि–इनका मुद्रणकार्य व प्रचार कलकत्ता रहनेसे हो सकता है परंतु कलकत्तेमें अनेक छापेके विरोधी भाइयोंका निवास विशेष देख वहां जानेका साहस न हुवा तब तीर्थस्थान, और अपने प्रयत्नसे स्थापित स्याद्वादपाठशालाके सुधार करनेकी भी इच्छा रखकर काशीमें ही रहना स्थिर कर लिया और यहींपर आकर श्रीयुत बाबू नंदकिशोरजी व देवेंद्रप्रसादजीसे मिलकर उन्हींको सभापति मंत्री आदि बना कर 'वंगीयसार्वधर्मपरिषत्' नामकी एक संस्था स्थापन करके यथाशक्य परिश्रम करने लगा और श्रेष्ठिवर्य नाथारंगजी गांधीकी विशेष उदारतासे उत्साहके साथ कार्य प्रारंभ हो गया। परंतु अचिरकालमें ही उक्त महाशयोंका विशेष परिचय मिलनेसे और हमारे स्वभावसे सर्वथा विरुद्धप्रकृति पानेसे लाचार होकर उक्त परिषदसे सर्वथा ही संबंध छोडदेना पडा और अपने उद्देश्यकी सिद्धि केलिये 'श्रीजैनधर्मप्रचारिणीसभा काशी' नामकी एक नवीन संस्था स्थापन करना पडी और श्रीमान् श्रेष्ठिवर्य गांधी नेमिचंद बहालचंदजी वकील उस्मानाबाद निवासीकी विशेष द्रव्यसहायता होने से सांख्य, न्याय वेदांतके ज्ञाता अजैन विद्वानोंमें अहिंसा धर्म वा अनेकांत जैनसिद्धांतोंका प्रकाश करनेकेलिये तो "**सनातनजैनग्रंथमाला**" का प्रारंभ किया गया और सर्वसाधारण अजैनोंमें वा बंगदेश में जैनधर्मका प्रचार करनेकी इच्छासे हमारे प्रातःस्मरणीय पूज्यपाद गुरुवर्य पं. चुन्नीलालजी मुरादाबाद निवासीके नामस्मरणार्थ '**चुन्नीलालजैनग्रंथमाला**' और बंगलाके पेपरोंमें जैनधर्म संबंधी लेख प्रकाशित करनेमें प्रयत्न करना प्रारंभ किया गया। परंतु विरोधियोंकी तरफसे हमारे कार्यसाधनमें ऐसे २ विरोध पदपद पर खड़े किये गये जिनका कुछ भी जवाब न देकर यथाशक्ति कार्य करनेमें ही ध्यान लगाया गया। तथापि इस विरोधके कारण हमारे ग्रंथप्रकाशनकार्यमें परमसहायक दानवीर श्रेष्ठिवर्य

नाथारंगजी गांधीवालोंके साथ भी ऐसा विरोध हो गया कि उन से सहायता मिलना तो दूर रहा पत्रव्यवहारतक बंद हो गया और उनके द्रव्यसे उनके नामसे जैनेंद्रव्याकरणादिका पूरा पूरा उद्धार होनेका कार्य चलते चलते ही बंध हो गया तथा इस धर्म कार्यके परमसहायक श्रीयुत पंडित लालारामजी थे, उनकोभी आदिपुराणजीके बडे भारी कार्यसहित बनारस छोडकर कोल्हापुर चले जाना पडा और २० वर्षसे गणेशप्रसाद न्यायाचार्यके साथ अत्यंतप्रीतिमय गुरुशिष्यभाव था वह भी नष्ट होगया। इत्यादि अनेक कारणोंसे सभाके समस्त उद्देश्योंकी पूर्ति करनेमें असमर्थ होनेसे लाचार होकर गतवर्ष स्याद्वादमहाविद्यालयके उत्सवके समय अनेक महाशयोंकी संमतिसे ग्रंथप्रकाशनमात्रका एक ही उद्देश्य रखकर संस्थाका नाम बदलकर '**भारतीयजैनसिद्धांतप्रकाशिनी-संस्था**' रखना पडा। इसके शिवाय इस धार्मिक संस्थाकी उत्पत्तिके दो प्रधान कारण और भी हैं--एक तो स्याद्वादमहाविद्यालयमें पढाई का उचित प्रबंध न होने आदिके ५२ कारणोंसे होनहार ७ विद्यार्थियोंका अलग होकर विद्याध्ययनका सहारा न होना, दूसरे कलकत्ता संस्कृतयूनिवर्सिटीमें श्वेतांबरी जैनग्रंथोंकी तरह दिगंबरी ग्रंथ भी मुद्रण कराकर भरती करानेकी प्रबल इच्छाका होना। इन ही कारणोंसे इस संस्थाका प्रादुर्भाव हुवा है और मुख्यतासे संस्कृत ग्रंथ और गौणतासे हिंदीबंगलामें जैनग्रंथ प्रकाशकर अजैन विद्वानोंमें जिनधर्म की प्रभावना करनेका ही एकमात्र उद्देश्य निश्चित किया गया।

कार्यारंभका विचारविभ्रम और अंत।

पाठक महाशय! उक्त उद्देश्यके साधनार्थ कार्य प्रारंभ करने का विचार तो कर लिया गया परंतु इस कार्यकी गुरुतापर विचार करनेसे हमारे सब विचार प्रायः हवा हो गये क्योंकि इसमें अत्यंत

परिश्रमके अतिरिक्त द्रव्यकी बड़ी भारी आवश्यकता दीखने लगी। सनातनजैनग्रंथमालाका १० फारमका एक अंक छपाकर तैयार करनेका हिसाब लगाया गया तो मालूम हुवा कि कमसे कम ८) रु० फारम तो उत्तम छपाईका और ८) ही रुपये ५० पौंडके कागजका ५) या ६) रुपये प्रत्येक फारमका संपादकीय व्यय (लिखाई सुधाई वगैरह) इस प्रकार २१) २२) रुपया एक फारमके अंदाज खर्च होनेसे १० फारमके अंककी छपाई मयटाइटलपेजके अनुमान २३०) रुपये खर्च पड़ेंगे इसके सिवाय एक मकान या गुदाम चाहिये एक सिपाही प्रूफ पहुंचानेवाला डाँक लेजानेवाला तथा मकानकी सफाई, तेलबत्ती, इस्तहार, बारदाना, चिट्ठीलिफाफा, पुस्तकें रखने वगैरहको फर्नीचर बनवाने वगैरहके अनेक खर्च सूझने लगे। करीब करीब तीनसौ रुपये महीनेके खर्चसे कम खर्च नहीं पड़ेगा, ऐसा निश्चय होनेपर हमारे विचार फिर उडने लगे तब खर्च कम करनेका विचार किया गया तो छपाई कम देने, कागज पतले घटिया लगाने, सुधाई कम देनेका खर्च तो किसी प्रकार भी कम नहीं करसके। तब फुटकर खर्चकी कमी करनेका प्रयत्न किया गया जब उसमें भी कमी नहिं हो सकी तब श्रीयुत पंडित लालारामजीके स्याद्वादरत्नाकरकार्यालयका बड़ा भारी सहारा मिल गया, अर्थात् मकानभाड़ा, तेलबत्ती, कागज सुतली, आदमी, फर्नीचर वगैरह कछ भी जुदे नहिं करना इसीमें सब चलाते रहना, जब आमदनी हो, स्टाक बढ़जाय तब मकान आदिके भाडेकी फिकर करना, तब ऐसा ही हुवा ७) रुपये महीनेका मकानभाड़ा वगैरहका प्राय कुल खर्च १२ महीने तक स्याद्वादरत्नाकरकार्यालयमेंसे ही बराबर होता रहा। इसप्रकार फुटकर खर्चका हिसाव विठाकर शेष छपाई वगैरहका कुल खर्च २५०) के अनुमान समझा गया। तदनंतर जब आमदनीका हिसाब लगाया गया तो ऐसा विचार उत्पन्न हुवा

कि जब यह धार्मिक संस्था है, इसका लाभ नुकसान इसी का है और हमलोग इसकी निःस्वार्थ सेवा करेंगे तो हमारे दानवीर धनाढ्य गण इस कार्यको समस्त धर्मकार्योंकी एकमात्र जड़ अत्यंत उपयोगी समझ कर क्यों न सहायता करेंगे ? अवश्य ही करेंगे । परंतु जब धनाढ्य महाशयोंकी पूर्वकालकी स्थितिपर विचार किया गया तो धनाढ्य महाशयोंसे धनाशा रखनेवाली महाविद्यालय, बंबई जैन विद्यालय, स्याद्वादशपाठशाला, मोरेनाविद्यालय परीक्षालय आदि धर्मसंस्थायें अबतक धनाभावके अंधकूपमें दुर्दशाग्रस्त पड़ीहुई पाई गई ? ऐसी दशामें वे इस संस्थापर क्यों विचार करने लगे ? इनके सिवाय छापेके विरोधीकंटक भी रास्तेमें जहांतहां विघ्नविनायक बन नेकेलिये तत्पर खड़े हुये हैं ? तब धनाढ्यमहाशयोंसे सहायता मिले गी ऐसी आशापर तो कार्यप्रारंभ करना सर्वथा खामखयाली है। तब दूसरा विचार हुवा कि धनपात्रोंसे भारी आशा न रखकर थोड़ी २ आशा करके सबसे सौसौ रुपयोंकी सहायता लेना और उन रुपयोंके बदलेमें उनको शास्त्रदान करनेकेलिये प्रत्येक अंककी पंद्रह २ प्रति (१८०) रुपयोंके शास्त्र) भेजदेनेसे सायद वे लोग सौसौ रुपयोंके दानीग्राहक खुशीके साथ हो जांयगे, तब संभव है कि इतनी बड़ी भारी धनिक जैनसमाजमेंसे ऐसे २ कमसे कम २५ महाशय तो अवश्य ही मिल जांयगे। इसप्रकारका विचार निश्चय होनेपर हमने एकप्रार्थना पत्र छपाकर जितने ठिकाने नाम धनाढ्य महाशयोंके मिले सबके पास भेज दिये। एकबार सायद खयालमें न आवे, दूसरीबार भेजेगये फिर अनेक महाशयोंके पास तीसरी बार भी भेजगये परतु सिवाय ४ महाशयोंके अन्य किसीका भी एककार्डद्वारा हां नां का जवाबतक न मिला उन चारमें सबसे प्रथम तो- छपरानिवासी श्रीमान् बाबू-रामेश्वरलाल जीजैनी रईस हैं जिनोंने पहिलापत्र पहुंचते ही सहर्ष (१००) रुपये देकर दानीग्राहक बनना स्वीकार किया। दूसरे महाशय श्रीमान् लाला

बद्रीप्रसादजी महावीरप्रसादजी वकील विजनौर निवासी हैं। इन्होंने भी १००) रुपये देकर दानीग्राहक बनना स्वीकार किया–तीसरे महाशय शोलापुरनिवासी शेठ हीराचंद अमीचंदजी शाह हैं जिन्होंने २४ ग्राहक और हो जांय तौ २५ वाँ मुझे समझना ऐसा लिखा। चौथे महाशय बमराना वा ललितपुर निवासी सेठ लक्ष्मीचंदजी साहब हैं जिन्होंने लिखा कि १००) रुपयोंका दानी ग्राहक तौ मैं नहिं बनता किंतु ८) रुपयोंका ग्राहक बनता हूं। जब धनाढ्य महाशयोंकी ऐसी धर्मप्रीति वा जिनवाणी जीर्णोद्धारमें अत्यंतप्रीति देखीगई तब एकदम हताशहोना पडा, दो दिन दोरात इसी विचारमें मग्न रहा कि अब क्या करना चाहिये ? तब स्मरणआनेपर पद्मनंदिपच्चीसी आदि शास्त्रोंके प्रकाशक दानवीर श्रेष्ठिवर्य नेमिचंद बहालचंदजी वकीलकी सेवामें वही प्रार्थनापत्र भेजकर एकांत प्रार्थना की गई कि--"कमसे कम यदि दोहजारकी द्रव्यसहायता मिल जाय तौ हम १२ महीनेतक इसीसहायतापर ही १२ अंक निकाल देंगे–तब अनेक धनाढ्यमहाशय हमारे परिश्रमपर खयालकरके सहायता देने लग जांयगे अगर किसीने नहीं भी दी तौ तबतक हम इस्तहारों और अपीलोंसे आठ २ रुपये देनेवाले कमसे कम २०० ग्राहक और सौ सौ रुपयोंके ८–१० दानीग्राहक बना लेंगे और आगेकेलिये काम चल जायगा। इसप्रकारका प्रार्थनापत्र भेजनेपर हर्ष है कि–उक्तमहाशयने तत्काल ही दोहजार रुपये देनेकी स्वीकारताका पत्र भेजकर हमारे उत्साह को कार्यमें परिणत करा दिया। उस पत्रकी अक्षरशः नकल भी हम यहाँ देदेना उचित समझते हैं—यथा—

ता० २ जुलै सन् १९१२ ईसवी

"बाद जयजिनेंद्रके विशेष आपका पत्र नंबर ९०३ मु० २१–६–१२का पोहंचा० इसमें शंका नहीं के जिनवाणीके उद्धारार्थ आप बहोत प्रयत्न करते हैं आपके. पत्रसे यह मालूम हुवाके दो हजार

रुपये आपको दिये जायें तो आप काम शुरू करदेनेपर तयार हैं हम इस वक्त एकहजार और सात आठ महीने बाद एक हजार ऐसें दोहजार रुपये आपको दे देते हैं। आप काम शुरू कर दीजिये लेकिन शरायत यह होंगे—

१-ग्रंथ छपनेबाद बेचकर उससे जो रुपया वसूल होता जायगा वह हमको भेजते जाइये तो हम फिर उस रुपयेको इसीकाम में लगावेंगे।

२-ग्रंथपर बालचंद कस्तूरचंद धाराशिवाले (हमारेपिताजी) का नाम मुद्रित होना चाहिये क्योंकि उनके स्मारकफंडसे यह रकम दी जायगी।

इस वक्त जो एकहजार रुपया भेज देना है उसके बाबत बंबई की हुंडवी यहांसे आप जिस पतेपर कहो भेज देता हूं। काम शुरू होनेके बाद बाकी रुपया भी ऊपर लिखे मूजब भेजदूंगा।

उत्तराभिलाषी—

नेमचंद बालचंद वकील उस्मानाबाद।

बश फिर क्या था हमने भी सहर्ष उपर्युक्त दोनों शर्तें स्वीकार करके हुंडियोंसे रुपये मगा २ कर काम छपाना शुरू कर दिया। और सवासौ कापी तो जर्मन, लंदन, कलकत्ता, आदिके अजैनविद्वानों पत्रसंपादकोंके समीप और लाइब्रेरियोंमें विनामूल्य भेजना शुरू करदिया और करीब १०० प्रतियें जैनीमहाशयोंको मूल्यप्राप्ति की इच्छासे भेजना शुरू किया परंतु अनेकमहाशयोंने तो पहुंचतक नहीं लिखी, अनेक धनाढ्यमहाशयोंको जब वी. पी. किया गया तो वापिस कर दिया और अनेकमहाशयोंको कई पत्र दिये तो कुछ भी जवाब नहिं आया तब उन्हें भेजना ही बंद कर दिया। इसके सिवाय विज्ञापन, प्रार्थना, अपीलें जैनमित्र जैनहितैषी दिगंबरजैन आदिमें बहुत कुछ छपायीं परंतु दो वर्षके साल खतमतक कुल ७७ ग्राहक आठ २ रुपये देनेवाले और तीन महाशय सौ सौ रुपये देनेवाले दानी

ग्राहक बना पाये। उक्त दो हजार रुपये तौ आठही अंकोंतक खतम हो गये परंतु ग्राहकोंकी आमदनीसे काम धीरें २ चलता रहा जिससे एकवर्षका कामदो वर्षमें कर पाये। इसदेरीका दूसरा कारण यह भी है कि एक तो यहांका कोई भी प्रेस इसग्रंथमालाके १० फारम एक महीनेमें नहिं दे सकता क्योंकि प्रूफ चार २ बार देखना पडता है वारीक टाइप में होनेसे प्रेसवाले राजकी रोज प्रूफ संशोधन कर वापिस नहिं भेज सकते थे। दूसरे इसके संपादकगण बनारस कलकत्ता बंबईकी तीन तीन परीक्षावोंके ग्रंथ पढते तथा और २ विद्यार्थियोंको पढाने वगेरह में अहोरात्र लगे रहते हैं तथा ये सब ग्रंथ गुरुमुखसे अपठित व कर्णाट की लिपीमें होनेसे इनका संशोधन संपादन करना बहुत ही मनोनि-वेशपूर्वक उत्कटपरिश्रमसाध्य कार्य हैं सो ठीक समयपर प्रूफ नहिं दे सकते थे तथा मेरे पावोंमें झझनीवातका उत्कट रोग होजानेके कारण मैं तीनबार मोरादाबाद नगीना बिजनौर इलाज करानेको गया, तीन महीने कोल्हापुर और एक महीना नागोरको चलागया था जिससे मेरे पीछे जैसा चाहिये वैसा शीघ्रतासे काम नहिं चला। इसके सिवाय कागज बढिया बाजारमें न मिलनेसे मेरे पीछे कागजके अभावसे भी बहुतकुछ समय व्यर्थ चला गया इत्यादि अनेक विघ्न इसकार्यके संपादन करनेमें विलंबके कारण हो गये।

इसप्रकार बडे कष्टसे काम चलाया गया, इतनेहीमें सब रुपये लग गये। कागजदेनेवाली कंपनीका कर्ज होगया तब लाचार होकर काम बंदकर देनेकी सूचना छपाई गई और कई शेठोंसे पत्रव्यव-हार भी किया गया तौ—जैनेंद्रप्रक्रिया पूर्ण करानेके लिये तौ १००) रुपये शोलापुर निवासी शेठ रावजी सखारामजी दोशीने भेजे और ५००) रुपये राजवार्त्तिकजी पूर्णकरानेकेलिये शोलापूर निवासी श्रेष्ठि वर्य हीराचंद नेमिचंदजी दोशी आनरेरी मजिष्ट्रेट महाशयने बदलेमें पुस्तके लेलेनेके वायदेपर भेजे और ५००) इंदौर निवासी दानवीर

शेठ कस्तूरचंदजी महाशयने एक मुस्त दान करके भेजे । इनमेंसे शेठहीराचदजीके ५००) रुपये तौ वापिस भेजदेनेको लिखा गया और ३००) भेज भी दियेगये क्योंकि उससमय हमें कलकत्ता यूनिवर्सिटी में भरतीहुये जैनेंद्रशाकटायन व्याकरणको परीक्षातक पूर्णकरनेकी शीघ्रता थी, राजवार्त्तिकजी परीक्षामें नहीं था इसकारण इसका काम पहिले चलाना इष्ट नहीं था। और शेष रुपये जैनेंद्रप्रक्रिया, शब्दार्णवचंद्रिका और शाकटायनके अंक छपानेमें लगाये गये। परंतु प्रेस तीसरा न मिलनेसे तथा आगेको रुपंय खुट जानेपर फिर दूसरी सहाताकी उम्मद न रहनेके कारण वर्तमानवर्षमें शाकटायनकी चिंतामणि टीका तौ चौथाई छपाकर एकदम बंदकरादिया उसकी जगह राजवार्त्तिकजी और शब्दार्णवचंद्रिका ही छपाना जारी रखा परतु रुपया जा आया था सब कर्जचुकाने वगैरहमें पूरा होगया तब लाचार होकर पुरानेग्राहकोंको ११ वां १२ वां अंक नये नियमोंके अनुसार दशकी जगह आठ२ रुपंय ही अगले शालके पेशगी लेनेकी इच्छासे सबको वी.पी. से भेज गये जिसकी मुद्रित सूचना पहिले दे चुकेथ उसमें प्रार्थना कर दीगई थी कि अगले दोनोंअंक आठ २ रुपयोंके वी.पी. से भेजेंगे जिनको ग्राहक न रहना हो एककार्डद्वारा सूचना देदें जिससे संस्था के चार २ आने व्यर्थ नष्ट न हों परंतु दोचारके सिवाय किसीने भी सूचना नहीं दी, लाचार 'तूष्णं अर्धसम्मति' का अवलंबनकर सबको वी.पी. कियेगये परंतु खेद है कि-कुल ४२ ही महाशयोंने आगामी वर्षमें ग्राहक रहकर शेषमहाशयोंने राजवार्त्तिकादि ग्रंथपूर्ण न लेना चाहा और सबने वी.पी, लौटा दिये। जब हमारे बडे २ धनाढ्य गण व पढे लिखे वकील विद्वान् भी इसप्रकारके जिनवाणी भक्त व जैन धर्मके प्रचारक हैं तब इस ग्रंथमालाका चलना कठिन ही नहीं किंतु असंभव है। तथापि हमे फिर भी इसके ग्राहक वा सहायक बढाकर-इसके चलानेकी प्रबल इच्छा है इसकारण यह रिपोर्ट इस संस्थाकी असली

हालत दिखानेकी इच्छासेही प्रगटकी है सो जो कोई महाशय इससंस्था वा दोनों ग्रंथमालाओंके जीवन रखनेसे यदि कुछ भी लाभ समझते हों तौ बिनाविलंब विद्वान् महाशय तौ अपने २ प्रांतमें उपदेश देकर मंदिरजीके भंडारको, पाठशालाको, पुस्तकालयको, साधारण ग्राहक बनावें और धनाढ्यमहाशयोंको दानीग्राहक बनाकर १००) सौ सौ रुपये प्रथमवर्षके १२ अंकोंके और १००) वर्त्तमान वर्षके १२ अंकोंके भिजवाकर १२ अंकोंकी १८० प्रति मगादेवें । तथा जो धनाढ्य दानवीर हैं अपना नाम वा शास्त्रदानका पुण्यसंचय करना चाहते हैं, वे-अपने पिता वगैरहके नामस्मणार्थ एकएक ग्रथ छपानेके लिये २००) ४००) ५००) या जितना वे चाहें एकएक रकम भेज कर यश वा पुण्यसंचय करें । जबतक दशदशरुपयोंके २०० ग्राहक और सौसौरुपयोंके १०-१५ दानीग्राहक न होंगे तबतक हम आगको यह काम नहिं चलावेंगे हमने जैनहितैषी आदि पत्रोंमें भी नये नियमोंके इस्तहार दिये हैं और यह रिपोर्ट वा अपील भी आप महाशयोंकी सेवामें भेजी जाती है। यदि चैतसुदी १५तक साधारण२०० ग्राहकोंके बननेकी वा दानीमहाशयोंसे काफी द्रव्यकी स्वीकारता न आजायगी तबतक हम इसग्रंथमालाको सर्वथा बंद रखते हैं। अतएव अभी कोईभाई रुपया न भेजें सिर्फ ग्राहक होनेकी वा ग्रंथछपानेकी द्रव्यस्वीकारता मात्र भेजें जब चैत्रसुदी १५ को हम देखलेंगे कि ग्रंथमाला चलानेलायक ग्राहक वा सहायता आगई है तब तो हम फिर नये उत्साह नये परिश्रम वा नये ढंगसे इस कामको सुरू कर देंगे। यदि ग्रंथमाला चलानेलायक ग्राहक वा पूरी सहायता न आई तौ वैसाखसुदी १५ तक ४२ ग्राहकोंके रुपये लोटाकर तथा कर्जदारोंको पुस्तकें वगैरह देकर शेष रिपोर्ट निकालकर सनातनजैनग्रंथमाला सर्वथा बंद करदेंगे ।

चुन्नीलालजैनग्रंथमाला।

पाठक महाशय ! इसग्रंथमालाद्वारा हिंदी, मराठी, गुजराती, बंगला, अंगरेजी इन सब ही भाषाओंमें जैनधर्मसंबंधी नये ढंगके ट्रेक्ट पुस्तकें छपा २ कर अजैनोंमें विनामूल्य वा स्वल्पमूल्यसे प्रचार करनेका उद्देश्य था परंतु विशेष सहायता न मिलनेसे महावीरस्वामीका ऐतिहासिक चरित्रआदि कोई भी बडा ग्रंथ प्रकाशित नहिं कर सके और न ट्रेक्टें ही १०—२० प्रकाशित कर सके। दो वर्षमें कुल २००) रुपयोंकी ६ ट्रेक्टें करीब १६००० के वितरण कर सके। यदि अनेक महाशय एक एक ग्रंथ सौ सौ दोदोसौ रुपयोंकी लागतके अपने पितामाता आदिके नामस्मरणार्थ छपानेकी सहायता देते तो हम बहुतकुछ प्रचार कर सकते थे, जिससे तमाम अजैन बंगला मासिकपत्रोंमें जैनधर्मकी चर्चा छपने लगती, अनेक बंगाली विद्वान् जैनधर्मकी आलोचनामें लग जाते, भाषाग्रंथ कुछ जैनियोंमें बिक जानेसे आगको या सनातनजैनग्रंथमालाको भी सहायता मिलजाना संभव था परंतु आप महाशयोंके विचार वैचित्र्यसे इस विशेष उपकारीकार्यमें भी सहायता नहिं मिली और हम कुछ भी न कर पाये। श्वेतांबरीभाई इसविषयमें बहुतही आगे बढ़गये हैं कई संस्थायें धाराप्रवाह ग्रंथ छाप२ कर विनामूल्य वा लागतके मूल्यसे भी कम मूल्यपर बडे २ ग्रंथ वितरण कर रहे हैं दो संस्थायें तो सूरत और अहमदाबादमें लाख २ रुपयोंकी पूंजीसे खुली हुई हैं परंतु हमारे यहां ऐसी एक भी संस्था नहीं है। बरसोंसे इटावेकी जैनतत्त्वप्रकाशिनीसभा इस कामकेलिये खुली हुई है जिसके ट्रेक्टप्रचारादि कार्यसे समाज भर खुश है परंतु अभी तक किसी भी दानवीरने कोई बडी सहायता उस संस्थाको नहीं दी और न थोडी बहुत सहायता इस संस्थाको ही दी यह कितने भारी खेद और लज्जाका स्थान है?

बडे आश्चर्यकी बात तो यह है कि—श्वेतांबरीभाई तो सैकडों

रकमें एकदम दान करके एकएक पुस्तकमें अपना नाममात्र छपवा देते हैं और हमने इस ग्रंथमालामें रकमदेनेवालोंका नाम छापनेके सिवाय प्रत्येकपुस्तककी दोसौ तीनसौ प्रति दान देनेकेलिये प्रदानकरके उनकी दीहुई रकम कायम रखकर विनाटका पैसे सैकडों शास्त्रोंके दान करनेका वा नाम करनेका सरल तरीका बताया था परंतु तब भी किसीने एक दो रकम इसउपकारीकार्यकेलिये नहीं दी। अस्तु अब भी समय है यदि दानवीरमहाशय थोडी २ द्रव्यसहायता दें तौ सनातनजैनग्रंथमाला न सही। इसचुन्नीलालजैनग्रंथमालामें ही सब भाषाओंके ग्रंथ छपा २ कर वितरण करानेका कार्य कराके इस संस्थाको जीवित रख सकते हैं।

सनातनजैनवाचनालय।

जब कि इस संस्थाका नाम **जैनधर्मप्रचारिणीसभा** और धर्मप्रचारके कई उद्देश्य थे? तब सर्वसाधारणको जैनधर्मके ग्रंथ अखबार देखनेके लिये सुभीता करदेने की इच्छासे **सनातनजैनवाचनालय** नामकी एक पब्लिक फ्री लाइब्रेरी खोलदेनेका भी प्रस्ताव हुआ था परंतु बाहरी कुछ भी सहायता न मिलनेके कारण न खुलसकी तथापि अनेक विनामूल्य प्राप्तहुई पुस्तकोंके सिवाय संस्थासे ही आजतक ८१=)।।। पुस्तकें हिंदी बंगला उत्तमोत्तम मासिकपत्र संग्रहकरने आदिमें लगादिये हैं। यदि आलमारी मकानभाडा, पुस्तक अखबारोंकेलिये दो तीनसौ रुपयोंकी सहायता मिल जाय तो यह भी धर्मप्रचारका एक उत्तम साधन प्रारंभ हो सकता है। यदि चैत सुदी १ तक कोई सहायता नहिं मिली तो लाचार अंगरेजी पढनेवाले जैनीलडकोंके जैनस्पोर्टसूक्लबकी लाइब्रेरीमें ये सब पुस्तकें प्रदान करदी जांयगी।

हाथचिट्ठा–

वीरनिर्वाणसंवत् २४३९ आश्विनसुदी १ से लगाकर वीरनिर्वाण सं. २४४१ की दीवाली तक।

जमा–

|||≡) बाबू रामेश्वरलालजी रईस छपरा

२००१=) शेठ नेमिचंद बहालचंदजी वकील उस्मानाबाद

२२४|||)|| शेठ नाथारंगजी गांधी मुंबईवाले

१९३||=) बंगला महावीरचरित्र खाते शेठ नाथारंगजीसे मिले

१५||) प्रो. प्रा. कृष्णप्रिंटिङ्ग

||)|| प्रो. प्रा. जार्जप्रिंटिंगवर्क्स

१४||-)। मुन्नालाल विद्यार्थी

३।) लाला उम्मेदसिंह मुसद्दीलालजी

१२|||-) उदरतख तमं फुटकर जमा

२४ |-) लाला गुरुदत्तामलजी पन्नालालकसूरवाले

२०||≡) सुदरलाल लुहाड्या टोंकवाला

२९९||=)|| प्रो. प्रा. जनरलट्रेडिंगकंपनी पेपरमर्चेंट काशी

५०) श्रीस्याद्वादमहाविद्यालय काशीका

१२) शांतिनाथ उपाध्याय कोल्हापुरका

२) बाबू जगमोहनवर्मा काशी

१)॥ भट्टारकविजयकीर्तिजी ईडर

नावें–

३१।) पुस्तक खरीद विक्री खाते

३२१)। प्रबंधखाते वा खर्चखाते

१४८||।-)||| पोष्टअखबारदानाखाते

५७||=)||| फर्नीचर खाते

१५०८||।/)|| सनातनजैनग्रंथमाला खाते

३||=) चुन्नीलालजैनग्रंथमाला खाते

८१=)||| सनातनजैनवाचनालय खाते

१४'=) मूलचंद किसनदास कापडिया सूरत

≡) पं. बनवारीलालजी जैन

२०७||=)|| जैनग्रंथरत्नाकर कार्यालय व पन्नालालजैन

८||)। प्रो.प्रा. चंद्रप्रभाप्रेस बनारस

१४||=)|| लालारामजी श्रीलालजैन

१११|| ≢)|| संपादकोंपटे पेसगी

२) अतरसेन विद्यार्थी

७४ |-) बाबू बनारसीदासका श्री प्रसादजी जौहरीका बाध्यता

संख्यांक ११९ जमा

१८०) प्रो. प्रा. औदुंबरप्रेसका
१००) अधिष्ठाता ऋषभब्रह्मचर्याश्रम हस्तिनापुर
५) श्रीजैनसिद्धांत विद्यालय मोरेना
८०।) शेठ रावजीसखारामजी दोशी शोलापुरवालोंके
२००) शेठ हीराचंद नेमिचंदजी दोशी शोलापुरवालोंके

१२९२।≡)॥।

८॥-) हस्ते बा. दयाचंदजीगोयली
।)। लाला बद्रीदासजी वकील
५≡)॥ शेठ सरूपचंद हुकुमचंदजी
१६॥=)। डा. सतीशचंद्र जीविद्याभूषण
५॥) नयी बहीखाते
११॥≡) श्रीरोकडपोते दिवालीकेदिन

१२९६।≡)॥।

हिसाब सनातनजैनग्रंथमालाका ।

६०२) आमदनी साधारणग्राहक ७७ से
३००) आमदनी दानी ग्राहक ३ से रामेश्वरलालजी रईस छारा बद्रीप्रसादजी वकील और पं. बनवारीलालजी जैनके
५००) श्रीयुत रायबहादुर शेठ कस्तूरचंदजी इंदोरवालोंका एक मुष्टिदान
९८।॥)॥। आमदनी फुटकर अंकोंकी बिक्रीसे

१५००॥।)॥।

१५०८॥।-)॥ शेष ग्रंथोंमें लगते रहे हैं जिनमेंसे आप्तपरीक्षा५०० जैनेंद्रप्रक्रिया ६०० और शेष पुस्तकें करीब सात सात सौ प्रतिके मौजूद हैं ।

३००९॥=)।

२५५।) छपाई आप्तपरीक्षा पत्रपरीक्षा १००० की
६८५॥-)। छपाई समयप्राभृत प्रति १००० की
७९७॥≡) छपाई तत्त्वार्थराजवार्तिक प्रति १००० की
४२८)॥ छपाई जैनेंद्रप्रक्रिया १०००
२६२।≡)॥ छपाई आप्तमीमांसा व प्रमाणपरीक्षाकी
२८९॥।-)। छपाई शब्दार्णवचंद्रिका प्रथम खंडकी
२३५-)। छपाई शाकटायन चिंतामणि १ खंडकी
५४॥=)॥ फुटकर खर्च

३००९॥=)।

हिसाब चुन्नीलालजैनग्रंथमालाका ।

२०) फतेचंदहीराचंद ईडर
२०) दौलतरामबनारसीदासबाग
१५) नेमासासोनासानागपुर
५) महावीरसहायपांडेखुरई
२५) गांधीकुबेरचंदकस्तूर ईडर
४) मक्खनलाल तेजपाल
१५॥)। साहू विमलप्रसादजी नजीबाबाद
५०) रायनांदमलजी अजमेरा फारष्टकालेज देहरादून
६०॥≈) फुटकरमें ट्रैक्टोंकीबिक्री

२१५।)।

३॥≈) लगतेरहे जिसमें ट्रैक्टनं. १ का ५०० प्रति नं ३ का ५०० प्रति नं. ६ की ११०० प्रति मौजूद हैं ।

२१८॥।)।

१९॥≈)॥। ट्रैक्टनं.१ सनातनजैनधर्म २००० की छपाई
२९॥।)। ट्रैक्टनं.२महावीरस्वामी काचरित्र २००० छपाई
२०।≈)। ट्रैक्टनं.३षड्द्रव्यदिग्दर्शन प्रति २००० छपाई
२४॥≡)॥। ट्रैक्टनं.४-५ हिंदीबंगला जैनधर्म ४००० छपाई
५॥) ट्रैक्टनं.१का बंगानुवाद कराई
१९॥) ट्रैक्टनं. १ दूसरीबार २००० छपाई
२५॥≡) ट्रैक्टनं. ३ दूसरीबार २५०० छपाई
१५) विधुशेखभट्टाचार्यको काशीका राहखर्च दिया
४३) ट्रैक्टनं. ६ महावीरचरित्र नया २००० छपाया
४॥≈) फुटकर खर्च

२१८॥।)।

हिसाब प्रबंधखाता वा खर्चखाता ।

११) फीस जैनधर्मप्रचारणी सभाके मेंबरोंकी
१)बखारिया प्रेमजीशिवजी
१)महावीरपांडे खुरई
१)उम्मेदसिंह मुसद्दीलाल

४५) मकानभाडा १ वर्ष का
८५) तनखा मैनेजरकी
४९≈)। तनखा सिपाहीकी
६४।)। छपाई नियमावलीविज्ञापन वगेरहकी

१)	सूरजमल अजमेरा गया	२१।≡)।।।	दौराखर्च कोल्हापुर इंदौरका
१)	बाबू गुणेंद्रप्रसादजी आरा	६।।=)।।	फुटकरखर्च तेलबत्ती लिफाफेवगैरहका
१)	बनारसीदासजैन कांधला		३३४।।)।।।
१)	मुखरामजी कलकत्ता		
१)	रामबिलासजी पाटणी गया		
१)	रेखचंदछाबड़ा गया		
१)	पुरुषोत्तमलालजी छपरा		
१)	भूरालाल केछदीलाल		
१।।।)	बंगीयसार्वधर्मपरिषदका		
।।।)।।	पं. मोतीलालजी का आया		
	१३।।)।।		
३२१)।	शेष रहे		
	३३४।।)।।।		

यह संक्षिप्त हिसाब है परंतु खाते रोजनामेमें व्यौरेवार सब हिसाब है किसी महाशयको किसी हिसाबके देखनेकी इच्छा हो तो पत्र द्वारा आज्ञा करने पर तत्काल ही व्यौरेवार लिखकर भेज दिया जायगा।

जैनसमाजका दास—

पन्नालाल बाकलीवाल

मंत्री-भारतीय जैनसिद्धांतप्रकाशिनी संस्था।

ठि०—महाजिनजैनमंदिर पोष्ट-बनारस सिटी।

आगामी सूचना ।

विदित हो कि-सनातनजैनग्रंथमालामें अपूर्णग्रंथ पूर्ण हो जानेके पश्चात् एक तो श्लोकवार्तिकजी बड़े अक्षरोंमें छपाया जायगा (जिसमें २०००) रुपये खर्च पड़ैंगे) क्योंकि यह कलकत्तेकी न्यायतीर्थपरीक्षामें भरती है। दूसरे अजैनविद्वानोंमें प्रभावना करनेकेलिये रविषेणाचार्यकृत पद्मपुराणजी बड़ा छपावेंगे इसमें अनुमान १५००-१६००) रुपये खर्चपड़ैंगे सो सब भाइयों को सौसौ दोदोसौ रुपयोंकी सहायता भेजना चाहिये। जो महाशय १००) रुपये भेजेंगे उनको हम दोनों ग्रंथोंकी पद्रह २ प्रति या किसी भी एक ग्रंथ की ३० प्रति भेज देंगे और ब्याजमें उनका नाम जिनवाणीजीर्णोद्धारक महाशयोंकी फेहरिस्तमें ग्रंथके एक पृष्टमें छपा देंगे। आशा है कि जो महाशय इस जिनवाणीजीर्णोद्धार और अजैनोंमें धर्मप्रचारार्थ सहायता दें, वे चैतसुदी १५ तक हमें सूचना दें। अभी रुपया कोई न भेजैं।

इसके सिवाय चुन्नीलालजैनग्रंथमालामें नीचे लिखे ग्रंथ छपेंगे सो एक एक दानी महाशय एकएक ग्रंथ छपानेका खर्च भेजकर एक तो ग्रंथ पर अपना या अपने पिताजी वगैरह का नाम छपाकर नाम करें। दूसरे हम २०० प्रति ग्रंथकी देंगे सो दान करके पुण्योपार्जनकरैं तीसरे-शेष पुस्तकें हम अजैनोंको प्राय: विनामूल्य वितरण करेंगे उसका पुण्य भी लूटैं।

१।	जैनेंद्रव्याकरणकी पंचसंधि भाषाटीका सहित छपाई	१००० प्रति	५०)
२।	जैनधर्मका परिचय हिंदीमें	,,	२०००० प्रति	१००)
३।	द्रव्यसंग्रह बंगला अनुवाद सहित	,,	१००० प्रति	१००)
४।	तत्त्वार्थसूत्र बंगानुवाद सहित	,,	१००० प्रति	४००)
५।	पुरुषार्थसिद्ध्युपाय बंगानुवाद सहित	,,	१००० प्रति	५००)
६।	परीक्षामुख न्याय हिंदी अनुवाद सहित	,,	१००० प्रति	१५०)
७।	परीक्षामुख न्याय बंगानुवाद सहित	,,	१००० प्रति	१५०)
८।	महावीरस्वामीका ऐतिहासिक जीवनचरित्र बड़ा		१००० प्रति	३००)
९।	महावीरस्वामीका ,, जीवनचरित्र बंगलामें		१००० प्रति	४००)
१०।	महावीरस्वामीका ,, जीवनचरित्र मराठीमें		१००० प्रति	३००)
११।	महावीरस्वामीका ,, जीवनचरित्र अंगरेजीमें		१००० प्रति	५००)

पत्र भेजने का पता—पन्नालाल बाकलीवाल

मंत्री-भारतीयजैनसिद्धांतप्रकाशिनी संस्था

ठि० मैदागिन जैनमंदिर पो० बनारस सिटी।

अत्यावश्यकीय प्रार्थना ।

दानवीरमहाशयों! इस संस्थामें नीचेलिखे संस्कृत व भाषा ग्रंथ तैयार हैं यदि आपलोग सबकी एकएक प्रतिमंदिरजीके भंडारमें खरीदकर विराजमान करदेंगे तो इस संस्थाका काम जो जिनवाणीजीर्णोद्धार और प्रचारका है बराबर चलता रहैगा। यदि आप कहैं कि भाषा ग्रंथ तो स्वाध्यायमें कामभी आवैंगे संस्कृतग्रंथ हमारे किसकामके ? सो ऐसा विचार नहिं करनाचाहिये। प्रथम तो कोई न कोई आपका लड़का संस्कृतका जानकार पैदा होजायगा नहीं तो कोई भी अजैन विद्वान् आपके यहां आवैतो उसे दिखाना इन ग्रंथोंका देखने ही उसके दिलमें जैनधर्मका बड़प्पन बैठ जायगा। तीसरे—भगवानकी प्रतिमाजीकी तरह इन शास्त्रोंकी भी नित्यपूजन विनय और रक्षा करनेसे भी अवश्य पुण्यकी प्राप्ति होगी। इस पंचमकालमें देवगुरुशास्त्रमेंसे ये देव और शास्त्र दो ही तो रहगये हैं इनकी रक्षा, प्रचार करना आपका परमधर्म व अत्यावश्यकीय कार्य है ।

आप्तपरीक्षा व पत्रपरीक्षा म. २)
समयसारजी दो टीकासहित ५)
तत्त्वार्थराजवार्तिकजी पूर्ण ९)
जैनेंद्रप्रक्रिया—गुणनंदि कृत १॥)
शब्दार्णवचंद्रिका (जैनेंद्रव्या.) ५)
आप्तमीमांसा व प्रमाणपरीक्षा २)
शाकटायनचिंतामणि १ खंड २)

ये नौ ग्रंथ सनातनजैनग्रंथमालाके १२ अंकोंमें छपे हैं कुल न्योछावर २६॥) है परंतु एकसाथ (सबके सब) लेनेसे १०) रुपयेमें ही भेजदेंगे डांकखर्च १) रुपया जुदा लगेगा। अगर कोई महाशय दान करना चाहैं तो १००) रुपयों में हर ग्रंथकी पंद्रह २ प्रति भेजदेंगे।

भाषा ग्रंथ ।

जिनशतक संस्कृत भाषाटीका ॥)
धर्मरत्नोद्योत—चौपाईबंध १)
धर्मप्रश्नोत्तर—वचनिका २)
शाकटायन धातुपाठ ।=)
श्रीमहावीरचरित्र सैकड़ा ३)
सनातन जैनधर्म सैकड़ा १॥)
षड्द्रव्यदिग्दर्शन सैकड़ा १॥)

मिलनेका पता—

पन्नालाल बाकलीवाल,
मंत्री—भारतीयजैनसिद्धांत
प्रकाशिनीसंस्था—बनारस सिटी।

स्त्रियोंके पढ़ने योग्य नई पुस्तकें।

सदाचार, पातिव्रत, गृहकर्म, शिशपालन आदिकी शिक्षा देनेवाली सरल भाषामें लिखी हुई स्त्रियोपयोगी पुस्तकोंकी जैनसमाजमें बहुत जरूरत है। यह देखकर हमने नीचे लिखी पुस्तकें मँगाकर बिक्रिके लिए रक्खी हैं।

१ **सरस्वती**—गृहस्थजीवनका बहुत ही शिक्षाप्रद उपन्यास। बड़ा ही दिलचस्प है। मूल्य १) पक्की जिल्दका १।)

२ **वीरवधू**—चौहानराजा पृथ्वीराज और उसकी वीर राणी संयोगिताका वीररसपूर्ण चरित्र। पाँच चित्र कई रंगके छपे हुए हैं। मू० ॥)

३ **आदर्श परिवार**—प्रत्येक कुटुम्बमें पढ़े जाने योग्य। मू०।||)

४ **शान्ता**—एक आदर्शस्त्रीका चरित्र। मू० ॥)

५ **लक्ष्मी**— ,, ,, ।)

६ **कन्या-सदाचार**—लड़कियोंके कामकी। मू० ।)

७ **कन्यापत्रदर्पण**— ,, ,, मू० ≡)

८ **बनवासिनी**—बहुत ही हृदयद्रावक उपन्यास। मू० ।)

मँगानेका पता—

मैनेजर, जैनरत्नाकर कार्यालय, गिरगांव बम्बई।

Printed by Nathuram Premi at the Bombay Vaibhav Press, Servants of India Society's Building, Sandhurst Road, Girgaon Bombay, & Published by him at Hirabag, Near C. P. Tank Girgaon Bombay.

(इस अंकके प्रकाशित होनेकी तारीख ७-२-१५।)

Reg. No. B. 719.

ॐ

जैनहितैषी ।

साहित्य, इतिहास, समाज और धर्मसम्बन्धी लेखोंसे विभूषित

मासिकपत्र ।

सम्पादक और प्रकाशक—नाथूराम प्रेमी ।

ग्यारहवाँ भाग ।	माघ । श्रीवीर नि०संवत २४४१	अंक ४ ।

विषयसूची । पृष्ठ.

उपहारकी सूचना ।

अवधि बीत चुकी इस लिए अब जो भाई उपहार लेना चाहेंगे उन्हें चार आने अधिक देना होंगे। अर्थात् अब उपहारके ग्रन्थों-सहित २।≡) दो रुपया सात आनेका वी. पी. भेजा जायगा। ग्राहक सालके शुरूसे ही बनाये जाते हैं। प्रकाशित हुए चारों अंक मँगा लेना चाहिए।

उपहारके ग्रन्थ जो न मँगावेंगे उन्हें एक रुपया नौ आनेका वी. पी. भेज दिया जायगा।

नमूनेका अंक मुफ्त भेजा जाता है। टिकट भेजना चाहिए।

फीजी द्वीपमें मेरे २१ वर्ष ।

बिलकुल नये ढंगकी पुस्तक है। पं. तोताराम सनाढ्य नामके एक सज्जन कुली बनाकर जबर्दस्ती फिजी द्वीपमें भेज दिये गये थे। वहाँ वे २१ वर्ष रहे। उस समय उन्हें और दूसरे भारत-वासियोंको जो नरकयातनायें दी गई हैं उनका इसमें बड़ा ही दुःखप्रद वर्णन है। प्रत्येक भारतवासीको इसका पाठ करके अपने भाईयोंको इस दुःखसे बचानेका यत्न करना चाहिए। फिजी द्वीपके सम्बन्धमें सैकड़ों जानने योग्य बातें भी हैं। मूल्य ।≈)

मैनेजर-जैनहितैषी, गिरगांव—बम्बई.

स्वामी रामतीर्थके सदुपदेश ।

पहला भाग छपकर तैयार है। पढ़ने योग्य है। मूल्य ।)

रिपोर्टमें भूल ।

गत अंकके साथ जैनसिद्धान्तप्रकाशिनी संस्था काशीकी रिपोर्ट बाँटी गई थी। उसमें राजवार्तिकजी पूर्ण ९) की जगह पूर्वार्द्ध ९)रु. और शब्दार्णव चन्द्रिका ९) की जगह प्रथमखण्ड २) और २६॥) की जगह १९॥) समझना। दोनों ग्रन्थोंके उत्तरार्ध अभी-तक छपे नहीं हैं।

पन्नालाल जैन।

जैनहितैषी।

श्रीमत्परमगम्भीरस्याद्वादामोघलाञ्छनम् ।
जीयात्सर्वज्ञनाथस्य शासनं जिनशासनम् ॥

११ वाँ भाग { माघ, वीर नि० सं० २४४१ । } अंक ४

शांति-वैभव ।
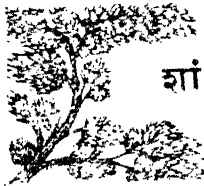
शांति मनुष्यके जीवनमें एक अमूल्य वस्तु है। इस पर ऐसे महान् जीवनका आधार है जिसकी आंतरिक गति और उद्देश्योंमें पूर्णतया सहानुभूति है। शांति उस स्थान पर पाई जाती है जहाँ स्वाधीन, स्वावलम्बशील और सच्चरित्र मनुष्योंका वास होता है। शांति क्या वस्तु है ? दृढ़ प्रतिज्ञा, उद्देश्यकी स्थिरता, आत्मनिर्भरता और आत्मबलका नाम ही शांति है।

शांतिका अर्थ यह नहीं है कि मनुष्य बिलकुल आलसी, निरुद्योगी और साहसहीन होकर बैठ जावे। ऐसा होना तो मौतकी निशानी है, कारण कि इसमें तमाम शक्तियाँ बेकार हो जाती हैं

और जीवन बिलकुल नीरस हो जाता है। जिसको शान्ति प्राप्त है उसका जीवन तो सरस और आनन्दमय होता है।

जो मनुष्य केवल दैव पर भरोसा रखता है उसे कभी शांति नहीं मिल सकती। वह अपनी वर्तमान स्थितिसे तनिक भी आगे नहीं बढ़ता और भविष्यकी कोई चिंता नहीं करता। वह कायर और पुरुषार्थहीन होता है। उसके मुँहमें यदि कोई डाल देता है तो खालेता है, नहीं तो योंही पड़ा रहता है। वह स्वयं कुछ नहीं करता। उसकी दशा उस बिना चप्पू (?) की नौकाके सदृश है जो योंही किसी व्यवस्थाके बिना समुद्रमें छोड़ दी गई हो। न उसके पास कम्पास है, न समुद्रका नकशा है और न यही उसे मालूम है कि मुझे कहाँ जाना है। जिधर हवा ले जाय वह उसी तरफ बहा चला जाता है। उसका जीवन बड़ा अनियमित और बेकायदा है। न कोई उसका संकल्प होता है, न उद्देश्य होता है और न कोई कार्यप्रणाली होती है। ऐसे मनुष्यको कभी शांति नहीं मिल सकती। ऐसी गतिको हम कभी शांति नाम नहीं दे सकते।

इसके विपरीत जिस मनुष्यको शांति होती है उसका जीवन बहुत ही नियमित और बाकायदा होता है। उसका उद्देश्य पहलेसे निर्दिष्ट रहता है और वह सदा निश्चित मार्गका अनुगामी होता है। चाहे मार्गमें कितनी ही आपत्तियाँ आवें, चाहे कितनी ही हानियाँ उठानी पड़ें, परंतु वह धीरवीर अपने उद्देश्यसे तनिक भी चल-विचल नहीं होता और अपने मार्गसे कभी पीछे नहीं हटता; निर्भय रूपसे

आगे बढ़ता चला जाता है। वह जानता है कि मार्गमें अनेक विघ्न आया ही करते हैं उनसे घबराना नहीं चाहिए। कठिन समयमें साहस और धैर्य होना चाहिए। उसको मालूम है कि मुझे सिर्फ कुछ करना ही नहीं है किन्तु जो कुछ करना है वह यथा-शक्ति अच्छा करना है। सम्भव है कि किसी कारणसे उसे अपने मार्गसे कुछ इधर उधर हटना पड़े, परंतु वह शीघ्र उसी जगह पर वापिस आजाता है। यह नहीं कि जिधर हवा ले गई उधर चले गये। कब वह अपने नियत स्थान पर पहुँचेगा, कैसे पहुँचेगा, अथवा कब उसे अपने उद्देश्यमें सफलता होगी, इन बातोंकी वह परवा नहीं करता, वह अपना कार्य किये जाता है। यदि सब कुछ करने पर भी उसे सफलता नहीं होती तो वह निराश नहीं होता, अधीर नहीं होता।

शान्त मनुष्य अपने कार्यको ऐसी धीरतासे करता रहता है कि किसीको मालूम भी नहीं होता कि उसका भविष्य क्या होगा और अंतमें उसके कार्यका क्या परिणाम होगा। मनुष्यको सदा नये नये मौके और नई नई बुद्धि मिलती रहती है। मनुष्यका कर्तव्य है कि उनको यथाशक्ति अच्छे काममें लगावे।

शान्ति मनुष्यकी भीतरी गति है। उसका सम्बंध हृदयसे है; हृदयमें शांति होना चाहिए। बाहरकी चुपचापको शांति नहीं कह सकते। जब भीतर शांति प्राप्त हो जाती है तब बाहर चाहे जो भी हुआ करे; बाहरकी गड़बड़से भीतरी शांति तक कुछ आँच नहीं पहुँचती। जिस तरह हवा और आँधीका असर केवल समुद्र-की सतह पर ही रहता है; अधिकसे अधिक २००, ३०० फीट

नीचे तक जाता है। उससे नीचे कोई असर नहीं होता। एकसी हालत रहती है। इसी तरह भीतरी शांतिकी गति है। जीवनके बड़े बड़े कार्योंके सम्पादन करनेके लिए हमको अपने नित्यके छोटे छोटे कार्योंमें बड़ा ही शांत होना चाहिए। शांति उसी मनुष्यको प्राप्त होती है जो अपने पर काबू पाजाता है, अपनेको वशमें कर-लेता है, अपनी इंद्रियोंको दमन कर लेता है। इंद्रियदमनका दूसरा नाम शांति है।

जब तुमको सांसारिक चिन्तायें सतावें और आपत्तियोंसे तुम्हारा जी घबराने लगे तब तुम्हें चाहिए कि शांतिके पवित्र मंदिरमें प्रवेश करो और थोड़ी देरके लिए सब कुछ भूलकर केवल शांति देवीकी ही आराधना करो। यदि उस समय भी सांसारिक चिंताओं और बाधाओंने तुमको दबा लिया और तुम दब गये तो याद रक्खो तुम स्वयं उनको अपनेसे सबल बनाना चाहते हो। तुम सदा उनसे दबे रहोगे और उन पर कभी विजय नहीं पासकोगे। चिंता और आपत्तिके समय शांति प्राप्त करनेकी यह विधि है कि जिन बातोंसे तुमको घबराहट होती हो उनको एक एक करके समझो और अपनी सम्पूर्ण संकल्प शक्तिको उन पर लगा दो। तुम देखोगे कि जैसे सूरजके निकलते ही तमाम अंधेरा दूर हो जाता है ऐसे ही तुम्हारी तमाम घबराहट अपने आप दूर हो जायगी। उसके बाद जो शांतिका चमत्कार तुम्हारे हृदयमंदिरमें प्रकाशित होगा और जो नवीन शक्ति तुमको मालूम होने लगेगी वहाँसे पूर्ण शांतिकी प्राप्तिका आरम्भ होगा। बस फिर तुम बड़ीसे बड़ी आप-

त्तियों और कठिनाइयोंका भी वीरताके साथ निर्भय होकर सामना कर सकोगे । यदि तुम्हारी सम्पूर्ण आशायें और तुम्हारे सम्पूर्ण उद्योग निष्फल भी हो जायँ तो भी तुम्हें घबराहट न होगी और तुम यही कहोगे कि कुछ परवा नहीं, हो जायगा ।

जब तुम देखो कि दूसरे लोग ईर्ष्या या द्वेषके कारण तुम्हारी निंदा करते हैं, तुम पर दोष लगाते हैं, अथवा तुम्हें और किसी प्रकार हानि पहुँचाते हैं उस समय यदि तुम्हें क्रोध आवे और तुम्हारे मनमें बदला लेनेकी इच्छा हो तो तुमको चाहिए कि शांति-को काममें लाओ । तुमको स्मरण रहे कि जो दूसरेके लिए गढ़ा खोदता है स्वयं उसके लिए कुवाँ तैयार रहता है । दूसरोंके साथ बिना प्रयोजन बुराई करनेवाला मनुष्य आप ही उसका बुरा फल पालेता है । फिर बदला लेनेकी क्या आवश्यकता है? दुनि-यामें आजतक कोई भी ऐसा नहीं हुआ जिसने दूसरोंके साथ बुराई की हो और उसको किसी न किसी तरह किसी न किसी समय उसका बुरा फल न मिला हो ।

यदि मनुष्य यह समझे कि मैंने किसीके साथ बुराई कर ली, अब मेरा क्या हो सकता है तो यह उसकी भूल है । प्रकृतिमें छोटीसी छोटी चीज़ भी बा-क़ायदा है । हरेक चीज़का जमा खर्च होता जाता है और अंतमें सबका हिसाब होता है । हाँ, यह अ-वश्य है कि प्रकृति अपने हिसाबदारोंके नाम हर महीने बक़ाया नहीं निकालती । जो मनुष्य शांत होता है उसको बदला लेना ऐसा नीच कर्म मालूम होता है कि वह भूलकर भी उसका नाम

नहीं लेता । यदि कोई उसको सताता है तो भी वह शांतिको ही काममें लाता है । यह नहीं कि बुराईके बदले बुराईका विचार करे ।

जब मनुष्य छोटी छोटी बातोंमें शांतिको काममें लाना सीख लेता है तब वह बड़े बड़े मौकों पर भी शांत रह सकता है । ऐसे आदमीका यदि कोई प्यारेसे प्यारा सम्बंधी कालका ग्रास होजावे और उसकी मृत्युसे उसका जीवन सर्वथा निष्फल दीखने लगे तो शांति ही एक ऐसी वस्तु है कि जो उसकी तसल्ली कर सके और उसको साहस और ढाढस बँधा सके ।

स्थूल दृष्टिसे देखनेसे प्रायः दुष्ट और नीच मनुष्योंकी ही इस संसारमें बढ़ती होती दीख पड़ती है । वे ही लोग फलते फूलते मालूम होते हैं जो अपराधी, मायाचारी और दुराचारी हैं । यह दृश्य ही लोगोंको धोखेमें डाल देता है और सच्चे मार्गसे हटाकर खोटे मार्ग पर ले जाता है । परन्तु शांत मनुष्यको इससे कुछ भी बाधा नहीं पहुँचती । यद्यपि वह देखता है कि सच्चे लोग तकलीफमें हैं और झूठे आराममें हैं, बेईमान ईमानदारोंसे बढ़ रहे हैं, झूठ फरेब और मायाचारसे रुपया पैदा हो रहा है; मूर्ख विद्वानोंसे अधिक लाभमें हैं तथापि वह अपने पथसे च्युत नहीं होता; इस प्रकारकी बातें उसे तनिक भी नहीं सतातीं । वह अपना काम उत्तम रीतिसे किये जाता है और इस बातकी कोई परवा नहीं करता कि दूसरे लोग क्या कह रहे हैं और उनको इसका क्या फल मिल रहा है । इन बातोंको वह दैवाधीन छोड़ देता है ।

जब मनुष्यको इतनी शांति प्राप्त हो जाती है कि शांति उसका एक अंग बन जाती है, वह शांतिमय हो जाता है अर्थात् जहाँ जाता है वहाँ शांतिका ही उससे प्रकाश होता रहता है तो उस समय कहना चाहिए कि उस मनुष्यने अपने जीवनमें सफलता प्राप्त करली । शांति ऐसी वस्तु नहीं है जो अपने आप मिलजाय अथवा एकदम मिलजाय । इसके प्राप्त करनेके लिए और बहुतसे गुणों-की अवश्यकता है । पहले उनको सीखना चाहिए ।

जीवनका तात्पर्य केवल यही नहीं है कि जिस तरह हो सके जीवन बिता दे । वास्तवमें जीवन एक बड़े महत्त्वकी चीज़ है । उसका आदर करना जीवनका मुख्य कर्तव्य है । किस तरह जीवन अपने तथा दूसरोंके लिए उपयोगी बनसकता है, इसके जानने और सीखनेकी बड़ी भारी ज़रूरत है । जब मनु-ष्यमें शांतिका प्रवेश होजाता है तब वह दुनियाके झगड़ोंसे हटकर अपने आपमें मग्न हो जाता है । दुनियामें कितना ही शोरगुल हुआ करे, उसे कुछ हानि नहीं पहुँचती । इससे यह न समझना चाहिए कि वह अपने स्वार्थके कारण दुनियासे अलग होता है; नहीं नहीं ऐसा मनुष्य विश्वभरके प्राणियोंके आनंदमें अपना आनंद मानता है । उसकी शांति परम पवित्र शांति है । वह संसारमें रहनेकी शक्तिको प्राप्त करनेके लिए संसारसे अलग होता है । (अपूर्ण)

दयाचन्द्र जैन, बी. ए. ।
चिरंजीलाल माथुर बी. ए. ।

तोते पर अन्योक्ति।

गीत

तोते तू तेरे करतबने,
इस बन्धनमें डाला है रे ॥ टेक ॥
सुन सीखे जो शब्द हमारे, उनको बोल रहा है प्यारे,
मिट्ठू, तुझे इसी कारणसे, कनरसियोंने पाला है रे ॥ १ ॥
हा! कोटरमें बास नहीं है, प्यारा कुनबा पास नहीं है,
लोह-तीलियोंका घर पाया, अटका कष्ट-कसाला है रे ॥ २ ॥
सुआ सैकड़ों पढ़नेवाले, पकड़ बिल्लियोंने खा डाले,
तू भी कल कुत्तेके मुखसे, प्राण बचाय मिकाला है रे ॥ ३ ॥
पञ्जे नहीं छुड़ा सकते हैं, क्या ये पंख उड़ा सकते हैं,
चोंच न काटेगी पिंजड़ेको, 'शंकर' ही रखवाला है रे ॥ ४ ॥

पं० नाथूराम (शंकर) शर्मा।

(अनुरागरत्नसे)

मनुष्यकर्तव्य।

(बाबू ऋषभदासजी बी. ए. के उर्दू लेखका अनुवाद)

प्रत्येक मनुष्यके लिए इस बात पर विचार करना आवश्यक है कि मेरा क्या कर्तव्य है। मैंने इस संसारमें क्यों जन्म लिया और मुझे जन्म लेकर क्या करना उचित है। इस पर विचार करनेसे पहले यह जान लेना अत्यन्त आवश्यक है कि मनुष्य क्या चीज़ है। वह

कोई सादा चीज़ है अथवा कई चीज़ोंको मिल कर बना हुआ है। जगतमें जो मनुष्यमें भिन्न भिन्न अवस्थायें देखनेमें आती हैं वे किस चीज़का असर हैं। एक मनुष्य क्रोधके वश हो रहा है। आँखें लाल हो रहीं है। चेहरा तमतमा रहा है। तलवार हाथमें है। दूसरेके मार डालनेको तैयार है। एक दूसरा मनुष्य—जो लोभमें फँसा हुआ है—हर वक्त उसको यही ख़याल रहता है कि किस प्रकार ज़्यादह ज़्यादह दौलत मिलती रहे। आधी रातका समय है। वह सिर और चेहरे पर कपड़ा लपेट कर अपने आपको छिपाता हुआ किसी धनीके यहाँ चोरी करनेके अभिप्रायमे जाता है। वहाँ जाते ही पकड़ा जाता है और क़ैदख़ानेमें डाल दिया जाता है।

एक तीसरा मनुष्य है जो मानके घोड़े पर सवार है। अपने कुल, अपने बल, अपनी सुंदरता और अपनी सम्पदाके नशेमें चूर है। बड़ेसे बड़ेको तुच्छ और छोटा समझता है। एक और चौथा मनुष्य है जिसने मायाचारको अपना पेशा बना रक्खा है। सदा दूसरोंको मायाके जालमें फँसानेकी फ़िकरमें लगा रहता है। उसके मनमें कुछ है और कहता कुछ और है। अंदर कुछ है और बाहर कुछ है। पाँचवाँ एक और मनुष्य है जो काम और विषयकी चाहमें अंधा हो रहा है। इस धुनमें न उसको अपनी-पराई बहू बेटीका ख़याल है न किसीकी लाज शरम है। इस तरह सैकड़ों अच्छी बुरी हालतें मनुष्योंमें पाई जाती हैं। कोई राजा है कोई रंक। कोई धनी है कोई निर्धन। कोई रोगी

है कोई निरोगी। कोई सबल है कोई अबल। कोई विद्वान् है कोई मूर्ख। इन सब अच्छी बुरी अवस्थाओंका कारण उसी समय समझमें आ सकता है जब यह मालूम किया जाय कि मनुष्य किस किस चीजसे मिलकर बना है और उन चीजोंका असली स्वभाव क्या है।

मनुष्य दो चीजोंसे बना है, आत्मा और पुद्गल। जो कुछ अवस्थायें मनुष्यमें पाई जाती हैं वे सब इन दोनोंके स्वभावोंके प्रभावसे होती हैं। मनुष्यकी आत्मा एक है और पुद्गलके असंख्यात परमाणु भिन्न भिन्न अवस्थाओंमें होकर उसके साथ लगे हुए हैं। आत्मा चैतन्य है। पुद्गल जड़ है। आत्माका स्वभाव देखना जानना, पुद्गलका स्वभाव स्पर्श, रस, गंध, वर्ण है। जानने देखनेकी शक्ति पुद्गलमें नहीं है। यदि मनुष्य केवल आत्मा ही आत्मा होता, या यों कहिए कि शुद्ध आत्मा ही होता तो मनुष्यमें बिना किसी समय या स्थानकी कैदके जानना देखना होता, अर्थात् मनुष्य सर्वज्ञ और सर्वदर्शी होता। इसके विपरीत यदि मनुष्य केवल पुद्गलहीसे बना हुआ होता तो देखना जानना उसमें बिलकुल न होता। यह विचार कि मैं कोई चीज हूँ, मैं सुखी या दुखी हूँ उसमें कदापि न होता। केवल स्पर्श, रस, गंध, वर्ण ही पाये जाते, जैसे ईंट, पत्थर वगैरह और चीजोंमें पाये जाते हैं। अतएव मनुष्यमें जो गुण व अवस्थायें पाई जाती हैं वे आत्मा और पुद्गल दोनोंके स्वभावोंका परिणाम है। आत्मा मनुष्यका सबसे बड़ा और सबसे जरूरी भाग है। दूसरे शब्दोंमें यों भी कह सकते हैं कि असली

चीज़ मनुष्यमें आत्मा ही है । आत्माहीके कारण मनुष्यमें देखने जानने और हर एक प्रकारकी उन्नति करनेकी शक्ति पाई जाती है; परन्तु आत्मा चारों तरफ़से पुद्गलसे घिरा हुआ है और पुद्गलमें एकमेक हो रहा है । इस कारण यह अपनी शक्तियों और गुणोंका पूर्ण प्रकाश नहीं कर सकता; दूसरे शब्दोंमें पुद्गलने इसकी शक्तियोंको छुपा या दबा रक्खा है । सूक्ष्म और स्थूल दोनों प्रकारका पुद्गल आत्माके साथ लगा हुआ है । अनेक प्रकारके पुद्गलसे आत्मा बंधा हुआ है । उसकी दशा बिल्कुल ऐसी हो रही है जैसे किसी राहगीरको कुछ डाकू मिल जायँ वे उसको चारों तरफ़से घेरलें और चारों तरफ़से लूटना शुरू कर दें । इसी तरह पुद्गलने आत्माके गुणों और शक्तियोंको लूटना शुरू कर रक्खा है ।

मनुष्यकी आत्माके साथ तीन प्रकारके शरीर हर समय लगे रहते हैं; कार्माण, तैजस और औदारिक । कार्माण शरीर आठ प्रकारके अत्यंत सूक्ष्म पुद्गलोंका बना हुआ है जिनको जैनधर्ममें आठ कर्म कहते हैं । यह सूक्ष्म पुद्गल आत्माके रागद्वेषादि परिणाम तथा क्रोध मान आदि कषायोंके कारण आत्माकी तरफ़ आकर्षित होकर आत्मासे बंध जाता है और अपने समय पर उदय होकर आत्माको सुखदुःख देता है । सुखदुःख भोगते समय आत्मा फिर रागद्वेष करता है । इस लिए पुद्गलके और और नवीन परमाणु आत्माकी तरफ़ खिंचकर आत्मासे बंध जाते हैं । इनमेंसे एक प्रकारका पुद्गल है जो आत्माके ज्ञानस्वभावको दबाये व ढके रहता है ।

उसको ज्ञानावरणीय कर्म कहते हैं। दूसरे प्रकारका पुद्गल है जो आत्माकी दर्शन शक्तिको दबा रखता है। उसको दर्शनावरणीय कर्म कहते हैं। तीसरे प्रकारका पुद्गल है जो आत्माको संसारके मोहजालमें फँसाकर उसको आत्मानुभव और आत्मिक सुखसे रोकता है। इसके मुख्य दो भेद हैं;—१ दर्शन मोहनीय, २ चारित्र-मोहनीय। दर्शनमोहनीयसे सच्चा श्रद्धान नहीं होता। चारित्र-मोहनीयसे क्रोध, लोभ, मान, माया, हास्य, रति, अरति, शोक, भय, ग्लानि आदि बुरे भाव पैदा होकर मनुष्यका चारित्र ठीक नहीं होने पाता। चौथे प्रकारका पुद्गल अंतराय कर्म कहलाता है जिसके कारण आत्मा दानादि नहीं कर सकता अथवा अपनी शक्तिको काम-में नहीं ला सकता। पाँचवें प्रकारका पुद्गल आयु कर्म है जो आत्माको नियत समयतक एक शरीरमें रखता है। छट्ठे प्रकारका पुद्गल वेदनीय कर्म है जो आत्माको सुख दुःखका कारण होता है। सातवें प्रकारका पुद्गल नाम कर्म है जो आत्माके वास्ते भिन्न भिन्न प्रकारकी शरीरकी आकृति करता है। आठवें प्रकारका पुद्गल गोत्र कर्म है जो आत्माके उच्च नीच कुलमें जन्म लेनेका कारण होता है। इस तरह यह आठ प्रकारका सूक्ष्म पुद्गल है जिसको जैनसिद्धांतमें आठ कर्म कहते हैं। इन्हींसे कार्माण शरीर बना हुआ है जो अन्य शरीरों और आत्माकी सम्पूर्ण संसारिक अवस्था-ओंका कारण होता है। दूसरा शरीर मनुष्यकी आत्माके साथ तैजस शरीर है जिसके कारण शरीरमें तेज और गर्मी रहती है। तीसरा औदारिक शरीर है जिसको हम तुम सब देखते हैं। इस

प्रकार मनुष्यकी आत्माको पुद्गलने तीन सूक्ष्म और स्थूल शरीरोंकी शकलमें घेर रक्खा है जिसके कारण आत्माके वास्तविक गुण और स्वभाव अर्थात् अनंत दर्शन, अनंत ज्ञान, अनंत सुख, अनंत वीर्य अादि प्रगट नहीं हो सकते। कार्माण शरीरके एक अंग नाम कर्मके कारण औदारिक शरीरके अंगोपांग आदि बनते हैं। इस तरह कार्माण शरीर, औदारिक शरीर तथा आत्माकी अन्य सांसारिक अवस्थाओंका बीजभूत है। अतएव मनुष्यका सबसे बड़ा कर्तव्य यह है कि अपनी आत्माको पुद्गलके मैलसे पवित्र करके शुद्ध आत्मा बनावे। यहाँ पर यह खयाल न करना चाहिए कि मरनेके बाद शरीरसे आत्मा निकल जाता है और उस समय वह शुद्ध हो जाता होगा। यह भ्रम है। निःसंदेह औदारिक शरीर उस समय पृथक् होजाता है, परंतु कार्माण और तैजस ये दोनों शरीर आत्माके साथ लगे रहते हैं। ये दोनों शरीर जबतक आत्माको मोक्ष न हो जाय सदा आत्माके साथ रहते हैं।

मनुष्य इस ही कारणसे सब जीवोंमें श्रेष्ठ कहलाता है कि मनुष्य शरीरसे ही वह आत्मा पुद्गलका सम्बंध छोड़कर परम पदको प्राप्त कर सकता है। अतएव प्रत्येक मनुष्यका यही सर्वश्रेष्ठ कर्तव्य है कि वह अपने मन, वचन, कायको इस तरहसे वशमें करके प्रवर्ते कि जिससे आत्मा शुद्ध होनेकी तरफ रुचि करे। हर एक मनुष्यको चाहिए कि अपने मस्तकमें ऐसे ही विचारोंको स्थान दे, ऐसे शब्द मुखसे निकाले और ऐसे ही कार्य अपने शरीरसे करे कि जिनसे उसकी आत्मा पुद्गलके असरसे अधिक अधिक बाहर होती

रहे । आत्माको शुद्ध करनेका यही उपाय हो सकता है कि आत्माके स्वभावको ग्रहण किया जाय और पुद्गलके स्वभावको छोड़ा जाय । इस बातको पूरी तौरसे अपने दिलमें रक्खा जाय कि पुद्गल आत्मासे भिन्न है । पुद्गलका धर्म आत्माका धर्म नहीं हो सकता और आत्माका धर्म पुद्गलका धर्म नहीं हो सकता । पुद्गलके धर्मने आत्माके धर्मको मैला और खराब कर रक्खा है । पुद्गलके धर्मके असरसे आत्मा पुद्गलमें अपना आत्मा मानता है । पुद्गलकी सुंदरता और असुंदरताको देखकर रागद्वेष करता है । रागद्वेष आत्माका स्वभाव नहीं है । पुद्गलके निमित्तसे आत्माके ज्ञानमें खराबी आरही है । वास्तवमें आत्माका ज्ञान ऐसा निर्मल और विस्ताररूप है कि समस्त लोक अलोक और सम्पूर्णब्रह्मांडके पदार्थ अपनी भूत भविष्यत् वर्तमान तीनों कालकी पर्यायोंसहित उसमें एक समयमें ही दिखलाई दिये जा सकते हैं । परंतु पुद्गलके संयोगसे आत्माका ज्ञान बहुत ही मैला और तंग होरहा है । अतएव आत्माके ज्ञानकी असली अवस्थाको प्राप्त करना ही सबसे बड़ा कर्तव्य है ।

अब प्रश्न यह है कि मनुष्य अपनी आत्माके असली स्वभावको किस तरह प्राप्त करे । यह जब ही हो सकता है जब कि मनुष्य यह जाने कि आत्माका धर्म क्या है । पुद्गल क्या है । पुद्गलका संयोग आत्माके साथ किस तरह और क्यों हो रहा है । किन उपायोंसे आत्मा पुद्गलसे पृथक् किया जा सकता है । इन ही सिद्धांतोंका नाम ' जैनधर्म ' है । यही सिद्धांत सम्पूर्ण मतोंकी

जड़ है । यद्यपि भिन्न भिन्न मतावलम्बी इन सिद्धांतोंको भिन्न भिन्न रूपमें प्रगट करते हैं; कोई पुद्गलका नाम माया रख ले, कोई उसको प्रकृतिके नामसे पुकारे; परंतु वास्तवमें धर्मके मूल सिद्धांत ये ही हैं ।

अतएव मनुष्यका कर्तव्य यह है कि इन सिद्धांतोंको स्वयं जाने और इनके अनुसार जहाँ तक होसके अमल करे और केवल अपने जानने पर ही संतोष न करे, किन्तु जहाँ तक हो सके दूसरोंको भी इन सिद्धांतोंका ज्ञान करावे । जहाँतक उसकी शक्ति हो उनका संसारमें प्रचार करे । दूसरोंके साथ इस प्रकारका व्यवहार करे कि जिससे स्वयं उसकी आत्मा तथा जिसके साथ व्यवहार करे उसकी आत्मा पुद्गलके धर्मसे दूर हो और आत्माके धर्मकी तरफ रुचि करे । दूसरोंको वद्ध करने अथवा हानि पहुँचानेमें, दूसरोंसे झूट बोलनेमें, दूसरोंका धन या दूसरोंकी स्त्री छीननेमें, सांसारिक वस्तुओंकी तीव्र इच्छा करनेमें, व्यवहार करनेवालेकी आत्मा तथा जिसके साथ व्यवहार किया जाय उसकी आत्मा, दोनोंकी आत्मायें आत्मिक धर्मसे गिरती हैं और पुद्गलकी अधीनतामें अधिक अधिक फँसती हैं । इस लिए इन पांचों बातोंको पाप बताया गया है और इनको मना किया गया है । अतएव मनुष्यका सबसे पहला और सबसे बड़ा कर्तव्य यही है कि आत्माके धर्मको यथाशक्ति ग्रहण करे और दूसरोंको ग्रहण करावे जिससे आत्मा पुद्गलके असरसे निकलती और शुद्ध होती चली जाय ।

दयाचन्द्र गोयलीय बी. ए. ।

बच्चोंकी शिक्षा।

हमारे देशके नेता व हितेच्छु इस बातको समझने लगे हैं कि देशके उद्धार करनेमें विद्या और उसकी प्रणाली मुख्य ध्यान देने योग्य है। इस बातको सब ही जानते हैं कि विद्या धन संसारके समस्त धनोंमें श्रेष्ठ है। न इसे चोर चुरा सकता है न हिस्सेदार ही इसे बाँट सकते हैं। इसका जितना ही उपयोग और दान किया जाय उतनी ही इसकी वृद्धि होती है। ज्ञान जो विद्याके आश्रित है मनुष्यको पशु-पक्षियोंसे श्रेष्ठ बनाता है और बिना इसके मनुष्य जन्मका मिलना भी दुर्भाग्य ही है। नरजन्मका पाना विद्याहीसे सफल है। ऐसी सुखदायिनी विद्याका संपादन सहज और नियमित रूपसे केवल बाल्यकालहीमें किया जा सकता है। इस अवस्थाकी शिक्षा सारी जिंदगीको ढाल देती है। अब देखना यह है कि वह ऐसी कौनसी शिक्षा है जो बालकको उसके भविष्य जीवनमें लाभकारी हो तथा उसे पात्र मनुष्य बनाकर उसको जीवन पर्यंतके लिए सुखी बना देसकती है। यह भी विचारना चाहिए कि ऐसी शिक्षा किस-प्रकार और किस अवस्थामें होनी चाहिए और उसका उद्देश्य भी कौनसा होना उचित और लाभकारी है।

सबसे प्रथम इस बातको निश्चय कर लेना चाहिए कि बच्चोंका विद्यारंभ किस अवस्थामें होना चाहिए। इस विषय पर विद्वानोंके

मतोंमें अंतर है । कोई कहते हैं कि यह १० वर्ष होना चाहिए, कोई कहते हैं, नहीं, यह अवस्था ८ वर्ष ही ठीक है और किसीका मत है कि विद्याकाल ९ वर्षसे आरंभ होता है । कोई कोई तीन ही सालकी उमरमें अपने बच्चोंको पढ़ाना शुरू कर देते हैं । पाश्चात्य विद्यागुरुओंका मत ८ से १० वर्ष तकके लिए है; पर भारतवर्षमें प्रथानुसार तथा शास्त्रानुसार यह अवस्था पाँच वर्ष मानी जाती है । देशके जल-वायुका विचार कर यह विद्यारंभ-काल ५ वर्ष ठीक ही माना गया है । इससे ज्यादा और कम दोनों ही अवस्थायें हानिकारक हैं; पर इससे यह न समझ बैठना चाहिए कि बस पाँच वर्षसे कम या अधिक होना एकदम पाप है । नहीं, प्रत्येक बालकका शरीरसंगठन इत्यादि देख उसे ५ से ८ वर्ष तककी अवस्थामें विद्याभ्यास शुरू करना चाहिए । इस कालमें उसकी मस्तकशक्तियोंका तथा मानसिक भावोंका विकाश होने लगता है । बालककी बुद्धिका विकाश होनेसे इन दिनों उसका मन प्रभावों (Impressions) के लिए परिपक्व हो जाता है । अगर इस अवस्थाको हाथसे जाने दिया जाय और उसे खोटी संगतिमें तथा बुरे संस्कारोंमें पड़ने दिया जाय तो उसकी सारी जिंदगी दुःखमय हो जायगी । यहाँ इस बातको बता देना अनुचित न होगा कि शिक्षाको हम केवल वर्णमालाका ज्ञान ही न समझ बैठें । शिक्षाका सबसे प्रधान अंग अथवा गौरव बालकमें सत्यनिष्ठा, समयनिर्धारिता (Punctuality), नियमबद्धता (Regularity), स्वच्छता, मनकी एकाग्रता और इन सबसे अधिक मातापिता व गुरुओंकी आज्ञा पालना

इत्यादि गुणोंका कूटकूट कर भर देना है। सारांश उसमें सम्पूर्ण रूपसे सतोगुणी भावोंका विकाश कराना चाहिए जिससे उसके समस्त अच्छे गुण व मानसिक भव्य भाव प्रकाश हो जावें। इस अवस्थामें इस बातका पूर्ण ध्यान रखना चाहिए कि बालकमें कितनी योग्यता है और उस ही प्रकार क्रम क्रमसे उसे ऊँची शिक्षा देनी चाहिए। जैसे जैसे उसमें नवीन शक्तियोंका प्रादुर्भाव होता जावे उसीके अनुसार शिक्षाका क्रम होना आवश्यक है। ऐसा करनेसे बालकको न मानसिक कष्ट ही होगा और न उसकी मानसिक बाढ़में हानि पहुँचेगी। उसे विचार करनेमें भी सहायता मिलेगी। कारण, बालकमें नवीन अवस्थामें नये नये विचार स्वतः पैदा होते हैं। और ज्ञान केवल बाहरी कारणोंसे ही नहीं बरन् इन बाहरी कारणोंका योग पाकर भीतरहीमे उत्पन्न होता है। ज्ञान और बुद्धि एक मात्र स्मरण शक्तिके बढ़नेसे ही नहीं बढ़ती है। तोते सा रटा हुआ ज्ञान सच्चा ज्ञान नहीं कहा जा सकता। जबतक बालकमें स्वतः विचारने और निर्णय करनेकी शक्ति बढ़ानेकी शिक्षा न दी जाय तबतक उसे सच्ची शिक्षा नहीं कह सकते। इन सब बातों पर अगर पूर्ण ध्यान दिया जाय तो कोई कारण नहीं कि विद्यार्थीमें देखने, निर्णय करने और स्वतंत्र सोचनेकी शक्ति आप ही आप न स्फुरित हो जाय, उसमें उच्च शिक्षा पानेकी योग्यता न बढ़े और चरित्रगठनमें सहायता न मिले।

चरित्रगठनको लोग मामूली बात समझ उस पर ध्यान ही नहीं देते जिसका फल यह होता है कि बालक प्रौढ़ होने पर सारी

उम्र दुःख भोगता है । संसाररूपी समुद्रमें केवल चरित्र ही मनुष्य-को वांछारूपी लहरोंसे बचा सकता है । दुःखके साथ कहना पड़ता है कि आज कलकी (आधुनिक) शिक्षाका ऐसा प्रवाह बह रहा है कि नीतिशिक्षा व धार्मिकशिक्षाकी अवहेलना की जाती है; बालकोंको केवल मानसिक (Intellectual) शिक्षामें निपुण किया जाता है जिसका फल यह हुआ है कि नास्तिकता और असन्तुष्टता जन-समाजमें फैलती जा रही है । मानसिक शिक्षाके शिक्षित केवल विषयाभिलाषी हो दुःख उठाते हैं । जिन नव युवकोंमें खाने, पीने और खुश रहनेकी सुगम चाल व उद्दंडताका व्यवहार देखा जाता है वह केवल मात्र उनकी नैतिक और धार्मिक शिक्षाकी कमीके कारण है ।

दूसरी मुख्य बात जिसकी अवहेलना हमारे स्कूलमास्टर व पंडित लोग प्रायः कर जाते हैं वह यह है कि वे अपने चरित्रको आदर्शरूप नहीं बनाते । बालकोंका स्वभाव नकल करनेका होता है और जैसा वे अपने गुरुजनोंको करते देखते हैं वैसा स्वयं भी करने लगते हैं । अध्यापकोंका चरित्र ऐसी उच्चकोटिका होना चाहिए कि बालक उसे अनुसरण कर सदाचारी बन जावें । इस लिए उन्हें बालकोंके भावोंके जान लेनेके साथ साथ अपना चरित्रबल बढ़ाना चाहिए और इसका सबसे अच्छा उपाय उन्हें स्वयंशिक्षा लेना चाहिए अर्थात् उन्हें ट्रेनिंगस्कूलोंमें पढ़कर खुद योग्य बनना चाहिए । शोकका विषय है कि जैनजातिमें अभी तक ऐसे अध्या-पक तैयार करनेकी कोई भी संस्था नहीं है ।

एक बातका और उल्लेख कर देना उचित है कि बालकों पर सबसे अधिक असर माताकी शिक्षाका होता है। पर दुर्भाग्यवश हमारे समाजकी मातायें अशिक्षित और मूढ़ हैं। वे बालकोंको उचित शिक्षा नहीं दे सकतीं। इससे यह अत्यंत आवश्यक हो गया है कि जहाँतक हो सके बालकको नीतिवान् शिक्षकहीके पास रक्खा जावे। इसका एक मात्र उपाय गुरुकुल और उच्च कोटिके बोर्डिंग हाउस हैं। अब समयको देख तथा अपनी स्थितिको विचार ऐसी संस्थाओंको उत्तेजित करना चाहिए। हमारा कर्त्तव्य है कि हम ऊपर कही हुई शिक्षाको जनसाधारणमें फैलावें। हमारी जातिका अथवा धर्मका उत्थान केवल इसी शिक्षा पर निर्भर है। हमें अपने बालक सुचतुर, नीतिवान् तथा सच्चे सत्यके खोजक बनाना है और यह केवल बाल्यकालकी शिक्षा ही पर निर्भर है। इससे धर्म और जातिके हितैषी महाशयोंको प्रारंभिक शिक्षाको ठीक रूप लानेमें कमी न करना चाहिए: कमर कसकर भले प्रकार निर्धारित मार्ग पर शिक्षाका ढंग जारी करना चाहिए।

समाजका हितेच्छुक—

कस्तूरचन्द जैन बी. ए.।

उठो प्यारो, उठो प्यारो !
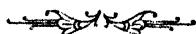
(श्रीयुत बाबू अर्जुनलालजी सेठी बी. ए. के महेन्द्रकुमार नाटकसे उद्धृत ।)

हुआ है भोर उन्नतिका, उठो प्यारो उठो प्यारो ।
वह देखो ज्ञानका दिनकर, उठो प्यारो उठो प्यारो ॥ १ ॥

कला कौशलके पक्षीगण, सुनाते शब्द हैं मनहर,
पढ़ो अध्यात्मकी वाणी, उठो प्यारो उठो प्यारो ॥ २ ॥

अविद्याका अँधेरा सब, मिटा जाता है दुनियासे ।
जगा है चीन भी देखो, उठो प्यारो उठो प्यारो ॥ ३ ॥

सँभालो अपने घरको अब जगा दो बूढ़े भारतको ।
यह गुरु है सर्व देशोंका, उठो प्यारो उठो प्यारो ॥ ४ ॥

क्या हिन्दू क्या मुसल्मां, और जैनी बौद्ध ईसाई ।
करो अब मेल आपसमें, उठो प्यारो उठो प्यारो ॥ ५ ॥

जहांके अन्न पानीसे, बना यह तन हमारा है ।
करो सब उस पै न्योछावर, उठो प्यारो उठो प्यारो॥ ६ ॥

बजाके बाजे शिक्षाके, भरो आलाप साहसका ।
बनोगे पात्र लक्ष्मीके, उठो प्यारो उठो प्यारो ॥ ७ ॥

नोट—इस कवितासे भी सेठजीके विचारोंका पता लगता है । देशसेवाको वे अपना कर्तव्य समझते थे और उसके लिए आपसमें मेलजोल बढ़ाना, अज्ञानान्धकारको दूर करनेके लिए शिक्षा विस्तार करना और इसी कार्यमें अपना तन-मन-धन न्योछावर कर देना, इन बातोंका उपदेश देते थे । राजद्रोहके विचारोंकी उनमें गन्ध भी न थी । —सम्पादक ।

परोपकार।

(संकलित)

परोपकाराय फलन्ति वृक्षाःपरोपकाराय वहंति नद्यः
परोपकाराय दुहन्ति गावः परोपकारार्थमिदंशरीरम्

वृक्ष दूसरोंके उपकारके लिए फलते हैं, नदियाँ दूसरोंकी भलाईके लिए बहती हैं और गायें दूसरोंके पोषणके लिए दूध देती हैं, अतएव यह शरीर परोपकारके लिए ही है–इससे दूसरोंका भला करना चाहिए।

'तुलसी' सन्त सुअम्बतरु, फूलि फलहिं परहेत।
इततें ये पाहन हनें, उततें वे फल देत॥

सन्तपुरुषोंके समान आमके वृक्ष दूसरोंके ही लिए फूलते फलते हैं। लोग यहाँसे उन्हें पत्थरोंके ढेले मारते हैं; परन्तु वहाँसे वे उनके लिए मीठे फल ही टपकाते हैं। सज्जनोंकी सज्जनता यही है कि वे अपकार करनेवालोंका भी उपकार करते हैं।

परोपकारशून्यस्य धिङ्मनुष्यस्य जीवितम्।
जीवन्ति पशवो येषां चर्माप्युपकरिष्यति॥

जो दूसरोंकी भलाई नहीं करता उस मनुष्यका जीना धिक्कारके योग्य है। पशुओंका जीना अच्छा है जो मरने पर भी अपने चमड़ेसे दूसरोंको लाभ पहुँचाते हैं।

यस्मिन्जीवति जीवन्ति बहवः स तु जीवति।
काकोऽपि किं न कुरुते चञ्च्वा स्वोदरपूरणम्॥

जीना उसीका कामका है जिसके जीनेसे और बहुतोंका जीना होता है अर्थात् जो दूसरोंकी सहायता करके उन्हें भी जीवित रखता है। यों अपना पेट तो कौए भी अपनी चोंचसे भर लेते हैं।

जीविते यस्य जीवन्ति विप्रा मित्राणि बान्धवाः।
सफलं जीवितं तस्य आत्मार्थे को न जीवति॥

अपने लिए कौन नहीं जीता ? जीना उसीका सफल है जिसके कारण विद्वान् मित्र और बन्धुजन भी जीते हैं अर्थात् जो दूसरोंकी सहायता करते हैं।

उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम्।
ज्योत्स्ना नोपसंहरते चन्द्रश्चाण्डालवेश्मनि॥

जिनका चरित उदार है—जो उदारहृदय हैं—सारी दुनिया उनका कुटुम्ब है, अर्थात् सारी पृथ्वीके जीवोंको वे अपना समझते हैं और उनकी भलाई करते हैं। चन्द्रमा अपनी चाँदनीको ब्राह्मणादिके समान चाण्डालोंके घरमें भी डालता है।

दृढतरगलकनिबन्धः कूपनिपातोऽपि कलश ते धन्यः।
यज्जीवनदानैस्त्वम् तर्षामर्षं नृणां हरसि॥

हे घड़े, तू धन्य है ! धन्य है !! अपना गला मजबूत रस्सीसे बँधवाकर और कुएमें गिरकर भी तू जीवन (जल) दान करके लोगोंकी प्यास बुझाता और उन्हें शान्त करता है।

परकृत्यविधौ समुद्यतः पुरुषः कृच्छ्रगतोऽपि पूज्यते।
शिरसास्तमयेप्यदीधरद्यदशीतद्युतिमस्तभूधरः॥

परोपकार करनेवाला पुरुष कष्टमें पड़ जाय तो भी उसका आदर-

सत्कार होता है। देखिए, अपने प्रकाशसे संसारका उपकार करनेवाला सूर्य जब अस्त होता है तब भी उसे अस्ताचल अपने सिरपर धारण करता है।

मन्द करत जो करे भलाई।
उमा सन्तकर यही बड़ाई॥

सन्तोंका बड़प्पन—तारीफ़ इसीमें है कि वे बुराई करनेवाले पर भी भलाई करते हैं।

आधे दोहेमें कह्यो, सब ग्रन्थनिको सार।
परपीड़ा सो पाप है, पुण्य सो पर उपकार॥

आचारकी उन्नति।

हमारे देशके पण्डित लोग आजकल सभी बातोंमें अवनति बतलाते हैं। वे कहते हैं कि आचार-विचार, विद्या-विज्ञान, दयादाक्षिण्य, धर्मकर्म आदि कोई भी बात ऐसी नहीं है जिसमें आजकलके लोग पूर्वकालके लोगोंकी बराबरी कर सकें; परन्तु मेरी समझमें यह उनकी निरी पण्डिताईकी बात है। मैं ऐसी सैकड़ों बातें बतला सकता हूँ जिसमें आजकलके लोग बहुत तरक्की कर गये हैं और जिनकी इतनी उन्नतिके विषयमें पूर्वके लोगोंने कभी कल्पना भी न की होगी। आज मैं सिर्फ़ एक बातका निवेदन करूँगा।

आजकल सबसे अधिक अवनति आचारके सम्बन्धमें बतलाई जाती है। जिससे पूछिए वही कहता है कि क्या किया जाय? कालका दोष है। आचार-विचार (चौके-चूल्हेकी पवित्रता, छुआछूत, पानी ढोलना आदि) तो आजकल रहा ही नहीं है; अँगरेजी सभ्यताके प्रवाहमें सारी शुद्धता बही जा रही है। परन्तु मेरी समझमें यह बात किसी अंशमें ठीक होकर भी सर्वथा सत्य नहीं है। क्योंकि जिस तरह एक दल इस आचारसे पराङ्मुख होता जाता है उसी तरह एक दल इस आचारका सीमासे अधिक अनन्यभक्त भी होता जाता है। बाहरी शुद्धता या पवित्रतामें उसने इतनी तरक्की की है कि जिससे अधिक शुद्धता जड़ पदार्थोंको छोड़कर किसी सचेतन पदार्थमें संभव ही नहीं।

इस तरहकी शुद्धता या पवित्रतामें जैनसमाज अन्य किसी समाजसे पीछे नहीं है। मालवा, बुन्देलखण्ड आदि प्रान्त इस विषयमें बहुत बढ़े चढ़े हैं। कुछ समय पहले—क्षुल्लकऐल्लकोंके जमानेसे पहले—एक बाबाजी थे। उनका नाम मैं भूल गया हूँ। श्रद्धालु जैनसमाजमें उनकी बड़ी ही पूजा होती थी। पढ़े लिखे वे शायद बिलकुल न थे; परन्तु पवित्रताके तो आदर्श थे। उनका सारा दिन पवित्र भोजनसामग्री जुटानेमें ही व्यतीत हो जाता था। उनके लिए अनाज धोया जाता था, चक्की धोई जाती थी, चौकेचूल्हेकी धुलाई पुताई होती थी और रसोई बनानेवाला तो धुलाईके मारे—नहाते नहाते और हाथ धोते धोते—तंग आ जाता था। बाबाजी दूध भी पीते थे; परन्तु उनके लिए सेरभर दूध जुटानेमें श्रावकोंको छठीका दूध

याद आ जाता था ! गाय या भैंस छने हुए जलसे नहलाधुलाकर सूखी जमीनमें बाँधी जाती थी। उसके खानेको सूखा घास और पीनेके लिए तत्कालका छाना हुआ शुद्ध जल दिया जाता था। उसका मलमूत्र एक टोकनी या बर्तनमें ऊपरका ऊपर ले लेनेके लिए एक आदमी मुकर्रर किया जाता था। दूध दुहनेके समय गाय फिर नहलाई जाती थी। इसके बाद दुहनेवाला नहाता था और फिर उसकी अँगुलियोंकी और नखोंकी परीक्षा की जाती थी ! यदि जरा भी नख बढ़े हुए होते थे तो उन्हें पत्थर पर घिस डालनेके लिए कहा जाता था ! जबतक नखाग्र भागमें रक्तकी ललाई न झलकने लगती थी तब तक बाबाजीको उनके पवित्र और निर्मल होनेके विषयमें विश्वास नहीं होता था। इस तरह बड़े भारी परिश्रम और प्रयत्नोंके बाद बाबाजीका पवित्रतर पेट उस पवित्र दुग्धको अपने द्वार पर आनेकी आज्ञा देता था। आचार तत्त्वकी इस सूक्ष्मता कष्टसाध्यता और जटिलताको देखकर भक्तजन गद्गद होजाते थे।

कुछ वर्ष पहले मैंने एक त्यागी बाबाजीके दर्शन और भी किये थे। वे कर्णाटक देशके थे। अपनी आहारशुद्धिके विषयमें वे कितनी सावधानी रखते थे इसका पता इसी एक बातसे लग जायगा कि वे आटा भी अपने हाथसे पीसते थे ! स्वावलम्बन-शीलता उनकी इतनी बढ़ी चढ़ी थी कि वर्तन माँजने और पानी भरनेमें भी वे किसी दूसरेको हाथ न लगाने देते थे !

शुद्धाम्नायके स्तंभ एक सेठजीके विषयमें सुनते हैं कि वे अपने बाँयें हाथको, अतिशय अपवित्र समझकर चौकेके भीतर बैठने पर

भी, उसे बाहर रखते थे! चौकेके बाहर खड़े होकर यदि भीतर चौकेके लोटेमें पानी डाल दिया जाय तो बाहरके लोटेकी धाराका सम्बन्ध होनेके कारण चौकेकी शुद्धता उसी समय हवा हो जाती थी और बाहरका लोटा तो इसके भी पहले 'सखरा' हो जाता था!

पहले मेरा खयाल था कि इस तरहकी पवित्रता पवित्र जैनसमाजमें ही होगी; इस विषयमें और कोई समाज उसकी बराबरी न कर सकेगा। परन्तु अभी मुझे एक नये सम्प्रदायका पता लगा है जिसमें एक बिल्कुल नई तरहके पवित्र जीवधारी देखे गये हैं। इन्हें इधरके लोग मर्जादी या मर्यादी कहते हैं। लोग कहते तो हैं कि ये वैष्णव हैं, परन्तु मेरी समझमें ये जलके उपासक हैं। मछलीको छोड़कर संसारके और किसी जीवमें इनके बराबर जलभक्ति नहीं पाई जा सकती।

सौभाग्यसे इन दिनों मैं जिस स्थानमें रहता हूँ वहाँ दो मर्जादी रहते हैं। एक तो मेरे बिल्कुल पड़ोसमें है। मर्जादियोंकी जातिके या कुटुम्बके सब लोग मर्जादी नहीं होते; जो आदमी मर्यादा धर्मकी दीक्षा ले लेता है उसीको यह संज्ञा प्राप्त होती है। अपने इष्टदेवकी उपासना करनेका इन लोगोंको खास अधिकार प्राप्त होता है।

मर्जादी उसके हाथका भोजन नहीं कर सकता जो मर्जादी न हो। हमारे पड़ोसी अपनी माताके हाथकी बनाई रसोई नहीं जीमते; परन्तु अपनी श्रीमतीके हाथकी बड़े प्रेमसे जीमते हैं। उनकी श्रीमती दीक्षित हैं। जलके परम भक्त होने पर भी वे नलके जलसे इतनी घृणा करते हैं जितनी कि लश्करके

तेरापंथी भाई वीसपंथियोंसे और जैनगज़टके उपासक छपे हुए ग्रन्थोंसे । कुएके जलसे नहा चुकनेके बाद यदि नलका एक छींटा भी कहींसे उन पर आ पड़े तो उन्हें तत्काल ही कई डोल पानीसे फिर नहाना पड़े ! नहाकरके जब वे कुएसे घर जाते हैं तब छायाको बचाते हुए चलते हैं । यदि किसीकी छाया पड़ जाती है तो वे लौट जाते हैं और दो चार डोल पानी फिर ऊपरसे डाल लेते हैं ! दिन भरमें कमसे कम ५—६ बार तो उन्हें नहाना ही पड़ता है । यदि कभी किसी मुसल्मानका या अस्पृश्य जातिका स्पर्श हो जाता हैं तो वे स्पर्श करनेवाले अपने शरीरको ५० डोल पानीसे नहानेकी सज़ा देते हैं ! किसका स्पर्श होनेपर कितने डोल पानीसे नहाना चाहिए इसके भी नियम बने हुए हैं ।

हमारे मुहल्लेमें जो दूसरे मर्जादी महाशय हैं वे पवित्रताके सम्बन्धमें अन्य मर्जादियोंसे बहुत ऊँचे दर्जे पर पहुँच गये हैं । उनका सेरों पीली मिट्टीसे पचासों बार टिहुनियोंतक हाथ और घुटनों तक पैर धोनेका तमाशा तो देखने योग्य होता ही है; साथ ही उनकी शौचक्रियाकी सावधानी देखकर विधाताको यह उलहना दिये बिना नहीं रहा जाता कि ये दिव्य जीव किसी दिव्यलोकमें या जल-लोकमें ही रहने योग्य थे; इन्हें तुमने इस अपवित्र नरलोकमें क्यों जन्म दिया ?

एक दिन आप पाखानेमेंसे निकलकर सीधे कुएँ पर गये और वहाँ रक्खे हुए कपड़ेके डोलसे पानी निकाल निकालकर उपर डालने लगे । बाड़ीकी देखरेख रखनेवाले जमादारने देखा कि मर्जादी

जी बिना लोटेके पाखानेमें से निकले हैं और कुए पर आकर भराभर पानी सिरपरसे ढोल रहे हैं । जमादारने कुछ तो पहलेहीसे सुन रक्खा था और जो कुछ रहा सहा सन्देह था वह इस समय दूर हो गया । उसने उसे खूब धमकाया और जी भर गालियाँ सुनाई । बेचारा मर्जादी उस दिनसे अपनी उक्त क्रियाको छोड़ बैठा है और ऐसी ही किसी दूसरी क्रियाकी तजवीजमें अन्यमनस्क रहता है ।

मर्जादीजीकी घरवाली भी कम पवित्र नहीं है । जिससमय वह मलमलकी पतली धोती पहने हुए कुएँ पर स्नान करती है और पानीसे सराबोर हुई धोतीको पहने हुए जलसेचनसे पृथिवीको पुनीत करती हुई अपने घर जाती है उस समय साक्षात पवित्रता भी उसे देखकर सिर झुका लेती है ! कहते हैं कि मर्जादिनजी छुआछूत नहानेधोने आदिके विषयमें जितना अधिक ख्याल रखती हैं उतना गैर मर्दोंसे हँसी दिल्लगी करने और रहस्यमय वार्तालाप करनेमें नहीं रखतीं ! कभी कभी जब वे अपने घर पर नहाती हैं और बिना नहाये दूसरे कपड़ोंको छूना ठीक नहीं समझतीं तब अपने नौकर-को आज्ञा देती हैं कि तू आँखें बन्द करके मेरे ऊपर पानी डालता रह, मैं नहाये लेती हूँ ! नौकर आँखें बन्द रख सकता है कि नहीं सो तो मालूम नहीं; पर वह पानी ढोलनेमें जरा भी गलती नहीं करता !

मैं समझता हूँ इन लोगोंकी पवित्रता और आचारशीलता-का वृत्तान्त पढ़कर उन लोगोंको बहुत कुछ ढाढस बँधेगा जो रातदिन कलिकालको या पंचमकालको कोसा करते हैं और जिन्हें जहाँ तहाँ आचारभ्रष्टता ही दिखलाई देती है । उन्हें विश्वास रखना चाहिए

कि इस कलियुग या पंचमकालमें भी बहुत से सतयुगी जीवोंका अस्तित्व बना हुआ है और यदि प्रयत्न किया जायगा तो इनका सम्प्रदाय खासा बढ़ सकता है। अच्छा हो यदि इसके लिए आन्दोलन किया जाय और कोई अच्छी सुजला भूमि देखकर दो चार आश्रम इनके लिए स्थापित कर दिये जायँ।

—पवित्रात्मा।

एक चिट्ठी।

श्रीमान् महाराजाधिराज भरत चक्रवर्तीकी सेवामें।

महाशय,

सबसे पहले मैं यह निवेदन कर देना चाहता हूँ कि आजकल यहाँ पर होलीके दिन हैं। इन दिनोंमें यहाँ हँसी दिल्लगी करनेका रिवाज़ है; झूठ सचका पृथक्करण करना इस समय बड़े बड़े मानसिक-रसायन-विशारदोंके लिए भी कठिन है। इसलिए कहीं आप मेरी इस चिट्ठीको निरीदिल्लगी न समझ लीजिएगा। मुझे हँसी दिल्लगीका ज़रा भी शौक़ नहीं और इन दिनोंमें जब कि देश दुर्दशाग्रसित हो रहा है होली मनानेको कोई भी सहृदय अच्छा नहीं समझ सकता।

इन दिनोंमें मैं आदिपुराणका स्वाध्याय कर रहा हूँ। इस ग्रन्थका नाम तो आपने ज़रूर सुना होगा। क्योंकि इसमें आपके पूज्य पिता भगवान् ऋषभदेवका जीवनचरित है। आपके सम्बन्धमें भी इसमें बहुतसी बातें लिखी हुई हैं। जैनधर्मके अनुयायी इस ग्रन्थके प्रत्येक अक्षर और शब्दको सत्य समझते हैं। मेरा भी पहले यही ख़याल था; परन्तु अब मुझे इस पर विश्वास नहीं होता। हो भी कैसे? इसमें लिखा है कि आपकी ९६ हज़ार स्त्रियाँ थीं! दो चार, दश बीस, सौ पचास नहीं, एकदम छ्यानवे हज़ार! एक लाखमें सिर्फ चार हज़ार कम! छोटी मोटी झूठ तो किसी तरह धर्मश्रद्धाके सोटेसे ठेलकर गलेके नीचे उतारी जा सकती है; पर इतनी मोटी-ताज़ी गज़बकी झूठ, भला आप ही बतलाइए कि किस तरह गले उतारी जावे?

यह मैं मानता हूँ कि आपके ज़मानेमें और अबके ज़मानेमें बहुत बड़ा अन्तर है। लाखों वर्ष बीत चुके हैं, इसलिए आजकलके रीति-रिवाज़ आपके ज़मानेके रीति-रिवाज़ोंसे मिलान नहीं खा सकते तो भी उनमें इतना ज़मीन आसमानका अन्तर नहीं हो सकता। आप यदि कुछ दिनोंके लिए यहाँ आकर रहें तो मालूम हो कि स्त्री कितनी दुर्लभ चीज़ है और उसके प्राप्त करनेमें किन किन मुसीबतोंका सामना करना पड़ता है। पहले तो वह द्विजवर्णोंकी नहीं, स्ववर्णकी नहीं, स्वजातिकी नहीं, स्व-उपजातिकी ही होनी चाहिए, फिर उसके चार या आठ गोत्र टाले जाना चाहिए। इसके बाद वरके पास धन होना चाहिए, ज़ेवर होना चाहिए और कन्याके

पिताकी तथा दूसरे दलालोंकी पूजा करनेके लिए भी कुछ चाहिए, तब कहीं मुश्किलसे यह सुदुर्लभ स्त्रीरत्न प्राप्त होता है। पर यह सबके भाग्यमें नहीं। मेरे जैसे हजारों पढ़े लिखे हट्टेकट्टे नवयुवक तो इस रत्नके लिए जीवन भर तरसते रहते हैं तो भी नहीं पा सकते। एक रत्नसे ज्यादा रखनेका तो किसीको अधिकार ही नहीं है। तब बतलाइए हम कैसे मान लें कि आपके ९६ हजार स्त्रियाँ थीं?

हमारे यहाँ जो धनी हैं वे अपने धनके जोरसे साठ पैंसठ वर्षकी उम्र तक स्त्रियाँ प्राप्त कर लेते हैं; आप छह खण्डके राजा थे इस लिए अपनी अतुलित सम्पत्तिके जोरसे संभव है कि आपने भी स्त्रियोंके लिए कुछ प्रयत्न किया हो; परन्तु इस प्रयत्नमें भी इतनी सफलता कदापि प्राप्त नहीं हो सकती कि एकदम ९६ हजार स्त्रियाँ आपको मिल जावें! स्त्रियाँ भी मनुष्य हैं, वे ऐसी चीज नहीं कि फरमाइशके माफिक तैयार कराई जा सकें। और आपके जमानेमें तो स्त्रीजातिकी बड़ी प्रतिष्ठा थी। तब यह भी माननेके लिए जी नहीं चाहता कि आपने उन्हें भी उसी तरह प्राप्त कर ली होंगीं जिस तरह अठारह करोड़ घोड़े और चौरासी लाख हाथी प्राप्त किये थे!

मुझे उम्मेद है कि आप 'रिव्यू आफ रिव्यू'के सम्पादक मि० स्टेडके समान एक पत्र या संदेशा भेजकर—आदिपुराणकी उक्त ९६ हजार स्त्रियोंकी बातका खण्डन कर देंगे और यदि यह बात वास्तवमें ही सच हो तो कृपा करके वह तरकीब लिख भेजेंगे जिससे कि स्त्रीरत्न इतनी बहुलतासे प्राप्त हो सकते हैं। इस

समय इस देशको—विशेष करके जैनसमाजको—उस तरकीबके जान लेनेकी बड़ी भारी जरूरत है। मेरी खण्डेलवाल जातिकी तो इसके विना बड़ी ही दुर्दशा हो रही है। मेरे जैसे हजारों युवक ऐसे हैं जो केवल एक ही एक स्त्रीकी प्राप्तिके लिए इस समय चाहे जो करनेके लिए तैयार हैं। हम लोगोंके दुःखोंका कुछ पार नहीं है। उन दुःखोंका अनुभव आप जैसे हजारों पत्नियोंके स्वामी कदापि नहीं कर सकते। हमारी जातिके धनी मानी पंच मुखिया भी—जिनके कि केवल एक ही एक पत्नी (किसी किसीके दो दो चार चार उपपत्नियाँ भी) है—जब हमारे दुःखका अनुभव नहीं कर सकते तब आपसे तो उम्मेद ही क्या की जा सकती है? इस परम दुःखसे मुक्त होनेके लिए यदि आप वह तरकीब बतला देंगे तो हम लोगोंका बड़ा भारी कल्याण होगा। आपके प्यारे जैनधर्मकी नींव इस समय डगमगा रही है। बड़ी तेजीसे जैनोंकी संख्याका ह्रास हो रहा है। यदि आपने स्त्रीप्राप्तिका उपाय न बतलाया तो फिर आशा नहीं है कि यह समाज जीवित बना रहेगा। कमसे कम मेरे लिए तो आप अवश्य ही कुछ उपाय बतला दीजिएगा।

हाँ, आदिपुराणसे मालूम होता है आप बड़े भारी सुधारक या रिफार्मर थे। आपने दान पुण्य करनेके लिए एक नया वर्ण स्थापित किया था। देशकालकी जरूरतके अनुसार समाजसंघटना करनेके सुधारकोंके तत्त्वको आप मानते थे। अच्छा तो ऐसा ही कोई उपाय बतलाइए जो हम एक नये वर्णकी स्थापना ही कर डालें।

आपके समयमें दान लेनेवाले वर्णकी जरूरत थी, पर इस समयमें एक दान करनेवाले—कन्यादान करनेवाले वर्णकी जरूरत है। उसका काम यह रहे कि मेरे जैसे अविवाहित युवकोंके प्रार्थना करते ही वह उनके लिए कन्यायें ढूँढकर विवाह कर दिया करे।

आपके जमानेमें जब आपके ९६ हजार स्त्रियाँ थीं तब औरोंके भी हजारों नहीं तो दो दो चार स्त्रियाँ अवश्य होंगीं। इससे मालूम होता है कि उस समय पुरुषोंकी अपेक्षा स्त्रियोंकी संख्या अधिक होगी—अर्थात् लड़कियोंकी पैदायश लड़कोंसे कई गुनी ज्यादह होगी। परन्तु आजकल यह बात नहीं है। लड़कियोंकी पैदायश ही कम होने लगी है। क्या इसके लिए भी आप कोई तरकीब बतलाइएगा!

हाँ, आदिपुराणसे यह भी मालूम हुआ कि आपने म्लेच्छोंकी कई हजार कन्याओंके साथ विवाह किया था। इस रिवाजका पता भगवान् महावीरस्वामीके समय तक लगता है। सम्राट् चन्द्रगुप्तने म्लेच्छ राजा सेल्यूकसकी बेटीके साथ विवाह किया था और चन्द्रगुप्त 'जैनसिद्धान्त भास्कर' के लेखोंसे मालूम होता है कि जैन थे। 'कन्या-रत्नं दुष्कुलादपि' का वचन भी यही बात कहता है। क्या आप जैनसमाजके मुखियोंके पास एक पत्र नहीं भेज सकते जिससे वे "और और जातियोंकी कन्यायें लेलेनेमें कोई हर्ज नहीं है" इस तरहका एक नियम जारी कर दें? कमसे कम अपने वर्णकी किसी भी

जातिकी कन्या लेलेनेमें तो कोई रुकावट न रहे। मेरी समझमें आपकी चिट्ठीसे यह काम ज़रूर हो जायगा।

उत्तर ज़रूर भिजवाइए, चिट्ठीके साथ एक टिकट भेजा जाता है। मेरे नामके साथ ' बम्बई नं. ४ ' लिखदेनेसे मुझे पत्र मिल जायगा!

काशलीवाल जैन।

नोट—यह चिट्ठी 'डेडलैटर आफिस' की हवा खाकर हमारे पास आई है। भेजनेवालेके नामके साथ ' जैन ' लिखा रहनेसे पोस्टमेन हमारे यहाँ डाल गया है। लेखक महाशयने यह नहीं सोचा कि भरत महाराज मोक्ष प्राप्त कर चुके हैं; उनतक पत्र कैसे पहुँचेगा और उत्तर कौन देगा। आप डाँकका टिकट भेजना भी नहीं भूले हैं। मानों वहाँ भी डाँकखाने खुले हुए हैं! बलिहारी!

सम्पादक।

विविध-प्रसंग।

१ सेठीजीके विषयमें प्रयत्न।

सेठीजीके विषयमें आन्दोलन होने लगा है और संतोषका विषय है कि वह बहुत अच्छे ढंगसे प्रारंभ हुआ है। अनेक सज्जनोंने जिनका कि नाम प्रकाशित करनेकी इस समय आवश्यकता नहीं है इस महीनेमें खूब ही दौड़ धूप और मेहनत की है और उन्होंने इस

प्रश्नको देशव्यापी कर दिया है। जैनसमाजकी नींद टूट गई है और हम बड़े हर्षके साथ प्रकट करते हैं कि वह कार्यक्षेत्रमें उतर पड़ी है। कलकत्ता, लखनौ, इलाहाबाद, बनारस, मिर्जापूर, अमरोहा फीरोजपुर, रोहतक आदि बड़े बड़े नगरोंमें सभायें हुई हैं, जगह जगह चन्दा एकत्र हो रहा है, लगभग १९००)रु० जैनमित्रके आफिसमें आ चुके हैं, १९००)रु० कलकत्तेकी सभामें एकत्र हुए हैं। और भी कई स्थानोंसे रुपये एकत्र होनेके समाचार मिले हैं। महाराज जयपुर और वायसराय साहबकी सेवामें अर्जी भेजनेके लिए जगह जगहसे दस्तखत होकर भी आ रहे हैं, कई हजार सहियाँ आ चुकी हैं। बड़े बड़े प्रतिष्ठित पुरुषोंने इस विषयमें सहानुभूति दिखलाई है। सिर्फ आकोलासे (बरार) से ही कोई २० वकीलोंकी सहियाँ आई हैं जिनमेंसे एक महाशय आनरेबल हैं। इलाहाबादके सुप्रसिद्ध वकील आनरेबल डा० तेजबहादुर सप्रू श्रीमती गुलाबबाईके वकील नियुक्त हुए हैं। उन्होंने अपना काम शुरू कर दिया है। वे एक मेमोरियल महाराजा जयपुरकी सेवामें भेज चुके हैं। वायसराय साहबकी सेवामें मेमोरियल भेजनेका प्रयत्न हो रहा है। डेप्यूटेशनके लिए भी उद्योग जारी है। लाट साहबकी लेजिस्लेटिव कौन्सिलमें और विलायतकी पार्लियामेंटमें यह प्रश्न उपस्थित किया जाय इसके लिए भी प्रयत्न हुआ है। हमको विश्वास है कि यदि हम इसी तरह उद्योग करते रहे तो वह दिन बहुत ही समीप है जब हम अपने समाजके निःस्वार्थ सेवक श्रीयुत अर्जुनलालजी सेठीके मुक्त होनेका शुभ समाचार सुनानेके लिए समर्थ हो सकेंगे। यह

कभी संभव नहीं कि प्रयत्न किया जाय और उसमें सफलता न हो। उद्योगके आगे सफलतायें हाथ जोड़कर खड़ी रहती हैं।

---

२ समाचारपत्रोंकी सहानुभूति।

सेठीजीके विषयमें देशके प्रायः सभी प्रसिद्ध प्रसिद्ध समाचारपत्रोंने लेख लिखनेकी कृपा की है। बंगाली, अमृतबाजारपत्रिका, एडवोकेट, लीडर, इन्दुप्रकाश, बाम्बे क्रानिकल, न्यूइंडिया, दि गुजराती, पंजाबी, कलकत्तागजट, अभ्युदय, प्रताप, भारतोदय, कलकत्तासमाचार, हिंदुस्तान, आर्यप्रकाश, हिन्दीसमाचार, भारतमित्र आदि नामी नामी पत्रोंने युक्तिपूर्ण अग्रलेख लिखकर और श्रीमती गुलाबबाईकी हृदय-द्रावक अपील प्रकाशित करके इस प्रश्नको देशव्यापी बना दिया है। सभीने एक स्वरसे भारतसरकारसे प्रार्थना की है कि वह जयपुर राज्यके इस अनुचित कार्यमें हस्तक्षेप करे और ब्रिटिशराज्यकी न्यायशीलताकी रक्षा करे। इतना अच्छा आन्दोलन जहाँतक हम जानते हैं बहुत कम व्यक्तियोंके लिए हुआ है और इससे आशा होती है कि भारतसरकार प्रजाके इन प्रतिनिधियोंकी पुकार पर बहुत जल्द ध्यान देगी। हम अपने सहयोगियोंकी इस उदारता और सहानुभूतिको कभी नहीं भूल सकते हैं जो उन्होंने सेठीजीके विषयमें दिखलाई है। उन्होंने इस समय न केवल हमारी सहायता की है प्रत्युत यह बतलाया है कि धर्मभिन्नता होने पर भी तुम हमारे भाई हो, देशके एक अंग हो और तुम पर जो कष्ट आता है उसका अनुभव हमें भी तुम्हारे ही जैसा होता है। जैनसमाज इस शिक्षाको

अब कभी नहीं भूल सकता; अबसे उसका नाता अपने देशबन्धुओंके साथ और भी घनिष्ठ होगा—वह अपने कर्तव्यका पालन करनेमें कभी आनाकानी न करेगा।

---

३ अब क्या करना चाहिए ?

अभीतक जो कुछ हुआ है वह अच्छा हुआ है; परन्तु यथेष्ट नहीं हुआ है। आन्दोलनकी गतिको हमें बराबर बढ़ाते जाना चाहिए और उस समय तक शान्त न होना चाहिए जब तक कि सेठीजीके भाग्यका कुछ न कुछ निबटारा न हो जाय। हमारे भाई यह तो अब अच्छी तरह समझ गये हैं कि इस मामलेमें आन्दोलन करना, उद्योग करना, सहायता देना कोई राजद्रोहका काम नहीं है। क्योंकि हम केवल यह चाहते हैं कि सेठीजीपर बाकायदा मुकद्दमा चलाया जाय और यदि उसमें वे निर्दोष सिद्ध हों तो छोड़ दिये जावें, नहीं तो उन्हें उचित दण्ड दिया जावे। हम यह कभी नहीं चाहते हैं कि वे अपराधी होने पर भी छोड़ दिये जावें। ऐसी दशामें राजभक्तसे राजभक्त पुरुष भी—रायबहादुर, आनरेरी मजिस्ट्रेट, बेंकर, व्यापारी, वकील, बैरिस्टर, और सरकारी नौकरी करनेवाले भी—इस आन्दोलनमें बिना किसी डरके शामिल हो सकते हैं। इस विषयमें सबसे अच्छा उदाहरण हमारे सामने यह है कि श्रीयुक्तबाबू अजितप्रसादजी एम. ए. एलएल. बी. जो लखनऊ-चीफ कोर्टके सरकारी वकील हैं इस कार्यमें खुल्लमखुल्ला प्रयत्न कर रहे हैं। यदि राजद्रोहका या सरकारकी अवकृपा होनेका काम होता तो वे इसमें कभी शामिल न होते। आशा है कि इस उदा-

हरणसे हमारे भाइयोंका डर बिल्कुल दूर हो जायगा और वे इस मामलेमें जीजानसे उद्योग करेंगे । दो बातोंकी सबसे बड़ी जरूरत है । एक तो यह कि तमाम बड़े बड़े शहरोंमें पब्लिक सभायें या जैनसभायें की जावें और उनका वृत्तान्त समाचारपत्रोंमें प्रकाशित कराया जाय । दूसरे, जगह जगह चन्दा एकत्र करनेकी कोशिश की जाय और जितना रुपया एकत्र हो वह यहाँ जैनमित्रके आफिसमें भेज दिया जाय । जो सज्जन अपना नाम प्रकट न कराना चाहें वे भी चन्दा दे सकते हैं । रुपयोंकी बहुत आवश्यकता है । महाराजा-जयपुर और वायसराय साहबके पास जो डेप्युटेशन जानेवाला है उसमें समाजके प्रतिष्ठित सज्जनोंको मेम्बर बनना चाहिए । इसके लिए भी प्रयत्न करनेकी जरूरत है । समाचारपत्रोंमें लेख प्रकाशित करना, कराना, सफलताके दूसरे उपाय सोचना, सुझाना, जगह जगहसे सहियाँ कराके भेजना, आदि और भी बहुतसे करने योग्य काम हैं । जिससे जो बने उसे वही करना चाहिए । यह एक ऐसा मामला है जिससे संसार जानेगा कि हम अपने भाइयोंकी रक्षाके लिए भी कुछ कर सकते हैं या नहीं ।

---

४ धर्मशास्त्रोंके गंभीर अध्ययनकी आवश्यकता ।

दूसरे समाजोंकी अपेक्षा जैनसमाजमें धार्मिक श्रद्धा बहुत अधिक है और इस कारण धर्मग्रन्थोंके पठनपाठनकी परिपाटी जितनी अधिक जैनसमाजमें है उतनी शायद ही किसी समाजमें हो । जैनसमाजका अधिक भाग पढ़ने लिखनेका—ज्ञानोपार्जन करनेका—अर्थ, धर्मशास्त्रोंके पढ़नेके सिवाय और कुछ नहीं समझता । जैन-

शास्त्रोंके बाहर और भी कुछ ज्ञान है, इस बातका अस्तित्व ही मानों उसके विश्वासमें नहीं है। जैनोंकी पाठशालाओंमें, विद्यालयोंमें, उपदेशकसभाओंमें, बैठकोंमें, जहाँ देखिए वहाँ ही धर्मशास्त्रोंके सिवाय दूसरी बात नहीं। इतना होने पर भी हम देखते हैं कि इस समय धर्मग्रन्थोंके जिन भीतरी रहस्योंकी—मर्मस्थानोंकी थाह लेनेकी आवश्यकता है उनका ज्ञान जैनसमाजके बहुत ही कम विद्वानोंको है। केवल ऊपरी बातोंमें, तोते जैसी रटन्तमें, चर्वितचर्वणमें ही लोग फँसे रहते हैं, शास्त्रोंके भीतर गहराईमें जानेकी मस्तक लड़ानेकी ओर किसीका ध्यान ही नहीं है। जो पुराने ढंगके केवल संस्कृतके पण्डित हैं और जिन्हें यथेष्ट अवकाश है न वे ही कुछ परिश्रम करते हैं और न अँगरेजीकी ऊँची शिक्षा पाये हुए बाबू लोगोंका ही इस ओर ध्यान है। बाबू लोगोंका प्रमाद तो इस विषयमें बहुत ही बढ़ा चढ़ा है। धर्मशास्त्रोंकी साधारण बातोंका ज्ञान भी उनमेंसे बहुत कम लोगोंमें देखा जाता है। वे जैनसमाजमें काम तो करना चाहते हैं; पर उनसे काम होता नहीं। जैनसमाजके विश्वासोंकी रचना ही कुछ ऐसी है कि उसमें धार्मिक ज्ञानके बिना कोई काम नहीं कर सकता और इस कारण उन्हें निराश होकर बैठ रहना पड़ता है।

इस समय जैनधर्मके तत्त्वोंका जैनेतरोंमें प्रचार करनेके लिए भी सभी लोग लालायित हैं। पण्डितमण्डली देशमें और बाबूमण्डली विदेशोंमें जैनधर्मका प्रचार करना चाहती है। इसके लिए कुछ संस्थायें भी स्थापित हो चुकी हैं; परन्तु हमारी

समझमें इस कार्यमें तब तक सफलता नहीं हो सकती, जब तक कि जैनधर्मका अच्छी तरह अध्ययन न किया जाय। स्वाध्यायकी प्रतिज्ञा पालनेके लिए अथवा स्वाध्यायका पुण्य सम्पादन करनेके लिए किसी ग्रन्थके दो चार पृष्ठ पढ़ लेना दूसरी बात है और अध्ययन करना दूसरी बात है। परीक्षायें पास कर लेनेसे भी कोई जैनधर्मका विद्वान् नहीं हो सकता। इसके लिए बड़े भारी परिश्रमकी दरकार है। किसी एक ग्रन्थका मर्म हृदयंगम करनेके लिए दूसरे बीसों ग्रन्थोंके देखनेकी जरूरत होती है–केवल उस एक ग्रन्थकी टीकामें ही काम नहीं चल जाता। जब एक ग्रन्थकर्ता एक विषयको एक प्रकारसे कहता है और दूसरा उसी विषयको कुछ और प्रकारसे कहता है, तब यह पता लगानेकी जरूरत होती है कि इसका कारण क्या है। हमारे यहाँ पुराणग्रन्थोंके पढ़नेवाले हजारों लाखों हैं, वे हमेशा देखते हैं कि उत्तरपुराणकी बीसों बातें हरिवंश और पद्मपुराणमें नहीं मिलती हैं। प्रद्युम्नचरितके कर्त्ता कुछ और कहते हैं, हरिवंशके कर्त्ता कुछ और कहते हैं। पर क्या कभी किसीने यह जाननेके लिए कुछ विशेष परिश्रम किया है कि इन ग्रन्थोंमें अन्तर होनेका वास्तविक कारण क्या है और इसका मूल कहाँमें है। पता लगाना तो कठिन कार्य है यह भी प्रयत्न नहीं किया गया कि जिन जिन बातोंमें अंतर है उनकी एक सूची ही बना कर प्रकाशित कर दी जाती। जैनेतर विद्वानोंमें इसप्रकारके प्रयत्न करनेवाले बीसों विद्वान् हैं। स्वर्गीय बाबू बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्यायका 'श्रीकृष्णचरित' जिन्होंने पढ़ा है वे जानते हैं कि गंभीर अध्ययन

किसे कहते हैं। इस ग्रन्थके तैयार करनेमें बाबू साहबने गजबका परिश्रम किया है। समग्र महाभारत, भागवत, विष्णुपुराण, ब्रह्म-वैवर्तपुराण, हरिवंशपुराण, आदि ग्रन्थोंका अनेक बार स्वाध्याय अध्ययन और मनन करके यह छोटासा ग्रन्थ बनाया गया है। श्रीकृष्णकी वर्तमान सहचारिणी राधिका—जिसके बिना आजकलके समयमें श्रीकृष्णकी गति ही नहीं है परन्तु महाभारतमें जिसका जिक्र तक नहीं है—कहाँसे आई, इसके विषयमें जो खोज बाबू साहबने की है वह बड़ी ही कीमती है। महाभारतकी श्लोकसंख्या इससमय लगभग एक लाख है; परन्तु जिससमय यह बना है, उस समय सिर्फ पच्चीस हजार था। इसके सिद्ध करनेमें बड़ी ही गहरी छानबीन की गई है और उसमें बाबू साहबने पूरी सफलता प्राप्त की है। दूसरे विद्वान् इस तरहके सैकड़ों प्रयत्न कर रहे हैं और बतला रहे हैं कि अध्ययन करना किसे कहते हैं। क्या इस तरहके प्रयत्नोंकी हमारे यहाँ आवश्य-कता नहीं है? केवल इतना कहदेनेसे अब काम नहीं चल सकता कि "आचार्योंका मतभेद है, वास्तविक बात तो केवली भगवान् ही जान सकते हैं।" परिश्रम करनेसे उक्त मतभेदोंका बहुत कुछ पता लग सकता है। हरिवंश और उत्तरपुराणके मतभेदोंका रहस्य जाननेके लिए, प्राकृत हरिवंश, प्राकृत महापुराण, श्वेताम्बरा-चार्य श्रीहेमचन्द्रका त्रिषष्ठिशलाकापुरुषचरित, पाण्डवपुराण, महाभारत, हरिवंश, भागवत, विष्णुपुराण आदि बीसों ग्रन्थोंके अध्ययनकी जरूरत है। इसी तरह पद्मपुराण और उत्तरपुराणमें जो अन्तर है उसके लिए इस कथासम्बन्धी समस्त श्वेताम्बर-दिगम्बर

ग्रन्थोंके सिवाय वाल्मीकि रामायण, बौद्धजातक आदि ग्रन्थोंका भी स्वाध्याय करना चाहिए।

यह बात हम केवल कथाग्रन्थोंके विषयमें ही नहीं कह रहे हैं। द्रव्यानुयोग अध्यात्म आदिके ग्रन्थोंका भी इसी तुलनात्मक पद्धतिसे अध्ययन करनेकी आवश्यकता है। इससे सैकड़ों नई नई बातोंका पता लगेगा। श्वेताम्बरी ग्रन्थोंका भी हमें अध्ययन करना चाहिए और उन बातों पर विचार करना चाहिए जिनके विषयमें दोनोंका मतभेद है। ऐसा करनेसे केवल ज्ञान ही न बढ़ेगा बल्कि बहुतसे मतभेदोंका मूल भी मालूम हो जायगा।

हम आशा करते हैं कि हमारे समाजके पण्डित महाशय और बाबू साहब दोनों ही इस ओर ध्यान देंगे और जैनधर्मका गंभीर अध्ययन करके उसके फलसे जैनसाहित्यका, जैनसमाजका और अपने देशका कल्याण करनेमें तत्पर होंगे। यह स्मरण रखना चाहिए कि केवल धर्म धर्म कहनेसे धर्मकी प्रभावना नहीं होगी, इसके लिए सब ओरसे प्रयत्न होना चाहिए।

---

५ अरबी साहित्यमें हिन्दू जातिकी प्रतिष्ठा।

अरबी भाषाका साहित्य किसी समय बहुत बढ़ा चढ़ा था। बड़े बड़े विद्वान् लेखकोंने उसके साहित्यको पुष्ट किया है। संस्कृतके पचासों ग्रन्थोंके अनुवाद अरबी भाषामें मिलते हैं। उंदलस देशके साअद नामके बहुश्रुत पण्डितका बनाया हुआ 'तबकातुल उमम' अर्थात् 'मनुष्य जातिका वृत्तान्त' नामक ग्रन्थ है। प्रसिद्ध इतिहासज्ञ मुंशी देवीप्रसा-

दजी (जोधपुर) 'हिन्दी चित्रमयजगत्' में प्रकट करते हैं कि उक्त ग्रन्थमें पृथ्वीकी जिन आठ विदुषी जातियोंके नाम बतलाये हैं, उनमें हिन्दूजातिका नम्बर सबसे पहला है। हिन्दुओंका परिचय देते हुए पण्डितवर साअद कहते हैं कि "हिन्दू परमेश्वरको एक और अद्वितीय मानते हैं और उसीको पूजने तथा आराधना करनेके योग्य जानते हैं। ऐसी ज्ञान और विवेकमयी निष्ठा और आस्थाओंके देखते हुए वे पृथ्वी भरकी अच्छीसे अच्छी जातियोंमें गिने जाने योग्य हैं। इनमें दो प्रकारके लोग हैं। एक ब्राह्मण और दूसरे वे जो ब्राह्मण नहीं (श्रमण ?) हैं। ब्राह्मण विद्वान् और ज्ञानविज्ञानवाले हैं। परमेश्वरको कर्त्ता मानते हैं, सृष्टिको अनादि नहीं मानते—और प्रलयको भी सत्य जानते हैं। उनके धर्ममें जीवहिंसाका निषेध है और प्राणिमात्रको दुःख देना महापाप है। जो ब्राह्मण नहीं हैं वे ऋषियोंको अनादि मानते हैं और परमेश्वरको अकर्त्ता कहते हैं। उनके मतमें कर्म प्रधान है। आगे उक्त विद्वान्ने हिन्दुओंकी सभ्यता, विद्वत्ता, रीतिनीतिकी भूरिभूरि प्रशंसा की है। ब्राह्मणेतर लोगोंसे जान पड़ता है उसका मतलब जैनों या श्रमणोंसे है। क्योंकि जैन ही ईश्वरको अकर्त्ता और कर्मोंकी प्रधानता माननेवाले हैं। ऋषियों या तीर्थंकरोंको वे अनादिकालसे मानते ही हैं। इस विद्वान्ने जो अविद्वान् या मूर्खजातियाँ गिनाई हैं उनमें सबसे पहला नम्बर फिरंगियों या यूरोपवालोंका बतलाया है और उन्हें पशुओंके समान जड़जीव और बहुत ही दुःशील कहा है! देखिए कालचक्रकी गति! आज वही यूरोपवाले सभ्यशिरोमणि

और हिन्दू जड़जीव बन रहे हैं ! कितना बड़ा उलट फेर हो गया ! कालिदासका यह वाक्य याद आता है:—

' **नीचैर्गच्छत्युपरि च दशा कालनेमिक्रमेण।** "

---

६ कातंत्रव्याकरणका विदेशोंमें प्रचार।

कातंत्र या कलाप संस्कृतका बहुत ही प्रसिद्ध व्याकरण है। यह अपने समयका इतना सरल व्याकरण था कि इसका प्रचार सारे भारतवर्षमें हो गया था। उस समय सारे देशमें इसी व्याकरणका पठन पाठन होता था। इस व्याकरणने भारतके बाहर विदेशोंमें भी प्रतिष्ठा प्राप्त की थी, इसका पता अभी हाल ही लगा है। मध्यएशियामें पुरातत्त्वसम्बन्धी बड़ी महत्वकी खोजें हो रही हैं। वहाँ जमीनके भीतरसे प्राचीन कूचा नामक राज्यका पता लगा है। उसमें जो प्राचीन साहित्य मिला है उससे मालूम हुआ है कि उस समय वहाँ बौद्ध धर्मके अनेक मठ थे और उनमें संस्कृत पढ़ानेके लिए कातंत्रव्याकरणका उपयोग किया जाता था। इससे पाठक समझ सकते हैं कि कातंत्र व्याकरणकी प्रसिद्धि कितनी और कहाँ तक हुई थी। कथासरित्सागरमें कातंत्रके सम्बन्धमें एक कथा लिखी है। उससे मालूम होता है कि यह व्याकरण महाराज शालिवाहन (शक) के पढ़ानेके लिए उनके मंत्री शर्ववर्माने बनाया था। जैनोंका विश्वास है कि शर्ववर्मा जैन थे; परन्तु इस विषयमें अभीतक कोई संतोषयोग्य निर्णय नहीं हुआ है।

---

७ जीवदयाज्ञानप्रसारक भण्डार ।

बम्बईमें इस नामकी एक बड़ी ही अच्छी संस्था है। सन् १९१० में इसकी स्थापना हुई थी। " श्रीयुत सेठ लल्लूभाई गुलाबचन्दजी जौहरी, सराफबाजार बम्बई नं० २ " इसके अवैतनिक प्रबन्धकर्त्ता हैं। आप श्वेताम्बर जैन हैं। संस्थाका मुख्य उद्देश्य जीवदयासंबंधी ज्ञानका प्रचार करना है। इस उद्देश्यके अनुसार वह पशुवधको रोकती है, मांसाहारकी हानियाँ बतलाकर लोगोंको शाकाहारी बनाती है, और इसके लिए जुदा जुदा भाषाओंमें पुस्तकें पेम्फलेट ट्रैक्ट आदि छपाकर मुफ्तमें वितरण करती है। इसका जो परिचयपत्र हमारे पास आया है उससे मालूम होता है कि संस्थाने पछले चार वर्षोंमें अपने प्रयत्नमें आश्चर्यजनक सफलता प्राप्त की है। उसके प्रयत्नसे लाखों जीवोंकी रक्षा हुई है, हजारों मनुष्य शाकाहारी बन गये हैं और सैकड़ों सज्जनोंने संस्थाके काममें सहानुभूति प्रकट की है। बड़ोदा महाराजने अपने राज्यके १३०० ग्रामोंमें दशहरे पर जो पशुवध होता था उसे इसी संस्थाके प्रयत्नसे सर्वथा बन्द कर दिया है। दूसरे भी कई राज्योंमें उसे सफलता मिली है। और तो क्या उसने सुदूर जापानमें भी अपने पवित्र कार्यकी सिद्धिके लिए प्रयत्न किया था जिसके फलसे जापान सरकारने अपनी प्रकट की हुई आरोग्यवर्द्धक नियमावलीका दूसरा नियम इन शब्दोंमें लिखा है—" ऐसा प्रयत्न करो जिससे उत्तम अनाज, फल, शाक, और गायका ताजा दूध ये तुम्हारे नित्यके खानेकी चीजें बन जावें। मांस सर्वथा मत खाओ। गायका दूध जितना अधिक बन सके काममें

लाओ और अन्नको खूब चबाकर गले उतारो।" संस्थाकी ओरसे जुदा जुदा भाषाओंमें अबतक पचासों ट्रैक्ट छप चुके हैं। केवल रेलखर्च या डाकखर्च देकर प्रत्येक ट्रैक्टकी चाहे जितनी प्रतियाँ चाहे जो वितरण करनेके लिए मँगा सकता है। कई ट्रैक्ट हिन्दीमें भी हैं। संस्था जैनधर्मके मुख्य उद्देश्य जीवदयाको लेकर ही काम कर रही है, धर्मसम्बन्धी दूसरी बातोंसे वह कोई सरो-कार नहीं रखती। उसके साहित्यमें किसी खास धर्मकी बुराई भलाईका एक अक्षर भी नहीं मिलसकता और इस कारण उसकी पुस्तकोंको प्रत्येक धर्मके मनुष्य प्रसन्नतासे पढ़ सकते हैं। उसकी यह कार्यप्रणाली अच्छी और अनुकरणीय है। हम अपने पाठ-कोंसे आग्रहपूर्वक निवेदन करते हैं कि वे इस संस्थाके उद्देश्योंके प्रचारमें हर तरह सहायता करें, उसके साहित्यका प्रचार करें और बन सके तो कुछ द्रव्यसे भी सहायता करें।

---

८ महात्मा गोखलेका स्वर्गवास।

भारत माताके सुपूत माननीय महात्मा गोखलेका ता० १९ को पूनामें हृद्रोगसे एकाएक स्वर्गवास हो गया। मृत्युके समय उनकी अवस्था ४९ वर्षकी थी। वे केवल भारतवर्षके ही नहीं संसारके एक प्रकाशमान रत्न थे। निःस्वार्थवृत्तिसे देशकी एकनिष्ठ सेवाकरनेवालोंमें उनका आसन सबसे ऊंचा था। एक दरिद्र ब्राह्मणके कुलमें उत्पन्न होकर उन्होंने उच्चश्रेणीकी विद्या सम्पादन की थी। उनके कुटुम्बीजन इस आशामें थे कि अब वे अपने ऊँचे ज्ञानके बलसे धनी बन जावेंगे; परन्तु उन्होंने ज्ञानका फल धन नहीं समझा, वे

उस धनके कमानेमें लग गये जिससे कि इस समय उनकी कीर्ति दिग्दिगन्तव्यापिनी हो रही है। उनका धर्म, धन, सुख जो कुछ था सो एक भारतवर्ष था। भारतके ही कल्याणकी वांछा करते हुए उनकी जीवनलीला समाप्त हुई। आज सारा भारतवर्ष उनके वियोगसे शोकाकुलित हो रहा है। वीस हजारसे भी अधिक मनुष्य उनकी स्मशानयात्रामें गये थे! इससे पाठक समझ सकते हैं कि वे किस श्रेणीके महात्मा थे। देशका शायद ही कोई नगर होगा जहाँ उनका शोक न मनाया गया हो। विदेशोंमें भी उनके लिए शोकसभायें हुई हैं। वे राजा और प्रजा दोनोंके प्यारे 'नृपतिजनपदानां दुर्लभः कार्यकर्ता' थे। उनका जीवनचरित बड़ा ही शिक्षाप्रद है। यदि देशके नवयुवक म० गोखलेका अनुकरण करके देशकी निष्काम सेवा करना सीखें तो भारतके सुखी समृद्ध होनेमें बहुत देर न लगे।

---

९ माणिकचन्द्र जैन-ग्रन्थमाला।

स्वर्गीय दानवीर सेठ माणिकचन्द हीराचंदजी जे. पी. के स्मारक-फण्डसे जो ग्रन्थमाला निकालनेका निश्चय किया गया था उसका काम प्रारंभ हो चुका है। एक ग्रन्थके दो फार्म छपभी चुके हैं। दूसरे ग्रन्थोंके सम्पादनका प्रबन्ध हो रहा है; आशा है कि पहले ग्रन्थके तैयार होनेके पहले ही दूसरा प्रेसमें पहुँच जायगा। इस कार्यकी ओर जैनसमाजको ध्यान देना चाहिए। इसके सब ग्रन्थ लागतकी कीमत पर बेचे जावेंगे। धर्मात्माओंको इसके प्रत्येक ग्रन्थकी सौ सौ पचास पचास प्रतियाँ बाँटनेके लिए लेनेकी आज्ञा भेज देना चाहिए।

श्रीमान पण्डित अर्जुनलाल सेठी, बी. ए.,
डाइरेक्टर, भारतवर्षीय जैनशिक्षाप्रचारक समिति

पं० अर्जुनलालजी सेठी बी. ए. ।

पं. अर्जुनलालजीका जन्म जयपुर नगरमें सन् १८८० में हुआ था। आपके पिताका नाम लाला जवाहरलालजी सेठी था। महाराजा जयपुरने उन्हें ठाकुर गोविन्दसिंह जागीरदारका अभिभावक और शिक्षक नियत किया था; अन्ततक वे यही काम करते रहे।

अर्जुनलालजीने सन् १९०२ में जयपुर कालेजसे प्रयाग विश्वविद्यालयकी बी. ए. की डिग्री प्राप्त की। कालेजमें पढ़ते समय ये प्राइवेट तौरसे जैनधर्मके ग्रन्थोंका भी अध्ययन किया करते थे और इस कार्यमें इन्हें पं० चिम्मनलालजी जैनवैद्यसे बहुत सहायता मिलती थी। संस्कृतका ज्ञान भी इन्हें इन्हींसे प्राप्त हुआ था।

विद्यार्थी अवस्थामें ही सेठीजीको देशसेवा और समाजसुधारके कामोंसे बहुत प्रेम था। अपने देशकी, धर्मकी और समाजकी गिरी हुई अवस्था पर तो इन्हें बड़ा ही दुःख होता था। इस विषयमें वे निरन्तर ही विचार किया करते थे। सारी अवनतियोंका कारण उन्हें शिक्षाका अभाव ही जान पड़ता था। उन्हें विश्वास हो गया था कि यदि देशमें शिक्षाका प्रचार होगा—निरक्षरों और अज्ञानियोंकी संख्या घट जायगी तो देशकी प्रगति होनेमें ज़रा भी विलम्ब न लगेगा। पर वे यह जानते थे कि यह कार्य केवल

सरकारकी सहायतासे नहीं हो सकता; इसके लिए देशवासियोंको स्वयं प्रयत्न करना चाहिए। विशेष करके शिक्षितोंका ध्यान इस ओर जाना चाहिए। शिक्षाप्राप्तिका फल केवल धन कमाना या औरों पर हुकूमत करना नहीं है। जिस शिक्षासे मनुष्य केवल अपना ही स्वार्थसाधन करता है उसे शिक्षा कहना 'शिक्षा' का अपमान करना है। शिक्षितोंको स्वार्थत्याग करना चाहिए और अपने भाई-योंको शिक्षित बनानेमें अपनी सारी शक्तियाँ लगा देना चाहिए।

सरकारी स्कूलोंकी शिक्षाके विषयमें उन्हें यह धारणा हो गई थी कि उनमें आचरणके सुधारनेकी ओर ध्यान नहीं दिया जाता, नैतिक बलको उत्तेजन नहीं दिया जाता, देखने और विचारनेकी शक्तिका गला घोंट दिया जाता है और विद्यार्थी केवल पुस्तकोंके दास बन जाते हैं। धर्म जो मनुष्यत्वका भूषण है उसकी ओरसे तो वे बहुत ही विरक्त हो जाते हैं। इसलिए सरकारी शिक्षापद्धतिका अनु-करण न करके हमें अपना शिक्षाक्रम बनाना चाहिए और उसके अनुसार शिक्षा देनेवाली स्वतंत्र संस्थायें हमारे देशवासियोंको स्थापित करना चाहिए।

ऐसी शिक्षासंस्थायें यदि जुदा जुदा जातियों या समाजोंकी ओरसे स्थापित की जायँगी तो वे अच्छा काम कर सकेंगी; उनकी ओर जुदा जुदा जातियोंका विशेष प्रेम होगा और वे उनकी उन्नतिमें तनमन-धनसे सहायता करेंगी। कमसे कम देशकी वर्तमान अवस्थामें तो वे इस प्रकारके जुदा जुदा प्रयत्नोंको बहुत लाभकारी समझने लगे।

कालेज छोड़ने पर तो सेठीजीके मस्तकमें ये बातें रातदिन

चक्कर लगानें लगीं। उनका चित्त निरन्तर व्याकुल रहने लगा। अपने आगामी जीवनको कर्तव्यपरायण बनानेके लिए वे प्रतिदिन नई नई मानसिक स्कीमें गढ़ने लगे।

उनकी स्वार्थवासनायें बहुत ही दुर्बल थीं, इस लिए वे नहीं चाहते थे कि शिक्षाके प्राप्तिके लिए मैंने जो अश्रान्त परिश्रम किया है और शरीरको अतिशय क्षीण कर डाला है,उसका बदला मैं केवल धन कमाकर और भोगसामग्रियाँ प्राप्त करके लूँ। उनके हृदयपट पर जो बड़े बड़े स्वार्थत्यागी महात्माओंके चरित्र लिखे हुए थे वे उन्हें परोपकारके मार्गका यात्री बनानेके लिए ही प्रेरणा करते थे। यद्यपि नौकरीसे उन्हें बहुत ही घृणा थी; परन्तु अपने पिताके द्वारा बहुत मजबूर किये जाने पर—पिताकी आज्ञाका उल्लंघन करना अच्छा न समझकर उन्हें लाचार होकर नौकरीके लिए राजी होना पड़ा। पहले वे जयपुरमहाराजकी कौंसिलमें 'एप्रेंटिस' नियत हुए। इसके बाद उन्हें रेजीडेंसीमें काम मिला और इस कामको उन्होंने दो महीने तक किया। इसी समय इनके पिताका देहान्त हो गया और तब ये उन्हीं जागीरदारके—जिनके यहाँ इनके पिता नियुक्त थे—प्राइवेट सेक्रेटरी नियुक्त हो गये।

इस पदको प्राप्त हुए थोड़ा ही समय व्यतीत हुआ था कि सेठीजीको मथुराके जैन महाविद्यालयकी उन्नतिका आन्दोलन सुन पड़ा। उनके हृदयकी तलीमें जो शिक्षाप्रचारके भाव जमे हुए थे और जो विचार उन्हें निरन्तर ही चिन्तित बनाये रखते थे अब उनका रोकना कठिन हो गया। इस बीचमें उन्हें जैनधर्म और जैनसमाजकी दुरवस्थाका

भी बहुत कुछ परिचय हो गया था और इस कारण वे यह चाहते लगे थे कि मैं अपने कार्यका क्षेत्र जैनसमाजको ही बनाऊँ। इस अवसरको हाथसे जाने देना उन्होंने उचित नहीं समझा और सन् १९०५ में अपनी नौकरीसे स्तीफा दे दिया। इस समय ठाकुरसाहबने उन्हें बहुत समझाया—आग्रह भी किया, पर वह सब निष्फल हुआ।

अब सेठीजीने जैनधर्म और जैनसमाजकी सेवाके लिए अपना जीवन अर्पण कर दिया। धन कमा करके भोगविलासके साधन इकट्ठा करनेकी–राजकीय प्रतिष्ठा प्राप्त करनेकी और उठती जवानीकी अन्यान्य सारी वासनाओंको संकुचित करके उन्होंने समाजसेवाकी दीक्षा ले ली और यह उस समय जब कि जैनसमाजमें इस तरहके स्वार्थत्यागकी न तो चर्चा ही थी और न प्रतिष्ठा। अपने भाइयोंकी भलाईके लिए दिनरात अश्रान्त परिश्रमके सिवाय इस स्वार्थत्यागका और कोई ऐहिक फल पानेकी उस समय आशा न थी। इस मार्गमें अनेक विघ्न उपस्थित हुए; परन्तु सेठीजीने उनकी ज़रा भी परवा न की। सुनते हैं कि अपनी धुनमें उन्होंने अपनी पैतृक सम्पत्ति तकको तुच्छ समझा और अपना हक़ छोड़कर उसे अपने भाईको ही सौंप दिया। सेठीजीके इस स्वार्थत्यागका महत्त्व वे लोग समझ सकेंगे जिन्होंने सब तरहकी योग्यतायें प्राप्त करके अभी अभी आशामय संसारमें पैर बढ़ाया है और कभी एकान्तमें बैठकर अपनी असीम आशाओंको मर्यादित करनेका थोड़ासा भी प्रयत्न किया है।

सेठीजी नौकरी छोड़कर जैनमहाविद्यालयके डेप्यूटेशनमें आकर शामिल हुए। इस डेप्यूटेशनमें साहु जुगमन्दरदासजी, लाला बद्रीदासजी, बाबू शीतलप्रसादजी आदि अनेक सज्जन थे। सेठीजीकी अनेक शहरोंमें अच्छी जोरदार अपीलें हुईं और उनका फल भी अच्छा हुआ। लगभग १५ हजार रुपये विद्यालय फण्डको मिल गये।

इसके बाद सेठीजी जैनमहाविद्यालय मथुराके आनरेरी अध्यक्ष नियत हुए। जब विद्यालय सहारणपुर चला गया, तब वहाँ भी वे गये। लगभग एक वर्ष तक उन्होंने विद्यालयकी सच्चे हृदयसे सेवा की। उस समय जैनमहासभाके कार्यकर्ताओंमें मतभेद बहुत बढ़ गया था। समाचारपत्रोंमें एक दूसरेके विरुद्ध लेख प्रकाशित हो रहे थे। इससे तथा और भी कई कारणोंसे सेठीजी विद्यालयसे अलग हो गये और १९०६ में अपने घर जयपुर लौट गये।

अब उनकी इच्छा एक स्वतंत्र संस्था स्थापित करनेकी हुई और थोड़े ही दिनोंमें उन्होंने अपने कई मित्रोंकी सहायतासे 'जैनशिक्षा-प्रचारक समिति' नामकी संस्था खोल दी। इस संस्थाकी उन्होंने आश्चर्यजनक उन्नति की और कुछ समयके बाद उसे Jain Educational Society of India के रूपमें परिवर्तित कर दिया। समिति जिस प्रणालीसे काम करती थी और जो काम कर रही थी इसका जिन लोगोंको परिचय है वे ही जानते हैं कि सेठीजी किस श्रेणीके मनुष्य हैं और जैनसमाजके लिए उन जैसे पुरुषोंकी कितनी अधिक अवश्यकता है। पाठक यह जानकर आश्चर्य करेंगे कि

जैनशिक्षाप्रचारक समितिने अपने पिछले वर्षोंमें प्रतिवर्ष (१२०००) बारह हजार रुपयेके हिसाबसे खर्च किया है ! इतनी बड़ी रकम कहाँसे आती थी ? न सेठीजीके पास कोई स्थायी फण्ड था और न उनका कोई धनी सहायक था । यदि कुछ था तो असाधारण साहस, दृढ प्रतिज्ञा और अश्रान्त परिश्रम करनेकी शक्ति । जैन-समाजका कोई मेला, कोई जल्सा कोई उत्सव और कोई प्रतिष्ठा ऐसी न होती थी जिसमें सेठीजी न जाते हों और कुछ न कुछ चन्दा एकत्र करके न लाते हों । इस कार्यके लिए एक एक पैसा माँगनेमें भी उन्हें संकोच न होता था । उनकी अपील बड़ी जोरदार होती थी । श्रोताओंके कड़ेसे कड़े हृदय भी उनकी हृदय-द्रावक वाणीसे पिघल जाते थे । उनके कई मित्र भी उन्हीं जैसे थे । वे जयपुर शहरमेंसे चन्दा वसूल करते थे । कई सज्जनोंने तो यह प्रतिज्ञा ले रक्खी थी कि जिस दिन समितिको कमसे कम एक रुपया कहींसे माँगकर न ला देंगे, उस दिन एक बारका भोजन या कोई एक रस छोड़ देंगे !

समितिके कार्योंके कई विभाग थे । परीक्षाविभागके द्वारा समिति अपने निर्वाचित पठनक्रमके अनुसार जयपुर शहरकी और बाहरकी जैन पाठशालाओंकी परीक्षा लेती थी । जो विद्यार्थी परीक्षामें उत्तीर्ण होते थे उन्हें पारितोषिक और मासिक वृत्तियाँ भी दी जाती थीं । परीक्षाके प्रश्नपत्र समिति बड़े बड़े विद्वानोंसे तैयार करवाती थी, जो विद्यार्थियोंकी योग्यताकी जाँचके लिए बहुत ही अच्छे होते थे ।

पुरुषशिक्षाविभाग और स्त्रीशिक्षाविभागकी अधीनतामें समितिने

जयपुरमें कुछ विद्यालय और कन्या पाठशालायें स्थापित कर रक्खी थीं। इन सबमें समितिके पठनक्रमके अनुसार पढ़ाई होती थी। बारह हजार वार्षिक खर्चमेंसे अधिकांश रुपया इन्हीं पाठशालाओंके काममें खर्च होता था।

'श्रीवर्द्धमानजैनविद्यालय' समितिका आदर्श विद्यालय था। इसमें लगभग २०० विद्यार्थी शिक्षा पाते थे। विद्यालयके साथ एक छात्रालय भी था जिसमें दूर दूरसे आये हुए लगभग ५० विद्यार्थी रहते थे। विद्यार्थियोंको शारीरिक मानसिक और धार्मिक तीनों प्रकारकी शिक्षायें दी जाती थीं। शिक्षापद्धतिके सम्बन्धमें सेठीजीका ज्ञान और अनुभव बहुत ही बढ़ा चढ़ा है! उन्होंने यूरोप, अमेरिका, जापान आदि सारे उन्नत देशोंकी शिक्षाप्रणालीका अध्ययन और मनन किया है। इस विषयके बहुत ही कम ग्रन्थ होंगे जो उन्होंने न पढ़े हों। उन्होंने कांगड़ी, ज्वालापुर, वृन्दावन आदिके गुरुकुल, तथा रवीन्द्रबाबूका शान्तिनिकेतन, आदि एतद्देशीय आदर्श विद्यालयोंका अच्छी तरह अवलोकन किया है तथा उनकी शिक्षापद्धति पर विचार किया है। वे स्वयं भी एक अच्छे शिक्षक हैं। इससे पाठक जान सकते हैं कि उनके विद्यालयका पठनक्रम और पठनप्रणाली कितनी अच्छी होगी। वे अपने विद्यालयमें एक भी अध्यापक ऐसा न रखते थे जो शिक्षापद्धतिका जानकार न हो। अध्यापकोंको वे स्वयं शिक्षा देनेकी पद्धति बतलाते थे।

विद्यालयमें संस्कृत, अँगरेजी और हिन्दी तीन भाषाओंकी शिक्षा सहजसे सहज पद्धतिके द्वारा दी जाती थी। जैनधर्मकी शिक्षाकी

ओर तो बहुत ही अधिक लक्ष्य दिया जाता था। जैनधर्मके मूलभूत कर्मसिद्धान्तका ज्ञान वे छोटेसे छोटे बच्चोंको इतना अच्छा करा देते थे कि सुननेवाले आश्चर्य करते थे। विद्यालयकी अन्तिम श्रेणीके विद्यार्थियोंकी योग्यता अँगरेज़ीमें इतनी अच्छी हो जाती थी कि वे कुछ ही समय तक प्राइवेट परिश्रम करके मैट्रिकमें भरती हो जाते थे। संस्कृतमें उनकी प्रवेशिकासे भी अच्छी योग्यता हो जाती थी और हिन्दी साहित्यके तो वे बहुत अच्छे जानकार हो जाते थे। उनके कई विद्यार्थी हिन्दीके अनेक पत्रोंमें लेख लिखते थे और कोई कोई तो कविता भी कर सकते थे। हिन्दीके सेठीजी अनन्य भक्त हैं। इस विषयमें वे अपने विद्यार्थियोंका खास तौरसे उत्साह बढ़ाते थे। हिन्दीका उन्होंने खास तौरसे अध्ययन किया है। यद्यपि उन्हें समय बहुत ही कम मिलता था, तो भी उन्होंने हिन्दीमें कई पुस्तकें लिखी हैं जो अभीतक प्रकाशित नहीं हुई हैं। वे अच्छे लेखक हैं। कविताका भी उन्हें अभ्यास है। उनका बनाया हुआ 'महेन्द्रकुमार नाटक' गद्यपद्यमय है और बहुत ही सुन्दर है।

विद्यालयमें गणित, इतिहास, भूगोल, अर्थशास्त्र, पदार्थविज्ञान, चित्रकारी आदि सब विषय पढ़ाये जाते थे और इतिहासादि कई विषयोंकी पढ़ाई तो उनकी बहुत ही अच्छी होती थी। उनकी शिक्षाका क्षेत्र बहुत ही विशाल है। वे यह नहीं चाहते कि जैनविद्यार्थी किसी संकीर्ण परिधिके भीतर कैद कर दिये जावें और वे संसारके विशाल ज्ञानसे वंचित रहकर अंधश्रद्धालु बन जावें।

विद्यालयमें जितने कार्यकर्ता थे वे प्रायः अल्पवेतन लेकर काम

करनेवाले या अवैतनिक थे। उनके विचारोंका विद्यार्थियों पर बहुत गहरा प्रभाव पड़ता था। वे उनके चरित्रसे यह सीखते थे कि मनुष्यका सबसे बड़ा कर्तव्य समाज और धर्मकी निःस्वार्थ होकर सेवा करना है।

सेठीजीका धार्मिक ज्ञान बहुत ही बढ़ा चढ़ा है। जैनधर्मके गोम्मटसार, कर्मग्रन्थ आदि सिद्धान्तोंका उन्होंने इतना अच्छा अध्ययन और मनन किया है कि जैनसमाजमें उनकी जोड़का एक भी ग्रेज्युएट नहीं है। जैनधर्मकी सैद्धान्तिक चर्चामें ऐसा शायद ही कोई दिन हो जब उनके दो तीन घंटे न जाते हों। उनकी शंकाओंका समाधान करना बड़े बड़े विद्वानोंके लिए भी कठिन जाता है। जैनधर्मका हृदय क्या है यह वे जानते हैं। उन्होंने श्वेताम्बरशास्त्रोंका भी एक यति महाशयके पास अच्छा अध्ययन किया है। जैनधर्मकी शिक्षाको वे बहुत ही आवश्यक समझते हैं।

जैनधर्मके वे केवल ज्ञाता ही नहीं हैं, उसका आचरण भी पूर्णतया करते हैं। अभी कुछ दिन पहले जेलखानेमें जिन-दर्शन न मिलनेसे उन्होंने आठ दिन तक भोजन न किया था।

जैनसमाजके बीसों ग्रेज्युएटोंका ध्यान उन्होंने जैनधर्मके अध्ययनकी ओर आकर्षित किया है और उन्हें समझाया है कि अपने इस रत्नाकरको देखो, इसमें अवगाहन करो; तुम्हें वह शान्ति मिलेगी जो और कहीं भी नहीं मिल सकती है।

स्त्रीशिक्षाविभागकी ओरसे सरस्वती कन्यापाठशाला और पद्मावती कन्यापाठशाला दो पाठशालायें स्थापित हैं और उनमें समितिके

पठनक्रमके अनुसार हिन्दी, भूगोल, गणित, गृहकार्य और धर्मकी शिक्षा दी जाती है।

समितिका एक पुस्तकालय भी है। उसमें हिन्दीकी तथा अँगरेजी आदिकी कई हजार पुस्तकें संग्रह हैं। इसमे जैन अजैन सब एक सा लाभ उठाते थे। जयपुरका प्रसिद्ध हिन्दी पुस्तकालय 'नागरी भवन' समितिको ही मिल गया था।

प्राचीन हस्तलिखित ग्रन्थोंका संग्रह और उद्धार करनेके लिए भी एक विभाग स्थापित किया गया था और उसके द्वारा जयपुरके समस्त भंडारोंकी सूची तैयार कराई गई थी; परन्तु आगे कोई योग्य कार्यकर्त्ता न मिलनेके कारण यह काम बन्द कर दिया गया।

विद्यार्थियोंको व्याख्यान देना भी सिखलाया जाता था। उनके सामने अच्छे अच्छे व्याख्यान होते थे, जिससे वे अपने चरित्रको उदार उन्नत और धर्ममय बनावें और लोगोंके कल्याण करनेकी शक्ति—वक्तृत्व शक्ति प्राप्त कर सकें।

छात्रालयमें कालेजके पढ़नेवाले विद्यार्थी भी रक्खे जाते थे और जो असमर्थ होते थे उनसे कुछ काम लेकर उन्हें कुछ आर्थिक सहायता कर दी जाती थी। ऐसे विद्यार्थियोंके हृदय पर धार्मिक संस्कार डालनेका सेठीजी बहुत प्रयत्न करते थे। थोड़े ही समयमें उन्हें धर्मसे प्रेम हो जाता था और उनकी धर्म तथा समाजकी सेवा करनेकी ओर रुचि हो जाती थी। उनके यहाँके ऐसे कई विद्यार्थी आज जैनसमाजकी सेवा कर रहे हैं।

समिति एक ऐसी अच्छी संस्था थी कि उसकी विशेष विशेष

बातोंका उल्लेख करनेके लिए ही बहुत स्थान चाहिए। हमने यहाँ मोटी मोटी बातें बतला दी हैं; अधिक जाननेके लिए समितिकी रिपोर्ट देखना चाहिए।

हमारी समझमें सेठीजीका वास्तविक परिचय पानेके लिए-उनके कर्तव्यशील जीवनका महत्त्व समझनेके लिए समितिके कामोंको छोड़कर और कोई साधन नहीं है। उनका अन्तरंग शरीर समितिके ही रूपमें विद्यमान था।

हमारा विश्वास है कि यदि सेठीजीकी 'समिति' दश ही वर्ष और चल जाती तो जैनसमाजकी प्रगति इतनी हो जाती जिसकी कि हम कल्पना भी नहीं कर सकते हैं। अभी तो उसका प्रारंभ ही था—काम करनेके दिन तो उसके अब आये थे; परन्तु जैनसमाजका दुर्भाग्य कि उस पर अकालहीमें एक वज्र आकर पड़ा और वह नष्ट भ्रष्ट हो गई।

सेठीजीका शिक्षाप्रचारके समान समाजसुधारकी ओर भी लक्ष्य है। उन्होंने जो महत्त्वका और सबसे आवश्यक कार्य अपने हाथमें ले रक्खा था उसके देखते हुए यद्यपि उन्हें इस कार्यमें हाथ न डालना चाहिए था; तथापि जैनसमाजके कल्याणकी—उसकी दशा सुधारनेकी भावना उनके हृदयमें इतनी प्रबल थी कि उन्हें यह कार्य बलात् करना पड़ता था। इससे उन्हें अनेक संकीर्ण हृदय व्यक्तियोंका कोपभाजन बनना पड़ा और बहुतोंने तो उनके मार्गमें काँटे बिछानें तकका प्रयत्न किया। किन्तु वे अपने विचारोंमें इतने दृढ थे कि उन्होंने किसीकी जरा भी परवा न की—सब कुछ हानियाँ सहकर भी वे अपने कर्तव्यपथ पर आरूढ रहे।

वे सुधारक हैं; परन्तु अविचारक नहीं हैं। समाजमें जिन सुधारोंकी वास्तवमें आवश्यकता है, जिनसे समाजका कल्याण होनेकी संभावना है और जिनसे जैनधर्मके सिद्धान्तोंमें कोई बाधा नहीं आ सकती उन्हीं सुधारोंके लिए वे प्रयत्न करते थे। राजपूतानेमें छोटी छोटी सैकड़ों कुरीतियाँ प्रचलित हैं उन्हें सेठीजीने बहुत कुछ बन्द करा दिया है। कन्याविक्रय, बाल्यवृद्धविवाह, रंडियोंका नाच और फ़िज़ूलखर्चीके मिटानेमें उन्हें बहुत सफलता हुई है। उन्होंने अनेक विवाह बहुत ही थोड़े खर्चमें सर्वथा सभ्य और उच्चरीत्यानुसार करवाये हैं। समाजसुधारके लिए उन्होंने एक नाटकमण्डली स्थापित कर रक्खी थी। इसके नाटकोंका लोगों पर बड़ा प्रभाव पड़ता था। अभी दो वर्ष हुए इनके एक नाटकमें लगभग दश हजार दर्शक उपस्थित हुए थे!

जैनोंकी तमाम जातियोंमें परस्पर रोटी-बेटी व्यवहार जारी करनेकी वे बहुत आवश्यकता बतलाते हैं। इस विषयमें उनकी युक्तियाँ सुनने योग्य होती हैं। जैनोंकी तीनों शाखाओंमें—दिगम्बर श्वेताम्बर स्थानकवासियोंमें मेल मिलाप बढ़ानेका—प्रीतिभाव उत्पन्न करानेका वे बहुत उद्योग किया करते थे। इसके लिए उन्होंने एक भजनमण्डली स्थापित कर रक्खी थी जो बारी बारीसे तीनों सम्प्रदायके मन्दिरोंमें जाकर प्रीतिवर्धक भजन गाती थी। कभी कभी वे तीनों सम्प्रदायके शिक्षितोंको एकत्र करते थे और उनका एक साथ प्रीतिभोज कराते थे। अपने विद्यालयमें वे तीनों सम्प्रदायके विद्यार्थियोंको रखते थे; उनकी धर्मशिक्षाका भी उन्होंने यथोचित प्रबन्ध कर रक्खा

था। उनकी संस्थाके लिए चन्दा भी उन्हें तीनों सम्प्रदायोंसे मिलता था। कई अजैन विद्यार्थी भी उनके विद्यालयमें शिक्षा पाते थे। देशकी उन्नतिके लिए वे यह भी आवश्यक समझते हैं कि नीच जातियोंको शिक्षा दी जाय। उनके खयालमें ज्ञानदान किसीको भी किया जाय, वह पापका कारण नहीं हो सकता है। अवश्य ही उनके इन कामोंसे बहुत लोग अप्रसन्न थे।

सेठीजी जैनसमाजके बड़े नामी व्याख्याता हैं। उनके व्याख्यानोंका प्रभाव भी बड़ा गहरा पड़ता है। नये और पुराने दोनों तरहके खयालवाले उनके व्याख्यानोंकी प्रशंसा करते हैं। इस कारण उन्हें प्रायः प्रत्येक जैन सभामें उपस्थित रहना पड़ता था। आज तक उनके देशके एक छोरसे दूसरे छोर तक सैकड़ों व्याख्यान हुए हैं; परन्तु जहाँतक हम जानते हैं समाज और धर्मसे बाहर राजनीति आदिके सम्बन्धमें उनका कोई भी व्याख्यान नहीं हुआ। वे केवल धर्म और शिक्षाके प्रचारक हैं। जैनसमाजमें अभी इतनी योग्यता भी कहाँ है कि वह राजनीतिके व्याख्यान सुने। जिस समाजकी सारी शक्तियाँ साम्प्रदायिक झगड़ोंमें—शास्त्रार्थोंमें और तीर्थोंकी मुकद्दमेबाजीमें खर्च होती हैं उसमें इतना बल कहाँ कि राजनैतिक क्षेत्रमें खड़ा हो सके।

सेठीजीका स्वभाव बड़ा ही सुशील, मृदु और प्रभावशाली है। अभिमान उनको छू तक नहीं गया। वे प्रशंसाके भूखे नहीं। वे केवल काम करना जानते हैं। उनका रहन सहन बहुत ही सादा है। सदा अपनी देशी पोशाक पहनते हैं। जयपुरी पगड़ी

छोड़कर उन्हें कभी किसीने टोपी लगाये न देखा होगा। खाना पीना बहुत ही सादा रखते हैं। कष्ट सहन करनेमें तो वे बहुत ही बढ़े चढ़े हैं। थोड़ेसे भुने चने साथमें रखकर सैकड़ों मीलोंकी सफ़र कर आना उनके लिए मामूली बात है।

सेठीजीके कुटुम्बमें उनकी सहधर्मिणी, एक पुत्र और दो कन्यायें हैं। अपनी स्त्री श्रीमती गुलाबबाईको उन्होंने इस प्रकारकी शिक्षा दी है, उनके विचारोंको इतना उन्नत और उदार बना दिया है और उनके मनमें समाजसुधारकी आवश्यकताके भाव इतने दृढ कर दिये हैं कि वे इनके कामोंको अच्छा ही नहीं समझती हैं किन्तु इन्हें बहुत कुछ सहायता भी पहुँचाती हैं। सेठीजीका विश्वास है कि जो पुरुष अपनी सहधर्मिणीको अपने विचारोंकी अनुयायिनी और शिक्षिता नहीं बना सकता है वह समाजका काम कभी सफलताके साथ नहीं कर सकता।

पुत्र प्रकाशचन्द्रकी अवस्था इस समय ११ वर्षकी है। लड़कियाँ छोटी छोटी हैं। प्रकाशचन्द्रको आप स्वयं ही पढ़ाते थे। आप यह नहीं चाहते हैं कि वह बी. ए., एम. ए. पास करके वकील बन जाय या नौकरी कर ले। आपकी यही इच्छा है कि वह भी अच्छी तरह शिक्षित होकर अपना जीवन देश, धर्म और समाजकी सेवाके लिए अर्पण कर दे। 'प्रकाश' होनहार लड़का है। उससे बात-चीत करके और उसके इस छोटीसी उम्रके विचार सुनकर चित्त बहुत ही प्रसन्न होता है।

गतवर्ष इन्दौरके नामी रईस रायबहादुर सेठ कल्याणमलजीने दो लाख रुपयोंका दान करके इन्दौरमें एक जैन हाईस्कूल खोलना चाहा और उसकी नीव जमाकर कुछ समय तक स्कूलको अच्छे ढंगसे चला देनेके लिए सेठीजीसे प्रार्थना की। उन्होंने कुछ समयके लिए यह कार्य करना स्वीकार भी कर लिया। करते क्यों नहीं, उनके जीवनका तो उद्देश्य ही शिक्षाप्रचार है। गतमार्चमें वे उक्त स्कूलको आदर्शरूपमें स्थापित करनेकी तैयारी कर ही रहे थे कि अचानक गिरिफ्तार कर लिये गये। पहले देहलीके षड्यंत्रके मामलेमें देहली लाये गये; परन्तु सुबूत न मिलनेसे थोड़े ही दिनोंमें छोड़ दिये गये। इसके बाद ही न जाने फिर क्यों पकड़ लिये गये और कुछ दिनों इन्दौरमें रक्खे जाकर जयपुर भेज दिये गये। तबसे अबतक वे जयपुरकी जेलमें सड़ रहे हैं। यह नहीं बतलाया जाता है कि उन्होंने क्या अपराध किया है।

देखें जैनसमाजके शुभदिन कब आते हैं और कब वह फिरसे ऐसे महात्मा, उदारहृदय, स्वार्थत्यागी सच्चे सेवकको प्राप्त कर उन्नतिके पथ पर अग्रसर होता है।

सेठीजीका मामला।

" धिक् तां च तं च विमदं च इमां च मां च ! "
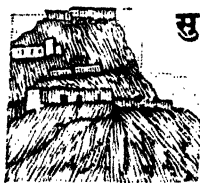
सुप्रसिद्ध विद्वान् राजा भर्तृहरिको जब मालूम हुआ कि मेरी प्यारी स्त्री व्यभिचारिणी है, तब उन्होंने अपने हार्दिक दुःखको नीचे लिखे पदमें प्रकट किया था:—

" धिक् तां च तं च मदनं च इमां च मां च ! "

इस अमर पदका अभिप्राय यह है कि, " धिक्कार है उसको (रानीको), धिक्कार है उसे (पत्नीके जारको), धिक्कार है मदनको (कामदेवको), धिक्कार है इसे (उस जारका चित्त दूसरी जिस स्त्रीपर आसक्त था उसे) और धिक्कार है मुझे जो मैं अपनी स्त्री पर विश्वास कर रहा था ।

एक देशी राजाका अपनी प्रजाके प्रति अप्रीतिका वर्ताव देखकर मेरे मुँहसे भी सहसा यही पद निकल पड़ा है, केवल इतना फर्क करके कि भर्तृहरिके ' मदन ' शब्दके स्थानमें मैंने ' विमद ' शब्द रख दिया है । वास्तवमें ' मदन ' और ' मद ' दोनों शब्द एक ही धातुसे बने हैं और दोनोंमें उच्छृंखलताका भाव समान रूपसे भरा हुआ है । पाठक समझ ही गये होंगे कि मैं यह बात जयपुर राज्य और किसी भी प्रकारके अपराधके प्रमाणके विना जेलका कष्ट भोगनेवाले पं. अर्जुनलालजी सेठीको उद्देश्य करके लिख रहा हूँ ।

पं० अर्जुनलालजी सेठीके दुर्भाग्यका वर्णन गतांकमें हो चुके है । आज मैं उक्त महात्माके विषयमें अपना निजी अनुभव प्रकट करना चाहता हूँ । न जाने कितने धार्मिक सम्मेलनोंमें मैंने उन्हें देखा है, उनसे वार्तालाप किया है, उनके धर्मभावनाओंसे भरे हुए व्याख्यानोंको सुना है, दो तीन अवसरों पर तो उनके साथ दिन दिन रातरातपर्यंत निवास किया है और उस समय उनके निजी जीवनका—उनके हृदयका—उनके आशयोंका गहरा अभ्यास किया है। मैंने उनका—प्रखर आत्मत्यागसे चलनेवाला आदर्श विद्यालय देखा है और उसमें जो शिक्षा दी जाती थी उसकी जाँच की है। उनके रचे हुए धर्म भावनामय नाटकके गीत बाँचे हैं और उनकी प्रवृत्तियोंका झुकाव देखा है । यदि इतना परिचय प्राप्त करने पर भी एक लेखक किसी मनुष्यके सम्बन्धमें अपने विचार निश्चित करनेका—अपने अभिप्राय प्रकट करनेका अधिकारी न समझा जाय तो कहना होगा कि संसारका कोई भी मनुष्य दूसरे किसीके विषयमें अभिप्राय बाँध ही नहीं सकता। मेरा विश्वास है कि पं० अर्जुनलालजीके साथ मेरा जो उक्त रूपसे परिचय रहा है उससे उनके विषयमें मेरे जो ख़याल बने हैं वे सत्य हैं और उनको कोई मनुष्य ग़लत सिद्ध नहीं कर सकता । मेरे ख़यालसे सेठीजी केवल धर्मक्षेत्र और शिक्षाकार्यमें तन्मय रहनेवाले पुरुष हैं। शान्ति-प्रचारक जैनधर्म और सुखवर्द्धक शिक्षाकी उन्नतिके सिवाय दूसरा कोई विचार उनके मस्तकमें उत्पन्न ही नहीं हो सकता। अब तक वे कभी किसी भी राजनीतिक आन्दोलनमें यहाँतक कि कांग्रेसमें

भी शामिल नहीं हुए हैं। षड़यंत्र, खून-खराबी, उपद्रव आदि बातें उनकी प्रकृति और उनके परम पवित्र मिशनके अनुकूल कदापि नहीं हो सकतीं। जैनजातिका उन्होंने इतना उपकार किया है कि उसका ऋण वह अनेक पीढ़ियों तक भी न चुका सकेगी। जयपुर राज्यकी जैन प्रजामें--साथ ही अजैन प्रजामें भी उन्होंने जो धार्मिकभावनाओंकी वृद्धिका तथा शिक्षाप्रचारका कार्य किया है, उससे वे जयपुर राज्यके भी बड़े भारी उपकारी हैं। ऐसी अवस्थामें भी उन्हें उनका राज्य---उनका ही स्वदेशी राज्य किसी भी प्रकारका अपराध प्रमाणित किये बिना जेलमें ठूँस देता है, यह क्या उस आघातसे हल्का आघात है जो रानी पिंगलाने भर्तृहरिके प्रेमपूर्ण विश्वस्त हृदय पर किया था? प्रसन्नतापूर्वक--निःस्वार्थतापूर्वक की हुई जनसाधारणकी सेवाका यह कितना भयंकर बदला है! धिक्कार है उस समाजको--उस जैन समाजको कि जिसने एक मनुष्यसे वर्षों सेवा करानेके बाद उसके कष्टके समय अपनी आँखें बन्द कर लीं और अपनी साहजिक वणिक्-बुद्धि बतला दी! अर्जुनलाल, तुम्हें भी धिक्कार है कि तुमने गुणहीनोंकी सेवा की! धिक्कार है उस सत्ताके महान् मदको या गर्वको कि जिसने जयपुरनरेशके कान ऐसे बहरे कर दिये कि दुःखिनी अबला और सैकड़ों प्रजाजनोंकी करुणापूर्ण पुकार भी उन तक न पहुँची और उसका उत्तर देनेकी भी जिसके कारण आवश्यकता न समझी गई! और धिक्कार है राज्यके अमल्दारोंकी उस बुद्धिको जिसने तुम्हारे कारण अपना--अपने राज्यका गौरव समझनेके बदले तुम्हें

कष्ट देनेमें ही कृतकृत्यता समझी । परन्तु इन सबको धिक्कार देनेके बदले मैं स्वयं अपनेको ही धिक्कार क्यों न दूँ जो जैनसमाजको सोलह वर्षके लम्बे समयमें अच्छी तरह जान–पहचान कर भी इस धनलुब्ध, उच्चभावनाओंसे विमुख और कर्तव्यच्युत समाजको अर्जुनलालजीके प्रति उसका जो कर्तव्य है उसमें तत्पर होनेकी निष्फल अपील करनेमें समय गवाँ रहा हूँ !

क्या जैनसमाज कर्तव्यहीन नहीं है ? बम्बईका प्रसिद्ध 'गुजराती' पत्र इस विषयमें कटाक्ष कर ही चुका है । उधर कानपुरका 'प्रताप' कहता है:—" जैनसमाजके लिए यह शर्मकी बात है कि उसका एक खास सेवक निर्दोष होने पर भी जेलमें सड़ता रहे और वह हाथ पर हाथ रक्खे बैठ रहे । पटियालेके मामलेमें आर्यसमाजने आकाश और पाताल एक कर दिये, पर यहाँ तो अभी कुछ भी नहीं हुआ । " प्रतापके सम्पादक महाशयको जैनों और आर्यसमाजियोंके बीचका अन्तर देखकर आश्चर्य होता है; पर मुझे तो यही आश्चर्य हो रहा है कि उन्हें इसमें आश्चर्य क्यों हुआ ! कहाँ आर्यसमाज और कहाँ आधुनिक जैनसमाज ! कहाँ शेर और कहाँ गीदड़ ! कहाँ सूर्य और कहाँ बेचारा खद्योत ! यदि जैनोंमें ज़रा भी कर्तव्यप्रेम शेष होता—जीवन रहा होता—सजीव जल रहा होता तो क्या देशरत्न लाला लाजपतराय जैनकुलमें जन्म लेकर भी आर्यसमाजमें चले जाते ? भला, जैनसमाज ऐसे रत्नको किस स्थल पर और कैसे रखता ? गुजरातीकी एक कहावतका अर्थ यह है कि " यदि बनिया प्रसन्न होगा तो अधिकसे अधिक तालियाँ बजा

देगा।" परन्तु कर्तव्यपरायण समाजके वीर तो ऐसे होते हैं कि वे जिस व्यक्तिको या जिस सिद्धान्तको चाहते हैं, उसके लिए अपना सर्वस्व अर्पण कर देते हैं–'स्वात्मार्पण' यही उनका 'मोटो' या मुद्रालेख होता है। ऐसे ही वीरोंके बीचमें काम करनेका उत्साह होता है। हमारे जैन भाइयोंकी–वणिक् महाशयोंकी तो यह दशा है कि अपने एक समाजसेवकके लिए न्यायप्रिय ब्रिटिश सरकारके प्रति प्रार्थना करनेरूप कर्तव्यप्रेम बतलानेमें भी उन्हें बहुत कुछ आगापीछा सोचना पड़ता है।

शायद प्रतापके सम्पादक महाशयको यह मालूम नहीं है कि हमारा जैनसमाज तीन सम्प्रदाय और तेरह सौ विभागोंमें बँटा हुआ है और प्रत्येक सम्प्रदाय या विभाग दूसरे सम्प्रदायके प्रति प्रायः घृणा अथवा उदासीन भाव रखनेवाला है। बल्कि इसमें तो ऐसे सज्जनोंका भी अभाव नहीं हैं जो तीनों सम्प्रदायोंके बीच एकता बढ़ानेका प्रयत्न करनेवाले सेठी जैसे पुरुषोंको कष्ट देने तकके लिए तैयार हो सकते हैं। मैंने स्वयं कितने ही पढ़े लिखे श्वेताम्बर और स्थानकवासी जैनोंके मुँहसे इस आशयके शब्द सुने हैं कि अर्जुनलाल दिगम्बर है, तब हमारा उसकी आपत्तिविपत्तिसे क्या सम्बन्ध है? वह मरे चाहे जीवे, इससे हमें क्या? समझमें नहीं आता कि ऐसे लोगोंको कौन सा विशेषण दिया जावे; इन्हें दुष्ट या धर्महीन कह देने मात्रसे तो हृदयको जरा भी सन्तोष नहीं होता है। जिन महावीर भगवानने मनुष्य ही नहीं जीवमात्रको एक मैत्रीसूत्रमें बाँधनेकी–परस्पर साम्य और भ्रातृभाव स्थापित करनेकी शिक्षा

दी थी, आज उन्हीं महावीरके अनुयायी सम्प्रदाय और पंथोंमें ऐसे जकड़ गये हैं कि इन बेड़ियोंसे ही निरन्तर एक दूसरेका सिर फोड़नेमें मस्त रहते हैं। इससे अधिक लज्जाकी बात और क्या हो सकती है?

प्रताप-सम्पादक पटियाला-केसका उदाहरण देकर आर्यसमाजकी एकताकी प्रशंसा करते हैं; परन्तु मेरा विश्वास है कि यदि जैनसमाज अपनी संकीर्णता और स्वार्थपरायणता छोड़ दे, एकता और कृतज्ञता सीखे तो यह भारतके व्यापारके अधिकांश भागकी अधिकारिणी चौदह लाख संख्यावाली जाति केवल एक ही महीनेके भीतर अर्जुनलालजीको बन्धमुक्त करा सकती है।

आज ग्यारह महीना हो गये, बतलाइए जैनोंने अबतक क्या आन्दोलन किया है? क्या गाँव गाँवमें तीनों शाखाओंकी ओरसे सभायें हुई हैं? क्या गाँव गाँवसे जयपुर महाराजके पास या वायसराय साहबके पास न्याय माँगनेके लिए तार गये हैं? क्या तीनों सम्प्रदायोंकी कान्फरेंसों और प्रान्तिक सभाओंकी ओरसे, जैन एसोसियेशन आफ इंडियाकी ओरसे, जैन ग्रेज्युएट एसोसियेशनकी ओरसे, समस्त जैनपत्रसम्पादकोंकी ओरसे और जैनधर्मोपदेशकोंकी ओरसे माननीया ब्रिटिश सरकारकी सेवामें इस आशयकी प्रार्थनायें की गई हैं कि अर्जुनलालजीका अपराध प्रकट करनेके लिए जयपुर राज्यको प्रेरणा की जाय? क्या बिना माँगे सगी माता भी अपने बच्चेको दूध पिलाती है?

मैं देशीराज्योंका गौरव बढ़ता हुआ देखनेकी निरन्तर प्रतीक्षा किया करता हूँ और इसलिए मैं यह कदापि अच्छा नहीं समझता कि ब्रिटिश सरकार उनके कामोंमें हस्तक्षेप करे; परन्तु यहाँ प्रश्न यह है कि जब पहले कई बार इस तरहके मामलोंमें सरकारने हस्त-क्षेप किया है तब इस समय क्यों नहीं करती ? अभी कुछ ही महीने पहले जामनगर राज्यके एक मामलेमें सरकारको हाथ डालना पड़ा था। और इसके पहले तो ऐसे बीसों मौके आचुके हैं जब कि सरकार लोगोंकी प्रार्थनाओं पर और बिना प्रार्थनाओंके भी देशीराज्योंके काममें हाथ डाल चुकी है। लार्ड हेस्टिंग्सकी सरकारने देशी राज्योंकी--विशेष करके राजपूतानेके राज्योंकी अन्धाधुन्धी देखकर अनेक बार उनके कामोंमें हस्तक्षेप किया था। स्वयं जयपुर राज्यमें ही राजा जयसिंहके समयमें प्रजाके हितके लिए कई बार सरकार बीचमें पड़ी थी। निजाम और मैसूर जैसे प्रथम श्रेणीके राज्योंके विषयमें भी सरकार अपनी तटस्थ रहनेकी पालिसीकी रक्षा न कर सकी थी। प्रजाको कष्ट देनेवाले मल्हार-राव गायकवाड़को तो पदभ्रष्ट करने तकके लिए सरकार लाचार हुई थी। इन्दौरके होल्कर महाराजको रिटायर होना पड़ा था।

पण्डित अर्जुनलालजीको बिना जाँच किये जेलमें सड़ानेके कारण हम किसी राजाका या राजकर्मचारीका अपमान करनेके लिए सरकारसे प्रार्थना नहीं करते हैं; हम अपनी न्यायशीला ब्रिटिश सरकारसे केवल यही माँगते हैं कि वह जयपुर राज्यको सेठीजीका अपराध प्रमाणित करनेकी या अपराध साबित न हो तो छोड़ देने-

की सलाह देनेकी कृपा करे । व्यक्तिगत अधिकारोंकी रक्षाके लिए सर्वस्वका भी होम कर देनेके लिए तैयार हो जानेवाले ब्रिटिशोंसे क्या इतनी भी आशा करना अनुचित है ? उच्च सिद्धान्तकी रक्षाके लिए कालके बन्धनवाले कानून बदले जा सकते हैं और भूतकालमें इस तरह कई बार बदलने भी पड़े हैं; तब समझमें नहीं आता कि इसी समय कानूनकी ओट लेकर क्यों मौन धारण कर लिया गया है ?

मैसूर राज्यके लिए तो यहाँतक आज्ञा दी गई थी कि रेवेन्यू, टेक्स, न्याय, व्यापार, कृषि आदि मैसूर राज्यकी प्रजाके हितरक्षण-सम्बन्धी प्रत्येक विषयमें महाराजको हमेशा गवर्नर जनरलकी सलाहके अनुसार वर्ताव करना चाहिए । इस तरह जब प्रत्येक विषयमें हस्तक्षेप करना सरकारने उचित समझा है तब ब्रिटिश-इंडियाके एक नागरिकको बिना प्रमाणके जेलमें ठूँसते देखकर क्या वायसराय साहब इतना भी हस्तक्षेप नहीं कर सकते हैं कि इस मामलेकी जाँच करनेके लिए राजाको सूचना कर दी जाय । यदि कर सकते हैं तो अभीतक क्यों नहीं किया ? क्या यहाँके देशी राज्योंकी प्रजा ब्रिटिश राज्यकी प्रजा नहीं कहलाती ? यदि किसी देशी राज्यका रहनेवाला हिंदुस्तानसे बाहर जाता है तो उसे ब्रिटिश प्रजाके रूपमें ‘पासपोर्ट’ मिलता है और ‘ब्रिटिश कॉन्सल’ उसकी, ब्रिटिशप्रजा समझकर ही रक्षा और सहायता करता है । तब क्या उन्हीं देशी राज्योंकी प्रजाका खास हिंदुस्तानके भीतर कष्ट सहन करते समय ब्रिटिशकी सहायता पानेका हक छिन जाता है ? मेरी समझमें तो यहाँ उसका दूना हक है ।

हमारी इस प्रार्थनामें राजद्रोहके प्रश्नके लिए तिल मात्र भी स्थान नहीं है। सेठीजी पर राजद्रोहका अपराध प्रमाणित करनेकी अभी तक किसीने भी हिम्मत नहीं दिखलाई है। इसी तरह सार्वजनिक पत्रोंमें जो बातें प्रकाशित हुई हैं उनको झूठ सिद्ध करनेकी भी किसीने कोशिश नहीं की है। इसीसे साबित होता है कि पं० अर्जुनलालजी राजद्रोहमें किसी तरह कदापि शामिल नहीं रहे हैं। और थोड़ी देरके लिए यह भी मान लिया जाय कि वे राजद्रोही हैं तो भी हम कुछ यह प्रार्थना नहीं करते हैं कि ये राजद्रोह या और किसी अपराधके परिणामसे मुक्त कर दिये जायँ। हम तो किसी छोटेसे छोटे अपराधकी भी क्षमा करनेकी हिमायत नहीं कर सकते। सरकार तो दयालु होकर कदाचित् कभी किसी अपराधीको क्षमा भी कर देती है; परन्तु हमारा जैनधर्म तो इतना बे-लिहाज़ है कि वह, अपराधीको क्षमा मिल ही नहीं सकती—'कर्म' किसी भी दोषका फल दिये बिना रह ही नहीं सकता, यही सिखलाता है। अतःहम केवल यही चाहते हैं कि चारों ओरसे—गाँव गाँवसे—प्रत्येक समाज और प्रत्येक प्रतिष्ठित व्यक्तिकी ओरसे सरकारकी सेवामें यह प्रार्थना की जाय कि वह अर्जुनलालजीको अपराधी सिद्ध करनेके लिए अथवा अपराध न हो तो छोड़ देनेके लिए जयपुर राज्यको सलाह देनेकी कृपा करे जिससे केवल अर्जुनलालजी ही नहीं बचें किन्तु राजभक्त, निष्कलङ्क, शान्तिप्रिय जैन जातिकी इज्जत भी बच जाय। इससे जयपुर स्टेट शिक्षित संसारकी अप्रसन्नतासे मुक्त होगा और ब्रिटिश सरकारके प्रति भी प्रजाजनोंकी जो अपरिमित भक्ति बढ़ेगी वह वर्तमान विग्रहके समयमें बहुत ही कल्याणकारी सिद्ध होगी।

इस समय अपने कर्तव्यकी पालना करनेमें जैनसमाजका जो समूह या जो प्रान्त कायरता दिखलावेगा उसके सिर पर सदाके लिए कलंकका बोझा लद जायगा और आज जिस तरह अर्जुनलालजीको कष्ट भोगना पड़ा है उसी तरह किसी समय उसे भी या उसके किसी निरपराध व्यक्तिको भी कष्टमें पड़ना पड़ेगा। आज सासके दिन हैं तो कल बहूके भी दिन आवेंगे।

यदि जैनसमाजमें अपना शान्त कर्तव्य पालन करने योग्य जागृति भी न होगी और उससे सरकार तथा जयपुर राज्य दोनों ही इस विषयमें सारे देशके अँगरेज़ी और देशी समाचारपत्रोंकी आवाज़ सुननेमें प्रमाद करेंगे तो अन्तमें बिना अपराधके कष्टमें बिलबिलाते हुए एक दुखी मनुष्यकी 'हाय' कर्मदेवके गुप्त कानूनके अनुसार अपना काम आगे पीछे कभी न कभी किये बिना न रहेगी:—

'तुलसी' हाय गरीबकी, कबहुँ न निष्फल जाय।
मुए छागकी चामसों, लोह भस्म हो जाय॥

बम्बई
९-३-१९ } **वाडीलाल मोतीलाल शाह।**

सहयोगियोंके विचार ।

बौद्धधर्म ।

बौद्धधर्मको माननेवाले जितने लोग हैं उतने किसी भी धर्मके माननेवाले नहीं। चीन, जापान, कोरिया, मंचूरिया, मंगोलिया और साईबिरिया, नेपाल, सिंहल (सीलोन) के अधिकांश लोग बौद्ध हैं। तिब्बत, भूटान, सिकिम, रामपुर बुसायरके सब ही लोग बौद्ध हैं। वर्मा, स्याम, और अनाम अर्ध अर्ध बौद्ध हैं।

एक समय तुर्किस्तान, अफगानिस्तान और बलूचिस्तान बौद्धधर्मकी खानि थे; वहाँसे बौद्धधर्म पारस्य (ईराण) के और तुर्किस्तानके पश्चिममें फैला था। रोमन कैथलिक ईसाइयोंके बहुतसे आचार–विचार पूजापद्धतियाँ बौद्धोंके ही समान हैं। उनके सेंट वारलाम और जोषेफट ये दो महात्मा बौद्ध और बोधिसत्व शब्दके केवल रूपान्तर हैं।

भारतवर्षीय हिन्दुओंके धर्म और आचारव्यवहारमें बौद्धमत और उसके भाव अब भी गुप्त रीतिसे चल रहे हैं। बंगालके धर्मठाकुरके पूजनेवाले बौद्ध ही हैं। बिठोबा और बिल देवताओंके भक्त अपना परिचय बौद्ध-वैष्णव कहकर देते हैं। बंगालियोंके तंत्रशास्त्रमें तो बौद्धधर्मका आभास बहुत ही स्पष्ट हो रहा है।

सिंहलदेशमें जो बौद्धधर्म प्रचलित है वह कितनी ही धर्मनीतियोंका समूह मात्र है। नेपालके बौद्धधर्ममें दर्शनतत्त्वोंकी अधिकता है और वह विज्ञान-मूलक है। वर्मामें पूजा पाठोंकी अधिकता है। तिब्बतके बौद्ध कालीपूजा करते हैं, मंत्रतंत्र पढ़ते हैं, होम–जप करते हैं और मनुष्यपूजा करते हैं। चीनदेशके बौद्ध सब तरहके जीवोंकी हिंसा करते हैं और सब तरहके मांस खाते हैं। जापानके और चीनके बौद्ध अनेक देव–देवियोंकी उपासना करते हैं। बौद्धधर्म कहीं तो पूर्वपुरुषोंकी उपासनाके साथ, कहीं भूतप्रेतोंकी उपासनाके साथ और कहीं देहतत्त्वकी उपासनाके साथ मिल गया है। वह कहीं शुद्ध बुद्धके समान और कहीं शुद्ध नागार्जुनके समान चलता है। बुद्धदेवके आदेशोंका प्रचार जब जिस देशमें हुआ है, तब उसी देशकी प्रचलित भाषामें लिखा गया है; यहाँ तक कि ईराणकी भाषामें और रोमकी भाषामें भी लिखा गया है। 'विमलप्रभा'

नामक एक पुस्तकसे इस बातका अभी पता लगा है। प्राकृत और अपभ्रंश भाषामें बौद्धोंके बहुतसे संगीतोंकी प्राप्ति हुई है।

बौद्ध किसे कहते हैं, इस विषयमें अनेक मुनियोंके अनेक मत हैं। यदि संसारत्याग करके मठोंमें वास करनेवाले साधु ही बौद्ध कहे जावें तो फिर गृहस्थ बौद्धोंको बौद्ध न कह सकेंगे। यदि पंचशील (हिंसा नहीं करना, झूठ नहीं बोलना, चोरी नहीं करना, शराब नहीं पीना, व्यभिचार नहीं करना) ग्रहण करनेवाले ही बौद्ध कहे जावें तो फिर व्याध, धीवर आदिका बौद्धधर्ममें प्रवेश करनेका अधिकार नहीं रहता। नेपाल और तिब्बत आदिके बौद्धोंके मतसे सारी पृथिवीके लोग बौद्ध हैं। लंकानिवासी केवल अपना ही उद्धार करके निश्चिन्त हैं। नेपाली और तिब्बती कहते हैं कि जो बोधिसत्व होगा उसे जगतके उद्धार करनेकी प्रतिज्ञा करनी होगी। इसी कारण नेपाल और तिब्बतके बौद्ध अपनेको ' महायान ' और लंकाके बौद्धोंको ' हीनयान ' सम्प्रदाय के बतलाते हैं। ' यान ' का अर्थ है पन्थ या मत। बौद्धोंके प्रधान ग्रन्थका नाम है प्रज्ञापारमिता। महायान पन्थकी सारसे सार बात ' करुणा ' है। प्रज्ञापारमिताके अनेक संस्करण हैं। सैकड़ों हजारों श्लोकोंसे लेकर तीन पन्नों तककी प्रज्ञापारमिता हैं। सभीका यह प्रधान आदेश है कि ' सब जीवों पर करुणा करो। ' बौद्धोंकी करुणा बहुत गंभीर है।

बौद्ध लोग जातिको नहीं मानते; इसलिए उनकी सन्तान ' बौद्ध ' होकर जन्म नहीं लेती, अर्थात् पैदा होते ही कोई ' बौद्ध ' नहीं कहलाने लगता। शुभाकर गुप्तके ' आदिकर्मरचना ' नामक बौद्धस्मृतिके मतसे जिसने बुद्ध, धर्म और संघ इन तीनकी शरण ले ली है वही बौद्ध है।

शुरू शुरूमें बौद्धधर्म सन्यासियोंका धर्म था। जो सन्यास लेना चाहता था उसे एक सन्यासीको मुरब्बी बनाकर सन्यासियोंके विहारमें जाना पड़ता था। बौद्धसन्यासीको भिक्षु, समूहको संघ, भिक्षुओंके निवासस्थानको संघाराम, और संघारामके मध्यके मन्दिरको विहार कहते हैं।

स्थविर (वृद्ध भिक्षु) कुछ प्रश्न करते हैं। उस समय पाँच भिक्षु और भी उपस्थित रहते हैं। नाम, धाम, कोई कठिन रोग तो नहीं है, कभी राजदंड तो नहीं भोगा है, राजकर्मचारी तो नहीं है, भिक्षापात्र है या नहीं,

चीवर है या नहीं, इस तरहके वे प्रश्न होते हैं । इसके बाद वे संघसे पूछते हैं कि आपलोग कहिए कि यह मनुष्य संघमें शामिल किया जाय या नहीं । इस तरह तीन वार पूछने पर भी यदि कोई विरोध नहीं करता था तो वह उपाध्यायको सौंप दिया जाता था और उनके पास वह सन्यासधर्मके कर्तव्य सीखता था । सीख जानेपर उसमें और उपाध्यायमें कोई भेद न रहता था । संघमें दोनोंका बराबर अधिकार हो जाता था । महायान सम्प्रदायके बौद्ध उपाध्यायको ' कल्याण मित्र ' कहते हैं । इससे मालूम होता है कि उनका गुरुशिष्य जैसा सम्बन्ध नहीं है; परलोककी कल्याणकामनासे गुरु शिष्यका केवल मित्र है । इस सम्प्रदायके अनुयायी दर्शनशास्त्रकी खूब चर्चा करते हैं ।

धीरे धीरे जब एक बड़ा भारी समूह गृहस्थाभिक्षु बन बैठा तब दर्शनशास्त्र पढ़ना और योगध्यान कठिन प्रतीत होने लगा । उस समय ' मंत्रयान ' की उत्पत्ति हुई । इसके अनुसार एक मंत्रजाप करनेसे ही सारे धर्मकर्मोंका फल पाया जा सकता है । इस विश्वासकी वृद्धिके साथ साथ गुरु शिष्यका सम्बन्ध खूब दृढ होता गया और आगे तो गुरुभक्तिकी—गुरुसेवाकी—हद्द ही हो गई । भारतके एक सम्प्रदायमें अब भी इस प्रकारका विश्वास प्रचलित है कि शिष्य गुरुका दास है, उसके पास जो कुछ है–वह स्वयं और उसकी स्त्री कन्या तक–सब गुरुकी हैं । इस मतका मूल मंत्रयान ही है ।

' वज्रयान ' सम्प्रदायमें गुरुकी प्रतिष्ठा और भी बढ़ गई; वे ईश्वरके तुल्य बन बैठे ।

' सहजयान ' में गुरुका उपदेश ही सब कुछ है । गुरुके उपदेशसे यदि महापाप भी किया जाय तो उससे महापुण्य होता है । इस तरह बौद्धधर्मके परिवर्तनके साथ साथ गुरुका सम्मान बढ़ता चला गया ।

' कालचक्रयान ' में गुरु अवलोकितेश्वरका अवतार माना जाता है । ' लामा-यान ' में तो सब ही लामा किसी न किसी बोधिसत्त्वके अवतार होते हैं । वे साक्षात् सर्वदर्शी सर्वज्ञ माने जाते हैं । ' लामायान ' आगे ' दलाई–लामायान ' के रूपमें परिणत हो गया है । वे अवलोकितेश्वरके अवतार हैं, कभी मरते नहीं हैं, उनका शरीर बीच बीचमें नया निर्माण होता है । बौद्धधर्मकी इन बातोंने न्यूनाधिक्यरूपसे हिन्दूधर्ममें भी स्थान पा लिया है ।

—महामहोपाध्याय पं० हरप्रसाद शास्त्री ।

[बंगला प्रवासी ।]

गंभीर विचार।

गृहस्थाश्रम बड़ा कठिन है । इसकी कठिनाइयोंको वह ही अच्छी तरह जानता है जो स्वयं पूरा गृहस्थी हो । ज़माना बड़ा नाजुक है, बाल बच्चेदार आदमी न जाने किन किन मुशकिलों से अपने निर्वाह करते हैं और अपनी आबरू बनाये रखते हैं । सन्तान को उत्तम शिक्षा देना और उनके विवाहादि कार्य्यों में अपना पेट काट कर जातिप्रथाके अनुसार आवश्यकता से अधिक धन खर्च करने के लिये मजबूर किये जाना यह सब बातें कुछ कम कठिनाई की नहीं हैं । किन्तु हमारे खंडेलवाल भाइयों में किसी २ को कभी २ और बड़ी मुशकिलों का सामना भी करना पड़ता है जिस से उन का गृहस्थ का जीवन और भी दुःखित हो जाता है । इसी प्रकार के कष्ट का एक उदाहरण इस पत्र में मिलता है जो हमारे पास आया है । इस के लेखक ने अपनी एक कठिनाई का हाल लिख कर हमारी राय मांगी है; लेकिन यह प्रश्न एक जातीय विषय का है जिस का सम्बन्ध हमारी जाति की एक प्रचलित रीति से है इसलिये यह उचित मालूम हुआ कि इस मामले को सब भाइयों के सामने रखा जाय कि वे पूर्ण विचार कर अपनी सम्मति प्रगट करें । पत्र में यह हाल लिखा है:—

"मेरी एक कन्या है जिस की उम्र १४ वर्ष के लगभग हो गई है । इसके लिये मैं ने योग्य वर ढूंढ़ने की बहुत कुछ चेष्टा पहले से ही की लेकिन अभाग्यवश अभी तक योग्य वर नहीं मिला । कई अच्छे लड़के अच्छे घराने के देखे भी लेकिन गोत्र न बचने के कारण निराश होना पड़ा । अब लड़की बहुत स्यानी हो गई और इस फिक्र में मेरा मन बड़े क्लेश में है । हाल ही में एक योग्य लड़का जिस की उम्र भी ठीक है और जो अच्छे घराने का भी है मिला है किन्तु विधाता यहां भी वाम होगया । तीन ही गोत्र बचे और एक नानी का गोत्र रह गया जिसने इस सम्बंध के होने में भी बाधा डाल दी है । अब मैं बड़ी आपत्ति में हूं । मैं एक गरीब आदमी हूं । इसलिये धनवानों के समान मुझको स्वतंत्रता प्राप्त नहीं है । क्या एक नानी का गोत्र न बचने के कारण योग्य वर का परित्याग कर के इस अभागिनी की किसमत को किसी अयोग्य वर के साथ फोड़ कर जीवन भर के लिये इस को दुःख के गढ़े में ढकेल दिया जाय ? क्या ऐसा करने से मैं पाप का भागी न बनूँगा ? क्या तीन गोत्र में विवाह करने की

शास्त्र में बिलकुल आज्ञा नहीं है ? ऐसी शोचनीय दशा में मैं 'हितैषी' से सहायता मांगता हूं कि वह मुझ को बतावे कि मेरा क्या कर्त्तव्य है।"

भाइयो ! आपने अपने एक दुःखित भाई का हाल पढ़ा। अब आप क्या राय देते हैं ? विचार कीजिये और सावधानी से विचार कीजिये। हमारे यहां चार गोत्र बचाने की रस्म है लेकिन जहां तहां तीन गोत्र में भी सम्बंध हुआ करते हैं जिसका कभी कभी नतीजा यही होता है कि कुछ दिनों के लिये बिरादरी में थोकबन्दी हो जाती है और जो प्रभावशाली होता है उसी के ज्यादा साथी हो जाते हैं। जाति के नेता पंच चौधरी महाशयों का कर्त्तव्य है कि इस मामले का एक दफै अच्छी तरह विचार करलें। किन्तु इस विषय में जो विचार हो शास्त्र तथा देश काल की आवश्यकता के अनुसार हो।

इसी गोत्रसम्बंधी विषय में एक पत्र रियासत अलवर से भी हमारे पास आया है जिसमें इस प्रकार से लिखा है "एक बात आपसे दरयाफ्त करने की यह है कि मेरे भाई की स्त्री का देहान्त हो गया। दूसरा विवाह करना आवश्यक है। पहली स्त्री से एक लड़का है जिसका विवाह रावत गोत्र में हो गया है। अब इसका निर्णय करके सूचना दीजिये कि दूसरे विवाह में लड़के की स्त्री के कोई गोत्र बचाने की जरूरत होगी या क्या ? और होगी तो कौनसे गोत्र की होगी ? कृपा कर शीघ्र उत्तर दीजिये।"

समस्त विचारवान् भाइयों से हमारी प्रार्थना है कि ऊपर लिखे प्रश्नों पर अच्छी तरह विचार कर अपनी सम्मति प्रगट करें। जाति के नेता, पंच चौधरी तथा शिक्षित (तालीम याफ्ता) पुरुषों का कर्त्तव्य है कि जाति में उठते हुए प्रश्नों की विवेचना करें और "जिस पर पड़ेगी वह भुगतेगा" ऐसे क्षुद्र विचारों को त्याग कर सब के हित की बातों का उचित रीति से निर्णय करें। किन्तु जो हो ठीक युक्ति व प्रमाण के साथ हो। विना प्रमाण व युक्ति के बात माननीय नहीं हो सकती। जातीय बातों में देश की आवश्यकता पर विशेष ध्यान देना होता है।

[खण्डलवाल हितैषी अंक ६]

कुरल काव्य।

तामिल काव्य कुरल की बात *पाटलिपुत्र में प्रकाशित हो चुकी है। इस ग्रंथ का अनुवाद लैटिन, फ़रासीसी, जर्मन, इटालीय और अंगरेज़ी में हो चुका है। काव्य दोटप्पी रामवाण दोहे से ' वेनूबा ' छन्दस् में १२००० शब्दों में है। किसी दूसरा भाषा में इतने कम शब्दों में काव्यविचार प्रकट नहीं किए गए हैं। मानो " राई बेध कर समुद्र पिरोया गया है। "

पोप साहब के अनुवाद के आधार पर कुछ नमूने दिए जाते हैं।

(१)

एक शब्द भी न बोलो जिसे अन्तरात्मा जानता है कि झूठ है।
धधक उठेगी आग अन्दर झूठ की चिनगारी से।

(२)

जो अपने अन्तरात्मा के सामने सच्चा है,
वह जीता है सब की आत्मा में पैठ कर।

(३)

उसे गिरा सकता कौन है? जिसने किए नियुक्त मंत्री हैं
बिगड़ने और बतानेवाले, होए जब भूल राजा से॥

(४)

भाग्य का हुक्म हो ' असिद्धि, '
तोभी सिद्धि मिलती है प्रयत्नी को।

[पाटलिपुत्र।]

---

* जैनहितैषीमें भी इस काव्यके विषयमें दो लेख निकल चुके हैं।

—सम्पादक।

हमारी स्त्रियोंका स्वास्थ्य।

अनेक कारणोंसे हमारे देश की स्त्रियोंका स्वास्थ्य दिन प्रति दिन खराब होता जा रहा है। ज़रा २ सी बातों से भीत और चकित होने वाली मातायें प्रताप और शिवाजी उत्पन्न नही कर सकतीं। जिस देशका अधःपतन होता है उस देशकी स्त्रियों का शारीरिक, मानसिक और आत्मिक बल सबसे पहले कम होना आरम्भ होता है। जहां के मनुष्य, घरमें चिराग नही जलता-इस लिये- और पकी पकाई खानेको मिलेगी-इसलिये विवाह करते हैं वहां स्त्रियों का आदर केवल मनु महाराज की उक्तियों में ही रह जाता है। घर की लक्ष्मियों को घर की दासी में परिणत करने वाला समाज क्या वीर और विद्वानोंसे विभूषित होगा या दास और दीनोंसे कलंकित? हमारी स्त्रियोंका स्वास्थ्य जिन कारणों से नष्ट हो रहा है आज इस अल्प लेख में उन पर थोड़ा सा विचार किया जाता है।

स्त्रियां केवल घर में और फिर घर भी हिन्दुस्थानी जिस में परदों की दीवारों और कोठरियों की बहुतायत ने वायु और प्रकाश को बहिष्कृत करदेनेका पक्का इरादा कर रखा है बन्द रहती हैं। शुद्ध वायु और नियमित व्यायाम के अभाव के कारण उनकी शारीरिक अवस्था शोचनीय हो उठती है। इस दीन अवस्था में रहते हुए उनको दिन रात अनवरत तेली के बैल की तरह घरके कूड़ा करकट-के काम में लगा रहना पड़ता है जिसके कारण बहुत सी कुल बधुएं तपेदिक और अनेक संक्रामक रोगों की भेंट हो जाती हैं। विद्याविहीन होने के कारण वे सफाई और उससे क्या लाभ है-इस बातको नही जानतीं, किस ऋतु में किस तरह रहना चाहिए इस का उन को ज्ञान नही होता। यही कारण हैं जो उन के स्वास्थ्य का यथासंभव शीघ्र सत्यानाश कर देते हैं। और उनके पति उनकी इस गिरी हुई अवस्था पर क्यों विचार करने लगे हैं? वे तो पत्नीवियोग के दूसरे ही दिन मोहर बांध दूसरी शादी करने का ईश्वरदत्त हक्क रखते हैं। वीर और विद्वान् पैदा करने वाली माताएं भारतवर्ष में प्रायः जिस बुरी तरह समय यापन करती हैं उस का कोई ठिकाना नहीं। एक और भी बहुत बड़ा कारण है जिसने उन की शारीरिक शक्ति को रसातल पहुंचाने में बड़ी बहादुरी दिखाई है और वह उनको असमय गर्भवती कर देना है। भारत के किसी प्रांत के मरणसंबंधी विवरण को पढ़िये आप को बालक पैदा होने या पैदा होने के बाद उन बेचा-

रियोंके लिये अवश्यम्भावी कुछ रोगों में मृत्यु के मुख में पतित होनेवाली हिन्दू नारियों की जितनी बड़ी संख्या मिलेगी और किसी जाति में नहीं।

बहुत आदमी भ्रम से यह समझ बैठे हैं कि जो ज्यादह काम करता है वह ज्यादह तन्दुरुस्त होता है। पर वास्तव में यह बात नहीं है। काम करने पर तन्दुरुस्ती नहीं, काम करनेके ढंग पर तन्दुरुस्तीका विचार होना चाहिए। रो रो कर और तबियत को विवश कर के जो काम किया जाता है वह तन्दुरुस्त आदमी का काम नहीं कहा जा सकता। हमारी स्त्रियां घरों में दासी रूपमें जो काम कर रही हैं वह भी इसी ढंगका काम है। लोग कहते हैं कि चक्की पीसने से और बरतन मांजने से तन्दुरुस्ती अच्छी रहती है। हम भी कहते हैं, बेशक, पर मैशीन की तरह दिन रात कामकरने, विश्राम और उपयुक्त आहार न मिलने पर वह चक्की और चौका उनके लिये आरोग्यप्रद चीजें हैं या रोगप्रद? काम के बाद आराम और आराम के बाद काम, प्रकृति का साधारण नियम है। यदि इस नियम का अपवाद देखना हो तो हमारी स्त्रियों की अवस्था देखिये।

जब तक हम अपनी स्त्रियों का आदर करना नहीं सीखेंगे, उनको खुली हवा और प्रकाशमें नहीं रखेंगे, उनको दासीवत रखने की बजाय गृहलक्ष्मीके रूपमें उनकी घरों में प्रतिष्ठा नहीं करेंगे और अपनी निकृष्ट वृत्तियों की पूर्तिका आला न समझ कर उनमें ठीक समय उपस्थित होने पर गर्भाधान न करेंगे उस समय तक वे भी मनुष्य रूपमें पशु और वीर विद्वानोंकी बजाय भीरु और मूर्ख पुरुष पैदा करना बंद नहीं करेंगी।

[वैद्य, अंक १]

युद्ध में एक सिपाही के मारने का खर्च।

सारे भूमण्डल की समस्त जनसंख्या एक अरब पचहत्तर करोड़ (१७५०००००००) है। जनसंख्या में प्रतिवर्ष सवा करोड़ की वृद्धि होती रहती है। क्योंकि आये साल आठ करोड़ बच्चे पैदा होते और पौने सात करोड़ मनुष्य मर जाते हैं। अर्थात् भूतल पर प्रतिदिन सवा दो लाख का जन्म, और पौने दो लाख की मृत्यु होती है। इस हिसाब से एक दिन में चालीस हज़ार की परिवृद्धि होजाती

है । सो यदि दिन रात निरन्तर कोई घातक अपनी सुतीक्ष्ण तलवारसे प्रतिक्षण मनुष्यों का एक एक सिर काटता रहे तो यमराजके कार्य में (मरने में) फ़ी सैकड़ा एक की वृद्धि हो सके । इस (यमराजकृत) मृत्युसंख्या के सामने युद्ध की मृत्युसंख्या तुच्छ सी प्रतीत होती है! रूस जापान युद्धमें दो लाख सैनिक मृत्यु के ग्रास बने थे । पर इस प्रवर्त्तमान युद्धमें प्रथम चार मासमें ही हत सैनिकोंकी संख्या पच्चीस तीस लाख तक बताई जाती है । यदि इसी गति से एक वर्ष तक यह युद्ध चलता रहे तो सिर्फ़ इतना फ़र्क पड़ेगा कि सवाकरोड़ के स्थान में पच्चीस लाख ही जनसंख्या बढ़ सकेगी । रूस जापान के युद्ध में १०३ गोलियां एक सैनिक की हत्या पर ख़र्च आई थीं । और रूस टर्की की लड़ाईमें एक सिपाही को मारने पर ४७ हजार रुपया ख़र्च पड़ा था । रूस-जापान में एक सैनिकके मारनेका ख़र्च साठ हज़ार रुपये से भी अधिक हुआ था । अर्थात् एक जान का नाश करनेके लिये एक मन सुवर्ण और एक हज़ार गोलियां या साठ हज़ार रुपये का ख़र्च होता है!! आजकल योरप इसी 'पुण्यकार्य' में लगा हुआ है, और इसी के लिये अपनी सम्पत्ति लुटा रहा है। इस युद्ध की समाप्ति पर फिर हिसाब जोड़ा जायगा कि कितने हज़ार पौंड एक एक हज़ार मनुष्यों की जान लेने में ख़र्च हुए ।

[भारतोदय, अंक ४३ ।]

पुस्तक-परिचय ।

१ प्रभुभक्ति ।

अनुवादक और प्रकाशक, एम. के. बोहरा-अजमेर । यह गुजरातीके-' निष्काम भक्ति ' नामक निबन्धका अनुवाद है । अनुवादक महाशयने मूल लेखकके नामका उल्लेख करनेकी या उनके प्रति कृतज्ञता प्रकाश करनेकी कोई आवश्यकता न समझी । पर निबन्ध बहुत अच्छा है । बड़े ही अच्छे विचारोंसे भरा हुआ है । सहृदयजन इससे बहुत आनन्दलाभ करेंगे । क्या ही अच्छा होता यदि

इसका अनुवाद भी अच्छा होता। भाषादोष, भावशैथिल्य, और अस्पष्टताकी भरमार है। गुजरातीपन जहाँ तहाँसे निकला पड़ता है। गुजरातीके कई दोहे ज्योंके त्यों रख दिये हैं जिन्हें हिन्दी भाषाभाषी शायद ही समझें। पुस्तक मोटे मोटे अक्षरोंमें १०६ पृष्ठोंपर छपी है। एक रुपया मूल्य बहुत अधिक है। हितैषीके टाइपमें यदि यह पुस्तक छपाई जावे तो इसका मूल्य चार आनेसे भी कम हो।

२ संसारमें सुख कहाँ है ?

पृष्ठ संख्या १०८। मूल्य दो आना। जैनतत्त्वप्रकाशिनी सभाका यह २६ वाँ ट्रेक्ट है। इसे पढ़कर हम बहुत ही प्रसन्न हुए। सभाने अबतक जितने ट्रेक्ट प्रकाशित किये हैं, उनमें यह सबसे अच्छा है। यह जैनहितेच्छुके सम्पादक श्रीयुत वाडीलाल मोतीलाल शाहके लिखे हुए एक गुजराती निबन्धका अनुवाद है। अनुवादक महाशय इतने परमार्थी हैं कि उन्होंने अपना नामतक प्रकाशित नहीं होने दिया है। अनुवाद बहुत सरल और सुन्दर हुआ है। हम चाहते हैं कि हमारे प्रत्येक भाई इस नये ढंगसे लिखे हुए मार्मिक और शिक्षाप्रद निबन्धको पढ़ें और इस पर विचार करें। धर्मात्माओंको इसकी सौ सौ पचास प्रतियाँ लेकर जैनों और जैनेतरोंमें बाँटना चाहिए। बाबू चन्द्रसेनजी जैनवैद्य लेखकोंका नाम प्रकाशित करनेमें बहुत प्रमाद करते हैं। अन्य ट्रेक्टोंके समान इसमें भी उन्होंने यह प्रमाद किया है। 'वा. मो. शा.' इतना लिखनेसे कोई लेखकका परिचय नहीं पा सकता; स्पष्ट लिखना चाहिए था। आजकल लेखका नाम देखकर ही पुस्तक पढ़नेकी इच्छा होती है।

३ इन्दिरा।

लेखक, श्रीयुत बालचन्द्र रामचन्द्र कोठारी बी. ए. और प्रकाशक सुरस-ग्रन्थ-प्रसारक मंडली, गिरगाँव बम्बई। मूल्य १)। मराठीका उपन्यास है। किसी भाषाका अनुवाद या रूपान्तर नहीं है, स्वतन्त्र लिखा गया है। इसमें एक स्त्रीके रहते हुए और उसके उदरकी एक विवाहयोग्य कन्या होते हुए भी पुत्रप्राप्तिकी इच्छासे बुढ़ापेमें दूसरा विवाह करनेवाले एक धनिककी दुर्दशाका चित्र खींचा गया है। इसमें सन्देह नहीं कि स्वतंत्र रचनाके लिहाजसे कोठारीजीकी इस पुस्त-

कके लिखनेमें बहुत कुछ सफलता प्राप्त हुई है; उनकी रचनाशैली बतलाती है कि कालान्तरमें वे एक अच्छे उपन्यास लेखक हो जावेंगे; परन्तु उन्होंने जिन विचारोंको कई पात्रोंके चरित्रोंके भीतरसे प्रकट किये हैं वे ठीक नहीं । विधवाविवाहके अनुयायी और सुधारक भी उन्हें पसन्द नहीं कर सकते। असंयमी और अपनी स्त्रीको आत्महत्या करनेमें तत्पर करनेवाले पुरुष भी यदि सुधारक बन सकते हैं और रामचन्द्रपंत जैसे सच्चरित्र पुरुषोंकी भी अनुमतिसे इन्दिराको प्राप्त कर सकते हैं तो हमारी समझमें वह सुधारकत्व आदर्श नहीं बन सकता । प्रभाकर और इन्दिरा दोनोंहीका चरित्र यदि उज्वल बनानेका प्रयत्न किया जाता तो पाठकों पर अच्छा प्रभाव पड़ता । उपन्यासमें अस्वाभाविकता भी बहुत आ गई है ।

४ जैनतीर्थयात्रा दीपक ।

लेखक, फतेहचन्द्र इन्द्रप्रस्थनिवासी । मिलनेका पता, पुस्तकालय जैनपाठशाला धर्मपुरा, देहली । मूल्य चार आना । इसमें तमाम जैनतीर्थोंका और मार्गमें मिलनेवाले शहरोंका यात्रोपयोगी वर्णन है । रेल–मार्ग, किराया आदि भी बतलाया है । पुस्तक छोटी होनेपर भी कामकी है । यात्रियोंको इसकी एक एक प्रति साथ रखना चाहिए ।

५ शिवराम भजनसंग्रह ।

कर्त्ता, मास्टर शिवरामसिंहजी, जैनपाठशाला रोहतक । प्रकाशक, धर्मप्रकाशिनी जैनसभा, रोहतक । इसमें ‘ जातिसुधार और धर्मप्रचार विषयक नई तर्जके ६० जोशीले भजन हैं । ’ मास्टर शिवरामसिंहजी नेत्रहीन हैं; परन्तु बड़े जोशीले और स्वार्थत्यागी काम करनेवाले हैं । रोहतक पाठशालाकी आप वर्षोंसे अवैतनिक सेवा कर रहे हैं । उनकी यह रचना देखकर प्रसन्नता होती है । भजन साधारणतः अच्छे हैं । ६० पत्रकी पुस्तकका मूल्य दो आना अधिक नहीं है ।

६ हनुमानचरित नॉविल भूमिका ।

हाईस्कूल बुलन्दशहरके मास्टर लाला बिहारीलालजी बी. ए. जैन इसके लेखक और प्रकाशक हैं । आपने उर्दूमें ‘ हनुमानचरित ’ नामका एक नॉविल

या उपन्यास लिखा है । यह छोटीसी पुस्तक उसकी भूमिका है । इसमें बतलाया है कि हनुमान वानर या बन्दर नहीं थे, वे जैनशास्त्रोंके अनुसार एक प्रतिष्ठित कुलके वीर पुरुष थे । जो लोग उन्हें बन्दर कहते हैं वे गलती पर हैं । भाषा अच्छी है । यह मालूम न हुआ कि उर्दू उपन्यासकी भूमिका हिन्दीमें छपानेकी क्या अवश्यकता थी ।

७ अनमोल बूटी ।

इसके लेखक भी उक्त मास्टर साहब हैं । यह एक अपूर्व पुस्तक है । इसमें अर्क या आक (मदार) वृक्षकी जड़ों, डालियों, पत्तों, फूलों फलोंसे सैकड़ों तरहके रोगोंको आराम करनेकी तरकीबें लिखी हैं । प्रत्येक रोगके लक्षण, उनमें यह बूटी देनेकी विधि, परहेज़ आदि भी लिखे हैं । दवा बड़ी सस्ती और सब जगह सुलभ है । परीक्षा करके देखना चाहिए । पुस्तककी भाषा कठिन उर्दू है, यदि कुछ सुभीता है तो यह कि नागरी अक्षरोंमें छपी है । यदि सरल हिन्दीमें लिखी गई होती तो इससे बहुत उपकार होता । मूल्य साढ़े चार आने ।

८ विज्ञानप्रवेशिका ।

प्रयागमें एक विज्ञानपरिषत् स्थापित हुई है । वह देशी भाषाओंमें विज्ञान-सम्बन्धी पुस्तकें निकालेगी । यह उसकी पहली पुस्तक है । इसके लेखक हैं श्रीयुक्त रामदास गौड़ एम. ए. तथा शालग्राम भार्गव एम. एस. सी. । लेखकोंके नामसे ही इस पुस्तककी उत्तमताका पता लग सकता है । बहुत ही सरलतासे सुगम भाषामें यह पुस्तक लिखी गई है । बालकोंको इस विषयका बोध करानेका इससे सहज ढंग शायद ही कोई और हो । हिन्दीमें सरल विज्ञानकी सबसे अच्छी यही पुस्तक है । जैनपाठशालाओंमें इसके पढ़ानेका प्रबन्ध अवश्य करना चाहिए । इसके पढ़ानेमें जो सामान आवश्यक होता है उसका मूल्य तीन रुपयाके करीब है । पुस्तकका मूल्य ≡) है ।

दद्रुदमन—दादकी अकसीर दवा फी डबी ।)

दन्तकुमार—दांतोंकी रामबाण दवा । डबी ।)

नोट—सब रोगोंकी तत्काल गुण दिखानेवाली दवाओंकी बड़ी सूची

चित्रशाला स्टीम प्रेस, पूना सिटीकी अनोखी पुस्तकें ।

सचित्र अक्षरलिपि—यह पुस्तक भी उपर्युक्त " सचित्र अक्षबोध " के ढंगकी है । इसमें बाराखड़ी और छोटे छोटे शब्द भी दिये हैं । वस्तुचित्र सब रंगीन हैं । आकार उक्त पुस्तकसे छोटा है । इसीसे इसका मूल्य दो आने हैं ।

सस्ते रंगीन चित्र—श्रीदत्तात्रय, श्रीगणपति, रा.पंचायतन, भरतभेट हनुमान, शिवपंचायतन, सरस्वती, लक्ष्मी, मुरलीधर, विष्णु, लक्ष्मी, गोपीचन्द, अहिल्या, शकुन्तला, मेनका, तिलोत्तमा, रामवनवास, गजेंद्रमोक्ष, हरिहर भेट, मार्कण्डेय, रम्भा, मानिनी, रामधनुर्विद्याशिक्षण, अहित्योद्धार, विश्वामित्र मेनका, गायत्री, मनोरमा, मालती, दमयन्ती और हंस, शेषशायी, दमयन्ती इत्यादिके सुन्दर रंगीन चित्र । आकार ५×७, मूल्य प्रति चित्र एक पैसा ।

श्री सयाजीराव गायकवाड बड़ोदा, महाराज पंचम जार्ज और महारानी मेरी, कृष्णशिष्ठाई, स्वर्गीय महाराज सप्तम एडवर्डके रंगीन चित्र, आकार ८×१० मूल्य प्रति संख्या एक आना ।

लिथोके बढ़ियाँ रंगीन चित्र—गायत्री, प्रातःसन्ध्या, मध्यान्ह सन्ध्या, सायंसन्ध्या प्रत्येक चित्र ।) और चारों मिलकर ।।) नानक पंथके दस गुरू, स्वामी दयानन्द सरस्वती, शिवपंचायतन, रामपंचायतन, महाराज जार्ज, महारानी मेरी । आकार १६×२० मूल्य प्रति चित्र ।) आने ।

अन्य सामान्य—इसके सिवाय सचित्र कार्ड, रंगीन और सादे, स्वदेशी बटन, स्वदेशी दियासलाई स्वदेशी चाकू, ऐतिहासिक रंगीन खेलनेके ताश, आधुनिक देशभक्त, ऐतिहासिक राजा महाराजा, बादशाह, सरदार, अंग्रेजी राजकर्ता, गवर्नर जनरल इत्यादिके सादे चित्र उचित और सस्ते मूल्य पर मिलते हैं । स्कूलोंमें किंडरगार्डन शालेत शिक्षा देनेके लिये जानवरों आदिके चित्र सब प्रकारके रंगीन नकशे, ड्राईंगका सामान, भी योग्य मूल्यपर मिलता है। इस पतेपर पत्रव्यवहार कीजिये ।

मैनेजर चित्रशाला प्रेस,
पूना सिटी ।

Printed by Nathuram Premi at the Bombay Vaibhav Press, Servants of India Society's Building, Sandhurst Road, Girgaon Bombay, & Published by Nathuram Premi at Hirabag, Near C. P. Tank Girgaon, Bombay.

(इस अंकके प्रकाशित होनेकी तारीख १०‑३‑१५।)

Reg. No. B. 719.

ॐ

जैनहितैषी ।

साहित्य, इतिहास, समाज और धर्मसम्बन्धी
लेखोंसे विभूषित

मासिकपत्र ।

सम्पादक और प्रकाशक—नाथूराम प्रेमी ।

ग्यारहवाँ भाग ।	फाल्गुन, चैत्र । श्रीवीर नि० संवत् २४४१	अंक ५, ६ ।

विषयसूची । पृष्ठ.

स्त्रियोंके पढ़ने योग्य नई पुस्तकें।

सदाचार, पातिव्रत, गृहकर्म, शिशुपालन आदिकी शिक्षा देनेवाली सरल भाषामें लिखी हुई स्त्रियोपयोगी पुस्तकोंकी जैनसमाजमें बहुत जरूरत है। यह देखकर हमने नीचे लिखी पुस्तकें मँगाकर बिक्रीके लिए रक्खी हैं। प्रत्येक स्त्रीको ये पुस्तकें पढ़ना चाहिए। इनके पढ़नेमें जी भी खूब लगता है।

१ **सरस्वती**—गृहस्थजीवनका बहुत ही शिक्षाप्रद उपन्यास। बड़ा ही दिलचस्प है। मूल्य १) पक्की जिल्दका १।)

२ **वीरवधू**—चौहानराजा पृथ्वीराज और उसकी वीर रानी संयोगिताका वीररसपूर्ण चरित्र। पाँच बहुत ही सुन्दर चित्र कई रंगोंसे छपे हुए हैं। मू० ॥)

३ **आदर्श परिवार**—प्रत्येक कुटुम्बमें पढ़ेजाने योग्य। मू० ॥।)

४ **शान्ता**—एक आदर्शस्त्रीका चरित्र। मू० ॥)

५ **लक्ष्मी**— „ „ ।)

६ **कन्या-सदाचार**—लड़कियोंके कामकी। मू० ।)

७ **कन्यापत्रदर्पण**— „ „ मू० ⁄)

८ **बनवासिनी**—बहुत ही हृदयद्रावक उपन्यास। मू० ।)

९ **गृहिणीभूषण**—इसकी शिक्षायें बहुतही पवित्र हैं। मू० ॥)

मँगानेका पता—

मैनेजर, जैनग्रन्थरत्नाकरकार्यालय, गिरगांव बम्बई

Printed by Nathuram Premi at the Bombay Vaibhav Press, Servant of India Society's Building, Sandhurst Road, Girgaon Bombay, & Published by Nathuram Premi at Hirabag, Near C. P. Tank Girgaon, Bombay.

जैनहितैषी।

श्रीमत्परमगम्भीरस्याद्वादामोघलाञ्छनम् ।
जीयात्सर्वज्ञनाथस्य शासनं जिनशासनम् ॥

११ वाँ भाग (फाल्गुन, चैत्र, वीर नि० सं० २४४१ ।) अंक ५-६

जैनमत नास्तिक मत नहीं है।

जो लोग इस सृष्टिका कर्ता या स्रष्टा मानते हैं वे कभी कभी जैनमतको नास्तिक मत समझने लगते हैं; परन्तु जैनमतको नास्तिक कहना कदापि उचित नहीं। जैनमतमें 'गॉड' (परमात्मा) की सत्ताका निषेध नहीं किया है। जैनशास्त्रोंमें 'गॉड' का स्वरूप बतलाया गया है, परन्तु उसमें और अन्य मतोंकी धर्म-सम्बन्धी पुस्तकोंमें जो उसका स्वरूप निरूपण किया गया

है उसमें भेद है । बड़ा भेद यह है कि अन्य मतोंकी पुस्तकोंमें 'गौड' को स्रष्टा और शास्ता माना है परन्तु जैनपुस्तकोंमें ऐसा नहीं माना । जैनमतानुसार 'गौड' सर्वज्ञ और सर्वानन्दमय है। उसमें कार्य करनेकी अनन्त शक्ति है । वह एक शुद्ध और सिद्ध आत्मा है और पञ्चभौतिक शरीरसे रहित है। वह एक अविनाशी और अपरिवर्तनीय आत्मा है, अर्थात् उसका कभी नाश नहीं होता और न वह अपने पदसे च्युत होकर फिर भ्रष्ट हो सकता है।

किसी वस्तुकी सत्ताको न मानना, और उस वस्तुमें किसी विशेष गुणको न मानना ये दोनों बातें एक नहीं हैं। जब कि जैनमतमें आत्माकी सत्ताको पवित्र और सिद्ध अवस्थामें माना है, तो फिर हम जैनमतको उन लोगोंकी श्रेणीमें नहीं रख सकते जो आत्माको पुद्गल या शरीरसे भिन्न नहीं मानते । पवित्र (शुद्ध) आत्मा और 'गौड' वस्तुतः एक ही वस्तु है और प्रत्येक विशेष आत्मा-का अन्तिम प्रयोजन पवित्र और सिद्ध होना है; या यह कहो कि प्रत्येक आत्माका उद्देश्य 'गौड' बन जाना है जिसमें परमात्मत्वके सम्पूर्ण गुण हैं और जैनमतके अनुसार इन गुणोंमें उत्पन्न करने और शासन करनेके गुण अनुगत नहीं है।

सच पूछो तो नास्तिक वे हैं जो आत्माका होना नहीं मानते और यह कहते हैं कि आत्मा पुद्गलसे पृथक् कोई वस्तु नहीं है; लोग जिसको आत्मा कहते हैं वह केवल पुद्गलके परमाणुओंके विशेष संयोगका फल या प्रादुर्भाव है और कुछ नहीं है और जब यह विशेष संयोग बिगड़ जाता है तब आत्मा नष्ट हो जाता है।

जैनमतके अनुसार प्रत्येक आत्मा अनादिकालसे चला आया है। सब आत्मा अनादिकालहीसे साधारण शरीरसम्बन्धी सांसारिक अवस्थासे निकलकर पवित्र अवस्थामें आनेका यत्न कर रहे हैं और सदा ऐसा ही यत्न करते रहेंगे; परन्तु वे (मुक्त आत्मा) इस परमात्मत्वकी अवस्थासे फिर साधारण शरीरी आत्माओंमें परिवर्तन नहीं करते।

साधारण आत्मा अपने वास्तविक स्वभावको न जानकर सदासे या अनादि कालसे राग और द्वेषमें आसक्त रहा है और इस आसक्तिके कारण वह कदापि शान्त नहीं है। इस राग और द्वेषके छूट जाने पर आत्मा शान्त और स्वस्थ होजाता है और जब आत्मा इन बाह्य और कृत्रिम व्यवसायोंके प्रभावसे सर्वथा मुक्त हो जाता है तब वह अपने वास्तविक जीवनमें रहकर सर्वज्ञ बन जाता है, सदा आनन्दमय और अविनाशी होजाता है; किंबहुना वह एक 'गौड' या परमात्मा (उत्कृष्ट आत्मा) बन जाता है। इस प्रकार जैनमतमें 'गौड' की सत्ता या अस्तित्वका तो निषेध नहीं है; परन्तु वह यह नहीं मानता कि आत्मत्वमें अन्य वस्तुओं और प्राणियों या जीवोंको उत्पन्न करने और दण्ड या पारितोपिक देकर उन पर शासन करनेका गुण है।

अब हम यह देखना चाहते हैं कि परमात्मामें संसारके रचने और शासन करनेके गुण आरोपण करनेसे उसके इतर गुणोंमें तो बिगाड़ या दोष नहीं आता, अथवा परमात्मामें इन गुणोंके माननेसे कई प्रकारकी विरोधोक्तियाँ और दूषण आते हैं और ये

गुण मनुष्यके सदाचारी बनने और मोक्ष प्राप्त करनेमें सहकारी या सहायक नहीं होते ।

जो लोग 'गौड' को स्रष्टा मानते हैं वे विशेषतः दो श्रेणियोंमें विभक्त हो सकते हैं,—(१) वे लोग जो तीन वस्तुओंको शाश्वत वा अनादि मानते हैं, अर्थात् 'गौड' आत्मा और पुद्गल, और यह कहते हैं कि पिछली दो वस्तुओंके द्वारा 'गौड' जगत्को बनाता रहता है; और (२) वे लोग जो यह मानते हैं कि 'गौड' ही शाश्वत या अनादि है और अन्य कोई वस्तु अनादि नहीं। इस पिछली श्रेणीके दो भेद हो सकते हैं,—(क) वे लोग जो यह मानते हैं कि 'गौड' ने जगत्को 'नहीं' से रचा अर्थात् पहले कुछ नहीं था फिर सब कुछ कर दिखाया, और (ख) वे लोग जो यह मानते हैं कि 'गौड' ने जगत्को अपने भीतरसे उत्पन्न कर दिया ।

वे लोग जो यह मानते हैं कि 'गौड,' पुद्गल और आत्मा अनादि हैं और 'गौड' जगत्को पुद्गल और आत्माओंके द्वारा बनाता है, उनके विषयमें यह स्पष्ट है कि जब हम पुद्गलों और आत्माओं और उनके गुणों और अवस्थाओंको मानते हैं तब फिर वे आप ही अपने पारस्परिक सम्मेलन और समावानसे जगत्को बनानेमें सर्वथा समर्थ हैं और 'गौड' के संयोगकी इसमें कोई आवश्यकता प्रतीत नहीं होती ।

इसके उपरान्त, परमात्मामें सिद्धि या पूर्णता और आनन्दका होना आवश्यक है, और इस प्रकार जब परमात्मा सिद्ध या पूर्ण

और आनन्दमय ठहरा तब उसमें संसारके रचनेकी इच्छा नहीं हो सकती। क्योंकि संसारके रचनेकी इच्छाके होनेसे परमात्मामें एक प्रकारकी हीनता पाई जाती है और हीनता और पूर्णता (सिद्धि) में परस्पर विरोध है। इसलिए यह सिद्ध हुआ कि परमात्माको स्रष्टा माननेसे परमात्मामें सिद्धि और आनन्दके गुण नहीं रहते अर्थात् इन गुणोंका अभाव मानना पड़ता है।

लोग यह मानते हैं कि साधारण जीवित प्राणी दुःख और कष्ट भोगते हैं और संसारको दिये हुए परमात्माके धर्मोपदेशों पर चलने-हीसे जीव इन सांसारिक दुःखोंसे मुक्त हो सकता है। परन्तु पहले आत्माओंको रचना या बनाना और उनको संसारके दुःखों और कष्टोंमें फँसाना और फिर उन्हें उपदेश देना, जिस पर चल-कर वे अपने आपको इन दुःखों और कष्टोंसे मुक्त कर सकें, भला इसमें क्या चतुराई या बुद्धिमत्ता है? एक सर्वज्ञ और सर्वशक्तिमान् आत्मा पहले तो एक वस्तुको असमर्थ या अपर्याप्त अवस्थामें रक्खे और फिर उसके सुधारने या उन्नति करनेके नियम बतावे, इस-से वह आत्मा बुद्धिमान् और हितकारी नहीं कहा जा सकता।

सर्वज्ञ आत्माको यह परीक्षा करनेकी आवश्यकता नहीं है कि वह किसी पुरुष या वस्तुको देखे कि वह क्या करता है, और यदि यह कहा जाय कि 'गॉड' ने आत्माओंको संसारमें यह देखने के लिए रचा था कि उनमेंसे कौनसे आत्मा मुक्ति प्राप्त कर सकते हैं और कौन कौनसे नहीं, तो इससे परमात्मा सर्वज्ञ नहीं ठहरता।

परमात्माको स्रष्टा मानना साधुता या श्रेष्ठताके विरुद्ध है।

क्योंकि जब एक पूर्णतया साधु स्रष्टा माना गया है तब उसकी रची हुई सृष्टिमें कोई दोष दूषण या मलिनता नहीं होनी चाहिए। कोई सांसारिक शास्ता यह नहीं चाहता कि उसके देशमें बुरे कार्य किये जावें, परन्तु सांसारिक शास्ता सर्वज्ञ और सर्वशक्तिमान् नहीं हैं और इस लिए वे ऐसे कार्योंको अपने देशोंमें रोक नहीं सकते, अर्थात् ऐसा उचित प्रबन्ध नहीं कर सकते कि ये कार्य उनके देशमें होने ही न पावें; परन्तु परमात्मा पूर्णतया शक्तिमान्, हितकारी और सर्वज्ञ भी माना गया है, इस लिए यदि जगत्का कर्ता परमात्मा होता तो कोई दुष्ट कर्म न किये जाते। क्योंकि वह अपने रचे हुए जीवोंको ऐसे कर्म करनेकी शक्ति न देता।

यही दशा शोक, दुःख, रोग और दरिद्रताकी है। यदि यह कहें कि दुःख और रोग प्राणियोंके ही बुरे कर्मोंके फल हैं, तो फिर यदि परमात्मा कर्ता समझा गया है—जिसने लोगोंको दुष्कर्म करनेकी शक्ति दी और फिर उन्हें उस शक्तिको काममें लानेके कारण दण्ड दिया—तो ऐसे परमात्मामें साधुताका अभाव है। क्योंकि कोई मनुष्य ऐसे सांसारिक पिताके विषयमें क्या विचार करेगा, जिसने अपने पुत्रको कोई बुरा कार्य करनेमें प्रवृत्त देखकर और उसे उस कार्यसे रोकनेके लिए समर्थ होकर भी इस विषयमें पहलेसे कोई प्रबन्ध नहीं किया, वरञ्च पीछेसे (जब वह कार्य कर चुका) उस दुष्कर्मके बदले पुत्रको दण्ड दिया।

अब हम इस दूसरी बात पर विचार करते हैं कि 'गॉड' ही शाश्वत है और उसीने संसारको 'नहीं' से रचा या अपने भीतरसे बनाया।

जो लोग यह मानते हैं कि 'गौड' ने संसारको 'नहीं' से रचा, वे क्या इस मतके समर्थनके लिए कोई प्रमाण या हेतु दे सकते हैं? कोई प्रमाण या हेतु नहीं दिखाई देता। क्योंकि प्रकृतिसे यह सिद्ध नहीं होता कि यह संसार नास्तित्वसे अस्तित्वमें आया, अर्थात् पहले कुछ भी न था और 'गौड' ने उसे बना दिया। प्रकृतिमें कोई एक भी उदाहरण ऐसा नहीं मिलता या दीख पड़ता जहाँ 'नहीं' या अभाव या असत्से कोई वस्तु उत्पन्न हुई हो। प्रत्येक वस्तु जो हम देखते हैं, उसकी कोई न कोई पूर्व अवस्था थी, और हम कोई ऐसी वस्तु नहीं देखते जिसका सर्वथा अभाव हो जाय। पदार्थविज्ञान द्वारा यह बात सिद्ध हो चुकी है कि अभावसे कोई वस्तु उत्पन्न नहीं हो सकती और किसी वस्तुका भी सर्वथा अभाव नहीं हो सकता। यदि 'गौड' ने संसारको 'नहीं' से रचा तो वह उसका सर्वथा नाश भी कर सकता है और इसका यह अर्थ होता है कि अस्तित्व नास्तित्वमें या सत् असत्में परिवर्तित हो सकता है; इस लिए जिस 'गौड' का हम इस समय विचार कर रहे हैं उसकी पूजा करनेवाले लोग एक ऐसे जीवकी पूजा या आराधना करते हैं जिसमें अनुपस्थित या अविद्यमान होनेकी भावी शक्ति या सम्भावना है। परन्तु 'अस्तित्व' और 'नास्तित्व' अथवा 'भाव' और 'अभाव' परस्पर विरुद्ध शब्द हैं और एक दूसरेमें नहीं घट सकते। अभाव भाव नहीं हो सकता और न भाव अभाव हो सकता है। यह एक सर्वसाधारण और सहज ज्ञान या एक सामान्य तत्त्व है। इस प्रकार यह मत या सिद्धान्त कि

'गौड' ने संसारको 'नहीं' से रचा और वह जब चाहे उसका सर्वथा नाश कर सकता है सर्व साधारण ज्ञान, सहजोपलब्ध तत्त्व, पदार्थविज्ञानप्रमाण और प्राकृतिक नियमके विरुद्ध है, अर्थात् अयुक्तिसिद्ध और अप्रामाणिक है।

अब दूसरी बात यह रही कि 'गौड' ही शाश्वत है और उसने संसारको अपने भीतरसे रचा है, अर्थात् उसने आप ही संसारकी आकृति या रूप ग्रहण कर लिया है। इस सिद्धान्तके मानने पर यह प्रश्न उठता है कि 'गौड' तो शुद्ध और पूर्ण आत्मा है फिर उसने अपने आपको इस अशुद्ध और अपूर्ण संसारमें किस प्रकार परिवर्तन किया? इस लिए या तो हम संसारके रचनेका कार्य उस पर आरोपण नहीं कर सकते, या यह मानना पड़ेगा कि अपवित्रता या अशुद्धताका अंकुर जो संसारमें विद्यमान है सदासे 'गौड' में भी होना चाहिए। एक कठिनाई तो यह है। एक और दूसरी कठिनाई (दुःसाध्यता) यह है कि एक चेतन और बुद्धिमान् आत्माका अचेतन वस्तु बन जाना असम्भव है। संसारमें अचेतन द्रव्य और बुद्धिमान् आत्मा दोनों हैं, परन्तु चेतन बुद्धिमान् आत्मा सांसारिक पदार्थोंका अचेतन और बुद्धिरहित अंश या भाग नहीं बन सकता; इसलिए यह सिद्धान्त कि 'गौड' और बुद्धिमान् परमात्माने बुद्धिरहित या जड़ भागोंसे मिले हुए संसारकी आकृति ग्रहण करके संसारको रचा, माननेके योग्य नहीं है।

जो लोग यह मानते हैं कि 'गौड' ही शाश्वत है और वह

आप ही संसारकी आकृति ग्रहण कर लेता है, उनमें एक वेदान्ती भी हैं। इनका यह मत है कि 'गौड' शुद्ध या केवल ज्ञानरूप है और जब उसने संसारको रचा तो उसने अपना ऐसी वस्तुसे संयोग किया जो अज्ञान रूप भासती है और जिसे अज्ञान या जड़ कहते हैं। परन्तु हम यहाँ यह प्रश्न करते हैं कि यह अज्ञान या जड़ वस्तु जिससे कि ज्ञानी आत्माका संसर्ग हुआ 'गौड' से पृथक् और भिन्न वस्तु है या यह 'गौड' का ही एक गुण है। यदि यह कोई भिन्न (अलग) वस्तु है, तब तो इस मतमें कि 'एक ही शाश्वत वस्तु है' विरोध आता है या दूषण लगता है और अद्वैतवादके स्थानमें द्वित्ववाद मानना पड़ता है। विपरीत इसके, यदि इस जड़ वस्तुको 'गौड' का एक गुण माना जाय, तो फिर यह जड़ या अज्ञान वस्तु सदासे उसके (गौडके) साथ रहनी चाहिए और उसे (गौडको) हम शुद्ध या केवल ज्ञानरूप नहीं समझ सकते। उसमें अज्ञा-नता या जड़ता और अपवित्रता या अशुद्धताके भाग सदाहीसे मिले हुए होने चाहिए। जैनमतमें भी शुद्ध और पूर्ण ज्ञानका अज्ञान और अशुद्धतासे संयोग माना है; परन्तु भेद यह है कि वेदान्ती तो यह मानते हैं कि 'गौड' ने किसी विशेष सम-यमें इस अज्ञान या जड़ वस्तुसे अपना संयोग किया और इस प्रकार यह दृश्य संसार बन गया; और जैनमतवाले यह मानते हैं कि यह शुद्ध ज्ञान और जड़ वस्तु जैसे अब मिले हुए हैं सदासे ऐसे ही मिले हुए चले आये हैं और इस प्रकार ये इस दृश्य संसार-

के कारण हैं। आत्मा और पुद्गल सामान्य जीवित प्राणीमें वस्तुतः परस्पर संयुक्त हैं, परन्तु वे कभी अर्थात् किसी विशेष समयमें संयुक्त नहीं हुए वरञ्च सदाहीसे या अनादिकालसे ही संयुक्त हो रहे हैं; इस लिए उनके संयुक्त होनेका क्या कारण है यह प्रश्न उत्पन्न ही नहीं होता। क्योंकि कोई ऐसा समय नहीं था जिसमें वे आत्मा जो अब संयुक्त हैं संयुक्त नहीं थे। अर्थात् सदासे ही संयुक्त थे। आत्माका वास्तविक स्वरूप एक ही है चाहे वह पुद्गलसे मिला हुआ हो चाहे शुद्ध हो। परन्तु आत्मा जड़ वस्तुसे सूक्ष्म भौतिक शक्तियोंके रूपमें मिला हुआ है, इस लिए इनसे आत्मामें रागद्वेषके भाव उत्पन्न होते हैं; और ये विकार, कषाय या कामभाव, भले और बुरे कृत्रिम कर्मोंके निमित्तकारण बनकर, एक प्रकारके हेतु या साधन हैं जिनके द्वारा इसी प्रकारके नये पदार्थ या कर्मोंके परमाणु आत्मामें आकर मिल जाते हैं। यह जड़ वस्तु जो आत्मामें आकर मिल जाती है एक प्रकारकी सञ्चित या एकत्रित शक्ति बन जाती है जो किसी न किसी समय कर्मोद्युक्त उदयके सम्मुख होकर आत्मामें किसी प्रकारका सुख या दुःख उत्पन्न करेगी। इस प्रकार अपनी सारी शक्ति व्यय करनेके अनन्तर यह जड वस्तु आत्मासे अलग हो जाती है, परन्तु जैसा पहले वर्णन किया गया है, जब तक इसका प्रभाव रहता है यह एक साधन है जिसके द्वारा इसी प्रकारकी नई वस्तुयें आत्मामें आकर मिलती रहती हैं और निरन्तर ऐसा ही होता रहता है; फिर अन्तमें जब आत्मा अपने स्वरूपको पहचान लेता है और इन शक्ति-

योंको विदेशीय या बाह्य अर्थात् अपनेसे भिन्न वस्तु जानने लगता है, उस समय आत्मा उनसे मुक्त हो जाता है यहाँ तक कि उन बाह्य शक्तियोंकी निर्जरा होती जाती है और उसी प्रकारकी और नई शक्तियाँ उत्पन्न नहीं होतीं। जब एक बार ये बाह्य शक्तियाँ आत्मासे अलग हो जाती हैं, तब आत्मा शुद्ध हो जाता है और फिर कभी अपवित्र नहीं होता; वह अपनी दैवी सम्पत्ति या परमात्मत्वको प्राप्त कर लेता है।

इस प्रकार अब हमने देख लिया है कि परमात्मामें कर्ता और शास्ताका गुण आरोपण करनेमें उसके इतर वास्तविक या नैसर्गिक गुणोंमें हानि आये बिना नहीं रहती। इसके सिवाय और भी कुछ बातें विचारनेके योग्य हैं।

' इस संसारका एक कर्त्ता और शास्ता अवश्य होना चाहिए।' इस विश्वासके समर्थनमें एक बड़ा हेतु यह दिया जाता है कि देखो सृष्टिकी रचनामें क्रम और व्यवस्था पाई जाती है, उसमें सौंदर्य या चारुता भी विद्यमान है और इन दोनों बातोंसे यह पाया जाता है कि इस जगत्का निर्माता कोई बुद्धिमान् पुरुष है, अर्थात् ऐसी सुन्दर और यथाक्रम सृष्टिकी रचनाके लिए ज्ञानकी आवश्यकता है। प्रथम तो यह कहना ठीक नहीं है कि संसारमें केवल सौन्दर्य और क्रम ही दीख पड़ते हैं, उसमें अक्रम और कुरूपतायें भी हैं। यदि यह कहा जाय कि परमात्मा किसी लाभदायक या हितकारी उद्देश्यसे ही आँधियाँ भूकम्प और रोगोंको भेजता है, तो फिर यह स्पष्ट है कि इस बातके माननेमें दयालुता या सर्वशक्ति-

सत्ताके गुणमें हानि आती है। क्योंकि यदि परमात्मा दयालु और सर्वशक्तिमान् होता, तो इस प्रकारकी पीड़ायें और क्लेश होने ही न देता।

इसके उपरान्त, यह कहना एक बहुत बड़े साहसका कार्य है कि सारे जगत्के विस्तार या प्रपञ्चका कारण, जिसमें भौतिक वस्तुयें-कुरसी और मेज़ भी शामिल हैं-केवल ज्ञान ही ज्ञान है और कुछ नहीं। एक ऐसा कार्य जिसमें ज्ञान और जड़ता (अज्ञानता) दोनों मिली हुई हों उसकी उत्पत्ति निरे ज्ञानसे ही नहीं हो सकती। इसके सिवाय क्रम और व्यवस्था भी निरे ज्ञानहीसे उत्पन्न नहीं हो सकती। क्योंकि अज्ञानी या जड़ कुरसी मेज़की अपेक्षा ज्ञानी जीवका एक क्रमसे न चलना अधिक सम्भव है। देखो, अज्ञ वा जड़ वस्तुयें तो अपनी स्थिर प्रकृतिके अनुसार निरन्तर एक विशेष क्रमसे चली चलेंगी जबतक कि कोई बाह्य कारण उनका क्रम न बदल दे, परन्तु ज्ञानी जीव अपने ज्ञान द्वारा एक ही ढगरमें चलना अच्छा न समझकर चाहे जब क्रमको अपनी ज्ञानशक्तिसे बदल सकता है।

जैनमतके अनुसार यह जगत् दोनों सज्ञान और अज्ञान कारणों द्वारा उत्पन्न हुआ है। सज्ञान कारण एक ही प्रकारका है और अज्ञान कारण पाँच प्रकारके हैं। ये छहों सत्तायें या विद्यमान वस्तुयें मिलकर, अर्थात् ये छह वस्तुयें (षट् द्रव्य), इनके अनेक पर्याय और इनके गुण और स्वभाव जगत्के कर्ता हैं। सज्ञान कारणका स्वभाव जानना है। पाँच अज्ञ या जड़ हैं जो यथाक्रम कारण या

द्वार हैं। इनमें पुद्गल, आकाश, काल, और दो और वस्तुयें हैं जिनसे ठहरनेवाली वस्तु ठहरती है और चलनेवाली वस्तु चलती है।

जैनमतमें यह नहीं मानते कि इन छह द्रव्योंसे किसी विशेष कालमें जगत्की उत्पत्ति हुई थी। ये द्रव्य या कारण विद्यमान हैं, सदासे विद्यमान रहे हैं और सदा विद्यमान रहेंगे। ये अपनी परिवर्तनशील दशाओं या पर्यायों और परस्पर समाघातसे सृष्टिको उसके वर्तमान रूपमें उत्पन्न करते हैं। किसी घटनामें सदा दो कारण होते हैं एक समवायि या उपादानकारण और दूसरा सहकारी या निमित्तकारण। यथा, 'आग' निमित्तकारण है जिससे जल उबलने लगता है और जल 'उबलने' की घटनाका उपादान-कारण है। ऊपर लिखे हुए छह द्रव्यों (जीव या आत्मा, आकाश, काल, पुद्गल और दो और जिन्हें धर्म और अधर्म कहते हैं) में से प्रत्येक द्रव्य उपादान और निमित्तकारण है। प्रत्येकका व्यापार औरों पर और औरोंका व्यापार उस पर होता है। प्रत्येक-में उत्पाद (उत्पन्न होने) व्यय (नाश होने) और ध्रौव्य (ध्रुव या स्थिर रहने) की शक्ति है। इस शक्तिको 'सत्ता' कहते हैं। यह कोई भिन्न सत्ता या द्रव्य नहीं है जो इन छह द्रव्योंसे बाहर रहता हो। यह शक्ति इन्हीं छह द्रव्योंमें विद्यमान या उपस्थित है और इनसे अवियोज्य है अर्थात् इनसे इस शक्तिका नित्यसम्बन्ध है। इस जगत्से भिन्न कोई ऐसा एक व्यक्ति नहीं है जो जगत्की रचयिता (कर्ता) और शास्ता हो; किन्तु यह छह द्रव्योंमेंसे प्रत्येकका एक गुण है, यह कोई ज्ञानी या अज्ञानी सत्ता या पुरुष नहीं है।

इससे यह सिद्ध हुआ कि वस्तुओंको उत्पन्न और नाश करनेवाली शक्ति ऊपर लिखे हुए छह द्रव्योंके बाहर और इस जगत्से भिन्न नहीं है; यह शक्ति वस्तुओंके भीतर ही अनुगत या उपस्थित है, और दोनोंमें अर्थात् चेतन और अचेतन या सज्ञान और जड़ पदार्थोंमें पाई जाती है। जैनमतमें इस शक्तिको 'गॉड' या 'परमात्मा' नहीं कहते। यह जैनसिद्धान्त है और सर्वथा युक्तिसिद्ध है।

एक बात यह भी विचारनेके योग्य है कि कर्तामें श्रद्धा रखनेसे मनुष्यको धर्मशील बनने और मोक्ष प्राप्त करनेमें सहायता मिलती है। कर्ता या स्रष्टाकी पूजा करनेसे यह आवश्यक नहीं कि मनुष्य धर्मशील बन जाय तथा मुक्ति या मोक्ष प्राप्त कर ले जो इस जीवनकी पराकाष्ठा या इस जीवनका परम उद्देश्य है। धर्मशील बनने या धार्मिक चरित्र प्राप्त करनेके ये पाँच मूलतत्त्व हैं,– १. अहिंसा अर्थात् किसी प्राणीको न मारना, न दुःख देना या आप जीते रहना और इतर जीवोंको जीता रहने देना। २. मिथ्या न बोलना अर्थात् सत्य भाषण करना या सत्यवादी होना। ३. अस्तेय या चोरी न करना, वरञ्च अर्थशुचि या ऋजुतापरायण रहना। ४. व्यभिचार न करना, वरञ्च जितेन्द्रिय रहना और कामवासनाको दमन करना। ५. अपरिग्रह अर्थात् सांसारिक विषयोंका त्याग कर विरक्त रहना। अब यह देखो कि ऐसे 'गॉड' में—जो इस सृष्टिका कर्ता माना गया है—श्रद्धा रखनेसे लोग यह सोचने लगते हैं कि 'गॉड' ने

सारी वस्तुओंको मनुष्यके उपयोगके लिए उत्पन्न किया है और यह सोचकर मनुष्य मांस खाने और मदिरा पान करनेमें निरर्गलतामें रुचि करने लगता है। ऐसे मनुष्य ऊपर लिखे हुए पहले चौथे और पाँचवें मूलतत्व पर बहुत नहीं चलते और इन तीन तत्त्वोंका उल्लङ्घन करनेसे वे बहुधा शेष दो तत्त्व अर्थात् सत्य और अस्तेयका भी उल्लङ्घन करते हैं। इसके उपरान्त बहुतसे धर्मोंमें यह माना है कि मोक्षकी प्राप्तिके लिए कषायों और कामनाओंका दमन करना और संसारसे सम्बन्ध दूर करना अर्थात् विरक्त या निर्मोही होना आवश्यक है, और जो लोग 'गॉड' को स्रष्टा मानते हैं वे इस प्रकार वादविवाद करते हैं कि जब 'गॉड' ने मनुष्यको ये कषाय और कामनायें दी हैं, तो मनुष्यको इनके दमन करनेका क्यों यत्न करना चाहिए? और जब 'गॉड' ने ही मनुष्योंको संसारमें भेजा है तो फिर मनुष्यको संसारसे क्यों सम्बन्ध तोड़ना चाहिए या विरक्त और निर्मोही जीवन क्यों व्यतीत करना चाहिए? इस लिए, इससे स्पष्ट प्रतीत होता है कि 'गॉड' को कर्ता मानकर उसकी पूजा करनेसे यह आवश्यक नहीं कि धार्मिक जीवन या मोक्ष प्राप्त हो। इस प्रकार यह एक और युक्ति है जिसके कारण जैनमतानुयायी 'गॉड' में कर्ता होनेका गुण नहीं मानते, वरञ्च 'गॉड' को एक शुद्ध या पवित्र और पूर्ण आत्मा, सर्वज्ञ, आनन्दमय, सर्वशक्तिमान्, और शाश्वत (अनादि और अनन्त) मानते हैं। वह ऐसा आत्मा है जो इतर वस्तुओं या प्राणियोंको न तो उत्पन्न करता है और न उन्हें उनके कर्मोंका बुरा या भला फल देता है।

कर्तावादी कभी कभी एक और हेतु देते हैं। वह हेतु दण्ड और पारितोषिकके विषयमें है । कहते हैं कि इस संसारमें जहाँ न्यायाधीश और धर्माध्यक्ष नहीं है वहाँ अपराधियों और पापचारियोंको दण्ड नहीं मिलता। इसी प्रकार आत्माको उसके भले और बुरे कर्मोंका शरीर छोड़नेके पीछे दण्ड नहीं मिल सकता जब तक कि इस जगत्का कोई शास्ता या नियन्ता न हो । इसके उत्तरमें पहले तो यह स्मरण रखना चाहिए कि अपराधियोंको सदा न्यायाधीश दण्ड नहीं देता, वरञ्च किसी और प्रकारसे भी उन्हें दण्ड मिल जाता है। देखो वे किसी आकस्मिक आपत्तिके कारण मर जाते हैं; यथा सन्ध लगाते समय खिड़कीसे गिरकर या रोगग्रस्त होकर । दूसरे यह भी याद रखना चाहिए कि न्यायाधीश कभी कभी निरपराधी मनुष्योंको कारागारमें भेज देते हैं और जो सचमुच अपराधी है वह छूट जाता है । इस लिए यह नहीं कह सकते कि न्यायाधीश और धर्माध्यक्ष ही प्रत्येकको पारितोपिक और दण्ड देनेवाले हैं; किसी और कारणका होना आवश्यक है । जैनमतके अनुसार इस पारितोपिक और दण्ड देनका कारण **कर्म** है । कर्ममें यह शक्ति है कि अपने उचित समयमें कर्म करनेवाले पुरुप या प्राणीके शरीरमें एक कार्य उत्पन्न करे और ये सारी बातें जिन्हें घटना कहते हैं, और रोग, न्यायकारियोंके व्यापार व्यवहार आदि केवल निमित्तकारण हैं जिनके द्वारा कार्य उत्पन्न होता या किया जाता है । इस लिए परमात्माके यत्न करनेकी कोई भी आवश्यकता नहीं

है। क्योंकि पारितोषिक या दण्ड कार्यकी आकृतिमें कारण-कार्यभावसे आप ही आप मिलते रहते हैं । वह कारण जैसा कि ऊपर बताया गया है **कर्म** है । **कर्म** एक सर्वथा सत्य-वस्तु है; परन्तु वह जड़ वस्तु है । वह एक सूक्ष्म पुद्गल है जिसे शरीर कई बाह्य विकारोंके हेतुसे अपनी ओर खेंच लेता है और अपनेमें मिला लेता है। ये बाह्य विकार ये हैं:—काम, क्रोध, माया, लोभ, मोह, अहङ्कार जो एक प्रकारके अन्य कर्म हैं।

फिर यदि कोई यह पूछे कि यदि 'गॉड' हमारा कर्ता नहीं है-- यदि वह हमें अच्छे और बुरे कर्मोंका फल नहीं देता, यदि वह मनुष्यजातिके व्यापारोंमें व्यापार करता है, यदि वह हमें अच्छे और बुरे कर्मोंका फल नहीं देता, यदि वह मनुष्यजातिके लिए कोई लाभदायक कार्य नहीं करता और न मनुष्यके व्यापारोंमें व्यापार करता है (अर्थात् न मनुष्यके कामोंमें दखल देता है), तो फिर ऐसे देव या परमात्माके पूजनेसे क्या लाभ हो सकता है? इसका उत्तर यह है कि ऐसे सच्चिदानन्द देवके पूजने (जैसे कि कोई पुरुष पराक्रमी शूरवीरोंकी पूजा करता है) और उसके गुणों-पर ध्यान देनेसे, वे ही गुण हममें आजाते हैं या यह कहो कि उन्हीं गुणोंका हममें प्रकट होना सम्भव हो जाता है यदि हम उसका शुद्ध हृदय और सच्चे भावसे मनन करें । यह एक नियम है कि जैसी वस्तुओंका मनुष्य विचार करता है उसके विचार वैसे ही हो जाते हैं, या उन्हीं वस्तुओंका सा रूप ग्रहण कर लेते हैं । परमात्माके गुणों पर विचार करनेसे मनुष्यकी दशा सुधर जाती है। उसकी

आध्यात्मिक प्रकृति उन्नति करती है और अन्तमें वह उस पदवी-को पहुँच जाता है जहाँ वह यह यथार्थतया समझने लगता है कि परमात्माके गुण उसके गुण भी हैं, जो गुण मनुष्यके भीतर छुपे हुए हैं; परन्तु सांसारिक राग और द्वेषसे ये दैवी गुण मनुष्यमें अव्यक्त हैं अर्थात् इन गुणों पर राग और द्वेषका आवरण (परदा) पड़ा हुआ है। इससे सिद्ध है कि यद्यपि बाह्य देव या परमात्मा किसी मनुष्यको कोई वस्तु नहीं देता और न किसीसे कुछ लेता है, तथापि परमात्माकी पूजा एक निमित्त है जिससे मनुष्यकी आध्यात्मिक प्रकृति उन्नत हो जाती है और इस लिए इस उद्देश्यसे परमात्माका पूजन अतीव लाभदायक है।

अब एक और प्रश्न यह है कि यदि जगत्का कर्ता और शास्ता नहीं है और न वह जगत्के कामोंमें दखल देता है तो फिर उसे सर्वशक्तिमान् किस प्रकार कह सकते हैं? इस प्रश्नके उत्तरमें दो बातें विचारनेके योग्य हैं;—प्रथम यह कि जिस राजाने अपने शत्रुओंको लड़ाईमें जीत लिया है और उसमें इतनी सामर्थ्य है कि फिर शत्रु उसे सता नहीं सकते, उस राजाको शक्तिमान् कहते हैं। मनुष्यके लिए उसके कषायों या विषयोंसे बढ़कर और कोई अधिक प्रबल शत्रु नहीं है। जिसने अपने कषायों या इन्द्रियोंको सर्वथा वशमें कर लिया, इस प्रकार कि फिर वे कषाय या इन्द्रियाँ उसे दुःख न दे सकें, तो वह मनुष्य अतीव शक्तिमान् है और उसे सर्वशक्तिमान् कह सकते हैं। दूसरी बात विचारनेके योग्य यह है कि वस्तुतः शक्ति क्या है? सच पूछो तो किसी

वस्तुका अत्यावश्यक स्वभाव ही उसकी शक्ति है। आत्माका अत्यावश्यक स्वभाव ज्ञान, अनन्त ज्ञान है, और यही उसकी शक्ति है। और जब ज्ञान शक्ति है, तो अनन्त ज्ञान रहनेसे उसमें अनन्त शक्ति आजाती है।

इस प्रकार हमने देख लिया है कि यद्यपि जैनमतमें परमात्माको जगत्का कर्ता और शास्ता नहीं मानते, तथापि जैनधर्ममें परमात्माको मानते हैं और यह भी कहते हैं कि उसकी पूजा करनी योग्य है। यह सिद्ध हो गया है कि 'गौड' को कर्त माननेमें उसे मूर्ख या दुर्बल मानना पड़ता है; जगत्में प्रबन्ध और क्रमके होनेसे जैनमतके अनुसार जो सर्वोत्तम देव या 'गौड' माना गया है उसमें किसी प्रकारका विरोध नहीं आता; और यह भी सिद्ध होगया है कि 'गौड' को कर्ता मानना धार्मिक और दैवी जीवन व्यतीत करनेके लिए अनावश्यक ही नहीं है, किन्तु इस प्रकारकी श्रद्धा रखनेसे अवश्य करके कई प्रकारके नीच भाव या कषाय मनमें उत्पन्न होते और बढ़ते हैं, यथा मांसभक्षण सुरापान और कामभोग, इस हेतुसे कि कर्ताने इन पदार्थोंको अपने जीवोंके उपकारके लिए भेजा या बनाया है। इस प्रकार परमात्माका लक्षण वर्णन करनेमें जैनमतानुयायी जगत्कर्ता और शास्ताके गुण उसमें नहीं मानते। *

लाहोर
२६-३-१९१९ } मुंशीलाल एम. ए.।

*जनवरी सन् १९१५ के अँगरेज़ी जैनगज़टमें प्रकाशित हुए श्रीयुत एच. वारन साहबके अँगरेज़ी लेखका अनुवाद।

अंजना ।

(१)

अतिशय उज्वल, अतिशय सुन्दर,
परम रम्य है गिरि कैलास ।
एक समय उस पर बैठे थे
नृप महेन्द्र सद्गुणआवास ॥

(२)

इनके आसपास मन्त्री सब,
बैठे थे चातुर्य-निधान ।
नीतिनिपुण, हितचिन्तक, कोविद,
सूक्ष्म-दृष्टि, अच्छे, मतिमान ॥

(३)

महिप ' महेन्द्र ' महेन्द्र पुरीके
मंत्री-मंडलमें भाये ।
मानों ताराओंके बिच है
पूर्णचन्द्र छवि छिटकाये ॥

(४)

सोच रहे थे नृपवर मनमें,
दुहिता हुई सयानी है ।
किसी योग्यतम राज-तनयको
इसे शीघ्र परणानी है ॥

(५)

इतनेमें दोनों करजोड़े
बोले मंत्री, " श्रीमहाराज !
सोच रहे हैं क्या प्रभु मनमें ?
जो चाहें फरमावें काज " ॥

(६)

कहा नृपतिने " तुम सब मिलकर,
वर बतलाओ गुणकी खान ।
राजकुमार अंजना-लायक
जिसको दूँ मैं कन्यादान " ॥

(७)

बोले मंत्री एक एक कर,
अपनी अपनी मति अनुसार ।
इन्द्रजीत, विद्युत्प्रभ, आदिक,
गिना गये बहु राजकुमार ॥

(८)

पर प्रधान मंत्रीने सबमें
चुन चुन दूषण लगा दिये ।
कहा किसीको, है वह मानी,
वह क्रोधी, वह द्वेष लिये ॥

(९)

विद्युत्प्रभके लिये कहा " वह,
है यद्यपि रमणीय महान् ।
रूपवान, तो भी वह त्यागी-
होगा जल्दी छोड़ जहान ॥

(१०)

इसी लिए हे भूपशिरोमणि
विनय ध्यान दे सुन लीजे]
बाईका सम्बन्ध सोचकर
सर्वोत्तम वरसे कीजे ॥

(११)

भूपरत्न आदित्यनगरके
हैं ' प्रह्लाद ' जगद्विख्यात ।

उनके तनय मनोज्ञ ‘ पवनजय ’
रूपराशि हैं, हैं दृढ गात ॥
(१२)
बुद्धिमान हैं श्रुतसागर हैं,
नीतिनिपुण हैं, हैं बलवान ।
सकल कलाओंमें सुकुशल हैं,
तेजस्वी हैं, हैं गुणवान ॥
(१३)
इनकेसे इस समय नहीं हैं,
भूमंडलमें राजकुमार ।
राजन इन्हें अंजना देकर
सुख पावेंगे आप अपार ” ॥
(१४)
सुन प्रधान मंत्रीकी वाणी,
नरपतिका मन मुदित हुआ ।
सुता पवनजयको ही दूँगा,
ऐसा दृढ संकल्प हुआ ॥
(१५)
सुने पवनजयके गुणगौरव
हुई अंजना खुश मनमें ।
देख कल्पनादृगसे उनको
बिठा लिया हृदयासनमें ॥
(१६)
गये वहाँसे फिर सारे जन
दर्शन करने श्रीजीके ।
भक्ति भावसे बड़े चावसे,
निर्मल करने दृग हीके ॥

(१७)

" सपरिवार आदित्यपुरीके
आये हैं नृप श्री प्रह्लाद ।
यात्राको कैलासधामकी "
सुना मार्गमें यह संवाद ॥

(१८)

विधिसे श्रीजिनवरके दर्शन
नृप महेन्द्र इत कर आये ।
उधर भूप प्रह्लाद दरस पा
अपने डेरे पर आये ॥

(१९)

दोनों भूपतिने आपसमें
मिलनेका संकल्प किया ।
राजरीतिसे मिले, मधुरतमः
बातें कर मन मुदित किया ॥

(२०)

दोनों जाने लगे साथ ही
श्रीजीके दर्शन करने ।
शास्त्रसभामें बैठ पास ही,
दोनों शास्त्र लगे सुनने ॥

(२१)

दोनों रम्य शैलकी शोभा,
साथ देखने जाते थे ।
एक दूसरेका गुण देखे,
मनमें खूब लुभाते थे ॥

(२२)

नृप प्रह्लाद चाहता था यह,
" होय अंजना साथ विवाह- ।

मेरे सूबु पवनजयका तो
मुझको होवे बडा उछाह " ॥

(२३)

रानी भी इसमें राज़ी है,
राज़ी है सारा परिवार ।
और सुना है सच्चे दिलसे,
इसे चाहता राजकुमार ॥

(२४)

स्वयं अंजना बड़ी सुशीला,
सारे सद्गुणवाली है ।
शीलशिरोमणि मात पिताने
शुभ शिक्षा दे पाली है ॥

(२५)

इतनेमें ही नृप महेन्द्रने
अवसर पाय किया प्रस्ताव ।
" राजकुमार पवनजयको मम,
कन्या देनेके हैं भाव " ॥

(२६)

यह महेन्द्र नरपतिकी वाणी,
आदितपतिके मन भाई ।
'मेरा भी था यही मनोरथ,'
कह प्रसन्नता दिखलाई ॥

(२७)

बड़े ठाठसे शुभवेलामें,
हुई सगाई यह सानंद ।
पाणिग्रहण मुहूरत ठहरा,
तिसरे दिनका ही सुखकंद ॥

(२८)

बाजे बजने लगे मनोहर,
होने लगा मंगलाचार।
नहीं समावे मनमें ऐसा,
सब पर छाया हर्ष अपार॥

(२९)

व्योमयानमें बैठ शामको,
सैर पवनजय करते थे।
अपने प्रिय प्रहस्तको भी वे,
लिये साथ ही फिरते थे॥

(३०)

इतनेमें ही इनके मनमें
उठा मनोरम एक विचार।
"चलो चलें छुपकर चल देखें,
प्रिया कर रही क्या व्यापार॥

(३१)

"प्यारी प्यारी सखियोंके संग
वह बातें करती होगी।
मीठी मीठी बड़ी रसीली
मिश्रीसी घुलती होगी"॥

(३२)

यों विचार, तज व्योमयानको,
चले बड़ी चतुराईसे।
लता वृक्षकी छुपे ओटमें
खड़े रहे सुघराईसे॥

(३३)

लगे देखने जिधर अंजना,
बैठी थी सखियोंके संग।

था नखसे शिखतक साँचेमें
ढला हुआसा उसका अंग ॥

(३४)

छिटक रही थी रम्यचाँदनी,
कुसुम खिले थे रंगबिरंग।
मन्द मन्द मारुत बहता था
उठती थी मन माहिं उमंग

(३५)

देख अंजनाका मुख-सुन्दर,
मनमें चंद्र लजाता है।
इसी लिए क्या बादल भीतर,
बार बार छुप जाता है ॥

(३६)

नखसे शिख तक इसका जगमें,
कहीं नहीं मिलता उपमान।
इसमें बस इसकीसी है यह,
किये पवनजयने अनुमान ॥

(३७)

सखी अंजनासे कहती थी,
इसने सुना लगाकर कान।
तभी सुन पड़ा " सखी अंजना
बड़ा पवनजय है गुणवान " ॥

(३८)

" धन्य धन्य हैं भाग्य आपके,
मिला मनोहर वर ऐसा।
देवाङ्गना बिठालें जिसको
अपनी आँखोंमें ऐसा " ॥

(३९)

सुन सुन ऐसे वचन पवनजय,
प्रमुदित होता जाता था।
रूप-सुधारस रूपवतीका,
पीते नहीं अघाता था॥

(४०)

लगी 'मिश्रकेशी' यों कहने,
इतनेहीमें बात बनाय।
"वसन्तमाला! तू क्या जाने,
पुरुषपरीक्षाके सदुपाय"॥

(४१)

भला पवनजयके भीतर कह,
क्या क्या गुण तू पाती है।
झूठी बातें बना बनाकर,
बाईको बहकाती है॥

(४२)

विद्युत्प्रभको ब्याही जाती,
तो बाई यह सुख पाती।
उसके संग मिलन होता तो
धन्य धन्य यह कहलाती"॥

(४३)

ऐसी अपनी निन्दा सुनकर,
हुआ पवनजय क्रुद्ध महान्।
और अंजनाको दृगमूंद
लख आपमें जरा रहा न॥

(४४)

कहने लगा और मन ही मन,
"दुष्टा निन्दा सुनती है।

विषरसभरे कनक घटकीसी,
मुझको तो यह दिखती है ॥"

(४५)

चला मारने, पर, फिर ठहरा,
और चित्तमें सोच लिया।
"इसे परणके जो न छोड़ दूँ,
तो क्या मैंने जन्म लिया !" ॥

(४६)

"इसको सजा मिले सो अच्छा,
उसका है बस यही उपाय"।
पर, इसने बिलकुल नहिं सोचा,
"यह तो मुझ पर रही लुभाय" ॥

(४७)

"प्रथम सखीकी वाणी सुनकर,
मेरा ही शुचि ध्यान लगाय।
बाह्य विकाररहित हो बैठी,
रोक इन्द्रियोंका समुदाय ॥

(४८)

इससे इसने नहीं सुने कुछ,
सखी मिश्रकेशीके बैन।
ध्यानमग्न योगीसम इसने
मूँद लिये हैं दोनों नैन" ॥

(४९)

चले वहाँसे गये पवनजय,
चढ़ विमान पर घर आये।
सारी रात जगे, भ्रमवश हो -
आर्तध्यानकर दुख पाये ॥

(५०)

मानसरोवरके तट ऊपर,
रचा गया मंडप सुविशाल ।
उसमें पाणिग्रहण रीतिसे
हुआ, हुआ जब शुद्ध सु-काल ॥

(५१)

आनँद हर्ष मनाया सबने,
रहे वहाँ फिर दिन दो चार ।
गये सभी फिर निज निज घरको,
कर अपना लौकिक व्यवहार ॥

(५२)

अपनी सुता अंजनाको भी,
नृप महेन्द्रने विदा किया ।
हाथी-घोड़े, नौकर-चाकर,
माल-खज़ाना, खूब दिया ॥

(५३)

साथ अंजना पवनंजयको,
लेके घर आये प्रह्लाद ।
मंगल बाजे बजे मनोरम,
घर घर हुए हर्षके नाद ॥

(अपूर्ण)

भँवरलाल सेठी ।

शांति-वैभव।

(२)

मनुष्यका प्रभाव।

चाहे मनुष्यको इस बातका ज्ञान हो चाहे न हो; परन्तु उसका प्रभाव दूसरे मनुष्योंपर सदा ही पड़ता रहता है। यह बात स्वभावतः होती रहती है। स्वभावतः एकका दूसरे पर प्रभाव पड़ता रहता है। इससे कभी कोई नहीं बच सकता; परन्तु आश्चर्य इस बातका है कि मनुष्य कभी इस बातका विचार तक भी नहीं करता कि दूसरों पर मेरा क्या प्रभाव पड़ रहा है। मेरे स्वभावसे, मेरे शब्दोंसे, मेरे शरीरसे, मेरे हँसनेसे, मेरे रोनेसे, दूसरोंके जीवनमें क्या परिवर्तन हो रहा है। यह प्रभाव नित्यशः धीरे धीरे अव्यक्त रूपसे पड़ता रहता है जिसका मनुष्यको कभी विचार तक भी नहीं होता। उसके प्रत्येक शब्द और प्रत्येक कार्यका कुछ न कुछ प्रभाव होता है। जिन शब्दोंको वह यों ही मुँहसे निकाल देता है और शरीरकी जो प्रवृत्तियाँ बिना इच्छा और संकल्पके होती रहती हैं उनका तो विलक्षण ही प्रभाव पड़ता है। इतना प्रभाव हम अपनी प्रवृत्तियोंसे इच्छा और संकल्प करके भी नहीं डाल सकते। दिन भरमें एक पल भी ऐसा नहीं जाता कि जिसमें मनुष्य अपने प्रभावसे संसारमें कुछ न कुछ परिवर्तन न कर

देता हो, परन्तु यह परिवर्तन ऐसे धीरे धीरे होता है कि मनुष्यको उसका पता भी नहीं लगता।

तेज, प्रकाश, विद्युत, आकर्षण आदि प्रकृतिकी समस्त शक्तियाँ सदा चुप चाप अव्यक्त रूपमें अपना काम करती रहती हैं। हम कभी उन्हें नहीं देखते। हमको उनकी स्थिति केवल उनके कार्यों और परिणामोंसे ही विदित होती है। प्रकृतिमें दिखलाई देनेवाले पदार्थोंके परिणाम न दीखनेवाले पदार्थोंके वैभवके सामने कुछ भी नहीं हैं, बिलकुल तुच्छ हैं। सूर्य देखनेमें कितना बड़ा है? प्रकाश भी इसका कितना अधिक है; परन्तु तो भी इस पृथिवीके जीव जन्तुओं तथा वनस्पति आदिके जीवनकी पालनाके लिए सूर्यसे काफी तेज नहीं मिलता। आधीसे ज्यादह गर्मी और रोशनीके लिए हमें तारोंका आश्रय लेना पड़ता है; जो पृथिवीसे लाखों मील दूर हैं और बहुत ही छोटे हैं; दिखलाई भी अच्छी तरह नहीं देते। इसी प्रकार हजारों तरहसे प्रकृति सदा हमें बताती रहती है कि जो पदार्थ हमको दिखलाई नहीं देते उनकी शक्ति दीखनेवाले पदार्थोंकी शक्तिसे कहीं अधिक है।

हरएक आदमीके हाथमें भलाई अथवा बुराई करनेकी अद्भुत शक्ति मौजूद है। यह शक्ति उसके जीवनका चुपचाप बिना जाना हुआ और बिना दिखलाई देनेवाला प्रभाव है। वह मनुष्य वास्तवमें क्या है, उसके अंतरंग भाव और उसके वास्तविक विचार कैसे हैं, उन्हींका यह प्रतिबिम्ब है। चाहे कोई मनुष्य कुछ भी काम न करता हो तो भी वह अपने जीवनसे संसारमें हर्ष या शोक, आशा

या निराशा, उदारता या संकीर्णता, सुख या दुःख आदि गुण या अवगुण फैलाता रहता है। हमारे जीवनमें दो कार्य सदैव होते रहते हैं। एक दूसरों पर अपना प्रभाव डालना और एक दूसरोंका प्रभाव आप पर पड़ना। हमारा दूसरों पर और दूसरोंका हम पर सदैव प्रभाव पड़ता रहता है।

संसारमें कुछ स्त्रीपुरुष ऐसे हैं कि केवल उनकी उपस्थिति ही हर्ष और आनंदका कारण है। उनके दर्शन मात्रसे आनंद और प्रमोद फैल जाता है, शांति मालूम होने लगती है और पलभरमें यह जान पड़ता है कि दुनिया आनंद और आशाकी जगह है। परंतु कुछ ऐसे मनुष्य भी होते हैं कि जिनकी केवल आकृतिके देखलेनेसे अशांतिका अनुभव होने लगता है और जीवनसे ही घृणा मालूम होने लगती है। विनाकारण तुम्हारे हृदयमें चिन्ता और घबराहट उत्पन्न हो जाती है, चारों तरफ निराशा ही निराशा मालूम होने लगती है। रमणीय संसार उजाड़ जंगल दीखने लगता है और एकएक घड़ी काटे नहीं कटती।—पहाड़ हो जाती है। कोई भी चीज अच्छी नहीं मालूम होती और न किसी चीजके करनेको जी चाहता है।

कुछ मनुष्य ऐसे हैं जो जीवनरूपी समुद्रमें बर्फके पहाड़ोंकी तरह तिरते फिरते हैं। न उनकी किसीसे सहानुभूति है और न उनके पास कोई नामकता है। वे सबसे अलग हैं और सब उनसे अलग हैं। यदि कभी दैवसे कोई उनके पास जा निकलता है तो बड़ा पछताता है कि कहाँ आगया और यदि उनमेंसे कभी कोई

किसीके पास निकल जाता है तो यही सोचता है कि यह यहाँ क्यों आगया । ऐसे मनुष्योंका कैसा भयंकर प्रभाव पड़ेगा, यह तुम स्वयं जान सकते हो—कहनेकी आवश्यकता नहीं । इतना ही कह देना बस है कि जो अभागे मनुष्य उनके पास रहते हैं उनका जीवन बड़ा ही दुःखमय होगा; जीते हुए भी वे मरेके समान होंगे । इनके विपरीत कुछ मनुष्य ऐसे भी हैं कि जो बड़े हँसमुख, प्रसन्नचित्त, उदार और शांत होते हैं । वीरता और सहनशीलता उनके चेहरेसे झलकती है । वे अपने पथ पर आरूढ़ रहते हैं और निर्भयरूपसे उसी पर चलते रहते हैं । कठिनाइयाँ आती हैं; परंतु वे प्रसन्नतापूर्वक उनको झेलते जाते हैं । उनके प्रत्येक शब्द और कार्यसे आशा और आनंदकी वर्षा होती है । जिस तरह सूर्यके निकलनेसे अँधेरा जाता रहता है और प्रकाश हो जाता है उसी तरह उनकी दिव्यमूर्तिके दर्शनसे निराशा कोसों दूर भाग जाती है और गिरेसे गिरा मनुष्य भी आशा और उत्साहसे भर जाता है ।

कुछ मनुष्य मलेरियाग्रसित स्थानकी तरह होते हैं, अर्थात् जिस तरह मलेरियाज्वरवाले स्थानोंके संसर्गसे मलेरियाका रोग उत्पन्न हो जाता है, अथवा जिस स्थानमें महामारी आदिका प्रकोप होता है उसमें रहनेसे महामारीके लग जानेका भय रहता है, उसी तरह उन मनुष्योंके पास रहनेसे और उनके संसर्गसे बहुत ही बुरा, भयानक, गंदा और विषभरा प्रभाव पड़ता है । ऐसे मनुष्य अपने घरोंमें भी रोग शोककी भरी हुई विषैली हवा फैला देते हैं

जहाँ वे आये कि बच्चे खेलना कूदना छोड़ देते हैं। हँसी खुशी जाती रहती है। सबके चेहरों पर मरी सी छा जाती है। वे दुनियामें इस तरह रहते हैं जैसे कि उनके घरमें कोई नित्य मर जाता हो और उनको भारी शोक उठाना पड़ता हो। तुम उन्हें हँसते कभी न देखोगे। जब देखोगे भौंहें चढ़ी हुई और आँखें लाल। परन्तु दुनियामें इनके प्रतिकूल मनुष्य भी देखनेमें आते हैं जो सदा प्रसन्न रहते हैं और दूसरोंको भी प्रसन्न करते रहते हैं। कोई चाहे जैसा उदास हो उनको देखते ही हँस पड़ता है।

कुछ मनुष्य कपटी और मायाचारी होते हैं, अर्थात् उनके अंदर कुछ और होता है और बाहर कुछ और। वे कहते कुछ हैं और करते कुछ हैं। इन लोगोंमें यही अवगुण फैलता है। जब इनको किसी कामके लिए तुम्हारी जरूरत होती है तब तो ये तुमसे बड़ा मेल मिलाप करते हैं और प्रीति तथा सहानुभूति दिखलाते हैं। अपने मतलबके लिए तुम्हारे साथ रोने और हँसनेको तैयार हो जाते हैं। इनकी बातोंमें ऐसी मधुरता आ जाती है कि जान पड़ता है ये सब बातें इनके हृदयके भीतरसे निकल रही हैं। परंतु इस प्रकारके व्यवहारसे हमेशा काम नहीं चलता। बाहरी ढोंगका भांडा एक दिन फूट ही जाता है। निगाहसे कुछ न कुछ मालूम हो ही जाता है, अर्थात् ताड़नेवाले ताड़ ही जाते हैं। कुछ भोले भोले मनुष्य इनके धोखेमें भले ही आ जावें; परन्तु सबको ये धोखा नहीं दे सकते। अंतरंगमें एक छुपी हुई शक्ति ऐसी होती है जो कह देती है कि यह मनुष्य धूर्त मायाचारी है। अपने स्वार्थके लिए

इस समय तो बातें बनाता है: परन्तु जहाँ इसका काम निकल गया फिर यह तुमसे बात भी न करेगा ।

जब यह बात निश्चित है कि भला या बुरा किसी प्रकारका प्रभाव सदा पड़ता रहता है, तब मनुष्यका कर्तव्य है कि ऐसे गुण अपनेमें पैदा करे जिनसे संसारका उपकार हो और लोगोंका भला हो । प्रेम, शील, शांति, दया, स्नेह, सत्य, धर्म, न्याय आदि गुण हमारे चरित्रमें उत्पन्न होने चाहिए। इन्हीं गुणोंका संसारमें प्रभाव पड़ेगा और इन्हींसे संसारका भला होगा ।

जो मनुष्य उत्तम रीतिसे अपना जीवन व्यतीत कर रहे हैं उनको प्राय: यह विचार हतोत्साह कर दिया करता है कि हमसे संसारको कुछ लाभ नहीं पहुंचता; परंतु इस प्रकार हतोत्साह होना उचित नहीं है। कारण कि जिस प्रकार वे अपना जीवन व्यतीत कर रहे हैं उससे भी संसारको बड़ा लाभ पहुँच रहा है । वे भले ही कोई अद्भुत काम न कर रहे हों: परन्तु उनके जीवन और उनकी स्थितिसे ही संसारमें अव्यक्तरूपसे बड़ा भारी असर हो रहा है । छोटे छोटे कामोंका परिणाम बहुत बड़ा होता है ; वे छोटी छोटी चीजें जिनको हम तुच्छ समझते हैं बड़े बड़े कामोंका कारण होती हैं। उदाहरणके लिए विलियम गाडविन (William Godwia) ने सन १७९७ ई० में कुछ निबंधोंका संग्रह करके एक पुस्तक लिखी थी । उस समय उस पुस्तककी कुछ भी कदर न हुई थी; परन्तु उसीको पढ़ करके टामस मेल्थस (Thomos Malthus) ने १७९८ ई. में एक नवीन निबंध लिखा । मैलथसके निबंधको

चार्ल्स डारविन (Charles Darwin) ने पढ़ा और उसका चित्त उस विषयकी ओर ऐसा आकर्षित हुआ कि उसने जीवनका अधिकांश भाग उसी विषयके अध्ययनमें बिता दिया और अंतमें सन् १८५९ ई० में 'जीवोत्पत्ति' (The origin of Species) नामक नवीन पुस्तक प्रकाशित की। इस पुस्तकने उन्नीसवीं शताब्दीमें बड़ा प्रभाव डाला और विज्ञानमें भारी परिवर्तन पैदा कर दिया। विचार करनेका स्थल है कि मैल्थसका निबंध गाडविनकी पुस्तकका परिणाम है और डारविनकी पुस्तक मैल्थसके निबंधका प्रभाव है। यह प्रभाव परम्परासे चला आता है। गाडविनकी पुस्तक भी किसीके शब्दों या विचारोंका प्रभाव है। इसी तरह यदि पीछे पीछे खोज करके देखा जाय तो मालूम होगा कि शुरूमें किसी बहुत ही साधारण मनुष्यके मुखसे वे शब्द निकले होंगे जिनका परिणाम यह हुआ कि डारविनने इतने महत्त्वकी पुस्तक लिख डाली। उन शब्दोंके बोलनेवालेने कदापि यह न सोचा होगा कि उनसे कितना बड़ा काम होनेवाला है। उसका विचार तो यही होगा कि मैं दुनियाके वास्ते कुछ भी नहीं कर रहा हूं।

संसारमें हमारे लिए अनेक कार्य हैं—दूसरोंके प्रति तथा स्वयं अपने प्रति अनेक कर्तव्य हैं जिनका पालन करना हमारे लिए अत्यंत आवश्यक है। सबसे पहला कर्तव्य हमारे लिए यह है कि हम उस स्थानमें कदापि न रहें, जहां हम उत्तम रीतिसे जीवन व्यतीत नहीं कर सकते—जहाँ पर शांतिसे रहनेमें अनेक विघ्न बाधायें हैं। यदि स्वयं हमारा दोष है तो हमें शीघ्रही इसका उपाय करना चाहिए।

यदि दूसरोंके प्रभावका दोष है और वह प्रभाव गंदी विषभरी हवाके समान हमारे उत्तम विचारों संकल्पों और उत्साहोंको नाश कर रहा है तो हमको उचित है कि हम उस प्रभावसे अपनेको बचा लेवें; परंतु इस बातका स्मरण रक्खें कि ऐसा करनेसे हम अपने कर्त-व्योंसे पृथक् तो नहीं हो जाते। यदि इस प्रभावसे अपनेको बचानेमें कर्तव्यपालनमें बाधा आती हो तो ऐसी दशामें हमें उस प्रभावके काट डालनेका ही प्रयत्न करना चाहिए. अर्थात् उस प्रभावरूपी ज्वरके नाश करनेके लिए सच्चरित्र और सदाचाररूपी ओषधिका सेवन करना चाहिए। हम जिन लोगोंके बीचमें रहते हैं उनके कार्योंका उतना असर नहीं होता जितना कि गुणोंका होता है। आपने देखा होगा कि लोग पौधोंके गमलोंकी जगहको प्रायः बदला करते हैं कि जिससे उनको काफी गर्मी सरदी हवा और रोशनी मिलती रहे। जब पौधोंके लिए इतना किया जाता है तब क्या अपने लिए यह उचित नहीं है कि हम अपनी पूरी पूरी रक्षा करें. अच्छे प्रभावमें अपनेको रक्खें और बुरे प्रभावसे अपनेको बचावें।

अपना प्रभाव दूसरों पर डालनेके लिए यह आवश्यक है कि अपनी बातोंमें हमें पूर्ण विश्वास हो और जिन बातोंमें हमें विश्वास हो उन्हें हम व्यवहारमें भी लावें. अर्थात् जैसा हम समझते हैं और कहते हैं वैसा हम करें भी। जबतक ऐसा न होगा हमारा दूसरों पर कभी प्रभाव न पड़ेगा। हम चाहे कितना ही कहें परंतु वे हमारी बातको कभी न मानेंगे और न उनको हमारी बातका कभी विश्वास ही होगा। यदि हम जैसा दूसरोंको करनेको कहते हैं, वैसा स्वयं भी

करते हैं, तो हमारे बिनाकहे ही लोग हमारा अनुकरण करने लगेंगे। अँगरेजीमें एक कहावत है कि Example is better than precept अर्थात् कहनेसे करके दिखाना अच्छा है। देखो चुम्बक पत्थर जो लोहेको खींच लेता है वह पहले लोहेको चुम्बक बना-लेता है पीछे खींचता है। लोहा लोहा रहते हुए कदापि नहीं खिंच सकता। यही बात हम पर भी घटित होती है। वे माता पिता अपने बालकोंको कदापि सुशील नहीं बना सकते जो स्वयं सुशील नहीं हैं। शराबी कभी दूसरेसे शराब नहीं छुड़ा सकता। जो माता स्वयं झूठ बोलती है वह चाहे अपने पुत्रको कितना ही उपदेश दे; परंतु पुत्र झूठ बोलना नहीं छोड़ सकता। माताके शब्द तो कहते हैं कि झूठ मत बोलो; परंतु उसका प्रभाव कहता है कि झूठ बोलो। अतएव जो माता पिता या रक्षक चाहते हैं कि हमारे बच्चे झूठ न बोलें अथवा और कोई अवगुण न सीखें- उत्तम गुण ही सीखें उन्हें चाहिए कि पहले वे स्वयं उन सद्गुणोंको अपनेमें पैदा करें और उनके अनुकूल प्रवृत्ति करें। बच्चोंको कहनेकी जरूरत भी न पड़ेगी। वे स्वयं सद्गुणी हो जायँगे। वे आपकी मनवचनकायकी तमाम प्रवृत्तियोंको स्वभावतः देखते रहते हैं और उसीके अनुसार उनका जीवन बनता है। अतएव जैसा तुम उन्हें बनाना चाहते हो पहले वैसे स्वयं बन जाओ।

गरज यह कि प्रभावकी अद्भुत शक्ति है। कोई इससे नहीं बच सकता। ऐसा कोई भी मनुष्य इस संसारमें नहीं है जिसका प्रभाव दूसरों पर न पड़ता हो और दूसरोंका प्रभाव उस पर न पड़ता

हो । यदि कोई ऐसा है तो वह मनुष्य ही नहीं है । ऐसा होना असम्भव है । हमारे प्रत्येक भाव, विचार, शब्द और कार्यसे दूसरोंके जीवनमें किसी न किसी प्रकारका अवश्य परिवर्तन होता है, अतएव हमें उचित है कि हम अपने जीवनको आदर्श जीवन बनावें । हमारा प्रभाव केवल प्रभाव ही न हो किंतु उत्तम प्रभाव हो । हम गुणोंकी खानि हों जिससे हमारे संसर्गसे ही दूसरे गुणवान् बन जायँ । हमारे विचार उदार हों, हमारे शब्द मधुर हों और हमारे कार्योंसे जनसाधारणका उपकार हो । हमारी उपस्थितिसे ही लोगोंकी विघ्न बाधायें दूर हों और हमारा स्मरण करते ही उनको सुख और शांति प्राप्त हो ।

दयाचन्द्र जैन, बी. ए.
चिरंजीलाल माथुर, बी. ए.

महावीर-जयन्ती । *

अन्तिम तीर्थंकर भगवान् महावीरका जो जन्मकल्याणोत्सव है, ' महावीरजयन्ती ' उसीका संस्कार किया हुआ आजकलका नाम है । जैनोंका यह महान् धार्मिक पर्व है । जिस उत्सवके विषयमें कहा जाता है कि देवाधिदेव इन्द्र भी अपने परिकरके सहित उपस्थित होता

* हीराबागके व्याख्यानमन्दिरमें ता० २८ मार्चको जो हमारा व्याख्यान हुआ उसका सार । -सम्पादक ।

था, उसकी स्मृति या यादगारका दिन यदि महान् न हो तो और कौन सा दिन महान् होगा? एक सारे संसारके रक्षक, जीवमात्रके सहायक और सत्यसन्मार्गके उपदेशक महात्माका जन्मदिन किसके लिए उत्साहवर्धक न होगा? हम इस उत्सवको किसी न किसी रूपमें बराबर मानते आ रहे हैं। कोई इस दिन व्रत करता है, कोई उपवास करता है और कोई पूजा विधानादि उत्सव करता है। परन्तु इस माननेमें अब कोई जान नहीं रह गई थी; केवल एक निर्जीव रूढ़ि मात्र रह गई थी—इससे हमारे हृदयमें उन भावनाओंका उदय होना बन्द हो गया था जो एक महावीर महात्माके नामस्मरणसे होना चाहिए। इससे हम पुण्य भले ही सम्पादन करते रहे हों, पर अपने जीवनको सजीव और परोपकारतत्पर बनाना भूल गये थे। यही सब देख सुनकर कुछ विचारशील सज्जनोंने इस उत्सवको अब जयन्तीके रूपमें मनाना शुरू किया है।

हमें चाहिए कि हम इस उत्सवको संसारव्यापी बनानेके लिए उद्योग करें और इसके द्वारा सारे संसारका और अपना कल्याण करनेसे न चूकें। आपको मालूम है कि इस समय हमारे देशमें कई बड़े बड़े शहरोंमें सर्वसाधारण हिन्दू भाइयोंकी ओरसे बुद्धदेवकी जयन्ती मनाई जाती है—बौद्धधर्मानुयायी न होकर भी लोग महात्मा बुद्धका नाम स्मरण करते हैं। इसी तरह जबतक भगवान् महावीरकी जयन्ती भी जैनेतर भाइयोंकी ओरसे न मनाई जाने लगे तबतक हमें इस प्रयत्नसे शान्त न होना चाहिए। पर यह तो आगेकी बात है। अभी तक तो हम जैनोंमें भी इसका प्रचार

नहीं हुआ है—प्रारंभ ही दिखलाई देता है । क्या आप समझते हैं कि महात्मा महावीर हमारे ही तीर्थंकर थे; औरोंके वे कोई भी न थे ? यदि हम ऐसा समझते हों तो कहना होगा कि हम महावीरकी वीरताका विशेषत्व और सार्वत्व नहीं समझते । भारतवर्षकी सभ्यताको संसारशिरोमणि बनानेवाले आजतक जितने महात्मा इस पवित्र पृथ्वी पर हुए हैं उनमें भगवान् महावीरका आसन सबसे ऊँचा है । यदि आप भारतीय सभ्यता मन्दिरको बनानेवालोंकी कृतियोंमेंसे इस महात्माकी कृतिको निकाल डालेंगे तो उक्त मन्दिर नीचे आ रहेगा—उसमेंसे महत्त्वका—उच्चत्वका सर्वस्व निकल जायगा। भारतीय सभ्यतामेंसे उस बड़ी भारी करुणा दया और समताका लोप हो जावेगा जिसके लिए भारतवर्षको सबसे अधिक अभिमान । महात्मा महावीरकी समता, दया, परोपकारप्रवणता, सत्यनिष्ठा मत समझो कि केवल जैनोंके ही सिद्धान्त ग्रन्थोंमें या आचरणोंमें भरी हुई है, नहीं, वह सारे भारतमें, सारे भारतके धर्मोंमें, यहाँ तक कि विदेशोंमें भी किसी न किसी रूपमें व्याप्त हो गई है और इस कारण उसके लिए हमारे समान और लोग भी, कमसे कम भारतवासी तो अवश्य अभिमान कर सकते हैं । तब राम, कृष्ण और बुद्ध आदि महात्माओंके समान महावीर भगवान्‌की जयन्ती क्यों न मनाई जावे ? इसके लिए जैनोंको शक्ति भर प्रयत्न करना चाहिए और भारतवासी मात्रको अपने इस भूले हुए महान् नेताका स्मरण करा देना चाहिए ।

आओ, हम सब मिलकर इस पवित्र पर्वके दिन, महावीरकी

उन विशेषताओंमेंसे थोड़ी सी विशेषताओंका अनुभव करें जिनके कारण वे महावीर परमात्मा तीर्थकरके नामसे प्रसिद्ध हुए हैं।

आजसे २५०० वर्ष पहले जब दूसरे सभ्य देशोंके तत्त्ववेत्ताओंका जन्म भी न हुआ था और यहाँका तत्त्वज्ञान बाल्यावस्थामें था तब महात्मा महावीरने उस तत्त्वज्ञानका उपदेश दिया जिसकी नींव शुद्ध सत्य पर चिनी गई है और जो आज भी कहता है कि:—

इदमेवेदृशमेव तत्त्वं नान्यन्न चान्यथा।
इत्यकम्पायसाम्भोवत् सन्मार्गेऽसंशया रुचिः॥

अर्थात् सन्मार्गमें या सत्यमार्गमें इस तरहका तलवारकी धारके पानीके समान निश्चल विश्वास होना कि पदार्थ यही है, ऐसा ही है, दूसरा नहीं है, दूसरी तरह नहीं है, उसे सम्यग्दर्शन कहते हैं और वह मोक्ष प्राप्त करनेका प्रधान कारण है। आज भी उनके अनुयायी सम्यग्ज्ञानका यही लक्षण करते हैं कि पदार्थका जो स्वरूप है—वास्तवमें पदार्थ जैसा है उसको वैसा ही जानना समझना सम्यग्ज्ञान कहलाता है और उसके विना मोक्ष प्राप्त करना असंभव है। बतलाइए, इससे अधिक सत्यताकी उपासना और क्या हो सकती है? उनके उपदेशोंमें किसी व्यक्ति विशेषके वचनों या सिद्धांतोंकी अपेक्षा पदार्थके सत्यस्वरूपको माननेकी ओर अधिक ज़ोर दिया गया है और इसीलिए उनका एक अनुयायी बड़े ही साहसके साथ कहता है कि:—

पक्षपातो न मे वीरे न द्वेषः कपिलादिषु ।
युक्तिमद्वचनं यस्य तस्य कार्यः परिग्रहः ॥

अर्थात् न मुझे महावीर जिनके वचनोंमें पक्षपात है—मैं यह नहीं कहता कि उन्हींकी बात मानना चाहिए और न कपिल आदि दार्शनिकोंसे मुझे कोई द्वेष ही है। मेरा कहना तो यही है कि जिसका वचन युक्तिसे सिद्ध होता हो, सप्रमाण हो, अर्थात् वास्तविक हो उसीका ग्रहण करना चाहिए—उसीको मानना चाहिए।

समता अर्थात् जीवमात्रको एक दृष्टिसे देखना, उदारता और दया आदि गुणोंमें उनसे पहलेका संसारका कोई भी धर्मप्रवर्तक उनकी बराबरी नहीं कर सकता। जैनधर्मके तीनों सम्प्रदायवाले इस बातको स्वीकार करते हैं कि उनके समवसरणमें अर्थात् उनकी धर्मसभामें केवल मनुष्य ही नहीं पशुओं तकको स्थान दिया जाता था—उसका द्वार केवल ब्राह्मणादि उच्चवर्णोंके ही लिए नहीं किन्तु शूद्रों, चाण्डालों और अनार्यलोगों तकके लिए खुला रहता था और यह निश्चय है कि वहाँ प्रत्येक वर्णके लोगोंके लिए कोई खास प्रबन्ध न था—सब एक साथ बैठकर भगवानके उदार धर्मका उपदेश सुनते थे। उनका उपदेश भी किसी विशेष वर्ण या जातिके लिए नहीं है। उनके सिद्धान्तके अनुसार चाण्डाल भी सम्यग्दृष्टी हो सकता है:—

सम्यग्दर्शनसम्पन्नमपि मातङ्गदेहजम् ।
देवाः देवं विदुर्भस्मगूढांगारान्तरोजसम् ॥

इसका अर्थ यह है कि जिसे पदार्थके सत्यस्वरूप पर विश्वास है—जो आत्माके स्वरूपमें श्रद्धान रखता है वह चाण्डाल भी—नीचसे नीच पुरुष भी देव तुल्य है । जो रंग या वर्णका भेद—काले गोरेका भेद इस बीसवीं शताब्दीमें भी सभ्य देशोंसे समूल नष्ट नहीं हुआ है, उस भेदको आजसे २५०० वर्ष पहले उस समय जब कि ब्राह्मण वर्णगुरु बन रहे थे और उन्होंने शूद्रादि वर्णोंको ज्ञानादिमें नीचे डाले रखनेका स्थायी प्रबन्ध कर दिया था, क्षत्रिय वंशावतंस महावीर भगवानने जड़से उखाड़ डालनेका प्रयत्न किया था । इस सम्बन्धमें हमें इस बातको न भूलना चाहिए कि उस समय महात्मा शाक्यसिंहको बुद्धत्व प्राप्त न हुआ था । मैं समझता हूँ कि महावीर-परमात्माकी दयाशीलताकी विशेषताके विषयमें यदि यहाँ कुछ न कहा जावे तो भी काम चल सकता है । उनकी यह एक ऐसी विशेषता है कि इसे सारा संसार जानता है और आज भी संसारका कोई भी धर्म महावीरकी दयाके सिद्धान्तोंकी बराबरी नहीं कर सकता । उनके सच्चे उपासक हरी घासको रौंधते हुए चलनेमें भी वनस्पति जीवोंके दुःखका अनुभव करते हैं ।

भगवानका जीवन आदर्श जीवन था और उसमें बड़ी ही महत्त्वकी शिक्षायें मिलती हैं । इस विषयमें मेरे पहले बहुत कुछ कहा जा चुका है, इस लिए उन बातोंको फिरसे दोहरानेकी जरूरत नहीं है । मैं उनके कर्तव्यशील जीवनके विषयमें ही अपने श्रोताओंका चित्त आकर्षित करना चाहता हूँ । उन्होंने १२॥ वर्ष तक कठिन तपस्या करके और उसके द्वारा उस कक्षाकी योग्यता सम्पादन

करके जो एक जगत्के उद्धार करनेवाले महात्मामें होना चाहिए—धर्मोपदेश देनेका प्रारंभ किया। जब तक वे संसारमें रहे तब तक लोगोंको सन्मार्ग पर लगाते रहे। उनके परिणत जीवनका एक भी क्षण ऐसा नहीं है जिसमें लोगोंका कल्याण न हुआ हो। हमारे एक सम्प्रदायका कथन है कि उन्होंने अनार्य देशोंमें भी गमन किया था और अपने परम कर्तव्यका पालन करते समय उन्हें बड़े बड़े उपसर्ग या कष्ट तक सहन करने पड़े थे। त्यागी ब्रह्मचारी और साधु महात्मा कहलानेवाले लोग भगवानके चरितके इस अंशसे बहुत कुछ शिक्षा प्राप्त कर सकते हैं। भगवानके उपदेशोंने कितनी सफलता प्राप्त की इसके लिए इतना ही कहना यथेष्ट होगा कि उनके निर्वाणके पहले ही २८००० मुनि, ३६००० आर्यिका, एक लाख श्रावक और तीन लाख श्राविकायें इस तरह लगभग पौने पाँच लाख मनुष्य उनके शिष्यत्वको ग्रहण कर चुके थे। इनमें उस समयके शिशुनाग, लिच्छवि आदि अनेक प्रतिष्ठित राज घराने भी शामिल थे। सुप्रसिद्ध महाराज बिम्बसार (श्रेणिक) उनके प्रधान शिष्योंमें थे। यह क्या कोई सामान्य सफलता थी और आदर्श महापुरुषोंको छोड़कर क्या इतनी सफलता कोई साधारण पुरुष प्राप्त कर सकते हैं?

सज्जनो, मुझे जो समय दिया गया था, वह समाप्त हो गया, इसलिए अब मैं इस विषयमें और अधिक नहीं कह सकता हूँ और यदि कोई भूल हुई हो तो उसके लिए क्षमा माँगता हुआ विराम लेता हूँ।

क्या जैनधर्मकी अहिंसा संसारिक उन्नतिमें बाधक है?

'अहिंसा' जैनधर्मका मुख्य उपदेश है। 'अहिंसा परमो धर्मः' जैनधर्मका प्रसिद्ध मोटो अर्थात् मुद्रालेख है; परंतु गत कार्तिकमासकी लाहोरसे निकलनेवाली मासिक पत्रिका 'उषा' में प्रोफेसर गोविंदरामजी एम. ए. ने 'आर्य जातिकी अधोगतिके कारण' शीर्षक लेखमें यह दिखलाया है कि जैनधर्मकी अहिंसा और दयाने आर्यजाति और भारतवर्षको महान् क्षति पहुंचाई है–जैनधर्मकी अहिंसाने लोगोंके दिलोंको कोमल करके जातिको निर्बल, कायर और नपुंसक बना दिया है। प्रोफेसर साहबके कहनेका यह आशय है कि जैनधर्मका पालन करते हुए शारीरिक और लौकिक उन्नति नहीं हो सकती। प्रोफेसर साहबका यह कथन कहाँतक सत्य है इसी पर विचार करनेके लिए आज मुझे अपने मित्र बाबू दयाचन्द्रजी गोयलीय बी. ए. (मंत्री, जीवदयाविभाग, भारतजैन महामंडल) लखनऊकी प्रेरणासे कुछ लिखनेकी आवश्यकता हुई है। आशा है कि पाठकगण और विशेषकर प्रोफेसर साहब इसे ध्यानपूर्वक पढ़नेकी कृपा करेंगे।

अहिंसा और अधोगतिका कारण! इस अनोखे कार्यकारणके सम्बन्धसे बुद्धि विस्मित होती है। अहिंसा और शारीरिक निर्बलता

या कायरताका कारण ! इस विचित्र कार्यकारणके सम्बधको समझना भी बहुत बड़ी सूक्ष्म बुद्धिका काम है।

क्या यह वही अहिंसा है जिसका पातंजलि ऋषिने अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रहरूप पाँच यम व नियम स्थापित करके उपदेश दिया है ? हाँ, वही अहिंसा है; परंतु प्रोफेसर साहबके सिद्धांतानुसार पातंजल ऋषिका उपदेश और उनके ग्रंथ आर्ष ग्रंथ नहीं हैं। उनका श्रद्धान है कि जिस ग्रंथमें 'अहिंसा परमो धर्मः' का उपदेश है वह आर्ष ग्रंथ नहीं है। आप लिखते हैं कि "बौद्ध और जैनधर्मका हम पर ऐसा प्रभाव पड़ा कि हम नर्मीकी ओर बहुत झुक गये यहाँतक कि हमने अहिंसाहीको परम धर्म मान लिया हालां कि मेरा विश्वास है कि 'अहिंसा परमो धर्मः' ये विशेष शब्द किसी भी आर्षग्रंथमें नहीं मिलते।"

अस्तु; अब हमको देखना यह है कि जैनधर्मके ग्रंथोंमें अहिंसा किस प्रकार वर्णन की गई है और वह लौकिक उन्नतिके विरुद्ध है या नहीं। अहिंसा हिंसासे बचनेका नाम है और हिंसाका लक्षण जैनशास्त्रोंमें इस तरह किया गया है कि "प्रमत्तयोगात्प्राण-व्यपरोपणं हिंसा"। अर्थात् कषायके वश होकर अपने अथवा दूसरेके प्राणोंके घात करनेका नाम हिंसा है। क्रोध, मान, माया, लोभ, ये कषाय हैं। इनके वश होकर जो अपने अथवा दूसरेके प्राणोंका घात करना है वह हिंसा है। ज्ञान आत्माका स्वभाव है। इन कषायोंसे आत्माका स्वभाव अर्थात् ज्ञान नष्ट होता है। केवल

वध करनेका नाम हिंसा नहीं है; किंतु इन कषायोंसे वध करनेका नाम हिंसा है। यदि ये कषायें तीव्र हैं तो अधिक हिंसा होती है-परंतु यदि ये मंद हैं तो कम हिंसा होती है। यदि मनुष्यका मन इन कषायोंसे पाक है: परंतु उससे विना घात करनेके भावके घात होजाता है तो हिंसा नहीं होती है अथवा दूसरोंको लाभ पहुँचानेमें, परोपकार करनेमें, दूसरोंकी रक्षा करनेमें किसीका घात होता है तो उसमें भी हिंसा नहीं होती है। जैनधर्मकी अहिंसा यह कदापि नहीं कहती कि राजा अपने प्रजाकी रक्षा न करे—यदि कोई शत्रु देश पर चढ़ाई करे तो उस समय अपने देश और अपनी प्रजाकी रक्षाके लिए उससे युद्ध न करे। हाँ, यदि विना किसी कारणके केवल लोभका दास होकर राजा दूसरोंका देश छीननेके लिए युद्ध करता है, सहस्रों मनुष्योंका खून करता है तो अवश्य हिंसा है। प्रोफेसर साहबने एक जैनी राजाका उदाहरण दिया है कि वह वर्षा ऋतुमें शत्रुसे नहीं लड़ा और उसका देश शत्रुने ले लिया। यदि वास्तवमें कोई राजा वर्षाऋतुमें जब शत्रुने उस पर चढ़ाई की इस भावसे कि इस ऋतुमें लड़नेमें कीड़ोंकी हिंसा होगी, नहीं लड़ा तो उसने कदापि जैनधर्मके सिद्धांतके अनुसार काम नहीं किया, बल्कि उसने विपरीत आचरण किया। उसके एकके ऐसा करनेमें जैनधर्मको दोष लगाना निर्मूल है। जैनधर्ममें अहिंसा अपने अपने पदके अनुसार बतलाई गई है। जैनधर्ममें वर्षा ऋतुमें छोटे छोटे जीवोंकी हिंसाके विचारसे साधुओंको विहार करनेकी मनाई है, गृहस्थोंके लिए कहीं मनाई नहीं

है। इसके अतिरिक्त जैनधर्ममें ऊँची श्रेणी और नीची श्रेणीके सब जीवोंके घातमें एकसी हिंसा नहीं मानी गई है। मनुष्यके मारनेमें पशुके मारनेसे अधिक हिंसा होती है। पंचेंद्रिय पशुओंके घातमें कीड़े मकोड़े वगैरह दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, चार इन्द्रिय जीवोंके मारनेमें अधिक हिंसा है। कीड़े मकोड़े वगैरह नीची श्रेणीके जीवोंके घातमें वनस्पतिके घातकी अपेक्षा अधिक हिंसा है। हिंसाकी अधिकता या न्यूनता हिंसकके भावों और संकल्पोंकी अवस्था पर अधिकतर निर्भर है। गरज यह कि जैनधर्मकी अहिंसाका सिद्धांत गृहस्थको अपने कार्य व्यवहार करनेका निषेध नहीं करता।

जैनधर्ममें हिंसाके मुख्यतया दो भेद किये गये हैं:– १ संकल्पी हिंसा, २ आरम्भी हिंसा। कषायोंके वशीभूत होकर केवल स्वार्थ और लाभके लिए दूसरेको हानि पहुँचाने अथवा मारनेके अभिप्रायसे जो दूसरोंका वध किया जाता है वह संकल्पी हिंसा है। उससे गृहस्थको भी बचना चाहिए। परंतु कषायके वश न होकर सांसारिक कार्योंके करनेमें, परोपकार करनेमें, अपनी तथा दूसरोंकी अन्यायसे रक्षा करनेमें जो हिंसा होती है वह आरम्भी हिंसा कहलाती है। ऐसी हिंसाकी गृहस्थके लिए मनाई नहीं है। ऐसी हिंसामें हिंसा करनेवालेके दिलमें दूसरेके साथ कोई द्वेष या शत्रुताका भाव नहीं होता है—दूसरेको वध करनेकी इच्छा नहीं होती है; उसके भाव तो कार्यव्यवहार करने या दूसरोंकी रक्षा करने या परोपकार करनेके ही होते हैं। अब यदि उसमें दूसरे

जीवोंका घात हो जाता है तो वह बिना कषाय और बिना इच्छाके होता है। ऐसी हिंसा वास्तवमें हिंसाकी सीमातक नहीं पहुँचती है। इस प्रकारकी हिंसाको आरम्भी हिंसा कहते हैं जो वास्तवमें हिंसाके लक्षणके अनुसार गृहस्थोंकी अवस्थाकी अपेक्षा हिंसा नहीं है।

यह विचार कि जैनधर्मकी हिंसाने लोगोंके दिलोंको कोमल बनाकर उनको कायर, निर्बल और नपुंसक बना दिया, सर्वथा निर्मूल है। अहिंसा धर्मका पालन कायर निर्बल और नपुंसकोंसे कदापि नहीं हो सकता। अहिंसाका वही पालन कर सकता है जिसने अपनी कषायोंका शमन कर लिया हो और इंद्रियोंका दमन कर लिया हो। अहिंसा धर्म पर वही आरूढ हो सकता है जो शरीरके दासत्व और स्वार्थ—परताको एक ओर रखकर सब जीवोंका हृदयसे शुभचिन्तक हो और सबसे निस्वार्थ भ्रातृभाव रखता हो। क्या कायर और निर्बल इन्द्रियोंको दमन कर सकते हैं? कदापि नहीं। क्या नपुंसक शरीरकी गुलामी और स्वार्थपरताको छोड़ सकते हैं? कभी नहीं। जैनधर्मकी अहिंसा क्षत्रियसे यह नहीं कहती कि तुम न्यायका युद्ध मत करो, देश और प्रजाकी रक्षा मत करो। वैश्यको व्यापारादि करनेसे मना नहीं करती। शूद्रको शिल्प तथा सेवा आदि करनेसे मना नहीं करती। हाँ, ब्राह्मणसे निःसंदेह कहती है कि तुम जहाँ तक हो सके दुनियाके झगडोंमें और आरम्भमें मत फँसो। आत्मिक उन्नति करो। जैनधर्मकी अहिंसा यह अवश्य सबसे कहती है कि अपनी जिह्वाके क्षणिक स्वादके लिए अथवा अपने शरीरको मोटा ताजा

करनेके लिए दूसरे जीवोंका वध करके उनके शरीरको मत खाओ। अपने शौकके लिए दूसरे जानवरोंको शिकार मत करो। धर्मकी आड़में देवी देवताओंके आगे बेचारे निरपराध मूक प्राणियोंका रक्त मत बहाओ। जैनधर्मके तीर्थंकर चक्रवर्ती सब क्षत्रिय हुए हैं। उन्होंने राज्य किये हैं। बड़े बड़े युद्ध किये हैं और उनमें विजय पाई है। देश और प्रजाकी रक्षा की है। ज्ञान विज्ञान कला-कौशल्यकी उन्नति दी है। हाँ, यह अवश्य है कि उन्होंने बेचारे मूक प्राणियोंका शिकार नहीं किया। उनको मारकर उनके शरीरसे पेट नहीं भरा है। धर्मके नामसे खून बहानेकी आज्ञा नहीं दी है।

पाठकगण, जातिकी कायरता और नपुंसकताका कारण अहिंसा कदापि नहीं है। इसका कारण ब्रह्मचर्यका पालन न करना, वीर्यका नाश कर देना, बाल्यकालमें विवाह कर देना, मांसभक्षण और मदिरापानका अधिक प्रचार होना है जिसके कारणसे लोगोंकी प्रकृति ऐसी हो गई है कि कषायें अधिक प्रबल होकर विषय-वासनाकी ओर उनका चित्त झुक जाता है और वे ब्रह्मचर्य स्थिर नहीं रख सकते। वर्तमानमें मांसभक्षणका प्रचार बहुत बढ़ा हुआ है और बढ़ता जाता है। गंगा जमनाके दुबानेको छोड़कर सम्पूर्ण देशमें हिंदू भाई निःसंकोच बिना किसी रोक टोकके खुल्लम खुल्ला मांसभक्षण करते हैं। गोहत्या तो बंद करना चाहते हैं, और घी दूधके न मिलनेकी शिकायत करते हैं; परंतु स्वयं मांस भक्षण करना छोड़ते नहीं। गोहत्याके विरुद्ध हल्ला करते हैं, लड़ाइ

झगड़ा करते हैं; परंतु गोहत्या कम करनेका एक इलाज जो स्वयं उनके हाथमें है वह करते नहीं । हमारा विश्वास है और हम बलपूर्वक कहते हैं कि यदि आज हम हिन्दू लोग मांस खाना छोड़ दें तो भारतवर्षमें गोहत्या आधी जरूर हो जाय और घी दूध बहुलतासे मिलने लगे ।

प्रोफेसर साहबका जैनधर्मकी अहिंसाको दूषण देना सरासर अन्याय है । अहिंसाने जातिको कायर, निर्बल और नपुंसक कभी नहीं बनाया और न कभी वह बनावेगी । यदि आप जातिमें शारीरिक बल और लौकिक उन्नतिके इच्छुक हैं तो अपने बालकोंको २५ वर्ष अथवा कमसे कम २१ वर्षकी अवस्था तक ब्रह्मचारी रखिए, बचपनकी शादीको छोड़िए, बच्चोंको बुरी संगति और संसारकी चमक-दमकसे बचाइए, गुरुकुल जैसी संस्थाओंमें उनका प्रवेश कराइए, जिस तरह पूर्व कालके ऋषियोंने जीवन व्यतीत किया है उसी जीवनका अनुसरण उनसे कराइए, मांस मदिरा तामसी भोजन जो सैकड़ों रोगोंकी खानि है उनसे छुड़ाइए और स्वयं भी छोड़िए । क्योंकि जब तक आप स्वयं उनको न छोड़ेंगे आपके बच्चे कदापि नहीं छोड़ सकते । उनको सादा, जल्दी पचनेवाला, पुष्ट भोजन–घी, दूध, फल मेवे–खाने दीजिए, फिर देखिए जातिमें शारीरिक बल, दीर्घ आयु और हर प्रकारकी उन्नति होती जायगी । प्रो० राममूर्तिको देखिए । क्या भारतवासियोंको इनसे भी अधिक बलिष्ठ आप बनाना चाहते हैं? ये क्या खाते हैं, इस पर कभी आपने विचार किया? प्राचीन कालमें स्पार्टाके लोग कितने वीर थे? वे क्या खाते थे, आप जानते

हैं ? अँगरेज़ी डाक्टरोंके अनुभव देखिए। 'आर्डर आफ दी गोल्डन एज' की पुस्तकें ज़रा देखिए कितने अनुभव किये गये हैं और सब हालतोंमें यही परिणाम निकाला गया है कि शाकाहारी मांसाहारियों-से अधिक पुष्ट होते हैं।

जैनधर्मकी अहिंसा यह कदापि नहीं कहती कि अपने शरीरको पुष्ट मत करो, ताकत मत दो और उसे सुखा दो। हाँ, यह ज़रूर कहती है कि जिस प्रकार डाका मारकर दूसरोंका धन छीन-कर अपनी सम्पत्ति बढ़ाना अच्छा नहीं, उसी प्रकार दूसरे जीवोंको मारकर उनके शरीरोंसे अपने शरीरको हृष्ट पुष्ट करना अच्छा नहीं है। अपने शरीरको सात्विक भोजन दो, तामसी भोजन मत दो। न जैनधर्म यह कहता है कि तुम व्यायाम मत करो या खेल-मत खेलो। हाँ, शिकारसे कि जिसमें बेजबान जानवरोंका खून बहाया जाता है दूर रहो। गरज यह कि जैनधर्मकी अहिंसा शारीरिक उन्नति और समाज व देशकी उन्नतिके कदापि विरुद्ध नहीं है।

प्रोफेसर साहबका मत है कि ऊँची श्रेणीके जीवोंकी प्राणवृद्धि निचली श्रेणीके जीवोंके प्राणत्यागसे होती है और इसी सिद्धांत पर आप हिंसाके पक्षपाती मालूम होते हैं। ऐसा कदापि नहीं हो सकता। प्रथम तो यह सिद्धांत ही सर्वथा ठीक नहीं है। ऐसा भी देखा जाता है कि निचली श्रेणीके जीवोंकी प्राणवृद्धि ऊँची श्रेणीके प्राण त्यागसे होती है। पशु और मनुष्यके मरनेसे हज़ारों कीड़ोंकी उत्पत्ति होती है। मनुष्यों और पशुओंका प्राण त्यागना ही उन

कीड़ोंकी वृद्धि व उन्नतिका कारण होता है। सिपाही युद्धमें मरता है। उसके शरीरसे हजारों जंगलके जीवोंकी पालना होती है। अनेक प्रकारके वृक्ष ऐसे होते हैं कि उनकी उन्नति और वृद्धि पशुओंके खून और हड्डी वगैरहसे होती है। उदाहरणके लिए अंगूरकी बेल है। जबतक उसमें उससे कहीं ऊँचे जीवोंका मांस न डाला जाय तबतक उस पर अंगूर अच्छी तरह फलते ही नहीं। अतएव सर्वथा यह कहना कि ऊँची श्रेणीके जीवोंकी प्राणवृद्धि निचली श्रेणीके जीवोंके प्राण त्यागसे होती है, अथवा निचली श्रेणीके जीवोंकी प्राणवृद्धि ऊँची श्रेणीके जीवोंके प्राणत्यागसे होती है, गलत है। संसारमें दोनों अवस्थायें पाई जाती हैं। कहीं ऊँची श्रेणीके जीवोंकी वृद्धि निचली श्रेणीके जीवोंके प्राण त्यागसे देखी जाती है, कहीं इसके विपरीत ऊँची श्रेणीके जीवोंका प्राण-त्याग निचली योनिके जीवोंकी उत्पत्तिका कारण होता है। कोई एक नियम नहीं है। संसारके भिन्न भिन्न जीवोंकी भूत कर्मोंके अनुसार विचित्र अवस्था है। यदि ज्ञानदृष्टिसे देखा जाय तो मनुष्य और तिर्यंच आदि सबमें असली चीज आत्मा है और आत्माके सच्चे जीवनके लिए जड़के खानेकी कोई आवश्यकता नहीं है। आत्मा अजर अमर है। न जड़के खानेसे जीवित रहती है और न जड़के खानेसे मरती है। अपने स्वभाव ज्ञानसे सदा जीवित है; परंतु संसारिक अवस्थामें जो आत्माका सम्बंध शरीरसे है उस शरीरको स्थिर रखनेके लिए जड़ पदार्थके खानेकी जरूरत पड़ती है। अब जब जड़ पदार्थ ऐसी

दशामें भी पाया जाता है कि जिसमें उससे दूसरे जीवोंका शरीर बना हुआ है तब दयावान् पुरुषका काम है कि वह अपने आहारके लिए ऐसे पदार्थको काममें लावे कि जो दूसरे जीवोंके शरीरको न बनाये हुए हो, या ऐसे पदार्थको कि जिसमें बहुत ही छोटी श्रेणीके जीवोंका शरीर बना हुआ हो । अर्थात् अपने भोजनके लिए ऐसे पदार्थको ग्रहण करे कि जिससे दूसरी आत्माओंको जहाँतक सम्भव हो बहुत ही कम दुःख पहुँचे या दूसरे जीवोंको अपने शरीरसे पृथक् न होना पड़े । इसीका नाम खाने पीनेमें अहिंसा सिद्धांतका पालन करना है और यह कदापि मनुष्यको शारीरिक बल और लौकिक उन्नति प्राप्त करनेमें बाधक नहीं हो सकती ।

ऋषभदास जैन, बी. ए. ।

धर्मपाल नाटकके पद्य ।

(श्रीयुत पं० अर्जुनलालजी सेठी बी. ए. का बनाया हुआ एक 'धर्मपाल' नाटक भी है । यहाँ हम उसकी छपी हुई प्रतिसे कुछ पद्य उद्धृत करते हैं । यह छह सात वर्ष पहलेका बना हुआ है । पद्योंपरसे सेठीजीके विचारोंका बहुत कुछ पता लगता है । किसी किसी पद्यमें उनकी शान्त निरुपद्रव राजनीतिकी झलक है । सेठीजी पं० चिम्मनलालजी पांडेको गुरुस्थानीय समझते थे और इस कारण अपनी पद्यरचनामें वे प्रायः 'चमन' यह उपनाम या छाप रखते थे)

(१)

धर्मके नामसे झगड़े यहाँ पर खूब होते हैं ।
बढ़ाकर फूट आपसकी, दुखोंका बीज बोते हैं ॥ १ ॥
निरुद्यमी आलसी हो, द्रव्य अपना आप खोते हैं ।
हुआ है भोर उन्नतिका, ये भारतवासी सोते हैं ॥ २ ॥

हम मेल मिलाप बढ़ावें, कर उद्यम धन घर लावें।
भारत जागे सब दुख भागे, यह ही विनती हमारी ॥ ३ ॥

(२)

प्यारो ज़रा विचारो, कहता जमाना क्या है।
ग़फलतकी नींद त्यागो, देखो जमाना क्या है ॥ १ ॥
विद्याकी धूम छाई, चहुँओर मेरे भाई।
विद्या विना तुम्हारा, जीना जिलाना क्या है ॥ २ ॥
काले गँवार तुमको, विद्या विना बताते।
डूबी तुम्हारी इज्जत, तुमको ठिकाना क्या है ॥ ३ ॥
संतान किसकी तुम हो, पुरखा तुम्हारे कैसे।
इतिहास कह रहा है, मेरा बताना क्या है ॥ ४ ॥
शिक्षा अगर न दोगे, मूरख यों ही रखोगे।
संतान होगी दुखिया, मेरा जताना क्या है ॥ ५ ॥
विद्याके जो हितेच्छु, उनके बनो सहाई।
नुक्तोंमें द्रव्य प्यारो, विरथा लगाना क्या है ॥ ६ ॥
उठके कमर कसो, अब विद्याका चौक बांधो।
भारत 'चमन' खिले तब, सोना सुलाना क्या है ॥ ७ ॥

(३)

पतितउधारक शिवसुखकारक, स्वामी करुणा लीजे ॥टेक॥
हम भ्रमत चतुर्गति हारे, नहिं तुम विन कोउ दुख टारे।
करुणासागर सबगुणआगर, भवदधि पार करीजे ॥ १ ॥
मरी अरु क़हत साली सब, समीको आ सताती हैं॥
बलायें जो कि हैं सारी, हमीको आ दबाती हैं ॥
कषायें फूट नादारी, सदा हमको जलाती हैं।
गई भारतकी वह हालत, जो इतिहासें जताती हैं ॥
यह भारतवर्ष हमारा, सहे दुःख अनेक प्रकारा।
यह भारत नैया पार लगैया, करुणाकर सुख दीजे ॥ २ ॥

कला कौशल हमारा सब, गये हैं भूल अरसेसे ।
उठी तत्त्वोंकी चर्चा शोक, भारतके मदरसेसे ॥
जो था दुनियाका शिक्षक, वह अविद्यावश सहे ख्वारी ।
निकलते हैं सहस्रों दास, बन बनके मदरसेसे ॥
हम ज्ञान बुद्धि कर हीना, पर बन्धन फस भये दीना ।
यह कुमति हमारी नशे दुखारी, सुमति ज्ञान अब दीजे ॥ ३॥
गँवाके व्यर्थव्ययमें सब, रूपा हो बैठे हैं खाली ।
मिटाया धर्म्म सब अपना, विदेशी चीनी खा डाली ॥
स्वदेशीको घृणासे देख, अपनी खाक कर डाली ।
प्रभो करुणा करो हम पै, कियेकी हम सजा पाली ॥
हम बैर विरोध मिटावें, निज भारत देश जगावें ।
यह ' चमन ' हमारा कर पुकारा, भारतकी सुधि लीजे ॥

श्रीमत् पैसा-पुराण ।

(१)

'मक्खीचूस चचा' जब अंकगणित सिखते हैं तब 'जोड़' से ही शुरू करते हैं और वहाँसे एकदम 'गुणाकार' पर जा पहुँचते हैं ! 'बाकी' और 'भागाकार' देखकर तो उनके होश ठिकाने नहीं रहते ! परन्तु यह एक बड़े ही संतोषकी बात है कि बापकी कमी पूरी करनेके लिए चचाके चिरंजीवी 'भागाकार' से ही अपना गणित शुरू करते हैं ! जीते रहें ये लाड़िले चिरंजीवि !

(२)

शास्त्रसभामें एक पण्डितजीका व्याख्यान हो रहा था। भाग्यसे वहाँ मक्खीचूस चचा भी पहुँच गये थे। पण्डितजी ऊँचे स्वरसे दानका माहात्म्य सुनाने लगे—“ भो भव्यजीवो, धर्मकी पहली सीढ़ी दान है। इस पंचमकालमें दानके समान कोई तप नहीं है। दानके समान कोई—”

वाक्य पूरा भी न होने पाया था कि मक्खीचूस चचा बीचमें ही बोल उठे—“वाह पण्डितजी, आपने बहुतही अच्छा कहा। मुझे आपका उपदेश बहुत ही पसन्द आया। दान बड़ा भारी धर्म है—इसलिए मैं भी चाहता हूँ कि आपसे एक ‘दान’ माँग लूँ! मैं आपसे केवल यही दान माँगता हूँ कि आप कभी मुझसे इस तरहकी प्रेरणा न किया करें कि तुम अमुक काममें दान करो! बस, इसके सिवाय मैं और कुछ नहीं चाहता!” वाह रे भगत!

(३)

मनुष्य अनेक तरहके रोगोंसे मरते हैं; कितने ही आदमी सूजन आ जानेसे मर जाते हैं और कितने ही पेट बढ़ जानेसे मर जाते हैं; परन्तु यह बात निश्चयपूर्वक कही जा सकती है कि पैसा-परमेश्वरके उपासक कंजूसोंको हृदय बढ़नेका—विस्तृत होनेका रोग कभी नहीं हो सकता! जो लोग डाक्टर या वैद्य नहीं हैं वे भी इस बातको चट मान लेंगे।

(४)

अभागे सिकन्दर! सारी दुनियाको कँपा देनेवाले सम्राट् सिक-

न्दर ! मरते समय आखिर तुझे भी यही कहना पड़ा कि " मरनेके बाद दोनों हाथ खुले रखकर मेरी लाशको गलीगलीमें घुमाना जिससे लोग इस बातको अच्छी तरह समझ लें कि अन्तमें इसी तरह सबको खाली हाथ जाना है ! "

(५)

धर्मोन्मत्त मुहम्मद ! मन्दिर और मूर्तियोंको तोड़कर उनके पेटमेंसे अमूल्य रत्नोंको लूट कर ले जानेवाले ओ बेवकूफ़ बादशाह ! बतला तो सही कि आखिर तेरे हाथमें भी क्या रहा ? सारी दौलतका ढेर कराके उसके सामने बच्चेके समान इस तरह रोनेके सिवाय तुझसे और क्या बन पड़ा कि—" हाय ! क्या इसमेंसे मेरे साथ कुछ भी न जायगा ? "

(६)

एक समझदार अमीरने अपनी सुन्दरी कन्यासे कहा—" बेटी, इस बातको मैं बहुत पसन्द करता हूँ कि तू स्वयं ही अपने अनुरूप पतिको खोज ले; परन्तु देख, किसी गरीब पुरुषको ही पसन्द करना और साथ ही इस बातको याद रखना कि मेरे शब्दकोशमें ' गरीब ' शब्दका अर्थ ' कंजूस ' है ! "

(७)

बाईबलमें लिखा है कि " एक ऊँट सुईके छेदमेंसे भले ही चला जावे; परन्तु पैसावालों या धनवानोंको परमेश्वरके दरबारमें जानेका जरा भी अधिकार नहीं है ! " अरे बाप रे ! इन धनवानों पर स्वयं दयासागर परमेश्वरका भी इतना बड़ा कोप ! बेचारों पर इधर दुनि-

यामें तो जहाँ तहाँ जूतियाँ पड़ा ही करती हैं आशा थी कि मरनेके बाद दयालु परमेश्वर हाथ पकड़ेगा और रक्षा करेगा; परन्तु यह लीजिए, भगवानने ही स्वयं आज्ञा सुना दी कि मेरे दरबारमें ' धनवान् ' यह नाम ही न चाहिए !

क्या किसी धनवान्को, बोझा हल्का करके, भगवान्के दरबारमें जानेकी इच्छा होती है ?

(८)

थेमीस्टक्लीस नामक प्रसिद्ध ग्रीकनिवासीने अपनी पुत्रीको चाहनेवाले दो पुरुषोंमेंसे, धनीको छोड़कर गरीबको पसन्द किया और उसीके साथ उसका ब्याह कर दिया ! इससे लोगोंको बड़ा आश्चर्य हुआ। जब उन्होंने इसका कारण पूछा तो उत्तर मिला कि " मुझे मनुष्यत्वरहित धन (बिना आदमियतकी दौलत) की अपेक्षा धनरहित मनुष्य अधिक कीमती जँचता है। "

अब आप यह कहिए कि आपने कभी किसी कंजूसकी अतड़ियोंके किसी कोनेमें छुपे हुए ' मनुष्यत्व ' को देखा है ?

(९)

एक अरब देशका मुसाफिर एक बार किसी जंगलमें भूल गया। लगातार तीन दिन भटकता फिरा, पर रास्ता न मिला। साथमें जितनी खुराक थी वह सब निबट गई और अब भूखके मारे उसके प्राण छटपटाने लगे। चौथे दिन उसे एक जगह एक थैली पड़ी हुई दिखलाई दी। कोई खानेकी चीज उसके भीतर होगी, इस आशासे उसने उसे जल्दी जल्दी खोला ! पर देखता क्या

है कि उसमें सोनेके टुकड़े-मुहरें भरी हुई हैं! उसने अपने हाथ सिरसे दे मारे और बोला-" हाय! यदि इन पाँचसौ मुहरोंके बदले ज्वार या मकईके पाँचसौ दाने भी मिले होते तो आज मेरे प्राण बच जाते!" यह कहकर उसने थैली पर थूक दिया और उसे वहीं पड़ा रहने दिया।

अरबके मुसाफिरको रास्तेमें मिली हुई थैलीपर एक बार थूकना पड़ा, तो न जाने कितने न करने योग्य काम करके सैकड़ों थैलियाँ एकट्ठी कर रखनेवाले धनवानोंको अपनी उन थैलियों पर कितनी बार थूकना चाहिए? मक्खीचूस चचा! क्या आप जोड़ या गुणाकार करके इसका ठीक ठीक उत्तर देनेकी कृपा करेंगे?

(१०)

एक गांवमें एक छोटीसी होटल थी। उसका स्वामी एक बूढ़ा निर्धन था। उसकी बुढ़िया भी थी। एक दिन रातको उसके यहाँ एक मुसाफिर आकर टिका। भोजनके समय उसने बूढ़े और बुढ़ियाके साथ बड़े आनन्दके साथ बातचीत की और उनके जवान बेटेका हाल पूछा। बूढ़ा बोला-" वह तो बहुत वर्षोंसे लापता है; मालूम नहीं कहाँ चला गया।" सोते समय मुसाफिरने बुढ़ियाके हाथमें एक मुहरोंकी थैली दे दी और कहा कि इसे सबेरे तक अपने पास होशयारीसे रखना। थैली देखकर बुढ़ियाके मुँहमें पानी आ गया। उसने पतिकी सलाहसे उस सोते हुए मुसाफिरका काम तमाम कर दिया और ऐसी जगह उसकी लाशको गढ़वा दिया कि किसीको पता भी न लग सके। सबेरे होटलवालेके दो

तनि सगे-सम्बन्धियोंने आकर कहा—"आखिर तुम्हारा पुत्र घर आगया, यह जानकर हम बहुत खुश हुए हैं और तुम्हें मुबारक-बादी देनेके लिए ही यहाँ आये हैं।" बूढ़ेके इस समयके दुःख और आश्चर्यका वर्णन कौन कर सकता है! कारण, वह मुसाफिर और कोई नहीं उसीका बेटा था जो परदेशसे धन कमाकर लाया था और अपने बापकी स्थिति तथा प्रकृतिकी परीक्षा करनेके लिए एक दो दिन बेजान-पहिचानका बने रहनेके विचारसे मुसाफिर बनकर टिका था। पैसा कैसे कैसे कुकर्म करा सकता है, यह इस उदाहरणसे मालूम होजाता है।

(११)

एक नगरमें एक बड़ा भारी धनी रहता था। वह लोभी भी बड़ा भारी था। एक बार बड़ा भारी अकाल पड़ा और लोभीने लाखों मन अनाज चारों ओरसे खरीदकर रख छोड़ा। उसने ऐसी जबर्दस्त खरीद की कि अच्छा मुनाफा मिलनेसे व्यापारियोंके घरोंमें भी अनाजका एक दाना न बचा! जब लोग अन्नके लिए 'त्राहि त्राहि' करके मरने लगे तब सबकी दृष्टि इस धनीकी तरफ गई। नगरके अगुओंका एक डेप्यूटेशन उस लोभीसे प्रार्थना करनेके लिए गया कि यदि आप लागतके भावमें अनाज बेचने लगें तो अब भी आदमी बच सकते हैं। परन्तु लोगोंके मरनेमें लोभीका क्या जाता था? उसने किसीकी भी बात न मानी। अन्तमें एक साधु महात्मा उसके पास गये। लोभी बोला—"तुम भी यदि वही सिरपच्ची करानेके लिए आये हो तो मिहरबानी करके वापस चले जाओ—" समयसूचक

साधु बोले—"अजी सेठजी, मुझे तो कुछ और ही बात करनी है; इन बातोंसे मुझे कुछ मतलब नहीं है। आप सुनिए तो सही।" लोभीका जी ठिकाने आगया। साधुने कहा—"सेटजी, आपकी कीर्ति स्वर्गलोक तक जा पहुँची है। स्वर्गको जानेवाले राजालोग अपने हाथी घोड़ों और सैनिकोंके साथ—सब तरहके ठाट बाटके साथ सिधार रहे हैं और वेपारी लोग अपनी तिजोरियोंको साथ लेकर जारहे हैं! मेरे पास यह एक पुराना भगवाँ वस्त्र है और इस पर मेरा अतिशय मोह है; परन्तु बुढ़ापेके कारण मेरी यह शक्ति नहीं रही है कि इसे स्वर्गलोक तक उठा ले जासकूँ। इसलिए आपसे मेरी केवल यही प्रार्थना है कि आप इस कपड़ेको अपने पास रख लीजिए। जब स्वर्गलोकमें मेरा आपका फिरसे मिलाप होगा तब मैं इसे ले लूँगा। पर इसे आप अपने जर जेवर या जवाहरातके साथ मत रखिएगा—नहीं तो यह खो जायगा। मुझे यह प्राणोंसे भी अधिक प्यारा है। इसलिए इसे अपनी गाड़ीकी नकीमें ही बाँध रखना जिससे ज्यों ही आपकी गाड़ी वहाँ पहुँचेगी त्यों ही मैं आपके पास पहुँचकर इसे ले लूँगा।"

लोभी चौंक पड़ा, जग गया, चेत गया! मरना अवश्य पड़ेगा, इस बातका उसे स्मरण हो आया। यह भी ध्यानमें आ गया कि गाड़ी या जर जेवर साथ न जावेंगे। वह छाती पीटने लगा और साधुके पैरों में पड़कर बोला—"गुरुदेव! मुझ पर कृपा करो! मैं आपका कपड़ा पहुँचानेके लिए समर्थ नहीं हूँ; मुझ पंगुको आप अपना दास बनाकर साथ ले चलो। मैंने अस्थिर पदार्थोंके मोहमें

पड़कर स्थिर आत्माको बहुत हानि पहुँचाई है । मेरा सारा अनाज गरीबोंको बाँट दो । लो ये तिजोरीकी चाबियाँ, खजानेमें जितना रुपया है उसको ऐसे कामोंमें लगाओ जिनसे प्राणी मात्रको शान्ति मिले । उन्हें सुखी देखकर मैं सुखी होऊँगा और यह सुख मेरे साथ स्वर्गलोक तक अवश्य जायगा ।

(१२)

प्रसिद्ध दार्शनिक स्पेन्सर कहता है कि " जो मनुष्य दूसरों पर दया नहीं कर सकता वह इस बातकी आशा नहीं रख सकता कि– मुझ पर कोई (मनुष्य या देव) दया करे–ऐसी आशा रखनेका उसे कोई अधिकार नहीं है । "

(१३)

सर ई. डायर बड़े ही मर्मभेदी शब्दोंमें कहते हैं–" यह मैं जानता हूँ कि जिसतरह अधिक खानेसे कै हो जाती है उसी तरह अधिक लक्ष्मीके संग्रहसे दुःखके साथ कै करनेका वक्त आ जाता है । यह भी मैं जानताहूँ कि जो पहाड़ पर जल्दीसे चढ़नेको जाता है वह गिरता भी जल्दी है । मैंने देख लिया है कि जो ऊँची बैठक पर बैठता है उसे–सिर्फ उसे ही–दुर्दैव धमकाता है । ये बेचारे पैसा संग्रह करनेमें दुखी होते हैं और रखवाली करनेमें हैरान होते हैं । इस सेवकसे तो यह सहन नहीं हो सकता ।

" बहुतोंके पास जरूरतसे भी जियादा है, तो भी वे ' हाय हाय ' किया करते हैं ! सेवकके पास थोड़ा ही है; परन्तु अधिककी इच्छा ही नहीं होती । इससे करोड़ोंकी दौलतवाले कंगाल यदि

देखना हो तो परे जाइए और यदि दशबीस रुपयोंवाला धनी चाहिए तो इस सेवकके पास पधारिए! वे बेचारे तो ग़रीब हैं, पर मैं अमीर हूँ। वे चाहते हैं; पर मैं देता हूँ। उन्हें अभी तंगी है; पर मैं धीरता हूँ। वे 'हाय हाय' करके झुरा करते हैं, इसलिये जीते हुए भी मुएके बराबर हैं, पर मैं जीवित हूँ।

"मेरी बड़ीसे बड़ी दौलत तन्दुरुस्ती (नीरोगता) और समभावमें रमण करनेवाला मन है। मेरी बड़ीसे बड़ी शोभा बिना मैलका हृदय है। न मैं कभी किसीको रिश्वतसे प्रसन्न करनेकी चिन्ता करता हूँ और न बुरी रीतिसे किसीको चिढ़ानेका यत्न करता हूँ। सेवक तो इसी तरह जियेगा और इसी तरह मरेगा! यदि सभी लोग मरने जीनेकी इस रीतिको सीखलें तो कितना अच्छा हो!

"स्थूल सुखोंमें मुझे कोई आनन्द नहीं जान पड़ता। जब मैं कुबेरके खजानेकी तौल करता हूँ तब वह मुझे रास्तेके घास फूससे अधिक भारी नहीं मालूम होता! सेवकको इस खजानेकी परवा ही क्या है? लक्ष्मीदेवीके भयंकर नियमको मैं जानता हूँ। वे जब घरमें आती हैं तब पीछेसे लात मारके कमाई करनेमें लगाती हैं और जब घरमेंसे जाती हैं तब छातीमें लात मारके जमीनमें मिला देती हैं। परन्तु मुझे इस नियमका ज़रा भी डर नहीं है। मोहिनी सुन्दरता और सांसारिक प्रेमसे मेरा मन डगमगानेवाला नहीं है।

"बहुतसे लोग अपने आनन्दकी तौल अपने विषयवासनारूप काँटेसे करते हैं और अपनी चतुराईकी तौल दगा फरेबके काँटेसे

करते हैं। इनके पास बड़ीसे बड़ी चीज़ स्थूल खज़ाना है और इनकी बुद्धिके भंडारमें सफेद झूठों और प्रपंचोंके ढेर हैं! सेवकको इनमेंकी कोई चीज़ न चाहिए। शान्त और सन्तुष्ट मन, बस यही इस सेवकका बड़ेसे बड़ा आनन्द और खज़ाना है।

इत्यादिपुराणम्।

स्त्रीकी संगति।

यदि मनुष्यको स्त्रीकी सोसाइटी या संगति न मिले तो वह निस्सन्देह पशुसे भी बुरा बन जाय। मानवीय सभ्यताकी सारी खूबियोंका समूह स्त्रीजाति है और शायद यही कारण होगा कि संस्कृतमें जितने शब्द भलाई व योग्यताके लिए प्रयोग किये जाते हैं वे प्रायः स्त्रीलिङ्ग ही होते हैं। जो लोग अभी जीवनकी शुरू मंज़िलमें हैं उनके लिए खास कर स्त्रीकी सङ्गति अमृतका गुण रखती है। माना कि कुछ आयु बीत जाने पर मनुष्य पूर्ण विद्या प्राप्त कर स्त्रीकी संगतिके बिना भी रह सकता है; मगर युवक हृदयोंके लिए प्रभुभक्ति और जनसेवाके बाद यदि कोई सेवा या महोब्बत हमें दिखलाई देती है तो वह स्त्री ही है। ये युवकोंके दिलोंको अपने वशमें करके उन्हें सीधे मार्गपर चला सकती हैं, उनको बुराइयोंसे बचा सकती हैं, और सदाचारके साँचेमें ढाल देव बना देती हैं। प्रायः लोग कहा करते हैं कि स्त्रियोंके सम्बन्ध

चिन्ता व दुःखके कारण होते हैं; किन्तु अफ़सोस है उन पर जो सारी उम्र अकेले और कुँवारे रहते हैं। उनको सच्चा आनन्द कदापि नहीं मिल सकता। माना कि एक ख़ास व्यक्ति रात दिन पुस्तकोंके पढ़ने व विद्याविनोदमें अपना समय काट सकता है; किन्तु सब ऐसे नहीं हो सकते। प्रत्येक मनुष्य चाहता है कि उसके साथ कोई सच्चा मित्र हो जिसको वह अपना दुःख सुख कह सके और बुढ़ापेके दुःख पैदा करनेवाले जीवनको बालबच्चोंकी रमतगमतमें सुखसे बिता सके।

स्त्रीकी मुस्कराहट।

जिस भाँति थका माँदा पथिक बादलोंके पर्देसे निकलते हुए सूर्यको देखकर प्रसन्न होता है, उस ही भाँति दिनभर परिश्रम करनेवाला मनुष्य संध्याको जब घर आता है अपनी हँसती हुई पत्नीकी सूरतको देखकर दिनभरकी थकानको भुला देता है। बेचारा दिनभर दफ्तरमें काम करता रहा-अफसरकी अनुचित या उचित घुड़कियाँ जब तब सुनता व सहता रहा—दिनकी रोटी किसी तरह कमा ली; चार बजते ही बस्ता बाँधकर घरकी तरफ़ रवाना हुआ जहाँ उसकी प्रेयसी अपने बच्चोंको साथ लिए हुए, अपने प्राणेश्वरके आनेकी राह देख रही है। यदि स्त्री नेक है, यदि उसके नन्हें नन्हें बच्चे पितासे लिपट कर प्रसन्न होते हैं, तो सचमुच ही वह मनुष्य भाग्यशाली है और उसकी दिनभरकी कठिनाइयोंका पुरस्कार—बदला—उसे मिल जाता है। किन्तु यदि प्रतिकूल इसके पत्नी कटुभाषिणी व बुरे स्वभाववाली है तो उसकी दशा दया करने योग्य है।

स्त्रियोंका कर्तव्य है कि वे अपनी मुस्कराहटसे अपने पतियोंकी चिन्ता मिटाती रहें। यह जीवन वास्तवमें कभी कभी असह्य हो उठता है; किन्तु यदि पत्नी अच्छी होती है तो बड़ी ही प्रसन्नता और सरलतासे कट जाता है। यदि घर लड़ाई झगड़ेसे बचा हुआ है, तो निर्धनता व ग़रीबीमें भी उत्तम स्त्रियाँ उसको स्वर्गधाम बना देती हैं। मनुष्यका मुर्झाया हुआ हृदय अपनी अर्द्धाङ्गिनीकी मुस्कराहटसे ऐसे खिल जाता है, जैसे सूर्यकी किरणोंसे कमलका फूल खिल जाता है। जिसे नेक स्त्री मिली वह राजासे भी विशेष भाग्यशाली है।

भली स्त्री न्यामत है।

संसारमें सबसे बड़ा धन, सबसे बहुमूल्य वस्तु, सबसे विशेष आदरणीय भेंट जो मनुष्यको प्राप्त हुई है वह उसकी भली स्त्री है। यह वह देवी है, जो मनुष्यकी सच्ची रक्षक है; यह वह सम्मति देनेवाली है, जो इसको भला या बुरा सुझाती रहती है; यह वह हीरा है, जिसकी चमक इसकी गुलाबी मुस्कराहट है; यह वह चाँद है, जिसकी चाँदनीसे सारा घर चमक दमकसे भरा रहता है। इसकी निष्कपटता, इसका भोलापन इसकी प्यारकी दृष्टि और इसकी सच्ची हमदर्दीकी बातें, आहा! ये सब ऐसी चीजें हैं जिनका संसारमें कोई मूल्य नहीं दे सकता। इसके परिश्रमसे खुशहाली और इसकी मितव्ययतासे घरमें आनन्दका साम्राज्य होता है। गुलाबकी पंखुड़ियोंकी तरह चटखते हुए इसके ओष्ठ सच्ची और निष्कपट सहानुभूतिके कोशकी चाबियाँ हैं। पति इसकी मुलायम और मधुर

मधुर बातोंको सुनकर अपना सारा दुख भूल जाता है। यह इस भूमिको स्वर्गका नमूना बना देती है और इसके सद्भावोंके प्रभावसे इसके पति व सन्तानोंकी सच्ची उन्नति होती है।

पत्नियों पर विश्वास रक्खो।

यदि तुम पर किसी प्रकारका संकट आवे तो तत्काल ही अपनी स्त्रीको उसकी सूचना दो। यह मत समझो कि वह नादान और मूर्ख है। कभी नहीं। स्त्रियोंका हृदय व मस्तक पुरुषोंकी अपेक्षा विशेष उन्नत होता है। क्या तुम नहीं देखते कि लड़कियाँ ब्याह-कर घरमें आती हैं और आते ही सबका मन अपने उत्तम वर्तावसे वशमें कर लेती हैं। स्त्रियोंकी बुद्धि बड़ी ही तीक्ष्ण होती है। पुरुष चाहे कितना ही पढ़ा लिखा हो किन्तु जहाँ भीतरी बुद्धिका प्रश्न उठता है वहाँ स्त्रीहीको उच्च स्थान दिया जाता है। तुम अपनी पत्नी,माता, बहिन या बालिग लड़कीसे संकटके समय सलाह लो, फिर तुम देखोगे कि वह किस भाँति तुम्हें कष्टसे छूटनेकी सलाह देती है। स्त्री घरकी महाराणी और पुरुषको सच्चा मार्ग दिखानेवाली है। उससे कोई भी बात मत छिपाओ। जहाँ पुरुष स्त्रियोंका सत्कार करते हैं वहाँ कष्ट मुश्किलसे आते हैं। पत्नियाँ तो जरा जरा सी बातें अपने पति-योंसे कह देती हैं; किन्तु बेसमझ पति ऐसा नहीं करते। उनको इसका दण्ड भी मिलता है। जहाँ दो दिलोंमें पर्दा रहता है, वहाँ गृहस्थ जीवनका सच्चा सुख नहीं मिलता। पारस्परिक प्रेम और विश्वास हमारे सुखी रहनेके लिए बहुत ज़रूरी हैं। संसारमें अकेले आदमी बहुत ही कम सफलता प्राप्त कर सकते हैं। इसी कारणसे ब्याह कर-

नेकी आवश्यकता है। आप लोगोंने बीसों ऐतिहासिक आख्यायिकायें पढ़ी होंगी। उन्हें पढ़कर क्या आप स्त्रियोंको सर्वथा निकम्मी व अपाहिज कहेंगे ?

तुम इसको जाँच कर देख लो। अपनी स्त्रीकी सम्मति लिया करो। वह तुमको कठिनाइयोंसे बचनेकी जो सलाह देगी, उससे तुम भी आश्चर्य करोगे। स्त्री सुख और दुःख, कष्ट और आराम, हार और जीतमें पुरुषकी साथी बनाई गई है; फिर कैसी मूर्खताकी बात है कि तुम उसको सच्चा साथी नहीं बनाते। अगर तुम यह चाहते हो कि स्त्रीपुरुषमें गहरा प्रेम हो तो स्त्री पर विश्वास रक्खो; तुम्हें फिर कभी किसी तरहकी शिकायतका मौका न मिलेगा।

यदि मनुष्य अपने चारों ओर देखे तो समझबूझके मुआमिलेमें वह स्त्रीको अवश्य अपनेसे श्रेष्ठ समझेगा। क्या तुम नहीं देखते कि हँसी दिल्लगीमें स्त्रियाँ किस तरह तुमसे बाजी ले जाती हैं। यही दशा और बातोंमें भी दिखाई देगी। शर्त यह है कि तुम उनसे सम्मति लेना सीख लो।

अपनी माताका सत्कार करो।

जिसकी माता जीवित है वह वास्तवमें बड़ा ही भाग्यशाली है। क्योंकि जिस झरनेसे वास्तविक सहानुभूति और प्रेमका दूध बहता था वह उसके लिए अभीतक नहीं सूखा है। शास्त्र कहते हैं कि माताका हक बाप और आचार्यसे भी जियादा है। यह क्यों? इसलिए कि जिसके अस्तित्वसे तुम्हारा अस्तित्व बना है, वह माता

ही है और माताने जिस रीतिसे तुम्हारा पालनपोषण और देखरेखका काम किया है वह इन्द्रियसंयमकी सबसे अच्छी रीति है।

हम जानते हैं कि तुम बुद्धिमान् और अनुभवी हो, तो भी कुछ हानि नहीं, तुम अपनी मासे कभी कभी सलाह ले लिया करो। जब तब प्रसन्नतासे उसके कष्टोंका बदला देनेमें तत्पर रहा करो। तुम्हारी ज़रासी प्रसन्नताके भाव और मुस्कराहटसे माका दिल बल्लियों उछलने लगेगा और वह तुम्हारे प्रसन्न और भले बने रखनेमें जादूका असर दिखलायगा।

माताके धार्मिक भावोंमे घृणा मत करो, न उनकी दिल्लगी ही उड़ाओ। माना कि तुम्हारे विचार बहुव्यापी हैं और माताके धर्मभाव संकुचित हैं, तथापि माताको उसके खास बर्तावके सम्बन्धमें कष्ट मत दो। जब कभी हो सके अपने नवयुवक मित्रोंको माके पास लाया करो और अपने खेल कूद और आनन्दके कामोंमें उसकी सम्मति ले लिया करो जिससे कि उसकी वृद्धावस्थाका कोमल हृदय तुम्हारी प्रसन्नतामें मिल जाया करे। यदि कभी वह प्रेमके आवेशमें तुम्हारी पीठ पर हाथ फेरे, तो प्रसन्नतासे ऐसे बन जाया करो मानों तुम अभी नन्हेंसे बालक हो और माकी गोदमें खेल रहे हो। माकी आँखोंमें बड़ी उम्रवाला लड़का भी नन्हासा बच्चा ही दिखलाई देता है।

अगर तुम अभी विद्यार्थीजीवन बिता रहे हो तो अपनी किताबें कलमदान, खेलके सामान आदि सब माको लाकर दिखाया करो। यदि हो सके तो पुस्तकोंके पाठोंका अभिप्राय भी उनको सुनाया करो। क्योंकि जिन जिन बातोंसे तुम्हारा सम्बन्ध है, उन सबसे तुम्हारी माताका लगाव रहता है।

यदि तुम संसारके धंधोंमें पड़ गये हो और माता बूढ़ी है तो कभी यह मत समझो कि अब वह किसी कामकी न रही। अपनी पत्नी और बच्चोंको साथ लेकर सवेरे ही उसके चरण स्पर्श किया करो और उससे आशीर्वाद लिया करो। संसारमें माताके आशीर्वादसे बढ़कर और कोई चीज नहीं है। जो लड़का माताका इस भाँति सत्कार करता है वह संसारका प्यारा होता है। उसके काम सफल हो जाते हैं और वह इस लोक व परलोक सम्बन्धी सारे सुख प्राप्त कर लेता है।

जो लोग इस प्रकारसे माताका सत्कार करते हैं उनके प्रति हमारे हृदयमें ईर्षा उत्पन्न होती है। क्योंकि वे संसारमें सबसे जियादा सुखी, सबसे जियादा भाग्यशाली और सबसे जियादा भले होते हैं।

स्त्रियोंकी शिक्षा।

स्त्रियोंकी शिक्षा चाहे कितनी ही विस्तृत क्यों न हो किन्तु जबतक उनमें घर-गृहस्थीके प्रबन्धकी योग्यता नहीं आती वह शिक्षा अधूरी ही समझी जायगी। जिस प्रकार वह पुरुष-जिसने कि मुहर्रिरीसे तरक्की करते करते हाकिमी पाई है-नीचेसे ऊपर तकके सब कामोंको बहुत ही उत्तम रीतिसे सम्पादन करता है, उस ही भाँति लड़कियोंको भी गृहसम्बन्धी सब कामोंकी जानकारी व अनुभव प्राप्त करनेकी आवश्यकता है। आज कलके पढ़े लिखे बाबू हिन्दुओंकी पुरानी सभ्यता पर खूब ही कहकहा मारते हैं; मगर यह नहीं देखते कि उनके जीवनके सारे विभाग कैसे पूर्ण थे। शोक कि अब वे नाश हो रहे हैं। बहुत ही कम मनुष्य उनकी खूबियोंका विचार करते हैं।

पहले आजकलके समान कन्यामहाविद्यालय नहीं थे; किन्तु लड़कियोंको आवश्यकीय पाठ खेलकूदके द्वारा सिखा दिये जाते थे। आज कल लोग किंडरगार्डनकी खूबियोंका वर्णन करते हैं, मगर क्या छोटी छोटी मनबहलानेवाली बातें पहले नहीं थीं? शिक्षाका ऐसा कौनसा प्रश्न था जिसको हिन्दू-लड़कियाँ गुड़ागुड़ियाके खेलमें हल न कर लेती थीं? वे ब्याह बारात, अतिथिसत्कार, दहेज दावत, खाना पकाना, सीना पिरोना, लड़केकी उत्पत्ति, पूजा पाठ, आदि सब कुछ इसी खेलमें सीख लेती थीं और जब ब्याही जाकर अपने पतिके घर जाती थीं, तब खेलके मारे अनुभव वास्तविक तरहसे बरतने लगती थीं। वे न केवल बुद्धिमती मातायें ही बनती थीं बल्कि उनके शिष्टाचार और मातृसम्बन्धी बरतावका उदाहरण आज कठिनतासे नवशिक्षिता लड़कियोंमें मिलेगा। सम्भव है कि हमारे इस रिमार्कसे चिढ़कर लोग बुरा परिणाम निकालें; मगर हम कहे बिना नहीं रह सकते कि आधुनिक शिक्षा अपनी मानी हुई खास बरकतोंके रहते हुए भी इस आवश्यकीय शिक्षाकी पूर्णतामें बुरी तरहसे असफल हो रही है और असफल रहेगी। हिन्दुओंमें यूरोपका अनुकरण करनेका रोग जितना ही बढ़ता जायगा, उतनी ही हिन्दूपनकी असली खूबियाँ दूर होती हुई गृहस्थीके सच्चे सुख जो हिन्दुओंको विरासतमें मिले हुए हैं नष्ट हो जाँयगे।

शिक्षित हिन्दू प्रायः अपनी बुद्धिमानीका घमंड किया करते हैं, किन्तु सच पूछिए तो हिन्दुओंकी जातिकी रक्षा पुरुषोंने नहीं बल्कि स्त्रियोंने की है और इस प्रकारकी स्त्रियां जिनको इस मुख्य कर्त-

न्यकी शिक्षा मिलती थी वे एक काले अक्षरको भी नहीं पहचानतीं थीं। शास्त्रों और पुराणोंकी बातें सब उनको कण्ठस्थ थीं; वे खुद ही पवित्र पुस्तकें थीं। कठिन समयमें उनसे सलाह ली जाती थी। वे जानती थीं कि किस मौके पर क्या करना चाहिए। आशा है कि पढ़नेवाले हमारी बातोंको खूब समझेंगे। शोक इस बातका है कि प्राचीन हिन्दू स्त्रियोंका अब बीज नष्ट होता जा रहा है। जब तक नवीन शिक्षामें प्राचीन शिक्षाकी खूबियाँ भी सम्मिलित न की जावेंगी कदापि उन्नति नहीं होगी; बल्कि याद रहे कि एक दिन सारी जाति हाथ मल मलकर पछतायगी।

सच्ची माता कैसी होती है ?

चीनमें दो स्त्रियाँ एक लड़केके लिए लड़ रही थीं। झगड़ा इतना बढ़ा कि न्यायके लिए दोनोंको हाकिमका सहारा लेना पड़ा। प्रत्येक स्त्री बच्चेकी दावीदार थी और दोनोंकी बातें इतनी सच्ची और सप्रमाण थीं कि मजिस्ट्रेटसाहब मजिस्ट्रेटी भूल गये। वे कुछ न्याय न कर सके। अन्तमें वे अपनी पत्नीकी सम्मति लेने गये। उस समय हाकिम साहबकी स्त्री चीनके उस प्रदेशमें अत्यन्त बुद्धिमती समझी जाती थी। पड़ोसी उसका बड़ा सत्कार करते थे। उसने सब हाल सुनकर पाँच मिनिटमें उत्तर देनेको कहा। फिर कहा:—"नौकरसे इस शिशुके बराबर एक मछली पकड़वा मँगवाइए और इस बच्चेको मुझे सौंप कर इन दोनों स्त्रियोंको बाहिर निकलवा दीजिए।" ऐसा ही किया गया। इसके बाद मजिस्ट्रेटकी स्त्रीने लड़केके कपड़े उतारकर मछलीको पहिना दिये और फिर

एक नौकरसे कहाः—"जाओ, दोनों स्त्रियोंके सामने इसको दरियामें फैंक दो।"

नौकरने आज्ञाका पालन किया। मछली कपड़ोंके कारण तड़फड़ाने लगी। उन दोनों दावीदार स्त्रियोंमेंसे एक तो चुपचाप बैठी देखती रही किन्तु दूसरी जोरसे चिल्लाकर बच्चेको डूबनेसे बचानेके लिए पानीमें कूद पड़ी।

मजिस्ट्रेटकी स्त्रीने कहाः—"देखो, यह इस लड़केकी माता है, अब इसे डूबनेसे बचाओ।" मजिस्ट्रेटने अपनी पत्नीकी बुद्धिमत्ताकी बहुत प्रशंसा की। इतनेमें झूटी मा वहाँसे खिसक गई। मजिस्ट्रेटकी स्त्री लड़केको कपड़े पहिनानेमें लगी हुई थी उसने उस तरफ ध्यान नहीं दिया। जबतक उसने बच्चेको सुन्दर रेशमी कपड़े पहिनाये तबतक उसकी मा भी आगई। उसने लड़केको उसे सौंप दिया। वह आशीर्वाद देती हुई अपने घर चली गई।

श्रेष्ठ पत्नी।

वे पति प्रायः कष्ट उठाते हैं जो अपनी स्त्रियोंसे घृणा करते हैं। अफसोस! यदि उनमें इतनी बुद्धि होती कि वे अपनी पत्नियोंकी प्रेमभरी बातें सुन सकते तो वे कदापि बरबाद नहीं होते। प्रकृतिने स्त्रीको मनुष्यसे जियादा बुद्धिमती जियादा दीर्घदर्शिनी और जियादा प्रेमवाली बनाया है। उसकी सूक्ष्म दृष्टिको मनुष्य कभी नहीं पहुँच सकते। हे स्वच्छता और पवित्रतावाली सशरीर मूर्ति, तू सचमुच ही संसारमें पूजा करने व सन्मान देने योग्य है। यदि तू न होती तो संसारकी क्या दशा होती? घृणा, अपवित्रता, पशुत्व

और नीच विषयवासनाओंके चमत्कार ही जहाँ तहाँ दिखाई देते। तू सचमुच ऐसी देवी है जो समाजके चालचलन व रीतिरिवाजोंमें सहूलियत, नम्रता, विनय, सुन्दरता और पवित्रता पैदा करती रहती है। पुरुष क्रोधकी दशामें एक फाड़ खानेवाला जानवर बन जाता है; किन्तु जहाँ भरोसा और होशियारी सिखानेवाली प्रेमसे भरी हुई आवाज़ उसके कानमें पड़ती है वह तत्काल ही सँभल जाता है। पुरुष लाख यह सोच लें कि हम स्त्रियोंकी बात न मानेंगे; मगर स्त्रियोंका दीर्घदर्शी मस्तक कोई न कोई ऐसी नई बात निकालता है जिसे उन्हें मानना ही पड़ता है। स्त्रियाँ पुरुषोंसे जियादा बुद्धिमती होती हैं। इसमें किसीको संदेह नहीं होगा। कौन ऐसा पुरुष है जिसको कभी न कभी अपनी पत्नीके सामने किसी कमजोरी या भूलके लिए झेंपना न पड़ा हो। पुरुषने जितने उत्तम उत्तम काम किये हैं उनमें विशेष कर उसकी स्त्रीकी सम्मतिका परिणाम समझना चाहिए। कोई माने या न माने किन्तु स्त्री संसारकी सबसे शक्तिशाली शिष्टाचारकी शिक्षक है। कभी माता बनकर वह बच्चेके हृदय व मस्तकमें भावी उन्नतिका बीज बोती है, कभी बहिन बनकर भाईके हवाई विचारोंमें बाधा पहुँचाती है, कभी पत्नीके रूपमें घरको स्वर्गधाम बनाती हुई पतिको धर्ममार्ग पर चलाती है, और कभी पुत्रीकी सूरतमें अपनी मधुर व सादगीकी बातोंसे पिताका चित्त प्रसन्न रखती है। कुँवारे पुरुष जन्मभर परिश्रम करते करते और नाक रगड़ते रगड़ते मर जाते हैं; मगर फिर भी गरीबके गरीब और कंगालके कंगाल ही बने रहते हैं। क्योंकि बचत करनेवाली स्त्री उनके साथ नहीं रहती।

जहाँ कहीं तुम बेपरवा, बदहैसियत और हृदय व बुद्धिसे हीन मनुष्यको देखो, समझ लो उसको स्त्रीका साथ नहीं मिला, या वह अपनी मूर्खतासे स्त्रीकी बात नहीं सुनता। स्त्रियोंके नेत्र बहुत तेज, चित्त बहुत विस्तृत और मस्तक बहुत सोचनेवाला होता है। चालाकसे चालाक पुरुष भी स्त्रीकी तीव्र बुद्धिमत्ता पर विजय नहीं पा सकता। जो पुरुष अपनी पत्नीकी सलाह लेता रहेगा वह कदापि आपदाओंका शिकार न बनेगा।*

कृष्णलाल वर्मा।

विविध प्रसंग।

१ बम्बईमें महावीर जयन्ती।

चैत सुदी १३ अन्तिम तीर्थंकर भगवान् महावीरके जन्मका दिवस है। हर्षका विषय है कि कुछ उत्साही सज्जनोंने हमारे इस प्राचीन पर्वको नये ढंगसे संस्कारित करके मनाना शुरू कर दिया है। और अब इसे 'महावीरजन्मकल्याणक' के स्थानमें 'महावीर जयन्ती' नाम दे दिया गया है। बम्बईमें यह पर्व दो स्थानोंमें खूब ठाटबाटके साथ मनाया गया—एक तो हीराबागके व्याख्यान-

*लाला शिवव्रतलाल एम. ए. की एक स्त्रीशिक्षा-सम्बन्धी उर्दू पुस्तककी भूमिकाका अनुवाद।

मन्दिरमें स्थानकभाइयोंकी ओरसे और दूसरा खारक बाजार मांडवी-में श्वेताम्बर भाइयोंकी ओरसे। पहली सभामें लगभग ९०० और दूसरीमें लगभग ढाई हजार पुरुषस्त्री उपस्थित थे। सुप्रसिद्ध वक्ता पं० लालन, सेठ मनसुखलाल रवजी भाई मेहता, मि० मोहनलालजी देसाई बी. ए. एल एल. बी, पं० उदयलालजी काशलीवाल आदि कई सज्जनोंके मार्मिक व्याख्यान हुए। इन व्याख्यानोंसे मालूम हुआ कि यह पर्व कितने महत्त्वका है और इसको नये रूपमें प्रचलित करनेसे जैनसमाजको कितना लाभ पहुँच सकता है। सचमुच ही भगवान्का जीवनचरित और उनका गुणानुवाद हम लोगोंके कर्तव्यविमुख हृदयोंमें एक नई शक्ति फूँक देनेकी शक्ति रखता है। इन दोनों सभाओंमें सबसे अधिक ध्यान आकर्षित करनेकी बात यह थी कि तीनों—दिगम्बर—श्वेताम्बर—स्थानकवासी सम्प्रदायके भाइयोंको आमंत्रण दिया गया था और तीनों ही सम्प्रदायके वक्ताओंके व्याख्यान दिलानेका प्रबन्ध किया गया था। क्या ही अच्छा हो यदि अन्यत्रके भाई भी इस ओर ध्यान दें और इस पर्वको एक सम्मिलित पर्व बनानेका यत्न करें। इससे बहुत बड़ा लाभ होगा। तीनों सम्प्रदायके अनुयायियोंमें पारस्परिक सहानुभूति बढ़ेगी। लोग एक साथ काम करना सीखेंगे और अपनी सम्मिलित शक्तिकी विशेषताका भी अनुभव कर सकेंगे। जब तीनों ही सम्प्रदाय भगवान् महावीरके अनुयायी हैं, और तीनों ही उन्हें अपना आदर्श महात्मा मानते हैं, तब कोई कारण नहीं कि उनका जन्मोत्सव तीनों एक साथ मिलकर न कर सकें। यह ठीक है कि तीनों सम्प्रदायके अनु-

यायी भगवान् महावीरके कुछ खास खास उपदेशोंके विषयमें तथा उनके चरितके विषयमें मतभेद रखते हैं; परन्तु इस बातको सब ही मानते हैं कि वे अहिंसा धर्मके प्रवर्तक थे, लक्षावधि जीवोंको उन्होंने सुमार्ग दिखलाया था, वे सर्वज्ञ थे, उनका चरित आदर्श था, उन्होंने घोर तपस्या करके योग्यता सम्पादन की थी और सारा जीवन दूसरोंके कल्याणमें ही विताया था। तब यदि इन्हीं सर्व-सम्मत महान् गुणोंको लेकर ही हम उनका एक साथ स्मरण करें तो अच्छी तरह कर सकते हैं। बल्कि यदि हममें विचारसहिष्णुता-की मात्रा थोड़ी सी भी बढ़ जावे तो एक ही स्थानमें हम अपने अपने सम्प्रदायकी विशेष विशेष मतभेदकी बातोंको भी प्रसन्नतापूर्वक कह सकते हैं और अपने अपने विश्वासोंकी अच्छी तरह रक्षा कर सकते हैं। बम्बईकी इन सभाओंमें भी ऐसा ही हुआ। वक्ताओंने भगवान्के चरितको अपने अपने साम्प्रदायिक विश्वासोंके अनुसार ही कहा और उसे श्रोताओंने शान्तचित्तसे सुना। जैनसमाजके भवि-ष्यके ये बहुत अच्छे लक्षण प्रतीत होते हैं।

२ एक शिकायत।

मांडवीकी ' महावीर जयन्ती ' के विषयमें हमारी एक शिकायत है और वह यह है कि उसमें जितना प्रयत्न बाहरी ठाटबाट दिखानेके लिए किया गया था उतना उसे लाभदायक बनानेके लिए नहीं किया गया। पं० लालन, मि० मनसुखलाल रवजी भाई और एक किसी सज्जनके व्याख्यानको छोड़कर शेष जितने व्याख्यान हुए वे किसी कामके न थे। दश दश मिनिटके

८-१० व्याख्यानाओंकी जगह दो तीन अच्छे विद्वानोंके व्याख्यान होते तो बहुत लाभ होता। बम्बईमें श्वेताम्बरसम्प्रदायके बीसों बी. ए., एम. ए., वकील, बैरिस्टर, डाक्टर आदि हैं; परन्तु इस उत्सवमें इने गिने विद्वान् ही एकत्र हुए थे। शिक्षितोंका ध्यान ऐसे जीवनप्रद कार्योंकी ओर न होना बड़े ही खेदकी बात है। हम आशा करते हैं आगामी वर्षमें जयन्तीके प्रबन्धकर्ता इस ओर ध्यान देंगे और शिक्षितमण्डली भी इस जातीय पर्वको प्रभावशाली बनानेमें सहायक बनेगी। शिक्षितोंकी शिक्षा यदि जनसाधारणके काममें न आई तो उसका होना न होना बराबर है।

३ एक विचारणीय प्रस्ताव।

श्रीयुक्त मनसुखलाल रवजी भाई मेहता जो कुछ वर्ष पहले 'सनातन जैन' नामक मासिक पत्रका सम्पादन करते थे अच्छे प्रतिभाशाली विद्वान् हैं। उन्होंने अपने व्याख्यानमें एक बहुत ही विचारणीय बात कही। अपने कई वर्षोंके अनुभव और विचारसे जैनसमाजकी बाहरी और भीतरी परिस्थितियोंका निरीक्षण करके उन्होंने यह निश्चय किया है कि इस समय जैनसमाज जिस मार्ग पर चला जा रहा है यदि उसी मार्ग पर चलता रहा, उसमें कोई उचित परिवर्तन नहीं हुआ—बीचमें कोई ऐसी महान् शक्तिका आविर्भाव न हो गया जैसी कि महात्मा विवेकानन्द और रामतीर्थ आदिमें थी और उसने हमारे लिए कोई देशकालानुरूप नई राह न पकड़ाई तो ऐसा मालूम पड़ता है कि सिर्फ १०० सौ वर्षके ही भीतर जैनसमाजका लोप हो जायगा—यह जैनधर्मको धारण करनेवाला प्राचीन समाज केवल इतिहासके पत्रों पर लिखा रह जायगा।

अपने इस विचारके प्रमाणमें उन्होंने कई कारण बतलाये और बड़ी ही नम्रतासे कहा कि समाजके विद्वानोंको इस प्रश्न पर गंभीरताके साथ विचार करना चाहिए। उनका विश्वास है कि जब तक उच्चश्रेणीकी शिक्षा पाये हुए युवकोंकी धर्मश्रद्धा कायम रखनेका कोई बड़ा भारी प्रयत्न न किया जायगा, धर्मतत्त्वोंके जाननेवाले ऐसे बड़े बड़े विद्वान् तैयार न किये जावेंगे जो कि प्राच्य और पाश्चात्य संस्कृतियोंसे अच्छी तरहसे परिचित हों और सामाजिक रीतिरवाजोंमें समयानुकूल परिवर्तन न किये जावेंगे तब तक हमारी यह आसन्न मृत्यु नहीं रुक सकती। पर दुःख है कि हमारा इस ओर जरा भी ध्यान नहीं। हमारे धर्मादाय खातोंमें इस समय लगभग २ करोड़ रुपया जमा पड़ा है. क्या उसका उपयोग हम अपनी रक्षाके लिए नहीं कर सकते हैं? जैनसमाजको आज लोग जानते हैं, इसका कारण उसका उदार धर्म नहीं है किन्तु व्यापार और धन है। धार्मिक और सामाजिक दृष्टिसे वह एक बहुत ही नगण्य समाज है। इसी विषयके सम्बन्धमें पं० लालनने अपने व्याख्यानमें गहरी चुटकी लेते हुए कहा कि जैनसमाजमें नये लोग तो शामिल नहीं हो सकते हैं; परन्तु हाँ, उसमेंसे निकालकर बाहर किये जा सकते हैं। जातिमेंसे खारिज करनेकी और संघबाह्य कर देनेकी पद्धति तो जारी ही है! समय थोड़ा दिया गया था, इस लिए मि० मनसुखभाई अपने प्रस्तावको पल्लवित करके न बतला सके। हमको आशा है कि वे अपने विचार एक निबन्धके रूपमें प्रकाशित करेंगे और जैनसमाजको इस आसन्नमृत्युसे बचनेके

उपाय भी बतलावेंगे। और और विद्वानोंको भी इस विषयमें विचार करना चाहिए।

४ जयन्तीमें सेठीजीका प्रस्ताव।

बम्बईकी महावीर जयन्तीमें एक महत्त्वकी बात यह हुई कि पं० अर्जुनलालजी सेठी बी. ए. के विषयमें एक प्रस्ताव उपस्थित किया गया और वह सर्वानुमतसे पास किया गया। इन पंक्तियोंके लेखकने सेठीजीका परिचय कराया और जैनसमाजका उनके प्रति जो कर्तव्य है उसका स्मरण कराया। कहा कि महावीर भगवानके शासनकी रक्षा करनेके लिए यह आवश्यक है कि कुछ शासनसेवक ऐसे तैयार किये जावें जो 'सर्वेंट्स सोसाइटी आफ् इंडिया' के मेम्बरोंकी तरह सेवाव्रतको ग्रहण करें। सेठीजीका जीवन बिलकुल सेवामय था। अब यदि हमें वीरशासनसेवकसमितिकी स्थापना करना है तो चाहिए कि सेठीजीको इस दुःखसे मुक्त कराकर अपना धर्मवात्सल्य प्रकट करें। यदि हम ऐसा न कर सकें तो हमें यह आशा भी कदापि न रखना चाहिए कि आगे शिक्षित पुरुष हमारे धर्म और समाजकी सेवाके लिए तैयार हो सकेंगे। सभापति महाशय पं० लालनने इस विषयमें एक अच्छी ओजस्विनी वक्तृता दी और यह प्रस्ताव पास किया कि सेठीजीके कुटुम्बके प्रति सहानुभूति प्रकट की जाय और वायसराय साहबकी सेवामें प्रार्थना की जाय कि यदि सेठीजी निरपराध हैं तो छोड़ दिये जायँ; नहीं तो उनके ऊपर मुकद्दमा चलाया जाय। देखते हैं कि सेठीजीके विषयमें जैनसमाजका ध्यान अधिकाधिक आकर्षित होता जाता है। ये बड़े ही

अच्छे लक्षण हैं कि हमारे सभी सम्प्रदायके भाई सम्प्रदायभेदको भूलकर सेठीजीके प्रति सहानुभूति प्रकट कर रहे हैं। इस सभासे हमें यह अनुभव हुआ है कि श्वेताम्बर और स्थानकवासी समाजमें अधिकांश लोग न सेठीजीसे परिचित हैं और न उनका महत्त्व जानते हैं। यदि उनको परिचय देनेका प्रयत्न किया जाय तो उनमें इस आन्दोलनका जोर बहुत बढ़ सकता है।

५ पद्मावतीपुरवाल जातिकी मनुष्य-गणना और उत्पत्ति।

जैनसमाजकी अनेक जातियोंमेंसे एक 'पद्मावतीपुरवाल' नामकी भी जाति है। विशेष करके यू. पी. के आगरा, एटा और मैनपुरीके जिलोंमें इस जातिके लोगोंकी बस्ती है। भोपालके आसपास तथा सी. पी. के वर्धा जिलेमें भी कुछ पद्मावती पुरवाल रहते हैं; परन्तु प्रान्तभेद होनेके कारण इनका परस्पर विवाहसम्बन्ध नहीं होता है। अभी कुछ समय पहले वर्धावालोंके साथ कुछ लोगोंने सम्बन्ध करनेका प्रारंभ किया था; परन्तु मालूम नहीं वह आगे चला या नहीं। इस जातिके कुछ शिक्षित पुरुषोंने 'पद्मावती-परिषत्' नामकी एक सभा स्थापित की है। परिषत्के मंत्री पं० गौरीलालजीने अभी हाल ही एक छोटीसी पुस्तिकाको प्रकाशित किया है जिससे इस जातिकी उत्पत्ति आदिके सम्बन्धमें बहुतसी जानने योग्य बातोंका पता लगता है। सबसे अच्छा काम तो यह हुआ है कि परिषत्ने अपनी जातिके स्त्रीपुरुषोंकी गणना कर डाली है और उसकी एक ग्रामवार सूची दे दी है। दक्षिणके भोपालके तथा दूसरे

थोड़ेसे ग्रामोंकी गणना नहीं हो सकी है जो शायद आगामी रिपो-टमें प्रकाशित की जायगी। २४३ गाँवोंकी गणना हो चुकी है। उसके अनुसार सारी जातिके १६१० घर हैं जिनमें ३९५२ पुरुष और ३१८२ स्त्रियाँ हैं। अर्थात् स्त्रियोंकी संख्या एक तो यों ही ७७० कम है और जो है उसमें भी ७७२ विधवायें हैं। मंत्री महाशयने विधुर और अविवाहित पुरुषोंकी संख्या भी प्रकाशित की होती तो अच्छा होता। उससे इस जातिके जातीय स्वास्थ्यके विषयमें बहुत कुछ कहा जा सकता। तो भी स्त्रियोंकी न्यून संख्या तथा विधवाओंकी संख्यासे यह बात तो निःशंक होकर कही जा सकती है कि जातिकी दशा अच्छी नहीं है। जिस जातिमें चार स्त्रियोंके पीछे एक स्त्री विधवा है और पुरुषोंकी अपेक्षा स्त्रियोंकी संख्या २० फी सदी कम है उसकी दशाका अनुमान प्रत्येक बुद्धिमान् कर सकता है। पुरुषोंमें पढ़े लिखे २४९१ और निरक्षर १४६१ हैं। स्त्रियोंमें सिर्फ २०७ पढ़ी लिखी हैं। अवश्य ही यह पढ़े लिखे पुरुषोंकी संख्या कुछ अच्छी जान पड़ती है; परन्तु हमें यह न भूल जाना चाहिए कि पढ़े लिखोंमें वे लोग भी शामिल कर लिये जाते हैं जो कठिनाईसे अपना नाम ग्राम लिखना ही जानते हैं। स्त्रीशिक्षाका प्रचार बहुत कम है। परिषत्को चाहिए कि वह जातिको जीती रखनेके लिए तथा शिक्षाका प्रचार करनेके लिए कुछ विशेष प्रयत्न करे। इस विषयमें इतना विस्तारसे लिखनेका कारण यह है कि हमारी और और जातियाँ भी अपनी अपनी सभायें स्थापित करें और उनकी रिपोर्टोंमें अधिक नहीं तो कमसे कम अपनी समूची जातिकी मनुष्य

गणना करके तो अवश्य प्रकाशित किया करें। इससे बहुत लाभ होगा और मालूम होता रहेगा कि हमारी अमुक जाति नाशकी ओर अग्रसर हो रही है या बढ़ रही है। जबतक प्रत्येक जाति अपने अपने जीवनमरणके हर्ष शोकका अनुभव न करने लगेगी तबतक हज़ार चिल्लाने पर भी हमारे समाजका दिनों दिन बढ़नेवाला क्षय आराम नहीं हो सकता। यह पुस्तक " पं० बंशीधरजी शास्त्री, जैनपाठशाला, शोलापुर' को पत्र लिखनेसे मिल सकती है।

६ श्वेताम्बरसम्प्रदायकी एक और पुस्तक-प्रकाशिका संस्था।

अपने पवित्र ग्रन्थोंका उद्धार करने तथा प्रकाशित करनेकी ओर श्वेताम्बर सम्प्रदायका ध्यान विशेषताके साथ आकर्षित हुआ है। अभी थोड़े समय पहले हम अहमदाबादकी 'जैनागमप्रकाशक सभा' के विषयमें लिख चुके हैं जिसका काम २५ हजारकी पूँजीसे जारी हो चुका है और जो समस्त श्वेताम्बर सूत्रोंको गुजराती-टीकासहित प्रकाशित करेगी—इसका पहला ग्रन्थ प्रेसमें जा चुका है। उसके सिवाय अब म्हेसाणामें एक 'आगमोदय समिति' नामकी संस्था और भी स्थापित हुई है। इसकी ओरसे सूत्रग्रन्थ संस्कृतटीकाओं सहित प्रकाशित होंगे और अनेक साधु विद्वानोंकी देखरेखमें उनका संशोधन और सम्पादन होगा। प्रत्येक ग्रन्थकी पाँचसौ प्रतियाँ छपवाई जावेंगी और साधुओंको बिना मूल्य भेटमें देने बाद जो शेष रहेंगी वे लागतसे आधे दामोंमें बेची जावेंगी। सम्पूर्ण ग्रन्थोंकी छपाई आदिका खर्च लगभग ५० हजार रुपया

कूता गया है जिसमेंसे लगभग ३९ हजार रुपया उदार धर्मात्माओंकी ओरसे मिलना स्वीकृत हो चुका है । क्या हमारे दिगम्बरी भाई कभी अपने इन पड़ोसियोंकी कर्तव्यपरायणताकी ओर भी दृष्टि डालेंगे ? क्या वे भी कभी ऐसी संस्था स्थापित करनेके लिए समर्थ हो सकेंगे जो सब नहीं तो कमसे कम अपने बड़े बड़े और प्रसिद्ध प्रसिद्ध ग्रन्थोंको ही एकबार छपाकर सुलभ कर दे सकें। यदि हमारे मन्दिरप्रतिष्ठायें करानेवाले भाई सिर्फ एक ही वर्षके लिए अपने रुपयोंके प्रवाहकी गति बदल दें तो ऐसी एक नहीं अनेक पुस्तकप्रकाशिनी संस्थायें स्थापित हो सकती हैं और जैनधर्मकी जो प्रभावना लाखों मन्दिरप्रतिष्ठाओंके करानेसे न होगी वह ऐसी एक ही संस्थासे हो सकती है ।

७ जैनसिद्धान्तभास्करका नया अंक ।

'भास्कर' का नया अंक निकल गया । जून सन् १९१३ का अंक अप्रैल सन् १९१५ के प्रारंभमें निकला; परन्तु बड़ी बात यह है कि निकल गया—लोगोंको निराश न होना पड़ा । यह डीलडौलमें पिछले दोनों अंकोंसे बड़ा है; कागज भी पहलेसे अच्छा लगाया गया है । लेखादि प्रायः पहलेके ही लेखोंके समान हैं; । यदि विशेषता है तो दो बातोंमें है । एक तो यह कि उसने ऐतिहासिक क्षेत्रकी सीमाका उल्लंघन करके, साहित्य—समालोचनाके बहानेसे जबर्दस्ती सामाजिक क्षेत्रमें पैर बढ़ा दिये हैं और कुछ सज्जनों पर बहुत ही बुरी तरहसे आक्रमण किया है । दूसरी बात यह है कि उसके सम्पादक महाशयका मस्तक आसमान पर जा टिका है; वे

ओरोंको बहुत ही तुच्छ दृष्टिसे देखने लगे हैं । एक जगह इन पंक्तियोंके लेखकको उद्देश्य करके लिखा है—" भवन या भास्करने कोई ऐतिहासिक पाठशाला तो खोली ही नहीं है कि जो इतिहासकी वर्णमालासे लेकर आपको जिनसेन स्वामीकी समालोचना तक पढ़ाकर तैयार करै । " एक स्थानमें और भी लिखा है कि " पहले थोड़ी बहुत इतिहासकी शिक्षा लीजिए जिससे कि इतिहासपत्रसम्पादकोंको आपको ऐतिहासिक बातें बतानेके लिये किंडरगार्डनकी आवश्यकता न पड़े ।" लेखोंमें जहाँ तहाँसे इस तरहकी गर्वोक्तियाँ टपकी पड़ती हैं । ऐसा मालूम होता है कि सेठ पदमराजजी इस अभिनव सम्पादकताके अभिमानमें अपने आपको यहाँतक भूल गये हैं कि इस किरायेकी पोशाकको अपनी घरू चीजसे भी बढ़कर समझने लगे हैं और स्वयं काचके महलमें रहकर दूसरोंके मकानों पर ईंटें फेंकनेका साहस कर बैठे हैं । भास्करके विषयमें हम इस समय कुछ भी न लिखना चाहते थे । क्योंकि इसके हम हृदयसे शुभचिन्तक हैं । जैनसमाजके लिए इससे हम बहुत बड़ी बड़ी आशायें रखते थे । परन्तु सेठ पदमराजजीके असह्य अभिमानने हमारी आशाओं पर पानी फेर दिया और हमें लाचार कर दिया कि हम ' भास्कर ' के वास्तविक स्वरूपको सर्व साधारणके सामने उपस्थित करें—बतला देवें कि उसके ' भयंकर घटाटोप ' के भीतर इतिहासज्ञता कितनी है । भास्करकी समालोचना आगामी अंकसे प्रकाशित होने लगेगी और कई अंकोंतक जारी रहेगी । उसमें क्रमसे चारों अंकोंकी आलोचना की जायगी । आशा है कि उससे

हमारे सेठजीकी इतिहासज्ञताका पारा कुछ नीचे उतर आवेगा और वे ध्यान देकर इतिहासका अध्ययन करने लगेंगे।

८ जैनसिद्धान्तभवन आराके विषयमें कुछ निवेदन।

आराके जैनसिद्धान्तभवनको स्थापित हुए लगभग चार वर्ष हो गये। जैनसमाजके प्रायः सभी पत्रोंमें इसकी प्रशंसाके गीत निकल चुके हैं और बराबर निकलते रहते हैं। कुछ सज्जनोंको तो मौके बैमोके भवनकी प्रशंसा करनेका स्वभाव ही पड़ गया है; परन्तु अभीतक यह मालूम न हुआ कि भवनमें क्या काम हो रहा है और जैन-समाज उससे क्या लाभ उठा रहा है। तीन वर्षसे अधिक समय हुआ जब उसकी एक रिपोर्ट निकली थी जिसमें यह आशा दिलाई गई थी कि भवनमें जितने ग्रन्थ संगृहीत हैं उनकी एक विस्तृत सूची शीघ्र ही प्रकाशित की जायगी; परन्तु उसके दर्शन अब तक न हुए। और तो क्या, सुनते हैं कि भवनमें समस्त ग्रन्थोंकी पूरी हस्तलिखित सूची भी तैयार नहीं है। इस बातको सभी जानते हैं कि जबतक किसी पुस्तकालयकी सूची न हो—यह मालूम न हो कि उसमें कौन कौनसे ग्रन्थ किस किस आचार्यके बनाये हुए हैं तबतक उन ग्रन्थोंसे सर्व साधारणको कोई लाभ नहीं पहुँच सकता। वे पुस्तकालयकी शोभा बढ़ानेके सिवाय और किसी भी काममें नहीं आ सकते हैं। आप किसी भी महत्त्वके ग्रन्थके विषयमें पूछिए भवनसे यह उत्तर मिलेगा कि अभीतक सूची तैयार नहीं हुई है, इस लिए हम उक्त ग्रन्थके विषयमें आपको संतोषयोग्य उत्तर नहीं दे सकते। हम यह पूछते हैं कि जब भव-

सके कार्यकर्त्ता अपने मुख्य कर्तव्यका पालन नहीं कर रहे हैं—
जो काम सबसे पहले करना चाहिए उसे नहीं कर रहे हैं तब
जैनसमाजको यह दोष क्यों दिया जा रहा है कि वह भवनको
धनकी सहायता नहीं देता? पहले आप काम करके तो दिखला-
इए; रुपया तो बिना माँगा मिलेगा । भवनका एक और अनोखा
नियम यह है कि यदि कोई उसके यहाँसे किसी ग्रन्थकी नकल
कराके मँगवाना चाहे तो उसे उस ग्रन्थकी दो नकलें करवाना
होंगी जिनमेंसे एक उसे दी जायगी और एक भवनमें रक्खी
जायगी । अर्थात् ग्रन्थ लिखवानेवालेको एक ग्रन्थकी लिखाईकी
जगह दो ग्रन्थोंकी लिखाई देनी होगी । हम इसे बहुत आवश्यक
समझते हैं कि जो भाई भवनमें ग्रन्थ लिखवाकर मँगवावें वे उसे
सहायता भी देवें; परन्तु इस तरहका नियम सर्वथा अनुचित है कि
लोग दूनी लिखवाई देनेके लिए मजबूर किये जावें । सरकारी
लायब्रेरियोंमें भी ऐसे कड़े नियम नहीं हैं । दक्कन कालेज
पूनाकी लायब्रेरीसे अथवा मद्रास ओरियंटल लायब्रेरीसे आप
कोई ग्रन्थ मँगवाइए, वह उतनी ही लिखवाई लेकर लिखवा
दिया जायगा जितनी लिखवाई उसमें लगी होगी । और थोड़ी
देरके लिए ऐसा ही मान लीजिए कि सरकारी लायब्रेरियोंमें
अधिक दाम देना पड़ते हैं, अथवा उनके नियम कड़े हैं, तो भी
क्या यह आवश्यक नहीं है कि हम अपने समाजके फायदेका
खयाल रखकर बहुत ही सहज नियम बनावें । और इसमें भवनकी
कुछ हानि भी तो नहीं है—जितनेमें जो ग्रन्थ लिखा जावे उतने-

में ही अथवा आवश्यकता हो तो उससे दश पाँच रुपये सैकड़े अधिक लिखवाई लेकर भेज देनेमें लोगोंको लाभ होकर भी भवनको कोई घाटा नहीं रहेगा। गतवर्ष बम्बईके पंचायती मन्दिरके लिए ५००) रुपयेके ग्रन्थ लिखा देनेकी भवनके मंत्री महाशयसे प्रार्थना की गई थी और यह लिखा गया था कि ये ग्रन्थ यहाँके सरस्वतीभंडारके लिए आवश्यक हैं इस लिए जो लिखवाई लगे वही लेकर लिखवा दीजिए। परन्तु उत्तर मिला कि "नहीं, भवनका यह नियम नहीं है; आपको दूनी लिखाई देनी पड़ेगी।" इसके बाद बहुत कुछ लिखा पढ़ी की गई; परन्तु कुछ फल न हुआ और अन्तमें यहाँका सरस्वतीभंडार ग्रन्थोंसे वंचित रहा। हमारी समझमें जब तक यह नियम रद न किया जायगा तब तक बाहरके लोग भवनसे बहुत ही कम लाभ उठा सकेंगे। भवनके कार्य-कर्त्ताओंको सबसे अधिक ख़याल लोगोंके लाभ पहुँचाने पर रखना चाहिए। एक शिकायत यह है कि भवनसे पत्रोंके उत्तर समय पर नहीं मिलते; भवनके मंत्री नियमोंमें तो होड़ करते हैं सरकारी लाय-ब्रेरियोंकी; परन्तु पत्रोंका उत्तर देते हैं महीनोंमें। मालूम होता है कि भवनमें न तो कोई अच्छा काम करनेवाला है और न लेख-कोंका ही कोई प्रबन्ध है। यही कारण है जो चार वर्षके भीतर उसकी एक भी रिपोर्ट प्रकाशित नहीं हुई है। जो संस्था अपने कामकी रिपोर्ट भी समय पर नहीं प्रकाशित कर सकती है उसके विषयमें सिवाय इसके लोग और ख़याल कर सकते हैं कि कुछ काम नहीं हो रहा है अथवा अच्छे काम करनेवाले नहीं हैं। केवल यह कह

देनेसे काम नहीं चल सकता कि यह बहुत बड़ा कठिन काम है, बहुत ही परिश्रमसाध्य है, बड़े बड़े विद्वानोंकी ज़रूरत है, हमारे पास बहुत अधिक सामग्री एकट्ठी हो गई है, इत्यादि । लोग काम देखना चाहते हैं, केवल समाचारत्रोंकी प्रशंसासे उन्हें सन्तोष नहीं हो सकता है । भवनकी उन्नति सबहीको अभीष्ट है; परन्तु वह होगी तभी जब उसके संचालक अपना उत्तरदायित्व समझेंगे और उसका ख़याल रखकर कुछ काम करके दिखलायँगे ।

अबके 'भास्कर' में मंत्री महाशयने भवनके मकानके लिए एक अपील की है और इस कार्यमें ५० हज़ार रुपयाकी आवश्यकता बतलाई है । इस विषयमें हमारी प्रार्थना यह है कि अभी मकानकी उतनी आवश्यकता नहीं है जितनी भवनको सुव्यवस्थित और लाभदायक बनानेकी है—तब तक किरायेके मकानसे भी काम निकाला जा सकता है । इसके सिवाय जहाँतक हमें मालूम है, स्वर्गीय बाबू देवकुमारजीकी इच्छा 'भवन' को काशीमें स्थापित करनेकी थी न कि आरामें । सुनते तो यहाँ तक हैं कि इसके लिए उन्होंने बनारसमें ज़मीनका भी प्रबन्ध कर लिया था । इसलिए यदि मकानकी आवश्यकता हो तो वह आरामें नहीं किन्तु बनारसमें बनवाया जाय । क्योंकि एक तो बाबूसाहबकी यह इच्छा थी उसको पूर्ण करना सबका कर्तव्य है और दूसरे भवनसे जो लाभ काशीमें होगा वह आरामें नहीं हो सकता । भवनके योग्य स्थान काशी ही है; वहाँ सब देशोंके विद्वान् आते जाते रहते हैं और संस्कृतका तो वह विद्यापीठ है । हमें आशा है कि भव-

नके कार्यकर्त्ता इन सब बातों पर विचार करेंगे और उसे जैसे बने तैसे एक सर्वोपकारिणी सुव्यवस्थित संस्था बनानेका प्रयत्न करेंगे।

९ पं० लक्ष्मीचन्दजीकी व्याख्यानशैली।

सहयोगी 'जैनमित्र' और 'जैनतत्त्वप्रकाशक' ने लश्कर-निवासी पं० लक्ष्मीचन्दजीकी व्याख्यानशैली पर कुछ कटाक्ष किये हैं। इस तरहके कटाक्ष और भी अनेक शिक्षितोंके मुँहसे हमें सुन पड़ते हैं। समालोचकोंकी राय प्रायः जुदा जुदा होती है; परन्तु उनके विषयमें सभी समालोचकोंका एक मत है। सभी कहते हैं कि उनके व्याख्यानोंमें समाजको कोई लाभ नहीं होता है: वे प्रगतिके विरोधी हैं, समाजको जहाँका तहाँ स्थिर रखके केवल अपनी प्रशंसा चाहते हैं। परन्तु हमारी समझमें जब ये समालोचक महाशय अपनी राय प्रकाशित करते हैं; तब आपको उस जैनसमाजसे बिल्कुल जुदा समझ लेते हैं जिसमें पं० लक्ष्मीचन्दजी व्याख्यानवाचस्पति, विद्यासागर आदि अनेक पदवियाँ प्राप्त कर चुके हैं और जिनके व्याख्यानोंको सुनकर केवल गाँवों या कस्बोंके ही नहीं कलकत्ता देहली जैसे बड़े बड़े शहरोंके जैनभाई भी लोटपोट होकर अपना आनन्दानुभव दूसरोंको भी करानेके लिए पब्लिक सभायेंतक करानेमें आगापीछा नहीं सोचते हैं। यदि समालोचकगण इस बातको याद रक्खें तो उन्हें मालूम हो जाय कि पं० लक्ष्मीचन्दजी जिस योग्यताके वक्ता हैं जैनसमाजका अधिकांश श्रोतृवर्ग भी उससे अधीक योग्यताका नहीं है; वक्ताकी व्याख्यानशैली उसके ठीक अनुरूप है, और तब वे पं० लक्ष्मीचन्दजीकी समालोचना भूलकर

अपनी ही—अपने ही समाजकी—समालोचना करने लगें । उन्हें अपनी दशा पर दुःख हो और वे सारे समाजकी योग्यता बढ़ानेका यत्न करने लगें । यह निश्चय है कि समाजकी योग्यता ज्यों ज्यों बढ़ेगी त्यों त्यों वह ऐसे व्याख्यानोंसे अरुचि करने लगेगा और अच्छे महत्त्वपूर्ण व्याख्यानोंको सुननेके उपाय करने लगेगा ।

इस समय यदि वह सारी दुनियाके देश पहाड़ नदी नालोंके, हजारों किस्मकी तरकारियोंके, मिठाइयोंके, पकवानोंके नाम सुनकर, सारी दुनियाके लोग एक दिनमें कितना भोजन करते हैं, एक मनुष्य जीवन भरमें कितना पानी पी जाता है, बच्चेके सिरमें और मर्दकी दाढ़ी—मूँछमें कितने बाल होते हैं, आदि बातें जानकर आनन्द और आश्चर्यसे नृत्य करने लगता है तो इसमें आश्चर्य ही क्या है ! यह तो एक स्वाभाविक बात है । जिस समाजके अगुए मूर्खशिरोमणि हैं, धर्मात्मा कहलानेवाले कूपमंडूक हैं और मामूली हिसाब किताब पढ़ लेना तथा पूजापाठ सीख लेना ही जहाँ पढ़ने लिखनेकी हद है, उसमें यदि ऐसे व्याख्यानोंकी क़दर न हो तो क्या हमारे समालोचक मित्र यह समझते हैं कि तत्त्वके या उन्नतिपथदर्शक व्याख्यानोंकी क़दर होगी । वास्तवमें पूछा जाय तो ऐसे लोगोंको गूढ़ विषयोंके तथा धर्मतत्त्वोंके व्याख्यान सुनाना ही अन्याय है । क्योंकि उन्हें सुनकर वे सिवाय ऊँघनेके और कोई लाभ नहीं उठा सकते हैं । उनमें इतनी योग्यता ही नहीं है कि वे इससे अधिक गहरी बातोंको समझ सकें अथवा धारण कर सकें । उनसे प्रगतिकी आशा करना भी भ्रम है । अतएव हमारी समझमें पं०

लक्ष्मीचन्द्रजीके व्याख्यान जैनसमाजके लिए जैसे चाहिए वैसे ही हैं-उनकी निन्दा करना निरर्थक है ।

१० पण्डितपरिषत्‌में बड़ोदामहाराजका व्याख्यान ।

मार्चके पहले सप्ताहमें बड़ोदा नगरमें पण्डित परिषत्‌का अधिवेशन अच्छी धूमधामके साथ हो गया । उसके प्रारंभमें श्रीमान् सयाजीराव महाराजका एक बहुत ही महत्त्वका व्याख्यान हुआ । उन्होंने कहा—" हमारा संस्कृत साहित्य और हमारी तज्जन्य सामाजिक संस्कृति ये दोनों ही बातें हमारे लिए अभिमानकी हैं । इस विषयमें किसीको भी विवाद नहीं है; परन्तु अब समयके अनुसार संस्कृत साहित्यके अध्ययनकी पद्धतिमें परिवर्तन होना चाहिए, तुलनात्मक पद्धति और छानवीन करनेकी विवेक बुद्धिका विकाश होना चाहिए और स्वतंत्र विचारोंका तथा तारतम्य दृष्टिका फैलाव होना चाहिए । " आशा है कि हमारी पण्डितमण्डली भी महाराजा साहबके उक्त बहुमूल्य वचनों पर ध्यान देगी और अपनी पाठशालाओंकी सैकड़ों वर्ष पहलेकी शिक्षापद्धतिमें, स्वाध्यायप्रणालीमें और चर्चावार्ताकी शैलीमें थोड़ा बहुत परिवर्तन करनेकी कृपा करेगी । इसके बिना संस्कृत साहित्यके अध्ययनसे वास्तविक लाभ होना असंभव है ।

११ सेठीजीसम्बधी आन्दोलन ।

पिछले अंकके प्रकाशित होनेके बाद सेठीजीके विषयमें दो तीन प्रयत्न अच्छे और महत्त्वके हुए हैं । एक तो ता० १४ मार्चको बम्बईमें तीनों सम्प्रदायके जैनोंकी सभा । यह सभा बड़ी ही प्रभाव-

शालिनी हुई । बम्बईके प्रायः सभी शिक्षित जैन विद्वान् वकील, वैरिस्टर, डाक्टर, पण्डित आदि शामिल हुए थे और सबने एक स्वरसे सेठीजी पर जो अन्याय हो रहा है उसका निषेध किया था। यह सबसे पहले मौक़ा था जिसमें तीनों सम्प्रदायके जैन शिक्षितोंनें सम्मिलित आवाज़ उठानेका प्रयत्न किया हो। इसी तरहकी एक और सभा महावीरजयन्तीके सम्बन्धमें माण्डवी बन्दर पर हुई थी । इसमें भी तीनों सम्प्रदायके जैन भाइयोंने एकत्र होकर सेठीजीके विषयमें प्रस्ताव पास किये । इन्दौर, अहमदनगर आदि नगरोंमें भी सेठी-जीके विषयमें कुछ सभायें हुई । दूसरा प्रयत्न कलकत्तेकी जैनधर्म-प्रबोधिनी सभाका यह हुआ कि उसने एक हिन्दी मेमोरियल जय-पुर नरेशकी सेवामें भेजा है । दूसरा मेमोरियल श्रीमती गुलाबबाईकी ओरसे वायसराय साहबकी सेवामें और तीसरा बम्बईकी सम्मि-लित जैनजनताकी ओरसे महाराजा जयपुरकी सेवामें भेजा गया है। पिछले दोनों मेमोरियल अँगरेज़ीमें हैं। इस तरह अब तक तीन मेमोरियल जा चुके हैं। चौथा मेमोरियल बम्बईसे वायसराय साहबके पास शीघ्र ही भेजा जायगा । पर पिछले महीनेमें जो ये थोड़ेसे प्रयत्न हुए हैं सो क्या यथेष्ट हैं? नहीं, हमें अपनी आन्दो-लनकी गतिको और भी बढ़ाना चाहिए। प्रत्येक गवर्नमेंटके कानोंकी श्रवण शक्ति मन्द होती है; इस लिए जब तक हमारी न्याय न्या-यकी पुकारसे आसमान न गूँज उठेगा; लाखों हृदयोंसे: निकली हुई सहानुभूतिकी बिजलीसे सारे देशका वातावरण व्याप्त न हो जायगा; प्रत्येक जैन कुटुम्बमें सेठीजीकी चर्चा न होने लगगी तब तक हमारी

सरकार नहीं जान सकेगी कि सेठीजी हमारे कौन थे और उन पर एक देशी रियासतकी ओरसे जो अन्याय हो रहा है उसके रोकनेकी कितनी अवश्यकता है। प्यारे भाइयो, जागो, उठो और काममें लग जाओ। विश्वास रक्खो कि सेठीजी अवश्य छूट जायँगे। सच्चे हृदयसे किया हुआ प्रयत्न कभी निष्फल नहीं जाता।

सत्यवादीकी धार्मिकदृष्टि।

अम्भो न चेज्जलद मुञ्चसि मा विमुञ्च,
वज्रं पुनः क्षिपसि निर्दय कस्य हेतोः॥

श्रीमती गुलाबबाईके उस पत्थरको भी मोम बना देनेवाले पत्रके नीचे, मालूम नहीं कि सत्यवादीके नवीन सम्पादक पं० मूलचन्दजीसे वह नोट कैसे लगाया गया जो हृदयमें बड़ी ही गहरी वेदना उत्पन्न करता है। इससे तो यही अच्छा था कि आप उस पत्रको ही प्रकाशित न करते और अपनी अपूर्व करुणादृष्टिको भी और किसीके लिए बचाये रखते—उसका अपव्यय न होने देते। 'धार्मिकदृष्टि' और 'करुणादृष्टि' में जो भेद है हम समझते हैं कि उसका आज तक आपके सिवाय और किसीने भी इतना अच्छा स्पष्टीकरण न किया होगा। यह आपकी बिलकुल ही नई खोज है। हमारी छोटीसी समझमें तो कोई भी उदार धर्म करुणासे पृथक् नहीं हो सकता है। जो करुणा है वही धर्म है और जो

धर्म है वही करुणा है । हमारा धर्म जिसका कि हमें अभिमान है यही सिखलाता है कि प्रत्येक प्राणी पर करुणा करना, उसकी सहायता करना, उसके दुःखको अपना दुःख समझना मनुष्य मात्रका धर्म है । इस धर्मके या करुणाके करते समय यह देखनेकी जरूरत नहीं है कि जिस पर हम करुणा कर रहे हैं उसके विचार कैसे हैं, उसका मत क्या है और उसके आचरण कैसे हैं । हमारी धर्मदृष्टि पापीसे पापी दुरात्माके दुःखों पर भी उसी प्रकार पड़नी चाहिए जिस प्रकार अपने भाई बेटे जातिभाईके दुःखों पर पड़ती है । पापियों पर नहीं किन्तु पापों पर दया करनेमें पाप है । सच पूछिए तो करुणा या दया धर्मकी पापियोंके लिए ही सबसे अधिक आवश्यकता है । तुच्छसे तुच्छ जीवों पर दया करनेके लिए—उन्हें दुःखसे मुक्त करनेके लिए भगवानने उपदेश दिया है; परन्तु यह कहीं नहीं कहा है कि दया करनेके पहले उनके विश्वास कैसे हैं, उनके विचार कैसे हैं, वे सम्यग्दृष्टि हैं या मिथ्यादृष्टि हैं, इसकी जाँच कर लिया करो । जो धर्म विश्वहितैषी होनेका दावा करता है—जीवमात्रमें बन्धुसम्बन्ध जोड़नेके लिए जिसका अवतार हुआ है उसमें इस तरहकी संकीर्णताको स्थान नहीं मिल सकता । हमारे यहाँ ऐसी एक नहीं बीसों कथायें हैं जिनसे मालूम होता है कि जैनधर्मके सच्चे अनुयायियोंने चाण्डाल जैसे नीच जातिके मनुष्यों पर भी धार्मिक दृष्टि और करुणादृष्टि डाली है और उनका उद्धार किया है ।

'धार्मिक दृष्टि' से यदि पण्डितजीका यह इंगित हो कि सेठजीके

धार्मिक विचार उनके विचारोंसे नहीं मिलते हैं और संभव है कि पण्डितजी जैसे विचारोंवाले और भी सज्जन होंगे; तो भी क्या इसी विचारभेदसे वे आपकी और आपके अनुयायियोंकी धार्मिक दृष्टि प्राप्त करनेका अधिकार खो बैठे ? क्या विचारभेदोंका होना कोई पाप है ? और यदि सेठीजीके विचार आपके विचारोंसे नहीं मिलते हैं, तो इसमें उनका क्या अपराध है ? उन्होंने अपने विचार जानबूझकर केवल विरुद्धताके ही लिए तो आपसे मेल न खानेवाले बना नहीं लिये हैं ? अपने अध्ययन और मननसे उन्हें जो अच्छा जँचा है उस पर उनका विश्वास है और आपके अध्ययन मननसे आपको जो यथार्थ जँचा है उस पर आपका विश्वास है। जिसतरह यह नहीं कहा जा सकता कि उनका विश्वास ठीक होगा उसी तरह यह भी तो नहीं कहा जा सकता है कि आपका भी ठीक होगा। यदि आप विद्वान् हैं, तो वे भी एक अच्छे विद्वान हैं–उनका अध्ययन और मनन जैनधर्मके विषयमें आपसे अधिक ही होगा, कम नहीं। तब केवल आप अपने ही धार्मिक विचारोंको सर्वमान्य मानकर समझमें नहीं आता है कि सारे दिगम्बर जैनसमाजको क्यों धार्मिकरीतिसे उनके विरुद्ध बतलाते हैं। क्या आपके विचार सर्वथा निर्भ्रान्त हैं ? क्या इस बातका आप दावा कर सकते हैं ? यदि नहीं तो आपको क्या अधिकार है कि उनके विचारोंको धर्मविरुद्ध ठहरावें ?

और थोड़ी देरके लिए यह भी मान लिया जाय कि उनके विचार आपकी धार्मिक रीतिसे विरुद्ध हैं, तो भी क्या जैनसमाजका

यह कर्तव्य नहीं है कि उनके ऊपर जो अन्याय हो रहा है उसका प्रतीकार करनेकी चेष्टा करे? यह क्या हमारा धर्म नहीं है कि हम उन्हें दुःखसे मुक्त करावें? और आपको यह भी तो सोचना चाहिए कि सेठीजीका प्रश्न केवल सेठीजीका ही प्रश्न नहीं है–यह सारे जैन-समाजका प्रश्न है। जैनसमाज पर अन्याय नहीं होने देना, जैनसमाज दूसरोंके द्वारा कुचल न डाला जाय इसका प्रयत्न करना, जैनसमाजमें जीवनी शक्ति है उसके किसी निरपराध व्यक्ति पर हाथ डालना भयसे खाली नहीं हैं इस तरहका जगत्को विश्वास करा देना, यह क्या हमारा आपका धर्म नहीं है? यदि थोड़ेसे मतभेदके कारण आप अपने इस धर्मको भुला देंगे, तो याद रखिए कि आपके धर्मको धारण करनेवाला जो जैनसमाज है उसीका कुछ समयमें नामोनिशान मिट जायगा और तब आपके पास केवल आपकी 'धार्मिकदृष्टि' रह जायगी और कुछ न बचेगा।

पण्डितजी, बड़े ही अफसोसकी बात है कि फाँसीकी सजा पाये हुए मोतीचन्द जैनकी रक्षाके लिए तो कलकत्तेके जनसाधारण हजारों रुपयाका चन्दा करें और वह केवल इसलिए कि मोतीचन्द एक भारतवासी है, कहीं ऐसा न हो कि उसने प्रत्यक्ष खून न किया हो और बेचारा फाँसी पर टँग जावे और आप जैन होकर भी जैनसमाजकी सेवाके लिए जीवन अर्पण कर देनेवाले, रुपया पैसा कमानेको तुच्छ समझकर दूसरोंका उपकार करनेमें ही सुख समझने वाले एक सच्चरित्र जैन विद्वान्के विषयमें अपने समाजको यह विश्वास

दिलानेका प्रयत्न करें कि " दि० जैनसमाज उनसे धार्मिक तथा सामाजिक विचारोंमें बहुधा धार्मिक रीतिसे विरुद्ध है और यह युक्त है। " आपका समाज यों ही ऐसी बातोंको समझनेकी शक्ति नहीं रखता है और फिर उसे आप जैसे परामर्शदाता मिल रहे हैं ! उसका इससे अधिक दुर्भाग्य और क्या होगा ? आप अपने नोटको जरा एक बार फिर तो पढ़ लीजिए—

" यद्यपि दि. जैन समाज बाबू अर्जुनलालजीसे धार्मिक तथा सामाजिक विचारोंमें बहुधा धार्मिक रीतिसे विरुद्ध है और वह युक्त है तो भी इस समय गुलाबबाई तथा उसके बच्चोंकी शोचनीय अवस्थाको देखकर दि. समाजका भी कर्तव्य है कि धार्मिक दृष्टिको छोड़ करुणादृष्टिसे वह गवर्नमेन्ट तथा जयपुर राज्यसे इस बातकी कोशिश करे कि बाबू अर्जुनलालजीको या तो खुले मैदान अपराधी सिद्ध किया जाय अन्यथा छोड़ दिया जाय। "

इससे यह ध्वनित होता है कि सेठीजी पर तो करुणादृष्टिकी भी जरूरत नहीं है, क्योंकि उनके विचार धार्मिक रीतिसे विरुद्ध हैं, परन्तु गुलाबबाई और उसके बच्चोंकी शोचनीय अवस्थाको देखकर दि० जैनसमाजको भी करुणादृष्टिसे (क्योंकि स्त्री और बच्चोंके विचार भी उन्हीं जैसे होंगे इससे धार्मिकदृष्टि तो उन पर युक्त ही नहीं हो सकती) उनको छुड़ानेकी कोशिश करनी चाहिए । 'भी' का मतलब यह कि मुख्य कर्तव्य तो यह गैर लोगोंका है; उनके साथ हमें भी करुणादृष्टि डाल देनेमें हर्ज नहीं है । पर हमारी समझमें आपने यह करुणा अकरुणाका पचड़ा नाहक लगा दिया । साफ़ ही लिख देना अच्छा था कि " ऐसे विचारवालेके साथ सहानुभूति प्रकट करनेसे मिथ्यात्वके अनुमोदनका पाप लगेगा, इस लिए

सावधान कोई इस झगडेमें न पड़े। जीव अपने अपने पापोंका फल भोगते हैं उनके लिए हर्ष विषाद करना व्यर्थ है।" जैन-समाजकी इस समय यह दशा है कि उसका अधिकांश आपकी इस अनुचित आज्ञाको भी बिना किसी उज्रके मान लेनेको तैयार हो जायगा। क्योंकि आप पंडित हैं इस लिए जो कहेंगे वह सब जैनधर्मके अनुकूल ही कहेंगे और फिर आपकी धर्मशास्त्रज्ञता पर तो जैनसिद्धान्तविद्यालय—मोरेनाकी मुहर लगी हुई है!

स्वर्गीय महात्मा गोखले और लोकमान्य तिलकका मतभेद जगत्प्रसिद्ध है। एक दूसरेके विचारोंके कट्टर विरोधी थे और एक दूसरे पर समाचारपत्रोंमें बड़े ही प्रबल आक्रमण करते थे; परन्तु क्या आपको मालूम है कि उनकी एक दूसरेके सुखदुखसे कितनी सहानुभूति थी? अभी गोखले महाशयकी मृत्युके समय तिलक महोदयने स्मशानभूमिमें जो शोकसूचक व्याख्यान दिया था उसमें गोखले महाशयके निःस्वार्थ जीवनकी भूरि भूरि प्रशंसा करके उन्होंने कहा था कि मेरे और उनके विचारोंमें यद्यपि मतभेद था तथापि यह निसन्देह है कि वे भारतके सच्चे और एकनिष्ठ सेवक थे। क्या इस विपत्ति-के समय सेठीजीके विषयमें उनके विरुद्ध मतवालोंके मुँहसे भी ऐसे ही शब्द न निकलना चाहिए? और कुछ नहीं तो कमसे कम इस बातको तो आप भी स्वीकार करेंगे कि उनके हृदयमें जैनसमाजको उन्नत बनानेकी प्रबल आकांक्षा है और इस सेवाकार्यमें उनका ज़रा भी स्वार्थ नहीं है, तब उनके प्रति सहानुभूति दिखलानेके लिए क्या उनका यही गुण काफ़ी नहीं है? महाशय, ज़रा स्वयं भी

तो अनुभव करके देखिए कि स्वार्थत्यागका व्रत कितना दुर्धर है? आलू बेंगन और हरियोंके त्यागनेवाले तो आपके यहाँ लाखों हैं; पर धन दौलतको—आरामको त्याग करनेवाले कितने हैं? इस त्यागका भी आपकी धार्मिकदृष्टिमें कोई महत्त्व है या नहीं?

पण्डितजी, आप जैनधर्मके विद्वान् कहलाते हैं, आपने न्यायशास्त्र पढ़ा है, इससे संभव है कि आप अपने विलक्षण सिद्धान्तको-सेठीजी पर धार्मिक दृष्टि न डालनेके हुकुमनामेको उचित सिद्ध कर दें; परन्तु ऐसी बातोंसे जैनसमाज किस ओरको जा रहा है इसका भी तो आपको अच्छीतरह विचार कर लेना था। यदि जैनसमाजकी कुछ दिनों यही दशा रही, उसमें पारस्परिक महानुभूति न बढ़ी, सार्वजनिक भावोंकी वृद्धि न हुई, व्यक्तिके प्रति समाजका और समाजके प्रति व्यक्तिका क्या कर्तव्य है इसका ज्ञान उसे न हुआ, देशकी और संसारकी राजनीतिसे वह अपरिचित रहा, और—सेठीजीके प्रति जिसतरहकी कृतज्ञताके प्रकाश करनेका आप समाजको उपदेश दे रहे हैं उससे होनहार स्वार्थत्यागी युवकोंके दिल टूट गये तो याद रखिए कि केवल धर्मशास्त्रोंको घोक डालनेवाले आप जैसे सैकड़ों हजारों पण्डितोंके तैयार हो जाने पर भी जैनसमाज दूसरी सबल जातियोंके पैरोंसे कुचल जायगा—संसारमें उसका नामो निशान भी न रहेगा। जो जाति अपने व्यक्तियोंके सुखदुखकी परवा नहीं करती है उसको इस युगमें जीते रहनेका कोई अधिकार नहीं।

सहयोगियोंके विचार ।

लिखना-पढ़ना जाननेवाले लोगोंके प्रति ।

इस लेखमें हम प्रत्येक पढ़े-लिखे आदमीसे—खास करके छात्र और छात्रियोंसे कुछ निवेदन करेंगे ।

जो छात्र प्रवेशिका (मैट्रिक्युलेशन) की परीक्षा दे चुके हैं उनकी संख्या लगभग साढ़े बारह हज़ार है । इन सबको अब साढ़ेतीन महीनेकी छुट्टी मिलेगी । उनके बाद ही कई हज़ार विद्यार्थियोंकी इंटर मीडियट और बी. ए. परीक्षा हो जायगी । वे भी तीन महीनेका अवकाश प्राप्त करेंगे । यदि ये सब कई हज़ार छात्र विचार लेवें और कमसे कम एक एक निरक्षर बालक बालिकाको या युवाको लिखना पढ़ना सिखाना शुरू कर देवें तो जुलाईमें कालेज खुलनेके पहले ही देशमें प्रायः बीस हज़ार लिखने पढ़नेवाले आदमी बढ़ जावें । हम केवल एक ही आदमीको पढ़ानेकी बात कहते हैं; किन्तु यदि छात्र चाहें और प्रतिदिन सिर्फ़ एक ही घंटाका समय ख़र्च करें तो वे पाँच आदमियोंको तो (एक ही साथ बिठाकर) सहज ही पढ़ा सकते हैं और इस तरह बीस हज़ार नहीं किन्तु एक लाख पढ़े लिखे लोगोंकी संख्या बढ़ सकती है ।

जो विद्यार्थी विश्वविद्यालयोंकी कोई परीक्षा न देंगे उन सबके लिए भी यह लम्बी गर्मीकी छुट्टी मिलेगी । जो परीक्षा दे चुके हैं उनके लिए कोई निर्दिष्ट अधीतव्य विषय नहीं रहता । इस लिए उन्हें खूब समय मिल सकता है । किन्तु जिन्होंने कोई परीक्षा नहीं दी है उन्हें छुट्टियोंमें पुराना पढ़ा हुआ विषय ही फिर पढ़ना पड़ेगा और नयेमें भी कुछ लिखना और अनुशीलन करना होगा । इस लिए उन्हें अधिक अवकाश न मिलेगा । तो भी एक आधा घंटा समय देना उनके लिए भी भारी न होगा, वे अवश्य ही दे सकेंगे । इस तरह वे भी थोड़े ही परिश्रमसे कमसे कम एक एक मनुष्यको लिखना पढ़ना सिखा सकेंगे और तब और भी न जाने कितने हज़ार पढ़े-लिखे लोगोंकी संख्या बढ़ जायगी ।

हमारे इस प्रस्तावके अनुसार काम करना बहुत ही सहज है। इससे अधिक सहज देशसेवा और नहीं हो सकती। खुशीकी बात है कि इसतरहकी सेवा बहुत से विद्यार्थी कर भी रहे हैं। इसके लिए न विद्यालय चाहिए, न बच टेबिल कुरसी चाहिए, न इन्स्पेक्टरों और विश्वविद्यालयोंकी मंजूरी चाहिए, न सरकारी सहायता चाहिए, न अगाध पाण्डित्य चाहिए, न बड़ी बड़ी लायब्रेरियाँ चाहिए और न सैकड़ों हज़ारों रुपया चाहिए। यदि चाहिए तो सिर्फ सेवा करनेका आग्रह। जो विद्या स्कूलके नीची क्लासोंके लड़के-लड़की जानते हैं उसीसे काम चल जायगा। दो दो चार चार पैसोंकी जो पुस्तकें आवश्यक होंगी उन्हें अधिक स्थानोंमें तो पढ़नेवाले ही खरीद सकेंगे और यदि कोई न खरीद सकेंगे तो पढ़ानेवालोंको अपनी गिरहसे भी दोचार पैसा खर्च कर देना कठिन न होगा।

छात्र छात्रियोंके सिवाय और जो सब शिक्षित स्त्री-पुरुष हैं उन्हें भी देशकी निरक्षर अवस्था दूर करनेके लिए कमर कस लेना चाहिए। जिन्हें स्वयं पढ़ानेका अवकाश नहीं मिलता उन्हें पुस्तकें देना चाहिए, स्कूल कालेजोंकी फीस देना चाहिए, अपने घरमें नाइट-क्लास खोलनेके लिए स्थान देना चाहिए, रोशनीका ख़र्च देना चाहिए, इस तरह जैसे बने तैसे इस काममें सहायता देना चाहिए। सेवासे जिस विमल आनन्दकी प्राप्ति होती है, उससे कोई वंचित न रहेगा-वह सभी सहायकोंको मिलेगा। आनन्द, जीवनकी सफलता, पूर्णता और शक्तिको सब ही ढूँढ़ते फिरते हैं और सेवामार्गमें ये सब मिल जाते हैं। देशके धनी निर्धनी, शिक्षित अशिक्षित सब श्रेणीके लोगोंमें एकता बढ़ानेका सर्व श्रेष्ठ मार्ग और एक मात्र मार्ग यही सेवा है। प्रवासी, चैत्रकी संख्यासे।

जाति बंधन।

[स्वामी आत्मानन्दके जैन प्रश्नोत्तरसे]

प्रश्न-जितने मनुष्य जैनधर्म पालते होवें तिन सर्व मनुष्योंको अपने भाई समान मानना चाहिये या नहीं. जेकर भाई समान माने तो तिनके साथ खाने-पीनेकी कुछ अडचण है या नहीं ?

उत्तर-जितने मनुष्य जैनधर्म पालते होवें तिन सर्वके साथ अपने भाई करतां भी अधिक प्यार करना चाहिये. यह कथन **श्राद्धदिनकृत्य** ग्रंथमें

है. और तिन्होंकी जातियां जेकर लोक व्यवहार अस्पृश्य न होवें तदा तिनके साथ खाने पीनेकी जैनशास्त्रानुसार कुछ अडचण मालूम नहीं होती है. क्योंकि जब श्रीमहावीरजीसे ७० वर्ष पीछे और श्रीपार्श्वनाथजीके पीछे छठे पाट श्रीरत्नप्रभसूरिजीने जब मारवाडके श्रीमाल नगरसे जिस नगरीका नाम अब भिल्लमाल कहते हैं, तिस नगरसे किसी कारणसे भीमसेन राजेका पुत्र श्रीपुंज तिसका पुत्र उत्पलकुमार तिसका मंत्री ओहड ये दोनों जने १८ हजार कुटुम्ब सहित निकलके योधपुर जिस जगह है तिससे बीस कोसके लगभग उत्तर दिशिमे लाखों आदमियोंकी वस्तीरूप उपकेशपट्टन नामक नगर बसाया. तिस नगरमें सवा लक्ष आदमियोंको रत्नप्रभसूरिने श्रावक धर्ममें स्थाप्या. तिस समय तिनके अठारह गोत्र स्थापन करे. तिनके नाम तातहड गोत्र १, बापना गोत्र २, कर्णाट गोत्र ३, वलहरा गोत्र ४, मोराक्ष गोत्र ५, कुलहट गोत्र ६, विरहट गोत्र ७, श्री श्रीमाल गोत्र ८, श्रेष्ठि गोत्र ९, सुचिंती गोत्र १०, आइचणाग गोत्र ११, भूरि गोत्र भटेवरा १२, भाद्र गोत्र १३, चींचट गोत्र १४, कुंभट गोत्र १५, डिंडु गोत्र १६, कनोज गोत्र १७, लघु श्रेष्ठि १८. यह अठार ही जैनी होनेसे परस्पर पुत्र पुत्रीका विवाह करने लगे और परस्पर खाने पीने लगे. इनमेंसे कितने गोत्रवाले रजपूत थे और कितने ब्राह्मण और बनिये भी थे. इस वास्ते जे कर जैन शास्त्रसे यह काम विरुद्ध होता तो आचार्य महाराज श्रीरत्नप्रभसूरिजी इन सबको इकट्ठे न करते. इसी रीतिसे पीछे पोरवाड ओसवालादि वंश स्थापन करे गये हैं—अन्य कोई अडचण तो नहीं है परंतु इस कालके वैश्यलोक अपने समान किसी दूसरी जातिवालेको नहीं समजते हैं यह अडचण है.

प्रश्न—जैनधर्म पालनेवालोंमें अलग अलग जाति देखनेमें आती है. ये जैन शास्त्रानुसार है या अन्यथा है. और ये जातियां किस वक्तमें हुई हैं.

उत्तर—जैनधर्म पालनेवाली जातियां शास्त्रानुसार नहीं बनी. परंतु किसी गाम नगर पुरुष धंधेके अनुसार प्रचलित हुई मालूम पड़ती हैं. श्रीमाल ओसवालका तो संवत् ऊपर लिख आए हैं और पोरवाड वंश श्रीहरिभद्रसूरिजीने मेवाड़ देशमें स्थापन करा और तिनका विक्रम संवत् स्वर्गवास होनेका ५८५ का ग्रंथोंमें लिखा है. और जयपुरके पास खंडेला गाम है तहां वीरात् ६४३ में वर्षे जिनसेन

आचार्यने ८२ गाम राजपूतोंके और दो गाम सुतारोंके एवं सर्व ८४ गाम जैनी करे. तिनके चौरासी गोत्र स्थापन करे सो सर्व खंडेवाल बनिये जिनको जयपुरादि के देशोंमें सरावगी कहते हैं. और संवत् विक्रम २१७ में हिसारसे दश कोशके फासले पर अग्रोहा नामका नगरका उज्जड टेकरा बड़ा भारी है तिस अग्रोहे नगरमें विक्रम संवत् २१७ के लगभग राजा अग्रके पुत्रोंको और नगरवासी कितने ही हजार लोगोंको लोहाचार्यने जैनी करा. नगर ऊजड़ हुआ. पीछे राज भ्रष्ट होनेसे और व्यापार वणिज करनेसे अग्रवाल बनिये कहाए, इसी तरह इस कालकी जैनधर्म पालनेवाली सर्व जातियां श्रीमहावीरसे ७० वर्ष पीछेसे लेके विक्रम संवत् १५७५ साल तक जैनजातियां आचार्योंने बनाई हैं. तिनसे पहिले चारों ही वर्ण जैनधर्म पालते थे. इस समयकी जातियां नहीं थीं. इस प्रश्नोत्तरमें जो लेख मैंने लिखा है सो बहुत ग्रंथोंमें मैंने ऐसा लेख वांचा है परंतु मैंने अपनी मन कल्पनासे नहीं लिखा है.

प्रश्न—सर्व जैनधर्म पालनेवाली वैश्यजातियां इकट्ठी मिल जावें और जात न्यात नाम निकल जावे तो इस काममें जैनशास्त्रकी कुछ मनाही है वा नहीं.

उत्तर—जैनशास्त्रमें तो जिस कामके करनेसे धर्ममें दूषण लगे सो बातकी मनाही है. शेष तो लोगोंने अपनी रूढियां मान रक्खी हैं. उपरले प्रश्नोंमें जब ओसवालादि बनाए थे तब अनेक जातियोंको एक जाति बनाईथी. इस वास्ते अब भी कोई सामर्थ्यवान् पुरुष सर्व जातियोंको इकट्ठी करे तो क्या विरोध है ?

जैनशासन ।

सेठीजीका मामला।

फल जो हो, पर इस बातसे हमें संतोष है कि श्रीयुत अर्जुनलाल सेठी के मामले में लोगों ने अन्याचार के विरुद्ध नियम-बद्ध स्वर उठाया है। समाचार-पत्रों ने एक स्वर से जयपुर दरबार के काम को निंदनीय बतलाया है, और देश में, जगह २ पर, जैनियों की इसी बात पर सभायें हो रही हैं। उन्हों ने प्रस्ताव पास किये हैं, उन्हों ने निश्चय किया है कि सेठीजी की धर्म्मपत्नी देवी गुलाब बाई की मदद की जाय, उन्हों ने वाइसराय और जयपुर-नरेशकी सेवा में मेमोरियल भेजे हैं-मेमोरियल दया की भिक्षाके नहीं और न रियायत की प्रार्थना ही के, परन्तु न्यायके लिए, और केवल न्याय के। सेठी आदमी हैं। उनसे कसूर हो सकता है। कसूर हुआ हो , सिद्ध करो, उन्हें सज़ा दो। कोई

आपत्ति नहीं। कोई रियायत नहीं चाही जाती। पर, इसके विरुद्ध, यदि, दोष नहीं बतलाया जाता, और स्वाधीनता छीनी जाती है, तो आपत्ति है। सेठी जी के लिए नहीं, पर न्याय की रक्षा के लिए, व्यक्तिकी स्वाधीनताके लिए। और आपत्ति करेंगे वे लोग, जिनका सेठी जी या उन्हीं की सी अवस्थामें होनेवाले आदमासे बहुत निकटका सम्बन्ध है और जो उनसे बहुत लाभ उठाते थे, और आवाज उठावेंगे वे लोग भी जो उन दोनोंप्रकार के आदमियोंमें से एक प्रकारके भी न होंगे, पर जिन्हें केवल सिद्धान्त ही का प्यार है। यह स्वाभाविक बात है। पर, इसके लिए भी, क्योंकि हमारे देशमें स्वाभाविकता यमालय को चली जा रही है, हम जैनियों की इस क्रियाशीलता को सराहते हैं। हां, हम उन में से कुछ से केवल दो बातों में मत-भेद रखते हैं। कुछ जैनियोंने इस बात पर ज़ोर दिया है कि अहिंसा परम धर्म्मके माननेवाले सेठीजी स्वप्नमें भी राजनैतिक विषयोंसे सम्बन्ध नहीं रखते थे, इस लिए उनमें राजनैतिक कसूर कदापि नहीं हुआ होगा। जयपुरदरबार ही को पता होगा, कसूर किस प्रकार का है? इस लिए उसके प्रकार पर सिरखप्पी करना व्यर्थ है। पर तो भी मनुष्य, मनुष्य है, किसी मशीन का पुर्ज़ा नहीं। और राजनीति भी हौआ नहीं। हम ऐसे सज्जनों से अधिक उदारता और बुद्धिमत्ता से मत प्रकट करने के लिए प्रार्थना करेंगे। दूसरी बात यह है कि हमारे हाथमें इस समय 'सत्यवादी' नामका एक जैन पत्र है। संतोष की बात है कि वह पूरे जैन समाजका नहीं है, पर असंतोष की बात है कि वह किसी जैन टुकड़ी का पत्र है और उक्त समाज में इतना गहरा मत-भेद रखनेवाली टुकड़ियां मौजूद हैं। इसी मामले पर उसकी सम्मति विचित्रता से खाली नहीं है। वह वैसे तो सेठी जी के ख़िलाफ़ है, पर इस विपत्ति में 'धार्मिकदृष्टि को छोड़ कर करुणा-दृष्टिसे' सरकार और जयपुरनरेश से उनकी सिफ़ारिश करना अपना कर्तव्य समझता है। हम सच कहते हैं कि हम उसके धार्मिक और करुणादृष्टि के अन्तर को नहीं समझ सके। यदि उसका धर्म्म करुणा से अलग है, या उसकी करुणा धर्म्म-विहीन है, तो हमें क्षमा किया जाय, यदि हम ऐसे धर्म्म को धर्म्म कहने के लिए भी तैयार न हों। हम इस प्रकार के सज्जनों से प्रार्थना करते हैं कि वे किसी पूर्व द्वेष के कारण ऐसी ऊटपटांग बातें कह कर अपनी स्थिति को अधिक हास्यास्पद न बनावें।

प्रताप, २९ मार्च।

हाल ही छपीहुई नई पुस्तकें।

पुत्रोपदेश—एक आदर्श पिताने अपने होनहार विद्यार्थी पुत्रको जो चिट्ठियाँ लिखी थीं उनका इसमें संग्रह है। प्रत्येक चिट्ठी उत्तमसे उत्तम उपदेशोंसे भरी हुई है। जो पिता अपने पुत्रोंको सदाचारी, परिश्रमी, मितव्ययी, विनयवान् और विद्वान् बनाना चाहते हैं उन्हें यह छोटीसी पुस्तक अवश्य मंगाना चाहिए। बाबू दयाचन्द्रजी बी. ए. ने बहुत ही सरल भाषामें लिखी है। मूल्य सिर्फ डेढ़ आना।

सिक्खोंका परिवर्तन—पंजाबका सिक्खधर्म एक सीधा सादा पारलौकिक धर्म होकर भी धीरे धीरे राजनैतिक योद्धाओंका धर्म कैसे बन गया इस ग्रन्थमें इसी बातका ऐतिहासिक दृष्टिसे विस्तारपूर्वक विवेचन किया गया है। हिन्दीमें अपने ढंगकी यह सबसे पहली पुस्तक है। यह डाक्टर गोकुलचन्द एम. ए., पी. एच. डी., बेरिस्टर-एट-लाके अँगरेजी ग्रन्थ The Transformation of Sikhism का अनुवाद है। इसमें सिक्ख गुरुओंके कई चित्र दिये हैं। मूल्य १॥)

स्वामी रामदासका जीवनचरित—महाराष्ट्र केसरी शिवाजी महाराजके धर्मगुरु रामदासस्वामीका पढ़ने योग्य जीवनचरित। मूल्य ।)

फिजीद्वीपमें मेरे २१ वर्ष—पं० तोतारामजी सनाढ्यनामके एक सज्जन कुली बनाकर जबर्दस्ती फिजीद्वीपमें भेज दिये गये थे। वहाँ वे २१ वर्ष तक रहे। उससमय उन्हें और दूसरे भारतवासियोंको जो असह्य दुःख दिये गये थे उनका इस पुस्तकमें रोमांचकारी वर्णन है। प्रत्येक भारतवासीको इसको पढ़करके अपने भाइयोंको इस दुःखसे बचानेका यत्न करना चाहिए। फिजीद्वीपसम्बन्धी और भी बहुतसी जानने योग्य बातें इसमें हैं। मू० ।=)

स्वामी रामतीर्थके उपदेश—पहलाभाग। मूल्य ।)

पद्यपुष्पांजलि—हिन्दीके प्रसिद्ध कवि पण्डित लोचनप्रसाद शर्माकी लगभग ४० कविताओंका संग्रह। कवितायें खड़ी बोलीकी हैं। देशभक्ति, जातीयप्रेम, आदिके भावोंसे भरीहुई हैं। मूल्य सिर्फ छह आना।

जर्मनीके विधाता—अर्थात् केसरके साथी—जिन लोगोंके प्रयत्न और उद्योगसे जर्मनीने वर्तमान शक्ति प्राप्त की है उन २४ पुरुषोंका संक्षिप्त चरित इस पुस्तकमें संगृहीत है। वर्तमान युद्धकी गति समझनेके लिए यह पुस्तक अवश्य पढ़ना चाहिए। मूल्य ।)

मैनेजर, हिन्दीग्रन्थरत्नाकर कार्यालय,
हीराबाग, पो० गिरगाँव बम्बई

संस्कृत प्राकृत तथा संस्कृतटीकासहित

प्राचीन जैनग्रंथ।

प्रत्येक जगहके मंदिरजीके भंडारमें, पुस्तकालयों और पाठशाला-ओंमें अवश्य ही इन ग्रंथोंकी एक एक प्रति मगाकर विराजमान करना चाहिये।

१–२ आप्तपरीक्षा सटीक और पत्रपरीक्षा स्याद्वादविद्यापति विद्या-नंदस्वामी कृत ॥)

३ समयप्राभृत—तात्पर्यवृत्ति और आत्मख्याति दोटीकाओंसहित ५)

४ तत्त्वार्थ राजवार्तिक अकलंकदेवकृत ९)

५ जैनेन्द्रप्रक्रिया पूज्यपाद-गुणनंदिकृत १॥)

६–७—आप्तमीमांसा अकलंकभाष्य और वसुनंदिकृत टीकासहित२)

८ शब्दार्णवचंद्रिका जैनेंद्रव्याकरणकी टीका ५)

९ शाकटायन व्याकरणकी चिंतामणिटीका प्रथमखंड २)

१० शाकटायनधातुपाठ ।=)

ये सब ग्रंथ जुदे जुदे लेनेसे कुल २६॥=) के होते हैं परंतु सबके सब एकसाथ लेनेसे १४) रुपयोंमें भेज देंगे, डांक खर्च जुदा लगेगा और जो कोई दानी महाशय पुस्तकालय पाठशालादिमें दान करनेके लिये लें तो हम १००) रुपयोंमें प्रत्येक ग्रंथकी दशदशप्रति भेज देंगे। राह खर्च जुदा लगेगा।

पन्नालाल बाकलीवाल
ठि० मदागिन जैनमंदिर, बनारस, सिटी.

(इस अंकके प्रकाशित होनेकी तारीख १९-४-१५।)

Reg. No. B. 719.

ॐ

जैनहितैषी ।

मुख्यतः इतिहास सम्बन्धी लेखोंसे युक्त

विशेष अङ्क ।
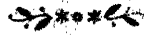
भाग ११ | अंक ७-८

विषयसूची ।

प्रकाशक—

जैनग्रन्थरत्नाकर कार्यालय

हीराबाग, गिरगांव–बंबई.

वार्षिक मूल्य ३॥)] [इस अंकका मूल्य ।=)

Printed by Nathuram Premi at the Bombay Vaibhav Press, Servants of India Society's Building, Sandhurst Road, Girgaon Bombay, & Published by Nathuram Premi at Hirabag, Near C. P. Tank Girgaon, Bombay.

जैनहितैषी।

श्रीमत्परमगम्भीरस्याद्वादामोघलाञ्छनम् ।
जीयात्सर्वज्ञनाथस्य शासनं जिनशासनम् ॥

११ वाँ भाग { वैशाख, ज्येष्ठ, वीर नि० सं० २४४१ । } अंक ७-८

पुरातत्त्वकी खोज करना जैनोंका कर्तव्य है।

(लेखकः—वेन्सेन्ट ए. स्मिथ, एम्. ए. ।)

पुरातत्त्वसंबंधी खोजकी आवश्यकता।

जो विद्यार्थी भारतवर्षसंबंधी किसी विषयका अध्ययनकरते हैं वे सब इस बातको न्यूनाधिक अच्छी तरह जानते हैं कि पुरातत्त्वकी खोजसे पिछले ७०—८० वर्षमें ज्ञानकी कितनी वृद्धि हुई है। पुरातत्त्वसंबंधी खोजके अनुसार मौखिक और लिखित कथाओंके प्रमाणकी मर्यादा निश्चित की गई है और इन्हीं अन्वेषणोंकी

सहायतासे मैं प्राचीन भारतका कथामय इतिहास लिखनेको समर्थ हुआ हूँ। बड़ी मेहनतके साथ नियमपूर्वक जमीन खोदनेसे जो सिक्के, शिलालेख, इमारतें, धर्मपुस्तकें, चित्र और बहुत तरहकी मुतफर्रिक बची खुची चीजें मिली हैं उनकी सहायतासे हमने प्राचीन ग्रंथोंमें लिखे हुए भारतीय इतिहासके ढांचेकी पूर्ति की है, अपने ज्ञानको जो पहले अस्पष्ट था शुद्ध बनाया है और कालक्रमकी मजबूत पद्धतिकी नींव डाली है।

जैनोंके अधिकारमें बड़े बड़े पुस्तकालय (भंडार) हैं जिनकी रक्षा करनेमें वे बड़ा परिश्रम करते हैं। इन पुस्तकालयोंमें बहुमूल्य साहित्य भरा पड़ा है जिसकी खोज अभी बहुत कम हुई है। जैन ग्रंथ खास तौर पर ऐतिहासिक और अर्ध ऐतिहासिक सामग्रीसे परिपूर्ण हैं। परन्तु साहित्यसंबंधी कथायें बहुधा त्रुटिपूर्ण होती हैं, इस लिए सत्यके निर्णयके लिए पुरातत्त्वसंबंधी खोजकी जरूरत है।

धनाढ्य जैनोंका कर्तव्य।

दूसरे समाजोंको देखते हुए जैनसमाजमें धनाढ्य मनुष्योंकी संख्या बहुत बड़ी चढ़ी है और ये लोग किसी तरहके सार्वजनिक काममें, जो उनको चित्ताकर्षक लगता हो, खुशीके साथ रुपया खर्च कर सकते हैं। मेरा भाषासंबंधी ज्ञान इतना काफी नहीं है कि मैं साहित्य-ग्रन्थोंकी परीक्षा कर सकूं अथवा उनका सम्पादन कर सकूं। अतएव मैं एक और विषयके संबंधमें, जिसका मैं जानकार हूँ, कुछ कहनेका साहस करता हूं और मैं कुछ ऐसी सम्मतियां देता हूं जिनके अनुसार चलनेसे बहुतसी बहुमूल्य

बातें हाथ लग सकेंगी। मेरी इच्छा है कि जैनसमाजके लोग और विशेष कर धनाढ्य लोग—जो रुपया खर्च कर सकते हैं-पुरातत्वसंबंधी खोजकी ओर ध्यान दें और इस काममें अपने धर्म और समाजके इतिहासकी ओर विशेष लक्ष्य रखतेहुए धन खर्च करें।

खोजके लिए गुंजाइश।

खोजके लिए बहुत बड़ा क्षेत्र पड़ा है। आज कल जैनमतावलम्बी अधिकतर राजपूताना और पश्चिमी भारतवर्षमें रहते हैं। परन्तु हमेशा यह बात नहीं रही है। प्राचीनकालमें महावीर स्वामीका धर्म आज कलकी अपेक्षा बहुत दूर दूर फैला हुआ था। एक उदाहरण लीजिए—जैनधर्मके अनुयायी (पटनाके उत्तर) वैशालीमें और पूर्व बंगालमें आज कल बहुत कम हैं, परन्तु ईसाकी सातवीं शताब्दीमें इन स्थानोंमें उनकी संख्या बहुत जियादा थी। मैंने इस बातके बहुतसे सुबूत अपनी आँखोंसे देखे हैं कि बुंदेलखंडमें मध्यकालमें और विशेषकर ग्यारहवीं और बारहवीं शताब्दियोंमें जैनधर्मकी विजय—पताका खूब फहरा रही थी। इस देशमें ऐसे स्थानों पर जैनमूर्तियोंका बाहुल्य है, जहाँ पर अब एक भी जैनी दिखाई नहीं देता। दक्षिण और तामिल देशोंके ऐसे अनेक प्रदेशोंमें जैनधर्म सदियों तक एक प्रभावशाली राष्ट्रधर्म रह चुका है जहाँ अब उसका कोई नाम तक नहीं जानता।

चन्द्रगुप्त मौर्य्यके विषयमें प्रचलित कथा।

जो बातें मैं सरसरी तौर पर लिख चुका हूँ उनमें खोजके लिए बेहद गुंजाइश है। मैं विशेषकर एक महत्त्वपूर्ण बातकी खोजके लिए अनुरोध करता हूँ। वह यह है कि महाराज चन्द्र-

गुप्त मौर्य्य श्रीभद्रबाहुके साथ श्रवणबेलगुल गये, और फिर उन्होंने जैनसिद्धांतके अनुसार उपवास करके धीरे धीरे अपने प्राण तज दिये, यह कहाँतक ठीक है। निस्संदेह कुछ पाठक यह जानते होंगे कि इस विषय पर मिस्टर लेविस राइस और डाक्टर फ्लीटमें खूब ही वादविवाद हो चुका है। अब समय आगया है कि कोई जैनविद्वान् कदम बढ़ावे और इस विषय पर अपनी दृष्टिसे वादविवाद करे। परन्तु इस कामके लिए एक वास्तविक विद्वान्‌की आवश्यकता है, जो ज्ञानपूर्वक विवाद करे—ऊँटपटाँग बातोंसे काम नहीं चलेगा। आज कलकी विद्वन्मंडली हरबातके प्रमाण माँगती है और यह चाहती है कि जो बात कही जाय वह ठीक हो और उसके विषयमें जो बहस की जाय वह स्पष्ट और न्याययुक्त हो।

दक्षिणका धार्मिक युद्ध।

जिन बड़े बड़े प्रदेशोंमें जैनधर्म किसी समय फैला हुआ था बल्कि बड़े जोर पर था वहाँ उसका विध्वंस किन किन कारणोंसे हुआ, उनका पता लगाना हमारे लिए सर्वथा योग्य है और यह खोज जैनविद्वानोंके लिए बड़ी मनोरंजक होगी।

इस विषयसे मिलता जुलता एक विषय और है जिसका बहुत थोड़ा अध्ययन किया गया है। वह दक्षिणका धार्मिक युद्ध है और खासकर वह युद्ध है जो चोलवंशीय राजाओंके शैवधर्म और उनके पहलेके राजाओंके जैनधर्ममें हुआ था।

अध्ययनके लिए कुछ पुस्तकें।

इन बातोंकी अच्छी तरह खोज करनेके लिए हमको पहले जैन स्मारकों, मूर्तियों, और शिलालेखोंका कुछ ज्ञान प्राप्त करलेना चाहिए। बहुतसे ऐसे स्मारक (इमारतें इत्यादि) अब भी ज़मीनके नीचे दबे पड़े हैं और यह जरूरत है कि कोई होशियार आदमी उनको खोद कर निकाले। जो कोई जैनोंके महत्त्वपूर्ण भग्नावशेषों-की जाँच करना चाहे उसको प्राचीन चीनी यात्रियों और विशेष-कर ह्यानसाँगकी पुस्तकोंका अध्ययन करना चाहिए। ह्यानसाँग-को यात्रियोंका राजा कहनेमें अत्युक्ति न होगी। उसने ईसाकी सातवीं सदीमें यात्रा की थी और बहुतसे जैन स्मारकोंका हाल लिखा, जिनको लोग अब बिलकुल भूल गये हैं। ह्यानसाँगकी यात्रा-संबंधी पुस्तकके बिना किसी पुरातत्त्वान्वेषीका काम नहीं चल सकता। हाँ मैं जानता हूँ कि जो जैन विद्वान् उपर्युक्त पुस्तकोंसे काम लेना चाहता है वह यदि चीनी भाषा न जानता हो, तो उसको अँगरेज़ी या फ्रेंच भाषाका जानकार होना चाहिए। परन्तु मैं ख़याल करता हूँ कि आजकल बहुतसे जैनी अपने धर्मशास्त्रोंके विद्वान् होकर अँगरेज़ी पर भी इतना अधिकार रखते हैं कि वे इस भाषाकी उन तमाम पुस्तकोंको काममें लासकें जो उनको सफलतापूर्वक अध्ययन करनेमें जरूरी हों और एक ऐसे समाजके मनुष्योंको, जो माला-माल है, पुस्तकोंको मूल्यसे न डरना चाहिए।

जैनस्मारकों पर बौद्धस्मारक होनेका भ्रम।

कई उदाहरण इस बातके मिले हैं कि वे इमारतें जो असलमें

जैन हैं गलतीसे बौद्ध मान ली गई थीं। एक कथा है जिसके अनुसार लगभग अठारह सौ वर्ष हुए महाराज कनिष्कने एक बार एक जैन स्तूपको गलतीसे बौद्ध स्तूप समझ लिया था और जब वे ऐसी गलती कर बैठते थे, तब इसमें कुछ आश्चर्य नहीं कि आजकलके पुरातत्त्ववेत्ता, जैनइमारतोंके निर्माणका यश कभी कभी बौद्धोंको दे देते हों। मेरा विश्वास है कि सर अलेग्जेंडर कनिंघमने यह कभी नहीं जाना कि जैनोंने भी बौद्धोंके समान स्वभावतः स्तूप बनाये थे और अपनी पवित्र इमारतोंके चारों ओर पत्थरके घेरे लगाये थे। कनिंघम ऐसे घेरोंको हमेशा ' बौद्ध घेरे ' कहा करते थे और उन्हें जब कभी किसी टूटे फूटे स्तूपके चिन्ह मिले तब उन्होंने यही समझा कि उस स्थानका संबंध बौद्धोंसे था। यद्यपि बम्बईके विद्वान् पंडित भगवानलाल इन्द्रजीको मालूम था कि जैनोंने स्तूप बनाये थे और उन्होंने अपने इस मतको सन् १८६५ ईसवीमें ही प्रकाशित कर दिया था, तो भी पुरातत्त्वान्वेषियोंका ध्यान उस समय तक जैनस्तूपोंकी खोजकी तरफ न गया जबतक कि तीस वर्ष बाद सन् १८९७ ईसवीमें बुहलरने अपना " मथुराके जैनस्तूपकी एक कथा ' शीर्षक निबंध प्रकाशित न किया। मेरी पुस्तक–जिसका नाम " मथुराका जैनस्तूप और अन्य प्राचीन वस्तुयें " है–सन् १९०१ ईसवीमें प्रकाशित हुई जिससे सब विद्यार्थियोंको मालूम हो गया कि बौद्धोंके समान जैनोंके भी स्तूप

1. A Segend of the Jain Stupa at Mathura.
2. The Jain stupa and other antiquities of Mathura.

और वेरे किसी समय बहुलतासे मौजूद थे। परन्तु अब भी किसीने जमीनके ऊपरके मौजूद स्तूपोंमेंसे एकको भी जैनस्तूप नहीं प्रकट किया। मथुराका स्तूप जिसका हाल मैंने अपनी पुस्तकमें लिखा है बुरी तरहसे खोदे जानेसे बिलकुल नष्ट हो गया है। मुझे पक्का विश्वास है कि जैनस्तूप अब भी विद्यमान हैं और खोज करने पर उनका पता लगसकता है। और स्थानोंकी अपेक्षा राजपूतानेमें उनके मिलनेकी अधिक संभावना है।

कौशाम्बीवाला मामला।

मेरे ख्यालमें इस बातकी बहुत कुछ संभावना है कि जिला इलाहाबादके अंतर्गत 'कोशम' ग्रामके भग्नावशेष प्रायः जैन सिद्ध होंगे—वे कनिंघमके मतानुसार बौद्ध नहीं मालूम होते। यह ग्राम निस्संदेह जैनोंका कौशाम्बी नगरी रहा होगा और उसमें जिस जगह जैनमंदिर मौजूद है वह स्थान अब भी महावीरके अनुयायियोंका तीर्थक्षेत्र है। मैंने इस बातके पक्के सुबूत दिये हैं कि बौद्धोंकी कौशाम्बी नगरी एक और स्थान पर थी जो बारहटसे दूर नहीं है। इस विषय पर मेरे निबंधके प्रकाशित होनेके बाद डाक्टर फ्लीटने यह दिखलाया है कि पाणिनिने कौशाम्बी और बन-कौशाम्बीमें भेद किया है। मुझे विश्वास है कि बौद्धोंकी कौशाम्बी नगरी बन (जंगल) में बसी हुई बन-कौशाम्बी थी।

मैं कोशमकी प्राचीन वस्तुओंके अध्ययनकी ओर जैनोंका ध्यान

1. Kausambi and Sravasti, J. R. A. S. July 1898.
2. J. R. A. S., 1907, P. 511.

काम कैसे शुरू करना चाहिए ?

अन्तमें मैं प्रस्ताव करता हूँ कि जैनोंको एक पुरातत्त्वसंबंधी समिति स्थापित करनी चाहिए जो ऊपर कहे हुए मार्गके अनुसार ऐतिहासिक खोजका कार्यक्रम तैयार करे और आवश्यकतानुसार धन इकट्ठा करे। धनकी मात्रा बहुत होना चाहिए। यदि कोई जैन कार्यकर्ता, जो काफी योग्यता रखता हो और जिसे जैनसमाजसे वेतन मिलता हो, सरकारी पुरातत्त्वखाते (Archaeological Survey) में काम करनेपर नियत कर दिया जाय, तो वह बहुत काम कर सकता है और यह और भी अच्छा होगा कि ऐसे कई कार्यकर्ता सरकारी अफसरोंके निरीक्षणमें काम करें। यदि जैनी उचित समझें, तो इस लेखकी नकल सरकारी पुरातत्त्व-विभागके डाइरेक्टर-जनरलको सूचनाके लिए भेज दें।

अनुवादक,—**संशोधक।**

शांति-वैभव।

(३)

आत्मनिर्भरताका माहात्म्य।

आत्मविश्वासके लिए आत्मनिर्भरताकी बड़ी जरूरत है। आत्मनिर्भरताके बिना आत्मविश्वास ऐसा ही है जैसा भोजन बनानेका बरतन बिना भोजनके। आत्मविश्वाससे केवल इस बातका

पता लगता है कि हममें क्या क्या काम करनेकी शक्ति है, हम क्या क्या कर सकते हैं; परंतु आत्मनिर्भरतामें जिन बातोंकी सम्भावना की जाती है वे कार्यका रूप धारण कर लेती हैं। एक शिल्पकार किसी पत्थरके टुकड़ेको देखता है। उसका आत्मविश्वास उसको केवल यह बतलाता है कि इसमेंमें एक बड़ी सुंदर मूर्ति बन सकती है; परंतु आत्मनिर्भरता उस पत्थरके टुकड़ेको उसके द्वारा मूर्तिका रूप धारण करा देती है। पहले विश्वास है फिर आत्मनिर्भरता है। पहले किसी कामके करनेकी सम्भावना की जाती है पीछे तद्रूप क्रिया होती है। सम्भावनाका नाम आत्मविश्वास है और अपने लिए तद्रूप क्रियाका नाम आत्मनिर्भरता है।

जो मनुष्य आत्मनिर्भरता प्राप्त करलेता है वह कहा करता है कि मेरी शक्तियोंका, मेरी सम्भावनाओंका, मेरे सिवाय और कोई अनुमान नहीं कर सकता। कोई मुझे भला या बुरा नहीं बना सकता। मैं स्वयं ही अपनेको भला या बुरा बना सकता हूँ। आत्मनिर्भर पुरुष अपनी आर्थिक, सामाजिक, मानसिक, शारीरिक तथा आत्मिक दशाको आप ही सुधार सकता है। मनुष्यका जीवन कैसा होना चाहिए, यह एक ऐसा प्रश्न है कि जिसको प्रत्येक व्यक्ति आपही विचार करके निश्चय कर सकता है। इसके लिए मनुष्यको अपने बल पर खड़ा होना चाहिए। दूसरोंका सहारा तकना और उनके भरोसे पर रहना निरर्थक है। प्रकृति इस बातका साक्षात् उदाहरण है। प्रकृतिमें देखिए, जो काम स्वयं करनेका है उसको स्वयं ही करना पड़ता है। अपनी जगह दूसरेको भेजनेसे अथवा

दूसरेकी जगह आप जानेसे कभी काम नहीं चलता। प्रकृति सदैव बतलाती रहती है कि मनुष्य स्वयं ही अपना मित्र है और स्वयं ही अपना शत्रु है। चाहे वह अपनेको अपना मित्र बना ले और चाहे शत्रु बना ले, यह उसीके आधीन है। साधारण उदाहरण व्यायाम (कसरत) का लीजिए। क्या यह सम्भव है कि कोई मनुष्य अपनी जगह दूसरेको अखाड़ेमें भेज दे और शरीर उसका पुष्ट हो जावे? कदापि नहीं। जब तक वह स्वयं जाकर अपने शरीरसे श्रम नहीं करेगा और व्यायामके सिद्धांतों पर अपना समय और उपयोग न लगायगा, तबतक कोई लाभ नहीं हो सकता। ऐसे ही यदि कोई रोग होजाय तो जबतक मनुष्य स्वयं औषधिका सेवन न करे, संसारभर की औषधियां उसके लिए निष्फल हैं। यह कदापि सम्भव नहीं कि अपने पेटकी पीड़ा दूसरेके चूरन खानेसे दूर होजाय। रोगसे निवृत्ति पानेके लिए स्वयं औषधि सेवन करनेकी जरूरत है। धर्मके सम्बंधमें भी यही बात है। संसारभरके धर्मोंके सिद्धांत उस समयतक कुछ भी कार्य-कारी नहीं जबतक कि प्रत्येक व्यक्ति उनको अपने जीवनका आधार न बना ले और इस बातका दृढ़ विश्वास और संकल्प न कर ले कि मेरा जीवन इन्हीं पर निर्भर है—मैं इन्हींके द्वारा अपने जीवनको सुधार सकता हूं। धर्म उस गाड़ीके समान नहीं है जिसमें गद्दे तकिये लगे हुए हैं और बैठनेवालेको केवल टिकटके दाम देने पड़ते हैं; शेष सब काम दूसरे लोग कर लेते हैं। धर्ममें मनुष्यको सब ही काम अपने आप करने होते हैं।

चाहे सहायता दूसरोंसे कितनी ही ले; परंतु मनुष्यको अपने ऊपर निर्भर रहना चाहिए। उसको यह न समझना चाहिए कि मैं गाड़ीका केवल एक मुसाफिर हूँ; किंतु यह समझना चाहिए कि गाड़ीका चलानेवाला मैं ही हूँ। मैं गाड़ीका ड्राइवर इंजीनियर हूँ और गाड़ी मेरा जीवन है। हमको अपने ऊपर भरोसा करना चाहिए। यदि ऐसा नहीं है तो जीवन व्यर्थ है। ऐसे जीवनमें कोई लाभ नहीं।

जो कुछ दूसरे मनुष्य हमारे लिए कर सकते हैं वह यह है कि वे हमको अवसर दे सकते हैं। हमको ऐसे अवसरोंमें कभी न चूकना चाहिए; किंतु सदैव उनकी खोज रखनी चाहिए। जीवन अवसरोंका एक समूह है जो एकके बाद एक आते रहते हैं। इन इन अवसरोंको अच्छा बुरा हम जैसा चाहें बना सकते हैं। यदि हम जीवनको ठीक बनाना चाहते हैं तो अवसरको कदापि नहीं चुकाना चाहिए और यथाशक्ति उससे अच्छा परिणाम निकालनेका उद्योग करना चाहिए।

पुराने जमानेके रसायन बनानेवाले कीमियागर प्रायः कहा करते थे कि केवल एक आँचकी कसर रह गई। यदि वह लगजाती तो राँगा चाँदी और ताँबा सोना हो जाता। आचरणमें भी यही बात है। अनेक व्यक्ति ऐसे हैं जिनका दिमाग बहुत अच्छा है, जिनमें ज्ञानकी भी कमी नहीं, धर्मबुद्धि भी पाई जाती है; परंतु केवल एक बातकी उनमें कमी है और उसीके न होनेसे उनके जीवनमें सफलता नहीं होती। वह बात आत्मनिर्भरता है। चाहे सब गुण

हों; परंतु यदि यह एक गुण नहीं है तो सब गुण व्यर्थ हैं। आत्म–निर्भरताके होनेसे ये सब गुण एकत्रित होकर एक जीवनशक्ति पैदा कर देते हैं और कार्यमें सफलता होते देर नहीं लगती। जिस मनुष्यमें आत्मनिर्भरता नहीं पाई जाती उसकी आत्मा निर्बल होती है। उसे प्रत्येक कार्यमें संदेह रहता है और जो कुछ भी वह करता है सब 'हिचरमिचर' करके करता है। उसको हरएक कामके करनेमें भय मालूम होता है और रात दिन यही चिंता लगी रहती है कि कहीं श्रम निष्फल न चला जाय। वह सदा यही बाट निहारता रहता है कि कोई आकर मुझे राय दे। उसमें इतना साहस और आत्मबल नहीं होता कि स्वयं विचार करे और जो उचित और योग्य समझे उसे कर डाले। ऐसा मनुष्य अपनी कायरता और मान बड़ाईमें प्रत्येक असफलताका कारण दूसरोंके सिर मँड़ देता है। उसे सदा यही शिकायत रहती है कि लोग मेरे मूल्यको नहीं पहचानते, मेरा कुछ मान नहीं करते और मुझको तुच्छ समझते हैं। वह अपने मनमें समझता है कि समाज मेरे प्रतिकूल विचार किया करता है। अपना दोष मालूम करके उसके दूर करनेका तो उद्योग वह कभी करता नहीं; हां, दूसरोंको अपने द्वेषी और शत्रु सदैव जानता रहता है। ऐसे मनुष्यको शांति प्राप्त होना नितांत दुर्लभ है। उसको शांति कहाँसे प्राप्त हो? उसको तो सदैव यही चिंता रहती है कि मेरे समान संसारमें कोई भी दुखी नहीं, न कोई इतना दरिद्र है और न किसीको इतनी असफलता हुई है।

इसके विपरीत जिस मनुष्यमें आत्मनिर्भरता होती है उसके विचार और ही भाँतिके होते हैं। वह सदा इस बातके जाननेकी धुनमें लगा रहता है कि मुझमें कौन कौनसे अवगुण हैं और मैं उन्हें कैसे दूर कर सकता हूँ। उसको इस बातका पूर्णरूपसे निश्चय होता है कि सम्पूर्ण बाह्य प्रभावोंके जीतनेकी मुझमें शक्ति है। वह जानता है कि कठिनाइयोंका उपस्थित होना कोई अनहोनी बात नहीं है। जितने जितने बड़े बड़े महात्मा हुए हैं सबने अनेक दुःखोंका सामना किया है, बड़ी बड़ी आपत्तियोंको झेला है। आपत्तियोंसे डरना कायरोंका काम है। आपत्तियोंका सामना करना और सहन करनाही वीरता है। वह समझता है कि असफलता स्थायी नहीं है, क्षणमात्रके लिए है। असफलतासे निराश न होना चाहिए। उद्योग किये जाओ। एक दिन सफलता अवश्य होगी। जैसे रेलगाड़ीकी यात्रामें कभी कभी रास्तेमें टाट आजाती है तो थोड़े समयके लिए अँधेरा हो जाता है, परंतु टाटके निकलते ही उजाला हो जाता है। यही हाल जीवनका है। असफलताका अँधेरा कुछ समयके लिए रहता है फिर सफलताका उजाला आ जाता है।

वह जाति सबसे अधिक बलवती होती है जिसमें आत्मनिर्भरताका गुण होता है—जिसमें वे सब बात पाई जाती हैं, जो मनुष्योंके लिये आवश्यक हैं। यदि ऐसा नहीं है तो वह जाति बलहीन है। ऐसी जाति सदा शत्रुके पंजेमें दबी रहती है और उसका नाश होनेमें तनिक भी देर नहीं लगती। शत्रु उसे शीघ्र चारों ओरसे

घेर लेगा और उसका सर्वनाश कर देगा। ऐसी जाति कभी स्वतंत्र नहीं हो सकती सदा दासत्वमें ही दबी रहती है। किसी जातिकी स्वतंत्रता इस बात पर निर्भर है कि उसमें आंतरिक शक्ति कितनी है और वह स्वयं अपनी स्थितिको अचल रख सकती है या नहीं। शत्रुसे सुरक्षित रहनेके लिए अपनेमें बलकी आवश्यकता है। यही हाल पृथक् पृथक् व्यक्तिका भी है। कारण कि मनुष्योंके समूहका नाम ही जाति है। पृथक् पृथक् व्यक्तियोंसे ही जाति बनती है। जातिका इतिहास पृथक् पृथक् व्यक्तियोंके जीवन-चरितोंका संग्रह है। इतिहास और जीवनचरितमें यही भेद है। जातिके जीवनचरितका नाम इतिहास है और पृथक् पृथक् व्यक्तिके इतिहासका नाम जीवनचरित है।

यह एक मानी हुई बात है कि जो मनुष्य आपत्तिके समय दृढ़ रहता है और कठिनाइयोंको साहस और वीरतासे झेलता है वही अपनी आंतरिक शक्तिसे रह सकता है। उसको किसीके सहारेकी आवश्यकता नहीं है और न उसे किसीकी सहानुभूतिकी जरूरत है। वह स्वयं अपने पर ही निर्भर रहता है। यदि कभी कोई मनुष्य अथवा कोई समाज दूसरों पर निर्भर रहकर काम करता हो तो समझ लो कि उसकी अवनतिका समय आगया, उसके पतन होनेमें अब कुछ देर नहीं है। सबको ज्ञात है कि जबतक मुगल बादशाह स्वयं कार्यतत्पर रहे, मुगल साम्राज्यकी बढ़ती होती रही और मुगल बादशाह सम्पूर्ण भारतके अधिकारी बने रहे; परंतु ज्यों ही उन्होंने अपने कार्य्योंको अपने कर्मचारियों

पर छोड़ा और वे स्वयं नाचरंग तमाशेमें लगे, त्यों ही अवनतिके चिन्ह प्रगट होने लगे और अंतमें मुगल राज्यका पटड़ा ही हो गया। यही हाल रोमदेशका हुआ। जबसे रोमवासियोंने स्वावलम्बनका त्याग किया और अपना कार्य्य युद्धमें पकड़े हुए कैदियों पर छोड़ दिया, उसी समयसे रोमदेशका पतन होने लगा और जातिमें आलस, भीरुता, दुर्बलता और कायरताने जोर पकड़ना शुरू कर दिया। इसीका परिणाम है कि रोम जैसा बलवान् क्षत्री विजयी देश बलहीन और साहसहीन होगया। दूसरों पर निर्भर रहनेसे मनुष्य निर्जीव और निर्बल हो जाता है और पुरुषत्वके गुण उसमेंसे निकल जाते हैं। यह बात अवश्य है कि आत्मनिर्भरताके लिए कठिनाइयाँ झेलनी पड़ती हैं पर कठिनाई झेलना पुरुषोंका काम है और संसारमें कर्तव्यका मार्ग है। बहुतसे मनुष्य ऐसे आलसी और दुर्बल हैं कि उनसे किसी कठिनाईका झेलना तो दूर रहा वे स्वयं अपने शरीरका भार भी नहीं उठा सकते। जाड़े गरमीकी तनिकसी तकलीफ़को भी नहीं सह सकते। ऐसे मनुष्य केवल भोगविलासोंमें ही रह जाते हैं और वे संसारमें कुछ नहीं कर सकते। जिस समय ईरानका बादशाह नादिरशाह दिल्लीतक पहुँचा और उसने मारधाड़ मचानी शुरू कर दी, उस समय दिल्लीका बादशाह मोहम्मदशाह अपने महलोंमें पड़ा हुआ मौज कर रहा था। जब हाथ पैर जोड़नेसे नादिरशाहने शान्ति धारण करली और वह दिल्लीके सम्राट्से मिलनेको आया, उस समय दोनों सम्राटोंमें जो बातचीत हुई वह उल्लेख करने योग्य है। मोहम्मदशाह बारीक तनजेबका कुरता पहने हुए

था। उसके दोनों तरफ़ पंखे चल रहे थे और गुलाबजलका छिड़काव हो रहा था।

इस सजधजसे मोहम्मदशाह नादिरशाहको लेनेके लिए किलेके दरवाज़े तक आया। गरमी का मौसम था, तिस पर भी नादिरशाह भेड़की खालका कोट पहने हुए था! जब मोहम्मदशाहने नादिरशाहको पोस्तीन पहने हुए देखा तो बड़ा आश्चर्य किया और कहा कि "आप इस मौसममें यह पोस्तीन पहने हुए हैं!" इस पर नादिरशाहने उत्तर दिया कि "बादशाह सलामत, मुझे यह पोस्तीन ईरानसे हिन्दुस्तान तक ले आया और तुम्हें इस मुलायम तनज़ेबने दिल्लीके द्वारों तक भी न पहुँचाया!" तात्पर्य यह है कि कठिनाई झेलनेवाला मनुष्य सब कुछ कर सकता है, परंतु फली फूली चूकनेवालेसे कुछ भी नहीं हो सकता। अत एव यदि किसी मनुष्यकी उच्च पद पर पहुँचनेकी अभिलाषा है तो उसको स्वयं अपने पर निर्भर रहना चाहिए। जिस बातमें उच्च पदकी इच्छा हो, उसमें दूसरों पर कभी निर्भर न रहना चाहिए। स्मरण रहे कि केवल यह समझ लेना कि हम सब कुछ कर सकते हैं और फ़िज़ूलका झूठा घमंड रखना, इसका नाम आत्मनिर्भरता नहीं है। आत्मनिर्भरता स्वयं प्रत्येक कामके करनेको कहते हैं। आत्मनिर्भर मनुष्य स्तंभके समान होता है।

आत्मनिर्भरता प्राप्त करनेके लिए यह आवश्यक है कि मनुष्य दूसरोंकी सहायता करनेके लिए तैयार रहे; परन्तु स्वयं सहायता न ढूँढे। जीवनके आरंभसे ही यह सोच ले कि जीवन एक ऐसा

युद्ध है कि जिसमें उसे स्वयं ही लड़ना है और स्वयं ही योद्धा बनना है। इस युद्धमें किरायेकी फौजसे काम नहीं चलता और दूसरोंके लड़नेसे विजय नहीं होसकती। साथ ही इस युद्धसे बचाव भी नहीं होसकता। इस युद्धसे बचना मृत्यु है। यदि बचोगे तो मरोगे और यदि भागोगे तो भी मरोगे। दूसरे मनुष्य तुम्हारी सहायता नहीं कर सकते। उनको अपने बहुतसे काम हैं। बहुतसे झगड़े उनके पीछे लगे हुए हैं। उन्हें इतना अवकाश कहाँ कि तुम्हारी सहायता करें। अतएव तुम्हें स्वयं ही लड़ना होगा और विजय प्राप्त करना होगा। इस युद्धमें विजय पानेके लिए केवल एक उपाय है और वह आत्मनिर्भरताका प्राप्त करना है।

जिन बातोंकी कमी तुम अपनेमें देखो उनको पूरा करनेका उद्योग करो। जैसे यदि तुम्हें इच्छा है कि तुम बातचीत करना सीख जाओ तो तुम्हें उचित है कि तुम अपनेको ऐसे कार्योंमें लगाओ जिनमें कि तुम्हें बोलना ही पड़े। यदि तुम्हें कुछ शोक रहता हो और हँसी खुशीसे तुम्हारा समय न बीतता हो तो तुम्हें चाहिए कि ऐसे मनुष्योंकी संगतिमें बैठो जो हँसमुख हों। ऐसा करनेमें चाहे तुम्हें कितनी ही कठिनाई हो, तुम इसकी कोई परवा मत करो। यदि तुम देखते हो कि तुममें कोई शक्ति नहीं है, परंतु वही शक्ति किसी दूसरे मनुष्यमें है तो तुम उससे कदापि ईर्ष्या या द्वेष मत करो और न उसे देखकर कभी अपने मनमें कुढ़ो; किन्तु तुम्हें चाहिए कि तुम उसे देख कर प्रसन्न होओ और इस बातका प्रयत्न करो कि वह मार्ग तुम्हें भी मिल जावे जिससे

उसने उस शक्तिको प्राप्त किया है । तुम आत्मनिर्भरता पर विश्वास रक्खो और अपना कर्तव्य भली भाँति पालन करते जाओ। वह शक्ति तुममें अवश्य आजावेगी। प्रत्येक व्यक्तिको जान लेना चाहिए कि मैं एक बड़ा भारी खज़ाना हूँ। खज़ाना ही नहीं किन्तु एक खानि हूँ जिसमें बड़े बड़े अमूल्य रत्न भरे हुए हैं। आवश्यकता केवल इतनी है कि उद्योग करके उनको निकाल लिया जावे; परंतु स्मरण रहे कि बिना हाथपैर हिलाये उनकी प्राप्ति नहीं हो सकती।

मनुष्यको उचित है कि दिन दिन अपनी उन्नति करता जाय और आगे आगे बढ़ता जाय । प्रायः मनुष्य दूसरोंसे आगे बढ़नेका उद्योग किया करते हैं; परंतु यह उनकी भूल है। दूसरोंसे आगे बढ़नेकी बजाय अपनेसे आगे बढ़नेका उद्योग करना चाहिए। ऐसा करनेसे बराबर उन्नति होती रहेगी और तमाम बातें ठीक ठीक बढ़ती जावेंगी। संसारमें जितने मनुष्योंने उन्नति की है सबने इसी बात पर पूर्ण रूपसे ध्यान दिया है कि आए दिन पिछले दिनसे अधिक अधिक उन्नति होती जाय ।

जितने हम परसों थे उससे कल आगे बढ़े और जितने कल थे उससे आज आगे बढ़े और जितने आज हैं उससे कल बढ़ेंगे। यह विचार सफलताका मूल है। दूसरोंके साथमें मुक़ाबला करना अथवा उनसे आगे बढ़नेका उद्योग करना निःसंदेह अच्छा है, परंतु इतना अच्छा नहीं है जितना अपनेको दिन दिन आगे बढ़ानेका उद्योग करना। आत्मनिर्भरतासे यह बात प्राप्त होती है और इस बातसे आत्मनिर्भरता प्राप्त होती है। एकका दूसरेसे घनिष्ठ संबन्ध है।

अत एव प्रत्येक मनुष्यका कर्तव्य है कि अपनी उन्नतिमें सदा दत्त-चित्त रहे; कठिनाई और भयके समय निराश न हो जावे। बहुतसी कठिनाइयाँ ऐसी होती हैं कि जब तक उनसे भय किया जाता है तब तक वे भारी मालूम होती हैं, परंतु जब उनके जीतनेका उद्योग किया जाता है तब वे कुछ भी नहीं रहतीं।

आत्मनिर्भर मनुष्य दूसरोंके यशके आश्रय पर कभी नहीं रहता। वह स्वयं अपने लिए विचार करता है, स्वयं ही उद्योग करता है, और अपने पर ही निर्भर रहता है। परंतु इससे यह नहीं समझ लेना चाहिए कि ऐसा करते हुए हम अपने शुभ-चिन्तकोंकी शिक्षा भी न सुनें। यदि वे सच्चे भावसे हमें मार्ग बतलाते हों तो अवश्य सुनना चाहिए; परंतु सच्चे मित्र संसारमें बहुत कम मिलते हैं। सच्चे मित्रोंकी आवश्यकता भयके समय हुआ करती है, परंतु प्रायः ऐसा देखा गया है कि जो बड़े भारी मित्र बने होते हैं, वे भय या दुःखके समय 'टाँय टाँय फिस' निकल जाते हैं। सुखके सब साथी हैं, दुखके समय सहायता करनेवाले बिरले ही वीर होते हैं। अतएव यह उचित है कि आपत्तिके समय मनुष्य अपने पाँव पर खड़े रहनेके योग्य हो। जितना वह आप-त्तिका सामना करेगा उतना ही सबल होता जायगा और दूसरोंको भी सहायता देनेके योग्य होता जायगा। फिर उसके जीवनसे सदा दूस-रोंको सहायता मिला करेगी और वह आत्मनिर्भरताके माहात्म्यका एक जीवित उदाहरण बन जायगा।

दयाचन्द्र जैन बी. ए.।
चिरंजीलाल माथुर बी. ए.।

पद्मनन्दि और विनयसेन ।

(जैनसिद्धान्त भास्करके एक आक्षेपपर विचार)

भास्करके नये अंकमें मुझ पर जो अनेक आक्षेप हैं उनमें एक आक्षेप इस विषयको लेकर किया गया है कि वीरसेन और जिनसेनकी परम्परामें पद्मनन्दि और विनयसेन नहीं हुए हैं। यह एक ऐसा प्रश्न है कि इस पर भद्रता और शिष्टताके साथ वर्षोंतक विचार किया जा सकता था; परन्तु सेठ पद्मराजजीको उनके ऐतिहासिक पण्डित्यके अभिमानने इतना असहिष्णु बना दिया है कि एक ही बारके उत्तरके प्रत्युत्तरमें वे शिष्टता और भद्रताकी रक्षा न कर सके । आपेसे बाहर होकर उन्होंने मेरी अनभिज्ञता आदिकी गहरी समालोचना कर डाली और इस बातको सर्वथा भुला दिया कि इतिहासका निर्णय अध्ययन और विचारसे होता है क्रोध और अभिमानसे नहीं । हुआ भी वही; मैंने सेठजीके द्वितीय तृतीय अंकके आक्षेपका जो उत्तर जैनहितैषीके भाग ९ अंक ९ में दिया था उस पर वे ज़रा भी विचार न कर सके । यदि करते और इतिहासको इतिहास समझते–तो उन्हें यह प्रत्युत्तर लिखनेकी आवश्यकता ही न होती–उसीमें समाधान हो जाता ।

मुझे यदि यह मालूम होता कि सेठजी भास्करके सम्पादक केवल इस लिए बने हैं कि लोग उन्हें बड़ा भारी विद्वान् समझें, और जहाँ तहाँ उनकी इतिहासज्ञताके गीत गाये जाने लगें, तो मैं उक्त आक्षेप पर कुछ भी नहीं लिखता; चुप रह जाता। मेरी इसमें कुछ हानि भी न थी।

सेठजीकी प्रशंसासे समाजका भी कुछ आने जानेवाला न था; सिवाय इसके कि सेठोंकी प्रशंसा और प्रतिष्ठा बढ़ानेके लिए उसने जो सभापति आदि बनानेके कई द्वार खोल रक्खे हैं उनमें एककी वृद्धि और हो जाती । परन्तु मैंने यह सोचकर कि एक ऐतिहासिक प्रश्नका निबटारा हो जायगा इस विषयमें लिखना आवश्यक समझा और हितैषीके ९ वें भागमें उन बातोंका खुलासा कर दिया जिनके कारण मैंने १ वीरसेन, २ पद्मनन्दि, ३ जिनसेन और ४ विनयसेन इस आचार्य-परम्पराका निश्चय किया था । मैं अपने विचारशील पाठकोंसे सविनय प्रार्थना करता हूँ कि वे जैनहितैषी भाग ९ पृष्ठ ५२२ निकालकर मेरा लेख एक बार अवश्य पढ़ जावें और उसके बाद भास्करकी वर्तमान संख्याका इस विषय सम्बन्धी लेख पढ़ें । इसके बाद निश्चय करें कि सेठजीने मुझ पर जो आक्रमण किया है वह कहाँ तक ठीक है । पर यहाँ मैं यह प्रार्थना किये बिना नहीं रह सकता कि विचार करते समय इस बातको आप भूल जावें कि भास्कर खूब मोटा ताजा है, बहुमूल्य है और उसके सम्पादक एक धनी हैं; पर जैनहितैषी जरासा है, आडम्बरशून्य है और उसका सम्पादक जैनसमाजका एक निर्धन अल्पबुद्धि सेवक है । मोटाई छोटाई छोड़कर आप लोग सिर्फ दोनोंकी युक्तियोंको पढ़कर ही कुछ निश्चय करें ।

इस प्रश्नके सम्बन्धमें मैं यह निवेदन कर देना चाहता हूँ कि मैं वीरसेनके बाद पद्मनन्दि और जिनसेनके बाद विनयसेनको मानता हूँ, सो इसका मतलब यह नहीं कि मैं इससे विरुद्ध बात माननेके

लिए तैयार ही नहीं हूँ । नहीं, यदि कोई विद्वान् मेरी दलीलोंको काट दे तो मैं बड़ी खुशीसे माननेको तैयार हूँ। मैं कोई सेठ नहीं, कोई इतिहासका विद्वान् नहीं, मेरे हाथमें कोई बड़ा भारी पुस्तकभंडार भी नहीं; केवल एक विद्यार्थी हूँ, इस लिए मुझे इस बातका डर नहीं है कि लोग मेरे विषयमें क्या सोचेंगे । इस तरहका खयाल सेठ पद्मराजजी जैसे धनियों और तिहासज्ञोंको ही हो सकता है और शायद इसी खयालसे वे युक्तियोंकी ओर जरा भी ध्यान न देकर केवल आक्रमण करके–भलाबुरा कहके अपनी प्रतिष्ठाकी रक्षा करना चाहते हैं ।

अपनी मानताकी पुष्टिमें और सेठजीकी मानताके विरुद्धमें मैं हितैषीके उल्लेखित अंकमें काफी प्रमाण दे चुका हूँ; परन्तु पाठकोंको यह विषय स्पष्ट रीतिसे समझमें आ जावे इसके लिए संक्षेपमें यहाँ भी कुछ निवेदन कर देना चाहता हूँ। जो बातें पीछेसे मालूम हुई हैं उनको भी मैं इसमें शामिल कर दूँगा ।

संवत् ९०९ के बने हुए दर्शनसारमें ये गाथायें लिखी हैं:–

सिरिवीरसेणसीसो जिणसेणो सयलसत्थविण्णाणी ।
सिरि पउमणंदिपच्छा चउसंघसमुद्धरणधीरो ॥
तस्स य सीसो गुणवं गुणभद्दं दिव्वणाणपरिपुण्णो ।
पक्खोववासमंडिय महातवो भावलिंगो य ॥
तेण पुणो विय मिच्चं णेऊण मुणिस्स विणयसेणस्स ।
सिद्धंतं घोसित्ता सयं गयं सग्गलोयस्स ॥

पहली गाथाका अर्थ यह है कि श्रीवीरसेनाचार्यके शिष्य

जिनसेन—जो कि सम्पूर्ण शास्त्रोंके ज्ञाता थे—श्री पद्मनन्दिके पश्चात् चारों संघोंका उद्धरण करनेमें समर्थ अर्थात् आचार्य हुए ।

दूसरी तीसरी गाथाका अर्थ यह है कि फिर उनके शिष्य गुणवान् गुणभद्र हुए जो कि दिव्यज्ञानसे पूर्ण, :एक एक पक्षका उपवास करनेवाले, बड़े भारी तपस्वी और सच्चा मुनि लिङ्ग धारण करनेवाले थे । उन्होंने श्रीविनयसेन मुनिकी मृत्यु होने पर सिद्धान्तोंका उपदेश किया और पीछे वे भी स्वर्गलोकको सिधारे ।

इन गाथाओंके आगेकी गाथाओंमें काष्ठासंघके उत्पादक कुमारसेनका जिक्र किया गया है और उसे विनयसेनका दीक्षित बतलाया है:—

आसी कुमारसेणो णंदियडे विणयसेण दिक्खय ओ ।
सण्णासभंजणेण य अगहियपुणदिक्खओ जाओ ॥

अर्थात् उक्त विनयसेन आचार्यका एक दीक्षित शिष्य कुमारसेन नन्दीतट नगरमें था । उसने एक बार संन्यास भंग करके फिर दीक्षा नहीं ली । इत्यादि ।

इन गाथाओंके आधारसे मैंने निश्चय किया है कि वीरसेनके बाद जिनसेन, जिनसेनके बाद विनयसेन और विनयसेनके बाद गुणभद्र आचार्य हुए हैं । इसकी पुष्टिमें बहुतसी युक्तियाँ दी जा सकती हैं:—

१ दर्शनसार इतिहासकी दृष्टिसे बहुत महत्त्वका ग्रन्थ है । उसमें प्रत्येक संघकी उत्पत्तिका संवत् तक दिया है । इसके सिवाय वह बहुत प्राचीन है । विनयसेन आचार्यसे लगभग १९० वर्ष

पीछे ही वह लिखा गया है। इससे बीसों कल्पित आडम्बरपूर्ण पट्टावलियोंकी अपेक्षा उसकी कीमत अधिक है।

२ विनयसेनके आचार्य होनेमें तो कोई भी सन्देह नहीं हो सकता। कारण, एक तो कुमारसेन उनका दीक्षित शिष्य था, ऐसा दर्शनसारमें स्पष्ट लिखा है और दीक्षा वही दे सकता है जो संघका आचार्य होता है। दूसरे जिनसेन स्वामीकी मृत्यु शक ७६९ के लगभग हुई है और गुणभद्रने महापुराणको शक ८२० में पूर्ण किया है। बीचमें वह बहुत समय तक अधूरा पड़ा रहा है और इसका कारण यही मालूम होता है कि गुणभद्रके पहले विनयसेन आचार्य हुए थे और किसी कारणसे उन्होंने उसे बनाना ठीक न समझा होगा। संभव है कि उनमें काव्य रचनेकी ही प्रतिभा न होगी। यह नियम नहीं कि जो विद्वान् हो उसे ग्रन्थकर्त्ता होना ही चाहिए। विद्वत्ता एक बात है और ग्रन्थकर्तृत्व दूसरी बात है। तीसरे विनयसेनका उल्लेख स्वयं जिनसेन स्वामीने पार्श्वाभ्युदय काव्यमें किया है और उन्हें अपना गुरुभाई और महामुनि बतलाया है–(श्रीवीरसेनमुनिपादपयोजभृंगः श्रीमानभूद्विनयसेनमुनिर्गरीयान्)। अतएव गुणभद्र शिष्यकी अपेक्षा उनकी दृष्टिमें विनयसेन सतीर्थकी योग्यता ही विशेष जँची होगी और इसलिए उन्होंने विनयसेनको ही आचार्यपद दिया होगा।

३ वीरसेनके बाद पद्मनन्दि आचार्य हुए। इस विषयमें सबसे बड़ी शंका यह है कि ‘ पद्मनन्दि ’ यह नाम सेनसंघके नामों सरीखा नहीं है किन्तु नन्दिसंघ सरीखा है, इस लिए वे वीरसेनके बाद

आचार्य नहीं हो सकते । परन्तु यह ठीक नहीं । क्योंकि एक तो नन्दि, सेन, देव, सिंह इन चारों संघोंमें ऐसा द्वेषभाव या बड़ा भारी भेद न था कि एक संघका दीक्षित विद्वान् दूसरे संघका आचार्य न हो सके । आवश्यकता होने पर दूसरे संघके मुनिको भी आचार्य बनाते होंगे । पद्मनन्दिका भी ऐसा ही होना संभव है । सेनसंघके आचार्य होने पर शायद उनका राज, वीर, भद्र, सेन, पदान्तवाला नाम भी रक्खा गया हो; परन्तु पिछला नाम विशेष प्रसिद्ध होनेके कारण उनका उसी नामसे उल्लेख किया गया हो । दूसरे यह जो नियम है कि सेनसंघके नामान्तमें भद्र, सेन, वीर, राज; नन्दि-संघमें नन्दि, चन्द्र, कीर्ति, भूषण; सिंहमें सिंह, कुंभ, आस्रव, सागर; देवमें देव, दत्त, नाग और तुंग होते हैं सो यह ब्रह्माका वाक्य नहीं है कि सर्वत्र इसकी पालना होती ही रही हो । इसके अपवाद भी दिखलाई देते हैं । गुणभद्र स्वामीने उत्तरपुराणकी प्रशस्तिमें जिन-सेनके साथ अपने दशरथ नामक गुरुका भी नामोल्लेख किया है— ('दशरथगुरुरासीत्तस्य धीमान्सधर्मा' इत्यादि) । यह नाम ऐसा है कि इसमें चारों संघोंमेंसे किसीका भी अन्त्यनामपद नहीं है; परन्तु होंगे ये अवश्य ही किसी संघके । इसी तरह विक्रान्तकौरवीय नाटककी जो प्रशस्ति भास्करमें प्रकाशित हो चुकी है उसमें समन्त-भद्रका शिष्य शिवकोटि और शिवायनको बतलाया है और उन्हींकी परम्परामें वीरसेन जिनसेन आदिको बतलाया है; परन्तु शिवकोटि और शिवायन नाममें भी किसी संघका चिन्ह नहीं है । 'इन्सक्रि-प्शन्स एट श्रवणबेलगोला' के ४७ वें शिलालेखमें वीरनन्दिके

श्रीगोल्लाचार्य नामक प्रसिद्ध शिष्यका उल्लेख है। इसी तरह ४८ वे लेखमें दिवाकरनन्दिके शिष्य मलधारी देव और उनके शिष्य शुभ-चन्द्रदेवका उल्लेख है। इस तरहके और भी अनेक उदाहरण दिये जा सकते हैं जिससे यह बात स्पष्ट हो जाती है कि उक्त नामान्तपदोंके नियमका कहीं कहीं उल्लंघन भी किया जाता था। संभव है कि 'पद्मनन्दि' नाम भी उसी अपवादका एक उदाहरण हो।

४ भास्करके द्वितीय–तृतीय अंकमें मङ्गराज कविका एक शिला-लेख प्रकाशित हुआ है जो १३५५ शक संवत्का लिखा हुआ है। उसके श्लोक १८–१९–२०–२१ में लिखा हुआ है कि–भट्ट अकलंकदेवके स्वर्गवास होनेके बाद देव, नन्दि, सिंह, सेन ये चार संघ हुए। यदि यह बात ठीक है तो कहना होगा कि लगभग वीरसेन और पद्मनन्दि स्वामीके समय ही सेनसंघ भेद हुआ होगा और इस लिए यह बहुत संभव है कि उस समय नामके विषयमें यह नियम न बना हो कि सेनसंघके आचार्यके नामान्तमें सेन या भद्रादि होना ही चाहिए। गुणभद्र स्वामी उत्तरपुराणकी प्रश-स्तिमें अपने सेनसंघका उल्लेख करते हुए 'वीरसेन' से ही उसकी परम्परा शुरू करते हैं। इससे भी मंगराज कविके कथनकी सत्यता प्रतीत होती है। अभी तक अकलंकदेवसे पहलेके बने हुए किसी भी ग्रन्थमें या शिलालेखादिमें इन नन्दि आदि संघोंका उल्लेख हीं मिलता है। पद्मपुराणमें संघका जिक्र भी नहीं, भगव-वतीआराधनामें भी नहीं, अकलंक, विद्यानन्द, माणिक्यनन्दि प्रभाचन्द्र, समन्तभद्र, पूज्यपाद आदिके ग्रन्थोंमें नहीं और ये ही सब

ग्रन्थ हैं जो अकलंकदेवके स्वर्गवासके पहले पहलेके हैं । इससे भी मंगराजका कथन ठीक मालूम होता है। पट्टावलियोंको छोड़कर और श्रुतावतारकथाको छोड़कर और कोई प्रमाण ऐसा नहीं मिला है जो अर्हद्बलि आचार्यके समय नन्दिसेन आदि संघोंका भेद होना बतलाता हो । बल्कि ऐसे ही प्रमाण मिल रहे हैं जिससे अकलंकदेवके समयमें ही इन संघोंका प्रारंभ जान पड़ता है । आश्चर्य नहीं जो अकलंकदेवसे देवसंघ, वीरसेनसे सेनसंघ और माणिक्यनन्दिसे नन्दिसंघ प्रारंभ हुआ है । इस विषयमें अभी हम निश्चयपूर्वक कुछ भी नहीं कह सकते हैं। समय आ रहा है जब हम इस विषयमें एक विस्तृत लेख प्रकाशित करनेको समर्थ हो सकेंगे। इस समय हम केवल यही सिद्ध कर रहे हैं कि वीरसेनके बाद पद्मनन्दिका आचार्य होना असंभव नहीं है ।

९ वीरसेन स्वामीके समयमें एक पद्मनन्दि नामक आचार्यका पता भी लगता है । आचार्य प्रभाचन्द्रने उन्हें अपना गुरु बतलाया है:—

श्रीपद्मनन्दिसैद्धान्तशिष्योऽनेकगुणालयः ।
प्रभाचन्द्रश्चिरं जीयाद्रत्निनन्दिपदे रतः ॥

न्यायकुमुदचन्द्रोदयके कर्त्ता इन प्रभाचन्द्रका स्मरण जिनसेन स्वामीने आदिपुराणमें किया है और प्रभाचन्द्र, वीरसेनके समकालीन विद्वान् थे । अतएव उसी समय प्रभाचन्द्रके गुरु पद्मनन्दिका होना और उनका वीरसेनके पद पर आचार्य बनना सर्वथा संभव है । प्रभाचन्द्रने उन्हें 'सैद्धान्ती' विशेषण दिया है और वीरसेनस्वामी

भी सिद्धान्तशास्त्रोंके टीकाकार थे, अतएव वे उनके पदके सर्वथा योग्य कहे जा सकते हैं । प्रभाचन्द्रने अपनेको अकलंकदेवका भी शिष्य बतलाया है और अकलंकदेव वीरसेन जिनसेन आदि सबके स्थान अमोघवर्षकी राजधानी मान्यखेट या उसके आसपास रहे हैं अतएव प्रभाचन्द्रके गुरु पद्मनन्दि भी उनके समीपी होंगे और इस कारण भी उनका वीरसेनके बाद आचार्य होना विशेष संभव जान पड़ता है ।

६ इंद्रनन्दिकृत श्रुतावतारमें लिखा है चित्रकूटपुरनिवासी एलाचार्य नामके विद्वान् सिद्धान्त शास्त्रोंके ज्ञाता हुए और उनके पास वीरसेन स्वामी (जिनसेनके गुरु) ने अध्ययन करके धवलादि टीका ग्रन्थ लिखे । इस परसे मैंने अपने पिछले लेखोंमें यह कल्पना की थी कि शायद इन एलाचार्यका ही दूसरा नाम पद्मनन्दि हो और वीरसेन स्वामीके बाद वे ही उनके पद पर आचार्य बना दिये गये हों तो संभव हो सकता है । इस पर सेठ पद्मराजजी बेतरह बिगड़े हैं और अपने पास इतिहासकी पाठशालाका अभाव बतलाकर उन्होंने मुझे उसमें पढ़ानेसे इंकार कर दिया है ! पर जान पड़ता है आप मेरे अभिप्रायको समझे नहीं ! कठिनाई तो यही है कि आपका बढ़प्पन और अभिमान आपको कुछ समझ सकनेकी चेष्टा ही नहीं करने देता है । अस्तु । मैं अपने ' कुन्दकुन्दाचार्य ' नामक विस्तृत लेखमें बतला चुका हूँ कि पट्टावलीमें जो एलाचार्य, गृध्रपिच्छ, वक्रग्रीव नाम कुन्दकुन्दके हैं उनके लिए कोई प्रमाण नहीं है; वे बिलकुल कल्पित हैं । सेठजीको उस लेखकी युक्तियों पर विचार

करना चाहिए और वीरसेनके समयमें एलाचार्यका नाम सुनकर घबड़ा न जाना चाहिए । मेरा यह अनुमान है कि जब कुन्दकुन्दका नाम एलाचार्य नहीं था और एलाचार्य वीरसेनके समकालीन हैं तब संभव है कि उन्हींका नाम पद्मनन्दि भी हो और इन पद्म-नन्दीके दूसरे नाम एलाचार्यको, भ्रमसे पहले पद्मनन्दि अर्थात् कुन्दकुन्दके नामोंमें पट्टावलीके लेखक महात्माओंने जोड़ दिया हो। चूँकि दर्शनसारमें पद्मनन्दिको जिनसेनका पूर्ववर्ती आचार्य बतलाया है, इसलिए कोई आश्चर्य नहीं कि एलाचार्य ही वे पद्मनन्दि हों। खेद है कि सेठजी बातके समझे बिना ही दूसरोंपर आक्रमण कर बैठते हैं और मजा यह कि अपनी बातकी पुष्टिमें कोई प्रमाण देने-की भी आवश्यकता नहीं समझते हैं ।

७ यह पूछा गया है कि विनयसेन और पद्मनन्दिका उल्लेख जिनसेन गुणभद्र: हस्तिमल्लादिने तथा हरिवंशपुराणके कर्त्ताने क्यों नहीं किया? इसका उत्तर यह है कि एक तो किसीके उल्लेख न करनेसे उनका अस्तित्व असिद्ध नहीं हो सकता; यह ग्रन्थकर्त्ताकी इच्छा है कि चाहे जिस आचार्यका स्मरण करे । आपके हरिवंशके कर्त्ताने वीरसेनका स्मरण किया है; परन्तु उनके समकालीन या कुछ पूर्ववर्ती अकलंक विद्यानन्द प्रभाचन्द्र आदि सुप्रसिद्ध विद्वानोंका स्मरण नहीं किया है जब कि आदिपुराणके कर्ता न इन सबका किया है । दूसरे हस्तिमल्ल बहुत पीछेके लेखक हैं । उन्होंने उन्हींका उल्लेख किया है जिनकी रचना उन्होंने देखी थी या जिनका नाम सुना था । पर विनयसेन और पद्मनन्दि ग्रन्थकर्त्ता नहीं मालूम

होते; वे विद्वान् आचार्य ही थे। इस कारण भी उनका उल्लेख जहाँ तहाँ नहीं मिलता। तीसरे पद्मनन्दि और विनयसेन गुरुपरम्परामें नहीं है, पट्टपरम्परामें हैं। वीरसेनके शिष्य जिनसेन, जिनसेनके गुणभद्र, गुणभद्रके लोकसेन यह तो शिष्यपरम्परा है और वीरसेनके पट्टपर पद्मनन्दि, फिर जिनसेन, विनयसेन और फिर गुणभद्र यह पट्टपरम्परा है। सो उल्लेख करनेवालोंने गुरुपरम्पराका ही किया है। पद्धति भी यही है। और यदि किसीने उल्लेख नहीं भी किया, तो इससे क्या? जब एक ९ वीं शताब्दिका ग्रन्थकर्त्ता अपने ऐतिहासिक ग्रन्थमें दोनोंका विश्वस्त परिचय दे रहा है, तब उसमें आप सन्देह क्यों करते हैं? क्या उक्त ग्रन्थको आप अपनी पट्टावलियोंसे कम प्रामाणिक समझते हैं? खेद है कि आपने दो तीन बार उल्टा सीधा बहुत कुछ लिखनेका कष्ट उठाया, पर यह एक बार भी न लिखा कि देवसेनकी बात अमान्य क्यों है?

८ पहले जो दर्शनसारकी गाथा दी गई है, यदि उसका अर्थ यह किया जाय कि श्रीपद्मनन्दिके पश्चात् वीरसेनके शिष्य जिनसेन संघके स्वामी हुए, अर्थात् पहले पद्मनन्दि, फिर जिनसेन हुए, तो यह भी हो सकता है और तब इससे श्रुतावतारकी परम्परा भी मिल जाती है। हम यह माननेके लिए भी तैयार हैं; परन्तु तब भी पद्मनन्दि–सेनसंघकी आचार्यपरम्परासे अलग नहीं हो सकते।

९ पद्मनन्दि और विनयसेन जिनसेनादिके समकालीन विद्वान् थे, पर पट्टावलीके आचार्य नहीं थे इसके लिए भी आपने कोई प्रमाण नहीं दिया। पर हमारे पास एक प्रमाण तो यह है कि कुमारसेन

विनयसेनका दीक्षित था। अर्थात् विनयसेनमें दीक्षा देनेकी योग्यता थी। दूसरे देवसेनकी गाथाओंमें जो यह लिखा है कि जिनसेन श्रीपद्मनन्दिके पश्चात् चारों संघका समुद्धरण करनेमें धीर हुए, सो यही बतलाता है कि जिनसेनके पहले पद्मनन्दि चारों संघोंके उद्धारका कार्य करते थे अर्थात् आचार्य थे। चार संघमें मुनि भी शामिल हैं और उनका उद्धरण या उद्धार या शासन आचार्य ही कर सकता है, साधारण मुनि या विद्वान् नहीं। इसी तरह आगेकी गाथामें स्पष्ट कहा है कि विनयसेनकी मृत्यु होने पर गुणभद्रने सिद्धान्तोंका घोषण किया, अर्थात् इसके पहले विनयसेन यह काम करते थे और कुमारसेन उसी समयका दीक्षित था।

१० सेनगणकी पट्टावली कोई प्रामाणिक पट्टावली नहीं है। यदि आप थोड़ीसी भी बुद्धि लगाकर विचार करते, तो उसके जोर पर इतनी उछल कूद मचानेको तैयार न होते। मैंने हितैषीके उक्त पिछले अंकमें लिखा था कि सेनगणकी पट्टावलीका लेखक जिनसेनाचार्यको धवल-महाधवल-पुराणादि सब ग्रन्थोंका रचयिता और गुणभद्रको ग्यारह अंग चौदह पूर्वका ज्ञाता बतलाता है। इसीसे उसकी विद्वत्ताका पता लगता है; परन्तु आपने उसकी ओर जरा भी ध्यान न दिया। उक्त पट्टावली कितनी रद्दी और कल्पित है, इसका विचार हमने भास्करकी समालोचनामें भी किया है। यहाँ इतना ही कहना बस है कि उसको प्रमाण मानकर आप देवसेनके दर्शनसारको अप्रमाणिक नहीं ठहरा सकते। हमसे आप सेनगणकी दूसरी प्रामाणिक पट्टावली माँगते हैं; सो यह काम तो आपका है। यदि

प्रामाणिक नहीं मिलती, तो क्या हम उस आप ही जैसे ऐतिहासिक-की लिखी हुई ऊँटपटाँग बातोंको मान लें ?

मुझे आशा नही कि भास्करसम्पादक इन बातों पर विचार करेंगे; परन्तु पाठकोंसे बहुत कुछ आशा है। वे ही इस बातका फैसला करेंगे कि वास्तवमें पद्मनन्दि और विनयसेन सेनसंघके आचार्य थे या नहीं। इस विषयमें अब मैं आगे और कुछ न लिखूँगा।

भट्टाकलङ्कदेव।

श्रीमद्भट्टाकलङ्कस्य पातु पुण्या सरस्वती।
अनेकान्तमरुन्मार्गे चन्द्रलेखायितं यया॥
—ज्ञानार्णव।

दिगम्बरजैनसम्प्रदायमें समन्तभद्रस्वामीके बाद जितने नैयायिक और दार्शनिक विद्वान् हुए हैं उनमें अकलङ्कदेवका नाम सबसे पहले लिया जाता है। उनका महत्त्व केवल उनकी ग्रन्थ-रचनामें ही नहीं है-उनके अवतारने जैनधर्मकी तात्कालिक दशा पर भी बहुत बडा प्रभाव डाला था। वे अपने समयके दिग्विजयी विद्वान् थे। जैनधर्मके अनुयायियोंमें उन्होंने एक नया जीवन डाल दिया था। यह उन्हींके जीवनका प्रभाव था जो उनके बाद ही कर्नाटक प्रान्तमें विद्यानन्द, प्रभाचन्द्र, माणिक्यनन्दि, वादिसिंह, कुमारसेन जैसे बीसों तार्किक विद्वानोंने जन्म लेकर जैनधर्मको बौद्धादि प्रबल परवादियोंके लिए अजेय बना दिया था। उनकी ग्रन्थरचयिताके

रूपमें जितनी प्रसिद्धि है उससे कहीं अधिक प्रसिद्धि वाग्मी वक्ता या वादीके रूपमें थी। उनकी वक्तृत्वशक्ति या सभामोहिनी शक्तिकी उपमा दी जाती है। महाकवि वादिराजकी प्रशंसामें कहा गया है कि वे सभामोहन करनेमें अकलङ्कदेवके[1] समान थे।

प्रसिद्ध विद्वान् होनेके कारण अकलंकदेव 'भट्टाकलङ्क' के नामसे प्रसिद्ध थे। भट्ट उनकी एक तरहकी पदवी थी। 'कवि'[2] की पदवीसे भी वे विभूषित थे। यह एक आदरणीय पदवी थी जो उस समय प्रसिद्ध और उत्तम लेखकोंको दी जाती थी। लघु समन्तभद्र और विद्यानन्दने उनको 'सकलतार्किकचक्रचूड़ामणि' विशेषण देकर स्मरण किया है। अकलङ्कचन्द्रके[3] नामसे भी उनकी प्रसिद्धि है।

अकलङ्कदेवको कोई जिनदास नामक जैनब्राह्मण और जिनमती

---

१ सदसि यदकलङ्कः कीर्तने धर्मकीर्तिः
वचसि सुरपुरोधा न्यायवादेऽक्षपादः।
इति समयगुरूणामेकतः संगतानां
प्रतिनिधिरिव देवो राजते वादिराजः॥
(Vide Ins No. 39. Nagar taluy by mr. Rice.)

२ कविशब्दकी परिभाषाके लिए देखो डा० भाण्डारकरकी १८८३-८४ की हस्तालिखित संस्कृत ग्रन्थोंकी रिपोर्ट, पृष्ठ १२२। न्यायकुमुदचन्द्रोदयके कर्त्ता प्रभाचन्द्रको भी 'कवि' की पदवी प्राप्त थी, यद्यपि वे किसी काव्यके रचयिता नहीं हैं।

३ अकलङ्कचन्द्र नामके एक भट्टारक भी हो गये हैं।

ब्राह्मणीका पुत्र और कोई पुरुषोत्तम मंत्री तथा पद्मावती मंत्रिणीका पुत्र बतलाते हैं; परन्तु ये दोनों ही नाम कथाकारोंके गढ़े हुए जान पड़ते हैं–वे वास्तवमें राजपुत्र थे। उनके राजवार्तिकालंकार नामक प्रसिद्ध ग्रन्थके प्रथम अध्यायके अन्तमें लिखा है कि वे **'लघुहव्व'** नामक राजाके पुत्र थे:—

जीयाच्चिरमकलङ्कब्रह्मा लघुहव्वनृपतिवरतनयः।
अनवरतनिखिलविद्वज्जननुतविद्यः प्रशस्तजनहृद्यः॥

और इसमें किसी तरहके सन्देहके लिए अवकाश नहीं है।

अकलङ्कदेवका जन्मस्थान कौन है, इसका पता नहीं चलता। आराधनाकथाकोशके कर्त्ताने उनका जन्मस्थान **मान्यखेट** बतलाया है; परन्तु उस पर विश्वास नहीं किया जा सकता। क्योंकि उस समयके मान्यखेटके राजाओंकी जो शृङ्खलाबद्ध नामावली मिलती है उसमें 'लघुहव्व' नामक राजाका नाम नहीं है; संभवतः वे मान्यखेटके आसपासके कोई माण्डलिक राजा होंगे। एक बार वे राजा साहसतुंग या शुभतुंगकी राजधानी मान्यखेटमें आये थे, इसका उल्लेख मिलता है, शायद इसी कारण कथाकोशके कर्त्ताने उनका जन्मस्थान मान्यखेट बतलाया है। कथाकोशकारको यह मालूम न था कि वे राजपुत्र थे–मंत्रीपुत्र समझकर ही उन्होंने ऐसा लिख दिया जान पड़ता है। 'राजावलीकथे' में अकलंकदेवका जन्मस्थान 'कांची' (कांजीवरम्) बतलाया है। संभव है कि यह सही हो।

कनड़ी भाषामें ' राजावलीकथे ' नामका एक ग्रन्थ है । इसमें जैन इतिहासकथाओंका संग्रह है । ईसाकी १९ वीं शताब्दिके प्रारंभमें देवचन्द्र नामक कविने मैसूर राजवंशकी ' देवीरम्भ ' नामक एक स्त्रीके लिए इस ग्रन्थकी रचना की थी । इस ग्रन्थके आधारसे राइस साहबने अपनी ' इन्स्क्रिपशन्स् एट श्रवणबेलगोला ' नामक प्रसिद्ध पुस्तकमें लिखा है कि अकलङ्कदेव सुधापुरके देशीयगणके आचार्यपद पर प्रतिष्ठित हुए थे और यह स्थान उत्तर कनारामें है। इस समय नार्थकनारामें जो ' सोंड ' नामका नगर है वही प्राचीन सुधापुर है । राइस साहबने विलसन साहबकी ' मैकेंजी कलेक्शन ' (Mecke-nzie collection) नामक पुस्तककी प्रस्तावनाके आधारसे यह भी लिखा है कि पोनतग (Pontaga) के बौद्धकालिजमें अकलङ्कदेवने शिक्षा पाई थी और यह स्थान ट्रिवटूरके निकट बतलाया जाता है ।

अकलङ्कदेवके विषयमें जो कई कथायें हैं उनके अनुसार वे जन्मसे ब्रह्मचारी रहे और विद्या प्राप्त करके दिगम्बराचार्यके पदको प्राप्त हो गये । विद्याकी प्राप्तिमें उन्होंने बहुत कष्ट उठाये । वे किसी बौद्धविद्यालयमें भी पढ़े थे । वे देवसंघके आचार्य बतलाये जाते हैं। देशीयगण जिसका उल्लेख देवचन्द्रने किया है इसी संघका एक गच्छ है । पर इसके लिए कोई पुष्ट प्रमाण नहीं मिलता । अकलंकदेवने स्वयं अपने ग्रन्थोंमें अपने संघका उल्लेख नहीं किया; अपनी गुरु-परम्परा तो बड़ी बात है अपने गुरु तकका भी वे कहीं उल्लेख नहीं करते हैं । मंगराज कविका शक १३५५ का लिखा हुआ एक

विस्तृत शिलालेख है। उससे मालूम होता है कि ये नन्दिसेन आदि चारों संघ अकलङ्कदेवके बाद हुए हैं* । अभी तक अकलंकदेवसे पहलेके बने हुए जितने ग्रन्थ प्राप्य हुए हैं— भगवतीआराधना, पद्मपुराण, जिनशतक (समन्तभद्रकृत), आदि तथा उनके समकालीन विद्वान् विद्यानन्द, प्रभाचन्द्र, माणिक्यनन्दि आदिके जितने ग्रन्थ हैं उनमें किसीमें भी इन संघोंका उल्लेख नहीं मिलता है । इससे भी मंगराजकविके कथन पर विश्वास करनेकी इच्छा होती है कि उस समय नन्दि देव आदि संघ नहीं थे और अकलङ्कदेव किसी एक संघके नहीं किन्तु सम्मिलित दिगम्बर-जैनसंघके आचार्य थे। पर इस प्रश्न पर अभी बहुत कुछ छान-बीन करनेकी आवश्यकता है। क्योंकि श्रुतावतार कथामें लिखा है कि अकलंकदेवसे बहुत पहले विक्रमकी प्रथम शताब्दिके लगभग

---

* ततः परं शास्त्रविदां मुनीनामग्रेसरो भूदकलंकसूरिः ।
मिथ्यान्धकारस्थगिताखिलार्थाः प्रकाशिताः
यस्य वचोमयूखैः ॥ १८ ॥

तस्मिन्गते स्वर्गभुवं महर्षौ दिवःपतिं नर्तुमिव प्रकृष्टां ।
तदन्वयोद्भूतमुनीश्वराणां बभूवुरित्थं भुवि संघभेदाः ॥
स योगिसंघश्चतुरः प्रभेदानासाद्यभूयानविरुद्धवृत्तान् ।
बभावयं श्रीभगवान्जिनेन्द्रश्चतुर्मुखानीव मिथस्समानि ॥१९॥

देवनन्दिसिंहसेनसंघभेदवर्तिनां
देशभेदतः प्रबोधभाजिदेवयोगिनाम् ।
वृत्ततः समस्ततो विरुद्धधर्मसेविनां
मध्यतः प्रसिद्ध एष नन्दिसंघ इत्यभूत् ॥ २० ॥

अर्हद्बलि आचार्यने इन चारों संघोंकी स्थापना की थी । इस बातका उल्लेख और भी कई स्थानोंमें पाया जाता है ।

अकलङ्कदेव बड़े भारी नैयायिक और दार्शनिक विद्वान् हुए हैं। उनकी सबसे अधिक प्रसिद्धि इस विषयमें है कि उन्होंने अपने पाण्डित्यसे बौद्धविद्वानोंको पराजित करके जैनधर्मकी प्रतिष्ठा स्थापित की थी। उनका एक बड़ा भारी शास्त्रार्थ राजा हिमशीतलकी सभामें हुआ था । हिमशीतल पल्लववंशका राजा था और उसकी राजधानी कांची (कांजीवरम) में थी। वह बौद्ध था। इसमें किसी प्रकारका सन्देह नहीं है । यह शास्त्रार्थ ७ दिन तक, किसीके मतसे १७ दिन तक और आराधनाकथाकोशके कर्त्ताके मतसे छह महीने तक हुआ था ! इसमें जैनधर्मको बड़ी भारी विजय प्राप्त हुई और राजा हिमशीतलकी आज्ञासे बौद्ध लोग सीलोनके 'कैंडी' नामक नगरको निर्वासित कर दिये गये । विलसन साहबने भी इस कैंडीके निर्वासित होनेकी बातका उल्लेख किया है । बौद्धोंके साथ शास्त्रार्थ होनेकी तथा उनके जीतनेकी घटनाका उल्लेख श्रवणबेलगोलाकी मल्लिषेणप्रशस्तिमें इस प्रकार किया है:—

तारा येन विनिर्जिता घटकुटीगूढावतारा समं
बौद्धैर्यो धृतपीडपीडितकुदृग्देवार्थसेवाञ्जलिः ।
प्रायश्चित्तमिवांघ्रिवारिजरजः स्नानं च यस्याचर-
द्दोषाणां सुगतः स कस्य विषयो देवाकलङ्कः कृती ॥

चूर्णिः । यस्येदमात्मनोऽनन्यसामान्यनिरवद्यविभवोपवर्णनमाकर्ण्यते:—

राजन्साहसतुङ्ग सन्ति बहवः श्वेतातपत्रा नृपाः
किं तु त्वत्सदृशा रणे विजयिनस्त्यागोन्नता दुर्लभाः।
तद्वत्सन्ति बुधा न सन्ति कवयो वादीश्वरा वाग्मिनो
नानाशास्त्रविचारचातुरधियः काले कलौ मद्विधाः ॥

राजन्सर्वारिदर्पप्रविदलनपटुस्त्वं यथात्र प्रसिद्ध–
स्तद्वत्ख्यातोऽहमस्यां भुवि निखिलमदोत्पाटने पण्डितानां।
नोचेदेषोऽहमेते तव सदसि सदा सन्ति सन्तो महान्तो
वक्तुं यस्यास्ति शक्तिः स वदतु विदिताशेषशास्त्रो यदि स्यात् ॥

नाहंकारवशीकृतेन मनसा न द्वेषिणा केवलं
नैरात्म्यं प्रतिपद्य नश्यति जने कारुण्यबुद्ध्या मया।
राज्ञः श्रीहिमशीतलस्य सदसि प्रायो विदग्धात्मनो
बौद्धौघान्सकलान्विजित्य सुगतः पादेन विस्फोटितः ॥

भावार्थ–जिसने घड़ेमें बैठकर गुप्त रूपसे शास्त्रार्थ करनेवाली तारादेवीको बौद्ध विद्वानोंके सहित परास्त किया। (दूसरे चरणका अर्थ स्पष्ट नहीं होता) और जिसके चरणकमलोंकी रजमें स्नान करके बौद्धोंने अपने दोषोंका प्रायश्चित्त किया, उस महात्मा अकलंकदेवकी प्रशंसा कौन कर सकता है?

सुनते हैं उन्होंने एकबार अपने अनन्य साधारण गुणोंका इस तरह वर्णन किया था–

“ साहसतुंग (शुभतुंग) नरेश, यद्यपि सफेद छत्रके धारण करनेवाले राजा बहुत हैं परन्तु तेरे समान रणविजयी और दानी राजा और नहीं। इसी तरह पण्डित तो और भी बहुतसे हैं;

परन्तु मेरे समान नाना शास्त्रोंका जाननेवाला पण्डित, कवि, वादीश्वर और वाग्मी इस कलिकालमें और कोई नहीं ।

" राजन्, जिस तरह तू अपने शत्रुओंका अभिमान नष्ट करनेमें चतुर है उसी तरह मैं भी पृथ्वीके सारे पण्डितोंका मद उतार देनेमें प्रसिद्ध हूँ । यदि ऐसा नहीं है तो तेरी सभामें जो अनेक बड़े बड़े विद्वान् मौजूद हैं उनमेंसे किसीकी शक्ति हो तो मुझसे बात करे ।

" मैंने राजा हिमशीतलकी सभामें जो सारे बौद्धोंको हराकर तारादेवीके घड़को फोड़ डाला, सो यह काम मैंने कुछ अहंकारके वशवर्ती होकर नहीं किया, मेरा उनमें द्वेष भी नहीं है; किन्तु नैरात्म्य (आत्मा कोई चीज नहीं है क्षणस्थायी है) मतके प्रचारसे लोग नष्ट हो रहे थे, उन पर मुझे दया आ गई और इसके कारण मैंने बौद्धोंको पराजित किया । "

समयविचार ।

अकलंकदेवने यद्यपि अपने किसी ग्रन्थमें अपना समय प्रकट नहीं किया है; परन्तु कितने ही प्रमाणोंसे उनका समय निश्चित किया जासकता है—

१ उपर्युक्त मल्लिषेणप्रशस्तिके श्लोकोंसे जान पड़ता है कि वे साहसतुंगकी सभामें उपस्थित हुए थे और साहसतुंग राष्ट्रकूट या राठोर-वंशका राजा था । इसका प्रसिद्ध नाम शुभतुंग या कृष्णराज था । विक्रमसंवत् ८४० (शकसंवत् ७०५) में जब जिनसेनका हरिवंश-

पुराण बना था उस समय इस कृष्णराजका बेटा इन्द्रायुध या गोविन्द द्वितीय राज्य करता था । इससे मालूम होता है कि कृष्णराजका राज्यकाल इसके पहले था । डा० भण्डारकरने अपने दक्षिणके इतिहासमें लिखा है कि इस राजाने संवत् ८१० से ८३२ तक राज्य किया है । इससे मालूम होता है कि अकलंकदेव ८१० से ८३२ तकके किसी समयमें जीवित थे ।

२ हरिवंशपुराण वि० सं ८४० में बना है । उसमें कुमारसेनका उल्लेख किया गया है और कुमारसेनका उल्लेख विद्यानन्दस्वामीने अपनी अष्टसहस्त्रीके अन्तमें किया है । लिखा है कि उनकी सहायतासे हमारा यह ग्रन्थ वृद्धिको प्राप्त हुआ । अकलङ्कदेव विद्यानन्दसे पहले हैं, क्योंकि उनके अष्टशतीभाष्य पर ही अष्टसहस्त्री लिखी गई है । इससे भी ज्ञात होता है कि अकलंकदेव संवत् ८४० के ही पहले हो चुके हैं । आश्चर्य नहीं कि हरिवंशकी रचनाके समय उनका अस्तित्व न हो ।

३ अष्टसहस्त्रीमें प्रसिद्ध वेदान्ती विद्वान् कुमारिलभट्टका 'भट्ट' नामसे कई जगह उल्लेख किया गया है । कुमारिल भट्टका समय संवत् ७५७ से ८१७ तक निश्चित है । अतएव विद्यानन्दि स्वामी उसीके समयमें अथवा उससे कुछ पीछे हुए होंगे और अकलंक विद्यानन्दसे पहले हुए हैं—अतएव उनका समय विक्रमकी आठवीं शताब्दिका चतुर्थ पाद और नववीं शताब्दिका प्रारंभ समझना चाहिए ।

४ प्रो० के. बी. पाठक और डाक्टर सतीशचन्द्र विद्याभूषण आदि विद्वानोंने भी उन्हें ईस्वीसन् ७५० अर्थात् विक्रम संवत् ८०७ के लगभगका विद्वान् निश्चित किया है।

समसामयिक विद्वान् और शिष्य।

भगवान् अकलंकदेवके समयमें जैनविद्वानोंका ज्वार आया था। उस समय इतने अधिक विद्वान् विशेष करके नैयायिक विद्वान् हुए थे जितने कि अन्य किसी समयमें नहीं हुए। ज्यों ज्यों प्राचीन ग्रन्थोंकी तथा शिलालेखोंकी छानबीन की जाती है त्यों त्यों उस समयके अनेक बड़े बड़े विद्वानोंके नाम मालूम होते जाते हैं।

अकलंकदेवके गुरु कौन थे, इसका पता नहीं लगता। यह हम पहले ही लिख चुके हैं। हाँ, उनके **पुष्पषेण** नामक सतीर्थ या गुरुभाईका पता मल्लिषेणप्रशस्तिसे लगता है:–

> **श्रीपुष्पषेणमुनिरेव पदं महिम्नो**
> **देवः[1] स यस्य समभूत्स भवान्सधर्मा।**
> **श्रीविभ्रमस्य भवनं ननु पद्ममेव**
> **पुष्पेषु मित्रमिह यस्य सहस्रधामा॥**

इस पद्यके अभिप्रायसे जान पड़ता है कि वे बहुत बड़े विद्वान् होंगे।

माणिक्यनन्दि, विद्यानन्द और **प्रभाचन्द्र** ये तीनों विद्वान् अकलंकदेवके समकालीन हैं। इनमेंसे प्रभाचन्द्र तो अपने न्याय-कुमुदचन्द्रोदयके प्रथम अध्यायमें निम्नलिखित श्लोकसे यह प्रकट

१ 'देव' पद अकलङ्कदेवको सूचित करता है। इसका पूर्ववर्ती श्लोकसे स्पष्टीकरण होता है।

करते हैं कि उन्होंने अकलंकदेवके चरणोंके समीप बैठकर ज्ञान प्राप्त किया था:-

बोधः कोप्यसमः समस्तविषयं प्राप्याकलङ्कं पदं,
जातस्तेन समस्तवस्तुविषयं व्याख्यायते तत्पदम् ।
किं न श्रीगणभृज्जिनेन्द्रपदतः प्राप्तप्रभावः स्वयं
व्याख्यात्यप्रतिमं वचो जिनपतेः सर्वात्मभाषात्मकम् ॥

उन्होंने अपने प्रमेयकमलमार्तण्डमें आचार्य माणिक्यनन्दिका उल्लेख किया है:--

गुरुः श्रीनन्दिमाणिक्यो नन्दिताशेषसज्जनः ।
नन्दताद्दूरितैकान्तरजा जैनमतार्णवः ॥ ३ ॥

और इन माणिक्यनन्दिको नमस्कार करते हुए अनन्तवीर्यने प्रमेयरत्नमालावृत्तिके प्रारंभमें कहा है:--

अकलङ्कवचोम्भोधेरुद्दध्रे येन धीमता ।
न्यायविद्यामृतं तस्मै नमो माणिक्यनन्दिने ॥

अर्थात् जिसने अकलङ्कके शास्त्ररूपी समुद्रसे न्यायविद्यामृतका उद्धार किया उस माणिक्यनन्दिको नमस्कार करता हूं । इससे मालूम होता है कि माणिक्यनन्दि अकलंकदेवके ही समयमें हुए हैं। उन्हें पीछे इस कारण नहीं कह सकते कि प्रभाचन्द्रने जो अकलंकके पास बैठकर पढ़े हैं माणिक्यनन्दिको गुरुरूपसे स्मरण किया है।

स्याद्वादविद्यापति विद्यानन्दि भी अकलंकदेवके समकालीन हैं। क्योंकि प्रभाचन्द्रने अपने प्रमेयकमलमार्तण्डमें अकलंकके साथ साथ उनका भी स्मरण किया है:--

सिद्धं सर्वजनप्रबोधजननं सद्योऽकलङ्काश्रयं
विद्यानन्दसमन्तभद्रगुणतो नित्यं मनोनन्दनम् ।
निर्दोषं परमागमार्थविषयं प्रोक्तं प्रमालक्षणम्
युक्त्या चेतसि चिन्तयन्तु सुधियः श्रीवर्द्धमानं जिनम् ॥

और विद्यानन्दने अपना अष्टसहस्रीग्रन्थ अकलंकदेवकी अष्टशती पर ही रचा है:—

श्रीमदकलङ्कशशधरविवृतां समन्तभद्रोक्तिमत्र संक्षेपात् ।
परमागमार्थविषयामष्टसहस्रीं प्रकाशयाति ॥

इस तरह इन विद्वानोंका क्रम इस तरह बनता है:—अकलंकदेव, माणिक्यनन्दि, विद्यानन्द, प्रभाचन्द्र । इनमें वृद्धत्वका मान अकलङ्कदेवको ही प्राप्त है । माणिक्यनन्दिको विद्यानन्दसे पहले कहनेका कारण यह है कि उनके ग्रन्थमें विद्यानन्दका कहीं उल्लेख नहीं है और प्रभाचन्द्रने उन्हें अपना गुरु बताया है ।

कुमारसेन और **वादीभसिंह** भी उसी समयके नामी विद्वानोंमेंसे हैं । कुमारसेनका उल्लेख विद्यानन्दने अष्टसहस्रीके अन्तमें किया है और कहा है कि इस ग्रन्थकी वृद्धि उनकी सहायतासे हुई है । इन्हीं कुमारसेनकी प्रशंसामें हरिवंशपुराणके कर्त्ता जिनसेन कहते हैं:—

अकूपारं यशो लोके प्रभाचन्द्रोदयोज्ज्वलम् ।
गुरोः कुमारसेनस्य विचरत्यजितात्मकम् ॥ ३८ ॥

मल्लिषेणप्रशस्तिमें उन्हें बहुत ही बड़ा प्रभावशाली विद्वान् बतलाया है:—

उदेत्य सम्यग्दिशि दक्षिणस्यां कुमारसेनो मुनिरस्तमाप ।
तत्रैव चित्रं जगदेकभानोस्तिष्ठत्यसौ तस्य तथाप्रकाशः ॥

वादीभसिंहका उल्लेख अष्टसहस्रीकी उत्थानिकामें 'श्रीमता वादीभसिंहेनोपललितामाप्तमीमांसाम्' आदि वाक्य देकर किया है। इन्हीं वादीभसिंहको जिनसेनस्वामीने 'वादिसिंह' कहकर स्मरण किया है—

कवित्वस्य परा सीमा वाग्मितस्य परं पदम्।
गमकत्वस्य पर्यन्तो वादीसिंहोर्च्यते न कैः॥

वीरसेन स्वामी भगवज्जिनसेनके गुरु थे। यद्यपि उनकी सैद्धान्तिक रूपमें ही विशेष प्रसिद्धि है तथापि वे नैयायिक भी बड़े भारी हुए हैं। अष्टसहस्रीके अन्तमें उनका तार्किकरूपमें ही उल्लेख मिलता है। गुणभद्रने भी उत्तरपुराणकी प्रशस्तिमें कहा है:—

तत्र वित्रासिताशेषप्रवादिमदवारणः।
वीरसेनाग्रणीर्वीरसेनभट्टारको बभौ॥

उसी समय **परवादिमल्लदेव** नामके भी एक तार्किक विद्वान् हुए हैं। उनका भी कृष्णराज या साहसतुंगके समक्ष उपस्थित होनेका उल्लेख मल्लिषेणप्रशस्तिमें मिलता है:—

घटवादघटाकोटिकोविदं कोविदां प्रवाक्।
परवादिमल्लदेवो देव एव न संशयः॥

येनेयमात्मनामधेयनिरुक्तिरुक्ता नाम पृष्ठवन्तं कृष्णराजं प्रति—

गृहीतपक्षादितरः परः स्यात्तद्वादिनस्ते परिवादिन स्युः।
तेषां हि मल्लः परवादिमल्लस्तन्नाम मन्नाम वदन्ति सन्तः॥

एक **श्रीपाल** नामके नामी विद्वान् भी उसी समय हुए हैं। जिनसेनस्वामीने इनका उल्लेख अकलङ्क और विद्यानन्दके ही साथ साथ किया है। जयधवलसिद्धान्तकी वीरसेनीया टीका इन्हीं

श्रीपालचार्यकी सम्पादन की हुई है। एक कुमारनन्दिभट्टारक भी उसी समय हुए है जिनके किसी ग्रन्थका एक श्लोक प्रमाणपरीक्षामें विद्यानन्दस्वामीने उद्धृत किया है । इस तरह अकलंकदेवके समयमें अनेक विद्वानोंके द्वारा जैनसम्प्रदाय प्रभावशाली बन रहा था।

ग्रन्थरचना ।

१ **अष्टशती**—अकलंकदेवका यह सबसे प्रसिद्ध ग्रन्थ है । समन्तभद्रस्वामीके देवागमका यह भाष्य है।

२ **राजवार्तिक**—यह उमास्वामीके तत्वार्थसूत्रका भाष्य है। इसकी श्लोकसंख्या १६००० है।

३ **न्यायविनिश्चय**—न्यायका प्रामाणिक ग्रन्थ समझा जाता है । आराके सिद्धान्तभवनमें इसकी एक वृत्ति वादिराजसूरिकृत मौजूद है।

४ **लघीयस्त्रयी**—प्रभाचन्द्रका न्यायकुमुदचन्द्रोदय इसी ग्रन्थ-का भाष्य है।

५ **बृहत्त्रयी**—बृद्धत्रयी भी शायद इसीका नाम है। लघीयस्त्रयी और बृद्धत्रयी ये दोनों ग्रन्थ कोल्हापुरमें श्रीयुत पं० कल्लापा भर-मापा निटवेके पास मौजूद हैं।

६ **न्यायचूलिका** नामक ग्रन्थका भी उल्लेख मिलता है कि वह अकलंकदेवका बनाया हुआ हैं।

७ **अकलंकस्तोत्र** या अकलंकाष्टक भी उन्हींका बनाया हुआ बतलाया जाता है; परन्तु बहुतोंको इस विषयमें सन्देह है।

अकलंकप्रायश्चित्त और **अकलंकप्रतिष्ठापाठ** भी अकलंकदेवके नामसे प्रसिद्ध हैं; परन्तु यह भ्रम है। प्रायश्चित्तको हमने स्वयं देखा है। ऐसे निःसार ग्रन्थोंको अकलंकदेवका बतलाना उनका अपमान करना है। प्रतिष्ठापाठ भी उनका नहीं है। आवश्यकता होने पर यह सिद्ध किया जा सकता है। उनके एक **स्वरूपसम्बोधन** नामक ग्रन्थका उल्लेख डाक्टर सतीशचन्द्र विद्याभूषणने किया है; मालूम नहीं, वह प्राप्य है या नहीं।

अकलंकस्वामीके विषयमें जितनी बातें छानबीनसे मालूम हो सकीं वे सब लिखी जा चुकीं; अब हम उनके जीवनचरितके विषयमें कुछ विचार करके—जो कि कथाग्रन्थोंमें मिलता है—इस लेखको समाप्त करेंगे।

कथाओं पर विचार।

आराधनाकथाकोशमें अकलंकदेवके विषयमें जो कथा लिखी है उसका सारांश यह है:—

"मान्यखेट (मलखेड़) नगरमें **शुभतुंग** नामका एक राजा था। उसके मंत्रीका नाम **पुरुषोत्तम** था। पुरुषोत्तमकी स्त्री **पद्मावतीके अकलंक** और निकलंक नामके दो पुत्र हुए। अष्टान्हिका उत्सवमें एकबार मंत्री अपनी भार्या और पुत्रों सहित **रविगुप्त** नामक मुनिकी वन्दना करनेके लिए गये। वहाँ पुरुषोत्तम और पद्मावतीने आठ दिनके लिए ब्रह्मचर्यव्रत ग्रहण किया और साथ ही कौतुकवश अपने दोनों पुत्रोंको भी ब्रह्मचर्य दिला दिया। कुछ

दिनोंके बाद जब पिताने ब्याह करनेका उद्यम किया तब पुत्रोंने अपने उक्त ब्रह्मचर्यव्रतकी बात कहकर साफ इंकार कर दिया और सब काम छोड़कर विद्याभ्यासमें चित्त लगा दिया। जब विद्वान् हो गये तब इन्हें बौद्धशास्त्रोंके अध्ययनकी इच्छा हुई। परन्तु उस समय मान्यखेटमें कोई बौद्धधर्मका ज्ञाता न था, इसलिए ये वहाँसे चल दिये और '**महाबोधि**' नामक किसी स्थानमें अज्ञ विद्यार्थियोंका रूप धारण करके बौद्धशास्त्र पढ़ने लगे।

"एक दिन बौद्धगुरु जैनधर्मके सप्तभंगी सिद्धान्तका स्वरूप बतला रहा था। पाठ अशुद्ध था, इस कारण उससे पदार्थ स्पष्ट करते न बना और वह किसी बहानेसे बाहर चला गया। इतनेमें अकलंकदेवने उस पाठको ठीक कर दिया। गुरुने आकर पढ़ा तो अभिप्राय स्पष्ट हो गया। इससे उसे सन्देह हो गया कि यहाँ कोई जैनधर्मका उपासक छुपे वेषसे पढ़ रहा है। उसका पता लगाना चाहिए। पहले शपथ आदि कराके सबसे पूँछा; परन्तु जब पता न चला तब एक जैनप्रतिमा मँगवाकर सब विद्यार्थियोंसे कहा कि इसको लाँघ जाओ। सब छात्रोंके लाँघ जाने पर अकलंककी बारी आई। उन्होंने एक चतुराई की—सूतका एक बारीक धागा प्रतिमा पर डाल दिया और तब मनमें यह संकल्प करके कि यह सावरणा मूर्ति है वे उसे चट लाँघ गये। जब इस युक्तिसे कुछ पता न चला तब एक दिन आधीरातके समय जहाँ सब छात्र सोते थे, एकाएक काँसेके हजारों वर्तन जोरसे पटक दिये जिससे घबड़ाकर सब छात्रोंके मुँहसे उनके इष्टदेवका नाम निकल पड़ा। इस समय अकलंक निकलंकके

मुँहसे ' णमोकार मंत्र ' निकल पड़ा और वह बौद्ध गुरुके गुप्तचरने सुन लिया । दोनों भाई पकड़ लिये गये और जब तक दिन न निकल आवे तबतकके लिए एक सतखने महलकी छतपर रख दिये गये । प्राण संकटमें आ पड़े । बड़े भाईके पास एक छतरी थी। सोच विचारकर दोनों उसके सहारेसे कूद पड़े और उसी समय भाग दिये । सबेरे खोज की गई और बहुतसे सवार इनके पीछे दौड़ा दिये गये । निकलंकने दूरसे सवारोंको आते देखा, तब उसकी प्रेरणासे अकलंकने तो अपनेको एक तालाबमें कमलोंके भीतर छुपा लिया; पर निकलंकसे भागनेके सिवाय और कुछ न बन पड़ा। एक धोबी भी डरके मारे उसके साथ भागने लगा । कुछ समयमें सवारोंने इन दोनोंको पकड़ लिया और दोनोंका सिर उतार लिया—बेचारा धोबी अकलंकके धोखेमें मार डाला गया ।

" **कलिंग**देशके **रत्नसंचयपुर**नगरमें **हिमशीतल** नामका राजा था । उसकी रानी **मदनसुन्दरी** जिनधर्मानुरागिणी थी । फाल्गुनके अष्टाहिका पर्वमें वह भगवानका रथ निकालना चाहती थी; परन्तु **संघश्री** नामक बौद्धाचार्यने उसमें रुकावट डाल दी । कहा कि जबतक कोई जैनविद्वान् शास्त्रार्थमें विजय प्राप्त न कर ले तबतक जिनदेवका रथ नहीं निकल सकता । रानीको बड़ी चिन्ता हुई । वहाँ आसपासमें कोई जैनविद्वान् न था जो बुलवा लिया जाता । निदान और कोई उपाय न देखकर रानी नमस्कारमंत्रका जाप करने लगी । फल यह हुआ कि पद्मावती देवीने प्रकट होकर एक विद्वानके शीघ्र ही वहाँ आनेका शुभसंवाद सुनाया और दूसरे

ही दिन सबेरे अकलङ्कदेव वहाँ जा पहुँचे। इससे रानीको बहुत ही संतोष हुआ।

"अब संघश्रीके साथ हिमशीतलकी सभामें अकलंकदेवका शास्त्रार्थ होने लगा। संघश्रीने अपने धर्मके और भी अनेक विद्वान् बुला लिये। यह शास्त्रार्थ छह महीनेतक हुआ। पीछे पद्मावती देवीके कहनेसे मालूम हुआ कि संघश्री स्वयं शास्त्रार्थ नहीं करता है, किन्तु उसकी इष्टदेवता **तारा** परदेकी ओटमेंसे बोला करती है और इसी लिए वादका अन्त नहीं आता है। यह जाननेके दूसरे ही दिन अकलंकदेवने परदेको अलग करके उस घड़ेको लातकी ठोकरसे फोड़ दिया जिसमें तारादेवी स्थापित थी और संघश्रीको पराजित करके जैनधर्मकी अच्छी प्रभावना की। रानीकी इच्छा पूर्ण हुई; उसने भगवान्का रथ खूब उत्साहके साथ निकाला।"

आराधना कथाकोश जिसमें यह कथा लिखी है नेमिदत्त ब्रह्मचारीका बनाया हुआ है। ये मल्लिभूषणभट्टारकके शिष्य थे और विक्रम संवत् १५७५ के लगभग इनके अस्तित्वका पता लगता है। उन्होंने लिखा है कि मैंने प्रभाचन्द्र भट्टारकके गद्यकथाकोशको पद्यमें परिवर्तन करके यह ग्रन्थ बनाया है।

प्रभाचन्द्रका गद्य कथाकोश बहुत करके उन्हीं प्रभाचन्द्रका बनाया हुआ है जिनके पट्ट पर पद्मनन्दि भट्टारक सं० १३८५ में बैठे थे। अर्थात् अकलंकदेवकी यह कथा वि० की चौदहवीं शताब्दिकी लिखी हुई है। इसके पहले वह किस रूपमें थी और उसका मूल क्या है इसके जाननेका कोई साधन हमारे पास नहीं।

राइससाहबने देवचन्द्रकी ' राजावलीकथे ' के आधारसे—जिसका उल्लेख पहले किया जा चुका है—और दूसरी कई कथाओंके आधारसे अकलंकदेवका वृत्तान्त इसप्रकार लिखा है—

" जिस समय कांचीमें बौद्धोंने जैनधर्मकी प्रगतिको बिलकुल रोक दिया था उस समय **जिनदास** नामक जैनब्राह्मण (अर्हद्द्विज) के यहाँ उसकी स्त्री **जिनमतीसे**, अकलङ्क और निकलङ्क नामके दो पुत्र थे। वहाँ पर उनके सम्प्रदायका कोई पढ़ानेवाला नहीं था-इसलिए इन दोनों बालकोंने गुप्तरीतिसे **भगवद्दास** नामके बौद्ध गुरुसे—जिसके मठमें पाँचसौ चेले थे—पढ़ना शुरू किया। एक कथाकार कहता है कि उन्होंने ऐसी असाधारण शीघ्रताके साथ उन्नतिकी कि गुरुको सन्देह हो गया और उसने यह जाननेका निश्चय किया कि वे कौन हैं। अतः एक रात्रिको जब वे सोते थे उस बौद्धगुरुने बुद्धका दाँत उनकी छाती पर रख दिया, इससे वे बालक 'जिन सिद्ध' कहते हुए एकदम उठ खड़े हुए और इससे गुरुको मालूम हो गया कि वे जैन हैं। दूसरी कथाके आधार पर यह है कि उन बालकोंने एक दिन—जब कि गुरु कुछ मिनिटके लिए उनसे अलग हुआ था—एक हस्तलिखित पुस्तकमें ये शब्द जोड़ दिये कि 'सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः' और इस बातकी छानबीन करने पर गुरुको मालूम हो गया कि वे जैन हैं दोनों कथाओंमें चाहे जो सच्ची हो आखिर नतीजा यह हुआ कि उनके मारे जानेका निश्चय किया गया और वे दोनों भाग निकले। निकलंकने अपना पकड़ा जाना और माराजाना स्वीकार किया ताकि

उसके भाईको पीछा करनेवालोंसे बचनेका अवसर मिल जाय । अकलंकने एक धोबीकी सहायतासे—जिसने उसको अपने कपड़ोंकी गठरीमें छिपा लिया—अपनेको बचा लिया और दीक्षा लेकर सुधापुरके देशीय गणका आचार्यपद शोभित किया ।

" इस समय अनेक मतोंके विद्वान् आचार्य बौद्धोंसे वादविवादमें हार खाकर दुखी हो रहे थे उनमेंसे वीरशैव सम्प्रदायके आचार्य[1] **सुधापुर**में अकलङ्कदेवके पास आये और उनसे उन्होंने सब हाल कहा । इस पर अकलङ्कदेवने वहाँ जाने और बौद्धों पर विजय प्राप्त करनेका निश्चय कर लिया । अकलंकने अपनी मयूरपिच्छिको छुपाकर, जिससे वे जैनमती जाने जाते—बौद्धोंको यह विश्वास दिलानेकी योजना की कि वे शैव हैं और इस ढंग पर उनको वादमें जीतकर पीछे उन्हें अपनी मयूरपिच्छि दिखला दी । इस पर बौद्ध लोग बहुत ही क्रुद्धित और उत्तेजित हुए । कांचीके बौद्धोंने जैनियोंका हमेशाके लिए अन्त कर डालनेके अभिप्रायसे अपने राजा **हिमशीतल**को इस बातके लिए उत्तेजित किया कि अकलङ्कको इस शर्तके साथ उनसे वाद करनेके लिए बुलाया जाय कि जो कोई वादमें हार जाय उसके सम्प्रदायके कुल मनुष्य कोल्हूमें पिलवा दिये जायँ ! बौद्धोंकी तरफ़से इस बड़े भारी वादयुद्धकी तैयारियोंका होना किसी कदर असामान्य है; परन्तु इस

१ वीरशैव सम्प्रदाय हैहय (कलचुरी) वंशीय राजा विज्जलके मंत्री 'बसव' ने विक्रम संवत् १२०० के लगभग स्थापित किया था । यह निश्चित है । बसवपुराणमें भी यही लिखा है । इससे अकलंकके समयमें वीरशैव मत नहीं हो सकता । यह कथालेखककी गढ़न्त है ।

विषय पर जितनी कथायें हैं उन सबमें ऐसा ही बयान किया गया है। बौद्धोंने परदेकी ओटमें ताड़ी (नशा करनेवाला सुगंधित ताड़का रस) का मृत्कुंभ रक्खा और उसमें अपनी **तारादेवीका** आह्वान करके उसको उन सब पक्षोंका यथाक्रम उत्तर देनेके लिए प्रेरित किया जो अकलंककी तरफ़से उठाये जायँ। कुछ कथाकारोंके मतसे यह वाद ७ दिन तक और कुछ के मतसे १७ दिन तक चलता रहा जिसमें अकलंकको कोई लाभ न पहुँचा। जब परिणामके लिए अकलङ्क बहुत ही उत्कण्ठित होने लगे तब **कुष्माण्डिनी** नामकी देवीने उन्हें स्वप्नमें दर्शन दिया और बतलाया कि यदि तुम अपने प्रश्नोंको प्रकारान्तरसे करो तो विजयी होजाओगे। अगले दिन ऐसा ही किया गया। घड़ेकी देवीसे कोई उत्तर न बन सका और जैनोंकी जीत हो गई। तब अकलंकने उस परदेको तोड़ डाला और घड़ेको बाईं लातकी ठोकरसे फोड़ डाला। यह कथा सम्पूर्ण बातोंसे ऐसी संग्रथित है कि शिलालेखके अन्तिम शब्द 'सुगतः पादेन विस्फालितः' आम तौर पर 'स घटः पादेन विस्फोटितः[1]' कहे जाते हैं। यह समझना कठिन है कि किस घटनाका ठीक ठीक होना खयाल किया जाय; परन्तु समस्त घटनायें सविस्तर हैं और उसी एक बातको बतला रही हैं। इस समस्त घटनाका परिणाम यह हुआ कि राजा हिमशीतलको उन समस्त प्रबन्धोंका हाल मालूम होगया जिनपर बौद्ध लोग भरोसा रखते थे और साथ ही यह देखकर कि एक हाथीने जो खुला

१ मल्लिषेणप्रशस्तिके।

छोड़ा गया था बौद्धोंकी पुस्तकोंको पैरोंसे मथ डाला और जैनग्रन्थों-को अपनी सूँडसे उठाकर मस्तक पर रक्खा, उसने बौद्धोंको कोल्हूमें पिलवा देनेका हुक्म दे दिया! परन्तु अकलङ्ककी प्रार्थना पर बौद्धोंको न मारकर, वह इस बात पर सम्मत होगया कि बौद्धोंको एक दूर देशमें निर्वासित कर दिया जाय और इसलिए वे समस्त बौद्ध सीलोनके एक नगर कैंडीको निर्वासित कर दिये गये।*"

'राजावलीकथे' के लिखे जानेका समय ईसाकी १९ वीं शताब्दी ऊपर लिखा जा चुका है। अर्थात् यह सबसे आधुनिक ग्रन्थ है। इसके सिवाय और जिन कथाग्रन्थोंके आधारसे राइस साहबने उक्त वर्णन लिखा है उनके विषयमें नहीं कहा जा सकता कि वे कबके बने हुए होंगे; पर यह निश्चय है कि आराधनाकथाकोशके समान ये सब कथायें भी दिगम्बर–जैन ग्रन्थकर्त्ताओंकी लिखी हुई हैं। इन्हें परस्पर--मिलाकर विचारशील पाठक यह समझ सकते हैं कि केवल श्रद्धाके वशवर्ती होकर कथा-ग्रन्थों पर सर्वथा विश्वास कर बैठना कितना बड़ा जोखिमका काम है।

ये तो हुईं दिगम्बरी कथायें, अब इसी कथानकका अनुसरण करनेवाली एक श्वेताम्बरसम्प्रदायकी कथा भी सुन लीजिए। उसका सारांश नीचे दिया जाता है:—

" हरिभद्रसूरिके **हंस** और **परमहंस**के नामके दो शिष्य थे। गृहस्थाश्रमके ये उनके भानजे थे। न्याय, व्याकरण, दर्शनका अ-ध्ययन कर चुकनेके बाद इनकी इच्छा हुई कि हम बौद्धदर्शनका भी

* राइस साहबकी लिखी हुई इस कथाका अंश श्रीयुत बाबू जुगलकिशोरजीने अनुवाद करके भेजा है।

रहस्य समझें और इसके लिए एक प्रसिद्ध बौद्धमठमें जाकर पढ़नेके लिए वे तैयार हो गये। यह मठ चित्रकूट या चित्तौड़से पूर्वकी ओर था। गुरुने इन्हें रोका; पर वह व्यर्थ हुआ। निदान ये बौद्ध वेष धारण करके बौद्धमठमें पढ़ने लगे और उन्होंने बहुत समय तक किसी पर भी यह प्रकट न होने दिया कि हम जैन हैं। इसी समय एक घटना ऐसी हुई जिससे इनके बौद्ध होनेमें लोगोंको शंका हो गई। इन्होंने एक पत्र पर जैनमतकी युक्तियोंके खण्डनका प्रतिखण्डन और दूसरे पर सुगतवादके दूषण लिख रक्खे थे। दैवयोगसे एक दिन ये पत्र हवामें उड़ गये और किसी तरह बौद्धगुरुकी दृष्टिमें जा पड़े।

"गुरुको सन्देह हो गया कि ये कोई अर्हदुपासक हैं, इस से वे इस बातकी जाँच करने लगे कि वास्तवमें ये जैन हैं या नहीं। इसके लिए उन्होंने विद्यार्थियोंके आनेके मार्गकी सीढ़ियोंमें एक जैन-प्रतिमाका चित्र बनवा दिया। गुरुके पास जानेका और कोई मार्ग न था और इस मार्गसे जानेमें जिनप्रतिमाका अविनय करके जाना पड़ता था। हंस परमहंस समझ गये कि गुरुको हम दोनोंके विषयमें शंका हो गई है। अब क्या करना चाहिए? बड़ी चिन्ता हो गई। उसी समय उन्हें एक युक्ति सूझ आई। खड़ी मिट्टीके टुकड़ेसे उन्होंने प्रतिमा पर तीन लकीरें खींच दी और तब उसे बुद्ध प्रतिमा मान-कर वे उसके ऊपर पैर रखकर गुरुके पास चले गये! (जिन प्रतिमा और बुद्धप्रतिमामें बहुत बड़ा भेद नहीं होता है; प्रायः एकसी होती हैं। बुद्धप्रतिमामें यज्ञोपवीतके तीन धागोंका चिह्न रहता है, पर यह जिनप्रतिमामें नहीं होता।) इसके बाद एक दूसरी परीक्षा

की गई। जहाँ सब विद्यार्थी सोते थे वहाँ कई आदमी पहरे पर रख दिये और आधीरातको ढेरके ढेर वर्तनोंको जीनेसे पटककर चौंका देनेवाला शब्द किया जिसे सुनकर सब विद्यार्थी अपने अपने इष्टदेवका स्मरण करने लगे। उस समय हंस परमहंसने जिनदेवका स्मरण किया और वह पहरेदारोंने सुन लिया । इसके बाद दोनों भाई छत्रोंके सहारे छतसे कूद-कर भागे और बौद्ध गुरुकी आज्ञासे १४४४ घुड़सवार उनके पक-ड़नेके लिए दौड़े। कुछ दूरीपर सामना हो गया, सो बड़ा भाई परमहंस जो लड़कर मारा गया और छोटा सूरपाल नामक राजाकी शरणमें चला गया। सवारोंने राजासे कहा कि हमारा अपराधी दे दो; परन्तु उसने देनेसे साफ़ इंकार कर दिया । बड़ी कठिनाईसे वह इस बात पर राजी हुआ कि हंससे शास्त्रार्थ कर लिया जाय । यदि उसमें यह हार जायगा तो हम इसे तुम्हें दे देवेंगे। शास्त्रार्थ हुआ और वह उसी तरह हुआ जैसा अकलंकदेवका राजा हिमशीतलकी राजधानीमें लिखा हुआ है ।

"इसमें भी बौद्धमतकी देवी तारा घटमें बैठकर शास्त्रार्थ करती थी। वह अन्तमें जिनशासनदेवीके सुझानेसे पराजित कर दी गई और उसका घड़ा लातोंसे ठुकरा दिया गया । हंसकी जीत तो हो गई; पर उसकी विपत्तिका अन्त न आया । सूरपालके यहाँसे घरको जाते समय सवारोंने फिर पीछा किया । निदान बड़ी कठिनाईसे ये अपने गुरुके पास पहुँचे और गुरुको अपनी विपत्तिका और प्रिय भाईकी मृत्युका हाल सुनाते हुए तीव्र हार्दिक शोकके वेगमें छाती फट जानेसे मर गये । गुरु महाराजको अपने प्रिय शिष्योंके

मरनेका बहुतही शोक हुआ और इस कारण बौद्धोंके ऊपर उनका क्रोध भड़क उठा! उन्होंने आकर्षिणी विद्याके बलसे उन सबारोंको खींचकर तप्ततैलकी कढ़ाईमें डालकर भस्म कर देना चाहा। जब यह बात हरिभद्रसूरिके गुरुको मालूम हुई; तब उन्होंने उनके पास क्रोधोपशमनार्थ कुछ गाथायें लिखकर भेजीं जिससे वे शान्त हो गये।

" उन्हें अपनी क्रोधभावनाका बड़ा पश्चात्ताप हुआ और इन १४१४ सवारोंके मरने—मारनेरूप संकलपसम्बन्धी पापका निवारण करनेके लिए १४४४ ग्रन्थोंकी रचना की। हरिभद्रके प्रत्येक ग्रन्थके अन्तमें विरह शब्द है जो उनके प्रिय भागिनेय (भानजे) शिष्योंके वियोगका चिह्न है। गुरुने जो गाथायें क्रोध-शमनार्थ भेजी थीं उनका विस्तार करके हरिभद्रसूरिने 'समराइच्च कहा' (समरादित्य कथा) नामक ग्रन्थकी रचना की "

यह कथा श्रीचन्द्रप्रभसूरिके 'प्रभावकचरित' नामक संस्कृत ग्रन्थमें लिखी हुई है। यह ग्रन्थ विक्रमसंवत् १३३४ का बना हुआ है। ग्रन्थकी प्रशास्तिमें इस समयका उल्लेख है।

श्रीराजशेखरसूरिका बनाया हुआ एक 'चतुर्विंशति प्रबन्ध' नामक संस्कृत ग्रन्थ है। वह विक्रमसंवत् १४०५ का बनाया हुआ है। उसमें भी हरिभद्रसूरिकी उक्त कथा लिखी हुई है। उसका सार यह है:—

हरिभद्रसूरिके रोकने पर भी हंस परमहंस बौद्ध तर्क पढ़नेके लिए गये। एक वृद्धाके घर ठहरे और बौद्धाचार्यके पास बौद्धवेष

धारण करके पढ़ने लगे। कपलिकामें रहस्य लिखते गये। गुरुको सन्देह हो गया। उसने परीक्षा करनेके लिए सीढ़ियों पर अर्हत्-बिम्बका चित्र बनवाया। हंस परमहंस उस चित्रके कंठमें तीन रेखा बनाकर और उसे बौद्ध प्रतिमा मानकर उस पर पैर रखकर चले गये। गुरुने देख लिया। हंस परमहंस गुरुके पास जा बैठे; परन्तु गुरुके मुखका रंग बदला हुआ देखकर समझ गये कि अब कुशल नहीं है; यह सब षड्यंत्र गुरुका ही किया हुआ था। वे और कोई उपाय न देखकर पेटमें पीड़ा होनेका मिष करके कपलिकाको लेकर भाग खड़े हुए। गुरुने राजासे कहकर उनके पीछे थोड़ीसी सेना भिजवाई और वह कपलिका मँगवाई। इस सेनाको हंस परमहंसने लड़कर समाप्त कर दी, तब और सेना भेजी गई। इस सेनासे एक तो दृष्टियुद्ध करने लगा और दूसरा कपलिका लेकर भाग गया। सेना हंसका मस्तक काटकर ले गई, परन्तु गुरुको बिना कपलिकाके संतोष न हुआ। तब फिर सेना भेजी गई। परमहंस चित्रकूटके किलेके द्वार पर सोता मिल गया। सेनाने उसका सिर काट लिया और उसे ले जाकर बौद्ध गुरुको सौंप दिया। हरिभद्रको मालूम हुआ। उन्होंने क्रोधित होकर बौद्धोंको कढ़ाइमें होम देनेके लिए खींचनेका विचार किया; पर गुरुने गाथायें भेजकर शान्त कर दिया। इत्यादि।"

श्वेताम्बर और दिगम्बर कथाओंको पढ़नेसे मालूम होता है कि दोनोंका अधिकांश परस्पर मिलता जुलता हुआ है। दोनोंकी घटनायें ही एक सी नहीं हैं बल्कि नाम भी बिलकुल एकसे हैं।

'अकलंक निकलंक' और 'हंस परमहंस' ये दोनों नाम स्पष्टतः बतला रहे हैं कि इन दोमेंसे एक कथा अवश्य ही दूसरी कथाका अनुकरण करके लिखी गई है। परन्तु प्रश्न यह है कि किसने किसका अनुकरण किया और दोनोंमेंसे बनावटी कौन है। इसका उत्तर देना बहुत कठिन है। हंस परमहंसकी कथा श्वेताम्बर सम्प्रदायकी है और लेखक दिगम्बरसम्प्रदायका है, इसलिए आजकलकी पद्धतिके अनुसार केवल यही कह देनेसे निर्णय हो सकता था कि श्वेताम्बर कथा झूठी है। परन्तु यह इतिहासका प्रश्न है, सम्प्रदायका नहीं। और इतिहासान्वेषककी दृष्टिमें यदि श्वेताम्बरसम्प्रदायके लेखक असत्य कल्पना कर सकते हैं तो दिगम्बरसम्प्रदायके कथा-लेखक भी उसके त्यागी नहीं हो सकते हैं। सच्चे और झूठे लेखक दोनोंमें हो सकते हैं। अतः हमें दोनों ही सम्प्रदायकी कथाओं पर कुछ गंभीरताके साथ विचार करना चाहिए।

नेमिदत्त ब्रह्मचारीने अकलंकदेवको पुरुषोत्तम मंत्रीका पुत्र बतलाया है; और 'राजावलीकथे' आदि ग्रन्थोंमें वे जिनदास ब्राह्मण और जिनमती ब्राह्मणीके पुत्र बतलाये गये हैं; परन्तु स्वयं अकलंकदेवके रचे हुए राजवर्तिकालंकार नामक प्रसिद्ध ग्रन्थके एक श्लोकसे—जो पहले दिया जा चुका है—मालूम होता है कि वे मंत्रीके नहीं किन्तु 'लघुहव्व' नामक राजाके पुत्र थे। यह संभव है कि उक्त स्वप्रशंसावाचक श्लोक स्वयं अकलंकदेवका बनाया हुआ न हो, उनके किसी शिष्यने लिख दिया हो; परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि वह प्राचीन है; प्राचीनसे प्राचीन पुस्तकोंमें लिखा हुआ है और आराधनाक-

थाकोश तथा राजवलीके कर्त्ताके वचनोंकी अपेक्षा अधिक प्रामाणिक जान पड़ता है । 'पुरुषोत्तम' और 'जिनदास' इन नामोंके कल्पित होनेकी जितनी अधिक संभावना है उतनी 'लघुहव्व' के कल्पित होनेकी नहीं, क्योंकि जिस कर्नाटक प्रान्तमें अकलंक देव हुए हैं उस प्रान्तमें 'लघुहव्व' जैसे नाम ही रक्खे जाते हैं । वहाँ इसीसे मिलते जुलते नामोंवाले अक्क, कर्क, वुक्कराय, आदि अनेक राजा हुए हैं । खोज करनेसे 'लघुहव्व' राजाके वंश और समयादिका भी पता लग सकता है ।

चरितनायकके पिताका वास्तविक नाम न बतला सकना, यह एक ऐसी मोटी गल्ती है, जो हमें कथाओंके सर्वांश पर सर्वतो भावसे श्रद्धा करनेके लिए लाचार नहीं कर सकती और इस कारण हमें दिगम्बर कथाओंके और और अंशों पर भी सन्देह करनेका स्वत्व मिल जाता है ।

अकलंकदेवके भाई निकलङ्क थे, इस विषयमें कथाकोश या राजावलीकी कथाको छोड़कर और प्रमाण नहीं है । हमें यह स्मरण रखना चाहिए कि इस कथामें निकलंकके चरितको जो अपने भाईके लिए आत्मोत्सर्ग करनेका महत्त्व दिया गया है वह साधारण नहीं है । यह इतनी असाधारण और पूज्यता बढ़ानेवाली बात है कि इसका अकलंकदेवके पीछेके सैकड़ों ग्रन्थोंमें उल्लेख होना चाहिए था; परन्तु जिन बीसों स्थानोंमें अकलंकदेवकी स्तुति की गई है—उनके बौद्धविजयादि करनेकी प्रशंसा की गई है, वहाँ भी, और तो क्या निकलङ्कका नाम भी नहीं

लिया है। चौदहवीं शताब्दिके पहलेका अभीतक एक भी ग्रन्थ ऐसा उपलब्ध नहीं है जिसमें निकलंकका उल्लेख हो। श्रवणबेलगुलके 'पार्श्वनाथबस्ती' नामक मन्दिरमें जो मल्लिषेणप्रशस्ति खुदी हुई है और जो ऐतिहासिक दृष्टिसे बहुत ही महत्त्वकी है शक संवत् १०५० की लिखी हुई है। उसमें चार पद्य[1] अकलंकदेवके विषयके हैं जिनमें तारादेवीके हराने, हिमशीतलकी सभामें बौद्धोंके जीतने और साहसतुंगराजाके दरबारमें जानेकी बातोंका विशेष उल्लेख है; परन्तु उसमें निकलंकके महत्त्वपूर्ण आत्मोत्सर्गका आभास भी नहीं।

अकलङ्कदेवके समयमें दक्षिण कर्नाटकमें जैनधर्मकी अच्छी प्रतिष्ठा थी। उसे अनेक प्रभावशाली राजाओंका आश्रय प्राप्त था। बौद्धधर्मका भी प्रचार उस समय वहाँ पर था और वह भी एक राजाश्रित धर्म था, परन्तु उस समय वह क्षीणप्रभ हो चुका था। ईस्वीसन् ६४० में जब प्रसिद्ध चीनी यात्री ह्यूनसाँग दक्षिणमें गया था तभी बौद्धधर्मकी प्रभा क्षीण हो रही थी; तब अकलंकदेवके समयमें तो वह और भी हीनज्योति हो गया होगा। अत एव यह माननेको जी नहीं चाहता कि उस समय उसके अनुयायी ऐसा वर्ताव करते होंगे जो अकलंक निकलंकके साथ किया गया बतलाया जाता है। बौद्धधर्मकी उस समयकी तो कमसे कम यह नीति नहीं हो सकती कि बौद्धधर्मका रहस्य जान लेनेके अपराधमें जैनविद्यार्थियोंको मारनेकी चेष्टा की जाय। अतः ऐसा मालूम होता

१ ये पद्य पहले दिये जा चुके हैं।

है कि ब्रह्मचारी नेमिदत्तने या उनके पहलेके कथाकोशलेखक भट्टारक प्रभाचन्द्रने अपनी कथाका पूर्वांश हंस परमहंसकी श्वेताम्बर कथाकी–संभवतः ' प्रभावकचरित ' की कथाकी ही–नकल करके गढ़ लिया है–बौद्धमठमें जाकर पढ़नेकी, बौद्धगुरुके सन्देहकी, प्रतिमा रखकर और वर्तनोंका कर्कश शब्द करके परीक्षा करनेकी, छातेके सहारे कूदकर भागनेकी और मार्गमें एक भाईके मारे जानेकी बात श्वेताम्बर कथामेंसे ज्योंकी त्यों उठाकर रख दी है। नेमिदत्तने इतनी विशेषता अवश्य कर दी है कि जिनप्रतिमाको खड़ी मिट्टीसे बौद्ध नहीं किन्तु धागा डलवाकर सग्रन्थ श्वेताम्बर प्रतिमा बनवाई है और उसका महात्मा अकलंकके द्वारा अपमान करवाया है, हालाँ कि उसे बौद्धप्रतिमा कल्पित करानेमें भी वहाँ कथाका कोई महत्त्व नष्ट न होता था। हमें यहाँ यह बात स्मरण रखना चाहिए कि दूसरे दिगम्बरजैनकथाकारोंने प्रतिमा पर धागा डालकर उसे श्वेताम्बर बनानेकी बातका उल्लेख नहीं किया है। यह कल्पना खास आराधनाकथाकोशके कर्त्ताकी जान पड़ती है।

हम इस बातको भी असंभव नहीं समझते हैं कि वर्तमान कथाकोश और राजावलीकथे आदिसे भी पहलेके बने हुए किसी ग्रन्थमें अकलंक निकलंककी कथा हो और उसका अनुकरण करके हंस परमहंसकी कथा बनाई गई हो। दिगम्बरके समान श्वेताम्बर लेखक भी ऐसा कर सकते हैं; परन्तु हरिभद्रसूरि अकलंकदेवसे भी पहले हुए हैं–विक्रमसंवत् ५७५ में उनका स्वर्गवास हुआ था। उनके बनायेहुए पचासों ग्रन्थ मिलते हैं जिनमें ' समराइच्चकहा '

बहुत प्रसिद्ध है। हरिभद्रके गुरुने उनका क्रोध शमन करनेके लिए जो चार गाथायें लिखकर भेजी थीं कहते हैं कि उन्हींको सूत्र मानकर उन्हींका विस्तारकरके उक्त ग्रन्थ बनाया गया है और उक्त गाथाओंमें यह भाव मौजूद है कि वे हरिभद्रका क्रोध शमन करानेके लिए लिखी गई हैं। इसके सिवाय हरिभद्रके प्रायः प्रत्येक ग्रन्थके अन्तमें जो 'विरह' शब्द आता है वह उनके हंस परमहंस शिष्योंका वियोगसूचक बतलाया जाता है। इस लिए यदि उक्त गाथासूचित क्रोधकषायका और विरहाङ्कका हंस परमहंसके मारे जानेके सिवाय और कोई कारण नहीं है तो कहना होगा कि हंस परमहंसकी कथा अकलंकदेवसे भी पहले की है और उसीको उड़ाकर अकलंक निकलंककी कथाका पूर्व भाग गढ़ लिया है।

अकलङ्कदेवकी कथाकी यह बात अवश्य सच मालूम पड़ती है कि वे किसी बौद्धविद्यालयमें पढ़नेके लिए गये थे और जैसा कि विलसन साहब कहते हैं वह पोनतगका विद्यालय होगा। यह एक ऐसी घटना है जो हंस परमहंसके बौद्धविद्यालयमें जाकर पढ़नेकी घटनासे मिलती है और चूँकि हंस परमहंसकी कथाका यह भाग मनोरंजक है इसलिए अकलंकदेवकी कथा लिखनेवालेने अपनी कथाको दिलचस्प बनानेके लिए यदि उसकी नकल कर ली हो और इसके लिए एक नये पात्र निकलंककी भी कल्पना कर ली हो तो कुछ आश्चर्य नहीं। अनेक कथालेखकोंने ऐसा किया है और अपनी कथाओंको मनोरंजक बनानेके लिए इतिहासकी ज़रा भी परवा नहीं की है।

परन्तु अकलंककथाका उत्तर भाग—निकलंकके मारे जानेके बादका कथांश—जिसमें कि बौद्धोंके साथ शास्त्रार्थ होनेका तथा तारादेवीके घटमें स्थापित करने आदिका जिक्र है—कविकल्पित या किसी दूसरी कथाका अनुकरण नहीं मालूम होता। उसके लिए श्रवणबेलगुलका शिलालेख प्रमाण है। उसके 'तारा येन विनिर्जिता घटकुटीगूढावतारा' तथा 'बौद्धोघान्सकलान्विजित्य सुगतः पादेन विस्फोटितः' आदि पद्योंसे साफ मालूम होता है कि अकलंकदेवका बौद्धोंके साथ शास्त्रार्थ हुआ था और उसमें उनकी विजय हुई थी। अर्थात् प्रभावकचरितके बननेसे लगभग १५० वर्ष पहले यह बात प्रसिद्ध थी और इस लिए यह कथाकोशके या राजावलीके लेखककी गढ़ी हुई नहीं है।

किन्तु बड़े भारी आश्चर्यकी बात यह है कि प्रभावकचरित-वर्णित हंस परमहंसकी कथामें भी तारादेवीके साथ शास्त्रार्थ करनेकी बात बिलकुल जैसीकी तैसी लिखी हुई है! तब क्या प्रभावकचरितके कर्त्ताने अपनी कथाका उत्तरार्ध कथाकोशकी अकलंककथाका अनुकरण करके गढ़ा है? कमसे कम मुझे तो यह संभव जान पड़ता है। इसके कई कारण हैं—

१ एक तो अकलंकदेवकी ताराघटस्फोटकी कथा प्रभावक-चरितसे पुरानी है; कमसे कम वि० सं० ११८९ के पहलेकी तो अवश्य है जब कि मल्लिषेणप्रशस्ति लिखी गई है।

२ दूसरे हंस परमहंसकी कथाका यह शास्त्रार्थादिका अंश यों ही ऊपरसे जोड़ा हुआ मालूम पड़ता है—कथासंगति ठीक नहीं जान

पड़ती। परमहंसको जबर्दस्ती कुछ दिनोंके लिए जीता रखकर उसके द्वारा शास्त्रार्थ करवाया है और आखिर उसे फिर मरवा दिया है। इसकी गढ़न्त साफ मालूम होती है।

३ तीसरे प्रभावकचरितसे पहलेका कोई ग्रंथ ऐसा देखनेमें नहीं आया जिसमें इसका उल्लेख हो। हरिभद्रके ग्रन्थोंमें भी इसका कोई आभास नहीं मिलता।

४ हंसके शास्त्रार्थकी बात यदि ऐतिहासिक होती तो श्वेताम्बर-सम्प्रदायके और और ग्रन्थोंमें अवश्य मिलती; पर नहीं मिलती।

४ चौथे सबसे बड़ा प्रमाण कथाके इस भागके कल्पित होनेमें यह है कि राजशेखरसूरि (श्वेताम्बर) के चतुर्विंशतिप्रबन्ध नामक ऐतिहासिक ग्रन्थमें इस बातका नाम मात्रको भी उल्लेख नहीं है कि एक भाईके मारे जाने पर दूसरा भाई किसी राजाकी शरणमें गया और वहाँ उसने बौद्धोंसे शास्त्रार्थ किया, या देवीका पराजय किया। चतुर्विंशतिप्रबन्ध विक्रमसंवत् १४०५ का बना हुआ है। जब इसमें हंसके शास्त्रार्थादिका जिक्र नहीं है, तब यह बात बिल्कुल स्पष्ट हो जाती है कि प्रभावकचरितके कर्त्ताने कथाका उत्तरार्ध अकलंकदेवकी कथासे ही उड़ाया है—चाहे वह मल्लिषेण-प्रशस्तिसे उड़ाया हो या किसी दिगम्बरकथाग्रन्थसे उड़ाया हो। यह नहीं हो सकता कि चतुर्विंशति प्रबन्धके कर्त्ताने संक्षिप्तताके खयालसे उक्त बातका जिक्र नहीं किया हो। नहीं, उन्होंने जिस प्राचीनग्रन्थके आधारसे उक्त कथा लिखी होगी उसमें यह भाग

न होगा; और प्रभावकचरितके कर्त्ताके समान उन्होंने इस अयथार्थ भागके बढ़ानेकी आवश्यकता न समझी होगी।

महाकवि वादिराजसूरिका पार्श्वनाथचरित शक संवत् ९४८ का बना हुआ है। उसमें लिखा है:—

तर्कभूवल्लभो देवः स जयत्यकलङ्कधीः।
जगद्द्रव्यमुषो येन दण्डिताः शाक्यदस्यवः॥

इससे मालूम होता है कि मल्लिषेणप्रशस्तिसे भी पहले यह बात प्रसिद्ध थी कि अकलंकदेवने बौद्धदस्युओंको दण्डित किया था या उनके साथ शास्त्रार्थ किया था। अर्थात् अकलंककथाका यह शास्त्रार्थादि सम्बन्धी भाग कल्पित नहीं है। पीछेके भी दिगम्बर ग्रन्थकार इस शास्त्रार्थका उल्लेख करते हैं:—

अकलङ्कोऽकलंकः स कलौ कलयतु श्रुतम्।
पादेन ताडिता येन मायादेवी घटस्थिता॥

[पाण्डवपुराण, पिटर्सनकी चौथीरिपोर्टका पृष्ठ १५७]

अकलंकगुरुर्जीयादकलंकपदेश्वरः।
बौद्धानां बुद्धिवैधव्यदीक्षागुरुरुदाहृतः॥

[ब्रह्माजितकृतः हनुमच्चरित]

उक्त कथाओंके विषयमें मैंने जो अनुमान किये हैं संभव है कि वे ठीक न हों; अधिक छानबीन करनेसे शायद इनसे विरुद्ध प्रमाण मिल जावें, अर्थात् दोमेंसे कोई एक कथा ही ठीक हो, दूसरी पहलीकी अथवा पहली दूसरीकी नकल मात्र हो; परन्तु इस तरहका विश्वास करनेके लिए तो हृदय तैयार नहीं होता है कि दोनों ही कथायें सही हैं—हंस परमहंसकी घटनायें भी सही और अकलंक निकलंककी भी सही।

प्राचीन भारतीय इतिहासमें जैनमत ।

सुप्रसिद्ध वर्तमान इतिहासज्ञ मि. विन्सेंट ए. स्मिथ एम. ए. साहबके 'भारतका प्राचीन इतिहास' (History of India) नामक ग्रन्थकी तृतीयावृत्ति हाल ही प्रकाशित हुई है । इसमें जैनधर्मके सम्बन्धमें बहुतसी महत्त्वकी बातें लिखी गई हैं । हितैषीके पाठकोंके जाननेके लिए यहाँ पर हम उनसबका अनुवाद प्रकाशित करते हैं:—

पृष्ठ १० ।

जैनोंकी धार्मिक पुस्तकें भी भारतके प्राचीन इतिहासकी पूर्तिकी एक साधन हैं । उनमें कितनी ही बहुमूल्य कथाओं और घटनाओंका संग्रह है; परन्तु जैनग्रन्थ अब तक भी पूर्णरूपसे प्रकट नहीं हैं ।

प्रो. जेकोबीने कुछ जैन ग्रन्थोंका अनुवाद किया है । जैनमतके प्रकाशित ग्रन्थोंके विषयमें डाक्टर गरनटकी पुस्तकसे विशदरूपसे पता लगता है । बरोदिया महाशयकी 'जैनसाहित्य और इतिहास' नामक पुस्तक जो बम्बईमें सन् १९०९ में प्रकाशित हुई है तथा मिसेज् सिंक्लेयर स्टीवेंसनकी जैनधर्म विषयक पुस्तक भी देखने योग्य है । जैनमतके प्राचीन इतिहासका सर्वोत्तम सारांश डाक्टर हरनलकी बंगाल एशियाटिक सोसायटीकी प्रेजाडेंशियल स्पीचमें दिया गया है ।

पृष्ठ २९ ।

यद्यपि जैनधर्म तथा बौद्धधर्म इन दोनों धर्मोंका प्रादुर्भाव बहुत प्राचीनकालमें हुआ था जिसका कि इतिहास मालूम नहीं है; परन्तु जैसा हम उनके विषयमें जानते हैं उनको वर्द्धमान महावीर और गौतमबुद्धने स्थापित किया है । ये दोनों तत्त्ववेत्ता—जो कितने ही वर्षोंतक समकालीन—रहे मगध (वर्तमान दक्षिणीय विहार) में पैदा हुए, वहीं पर बड़े हुए और वहीं पर उन्होंने निर्वाण प्राप्त किया । महावीरका—जो वैसाली (गंगाके उत्तरका एक नगर) के एक सरदारके लड़के थे—मगधके राजघरानेसे निकट सम्बन्ध था । इनका पावामें—जो वर्तमान पटना जिलेमें है—निर्वाण हुआ था ।

पृष्ठ ३३ ।

महावीर—जो बिम्बिसारकी रानी और अजातशत्रुकी माताके निकटसम्बन्धी थे—संभवतया बिम्बिसारके राज्यकालके अन्तमें निर्वाणको प्राप्त हुए; परन्तु गौतमबुद्ध अजातशत्रुके राज्यके प्रारंभमें ही मुक्त हुए । अजातशत्रु जो जैनोंमें कुणिकके नामसे प्रसिद्ध हैं—जब ई० सन् से ५०० या ५०२ वर्ष पूर्वके लगभग राजासिंहासन पर आसीन हुए उस समय गौतमबुद्ध निस्सन्देह वृद्ध थे ।

पृष्ठ ४६ ।

अनेक कथाओं और युक्तियोंसे जिनमें बहुत कुछ सत्य मालूम होता है यह बात अच्छी तरह सिद्ध होती है कि महावीर तथा गौतमबुद्ध बहुत दिनोंतक एक दूसरेके तथा बिम्बिसार (श्रेणिक) और अजातशत्रुके समकालीन रहे हैं । यह बात भी कथाओं और

उक्तियोंसे विदित होती है कि महावीर गौतमबुद्धसे पहले निर्वाणको प्राप्त हुए। इन दोनों महात्माओंकी निर्वाणतिथियाँ भारतीय धर्मोंके इतिहासमें बड़े महत्त्वकी हैं, इतिहासमें नये युगको उत्पन्न करती हैं और धार्मिक ग्रन्थकर्त्ता कालनिर्णय विषयक बातोंमें बड़ी बहुलतासे इनका उपयोग करते हैं: परन्तु परस्पर विरुद्ध कथाओं और उक्तियोंकी परीक्षा करनेसे बड़ी कठिनाइयाँ पैदा होती हैं। ई० सनसे ५२७ वर्ष पूर्व जो आम तौरसे महावीरका निर्वाण-संवत् बताया जाता है अनेक कल्पित उक्तियोंमेंसे एक है। जैन उक्तियोंको आपसमें मिलान करना अथवा चन्द्रगुप्तकी निश्चित तिथिसे मिलान करना असंभव है।

डाक्टर हरनलने परस्परविरुद्ध जैनतिथियों पर विवेचना करते हुए लिखा है कि यद्यपि दिगम्बर और श्वेताम्बर दोनों ही महावीरके निर्वाणको विक्रमसे ४७० वर्ष पूर्व माननेमें—जिसका ई० सनसे ५८ वर्ष पूर्वसे प्रारंभ होता है—सहमत हैं तथापि दिगम्बर विक्रमके जन्मसे और श्वेताम्बर राज्याभिषेकसे गणना करते हैं। पुस्तकोंसे प्रकट होता है कि ५५१, ५४३ या ५२७ वर्ष पूर्व ये सब कल्पित समय हैं। यह बात विशेष रूपसे याद रखने योग्य है कि महावीरके नवें पट्टाधिकारी स्थूलभद्र—जो नवें नन्दके मंत्री थे—महावीरनिर्वाणसे २१५ या २१९ वर्ष पीछे मरे थे और इसी वर्ष नन्दको चन्द्रगुप्तने मारा था। मेरुतुंग पुष्पमित्रको—जो ई० सन्से १८५ वर्ष पूर्व तख्तपर बैठे थे—महावीरसे ३२३-५३ के बीचमें बतलाते हैं।

पृष्ठ १४६।

जैनकथाओंमें उल्लेख है कि चन्द्रगुप्त मौर्य जैन था। जब १२ वर्षका दुष्काल पड़ा तब चन्द्रगुप्त अन्तिमश्रुतकेवली भद्रबाहुके साथ दक्षिणकी ओर चला गया और मैसूरके अन्तर्गत श्रवणबेल्गोलामें–जहाँ अबतक उसके नामकी यादगार है–मुनिके तौर पर रहा और अन्तमें वहीं पर उसने उपवासपूर्वक प्राण त्याग दिये। मैंने अपनी पुस्तककी द्वितीयावृत्तिमें इस कथाको रद्द कर दिया था और बिल्कुल कल्पित ख्याल किया था, परन्तु इस कथाकी सत्यताके विरुद्धमें जो जो शंकायें हैं उन पर पूर्णरूपसे पुनः विचार करनेसे अब मुझे विश्वास होता है कि यह कथा **संभवतया** सच्ची है और चन्द्रगुप्तने वास्तवमें राजपाट छोड़ दिया होगा और वह जैनसाधु हो गया होगा। निस्सन्देह इस प्रकारकी कथायें बहुत कुछ समालोचनाके योग्य हैं और लिखित साक्षीसे ठीक ठीक पता लगता नहीं, तथापि मेरा वर्तमानमें यह विश्वास है कि यह कथा सत्य पर निर्धारित है और इसमें सचाई है। राइससाहबने इस कथाकी सत्यताका अनेक स्थलों पर बड़े जोरसे समर्थन किया है। हालमें उन्होंने 'शिलालेखोंसे मैसूर तथा कुर्ग' नामक पुस्तकमें इसका जिक्र किया है।

पृष्ठ १९३।

पश्चिम भारतकी जैनकथा अशोकके उत्तराधिकारी सम्प्रतिको जैनधर्मका प्रसिद्ध संरक्षक मानती है और उसकी बड़ी प्रशंसा करती है कि उसने अनार्य देशोंमें भी जैनमठ बनवाये। प्रायः

जितने प्राचीन जैनमंदिर अथवा मठ गुफायें वगैरह हैं–जिनके कि आदिका कुछ पता नहीं है–सब एक स्वरसे सम्प्रतिकी ही बनवाई हुई बतलाई जाती हैं। वास्तवमें वह जैन अशोक समझा जाता है। एक ग्रन्थकार उसको सम्पूर्ण भारतका स्वामी बतलाता है। उसकी राजधानी पाटलीपुत्र (पटना) थी; परन्तु अन्य कथाओंके अनुसार उसकी राजधानी उज्जैन थी। इन तमाम परस्पर विरुद्ध कथाओंको आपसमें मिलाना अथवा इनसे सत्यकी खोज करना असंभव है। बौद्ध और जैनकथाओंके सहमत होनेसे इस बातका पता अवश्य लगता है कि सम्प्रति वास्तवमें कोई व्यक्ति हुआ है। शायद अशोककी मृत्युके बाद तुरन्त ही उसके पोतोंमें राज्य दो भागोंमें विभक्त हो गया था। दशरथने पूर्वीय देश ले लिया था और सम्प्रतिने पश्चिमीय प्रदेशोंको ले लिया था। परन्तु इस पक्षके समर्थनमें कोई स्पष्ट साक्षी नहीं है।

पृष्ठ २०२–२०३।

जैनधर्म तथा बौद्धधर्मके ह्रासका एक कारण यह भी है कि अन्यमतावलम्बियोंने बौद्धों तथा जैनोंको बहुत दुःख दिया और उनको मरवाया। ससांक, मिहिरकुलने बौद्धों पर जो जो अन्याय किये उनका हाल ह्यूनसांग आदि समकालीन लेखकोंके लेखोंसे स्पष्ट रूपसे ज्ञात होता है। सातवीं शताब्दिमें इसी प्रकार दक्षिण भारतमें जैनधर्म पर भी आक्रमण हुए और जैनोंका घात किया गया। ई० सन् ११७४–७६ में गुजरातके अजयदेव नामक एक शैव राजाने राज्यको ग्रहण करते ही जैनोंका बड़ी निर्दयतासे वध

करवाया और उनके गुरुको मरवाया। इसी तरहके और भी अनेक प्रामाणिक उदाहरण दिये जा सकते हैं जिनसे ज्ञात होता है कि कैसी निर्दयतासे जैनोंका वध किया गया है।

पृष्ठ ४२९।

राजा अमोघवर्ष दिगम्बर जैनधर्मका बड़ा प्रेमी था। वृद्धावस्थामें उसने राजपाटको छोड़कर साधुके व्रत धारण कर लिये थे। सन् ८१९ में वह राजा हुआ और सन् ८७७ तक राज्य करता रहा। वह अधिक समय तक बेंगीके पूर्वीय चालुक्य राजाओंसे लड़ता रहा। उसने अपनी राजधानी नासिकसे (?) बदलकर मान्यखेट (निजाम राज्यका वर्तमान मलखेड) में बना ली थी। नवीं शताब्दिके अन्तमें तथा दशवींके प्रारंभमें जिनसेन, गुणभद्र आदि अनेक प्रसिद्ध गुरुओंके कारण जिन पर एकसे अधिक राजाओंकी कृपा रही जैनधर्मने बहुत कुछ उन्नति की।

पृष्ठ ४४०।

जैनकथाके अनुसार दक्षिणमें जैनमतका प्रचार चन्द्रगुप्त मौर्यके समयमें उन लोगों द्वारा हुआ कि जो उत्तरसे बारह वर्षके घोर दुर्भिक्षके कारण दक्षिणमें चले गये थे। कुछ इतिहासकार इस घटनाको ई० सन्से ३०९ वर्ष पूर्वकी बतलाते हैं। ये लोग मैसूरमें श्रवणबेलगुलमें ठहर गये जहाँ उनके धर्मगुरु भद्रबाहुने जैनमतानुसार तप और परीषह सहकर प्राणोंको त्याग किया। वर्तमानमें श्रवणबेलगुलके प्राचीन जैनमन्दिरका जो धर्माध्यक्ष है वह अपनेको भद्रबाहुका पट्टाधिकारी बतलाता है और दक्षिण

भारतके समस्त जैन उसको धर्मगुरु मानते हैं। इस कथाका जैसा हम पृष्ठ १४६ में कह आये हैं चन्द्रगुप्त मौर्यके अन्तिम समयके हालसे सम्बन्ध है। कुछ इतिहासज्ञ इसको मानते हैं; परन्तु कुछ लोग नहीं मानते। उक्त मौर्य राजाके राज्य छोड़ने और स्वयं प्राण त्यागनेके विषयमें सत्य चाहे जो हो; परन्तु ऐसा कोई काफी सुबूत विद्यमान नहीं है कि जिसके कारण हम इस कथाको रद्द कर दें कि जैन उत्तरसे दक्षिणमें गये और उन्होंने महावीरके मतको दक्षिणमें बौद्धप्रचारकोंके वहाँ पहुँचनेसे ५० वर्ष पहले फैलाया। कहते हैं कि अशोकके पोते सम्प्रतिको सुहस्तिने जैन बनाया था। सम्प्रतिने अनेक प्रचारकोंको जैनधर्मका प्रचार करनेके लिए दक्षिणमें भेजा। दक्षिणमें निस्सन्देह जैनमतने इतनी उन्नति की कि राइस साहबका यह मानना युक्तियुक्त है कि ईस्वी सनके प्रथम १००० वर्षोंमें मैसूरमें जैनमतका जोर रहा और वह वहाँका मुख्य धर्म रहा है। केवल मैसूरमें ही इस धर्मका प्रचार न था किन्तु न्यूनाधिक यह मत सर्वत्र फैला था। पाण्ड्य देशमें जैनमत सातवी शताब्दिमें ही क्षीण होने लगा; परन्तु मैसूर और दक्षिणमें यह उसके सैकड़ों वर्ष बाद तक फैला रहा।

पृष्ठ ४५३।

प्रसिद्ध चीनीयात्री ह्यूनसाँग महाराज हर्षके समय में भारतमें आया था। वह लिखता है कि मलकूट (यह नाम उसने पाण्ड्यदेशके लिए दिया है) में बौद्धमत तो लगभग मिट गया था, प्राचीन मठ प्रायः नष्ट भ्रष्ट हो गये थे; परन्तु हिन्दूदेवोंके

सैकड़ों मन्दिर थे और दिगम्बर जैन विपुल संख्यामें मौजूद थे ।

पृष्ठ ४५४, ४५५ ।

जब ह्यूनसाँग सन् ६४० ईस्वीमें दक्षिणमें गया तब पल्लवदेश (द्राविड़) तथा पाण्ड्यराज्य (मलकूट) दोनों जगहोंमें दिगम्बर जैन प्रजा और जैनमन्दिर बेहद थे । उसके हालसे इस बातका तनिक भी पता नहीं लगता है कि वहाँ किसी प्रकारका धार्मिक वध हुआ । अत एव हमें यह बात माननी चाहिए कि वध जो उसी समयके लगभग अवश्य हुआ है ह्यूनसाँगके वहाँसे जानेके बादमें हुआ है । यह बात पूर्णरूपसे मान्य है कि राजा कून, सुन्दर वा नेदुमारन पाण्ड्य (Kuna, Sundara, or Nedumaran Pandya) जो जैनकुलमें उत्पन्न हुआ था, उसी धर्ममें जिसने परवरिश पाई थी और जिसका विवाह चोलकी एक राजकुमारीसे हुआ था सातवीं शताब्दिके बीचमें अपनी रानी तथा प्रसिद्ध महात्मा तिरुज्ञानसम्बंदर (Tirujnana sambandar) द्वारा शैव हो गया था कि जिस धर्मका चोलराज्यमें बड़ा जोर था । कहते हैं कि सुन्दर राजाने नवीन धर्मके लिए बड़ा ही उत्साह दिखलाया और यहाँ तक किया कि अपने पहले सहधर्मी भाइयों अर्थात् जैनोंको जिन्होंने शैव होनेसे इंकार किया बड़ी ही निर्दयतासे मारा ! ८००० निरपराध जैनोंको इस राजाने सूलीपर चढ़वाकर मरवा डाला ! अरकाटमें ट्रिवटूरके मन्दिरकी दीवालोंके कितने ही अप्रकाशित तक्षण-शिल्पमें इस वधका उल्लेख माना जाता है और उक्त बातकी सत्यतामें उनको पेश किया जाता है । इस वधका अनेक पुस्तकोंमें

अनेक स्थलोंमें उल्लेख है। इस घातसे दक्षिणमें जैनधर्मको बड़ा धक्का लगा। यह घात हुआ है इसमें तो कोई सन्देह नहीं, परन्तु हाँ, यह हो सकता है कि इसमें कुछ अत्युक्ति हो।

पृष्ठ ४७२।

पल्लवराजा महेन्द्रबर्मन—जो सातवीं शताब्दिके आदिमें हुआ है—मालूम होता है कि शुरूमें जैन था। किसी तामिल महात्माने उसको शैव बना लिया था। इस राजाने शैव होकर दक्षिण अरकाटके 'पाटली पुत्तिरिम नामक' स्थानमें एक बड़ेभारी जैनमठको बरबाद किया और उसकी जगह शैवमन्दिर बनवा दिया।

—**दयाचन्द्र गोयलीय बी. ए.।**

जैनसिद्धान्तभास्कर।

(समालोचना)

भास्करके अबतक ४ अंक निकले हैं। त्रैमासिक पत्र है। पहला अंक जुलाई-अगस्त-सितम्बर १९१२ का निकला था और चौथा अंक अभी मार्च सन् १९१५ में प्रकाशित हुआ है। लगभग तीन वर्षमें चार अंक निकले। त्रैमासिक हिसाबसे अभीतक इसके ११ अंक निकलने चाहिए थे। श्रीयुत सेठ पदमराजनी रानीवाले इसके आनरेरी सम्पादक हैं। सुनते हैं इसका सारा खर्च भी वे अपनी गाँठसे लगाते हैं और अबतक इस काममें लगभग चार हज़ार रुपया

खर्च कर चुके हैं! वे एक व्यापारी पुरुष हैं, इससे संभव है कि उन्हें अवकाश कम मिलता होगा और वे इस ओर यथेष्ट लक्ष न दे सकते होंगे। ऐसी अवस्थामें यदि भास्कर समय पर नहीं निकलता है और उसका सम्पादन योग्यतापूर्वक नहीं होता है तो हम केवल यही कह सकते थे कि सेठजी अपने कर्तव्यके पालनमें प्रमाद कर रहे हैं—उन्हें इस कार्यमें अपना विशेष समय और चित्त लगाना चाहिए; इससे अधिक कहनेका हमें कोई अधिकार न था। सेठजी भी इतना ही कहकर छुट्टी पा सकते थे कि क्या किया जाय, अवकाशाभावसे हम भास्करको समय पर नहीं निकाल सकते हैं और जैसा चाहिए वैसा सम्पादन भी नहीं कर सकते है। परन्तु चौथे अंकसे मालूम हुआ कि सेठजी अपने इस विलम्ब या प्रमादको और साथ ही अपनी अयोग्यताको भी अपनी प्रतिष्ठाका कारण बनाना चाहते हैं। इसका भी उन्हें बेहद अभिमान हैं। वे लिखते हैं "यह कार्य ऐसा है वैसा है, गंभीर है अन्धकारमें है, इसमें अटूट परिश्रम करना पड़ता है, एक एक लेखको बीसों बार लिखना पड़ता है, वर्षों खोजें करनी होती हैं, देरसे निकलने पर भी भास्करने बहुत कार्य किया है, क्या किया है सो अमुक विद्वानके व्याख्यानसे मालूम होगा, इतिहासके सभी पत्र देरीसे निकलते हैं, बंगाल एशियाटिक सुसाइटी जैसी साधनबहुल विशाल संस्थाओंके जनरल तीन तीन चार महीनेकी देरीसे निकलते हैं तब पाठक ही सोचें कि भास्कर देरीसे निकलता है या जल्दी? यह इतना कठिन काम है कि यदि भास्कर त्रिमासिककी जगह त्रैवार्षिक भी बनाया

जाय तो भी कुछ अनुचित न होगा," इत्यादि । सेठजीकी इस अभिप्रायकी लिखावट बतला रही है कि वे जितना कार्य कर रहे हैं उससे दश बीस गुणा यश लूटना चाहते हैं और एक भोलेभाले समाज पर अपने महान् इतिहासज्ञ होनेका दावा करते हैं । हमारी समझमें यह सर्वथा अनुचित है और इस तरहके विश्वाससे समाजको हानि पहुँचनेकी संभावना है ।

भास्करमें अभीतक जितने लेख प्रकाशित हुए हैं उनमें एक भी लेख ऐसा महत्त्वका या मौलिक लिखा हुआ नहीं है जिसके विषयमें यह कहा जा सके कि उसकी सामग्री संग्रह करनेमें या छानबीन करनेमें वर्षों तो क्या महीनों या सप्ताहों भी परिश्रम करना पड़ा हो । ऐसा एक भी लेख नहीं है जिसमें किसी अप्रकट बात पर नवीन प्रकाश डाला हो या कोई नवीन खोज की हो । कोई लिपि भी ऐसी महत्त्वकी नहीं निकली जिसका नया आविष्कार किया गया हो या जिसके पढ़नेमें वर्षों लग गये हों । प्रमाद और भूलें इतनी भरी हुई हैं कि पढ़कर आश्चर्य होता है । लेखप्रणाली इतिहासकी मर्यादासे बिलकुल बहिर्भूत है । उसे पढ़कर कोई यह नहीं कह सकता कि उसके लेखकको इतिहासका यत्किञ्चित् भी परिचय है । प्रायःसब ही लेख अत्युक्तियोंसे भरे हुए हैं । तब यह कैसे मान लिया जाय कि विलम्ब होनेका कारण विषयका गौरव या गहरी छानबीन करना है ।

इसके सिवाय भास्करमें जो कुछ लिखा गया है, उसका अधिकांश किरायेका है—वैतनिक कर्मचारियोंका लिखा हुआ है । यदि उसमें सेठ-

जीका कुछ है तो यही कि उसे लोग आपका ही लिखा हुआ समझते हैं। भास्करका संयुक्त अंक (द्वितीय तृतीय) यहीं बम्बईमें तैयार कराया गया था। जहाँतक हम जानते हैं उसे श्रीयुत तात्या नेमिनाथ पांगल और पं० हरनाथ द्विवेदीने मिलकर सम्पादत किया था। ये दोनों महाशय लगभग सवासौ रुपया मासिक वेतन लेकर कोई चार पाँच महीनेतक काम करते रहे थे। पहले और चौथे अंकमें भी सेठजीका खुदका परिश्रम बहुत कम दिखलाई देता है। ऐसी अवस्थामें भी सेठजी जैनसमाजको यह बतलाता चाहते हैं कि मैं स्वयं लेखक और इतिहासज्ञ हूँ और निःसीम परिश्रम करके भास्करका सम्पादन करता हूँ। पश्यतु साहसम्।

यह जैनसमाजका सौभाग्य है कि सेठ पद्मराजजी जैसे पुरुष जो थोड़े ही समय पहले ग्रन्थ छपानेके भी कट्टर विरोधी थे—इतिहासपर कृपा दृष्टि करने लगे हैं और उन्हें इतना शौक लग गया है कि इस काममें अपनी गिरहके हजारों रुपया बड़ी खुशीसे खर्च कर रहे हैं। सेठजीकी इस उदारताकी सभी लोग मुक्तकण्ठसे प्रशंसा करते हैं—है भी यह यथार्थ; परन्तु सेठजी अपनी इस उचित प्रशंसासे सन्तुष्ट न होकर जो बड़ी भारी इतिहासज्ञताका भी समाज पर दावा करने लगे हैं वह अनुचित है और इससे न केवल समाजकी ही हानि होगी; किन्तु सेठजी भी इस विषयमें अपनी उन्नति न कर सकेंगे। अतएव हम आवश्यक समझते हैं कि भास्करकी यथार्थ समालोचना करके बतला दिया जाय कि उसमें इतिहासत्व कितना है और किस योग्यतासे उसका सम्पादन हुआ है।

हम कोई इतिहासज्ञ नहीं जो एक ऐतिहासिक पत्रकी समालोचना कर सकें। इस विषयमें हमारा ज्ञान बहुत ही परिमित है। 'इतिहासका विद्यार्थी' कहलाना भी हम अपने लिए काफीसे ज्यादा सम्मानका कारण समझते हैं; परन्तु भास्करमें अभीतक जो कुछ लिखा गया है वह प्रायः इतना साधारण है कि यदि कोई इतिहासका प्रारंभिक विद्यार्थी ही उसे ध्यान पूर्वक पढ़े तो बहुत कुछ कहनेका अवकाश पा सकता है।

भास्करके चारों अंकोंकी हम क्रमशः आलोचना करेंगे; पर उसमें हम संभवतः इतिहासका ही विचार करेंगे। उसकी भाषा आदिकी आलोचनाके लिए हमारे पास काफी जगह नहीं। इतना ही कहना यथेष्ट होगा कि उसकी भाषा बहुत ही क्लिष्ट, संस्कृत-बहुल, आडम्बरपूर्ण और बनावटी होती है। ऐसा मालूम होती है कि लेखकने उसे अपने विचार प्रकट करनेके लिए नहीं किन्तु अपना पाण्डित्य प्रकट करनेके लिए लिखा है। पाठक उसे समझेंगे या नहीं, इससे लेखकको कोई मतलब नहीं। एक ऐतिहासिक पत्रकी भाषा मामूली पत्रों जैसी रहे यह बात शायद उसके सम्पादककी शानके खिलाफ है।

प्रथमाङ्क।

सबसे पहले हम पाठकोंका ध्यान इस अंकके आठवें पृष्ठ पर छपे हुए "पत्रका मुख्योद्देश्य" शीर्षककी ओर आकर्षित करते हैं। सम्पादक महाशय कहते हैं कि "इसमें ऐतिहासिक विषयकी चर्चा तथा भवनमें सुरक्षित शास्त्रोंके परिचयके सिवाय राजनैतिक और

सामाजिक विषयका उल्लेख बिल्कुल ही न रहेगा और यह भी इस-का एक मुख्य उद्देश्य रहेगा कि किसी समाचारपत्रके विषयोंकी आलोचना न करना।" अब पाठक इन उद्देश्योंके साथ भास्करके नये अंकके लेखोंका मिलना कर देखें। जैनब्रदर्स एसोशियेशन प्रयाग, जैनमित्रके सम्पादक, मोरेना पाठशाला आदि पर आपने जो अमर्यादित आक्रमण किये हैं, मालूम नहीं वे इतिहासके किस अंगसे ताल्लुक रखते हैं। सामाजिक बातोंमें नहीं पड़नेका और समाचारपत्रोंकी आलोचना न करनेकी प्रतिज्ञा करनेका भला और कौनसा अनोखा अर्थ है? माना कि एसोसिएशनके मेम्बरोंके विचार अच्छे नहीं, ब्रह्मचारीजीने गल्ती की; पर इससे आपके इतिहासपत्रका क्या सम्बन्ध? क्या आप अपना उक्त सामाजिक क्रोध अन्य कि-सी सामाजिक पत्रके द्वारा प्रकट न कर सकते थे? बड़े अफसोसकी बात है कि अपने उद्देश्योंको भी भूल जानेवाले लोग अभिमानके मारे जमीन पर पैर नहीं रखना चाहते।

भास्करके किसी भी लेखको आप पढ़ लीजिए, आपको यह कदापि मालूम नहीं पड़ सकता कि हम कोई इतिहासका लेख पढ़ रहे हैं। इतिहासलेखककी भाषा जँची तुली, आडम्बरशून्य होती है—बिना जँचा तुला एक शब्द भी उसकी कलमसे नहीं निकलता; पर यहाँ इस बातका सर्वथा अभाव है। महापुराणका परिचय देते हुए आप लिखते हैं:—"जिन्होंने इस परमोत्कृष्ट ग्रन्थका स्वाध्याय विचारपूर्वक किया होगा उनको यह मालूम होगा कि कैसे महत्त्व तथा इतिहासके अनेक अभावोंकी पूर्तिका कारण यह ग्रन्थ है।

इतिहासके लिये जितनी सामग्रियोंकी जरूरत है हमारे आचार्य प्रवरने प्रायः सभी विषयोंका समावेश इसकी रचनामें किया है । यह भारतवर्षका एक सच्चा सर्वांगपूर्ण इतिहास माना जाय तो इसमें कुछ भी अत्युक्ति न होगी ।" इत्यादि । लीजिए, सेठजीने भारतवर्षके सर्वांगपूर्ण सच्चे इतिहासका पता लगा लिया; अब विद्वानोंको किसी तरहके प्रयत्न करनेकी जरूरत नहीं । इस विषयमें लोग नाहक सिर खपा रहे हैं । भला, इस बेलगामी प्रशंसाका भी कुछ ठिकाना है ? समझमें नहीं आता कि हम इसे पुराणभक्ति कहें या मूर्खता ! भगवान् आदिनाथके समयका अथवा अधिकसे अधिक महावीर स्वामीतकका, गुरुपरम्परासे चला आता हुआ, विना सन् संवत्का, मुख्यतः धार्मिक जगत्का इतिहास तो हम भी इसे कह सकते हैं; परन्तु भारतका सच्चा सर्वांगपूर्ण इतिहास कहना तो आप ही जैसे साहसियोंका काम है। मालूम नहीं 'सर्वांगपूर्ण' का अर्थ आप क्या समझते हैं। हाँ, महापुराणकी वे 'सभी इतिहासकी सामग्रियाँ' तो प्रकट कर दीजिए और उनसे और नहीं तो महावीरभगवान्का समय ही निश्चित कर दीजिए और उस समयकी राजनीतिक सामाजिक स्थिति क्या थी सो भी बतला दीजिए। अरे भाई ! जिस इतिहासकी डुगडुगी आप भास्करके प्रत्येक पृष्ठमें पीटा करते हैं क्या वही इतिहास आपके भवनके इस आदिपुराणमें मौजूद है !

आगे आदिपुराण–उत्तरपुराणके मंगलाचरण और प्रशस्तियाँ हिन्दी अनुवादसहित प्रकाशित की गई हैं। मूलमें जो अशुद्धियाँ हैं

वे मामूली हैं; परन्तु अनुवाद तो बहुत ही अंडबंड लिखा गया है। अनुवादक महाशय पं० झम्मनलालजी हैं। वे इतिहासज्ञ नहीं हैं; परन्तु सम्पादक महाशय तो इतिहासज्ञशिरोमणि हैं ! ऐतिहासिक अशुद्धियाँ उनकी दृष्टिमें तो आजानी थीं। यह एक बहुत ही प्रसिद्ध बात है कि प्रभाचन्द्र न्यायकुमुदचन्द्रोदय नामक न्यायग्रन्थके बनानेवाले हैं। संक्षेपमें इस ग्रन्थको 'चन्द्रोदय' भी कहते हैं। परन्तु मंगलाचरणके ४७ वें श्लोकके अर्थमें अनुवादक महाशय कहते हैं कि "प्रभाचन्द्रने चन्द्रोदय नामक काव्य बनाकर जगत्को आल्हादित किया !" पर जान पड़ता है 'चन्द्रोदय' का यही अर्थ सम्पादक महाशयको भी मंजूर है, इसलिए वे आगे ४९ वें पृष्ठमें जिनसेन स्वामीका परिचय देते हुए लिखते हैं:—"चन्द्रोदयके रचयिता श्रीप्रभाचन्द्र कविकी आपने बड़ी पूज्य श्रद्धा भरी स्तुति की है और इनकी बड़ी गौरवता (?) दर्शायी (?) है। इससे मालूम होता है कि चन्द्रोदय काव्य उस समय सर्वश्रेष्ठ माना जाता था!" बाहरी इतिहासज्ञता ! अजी इतना और लिख देते कि "भवनमें यह काव्य मौजूद है" तो बात और भी पक्की हो जाती। ४९ वें श्लोकमें शिवकोटिके 'भगवतीआराधना' नामक ग्रन्थका स्पष्ट उल्लेख है; परन्तु अनुवादक महाशय उसे नहीं बतला सके—यों ही शब्दार्थ मात्र कर दिया है। ५० वें श्लोकका अर्थ बहुत ही अस्पष्ट है। ५१ वें काणभिक्षुके 'कथालङ्कार' का उल्लेख है; परन्तु वह भी स्पष्ट करके नहीं बतलाया गया। ५२ वें श्लोकका अर्थ तो बहुत ही पाण्डित्य पूर्ण है:—

कवीनां तीर्थकृद्देवः किं तरां तत्र वर्ण्यते।
विदुषां वाङ्मलध्वंसि तीर्थं यस्य वचोमयम् ॥

इसका अर्थ यह है कि " 'देव' कवियोंके तीर्थंकर हुए हैं, अर्थात् विद्वानोंमें तीर्थंकरके तुल्य (बड़े पूज्य) हुए हैं। उनके विषयमें अधिक क्या कहा जाय? उनका वचोमयतीर्थ (व्याकरण शास्त्र) विद्वानोंके वचनमलको नष्ट करनेवाला है।" इस श्लोकमें देवनन्दि या पूज्यपाद आचार्यका स्मरण किया गया है। 'देव' उनका संक्षिप्त किया हुआ नाम है।

अकलंकदेवका भी नाम 'देव' है; परन्तु उक्त श्लोकके आगे ही 'भट्टाकलङ्कश्रीपालपात्रकेसरिणां गुणाः' कहकर उनका जुदा स्मरण किया गया है। इसलिए इसका अर्थ अकलंक नहीं किया जा सकता। अब देखिए भास्करमें इसका कितना बढ़िया अर्थ किया गया है:–" कवियोंमें कितने ही तीर्थंकर भी हो गये हैं, किन किनका वर्णन किया जाय? इन लोगोंके वचनमय तीर्थने विद्वानोंके वाङ्मलको नष्ट कर दिया।" लीजिए, यह बिलकुल नई बात मालूम हुई! अच्छा होता यदि ऐसे पंचकल्याणकप्राप्त कवियोंके नाम भी बतला दिये जाते।

आगे उत्तरपुराणके ७६ वें अध्यायके कुछ श्लोक दिये हैं। उनमें द्वादशांगके पाठी जिन ११ मुनियोंके नाम हैं उनका अर्थ करनेमें बहुत ही भद्दी भूल की गई है। '**विजयी बुद्धिलो गङ्गदेवश्च क्रमशो मतः।**' इसका 'क्रमशो' शब्द यह बतलाता है कि ये सब आचार्य क्रमसे–एकके बाद एक–हुए हैं। परन्तु अर्थ

करनेवाले ' क्रमशो ' की जगह ' क्रमणो ' पाठ मानकर एक ' क्रमण ' नामक आचार्यका आविष्कार करते हैं और साथ ही ' नागसेन ' का अस्तित्व ही मिटा देते हैं ! ' जयनामानुगांकः नहीं ' जयनागानुगांकः ' पाठ है जिसका अर्थ जयसेन और नागसेन होता है।

इसके बाद उत्तरपुराणकी प्रशस्ति दी है। उसमेंसे मालूम नहीं कि ५-६-७-८ श्लोक क्यों छोड़ दिये ? वे तो इतिहासकी दृष्टिसे बहुत महत्त्वके हैं। उनमें वीरसेनस्वामीका परिचय दिया गया है और उनके बताये हुए ' सिद्धभूपद्धतिः ' नामक ग्रन्थका उल्लेख किया गया है। श्लोक जरा कठिन अवश्य है, शायद इसीलिए अनुवादकमहाशयने उनको छोड़ दिया हो। खैर, इच्छा उनकी !

इसी प्रशस्तिके १३-१४-१५ श्लोकोंमें यह बतलाया है कि जिनसेनके सतीर्थ या गुरुभाई दशरथगुरु थे और गुणभद्र इन दोनोंके शिष्य थे (शिष्यः-श्रीगुणभद्रसूरिरनयो आसीज्जगद्विश्रुतः)। इन श्लोकोंमेंसे पहलेके अर्थमें तो आप कहते हैं कि " चन्द्रमाके सहवर्ती आकाशके एक नेत्र सूर्यकेसे दशरथगुरु जिनसेनाचार्यके सहधर्मी हुए। " परंतु आगे ६-७ पंक्तियोंके बाद ही १५ वें श्लोकके अर्थमें फरमाते हैं--" दशरथगुरु और गुणभद्राचार्य जिनसेन के प्रिय शिष्य हुए।" बाहरी इतिहासज्ञता ! तुझे धन्य है जो दशरथगुरुको जिनसेनका सतीर्थ भी बतलाती है और शिष्य भी बतलाती है ! ऐसी इतिहासज्ञताके बिना हम जैसोंको इतिहासकी शिक्षा कैसे दी जा सकती ?

आगे १६-१७-१८-१९-श्लोकोंका यह कुलक है:-

कविपरमेश्वरनिगदितगद्यकथामातृकं पुरोश्चरितं।
सकलच्छन्दोलङ्कृतिलक्ष्यं सूक्ष्मार्थ गूढपदरचनम् ॥ १६ ॥
व्यावर्णनोरुसारं साक्षात्कृतसर्वशास्त्रसद्भावम्।
अपहस्तितान्यकाव्यं श्रव्यं व्युत्पन्नमतिभिरादेयम्।

जिनसेनभगवतोक्तं मिथ्याकविदर्पदलनमतिललितम् ।
सिद्धान्तोपनिबन्धनकर्त्रा भर्त्रा चिराद्विनायासात् ॥ १८ ॥
अतिविस्तरभीरुत्वादवशिष्टं संगृहीतममलधिया ।
गुणभद्रसूरिणेदं प्रहीणकालानुरोधेन ॥ १९ ॥

इनमेंसे पहले तीन श्लोकोंमें तो जिनसेनस्वामीके आदिपुराणके विशेषण हैं जिनमें महत्त्वका विशेपण यह है कि वह पुराण ' कवि परमेश्वरनिगदितगद्यकथामातृकं ' है, अर्थात् कविपरमेश्वरके किसी गद्यपुराणके आधारसे उसकी रचना हुई है—मूल उसका उक्त गद्य पुराण है। आगे १९ वें श्लोकमें बतलाया है कि उसके अवशिष्ट भागको गुणभद्रसूरिने बनाया।

अब देखिए, भास्करमें इन श्लोकोंका क्या अर्थ प्रकाशित हुआ है:—" सभी छन्द और अलङ्कारका लक्ष्य, सूक्ष्मार्थ तथा गूढपदकी रचनावाली एक 'गद्यकथा' कविपरमेश्वरने बनायी।........" अच्छा बनाई होगी; पर उसका सम्बन्ध भी तो बतलाइए कि इस प्रकरणमें क्या है! अनुवादकसे जरा आप भी तो पूछ लेते कि 'कवि परमेश्वरने बनाई ' यह अर्थ कहाँसे आकूदा। पहले श्लोकमें तो क्रियाका कहीं चिन्ह भी नहीं है। और नहीं तो जैनहितैषीमें प्रकाशित हुए ' जिनसेन और गुणभद्राचार्य ' शीर्षक विस्तृत लेखको ही उठाकर देख लेते; उसमें तो इन श्लोकोंका अच्छी तरह खुलासा किया है। आपका जिनसेन और गुणभद्रवाला सारा लेख ही तो उसीको सामने रखकर लिखा गया है।

आगे २९ वें श्लोकके अर्थमें लिखा है कि " लोकसेन मुनीश कविवर जिनसेनाचार्यके मुख्य शिष्योंमें थे ! " बलिहारी है इस

इतिहासज्ञताकी ! गुणभद्रके शिष्यको आप जिनसेनका शिष्य बनाते हैं ! 'तस्य शिष्येषु मुख्यः' में 'तस्य' का सम्बन्ध १९ वें श्लोकके गुणभद्रसूरिसे है, यह बुद्धिको जरासा ही ज़ोर देनेसे मालूम पड़ जाता; पर ज़ोर लगानेकी आप आवश्यकता समझें तब न ! किसी पण्डितसे अर्थ लिखवा दिया कि छुट्टी पाली। स्वयं अर्थ लगानेके लिए तो योग्यताकी भी अवश्यकता होती है !

मंगलाचरण और प्रशस्तिके अनुवादमें और और दोष भी बहुत अधिक हैं; पर खेद है कि स्थानाभावके कारण हम उनकी आलोचना नहीं कर सके ।

इसके आगे सेनगणकी सार्थ पट्टावली है जो दो अंकमें समाप्त हुई है। इसके आधेभागका अनुवाद पं० झम्मनलालजीने और शेषका पं० हरनाथजी द्विवेदीने किया है । अनुवादकी क्लिष्टता दुर्बोधता और अर्थच्युतिके विषयमें हम कुछ नहीं कहना चाहते। हम उसकी इतिहासताके विषयमें ही कुछ निवेदन करेंगे। पट्टावलीका मूल्य उस समय समझमें आता जब सम्पादक महाशय उसकी प्रामाणिकता सत्यता आदिके विषयमें कुछ नोट देते; परन्तु इस परिश्रमसाध्य कार्यमें वे क्यों पड़ने लगे? अच्छा, तो आइए हम ही कुछ विचार करें। हमारी समझमें इतिहासकी दृष्टिसे यह पट्टावली अधिक महत्त्वकी नहीं है। यह पट्टावली है भी नहीं। यह पुरानी पद्धति है कि जब भगवानका अभिषेक किया जाता है तब अभिषेक करनेवाले अपनी गुर्वावलीका उच्चारण करते हैं। अवश्य ही किसी समय यह पद्धति गुरुपरम्पराको स्मरण रखनेमें बहुत उपयोगी

रही होगी; परन्तु पीछे इसकी यथोचित रक्षा न हुई और एक रीति मात्र रह गई। जिसको जितने नाम या जितनी परस्परा याद रही, पीछे उसीसे काम लिया जाने लगा। पहले विद्वान् लोग इसे स्वयं संस्कृत भाषामें रचकर पढ़ते थे; परन्तु पीछे दूसरोंकी रचीरचाई ही पढ़ी जाने लगी। इस तरहकी प्रतिदिन पढ़नेके लिए लिखी हुई गुर्वावलियाँ अकसर मिलती हैं और भट्टारक तथा उनके शिष्योंको तो प्रायः कण्ठ आती हैं। यह पट्टावली भी उसी तरहकी गुर्वावलियोंमेंसे एक है। इसके अन्तिम वाक्योंसे मालूम होता है कि यह दिल्लीकी गद्दीके पुष्करगच्छीय भट्टारक छत्रसेनकी अभ्युदयसमृद्धिकी सिद्धिके लिए अभिषेकके समय पढ़ी गई थी। अवश्य ही इसमें जिन आचार्योंके नाम आये हैं वे सच होंगे और उनमेंसे बहुतोंकी प्रशंसा भी शायद सच होगी; परन्तु वह क्रमबद्धपरम्परा है इसको तो भास्करके सम्पादकको छोड़कर और कोई सच नहीं मान सकता। शायद उनकी समझमें कोई भी लिखी हुई बात असत्य नहीं हो सकती!

सम्पादक महाशयने यह पट्टावली जिनसेन गुणभद्र स्वामीका परिचय करानेके लिए—उनकी वंशपरम्परा बतलानेके लिए प्रकाशित की है; परन्तु यह भी बतलानेकी कृपा न की कि इसकी प्रारंभकी गुरुपरम्परा आदिपुराणके ७६ वें अध्यायकी परम्परासे क्यों नहीं मिलती है? आदिपुराणके कर्त्ता (और इन्द्रनन्दि आदि भी) पाँच श्रुतकेवलियोंके बाद विशाख आदि ११ द्वादशाङ्गज्ञाताओंका नाम बतलाते हैं; पर आपकी पट्टावलीमें सिर्फ ९ ही आचार्य बतलाये गये हैं सिद्धार्थ और नागसेनका उनमें पता ही नहीं है। आगे पाँच एका-

दशांगधारियोंके नाम पट्टावलीमें ठीक हैं; परन्तु आपके अनुवादक महाशय उनमें एक मुनीन्द्रको और जोड़कर छह कर देते हैं। वास्तवमें यह 'मुनीन्द्र' शब्द पाण्डुका विशेषण है कोई जुदा नाम नहीं। इनके आगेके चार आचार्योंमें एक जिनसेन नाम भी मालूम नहीं क्यों बढ़ाया गया है। अपने पाठकोंको पट्टावलीकी मनोयोगपूर्वक पर्यालोचना करनेकी सम्मति न देकर उसकी इन भिन्नताओं पर सम्पादक महाशय स्वयं ही कुछ विचार करते तो अच्छा होता। उससे आपकी और आपकी पट्टावलीकी दोनोंकी ही योग्यताकी जाँच हो जाती।

पट्टावलीके ८ वें गद्यमें गणितज्ञ महावीराचार्यका उल्लेख है जो (गणितसारसंग्रहके मंगलाचरणसे मालूम होता है कि) अमोघवर्ष राजाके समयमें हुए हैं और इस कारण वे वीरसेन जिनसेनके समकालीन सिद्ध होते हैं; परन्तु देखते हैं कि उसके आगेके ११ वें गद्यमें नन्दिसेनादि संघस्थापक अर्हद्बलिका स्मरण है जो विक्रमकी पहली शताब्दिमें बतलाये जाते हैं। उनके आगे चामुण्डरायकृत बाहुबलिकी प्रतिष्ठा करानेवाले अजितसेनाचार्यका उल्लेख है जो शककी १० वीं शताब्दिमें हुए हैं। इनके बाद १९ वें गद्यमें शिवकोटि महाराजको मुनि बनानेवाले समन्तभद्र स्वामीका उल्लेख है जो कुन्दकुन्द स्वामीसे कुछ ही पीछेके बतलाये जाते हैं। इस तरहकी क्रमभंगता उसमें जगह जगह दिखलाई देती है जिससे यह कभी नहीं कहा जा सकता कि उसमें सेनसंघके आचार्योंकी क्रमबद्ध परम्परा है।

अत्युक्तियोंका तो वह भण्डार है। प्रशंसा करनेमें उसका लेखक बहुत ही उदार है। इसी लिए वह गुणभद्रस्वामीको द्वादशांग चतुर्दश-पूर्वका ज्ञाता बतलाता है ! जिनसेनस्वामीको धवलमहाधवलपुराणादि सकल ग्रन्थोंका कर्ता कहता है, यद्यपि उन्होंने जयधवलाटीकाके ही शेष अंशको बनाया है, महाधवलटीकाको नहीं। श्रवणबेलगुलस्थ बाहुबलि स्वामीकी मूर्तिकी प्रतिष्ठा करानेवाले चामुण्डरायको वह दक्षिण-तैलङ्ग–कर्णाटक देशाधिपति बतलाता है ! परन्तु असलमें वे गंगवंशीय राजा राचमल्लके मंत्री और सेनापति थे। लेखकको क्या खबर थी कि कुछ समयके बाद मेरी इस रचनाको कोई– इतिहासकी चीज समझेगा, इसीलिए उसने जो मनमें आया–कर्ण-मधुर और यमकानुप्रासयुक्त जो विशेषण सामने आये उन्हें ही लिख दिया है। वह अपने एक आधुनिक सोमसेन नामक भट्टारकको नौलाख धनुर्धरोंके स्वामी, दक्षिण कर्नाटकीय १७ लाख राजाओंसे पूजित बतलाता है !!! बुद्धिशून्य अन्धविश्वासियोंको छोड़कर और कोई तो शायद ही इस पट्टावलीकी बातोंको माननेके लिए तैयार होगा।

इसके आगे ‘ जिनसेन और गुणभद्राचार्यका परिचय ’ शीर्षक लेख है। इसके प्रारंभमें ही आप लिखते हैं कि “ जिनसेन और गुणभद्राचार्यने अपने समयादिका निर्णय कहीं नहीं किया और न अपनी पूरीपूरी पट्टावली ही किसी ग्रन्थमें दी। ” सेठजी, जिन-सेनस्वामीने तो अवश्य ही अपना समय ग्रन्थ लिखनेका नहीं बताया है; परन्तु गुणभद्रने तो बतलाया है ! उत्तरपुराणकी प्रशस्ति जो आपने इसी अंकमें प्रकाशित की है, उसमें साफ शब्दोंमें लिखा है

कि शक संवत् ८१० में उत्तरपुराण समाप्त हुआ। गुणभद्रने अपने संघका परिचय भी काफी दे दिया है। अच्छा होता यदि आप लेख लिखते समय एकबार प्रशस्तिको अच्छी तरह बाँच जाते। इनके समयनिर्णयको आपने जो महाकष्टसाध्य बतलाया है सो भी ठीक नहीं। इनके समय निर्णयके तो इनके ग्रन्थोंमें ही अनेक सुलभ साधन मौजूद हैं।

आगे आपने कालिदास और जिनसेनकी समकालीनता दिखलाने वाली कथाका उल्लेख करके उसको ठीक बतलाया है। पर वह निरी गप्प है। उसके सिद्ध करनेके लिए आपने २—३ किरणमें एक लेख लिखा है, पर अभी तक वह अपूर्ण ही है; चौथी किरणमें भी आपको उसके पूर्ण करनेका अवकाश न मिला! खैर, तो उसे पूरा हो जाने दीजिए, हम भी उसके विषयमें तभी कुछ लिखेंगे।

आगे आप लिखते हैं कि समन्तभद्रके शिष्य शिवकोटि, शिवकोटिके वीरसेन और उनके जिनसेन थे, अर्थात् वीरसेन समन्तभद्रके प्रशिष्य थे! इस बड़ी भारी भद्दी भूलका कारण यह है कि एक तो सेठ जी स्वयं संस्कृत नहीं जानते हैं और दूसरे पट्टावलियों पर आपको केवलीके वचनों जैसी श्रद्धा है। हस्तिमल्ल कवि अपने नाटककी प्रशस्तिमें समन्तभद्र और उनके दो शिष्य शिवकोटि और शिवायनका उल्लेख करके कहते हैं:—

तदन्ववाये विदुषां वरिष्ठः स्याद्वादनिष्ठः सकलागमज्ञः।
श्रीवीरसेनोऽजनि तार्किकश्रीः प्रध्वस्तरागादिसमस्तदोषः।

इस श्लोकमें जो यह पद है कि उनके 'अन्ववायमें' सो

इसका अर्थ वंश या शिष्यपरम्परा ही होती है । अर्थात् हस्तिमल्लका कथन केवल इतना है कि शिवकोटि और शिवायनकी वंशपरम्परामें वीरसेनस्वामी हुए । पट्टावलीमें भी यह कहीं नहीं कहा कि वे उनके शिष्य थे । फिर आपने यह आविष्कार कहाँसे कर डाला ? जरा सोचिए तो सही कि समन्तभद्र और वीरसेन स्वामीके समयमें कितना अन्तर है ? उन्हें आपकी पट्टावलियोंके अनुयायी तो विक्रमकी दूसरी शताब्दीका मानते हैं और श्रीयुत सतीशचन्द्र विद्याभूषण आदि ईसाकी छठी शताब्दिमें मानते हैं । पर वीरसेन स्वामी विक्रमकी नववीं शताब्दिके विद्वान् हैं । हरिवंश और आदिपुराणके कर्त्ता दोनोंने पूज्यपाद स्वामीका स्तवन किया है और पूज्यपादने अपने व्याकरणमें समन्तभद्रके व्याकरणका उल्लेख किया है. अतएव वे उनसे भी प्राचीन हैं । आवश्यकता होनेपर इस विषयमें और भी वीसों प्रमाण दिये जा सकते हैं कि समन्तभद्र और वीरसेनके बीचमें कमसे कम २००-२५० वर्षका अन्तर अवश्य है । कहाँ तो आपकी ऐसी भद्दी नासमझी और कहाँ चौथे अंकका आसमानसे बातें करनेवाला ऐतिहासिक अभिमान ! सचमुच ही हमें इससे बड़ा आश्चर्य होता है ।

जिनदत्तचरित्र गुणभद्रका बनाया हुआ स्वतंत्र ग्रन्थ है । यह प्राप्य भी है । परन्तु भास्करसम्पादक इसे उत्तरपुराणका ही एक भाग बतलाते हैं । इससे तो पता लगता है कि आपने उत्तरपुराणका स्वाध्याय कितने मनोयोगसे किया है ।

जिनसेन और गुणभद्रके विषयमें भास्करमें जो कुछ लिखा गया

है और उसका जितना अंश सही है; यदि हम पर स्वप्रशंसाका दोष न लगाया जाय तो हम कहेंगे कि वह सबका सब हमारे 'जिनसेन और गुणभद्राचार्य' शीर्षक लेखको देखकर लिखा गया है। उसमें ऐसी एक भी महत्त्वकी बात नहीं है जो हमारे लेखसे अधिक हो। उसकी औंधीसीधी नकलके सिवाय सेठजी और कुछ नहीं कर सके हैं। यदि कुछ अधिक कर सके हैं तो वे ही सब अट्टसट्ट बेसिर पैरकी बातें जिनका कि ऊपर उल्लेख किया जा चुका है। बस, सिर्फ़ वे ही बातें सेठजीकी निजी चीज़ें हैं और शायद उन्हीं निजी चीज़ोंके कारण सेठजीको उक्त लेखके लिखनेका अभिमान है। सेठजीकी इतिहासज्ञतामें शायद बट्टा लग जाता यदि वे यह लिख देते कि इस लेखकी सामग्री जैनहितैषीके लेखोंसे ली गई है। अस्तु। पाठक चाहें तो हितैषीकी पुरानी फाइलें निकालकर देख सकते हैं कि हमारा उक्त लेख भास्करके जन्मके लगभग एक वर्ष पहले प्रकाशित हो चुका था और अनुमान कर सकते हैं कि सेठजीका साहस कितना बढ़ा चढ़ा है। 'अखिलप्रबन्धं हर्त्रे साहसकर्त्रे नमस्तुभ्यम्।'

(क्रमशः)

इतिहास--प्रसङ्ग ।

[इस स्तंभमें हम वे सब फुटकर इतिहाससम्बन्धी बातें प्रकाशित किया करेंगे जो हमें समय समय पर मालूम होती रहती हैं । हमारी समझमें इतिहास-प्रेमियोंको इन बातोंसे बहुत लाभ होगा ।]

(१)

समन्तभद्र राजपुत्र थे ।

श्रवणबेलगुलमें पं० दौर्बलि जिनदास शास्त्रीके यहाँ एक अच्छा पुस्तकालय है । उसमें आप्त-मीमांसाकी एक प्रति है । उसके अन्तमें लिखा है:-"इति फणिमण्डलालंकारस्योरगपुराधिपसूनोः श्रीस्वामिसमन्तभद्रमुनेः कृतौ आप्तमीमांसायाम् ।" इससे मालूम होता है कि वे उरगपुरके राजाके पुत्र थे । यह शायद वही उरगपुर है जिसका कालिदासने रघुवंशमें उल्लेख किया है और जो चोलराज्यके अन्तर्गत है । फणिमण्डल भी शायद उसे ही कहते रहे हों । समन्तभद्र स्वामीके जिनशतक नामक काव्यमें एक चित्रबद्ध पद्य है जिससे मालूम होता है कि उनका गृहस्थाश्रमका नाम शान्तिवर्म था । यह नाम भी राजघरानोंके ऐसा है ।

(२)

रत्नकरण्डकी प्राचीनता ।

बहुत लोगोंका ख़याल है कि रत्नकरण्डश्रावकाचार सुप्रसिद्ध समन्तभद्रस्वामीका बनाया हुआ नहीं है । कोई और समन्तभद्र नामके आचार्यका रचा हुआ होगा । परन्तु श्रीवादिराजसूरिने

अपने पार्श्वनाथकाव्यके प्रारंभमें समन्तभद्रका स्मरण करते समय उन्हें रत्नकरण्डका रचयिता बतलाया है। पार्श्वनाथ काव्य विक्रम-संवत् १०८२ में रचागया है। अर्थात् आजके समान उस समय भी रत्नकरण्डके कर्ता समन्तभद्र समझे जाते थे। वे श्लोक ये हैं:—

स्वामिनश्चरितं तस्य कस्य नो विस्मयावहं।
देवागमेन सर्वज्ञो येनाद्यापि प्रदर्श्यते ॥ १७ ॥
अचिन्त्यमहिमा देवः सोऽभिवन्द्यो हितैषिणा।
शब्दाश्च येन सिद्ध्यन्ति साधुत्वं प्रतिलंभिताः ॥ १८ ॥
त्यागी स एव योगीन्द्रो येनाक्षय्यसुखावहः।
अर्थिने भव्यसार्थाय दिष्टो रत्नकरण्डकः ॥ १९ ॥

दूसरे श्लोकसे यह भी स्पष्ट होता है कि समन्तभद्रस्वामी वैयाकरण भी थे और उनका बनाया हुआ कोई ग्रन्थ था। पूज्यपादस्वामीने भी जैनेन्द्र व्याकरणमें उनके व्याकरणका उल्लेख किया है।

(३)

धनंजय महाकवि।

द्विसन्धानकाव्यके कर्त्ता प्रसिद्ध कवि धनंजयका समय निश्चित नहीं हुआ; पर ऐसा मालूम होता है कि वे विक्रमकी दशवीं शताब्दिके पूर्वमें हो चुके हैं। क्योंकि एक तो बालभारत बालरामायणादि नाटकोंके कर्त्ता राजशेखरने जो दशवीं शताब्दिके पूर्वार्धमें हो चुके हैं—उनकी प्रशंसा की है:—

द्विसन्धाने निपुणतां सतां चक्रे धनंजयः।
यया जातं फलं तस्य सतां चक्रे धनंजयः॥

इनके सिवाय वादिराजसूरिने वि० सं० १०८२ में अपने पार्श्वकाव्यमें कहा है:—

अनेकभेदसंधानाः खनन्तो हृदये मुहुः ।
बाणा धनंजयोन्मुक्ताः कर्णस्येवाप्रियाः कथम् ॥

(४)

वाग्भट कवि ।

पं० दौर्बलि शास्त्रीके पुस्तकालयमें एक नेमिनिर्वाण काव्यकी प्रति है । उसके अन्तमें यह श्लोक है जो अन्य प्रतियोंमें नहीं मिलता—

अहिच्छत्रपुरोत्पन्नः ...भटकुलशालिन-
श्छादस्य सुतश्चक्रे प्रबन्धं वाग्भटः कविः ॥

इससे मालूम होता है कि वाग्भट कवि अहिच्छत्रपुरमें उत्पन्न हुए थे और उनके पिताका नाम 'छाद' था । काव्यानुशासनके कर्त्ता वाग्भट नेमिकुमारके पुत्र हैं । उन्होंने अपने ग्रन्थमें एक वाग्भटका उल्लेख किया है । वे वाग्भटालंकारके कर्त्ता हैं और उनके पिताका नाम 'सोम' है । वाग्भटालंकारमें आदियमकके उदाहरणमें 'नेमिनिर्वाण' के ६ ठे सर्गका ४६ वाँ श्लोक 'कान्तारभूमौ' आदि उद्धृत किया है । इससे काव्यमालाके सम्पादकने लिखा था कि शायद नेमिनिर्वाण और वाग्भटालंकारके कर्त्ता एक ही हैं; परन्तु अब उक्त श्लोकसे निश्चय हो गया कि नेमिनिर्वाणके कर्त्ता दोनोंसे भिन्न तीसरे ही हैं । वाग्भटालंकारके कर्त्ता श्वेताम्बर हैं; परन्तु ये दिगम्बर मालूम होते हैं । यह स्मरण रखना चाहिए कि अष्टांगहृदय वैद्यकके कर्त्ता वैद्य वाग्भट इन तीनोंसे भिन्न सिंहगुप्तके पुत्र हैं ।

(५)

धर्मभूषणके गुरु ।

श्रीधर्मभूषणयतिके गुरु श्रीवर्धमान भट्टारक थे ऐसा न्यायदीपिकाकी प्रतिके अन्तमें लिखा है। यह प्रति भी उक्त दौर्बलि शास्त्रीके पुस्तकालयमें है। इस प्रकार लिखा है:-" श्रीमद्वर्धमानभट्टारकाचार्यगुरुकारुण्यसिद्धसारस्वतोदयानां पदाब्जभृङ्गश्रीमदभिनवधर्मभूषणयतिविरचिता न्यायदीपिका।" उक्त पुस्तकालयकी न्यायदीपिकाकी दूसरी प्रतिमें भी यही लिखा है।

(६)

अष्टांगहृदयके कर्त्ताका परिचय ।

मैसूरके श्रीयुक्त पण्डित पद्मराजके पुस्तकालयमें अष्टाङ्गहृदय वैद्यक (वाग्भट) की एक कनड़ी प्रति है। उसके अन्तमें निम्नलिखित दो श्लोक बहुत महत्त्वके हैं:-

यज्जन्मनः सुकृतिनः खलुसिन्धुदेशे,
यः पुत्रवन्तमकरोद्भुवि सिंध (ह) गुप्तम् ।
तेनोक्तमेतदुभयज्ञभिषग्वरेण
स्थानं समाप्तमिति ...... ॥ १ ॥
नमो वाडव (वाग्भट ?) तीर्थाय विदुषे लोकबन्धवे ।
येनेदं वैद्यवृद्धानां शास्त्रं संग्रह्य निर्मितम् ॥ २ ॥

इससे जान पड़ता है कि वाग्भट सिन्धुदेशके रहनेवाले थे और उनके पिताका नाम सिंहगुप्त था।

(७)

हस्तिमल्लकविका स्थान।

दौर्बलिशास्त्रीके भंडारके अंजनापवनंजय नाटकके अन्तमें लिखा है:—

" **श्रीमत्पाण्ड्यमहेश्वरे निजभुजां दण्डावलम्बीकृतं**
कर्णाटावनिमण्डलं पदनतानेकावनीशेऽवति।
तत्प्रीत्यानुसरन्स्वबन्धुनिवहैर्विद्वद्भिराप्तैस्समं
जैनागारसमेतसन्तरनमे (?) श्रीहस्तिमल्लोऽवसत्॥

इति गोविंदभट्टारस्वामिनः सूनुना श्रीकुमारसत्यवाक्यदेवरवल्लभोदयभूषणनामार्यमिश्राणामनुजेन कवेर्वर्धमानस्याग्रजेन कविना हस्तिमल्लेन विरचितम्। '

पहले पद्यके चौथे चरणमें कोई अक्षर रह गया है इससे स्पष्ट नहीं हो सकता कि निवासस्थान कौनसा था। पाण्ड्यमहेश्वर नामक कर्णाटक नरेशके वह आधीन था। इससे समयका भी पता लग जायगा। हस्तिमल्ल कवि श्रीगोविन्दभट्टके पुत्र थे। श्रीकुमार, सत्यवाक्य, देवरवल्लभ और उदयभूषण ये चार कवि उनके बड़े भाई और गणरत्नमहोदधिके कर्त्ता वर्धमानकवि छोटे भाई थे। अर्थात् ये छहों भाई विद्वान् थे। इस बातका परिचय उनके विक्रान्तकौरवीय नाटककी प्रशस्तिसे भी लगता है। ये दाक्षिणात्य थे और इनके पिता देवागमस्तोत्रको सुनकर जैन हो गये थे।

(८)

अर्हद्दास कवि।

अर्हद्दासका ' मुनिसुव्रतकाव्य ' एक सुन्दर काव्य है। दक्षिण

कर्णाटकमें इसके पठनपाठनका बहुत प्रचार है। मद्रासकी ओरियण्टल लायब्रेरीमें इसकी एक सटीक प्रति मौजूद है। टीका स्वयं अर्हद्दासकी ही बनाई हुई है। उसका नाम है सुखबोधिनी। इस काव्यका अपर नाम 'काव्यरत्न' है। इसकी प्रशस्तिमें लिखा है कि कविने आशाधरके उपदेशसे जैनधर्म ग्रहण किया थाः—

मिथ्यात्वकर्मपटलैश्चिरमावृते मे
युग्मे दृशोः कुपथयाननिदानभूते।
आशाधरोक्तिविलसञ्जनसंप्रयोगै-
रच्छीकृतेद्य पृथुसत्पथमाश्रितोस्मि ॥

इससे अर्हद्दासका समय भी निश्चित हो जाता है।

(९)

महाकवी विरनन्दिका समय।

चन्द्रप्रभकाव्यके कर्ता वीरनन्दिका समय अभीतक निश्चित नहीं है; पर वे वादिराजसूरिके पहलेके अवश्य हैं। क्योंकि उन्होंने पार्श्वनाथचरितमें उनका उल्लेख किया हैः—

चन्द्रप्रभाभिसंबद्धा रसपुष्टा मनःप्रियम्।
कुमुद्वतीव नोधत्ते भारती वीरनन्दिनः ॥ ३० ॥

उनके चन्द्रप्रभचरित काव्यका भी इसमें स्पष्ट उल्लेख है।

(१०)

मदनकीर्तिप्रबन्ध।

विद्वद्रत्नमालामें हमने पं० आशाधरके विषयमें एक विस्तृत लेख प्रकाशित किया है। उसमें पाठकोंने पढ़ा होगा कि पं० आशाधरके समयमें वादीन्द्र विशालकीर्ति, मदन-

कीर्ति यतिपति और उदयसेन मुनि आदि कई दिगम्बर-जैन विद्वान् थे। इनमेंसे विशालकीर्तिने आशाधरके पास षट्दर्शन और न्याय शास्त्रोंका अध्ययन किया था। मदनकीर्ति विशालकीर्तिके शिष्य थे। इन मदनकीर्तिका उल्लेख भी आशाधरने अपने ग्रन्थोंकी प्रशस्तिमें किया है। मदनकीर्तिने आशाधरको प्रज्ञापुंज कहा था– " प्रज्ञापुञ्जोसि च योऽभिहतो मदनकीर्तियतिपतिना। " मदनकीर्तिको यतिपति कहा है। इससे मालूम होता है कि वे जैनसाधु थे। इन्हीं मदनकीर्तिके विषयमें एक लेख 'चतुर्विंशतिप्रबन्ध' नामक ग्रन्थमें हमने अभी हाल ही पढ़ा है। 'चतुर्विंशतिप्रबन्ध' श्वेताम्बराचार्य राजशेखरका बनाया हुआ संस्कृत ग्रन्थ है। इसमें प्राचीन आचार्यों और विद्वानोंके २४ चरित हैं। ग्रन्थ वि० संवत् १४०५ का बना हुआ है। गायकवाड़ सरकारने इसका गुजराती अनुवाद प्रकाशित करवाया है। इस कथासे मालूम होता है कि मदनकीर्ति अपने चरित्रसे गिर गये थे। कथाका सारांश यह है:–

" उज्जयिनीमें विशालकीर्ति नामक दिगम्बर साधु थे। उनका मदनकीर्ति नामक शिष्य था। उसने चारों दिशाओंके वादियोंको पराजित करके 'महाप्रामाणिक' पदवी प्राप्त की और अपने गुरुकी कीर्ति फैलाई। एक बार उसने दाक्षिणात्य वादियोंको जीतनेकी इच्छा प्रकट की। गुरुके रोकने पर भी वह दक्षिणकी ओर चल दिया और बड़े बड़े विद्वानोंको पराजित करके कर्णाटकमें पहुँचा। वहाँ विजयपुरनरेश कुन्तिभोज राजाकी सभामें जाकर उसने अपने पाण्डित्यसे राजाको मोहित कर लिया। राजाने उसे अपने महलके पास ही ठहरनेको

स्थान दिया और कहा कि आप हमारे पूर्वजोंके चरितका वर्णन करनेवाला एक ग्रन्थ रच दीजिए। मदनकीर्तिने कहा, मैं ५०० श्लोक प्रतिदिन रच सकता हूँ; पर उनके लिखनेवालेका प्रबन्ध हो जाना चाहिए। राजाने अपनी पुत्री मदनमंजरीको यह काम सौंप दिया और वह परदेकी ओटमें बैठकर ग्रन्थ लिखने लगी। कुछ समयमें दोनों परस्पर मोहित हो गये और एक दूसरेकी प्राप्तिका उपाय करने लगे। अब ग्रन्थरचनामें बाधा पड़ने लगी। श्लोक कम रचे जाने लगे। राजाको सन्देह हो गया। उसने एक दिन छुपकर देखा। उस समय मदनकीर्ति अपनी प्रणयिनीको सुन्दर सुन्दर श्लोक कहकर मना रहा था। राजाको विश्वास हो गया। उसे बड़ा क्रोध आया। उसने तत्काल ही अपने स्थान पर पहुँचकर मदनकीर्तिको बुलाया और उस श्लोकका अर्थ पूछा। मदनकीर्ति ताड़ गया, इसलिए तत्काल सँभलकर बोला "दो दिनसे मेरी आँखें आ रही हैं, इसलिए उनका अनुनय करनेके लिए मैंने यह पद्य बनाया था।" आश्चर्य यह कि आँखोंके पक्षमें भी उक्त श्लोक ठीक बैठ गया। राजाको उसके इस बुद्धिवैचित्र्यसे हृदयमें आनन्द हुआ; पर अपकृत्यका खयाल करके उसने उसे मार डालनेकी आज्ञा दे दी। मदनमंजरीने यह समाचार सुन लिया। वह तत्काल ही अपनी ३२ सखियोंको साथ लेकर आई और अपने प्यारेके साथ मरनेको तैयार हो गई! यह देख मंत्रियोंने राजाको समझाया कि इसमें आपका ही दोष है जो एक युवा और युवतीको समीप रहनेका अवसर दिया। युवावस्थाका यह स्वभाव ही है। अब आप क्रोध

छोड़ दें और पुत्री इसीको दे दें । ऐसा ही हुआ; राजाने मदनकीर्तिके साथ अपनी लड़कीका विवाह कर दिया । मदन भोगी बनकर रहने लगा । कुछ समयमें गुरु विशालकीर्तिको यह समाचार मिला । उन्होंने अपने चार शिष्योंको इसे समझानेके लिए भेजा । शिष्योंने आकर बहुत कुछ समझाया, पर फल न हुआ । शिष्य लौट गये; उनके साथ मदनने कुछ श्लोक लिखकर रख दिये । उनका अभिप्राय यह था— ' प्रियादर्शन ही सारभूत दर्शन है; और दर्शन किस मतलबके ? इस दर्शनमें राग होने पर भी चित्त निर्वाण प्राप्त करता है । होठोंके डसनेसे चकित हुई, हाथ छुड़ानेका प्रयत्न करती हुई, कोपसे भौंहें नचाकर बोलती हुई, चारुचन्द्रवदनमें सीत्कार करती हुई मानिनीका जिसने चुम्बन किया उसने ही अमृत प्राप्त किया; मूर्ख देवताओंने सागर मंथन करनेका परिश्रम व्यर्थ ही किया ।' इत्यादि । ये श्लोक बाँचकर गुरु स्तब्ध हो रहे । मदनकीर्तिने अनेक प्रकारके भोगोंका अनुभव किया । "

आशाधर विक्रमसंवत् १३०० के लगभग हुए हैं और यही समय मदनकीर्तिका है । अतः चतुर्विंशतिप्रबन्ध इनसे सिर्फ १०० वर्ष पीछेका बना हुआ है । विद्वानोंको इस विषयमें और भी छानबीन करना चाहिए और पता लगाना चाहिए कि इस कथामें सत्यांश कितना है । यह बात स्मरण रखनेकी है कि श्वेताम्बर होने पर भी लेखकने मदनकीर्तिके प्रबन्धमें कोई बात ऐसी नहीं लिखी है जो दिगम्बर सम्प्रदाय पर खास आक्षेप करनेवाली हो ।

(११)

वादिराजसूरिका एक अप्रसिद्ध ग्रन्थ ।

एकीभाव, पार्श्वनाथकाव्य, यशोधरकाव्य आदिके कर्त्ता वादिराज बड़े भारी नैयायिक थे, यह बात प्रसिद्ध है। इसी लिए उन्हें 'वादिराजमनुतार्किकसिंहः'[1] कहा है; परन्तु अभी तक उनका कोई न्याय ग्रन्थ नहीं मिला था। अब उनके एक न्यायग्रन्थका पता लगा है जो भट्टाकलंकदेवके 'न्यायविनिश्चय' की टीका है। इसका नाम है 'न्यायविनिश्चयविवरण' अथवा 'न्यायविनिश्चयकी तात्पर्यावद्योतिनी व्याख्यानरत्नमाला'। यह ग्रन्थ आगके सिद्धान्तभवनमें मौजूद है। पूज्य पं. पन्नालालजीके पास जो प्रशस्ति संग्रह है उसके देखनेसे मालूम हुआ कि यह वादिराजसूरिका ही है। यद्यपि प्रशस्तिमें वादिराजका स्पष्ट उल्लेख नहीं है। इसके अन्तमें लिखा है:—

"श्रीमत्सिंहमहीपतेः परिषदि प्रख्यातवादोन्नतिः—
स्तर्कन्यायतमोपहोदयगिरिः सारस्वतः श्रीनिधिः ।
शिष्यः श्रीमतिसागरस्य विदुषां पत्युस्तपश्रीभृताम्
भर्तुः सिंहपुरेश्वरो विजयते स्याद्वादविद्यापतिः ।

इत्याचार्यवर्यस्याद्वादविद्यापतिविरचितायां न्यायविनिश्चियतात्पर्यावद्योतिन्यां व्याख्यानरत्नमालायां तृतीयप्रस्तावः समाप्तः।"

स्याद्वादविद्यापति वादिराजका उपनाम है। सिंहमहीपति या चौलुक्य जयसिंहकी सभाके वे प्रसिद्ध वादी थे। मतिसागर मुनिके शिष्य थे और सिंहपुरके स्वामी थे। इन विशेषणोंसे जरा भी शंका नहीं रहती है कि यह ग्रन्थ वादिराजका ही है। विद्वद्रत्नमालामें जो 'वादिराजसूरि' शीर्षक लेख है उसके पढ़-

---

१ देखो, विद्वद्रत्नमाला पृष्ठ १४१। २ देखो श्रवणबेलगुलकी मल्लिषेणप्रशस्ति।

नेसे यह बात और भी निश्चित हो जायगी। मंगलाचरणमें अपने गुरु मतिसागर, गुरुके गुरु श्रीपाल और गुरुभाई दयापालका भी ग्रन्थकर्ताने स्मरण किया है। प्रारंभमें लिखा है कि इस ग्रन्थपर यद्यपि अनेक टीकायें हैं; परन्तु वे सर्वसाधारणके लिए अगम्य हैं, इस लिए मैं यह अतिशय सरल वृत्ति बनाता हूँ। यह वृत्ति छपकर प्रकाशित होने योग्य है। कठिनाई यह है कि यह आराके सिद्धान्त-भवनमें है इसलिए सहज ही न मिलेगी और यदि मिल भी जायगी तो नियमानुसार १५ दिनमें वापिस कर देनी पड़ेगी।

(१२)

कुछ अप्रसिद्ध ग्रन्थ और ग्रन्थकर्त्ता।

अनेक शिलालेखों और प्रशस्तियोंसे ऐसे अनेक ग्रन्थों और ग्रन्थकर्त्ताओंका पता लगता है जो बिलकुल अप्रसिद्ध हैं। मल्लिषेण प्रशस्तिमें आचार्य वज्रनन्दिके नवस्तोत्रका उल्लेख है:—

न वः स्तोत्रं तत्र प्रसजति कवीन्द्राः कथमपि
प्रणामं वज्रादौ रचयत परं नन्दिनि मुनौ।
नवस्तोत्रं येन व्यरचि सकलार्हत्प्रवचन-
प्रपश्चान्तर्भावप्रवणवरसन्दर्भसुभगम्॥

जान पड़ता है यह 'नवस्तोत्र' देवागम जैसा होगा, क्योंकि उसमें समस्त अर्हत्प्रवचनके भाव मौजूद हैं। क्या ये वे ही वज्रनन्दि हैं जो पूज्यपादके शिष्य थे और जिन्हें देवसेनने द्राविड़संघका स्थापक बतलाया है? इसी प्रशस्तिमें सुमतिदेवके सुमतिसप्तकका उल्लेख है:-

सुमतिदेवममुंस्तुत येन वः सुमतिसप्तकमाप्ततया कृतं
परिहृतापदतत्त्वपदार्थिनां सुमतिकोटिविवर्ति भवार्तिहृत्॥

[शेष आगे]

विविध प्रसङ्ग ।

१ एक इतिहासज्ञ विद्वान्का सँदेशा ।

सुप्रसिद्ध इतिहासज्ञ डा० विन्सेंट स्मिथने जैनसमाजके लिए जो सन्देश भेजा है वह इस अंकके प्रारंभमें दिया गया है । हम अपने समाजके नेताओंका और धनी महाशयोंका ध्यान उसकी ओर विशेष रूपसे आकर्षित करते हैं । वास्तवमें अब समय आगया है कि हम लोग अपना एक स्वतंत्र पुरातत्त्व विभाग खोलें और अपने प्राचीन इतिहासको सर्वांगपूर्ण बनानेके साधन तैयार कर दें । इसकी आवश्यकताके लिए साहबने जो जो बातें कहीं हैं वे बहुत ही महत्त्वकी हैं। उनसे मालूम होता है कि जब तक जैनविद्वानोंका ध्यान इस ओर न जायगा और जैनसमाजके धनी इस काममें उत्साह न दिखलायँगे तब तक जिन बातोंकी खोजकी आवश्यकता है वह न हो सकेगी । यह ठीक है कि हमारी सरकार अपने पुरातत्त्ववि-भागकी ओरसे बहुत कुछ प्रयत्न करती है और उसके द्वारा भी बहुतसी नई नई बातोंका पता लगता जाता है; परन्तु यह काम इतना बड़ा है और सरकारका कार्यक्षेत्र इतना विस्तृत है कि उसमें जैनइतिहासका भाग प्रायः नहींके बराबर होता है । इस लिए जैनसमाजको खुद चाहिए कि वह एक ऐसी संस्था स्थापित कर दे जिसके द्वारा प्राचीन स्थान खोदे जावें, जमीनके नीचे दबे हुए मठ मन्दिरों प्रतिमाओं और शिलालेखोंका पता लगाया जावे, पुराने तीर्थस्थानोंकी खोजें की जावें, प्राचीन ग्रन्थ तलाश किये जावें और जैनराजाओंके सिक्के

एकट्ठे किये जावें। इस काममें यदि जैनविद्वान् नियत किये जावेंगे और वे जैनदृष्टिसे पुरानी बातोंकी खोज करेंगे तो इतिहासकी बड़ी बड़ी गाँठें खुल जावेंगी। जैनधर्मकी भीतरी बातोंको जाननेवाले इतिहासज्ञ लोग जो बड़ी बड़ी भूलें कर बैठते हैं जैसे जैनप्रतिमाओंको बुद्धप्रतिमा, जैनमठोंको बौद्धमठ, जैनधर्मकी यक्षयक्षियोंको बौद्धदेवदेवियाँ समझ लेना आदि, वे भूलें जैनविद्वानोंके द्वारा बहुत कम होंगी। हम विन्सेंट स्मिथ साहबके इस कथनसे सहमत हैं कि जैनसमाजके धनी रुपया खर्च कर सकते हैं और यदि वे चाहें तो उनके लिए इस काममें लाख दो लाख रुपया खर्च कर डालना कोई बड़ी बात नहीं है। पाठकोंको मालूम है कि बम्बईके पारसी धनिक टाटाके धर्मका या जातिका पटनासे कोई भी सम्बन्ध नहीं है, तो भी वे पटनाके खण्डहरोंकी खुदाईके लिए २५ हजार रुपया वार्षिक खर्च कर रहे हैं और वह केवल इसलिए कि भारतवर्षकी पुरानी राजधानी पटना या पाटलिपुत्रके विषयमें लोगोंको कुछ विशेष बातें मालूम हों। तब क्या जैनसमाजके धनिक श्रवणबेल्गुलमें चक्रवर्ती राजा चन्द्रगुप्त और पूज्य भद्रबाहुके स्मारक ढूँढ़नेके लिए, कोशाम्बीमें अपने परमपूज्य तीर्थके प्राचीन चिह्न खोजनेके लिए, भगवान् महावीरके जन्म और निर्वाणस्थलोंका वास्तविक पता पानेके लिए, पाण्ड्य और द्राविडदेशके ह्यूनसांगके समयके हजारों जैनमन्दिरोंका अनुसन्धान करनेके लिए और इसी तरहके दूसरे कामोंके लिए जिनसे जैनधर्मकी कल्पनातीत प्रभावना हो सकती है, लाख दो लाख रुपया खर्च कर नहीं सकेंगे? विचार करके देखा जाय तो

यह काम मन्दिरप्रतिष्ठादि कार्योंकी प्रभावनासे हजार गुणी प्रभावना करनेवाला है और यदि एक ही दो प्रतिष्ठा करानेवाले सोच लें तो यह स्थायीरूपसे चल सकता है ।

२ जैनसमाजमें इतिहासज्ञोंका अभाव ।

भारतवर्षके प्राचीन इतिहासके सबसे अधिक साधन जैनपुस्तकालयों, जैनग्रन्थों, जैनमन्दिरों, और जैनलेखोंसे प्राप्त हुए हैं; परन्तु खेदका, नहीं नहीं लज्जाका विषय है कि जैनसमाजमें इतिहासके जाननेवालोंका एक तरहसे सर्वथा अभाव दिखलाई देता है । समूचे जैनसमाजमें—तेरह लाख जैनोंमें—कई सौ ग्रेज्युएटों और पण्डितोंमें एक भी ऐसा विद्वान् नहीं है जिसे हम इतिहासज्ञ कह सकें और जिसके लिए हम कुछ अभिमान कर सकें। इतिहासज्ञ होना तो बहुत बड़ी बात है; अभीतक हमारे यहाँ वास्तविक इतिहासका स्वरूप समझनेवाले भी नहीं दिखते । साधारण मनोरंजन करनेवाली कथाओंमें और इतिहासमें वे बहुत ही थोड़ा भेद समझते हैं । उन्हें नहीं मालूम है कि प्रकृत इतिहास क्या है, उसके तैयार करनेवालेमें कितना विशाल ज्ञान और नाना भाषाओंका पाण्डित्य होना चाहिए और वह कितने परिश्रमसे तैयार होता है ; समय आ गया है कि अब हम अपनी इस कमीको पूर्ण करनेकी चिन्ता करें और दश पाँच इतिहासके विद्वान् तैयार करें । यों तो इतिहासके विद्यार्थीको समाज शास्त्र, अर्थशास्त्र, शिल्पशास्त्र, स्थापत्य, भास्कर्य, आदि सभी विषयोंका थोड़ा बहुत ज्ञान चाहिए; परन्तु सबसे मुख्य बात है कि उसे विविध भाषाओंका और लिपियोंका ज्ञाता होना चाहिए । कमसे

कम अँगरेजी, संस्कृत, प्राकृत और पालीका ज्ञान तो उसे अवश्य होना चाहिए। भारतवर्षके विषयमें जिन देशी और विदेशी विद्वानोंने अबतक जितना कुछ लिखा है वह सब पढ़ जाना चाहिए और इसके बाद इतिहासकी खोजमें हाथ लगाना चाहिए। इतनी योग्यताके बिना कोई प्रकृत इतिहासज्ञ नहीं बन सकता है। इसलिए जैनसमाजको चाहिए कि वह कुछ ऐसे विद्यार्थियोंको जो इस विषयका शौक रखते हों और संस्कृतके साथ बी. ए. तक पढ़े हों खास वृत्तियाँ देकर इतिहासका अध्ययन करावे। इतिहासके एम. ए. हो जानेपर उन्हें कुछ समय इतिहासज्ञ विद्वानोंके पास रक्खे जिसमें वे अपने अनुभवको बढ़ावें और उसी समय अनेक भाषाओंका ज्ञान भी सम्पादन करें। इसके बाद उन्हें अपने पुरातत्त्वविभागमें नियत कर देवे और उनसे वह काम लेवे जिसके लिए स्मिथ साहब प्रेरणा कर रहे हैं।

३ शिक्षितोंको इतिहासका अध्ययन करना चाहिए।

परन्तु इस तरहके दशपाँच इतिहासज्ञ तैयार कर लेनेसे ही काम न चलेगा; अन्यान्य शिक्षित जनोंको भी इस ओर ध्यान देना चाहिए। जो सज्जन कालेजोंके प्रोफेसर, स्कूलोंके अध्यापक या वकील आदि हैं और जो संस्कृत तथा अँगरेजीकी योग्यता रखते हैं उन्हें चाहिए कि अवकाशके समय इस विषयकी ओर लक्ष्य दें और धीरे धीरे अपना ज्ञान बढ़ाते जायँ। शुरूमें उनके द्वारा नई खोजें भले ही न हों परन्तु सर्व साधारण लोगोंमें इतिहासके ज्ञानकी तो बहुत कुछ वृद्धि हो सकती है।

यदि वे शुरू शुरूमें इतना ही करें कि अँगरेज़ी आदि भाषाओंमें जैन-धर्म और इतिहासके सम्बन्धमें जो लेख निकला करते हैं उनके अनुवाद ही देशभाषाओंके द्वारा सर्वसाधारण तक पहुँचानेका प्रयत्न करने लगें तो बहुत लाभ हो सकता है। आज कल जैनधर्म और इतिहासकी आलोचनामें अँगरेज़ीमें इतने लेख निकलते हैं कि यदि सिर्फ़ उन्हींका अनुवाद प्रकाशित किया जाय तो एक अच्छे मासिक पत्रका काम चल सकता है। अनुवाद करते करते ही उनका अनुभव बढ़ जायगा और वे इतिहासके मौलिक लेख लिखनेमें भी समर्थ हो सकेंगे। हमारी पण्डितमण्डलीको भी इस ओर कुछ कृपा करनी चाहिए। उनके लिए एक विशाल कार्यक्षेत्र पड़ा हुआ है। संस्कृत प्राकृतके ग्रन्थोंका यदि वे अच्छी तरह अध्ययन करें, उनकी प्रशस्तियाँ मंगलाचरण आदि पढ़ें, और उनमें जिन जिन आचार्यों और विद्वानोंका उल्लेख मिलता है उनपर विचार करें तो अँगरेज़ी आदि भाषाओंकी सहायताके बिना भी वे जैनधर्मके समस्त संघोंका गच्छों और आचार्योंका एक शृङ्खलाबद्ध इतिहास तैयार कर सकते हैं जिसकी कि बहुत बड़ी आवश्यकता है।

४ इतिहासका उद्देश और लाभ।

हमारे यहाँ इतिहासके विषयमें बहुतसे भ्रामक विचार प्रचलित हो रहे हैं। इसका कारण यह है कि लोग वास्तविक इतिहासका स्वरूप नहीं जानते। यहाँ पर हम अध्यापक श्रीयुक्त यदुनाथ सरकारके व्याख्यानका—जो उन्होंने वर्द्धमानसाहित्यसम्मेलनमें पढ़ा था—कुछ अंश उद्धृत किये बिना नहीं रह सकते। वे कहते हैं—"इतिहास

का उद्देश्य क्या है, यह जानलेनेसे इतिहास लिखनेकी श्रेष्ठ प्रणाली जानी जासकती है। जो सच्चा इतिहास है वह अतीतको सजीव बनाकर आँखोंके सामने खड़ा कर देता है और हम मानों उसी बहुत प्राचीन समयके लोगोंके शरीरमें प्रवेश करके उन्हींके विचारोंसे विचारने लगते हैं और उनके सुख:दुख आशा भय आदिका अपने हृदयमें अनुभव करने लगते हैं। इस तरह अतीत कालके सम्बन्धमें अविकल पूर्णाङ्ग सत्यकी प्राप्ति करना ही इतिहासका प्रकृत उद्देश्य है। इतिहास सत्यकी मजबूत पाषाणमय दीवालपर खड़ा रहता है। यदि उससे सत्य निर्धारित न हुआ, यदि अतीत कालकी एक मनमानी मूर्ति खड़ी करके अथवा आंशिक मूर्ति बनाकर ही हम शान्त हो गये, तब तो कहना होगा कि हम कल्पनाके ही जगतमें रह गये। इसके बाद उस विषयमें हम चाहें जो लिखें या विश्वास करें वह सब बालूकी दीवाल पर तीनतल्ला मकान बनानेके तुल्य होगा। सत्य निश्चित करनेकी पद्धति क्या है? सबसे पहले तो अपने मनको इस कार्यके योग्य और उपयोगी बनाना चाहिए। यश, धन, प्रतिष्ठा और लाभकी आशा दूर करके, अपने अन्तरंगका अनुराग विराग दमन करके, पूर्वके सब संस्कार त्याग करके पक्की प्रतिज्ञा करना चाहिए कि 'मैं आज अपनेको सत्यपर समर्पण कर दूँगा, मैं सत्यको समझूँगा, सत्यको पूजूँगा और सत्यकी ही खोज करूँगा।' सत्य चाहे प्रिय हो चाहे अप्रिय हो, लोग मानें या न मानें, लोग हँसी करें या निन्दा करें, उसको प्रकाश करना ही चाहिए। बस, इतिहासज्ञोंकी यही प्रतिज्ञा होती है।" आगे चलकर अध्यापक

महाशय कहते हैं—" इतिहास काव्य नहीं है । चित्तविनोदक ललित आख्यान अथवा सूखी छानवीन ही इसका अन्तिम फल नहीं है । अध्यापक ' सीली ' ने अच्छी तरह सिद्ध करके दिखाया है कि समाजनेता और राष्ट्रनेताके लिए इतिहास सर्वश्रेष्ठ शिक्षक, पथप्रदर्शक, और महान् बन्धु है । इतिहासकी सहायतासे भूत-कालका स्वरूप जानकर उसी ज्ञानको वर्तमानमें प्रयोग करना होगा । बहुत प्राचीन कालमें हमारे पूर्वज किन कारणों-से उठे; किन कारणोंसे गिरे, राज्य समाज धर्म किस प्रकार गठित हुए, वे किस कारण नष्ट हो गये, इन सब तत्त्वोंको समझकर हमें अपने सजीव समाजकी गति बदलना होगी । भूतकालसे उद्धार किया हुआ सत्य और दृष्टान्तोंकी दीपशिखा हमारे मार्गमें रोशनी डालेगी । यही इतिहासचर्चाका अन्तिम फल है ।" आशा है कि हमारे पाठक इन अवतरणोंसे इतिहासके स्वरूपको बहुत कुछ समझ लेंगे और इतिहासके नामसे जो असत्य बातोंका प्रचार करते हैं उनसे बचे रहेंगे ।

५ मौर्य चन्द्रगुप्तका जैनत्व ।

भास्कर बड़ी धूमधामके साथ मौर्यसम्राट् चन्द्रगुप्तके जैनत्वका डंका पीट रहा है और अपनी ओरसे निश्चय कर चुका है कि वे नि-स्सन्देह जैन थे । पिछले अंकोंमें तो उसने उनके जैनत्व सिद्ध करने-के लिए कुछ चेष्टा भी की थी; परन्तु अब विन्सेंट स्मिथ साहबके प्रसिद्ध इतिहासकी नवीन आवृत्ति प्रकाशित हो जानेसे तो वह उस चेष्टाकी भी आवश्यकता नहीं समझता है । उसे यह बात एक स्वयंसिद्ध

सिद्धान्तके समान जान पड़ने लगी है और इस कारण वह इसे युक्तिकी कसौटी पर कसना निरर्थक तथा पिष्टपेषण तुल्य समझता है। उसने इस चौथी किरणमें हमें उपदेश किया है कि "प्रेमीजी! अच्छा होता यदि आप विन्सेंट स्मिथकी अभी हालकी छपी नवी आवृत्ति मँगाकर किसी बी. ए. से चन्द्रगुप्तके इतिहासका अनुवाद कराकर समझलेते। उन्होंने चालीस वर्षकी सपरिश्रम अविश्रान्त ऐतिहासिक पर्यालोचनासे अनेक ऐतिहासिक प्रमाणों द्वारा अपनी इतिहास पुस्तकमें यह सिद्ध कर दिखाया है कि चन्द्रगुप्त जैन थे और अन्तमें इन्होंने मुनिवृत्ति धारण कर इस लोकको छोड़ा है।" हमने तत्काल ही उसके उपदेशको माथे पर चढ़ाया और विन्सेंट साहबके इतिहासमें मौर्य चन्द्रगुप्तके तथा जैनधर्मके सम्बन्धमें जो कुछ लिखा था उसका अनुवाद अपने मित्र बाबू दयाचन्द्रजी गोयलीय बी. ए. से करवा मँगाया। वह इसी अंकमें अन्यत्र प्रकाशित है। इसके सिवाय विन्सेंट स्मिथने जैन समाजके लिए जो संदेशा भेजा है और उसमें चन्द्रगुप्तके सम्बन्धमें जो कुछ लिखा है उसका अनुवाद भी अन्यत्र दिया है। पाठकोंसे प्रार्थना है कि विन्सेंट साहबके उक्त दोनों स्थलोंको विचार पूर्वक पढ़ें और फिर उनके अभिप्रायका मिलान भास्करके विचारोंके साथ करें। विन्सेंट ए. स्मिथ साहब चन्द्रगुप्तमौर्यके जैनत्वकी **संभावना** स्वीकार करते हैं। वे कहते हैं कि जैनतत्त्वकी कथाके विरुद्धमें जो जो शंकायें थीं वे सब हल हो गई हैं; और इस कारण मुझे विश्वास होता है कि चन्द्रगुप्त जैनसाधु हो गये थे

और यह कथा सत्य पर निर्धारित जान पड़ती है; परन्तु इससे वे यह नहीं समझते कि चन्द्रगुप्तका जैनत्व सिद्ध होगया और अब इस विषयमें प्रयत्न करनेकी कोई जरूरत नहीं है। वे अपने जैनोंके संदेशमें इस विषयके खोज करनेकी—चन्द्रगुप्तके जैनत्वकी कथा कहाँतक ठीक है इसके जाँच करनेकी—बहुत बड़ी आवश्यकता प्रकट करते हैं और जैनविद्वानोंको अपनी दृष्टिसे वादविवाद करनेके लिए आह्वान करते हैं। इससे साफ़ मालूम हो जाता है कि भास्करके सम्पादक महाशयका विश्वास विन्सेंट स्मिथ साहबसे भी बहुत आगे बढ़ गया है। स्मिथ साहबके इतिहासमें वे अश्रान्तपरि-श्रमके ऐतिहासिक प्रमाण और पर्यालोचन भी कहीं दिखलाई नहीं दिये जिनका भय दिखलाकर, सहयोगी हम पर तानें कसता है। इससे तो यही मालूम पड़ता है कि सम्पादक महाशयने विन्सेंट स्मिथ साहबके इतिहासकी बात कहींसे सुन–सुना ली होगी; उसे किसीसे अनुवाद कराके पढ़ा भी न होगा। यदि पढ़ लिया होता तो इस तरह चन्द्रगुप्तके जैनत्वकी बातको वे स्वयंसिद्ध सिद्धान्त न समझ लेते। भारतवर्षका सुप्रसिद्ध सम्राट् चन्द्रगुप्त मौर्य यदि जैन सिद्ध हो जाय तो इसके समान प्रसन्नताकी और जैनधर्मके गौरवकी बात और क्या हो सकती है? इसको कौन नहीं चाहता? परन्तु केवल हमारे कहनेसे ही तो दूसरे नहीं मान सकते हैं? जैनोंके माननेके लिए तो इतना ही काफ़ी है कि हमारे यहाँ इस विषयकी कथा मिलती है; पर हमारी कथा दूसरोंके लिए तो सर्वज्ञकथित नहीं हो सकती है? दूसरे तो अन्यान्य प्रमाण भी चाहते हैं। उन

प्रमाणोंके संग्रह करनेके लिए भी स्वयं भी कुछ प्रयत्न करना चाहिए; औरोंकी पूँजी पर—औरोंकी शक्ति पर—व्यर्थकी उछलकूद मचाना और किसीको बुरा भला कहना ही इतिहासज्ञता नहीं है। और थोड़ी देरके लिए यह भी मान लिया जाय कि चन्द्रगुप्तका जैनत्व सर्वथा सिद्ध हो चुका है, उसके लिए युक्तियोंकी कमी नहीं; तो भी आप जिस भाषामें अपना पत्र निकालकर इतिहासज्ञ बन रहे हैं उसके पाठकोंको तो वे युक्तियाँ मालूम होनी चाहिए, आपके जान लेनेसे ही क्या होता है! भास्करमें जो कुछ लिखा गया है उसमें तो कुछ भी दम नहीं है।

७ जैनसिद्धान्तभवनकी चर्चा।

हर्षका विषय है कि सहयोगी जैनमित्रका ध्यान भी आराके जैन-सिद्धान्त भवनकी ओर आकर्षित हुआ है। उसने भी भवनके कार्य-कर्त्ताओंकी शिथिलता बतलाई है और भवनको आरामें नहीं किन्तु काशीमेंही प्रतिष्ठित करनेकी आवश्यकता बतलाई है। सहयोगीका यह कथन विशेष ध्यान देने योग्य है कि स्वर्गीय बाबू देवकुमारजी जो दानपत्र लिख गये हैं उसमें भवनको काशीमें ही स्थापित करनेकी बात लिखी है। यदि यह सही है तो फिर क्या कारण है कि बाबू साहबकी इच्छाके विरुद्ध भवनके लिए आरा जैसी छोटीसी जगह तजबीज की गई! क्या कोई यह बतला सकता है कि भवनका काशीकी अपेक्षा आरामें रहना विशेष लाभकारी होगा? कहाँ काशी और कहाँ आरा! आराका भवन आराका ही होकर रह जायगा; पर काशी—विद्यापीठमें वह सारे भारतवर्षका बन जायगा

और सारे भारतका बनानेके लिए ही स्वर्गीय बाबूसाहबने उसके स्थापित करनेका मनोरथ किया था । भवनके ट्रस्टियोंको इस ओर ध्यान देना चाहिए और भवनके संचालकोंसे दरयाफ्त करना चाहिए कि क्या कारण है जो वे भवनका स्थायी मन्दिर आरामें बनाना चाहते हैं ।

यह भी पूछना चाहिए कि उसके सूचीपत्रादि बनानेका प्रबन्ध अबतक क्यों न किया गया ? जैनसमाज चाहता है कि भवनमें ग्रन्थोंका संग्रह बराबर होता रहे, सूचीपत्र सर्वसाधारणको देखनेके लिए मिले, नये नये ग्रन्थोंकी सूचना मिलती रहे, ग्रन्थोंकी प्रशस्तियाँ और महत्त्वकी बातें प्रकट करनेवाली रिपोर्टें छपवाई जावें, ग्रन्थोंकी नकल करानेका पूरा पूरा प्रबन्ध हो, लागतसे पाँच या दश रुपया सैकड़ा अधिक मूल्य पर जो चाहे उसे ग्रन्थ लिखाकर भेज दिये जावें, आवश्यकता होने पर चाहे जिस ग्रन्थकी प्राचीन प्रति उचित शर्तों पर बाहरके भाई भी देखनेके लिए मँगा सकें, ग्रन्थप्रकाशकों या सम्पादकोंको अधिक दिनोंके लिए ग्रन्थोंकी प्रतियाँ देनेका प्रयत्न किया जाय, पत्रोत्तर समय पर दिये जानेका प्रबन्ध हो, प्रश्न करनेवालेकी बातोंका संतोषयोग्य पूरा पूरा उत्तर दिया जाय और भवनमें बैठकर हर किसीको ग्रन्थ देखनेका सुभीता किया जावे । इन सब बातोंका प्रबन्ध हुए विना न जैनसमाज यथेष्ट लाभ उठा सकता है और न स्वर्गीय बाबूसाहबकी इच्छा ही पूर्ण हो सकती है ।

७ भवन और पुरातत्त्वविभाग ।

क्या ही अच्छा हो यदि जैनसिद्धान्तभवनकी ही एक ' पुरातत्त्वप्रकाशिनी ' शाखा खोल दी जावे और उसके द्वारा वह काम किया जाय जिसके लिए श्रीयुक्त विन्सेंट स्मिथ साहबने धनिक जैनोंसे आग्रह किया है । क्योंकि पुरातत्त्वका कार्य भी भवनके उद्देश्योंसे पृथक नहीं है । सम्मिलित संस्था रहनेसे काम भी सुभीतेके साथ होगा । भवनके कार्यकर्ता यदि प्रयत्न करेंगे तो हमारी समझमें इसके लिए जैनसमाजसे सहायता भी अच्छी मिलेगी । भवनके लिए जो यथेष्ट सहायता नहीं मिलती है इसका कारण सिवाय इसके और कुछ नहीं है कि उसके संचालक न तो उसका प्रबन्ध सुधारते हैं और न सहायताके लिए प्रयत्न ही करते हैं ।

८ श्रुत पञ्चमी पर्व ।

ज्येष्ठ सुदी ५ फिर आ गई । अवसर आगया कि प्रतिवर्षकी नाईं हम फिर भी अपने पाठकोंको इसकी चेतावनी दे दें । पर इसका फल क्या होता है ? यही कि दशबीस स्थानोंमें शास्त्रोंके वेष्टन बदल दिये जाते हैं और सरस्वतीकी पूजा कर दी जाती है । इस तरह यह भी और त्योहारोंकी तरह एक अभ्यस्त त्योहार बनता जाता है । पर क्या इसी लिए हम इस त्योहारकी पुनः प्रतिष्ठा करना चाहते हैं ? नहीं, जब तक प्रत्येक जैनके हृदयमें शास्त्रकी ज्ञानकी प्रतिष्ठा और महत्त्व स्थापित न हो जाय, प्राचीन शास्त्रोंकी रक्षा करना उनके ज्ञानका विस्तार करना, उनके लिए बड़े बड़े भंडार स्थापित करना, सुलभ वाचनालय खोलना, आदि पवित्र का-

योंको जैनसमाजका प्रत्येक व्यक्ति अपना कर्तव्य न समझने लगे तब तक इस पर्वकी सफलता नहीं कही जा सकती। इन सब बातों-के लिए इस पर्व पर प्रत्येक स्थानमें आन्दोलन होना चाहिए। प्रत्येक ग्राम, पंचायत या मन्दिरमें श्रुतपंचमीपर्वका उत्सव होना चाहिए और उस समय शास्त्रदान और शास्त्रसंग्रहकी कुछ न कुछ व्यवस्था अवश्य होना चाहिए। चाहिए तो यह कि प्रत्येक व्यक्ति ये पुण्यकार्य करें; परन्तु यदि न होसके तो कमसे कम पंचायतीकी ओरसे एक दो नये ग्रन्थ प्रतिवर्ष लिखाकर मँगाये जायँ और भंडा-रमें संग्रह किये जावें। यदि शक्ति कम हो तो छपे ग्रन्थ ही मँगाये जावें। कुछ ग्रन्थ विद्यार्थियोंको या स्वाध्यायप्रेमियोंको बाँटे जावें और कुछ रुपया सनातन जैनग्रन्थमाला, माणिकचन्द्र जैनग्रन्थमाला सिद्धान्तभवन जैसी संस्थाओंको दिया जावे। जो लोग समर्थ हैं, उन्हें किसी एक ग्रन्थके जीर्णोद्धार करानेका—छपाकर अर्धमूल्यमें या मुफ्तमें बाँटनेका भी इस पवित्र दिनको निश्चय करना चाहिए। यदि इस तरह पचास पंचायतियाँ ही विचार लेवें तो प्रतिवर्ष ५० ग्रन्थोंका उद्धार हो जाय। हमें इस अवसर पर प्रत्येक हृदयमें यह बात ठँसार देनी चाहिए कि जैनधर्मकी रक्षा उसके ग्रन्थोंकी रक्षा—उसके प्रकाश और प्रचारसे ही होगी।

९ माणिकचन्द्रजैनग्रन्थमाला।

ग्रन्थमालाका कार्य शुरू होगया है। पहला ग्रन्थ सागार धर्मामृत सटीक छप रहा है, दूसरा हस्तिमल्लकृत विक्रान्तकौरवीय नाटक प्रेसमें हाल ही दिया गया है और तीसरे वादिराजसूरिकृत पार्श्व-

नाथकाव्यकी प्रेस कापी तैयार कराई जा रही है। प्रूफसंशोधक-का प्रबन्ध न होनेसे और प्रेसकी शिथिलतासे पहले ग्रन्थके तैयार होनेमें आशासे अधिक विलम्ब होगया; परन्तु अब ऐसा प्रबन्ध किया गया है कि तीनों ग्रन्थ जल्द तैयार हो जायँ। पाठकोंको यह तो मालूम ही है कि यह माला केवल ग्रन्थोद्धार और ग्रन्थ प्रचारकी दृष्टि-से जारी की गई है और इसीलिए इसके तमाम ग्रन्थ लागतके मूल्य पर बेचे जावेंगे। इसमें इसके संस्थापकों या संचालकोंका निजी स्वार्थ कुछ भी नहीं है। इसलिए हम आशा करते हैं कि श्रुतपंचमीके अवसर पर हमारे पाठक ग्रन्थमालाको अवश्य स्मरण कर लेंगे और इसके लिए कुछ न कुछ सहायता भेजेंगे। सागारधर्मामृतकी एक हजार प्रतियाँ छपाई जा रही हैं। पाठक यह जा-नकर प्रसन्न होंगे कि अमरोहा मुरादाबाद निवासी बाबू बिहारीलालजीके पुत्रने इसकी २५० प्रतियाँ मुफ्तमें वितरण करनेके लिए खरीद ली हैं जो तैयार होते ही भेज दी जावेंगी। बाबूसाहबको और उनके सुपुत्रको हम हृदयसे धन्यवाद देते हैं और आशा करते हैं कि अन्यान्य धर्मात्मा भाई भी इसी तरह ग्रन्थमालाको सहायता पहुँचावेंगे। २५० प्रतियाँ खरीदनेवाले सज्जन यदि चाहें तो उनका फोटो ग्रन्थके साथ लगवा दिया जायगा। इन तीनों ग्रन्थोंमें तीन तीनसौ रुपयोंसे अधिक खर्च न पड़ेगा। एक ग्रन्थकी २५० प्रतियाँ वितरण करनेके लिए ले लेना, जिसमें लगभग ७५) खर्च होंगे, एक साधारण स्थितिके गृहस्थको भी भारी न होगा।

१० श्वे० का० हेरल्डका साहित्य और इतिहासका अंक ।

जबसे इस मासिक पत्रके सम्पादक श्रीयुत मोहनलाल दलीचन्द्र-जी देसाई बी. ए. एल एल. बी. हुए हैं तबसे इसकी बहुत उन्नति हो गई है। अब यह एक पढ़ने योग्य पत्र बन गया है । देसाई महाशयको इतिहासका बड़ा शौक है। अपने जीविकाके कार्यसे उन्हें जितना समय मिलता है उसको वे प्रायः इतिहासके अध्य-यनमें ही व्यतीत करते हैं। जहाँ तक हम जानते हैं जैनसमाजमें वे ही एक युवक हैं जो जैनइतिहासकी छानबीनमें निरन्तर लगे रहते हैं । इस विषयमें वे हमारे दूसरे ग्रेज्युएट सज्जनोंके लिए अनुकरणीय हैं । गतवर्ष उन्होंने अपने पत्रके दो बड़े बड़े अंक प्रकाशित किये थे जिनमें केवल ' महावीर स्वामी ' के सम्बन्धके ही तमाम लेख थे । उक्त अंकोंकी चर्चा जैनहितैषीमें यथासमय हो चुकी है । अब वे ' जैनइतिहास और साहित्य ' का एक खास अंक निकालना चाहते हैं और उसके लिए तैयारी कर रहे हैं। उन्होंने एक विज्ञापन प्रकाशित किया है और जैनसमाजके तीनों संप्रदायके लेखकोंसे इतिहास और साहित्यसम्बन्धी लेख भेजनेकी प्रार्थना की है। इस विज्ञापनके साथ--जिन जिन विषयोंपर वे लेख चाहते हैं उनकी एक सूची है। इतिहासकी सूचीमें २८ और साहित्यमें ३० विषय उन्होंने चुने हैं। पाठकोंकी जानकारीके लिए हम उनमेंसे कुछ महत्वके विष-योंका यहाँ उल्लेख किये देते हैं:-**इतिहास**--१ गणधरोंका इतिहास

२ सुधर्मास्वामीसे लेकर अब तककी पट्टावलियाँ, ३ समस्त गच्छोंके नाम और उनका इतिहास. ४ जैनप्रभावक-कवि-मंत्री और स्त्रियोंका इतिहास, ५ जैनतीर्थोंका इतिहास, ६ चन्द्रगुप्त, अशोक, कुणिक, संप्रति, आदि मौर्यवंशी राजाओंका इतिहास, ७ अकबर और जहाँगीरके फरमान, ८ वल्लभसम्प्रदायका जैनों पर पड़ा हुआ प्रभाव, ९ गुजरातके जैन राजा. १० कुमारपालके समयका गुजरात, ११ गुजरातके इतिहासमें जैनोंकी सेवा. १२ अल्लाउद्दीन खिलजी आदि मुसलमान और जैनमंदिर, मन्दिरोंकी बनी हुई मसजिदें; शिलालेख और जैनशिल्पकलाके इस विषयमें विश्वस्तप्रमाण, १३ जैनोंके सब सम्प्रदाय और उनकी मान्यताओंकी भिन्नता. १४ प्राचीन जैन व्यापारी और उनकी व्यापार पद्धति. १५ भोजकोंकी उत्पत्ति, १६ महावीर स्वामीकी निर्वाणतिथिका निर्णय. १७ जैन-दर्शनकी प्राचीनता. १८ जैन इतिहासके साधन । **साहित्य** १ जैनेतर साहित्यमें जैनधर्मका या जैनोंका उल्लेख. २ जैनसंस्कृत औ-प्राकृत साहित्य. ३ प्राकृतभाषाका उद्धार कैसे हो ? ४ जैनन्यायर साहित्य, धर्मसाहित्य, कथासाहित्य, नाटकसाहित्य, ५ बंगाली, मराठी, कानड़ी, आदि देशभाषाओंमें जैनसाहित्य. ६ अपभ्रंश-भाषा, ७ जैन पुस्तकालय, ८ प्राकृत साहित्यका संस्कृतमें अनुवाद, जैनदर्शनकी अन्यदर्शनोंसे तुलना । आदि । आशा है कि हमारे दिगम्बरी विद्वान् भी इनमेंसे किसी विषयमें कुछ लिखनेकी कृपा करेंगे । सम्पादक महाशय हिन्दी लेखोंके प्रकाशित करनेका भी आश्वासन देते हैं ।

११ जैनहितैषीका प्रस्तुत अंक ।

हमारी यह बहुत दिनोंसे इच्छा हो रही है कि जैनहितैषीका भी वर्ष भरमें कमसे कम एक खास अंक निकाला जाय और उसमें किसी एक ही विषयकी खास तौरसे चर्चा हो; परन्तु इस कार्यकी गुरुताका और परिश्रमका विचार करके, साथ ही लोगोंकी अभिरुचि-काभी खयाल करके अपनी उक्त इच्छाको बारबार रोकलेना पड़ता है। किन्तु अबकी बार यह इच्छा इतनी प्रबल हो गई कि इसे हम किसी तरह न रोक सके और समयके न रहने पर—पहलेसे सूचना आदि दिये विना ही हमने खास अंकके ढांचेका यह अंक तैयार कर डाला यद्यपि यह अन्यान्य पत्रोंके समान विशालकाय नहीं हैं और इसमें चित्रादि भी नहीं हैं तो भी जिस तरहके खास अंक हम निकालना चाहते हैं उनका यह छोटासा नमूनेका रूप है। एक दो लेखोंको छोड़कर इसके प्रायः सब ही लेख इतिहाससे सम्बन्ध रखनेवाले हैं। हमें डर है कि ऐसे लूखे विषयकी चर्चाको पाठक पसन्द करेंगे या नहीं, तो भी यह आशा है कि जो विचारशील सज्जन हैं वे इन लेखोंको और नहीं तो हमारी प्रार्थनासे— आग्रहसे ही एक बार आद्यन्त पढ़ जानेकी कृपा करेंगे और यदि उन्होंने ऐसा किया तो हम अपने परिश्रमको सफल समझेंगे हमारा यह प्रयत्न यदि पाठकोंको रुचिकर हुआ तो हम आगामी वर्षकी श्रुतपञ्चमीको इससे लगभग दूना बड़ा अंक तैयार करनेका प्रयत्न करेंगे।

यह अंक समयसे भी कुछ पहले प्रकाशित होता है; इसका कारण यह है कि हम कारणवश अपने घर जा रहे हैं और वहां हमें एक महीनेसे अधिक लग जायगा। यदि कोई विघ्न न आया तो आगामी अंक आषाढ़के अन्त तक अवश्य निकल जायगा।

चित्रशाला स्टीम प्रेस, पूना सिटीकी अनोखी पुस्तकें।

चित्रमयजगत: यह अपने ढंगका अद्वितीय सचित्र मासिकपत्र है। "इलेस्ट्रेटेड लंडन न्यूज " के ढंग पर बड़े साइजमें निकलता है। एक एक पृष्ठमें कई कई चित्र होते हैं। चित्रोंके अनुसार लेख भी विविध विषयके रहते हैं। सालभरकी १२ कापियोंको एकमें बंधा लेनेसे कोई ४००, ५०० चित्रोंका मनोहर अलबम बन जाता है। रंगीन चित्र भी इसमें रहते हैं। आर्टपेपरके संस्करणका वार्षिक मुल्य ५॥) डॉ० व्य० सहित और एक संख्याका मूल्य ॥) आना है। साधारण कागजका वा० मू० ३॥) और एक संख्याका ।=) है।

राजा रविवर्माके प्रसिद्ध चित्र-राजा साहबके चित्र संसारमें नाम पा चुके हैं। उन्हीं चित्रोंको अब हमने सबके सुभीतेके लिये आर्ट पेपरपर पुस्तकाकर प्रकाशित कर दिया है। इस पुस्तकमें ८८ चित्र मय विवरणके हैं। राजा साहबका सचित्र चरित्र भी है। टाइटल पेज एक प्रसिद्ध रंगीन चित्रसे सुशोभित है। मूल्य है सिर्फ १) रु०।

चित्रमय जापान-घर बैठे जपानकी सैर। इस पुस्तकमें जापानके सृष्टि-सौंदर्य्य, रीतिरवाज, खानपान, मृत्यु, गायनवादन, व्यवसाय, धर्मविषयक और राजकीय, इत्यादि विषयोंके ८४ चित्र, संक्षिप्त विवरण सहित हैं। पुस्तक अव्वल नम्बरके आर्ट पेपर पर छपी है। मूल्य एक रुपया।

सचित्र अक्षरबोध-छोटे २ बच्चोंके वर्णपरिचय करानेमें यह पुस्तक बहुत नाम पा चुकी है। अक्षरोंके साथ साथ प्रत्येक अक्षरको बतानेवाली, उसी अक्षरके आदिवाली वस्तुका रंगीन चित्र भी दिया है। पुस्तकका आकार बड़ा है। जिससे चित्र और अक्षर सब सुशोभित देख पड़ते हैं। मूल्य छह आना।

वर्णमालाके रंगीन ताश-ताशोंके खेलके साथ साथ बच्चोंके वर्णपरिचय करानेके लिये हमने ताश निकाले हैं। सब ताशोंमें अक्षरोंके साथ रंगीन चित्र और खेलनेके चिन्ह भी हैं। अवश्य देखिये। फी सेट चार आने।

सचित्र अक्षरलिपि-यह पुस्तक भी उपर्युक्त " सचित्र अक्षरबोध " के ढंगकी है। इसमें बाराखड़ी और छोटे छोटे शब्द भी दिये हैं। वस्तुचित्र सब रंगीन हैं। आकार उक्त पुस्तकसे छोटा है। इसीसे इसका मूल्य दो आने है।

—:राष्ट्रीय ग्रन्थ:—

यश और पुण्यप्राप्तिकी इच्छा रखनेवाले

दानवीर महाशयो !

यदि आप थोडेसे खर्चमें सैकडों ग्रंथोंके दान करनेका यशःपुण्य लूटना चाहते हैं तो आइये और इस सूचनाको ध्यान देकर बाँचिये। कि—

भारतीयजैनसिद्धांतप्रकाशिनीसंस्था काशीके स्थापन करनेका **एक** मात्र उद्देश्य यह है कि–जैनियोंके सिवाय देश विदेशोंके समस्त अजैन विद्वानोंमें जैनधर्मसंबंधी उत्तमोत्तम प्रभावशाली संस्कृत, प्राकृत, हिंदी तथा बंगला, अंगरेजी भाषामें विविधप्रकारके ग्रंथ छपा २ कर प्रचार करना अर्थात् मुफ्त देना वा लागतके भावसे देते रहना। जिसकी सिद्धिकेलिये इस संस्थाने प्रथमही तो गवर्नमेंटकी कलकत्ता संस्कृतयूनिवर्सिटीके कोर्समें जैनमतके न्याय व्याकरणादि ग्रंथ भरती कराकर **सनातनजैनग्रंथमालाके** द्वारा प्रकाशित करना प्रारंभ किया था। सो धाराशिवनिवासी श्रीयुत श्रेष्ठिवर्य **गांधी नेमिचंद बहालचंदजी,** वकील आदिकी द्रव्यसहायतासे आगे लिखे ९ ग्रंथ छपाये हैं और अन्यमती विद्वानोंके पास व पुस्तकालयोंमें विनामूल्य सवासवासौ प्रति बराबर भेजते रहे हैं। फिर भी दानी महाशयोंसे सहायता मिलेगी तो श्लोकवार्त्तिक, पद्मपुराण, न्यायविनिश्चयालंकारादि संस्कृतके महान ग्रंथ छपा २ कर सर्वसाधारण विद्वानोंमें वितरण किये जांयगे। इसके शिवाय अन्य सर्व साधारणमें जैनधर्मके सिद्धांतोंका प्रचार करनेकेलिये हिंदी, बंगला, अंगरेजी आदि भाषाओंमें छोटे बड़े सब ही प्रकारके जैनग्रंथ **चुन्नीलालजैनग्रंथमालामें** छपा २ कर प्रचार करनेका विचार किया था परंतु द्रव्यसहायता न मिलनेके कारण यह कार्य गत दो वर्षोंमें कुछ भी नहिं कर पाये। इसकारण इसवर्ष यदि आप लोग थोड़ी २ द्रव्यसहायता दें तो अब इन तीनों भाषाओंमें अनेक ग्रंथ छपा २ कर सर्व देशोंके अन्यमती विद्वानोंमें तथा सर्वसाधारणमें विनामूल्य वितरण करनेका काम बड़े जोरशोरसे चलाया जावे।

यह तो आपको रिपोर्ट द्वारा विदित ही होगया होगा कि यह संस्था किसी खास मनुष्यकी नहीं है और न कोई इससे अपना पारमार्थिक प्रयोजनके सिवाय सांसारिक प्रयोजन ही साधन करता है। जिसप्रकार आप लोग धनसे सहायता करके पुण्योपार्जन करना चाहते हैं, उसीप्रकार इस संस्थाके कार्यकर्त्ता भी यथाशक्ति अपना तन और मन लगाकर परिश्रम करते रहते हैं। इसी कारण अखबारोंद्वारा व विज्ञापनोंद्वारा बारंबार प्रार्थना की जाती है कि और २ धार्मिक

संस्थाओंकी तरह इस धार्मिक संस्थाकी भी सहायता हमेशा करते रहा करें। आप लोग अन्य अन्य धर्मकार्योंमें सैंकड़ों हजारों रुपया दान करते हैं परंतु इस कार्यमें दान करनेसे जितना फल होता है वा पुण्य यशकी प्राप्ति हो सकती है अन्य किसी भी कार्यमें नहिं होती होगी। इसलिये हमने एक बहुत ही सरल उपाय निकाला है जिसके द्वारा समर्थ असमर्थ सब कोई महाशय सैंकड़ों हजारों शास्त्रोंका दान कर सकते हैं—

वह सरल उपाय यह है कि—

आप अपनी सामर्थ्यानुसार ५०) १००) ५००) या १०००) जितनी इच्छा हो एक रकम इस संस्थामें भेज दीजिये। हम आपके नामसे संस्थाकी बहीमें एक दान खाता लगाकर जमा करलेंगे। उस रकमसे आपके वा आपके पिता आदिका जिनका नाम देंगे उनके स्मरणार्थ नामादि सहित किसीभी एक ग्रंथकी १००० प्रति छपावेंगे। उनमेंसे ४०० या ५०० प्रति जैनियोंमें बेचकर लागतकी रकम उठाकर उसी खातेमें जमा करके फिर कोई भी दूसरा ग्रंथ छपाना शुरू कर देंगे और शेष रही ६०० या ५०० प्रतियोंमेंसे आधी तो आपके पास दान करनेके लिये भेज देंगे और आधी हम अपने जैन अजैन ग्राहकोंको विनामूल्य वितरण कर देंगे। इसीप्रकार दूसरे ग्रंथकी भी ४००-५०० प्रति बेचकर मूल लागतकी रकम हस्तगत करके उस ग्रंथकी भी शेष प्रतियोंमेंसे आधी प्रतियाँ आपको दान करनेके लिये भेज देंगे और आधी हम दान कर देंगे। इसी प्रकार हमेशह वर्षमें एक दो या तीन वार आपकी रकमसे ग्रंथ छपा २ कर विक्रय करके मूल रकम हाथमें रखकर सैंकड़ों हजारों ग्रंथोंका विना टका पैसेके दान होता रहेगा। अन्यमती विद्वानों और सर्वसाधारण भाइयोंमें जैनधर्मके ग्रंथोंका प्रचार होनेसे कितना लाभ होगा सो आप ही विचार लें और आपके ध्यानमें आ जावे तो शीघ्र ही कोई एक रकम भेजकर आज्ञा दें जो हम ग्रंथ छपाकर आपका यह शास्त्रदानका कार्य शुरू करदें। आपकी रकमका छपाई विक्री वगैरह खर्चका पाई पाईका हिसाब प्रतिवर्ष आपके पास भेज दिया जायगा और वार्षिक रिपोर्टमें भी छपा दिया जायगा। यदि यह उपाय आपकी समझमें नहिं आया हो तो फिरसे एक वार इसे बांचकर समझ लीजिये।

इस विषयमें पत्रव्यवहार करनेका पता—

पन्नालाल बाकलीवाल

व्यवस्थापक—भारतीयजैनसिद्धांतप्रकाशिनीसंस्था

ठि० मंदागिन जैनमंदिर, पो० बनारस सिटी।

सनातन जैनग्रंथमालामें छपे हुये

प्राचीन सटीक संस्कृत प्राकृत ग्रंथ।

दो वर्ष हुये बनारसमें एक **सनातनजैनग्रंथमाला** नामकी प्राचीन ग्रंथमाला निकलती है जिसमें नीचे लिखे प्रभावशाली ग्रंथ संस्कृतज्ञ व धर्मपिपासु जैन अजैन समस्त विद्वानोंके हितार्थ छपे हैं। कोई भी विद्वान् क्यों न हो इन ग्रंथोंको थोड़ासा बांचते ही इनकी महत्ताको नमस्कार करेगा। इन ग्रंथोंका सर्वसाधारणमें प्रचार करनेसे जैनधर्मकी बड़ी भारी प्रभावना होगी। इसलिये प्रत्येक जैनमंदिर जैनपाठशाला वा जैनलाइब्रेरी वा वाचनालयोंमें एक एक सीट अवश्य ही मगाकर संग्रहीत करना चाहिये और जो कोई भी संस्कृतज्ञ विद्वान् हो, वा आवे उनको दान करें वा देकर पढ़नेको कहेंगे तो बड़ा भारी लाभ होगा। दान करनेवालोंकेलिये बहुत ही किफायत की जाती है अर्थात् २७०) रुपयेके १० सीट ग्रंथ सिर्फ १००) रुपयोंमें भेज देते हैं। एक सीट ग्रंथोंका मूल्य २६॥।≈) होते हैं सो सबकेसब (एकसीट) लेनेसे हम केवल १४) रुपयोंमें भेज देते हैं परंतु फुटकर (छूटा) लेनेवालोंसे नीचे लिखी न्योछावर ली जाती है।

१-२. **आप्तपरीक्षा सटीक** और **पत्रपरीक्षा**—ये दोनों ग्रंथ स्याद्वाद-विद्यापति सकलतार्किकचक्रचूडामणि श्रीविद्यानंदस्वामीके बनाये हुये हैं। आप्त-परीक्षापर टीका भी स्वोपज्ञ सविस्तर है। इसमें समस्त मतोंका निराकरण करके सत्यार्थ आप्तकी सिद्धि की है। यह ग्रंथ कलकत्ता गवर्नमेंटकी संस्कृत यूनिव-र्सिटीकी जैनन्याय मध्यमापरीक्षामें भरती है। मूल्य २) रुपये।

३. **समयप्राभृत** (समयसार नाटक) दो टीका सहित छपा है। मूल ग्रंथ प्राकृतमें भगवत्कुंदकुंदस्वामीकृत है। इसपर जयसेनाचार्यकृत तात्पर्यवृत्ति और अमृतचंद्रसूरि कृत आत्मख्याति टीका साथमें है। जैनसमाजमें अध्यात्म विषयका ग्रंथ इसकी बराबर और कोई नहीं है। मूल्य ५.) रु. है।

४। **तत्त्वार्थराजवार्तिक**—यह ग्रंथ उमास्वामीकृत मोक्षशास्त्र तत्त्वार्थ-सूत्रोंपर स्याद्वादविद्यापति भट्टाकलंकदेव कृत बड़ी टीका है। जैनदर्शनकी यह बडी प्राचीन सर्वोपयोगी टीका है। किसी २ सूत्रपर तो चालीस २ वार्तिकें हैं और प्रत्येक वार्तिकपर विस्तृत व्याख्या है। जैनदर्शनके अपूर्व सिद्धांत जानने वाले विद्वानोंके लिये यह बहुत ही उपयोगी मनन करने योग्य ग्रंथ है। मू. ९) रु.

५. **जैनेंद्रप्रक्रिया**—पूज्यपाद गुणनंदिकृत-यह प्रसिद्ध अष्टव्याकरणोंमेंसे जगत्प्रसिद्ध जैनेंद्रव्याकरणसमुद्रमें प्रवेश करनेके लिये नौकाकी समान बहुत ही

सरल प्रक्रिया टीका है। संस्कृत पढनेवाले विद्यार्थियोंके लिये बहुत ही उपयोगी है। इसी लिये यह ग्रंथ भी कलकत्ता संस्कृत यूनिवर्सिटीकी प्रथमा परीक्षामें भरती होगया है। न्योछावर १॥) रुपया।

६. **शब्दार्णवचंद्रिका**—सोमदेवकृत यह भी उक्त जैनेंद्रव्याकरणकी शब्दार्णवचंद्रिका नामकी बहुत ही सुगम टीका है। यह भी कलकत्ता संस्कृत परीक्षाकी व्याकरण मध्यमा (पंडित) परीक्षामें भरती है। मूल्य ५)

७—८. **आप्तमीमांसा** सटीक सभाष्य और **प्रमाणपरीक्षा**—ये दोनों ग्रंथ एक ही जिल्दमें हैं। आप्तमीमांसा भगवत्समंतभद्राचार्यकृत ८४००० श्लोकमय गंधहस्तमहाभाष्यके मंगलाचरणस्वरूप ११५ कारिका हैं। इसका नाम **देवागमन्याय** व **देवागमस्तोत्र** भी है। इस पर एक तो वसुनंद सिद्धांतचक्रवर्ति कृत टीका है दूसरा अकलंकदेव कृत अष्टशती नामका भाष्य है। दूसरा ग्रंथ **प्रमाणपरीक्षा**—विद्यानंदस्वामी कृत प्रमाणनिर्णयविषय बहुत ही उपयोगी ग्रंथ है। यह ग्रंथ भी कलकत्ताकी जैनन्याय मध्यमा परीक्षामें भरती है। मूल्य २) रु०

९. **शब्दानुशासन सटीक**—यह भी जगत्प्रसिद्ध अष्ट व्याकरणोंमेंसे शाकटायन व्याकरण है यक्षवर्माकृत चिंतामणि टीकासहित छपा है। इसी व्याकरणके सूत्रोंका तात्पर्य पाणिनीयमहाराजने अपने व्याकरणमें **लङः शाकटायनस्य** इत्यादि सूत्रोंमें ग्रहण किया है। इसका प्रथम खंड मात्र छपा है। मूल्य २) रु० है।

१०. **शाकटायनधातुपाठ**—यह दूसरेका छपाया हुआ है। मूल्य ।=)

भाषाके ग्रंथ।

१. **जिनशतक**—समंतभद्रस्वामीकृत संस्कृत और भाषाटीका सहित चित्रकाव्य ॥)

२. **धर्मरत्नोद्योत**—चोपाईबंध श्रावकाचार आदि अनेक विषय भूषित १)

३. **धर्मप्रश्नोत्तर**—(प्रश्नोत्तरश्रावकाचार) यह भी अनेक विषयोंकी चर्चा सिखानेवाला बहुतही सरल प्रश्नोत्तररूप वड़ा उपयोगी ग्रंथ है। मूल्य २) रु०।

४. **महावीरस्वामीका चरित्र**—एक आना १०० लेनेवालोंको ३) सैकड़ा।

मिलनेका पता—पन्नालाल बाकलीवाल

व्यवस्थापक—**भारतीयजैनसिद्धांतप्रकाशिनी संस्था**

ठि. मैदागिन जैनमंदिर—पोष्ट बनारस सिटी।

कर्नाटक छापखाना, बम्बई.

आवश्यकीय प्रार्थना ।

महाशयो ! यह बात निर्विवाद सिद्ध है-इसके कहनेकी कोई आवश्यकता नहीं कि संसारमें वही धर्म जीवित रहसकता है और उसीकी गणना जीवित धर्मोंमें की जा सकती है कि जिसका प्राचीन साहित्य सुरक्षित विद्यमान हो, जिसके इतिहासादि आर्षग्रंथोंका यथेष्ट उद्धार होता जाता हो, जिसका **शास्त्र**भंडार नित्यशः बढता जा रहा हो और जिसके तर्क, छंद, व्याकरण ज्योतिष विज्ञान इतिहासादि साहित्यके समस्त अंगोंकी पुष्टि होती जाती हो । वह धर्म इस उन्नतिशील प्रकाशमयी २० वीं शताब्दीमें कदापि उन्नति नहिं कर सकता और उसके सिद्धांत कदापि विश्वव्यापी नहिं हो सकते जिसका कि साहित्यभंडार अंधकूपमें पड़ा हुआ हो, प्राचीन महत्त्वशाली ग्रंथ दीमकोंके आहार बन रहे हों । इसी कारण ही सब समाजें हजारों लाखों रुपये खर्च करके अपने २ साहित्यकी रक्षा वृद्धिकर रहे हैं। हमने भी इसी मार्गको उत्तम समझकर सबसे पिछड़े हुये अपने पवित्र जैनधर्मकी स्थिति कायम रखनेको इच्छासे तथा सरकारी संस्कृत युनिवर्सिटियोंमें जैनन्यायव्याकरणादि ग्रंथ भरती कराने वा सर्वत्र प्रचार करनेके लिये एक **भारतीयजैनसिद्धांतप्रकाशिनीसंस्था** खोलकर प्राचीन संस्कृत ग्रंथोंके प्रकाशनार्थ तो **सनातनजैनग्रंथमाला** और हिंदी बंगला अंगरेजीभाषामें नये ढंगके इतिहासादि ग्रंथ वा ट्रैक्टें प्रकाश करनेकेलिये एक **चुन्नीलालजैनग्रंथमाला** प्रकाशित करना प्रारंभ किया था, परंतु पूरी २ द्रव्यसहायता न मिलनेके कारण कलकत्ता संस्कृतयूनिवर्सिटीमें भरती हुए जैनन्याय जैनव्याकरण ग्रंथोंका पठनक्रम (कोर्स) अभी तक छपाकर पूर्ण नहिं कर सके, लाचार राजवार्त्तिक, जैनेंद्र शाकटायनादि व्याकरण अधूरे ही रखकर छपाना बंद करना पड़ा है । परंतु अब कलकत्ता आदिके अनेक सज्जन महाशयोंकी प्रेरणा व सम्मतिसे उत्साहित होकर पचास २ रुपयोंके ६० और दश दश रुपयोंके २०० इस प्रकार पांच हजार रुपयोंके शेअर बेचकर उसी रकमसे अत्यंत शुद्धतासे मनोहर छपाई करनेके लिये एक छोटासा जैनप्रेस खोलकर उसके द्वारा दोनों ग्रंथमालायें नये उत्साहसे बराबर निकालते रहनेका प्रबंध किया गया है । अतएव समस्त सज्जन विद्वज्जन महाशयोंसे प्रार्थना है कि नीचे लिखे नियम वांचकर आप स्वयं शेअर (हिस्से) खरीदें तथा अन्यान्य महाशयोंको खरीददार बनाकर शेअर भरनेका फारम (जो कि इसके साथ है) लिखवाकर शीघ्रही हमारे पास भेजें ।

विलंब करनेसे अवश्य ही पछताना पड़ेगा। सब शेअर भरतेही प्रेस टाईप मंगाकर काशी या कलकत्तेमें कार्य प्रारंभ कर दिया जायगा।

नियमावली।

१। जो महाशय पचास रुपयोंका एक शेअर (हिस्सा) लेंगे उनको **सनातनजैनग्रंथमालामें** छपनेवाले समस्त ग्रंथोंकी (अब इसमें भाषाटीकासहितभी ग्रंथ छपैंगे) तथा **चुन्नीलालजैनग्रंथमालामें** हिंदी बंगला अंगरेजीमें छपनेवाले किसी भी एकभाषा के समस्त ग्रंथोंकी एक एक प्रति विनामूल्य बराबर भेजते रहेंगे। यदि कोई महाशय ग्रंथमाला न लेना चाहें तो उनको ८) रुपये सैंकड़े वार्षिकके हिसावसे ५०) रुपयोंका वियाज ४) रु० प्रतिवर्ष भेजदिया जायगा।

२। जो महाशय दश दश रुपयोंके शेअर खरीदेंगे उनको प्रत्येक शेअरके पीछे **चुन्नीलालजैनग्रंथमालामें** छपनेवाले किसी एक भाषाके समस्त ग्रंथोंकी एकएकप्रति विना मूल्य भेजते रहेंगे। यदि कोई महाशय ग्रंथ न लेना चाहें तो उन्हें १० रुपयोंका वियाज प्रतिवर्ष ॥) बारह आने भेजते रहेंगे।

३। उपर्युक्त लाभके सिवाय कोई भी हिस्सेदार महाशय दान करनेकेलिये अधिक प्रतियां खरीदेंगे तो उन्हें सब ग्रंथ पौनी कीमतसे भेज दिये जांयगे।

४। जो महाशय अपने शेअरके रुपये वापिस लेना चाहें तो तीनवर्ष बाद ले सकते हैं तथा जब चाहे तब किसी अन्य खरीददारको बेच सकते हैं।

५। इस संस्थाके समस्तकार्य संस्थाके मूलसंस्थापक, परमसंस्थापक, संरक्षक (कोषाध्यक्ष), संस्थापक, (५०० रुपयोंके शेअर खरीदनेवाले) महामंत्री, मंत्री, उपमंत्री इन सबकी बहुसम्मतिसे होते रहेंगे। अगर पचास २ रुपयोंके शेअर खरीद लेनेवालोंकी बहुत सम्मति होगी तो एक जुदी कमेटी बनाकर उसके द्वारा काम चलाया जायगा।

महामंत्री।

पत्र और फारम भेजनेका पत्ता—

पनालाल बाकलीवाल

महामंत्री–भारतीय जैन सिद्धांत प्रकाशिनी संस्था,

ठि० मदागिन जैनमंदिर, पो० बनारस सिटी।

यह फारम भरकर भेजियेगा।

श्रीयुत महामंत्री भारतीयजैनसिद्धांतप्रकाशिनी संस्थाकाशी—बाद जयजिनेंद्रके आपका प्रकाशित विज्ञापनपत्र आद्योपांत बांचकर देखा आपके प्रकाशित नियमोंके अनुसार मैं दश दश रुपयोंके*

शेअर, पचास २ रुपयोंवाले* शेअरोंका खरीद-दार बनता हूं सो नीचे लिखे अनुसार मेरा नाम शेअर खरीदनेवालोंके रजिष्टरमें लिखकर सूचना दें और जब काम चलाने लायक शेअर भर जांय और कार्य प्रारंभ करना चाहें, उसवक्त सूचना देकर रुपये मंगालेवें। मुझे इन शेअरोंके बदले आपके प्रकाशित नियमके अनुसार ग्रंथ × वियाज भेजते रहें।

मेरा नाम उमर वर्ष

मेरे पिताजीका नाम जाति

ग्राम

पोष्ट जिला

पत्र पहुंचनेका पूरा ठिकाना

* यहांपर जिसप्रकारके शेअर भरने हों उनकी संख्या लिखकर दूसरेप्रकारके शेअरका मजमून छेक दें।

× यहांपर ग्रंथ लेना हो तो वियाज शब्द छेक दें, वियाज लेना हो तो ग्रंथ शब्द छेक दें।

कर्नाटक छापखाना, बम्बई.

(इस अंकके प्रकाशित होनेकी तारीख १८-५-१५।)

Reg. No. B. 719.

ॐ

जैनहितैषी ।

साहित्य, इतिहास, समाज और धर्मसम्बन्धी लेखोंसे विभूषित

मासिकपत्र ।

सम्पादक और प्रकाशक—**नाथूराम प्रेमी** ।

भाग ११ | आषाढ़ श्रीवीर नि० संवत २४४१ | अंक ९

विषयसूची ।

परवार जातिके दो वरोंकी आवश्यकता

परवार जातिकी दो कन्याओंके लिए सुयोग्य वरोंकी आवश्यकता है। एक कन्याका जन्म वैशाखसुदी ९ सं० १९५९ का और दूसरीका अगहनवदी ८ सं० १९६१ का है। दोनों बहिनें हैं। चार कक्षा तक हिन्दी पढ़ी हुई और सुन्दर हैं। अच्छे घरकी हैं। वर योग्य, सुशील और शिक्षित होने चाहिए। सांकें नीचे दीजाती हैं। यदि आठ सांकें न मिलें, तो कन्याओंके अभिभावक **चार ही सांकोंमें विवाह करनेके लिए तैयार हैं।** विवाह जैनपद्धतिसे होगा। पत्रव्यवहार– " बजाज C/o सम्पादक जैनहितैषी, गिरगाँव, बम्बई " के पतेसे करना चाहिए। पत्रमें वरकी उम्र, शिक्षा, आर्थिक अवस्था, सांकें आदि सबका खुलासा करना चाहिए।

१ मूर, दुगायत बाझल्ल गोत	५ लड़कीके मामा, डेरिया
२ आजेके मामा, कुआ	६ नानाके मामा, वींवीकुटम
३ बापके मामा, बहुरिया	७ मातारीके मामा, उजरा
४ आजीके मामा, डाहडिम	८ नानीके मामा, अंडेला

Printed by Nathuram Premi at the Bombay Vaibhav Press, Servants of India Society's Building, Sandhurst Road, Girgaon Bombay, & Published by Nathuram Premi at Hirabag, Near C. P. Tank Girgaon, Bombay.

जैनहितैषी ।

श्रीमत्परमगम्भीरस्याद्वादामोघलाञ्छनम् ।
जीयात्सर्वज्ञनाथस्य शासनं जिनशासनम् ॥

११ वाँ भाग { आषाढ़, वीर नि० सं० २४४१ । } अंक ९

बोलपुरका शान्तिनिकेतन ब्रह्मचर्याश्रम ।

यह आश्रम बंगालमें वीरभूम जिलेके बोलपुर ग्रामसे लगभग १॥ मीलके फासले पर खुले मैदानमें ऊँची जमीनके ऊपर स्थापित है। बोलपुर ईस्ट इंडियन रेलवे (लूप लाइन) का स्टेशन है। मनुष्योंके कोलाहलसे यह दूर है, इस कारण यहाँ बड़ी ही शान्ति रहती है। मैं १६ फरवरी १९१५ को इस आश्रममें पहुँचा। बड़ी ही प्रसन्नता हुई। वहाँके मन्द सुगन्ध पवनने मनकी कली खिला दी और ब्रह्मचारियोंके निष्कपट पवित्र और प्रेमल चेहरोंने मेरे हृदय पर एक कभी न मिटनेवाली मुद्रा अंकित कर दी।

इस आश्रमके संस्थापक जगत्प्रसिद्ध साहित्यसम्राट् स्वनामधन्य कविवर रवीन्द्रनाथ ठाकुर हैं; हितैषीके पाठकोंको जिनका विशेष परिचय करानेकी आवश्यकता नहीं। आप प्रकृतिके एकनिष्ठ सेवक हैं। प्रकृतिका अभ्यास करना, प्रकृतिसे शिक्षा लेना आप प्रत्येक व्यक्तिके लिए बहुत ही आवश्यक समझते हैं। भारतवर्षमें किस तरहकी शिक्षा लाभकारी होगी इस विषयमें आपने कई निबन्ध भी लिखे हैं जिनमेंसे कुछके अनुवाद हितैषीके पाठक पढ़ चुके हैं। उन्हीं शिक्षासम्बन्धी विचारोंको कार्यमें परिणत करनेके लिए आपने इस संस्थाको जन्म दिया है और इसका भार अपने सिरपर लिया है। अभी कुछ समय पहले आपको जो सवालाख रुपयेका बड़ा भारी पुरस्कार मिला था उसे आपने इसी संस्थाके लिए अर्पण कर दिया था। सुनते हैं अपनी बनाई हुई तमाम पुस्तकोंका कापी-राइट भी आपने इस आश्रमको ही दे दिया है।

आश्रममें इस समय १९० विद्यार्थी हैं। इनमें २० विद्यार्थी महात्मा गाँधीकी दक्षिण आफ्रिकाकी संस्थाके हैं। प्रायः सभी विद्यार्थी पेड रक्खे जाते हैं। प्रवेश फीस २०) नियत है और आगे १८) मासिक फीस देना पड़ती है। थोड़ा बहुत खर्च और भी होता है और इस तरह प्रत्येक विद्यार्थीके लिए २०) रु० मासिककी आवश्यकता है। यद्यपि यह खर्च अधिक जान पड़ता है परन्तु आश्रमके बहुव्ययसाध्य संचालनकी दृष्टिसे देखने पर यह कम ही मालूम होगा। साधारणतः दशवर्षसे अधिक उम्रके विद्यार्थी भरती नहीं किये जाते। सब विद्यार्थी एक दृष्टिसे देखे जाते हैं।

किसी अमीरका लड़का अधिक धन देने पर भी साधारण विद्यार्थी-की अपेक्षा अधिक आराम नहीं पा सकता है। आश्रमका मुख्य उद्देश्य बालकोंको धर्मात्मा, सच्चरित्र, कार्यक्षम, मजबूत और निडर बनाना है । यहाँ संस्कृत, बंगला, अँगरेज़ी, गणित, विज्ञान, इतिहास, भूगोल आदि विषय उत्तम शिक्षापद्धतिसे सिखलाये जाते हैं। विद्यार्थियोंको निरन्तर अध्यापकोंके साथ रहना पड़ता है। उनकी देखरेखके लिए प्रत्येक गृहमें काफी अध्यापक रक्खे गये हैं।

मैं आश्रममें तीन दिन तक रहा। मैंने न कभी किसी लड़केको इधर उधर व्यर्थ फिरते देखा और न कहीं कोई व्यर्थ गप्पें हाँकता हुआ ही दिखलाई दिया। विद्यार्थियोंको प्रत्येक काम करनेके लिए समय नियत है और तदनुसार वे कार्य भी करते हैं। इससे बहुत काम थोड़े ही समयमें आनन्दपूर्वक हो जाते हैं। उन्हें समयकी क़दर करना सिखलाया जाता है।

व्यायाम या कसरतका आश्रममें अच्छा प्रबन्ध है। दण्ड पेलना, बैठकें लगाना, कुश्ती लड़ना, दौड़ना, डबल बार करना आदि सब तरहकी कसरतें कराई जाती हैं। इससे विद्यार्थियोंका प्रत्येक अव-यव सुदृढ होकर शरीर गठीला और सुन्दर बनता है। व्यायामके सिवाय विद्यार्थी फुटबाल, क्रिकेट, हाकी, टेनिस आदि खेल भी खेलते हैं। यहाँकी फुटबाल-पार्टी वीरभूम जिलेमें सर्वोत्तम है। इसने कई जगहकी पार्टियोंसे मेच लेकर पुरस्कार पाया है।

प्रत्येक विद्यार्थीके लिए ध्यानोपासना करना आवश्यक है; परंतु इस विषयमें उन्हें पूर्ण स्वाधीनता है कि वे अपने मत या अपने

विश्वासके अनुसार अपने उपास्य देवकी आराधना करें। वे इस बातके लिए मजबूर नहीं किये जाते हैं कि तुम अमुक ही धर्मका पालन करो। आश्रमके संचालक कहते हैं कि "जिन भलाई बुराई-की बातोंका सम्बन्ध वर्तमान जीवनसे है उन्हींको बतला देना हम अपना कर्तव्य समझते हैं। पारलौकिक बातोंके लिए प्रत्येक व्यक्तिको अधिकार है कि वह उन्हें अपने माने हुए मत या बुद्धिके अनुसार चाहे जैसा माने। उसमें हस्तक्षेप करनेका हमें अधिकार नहीं।" हमारी जैनसंस्थाओंकी दशा ठीक इसके विपरीत है। हम तो प्रत्येक धार्मिक क्रिया छात्रोंकी इच्छाके विरुद्ध—बलात् करानेमें ही धर्म समझते हैं। यदि किसी छात्रने अपना कोई ऐसा विचार प्रगट कर दिया जो संचालकोंके विचारोंसे विरुद्ध है तो वह तत्काल ही अर्धचन्द्र देकर अलग कर दिया जाता है।

पाठ्य विषयोंमें गणित विज्ञान और ड्राइंगका पढ़ना प्रत्येक विद्यार्थीके लिए आवश्यक है। छट्ठी कक्षा तक कोई कोर्स नियत नहीं है; अध्यापक अपनी इच्छानुसार उत्तमोत्तम पुस्तकें चुनकर पढ़ाते रहते हैं। आगे बंगाल यूनीवर्सिटीके पठनक्रमके अनुसार मिडिल व एण्ट्रेंसकी पढ़ाई होती है।

गणित—इस विषयको प्रो० जगदानन्दराय मुख्याध्यापक पढ़ाते हैं।

विज्ञान—मि० पियरसन पढ़ाते हैं। आप अँगरेज हैं और आक्सफोर्ड यूनीवर्सिटीके एम. ए. तथा कैम्ब्रिज यूनीवर्सिटीके बी. एस. सी. हैं। श्रीयुत सन्तोषकुमार मजूमदार बी. एस. सी.

भी इसी विषयको पढ़ाते हैं। यहाँ सरकारी स्कूलोंकी अपेक्षा यह विशेषता है कि सब बातें बंगलाभाषामें प्रत्यक्ष दिखलाई और समझाई जाती हैं।

बंगला—श्रीयुत बाबू क्षितिमोहनसेन एम. ए पढ़ाते हैं।

इतिहास और भूगोल—इन दोनों विषयोंके अध्यापक श्रीयुक्त प्रमोदरञ्जनराय एम. ए. बी. टी. हैं। यहाँ ये विषय आम स्कूलोंकी तरह रटाये नहीं जाते हैं, किन्तु इनके पढ़ानेका जो वास्तविक फल है वही छात्रोंको प्राप्त कराया जाता है।

इंग्लिश—मि० एण्ड्रूज एम. ए. (अँगरेज), मि० पियरसन और बाबू नेपालचन्द्र राय बी. एल. पढ़ाते हैं। तीसरी कक्षा तकके लड़कोंको इस विषयकी कोई भी पुस्तक पढ़नेके लिए नहीं दी जाती है; मगर वे अपने काम चलाने योग्य अच्छी तरह बोल सकते हैं। कारण इसका यह है कि मास्टर लोग उनको नियत समय तक सिर्फ़ अँगरेज़ीमें ही बातचीत करना सिखलाते हैं। हाँ, अँगरेज़ी शब्दादि लिखना अवश्य ही सिखला दिया जाता है। इससे आगे प्रत्येकके लिए दो दो घण्टे नियत हैं। पहले घण्टेमें केवल ट्रान्सलेशन और कम्पोजीशन सिखलाया जाता है और दूसरेमें Fast reading अर्थात् शीघ्रतासे पढ़ना, साथ ही उसमें आये हुए शब्दोंके अर्थ व मुहाविरे भी बतलाये जाते हैं। अँगरेज़ीके वाक्योंका अपनी भाषामें शब्दशः अनुवाद नहीं करवाया जाता है केवल उनका भावार्थ पूछ लिया जाता है। इससे छात्रोंकी विवेचनाशक्ति बढ़ती है। वर्ष भरमें लड़के आठआठ दशदश

पुस्तकें पढ़ लेते हैं और इस तरह एण्ट्रेंस पास करने तक यहाँके छात्रोंकी अँगरेज़ी बहुत ही अच्छी हो जाती है; उच्चारण भी बहुत शुद्ध हो जाता है।

कृषिविद्या—मि० पियरसन और श्रीनगेन्द्रनाथ गांगुली बी. एस. सी. पढ़ाते हैं। यह विद्या क्रियाके द्वारा सिखलाई जाती है। लड़कोंने कुछ खेत भी बो रक्खे हैं जिनमें वे स्वयं कठोर परिश्रम करते हैं और अपने अनुभवको बढ़ाया करते हैं।

चित्रविद्या—बंगालके सुप्रसिद्ध चित्रकार श्रीयुक्त असित-कुमार हालदार इस विद्याके शिक्षक हैं। विद्यार्थियोंके बनाये हुए कई बढ़िया बढ़िया चित्र आश्रमकी शोभा बढ़ा रहे हैं।

संस्कृत—पं० भीमराव शास्त्री संस्कृतके शिक्षक हैं। इनके पढ़ानेका ढंग भी प्रायः अँगरेजीकी तरहका है। यहाँ शुरूसे संस्कृत-के कठोर व्याकरण नहीं रटाये जाते हैं।

जिस विद्यार्थीको गायन-वादनका शौक होता है या जो इस कलाके योग्य समझा जाता है उसे यह भी सिखलाया जाता है। उक्त शास्त्रीजी ही इस विषयके शिक्षक हैं।

यहाँकी भोजनशालामें आमिष भोजन सर्वथा निषिद्ध है। प्रातः-काल कलेवामें दूध और थोड़ी सी मिठाई दी जाती है। आजकल आश्रमकी गोशालामें दूध कम होता है, इस कारण वह सिर्फ़ शामके ही भोजनके साथ दिया जाता है। भोजनमें चावल, दाल और शाक मुख्य हैं। जो विद्यार्थी सिर्फ़ चावल खाकर नहीं रह सकते उनको रोटी भी मिलती है। जो विद्यार्थी सबके साथ एकत्र एक

पंक्तिमें बैठकर भोजन नहीं कर सकते हैं उनके लिए स्वतंत्र प्रबन्ध कर दिया जाता है। कई विद्यार्थी हाथसे भी भोजन बनाते हैं। गरज यह कि खानेपीनेके विषयमें किसी पर कोई दबाब नहीं डाला जाता है।

१२ बजे दिनसे लेकर २ बजे तक विश्रान्तिका समय है। इस समय बहुतसे विद्यार्थी बगीचेके पेड़ोंको सींचतें हैं, उनके बीचमें उगी हुई घासको हटा देते हैं और क्यारियोंको ठीक करते हैं। कई मस्त होकर गाते हैं और कई आनन्दसे खेलते कूदते धूम मचाते हैं। अभिप्राय यह कि इस समय वे सब तरहसे स्वतंत्र होते हैं; उनके आनन्दमें किसी तरहकी रुकावट नहीं डाली जाती है। हाँ, अध्यापकगण देखरेख अवश्य रखते हैं जिससे वे किसी तरहका अनुचित कार्य न कर सकें और न दिनमें सो सकें। दिनका सोना बहुत ही हानिकर है।

मौखिक शिक्षा—छोटे छोटे विद्यार्थियोंको चारित्रगठन करनेवाली अच्छी अच्छी मनोरंजक कथायें सुनाई जाती हैं और उनसे पूछा जाता है कि इस कथासे तुम क्या समझे। बड़ी उम्रके विद्यार्थियोंके सामने अध्यापक लोग किसी एक विषयको पेश करते हैं और उस पर उनकी राय माँगते हैं। इससे उनकी विचारशक्ति बढ़ती है। वे भले बुरेका निर्णय अपने आप करने लगते हैं और कार्य करनेका स्वतंत्र मार्ग निश्चय कर सकते हैं।

सारे विद्यार्थी आद्यविभाग, मध्यविभाग और शिशुविभाग ऐसे तीन विभागोंमें विभक्त हैं। प्रत्येक विभागमें देखरेख रखनेके लिए

क्षितिमोहनसेन, नेपालचन्द्रराय, और कालीमोहन घोष क्रमशः मुख्य संरक्षक हैं। इनके नीचे और भी कई देखरेख रखनेवाले हैं। हरएक विभागमें आवश्यकतानुसार कमरे हैं; जैसे शिशुविभागमें तीन कमरे हैं। हरएक कमरेमें एक एक मानीटर है। उन तीनों पर एक केप्टेन है। केप्टेन और मानीटरोंको लड़के अपने आप चुनते हैं और उनकी आज्ञामें रहते हैं। यदि कभी कोई लड़का कुछ अपराध कर बैठता है तो उनका केप्टेन उस लड़केको समझाकर उससे प्रायश्चित्त करवाता है। यदि वह केप्टेनसे नहीं मानता तो विद्यार्थियोंकी एक विचारसभा होती है। उनमेंसे एक न्यायाधीश चुना जाता है। फिर उस न्यायाधीशके सामने लड़का अपना निरपराधी होना साबित करता है, अथवा अपराध स्वीकार करता है और प्रायश्चित्त लेता है। यदि अपराधी होने पर भी वह अपना अपराध स्वीकार नहीं करता है, तो उसको सप्रमाण अपराधी साबित कर दण्ड दे दिया जाता है। इस काममें उनके संरक्षक लोग बहुत ही कम हस्तक्षेप करते हैं। यही हालत प्रत्येक विभागकी है।

यदि कभी एक विभागका विद्यार्थी दूसरे विभागके लड़केसे लड़ता है तो उसका न्याय करनेके लिए आश्रमकी प्रधान विचार-सभाकी विचारबैठक होती है। इस सभामें आश्रमभरके विद्यार्थी और मास्टर लोग मेम्बर हैं। इसमें भी विद्यार्थी ही न्यायाधीश चुना जाता है और उक्त प्रकारसे अपराधियोंका विचार होकर प्रायश्चित्त या दण्डविधान होता है।

उक्त प्रथासे विद्यार्थियोंके कोमल हृदय निर्मल और पवित्र हो जाते हैं। उनको अपने दुष्कृत्यों और सुकृत्योंकी जाँच करना आजाता है।

क्योंकि जो बात सोच समझकर की जाती है, उसका असर चिरकाल तक रहता है। उसको यह मालूम हो जाता है कि अमुक कार्य बुरा होता है, उससे अमुक बुराई होती है, मैंने यह बुरा किया, इसलिए अब मैं कोई ऐसी बात करूँ जिससे सदा इसकी बुराई मेरे ध्यानमें रहे, ताकि दुबारा यह कार्य न कर सकूँ। इस बुराई-को ध्यानमें रखनेके लिए जो शारीरिक या मानसिक वेदना सहन की जाती है उसे प्रायश्चित्त कहते हैं। हमारे शास्त्रकारोंने भी हमारे दुष्कृत्योंका प्रायश्चित्त लेनेकी आज्ञा दी है। आलोचनापाठ इसी आज्ञाका फल है। इससे हमें मानसिक वेदना होती है। अगले जमानेमें मुनियोंके संघमें भी यही प्रथा प्रचलित थी जिसके सैकड़ों उदाहरण हमारे शास्त्रोंमें मिलते हैं।

इसके प्रतिकूल विद्यार्थियोंको दण्ड देनेकी जो रीति अन्यान्य संस्थाओंमें प्रचलित है वह सर्वथा अनुचित है। क्योंकि उसमें विद्यार्थियोंको बहुत ही कम खयाल होता है कि यह ताड़ना हमारी भलाईके लिए हो रही है। बल्कि उसका उल्टा नतीजा होता है। लड़कोंकी आत्मायें दिनोंदिन मलिन होती जाती हैं। ईर्प्या भाव और क्रोध वृद्धिंगत होता जाता है और उसका यहाँतक परिणाम होता है कि कभी कभी लड़के बड़े बड़े भयङ्कर और घृणित कार्य कर बैठते हैं।

शिक्षाका उद्देश्य यह है कि उससे विद्यार्थियोंके हृदयमें मानव-जातिके प्रति सच्ची सहानुभूति, वास्तविक प्रेम और प्राणी मात्रकी भलाईकी लालसा उत्पन्न हो और समय पड़ने पर वे उसको आचरणमें

लावें। यही शिक्षा आश्रमके विद्यार्थियोंके दिलोंमें मौजूद है। ये अभीसे ही अपने तन मन और धनसे गरीबों और दुखियोंकी सहायता करते हैं। लड़कोंने आश्रमसे आध मीलके फासले पर एक पाठशाला बनाई है। उसमें सैंथाल जातिके असभ्य जंगली लड़के पढ़ते हैं। अध्यापनका कार्य स्वयं लड़के ही संध्याको अपने खेलके समय जाकर करते हैं। पुस्तकें व पढ़ने लिखने आदिका सामान भी आश्रमके विद्यार्थी चन्दा करके उक्त पाठशालामें पढ़ने आनेवाले लड़कोंको देते हैं। इससे पाठक विचार सकते हैं कि उनके हृदयमें अपने मूर्ख दुखी भाइयोंको विद्या पढ़ाकर सुखी करनेकी कितनी तीव्र इच्छा है—सुखी बनानेकी कितनी जबर्दस्त लालसा है।

दैनिक पत्र—आश्रमसे प्रतिदिन एक दैनिकपत्र निकलता है। इसका सम्पादन विद्यार्थी स्वयं ही करते हैं। इसमें सिर्फ आश्रमसम्बन्धी समाचार निकलते हैं। कागजके एक ओर समाचार लिखकर वह कागज़ बोर्ड पर चिपका दिया जाता है।

वर्ष भरमें आश्रम ३ महीने बन्द रहता है; विद्यार्थियोंको छुट्टी दे दी जाती है। आषाढ़ महीनेके पहले पक्षमें और पूजाकी छुट्टीके बाद १५ दिन तक, इस तरह वर्षमें दोबार विद्यार्थी भरती किये जाते हैं। रोगी विद्यार्थियोंकी सेवाशुश्रूषाके लिए एक वैद्य और दो परिचर्या करनेवाले नियुक्त हैं। रोगी छात्रोंके लिए एक पृथक् हास्पिटल बना हुआ है।

इस आश्रममें ठाठवाटका एक तरहसे अभाव है। संचालकोंका सादगी पर और मितव्ययता पर बहुत ध्यान रहता है। छात्रोंकी

रहन सहन बहुत ही सादी है। खुले दिनोंमें छात्रगण वृक्षोंके नीचे बैठकर विद्याध्ययन किया करते हैं!

अब मैं इनकी एक जीती जागती सहानुभूतिका उदाहरण देकर अपने इस लेखको पूरा करूँगा।

ता० १७ फरवरीकी रात्रिको चारों ओर अँधियारी छाई हुई थी। घड़ीमें करीब १२ बजे होंगे। सारे विद्यार्थी निद्रा देवीकी गोदमें आराम कर रहे थे। मैं भी एक तख्ते पर सोता हुआ नींदका मजा ले रहा था। इसी समय अचानक बड़े जोरसे घण्टा बजा। मैं उठकर बाहिर आया; मगर मुझे कुछ दिखाई न दिया। थोड़ी ही देरमें मेरे कानोंमें वन, टू, थ्री आदि गिनतीकी आवाज आई। मैं उस आवाजकी तरफ बढ़ा। इस आवाज तक पहुँचने भी न पाया था कि दूसरी आवाज आई Right turn, March on Quick march। मैं आगे बढ़ कर क्या देखता हूँ कि लगभग १०० लड़के हाथोंमें मटके लिए भागे जा रहे हैं। मालूम हुआ कि ये विद्यार्थी बोलपुरमें एक जगह आग लग गई है उसे बुझानेके लिए जा रहे हैं। वाह कैसी आचरणीय शिक्षा है! कैसी व्यवहृत सहानुभूति है! इन्होंने दूसरोंकी भलाईके लिए न शीतकी परवा की, और न नींदके भंग होनेका ही खयाल किया। पाठक! क्या आपमेंसे कोई भी अपने सीने पर हाथ धर कर बता सकता है कि जगत्का कल्याण करनेको आत्मोत्सर्ग करनेवाले, प्राणी मात्रको शान्ति पहुँचाने और बड़ेसे बड़े जीवको लेकर छोटेसे छोटे पौधेमें रहनेवाले जीव तककी रक्षाका पाठ सिखानेवाले गुरुओंका अनुसरण

करनेके लिए स्थापित हुई हमारी धार्मिक संस्थाओंमेंसे क्या किसी एक भी संस्थाके लड़कोंने दुःखसे छटपटाते हुए अपने भाइयोंको सहारा देकर बचाया है ?

यदि कोई व्यक्ति आश्रम देखने या अन्य किसी हेतुसे जाता है तो विद्यार्थी उसकी बड़ी मेहमानवाज़ी करते हैं, बड़ी ही नम्रता व प्रेमसे उससे वार्तालाप करते हैं जिससे उसका मन बड़ा ही प्रसन्न होता है और वह यही चाहता है कि इस आश्रमके लड़कोंकी तन मन और धनसे सेवा करें।

आश्रमका यह बहुत ही संक्षिप्त परिचय है। जो महाशय इस विषयमें अधिक जानना चाहें वे श्रीयुक्त बाबू जगदानन्दरायसे पत्रव्यवहार करें।

कृष्णलालवर्मा।

नोट—क्या ही अच्छा हो यदि हमारे जैनसमाजके भी चार छह लड़के इस आश्रममें जाकर रहें और विद्याध्ययन करें। आश्रममें ऐसी कोई बात नहीं है जिससे जैनविद्यार्थी वहाँ न रहसकें। उनके चरित्रमें और भोजनपानादिमें किसी तरहकी हीनता नहीं आसकती। उनके विश्वास भी वहाँ सुरक्षित रहेंगे। यदि धर्नी सज्जन दोचार वृत्तियाँ नियत करदें तो अनेक असमर्थ विद्यार्थी वहाँ जानेके लिए तैयार हो सकते हैं। यह जानकर पाठक प्रसन्न होंगे कि श्रीयुत पं० अर्जुनलालजी सेठी बी. ए. के पुत्र चिरंजीवि प्रकाशचन्द्र उक्त आश्रममें भरती होगये हैं।

सम्पादक।

विचारशक्ति ।

" Strive with thy thoughts unclean before they over power thee, for if thou sparest them, and they take root and grow, know well those thoughts will overpower and kill thee. "

" *Voice of the Silence* "

अर्थात्–" हे मानव ! इसके पहले कि तेरे अधम विचार तुझ पर जय पालेवें तू उनका साम्हना कर । यदि तू उन्हें छोड़ देगा और वे जड़ पकड़कर बढ़ जावेंगे तो याद रख कि ये ही विचार तुझे वशमें कर लेंगे और मार डालेंगे । "

भविष्य जीवनकी स्थितिका आधार जिन जिन कारणों पर है उनमें ' विचार ' भी एक मुख्य कारण है। कहा है कि,–**मन एव मनुष्याणां कारणं बंधमोक्षयोः**–अर्थात् मन ही मनुष्योंके लिए बंध और मोक्षका कारण है । ' मनुष्य ' शब्द संस्कृत मन धातुसे बना है जिसका अर्थ ' विचार करना ' है । अर्थात् जो प्राणी विचार कर सकता है उसे मनुष्य कहते हैं। मनुष्यकी विचारशक्ति ही उसे पशुसे उच्च स्थितिमें स्थापित करती है । यदि मनुष्यमें विचारशक्ति न हो तो पशुमें और उसमें कुछ भी अंतर नहीं। मनुष्यका चारित्र-गठन विचारोंके अनुसार ही होता है। पश्चिमीय साइन्स तथा पूर्वीय धर्मग्रंथ एक स्वरसे इस बातको प्रतिपादन करते हैं कि मनुष्य अपने कार्योंके अनुसार नहीं, किन्तु विचारोंके अनुसार बनाता है।

मनुष्यके विचारोंसे ही उसका वास्तविक स्वरूप जाना जाता है और उसकी भविष्यरचनामें उसके विचारोंको ही महत्त्वका स्थान

मिलता है। मनुष्यकी वासनाओंको उत्तेजन देनेवाले और संयममें रखनेवाले उसके विचार ही हैं। कारण, मानसिकशरीर वासना-शरीरकी अपेक्षा अधिक सूक्ष्म और उच्च होता है। इतना ही नहीं किन्तु कार्यवाहक स्थूल शरीरसे जिसे हम देखते हैं वह और भी सूक्ष्म और उच्च है।

तुम्हारे विचारों पर तुम्हारे मित्रोंका भी आधार है। तुम अपने चारों ओर दृष्टि फेरो और देखो कि तुम्हारे मित्र किस किस प्रकारके हैं। ऐसा करनेसे भूतकालमें तुमने जो जो विचार किये हैं तुम्हें उनका स्मरण अधिकतासे हो सकता है।

यदि तुम्हारे मित्र सुंदरता शुद्धता और सत्यताको पसंद करनेवाले हों तो समझ लो कि अतीत कालमें तुमने अत्यंत सुन्दर शुद्ध और सत्य विचार किये हैं। इसमें बिलकुल संदेह नहीं। यदि तुम्हारा सम्बन्ध सदा ऐसे मनुष्योंसे रहता हो कि जिन्हें ठट्टा मसखरी करनेकी ही आदत पड़ी हुई है अथवा जिनके प्रत्येक शब्दमें या मुखकी आकृतिमें दिल्लगीकी ही आभा दीख पड़ती है तो इससे यह बात सिद्ध होती है कि भूतकालमें तुमने इसी प्रकारके विचारोंको उत्तेजन दिया है कि जिससे एक महत्त्वके नियमानुसार वैसे ही पुरुषोंका तुम्हारी ओर सहजमें आकर्षण हुआ है। वह महत्त्वका नियम हमें शिक्षा देता है कि—**समान स्वभाववालोंका परस्परमें आकर्षण होता है।** यद्यपि तुम इस समय वैसी आदतसे रहित हो और कदाचित वैसी हँसी दिल्लगीको बुरा भी समझते हो तो भी पूर्वके विचारबलके कारण तुम ऐसी परिस्थितिमें आपड़े हो। इस वास्ते इसका उत्तरदायित्व तुम्हारे ऊपर है।

विचारशक्तिमें लोह-चुम्बक सदृश एक महान् सिद्धान्त समाया हुआ है। उसे मैं यहाँ स्पष्ट कर देता हूँ। कल्पना करो कि एक मनुष्य अच्छा शिक्षित है और वह अच्छे घरानेका है। किसीने उसकी बिना कारण निंदा की और अनुचित रूपमें उसका अपमान और बदनाम किया; परन्तु उसकी ऐसी स्थिति नहीं कि वह अपनी निर्दोषता प्रगट कर सके। वह एक प्रतिष्ठित कुलका और समझदार है इसलिए अपनी निंदा करनेवाले शत्रुके पास जाकर न उसे वह थप्पड़ जमा सकता है, न जबाब दे सकता है और न गालियाँ सुना सकता है। इससे वह चुप हो रहता है। इस अवस्थामें यद्यपि वह बाहरसे शान्त दीख पड़ता है; परन्तु वास्तवमें उसके अंतरंगमें वैरके विचार उठा करते हैं।

ऐसे ऐसे दुष्ट विचारोंमें कि—बुरा हो उस दुश्मनका—उसका मन फँसा ही रहता है। इतना ही नहीं किन्तु मेरा शत्रु दुःख भोग रहा है, उसका अपमान हो रहा है, उसे अच्छा दण्ड मिल रहा है इत्यादि कल्पना उठा-उठाकर वह अपनेको सुखी समझता है। यद्यपि प्रगटमें वह बोलता नहीं तथापि जो विचार उसके दिलमें उठ रहे हैं अथवा जो निर्दयताके चित्र वह अपने दिलमें खींच रहा है उनका बुरा असर हुए बिना नहीं रहता। विचारशक्ति एक महत्त्वकी चीज़ है। उसे हम मनरूपी द्रव्यकी बनी हुई एक मानसिक आकृति कह सकते हैं। वे विचाररूपी आकृतियाँ विचार करनेवाले मनुष्यके मस्तकमेंसे सीधी उस मनुष्यकी ओर शीघ्रतासे जाती हैं कि जिसके विषयमें विचार किये गये हों और

वे उसे पूर्वकी अपेक्षा अधिक असत्यवादी अन्यायी नीच और निंद्य बनाती हैं। पर इतनेहीसे उन विचारोंके परिणामका अन्त नहीं आता। जिस मनुष्यके पास वे विचार जाते हैं, उसका मस्तक स्वयं बुरे विचारोंसे भरा हुआ रहता है। इस कारण दूसरेके भेजे हुए सब विचारोंके वास्ते उसके मस्तिष्कमें स्थान ही नहीं रहता। इसीसे वे विचार उसे पूर्वकी अपेक्षा अधिक नीच बनाते हैं और जगत्में घूमा करते हैं। वे विचार ऐसे दीख पड़ते हैं मानो कोई क्रोधी पुरुष उन्हें ग्रहण करनेका पात्र हो और उनकी राह देखता हो। घृणा और ईर्षासे भरे हुए ये विचार लाल और कालेरंगके भयंकर राक्षसोंकी आकृतिमें दीख पड़ते हैं और चहुँओर घूमते रहते हैं। जो मनुष्य अशिक्षित या क्रोधके वशीभूत हो, जिस पर जुल्म किया गया हो तथा जिसके दिलमें वैर लेनेकी इच्छा उठती हो उस अभागी मनुष्यके पास वे विचार शीघ्रतासे जाते हैं और उसे खून करनेके लिए उत्तेजित करते हैं। इसके बाद वह एकदम तेजीसे आता है और अपने प्रतिपक्षी मनुष्यका खून कर डालता है। पृथ्वी पर इस खूनके बदले उसे फाँसीकी सजा दी जाती है।

जिस शरीरने कि उसका खून किया वह शरीर चाहे फाँसी पर लटका दिया जाय, चाहे कैदमें डाला जाय अथवा और किसी प्रकारसे नष्ट कर दिया जाय; परन्तु वास्तवमें उसकी अपेक्षा वह शिक्षित पुरुष कि जिसने घातकी और वैरके विचार जगत्में फैलाये हैं अधिक दंडनीय है। कारण कि निरक्षर और अशिक्षित पुरुषकी अपेक्षा पढ़े लिखे शिक्षित मनुष्यकी विचारशक्ति विशेष बलवती हुआ

करती है। इस वास्ते खराब विचारोंका प्रचार करनेवाला भी उस खूनका अधिकतासे जबाबदार है। अतएव उन अधम विचारोंके फैलानेमे खूनकी उत्तेजना देनेवाले उस दुष्टको भी इस भवमें किसी न किसी प्रकारका बदला अवश्य मिलना चाहिए। यदि ऐसा न हुआ तो उसे भवान्तरमें खूनके विचारोंके परिपाक स्वरूप कटुक फल भोगने ही होंगे। चाहे करोड़ों वर्ष बीत जायँ परतु किये हुए कार्यका नाश नहीं होता; अर्थात् जैसे शुभाशुभ कर्म हमने किये हैं उनका फल हमें भोगना ही पड़ता है। जिन मनुष्यों पर हम विचारों द्वारा असर पहुँचाते हैं वे हमारे पास मित्र या शत्रुरूपमें आते हैं। कदाचित् एक भवमें हम उनके साथ उत्पन्न न होवें तो भी दूसरे भवमें हमारा उनका साथ अवश्य होगा। यह बात सच है कि जिन मनुष्यों पर हमारे विचारोंका असर पड़ा है उनका हमसे जल्दी या धीरे अवश्य समागम होगा। एक विद्वानका कथन है:—Have mastery over thy thoughts. O, Strive for perfection· अर्थात् अपने विचारोंको अपने आधीन रक्खो और कार्यकी पूर्ण सिद्धिके लिए प्रयत्न किये जाओ।

दुष्ट विचारोंका परिणाम कैसा कटुक होता है यह हम ऊपर कह आये हैं। अब, विचारशक्तिका किस प्रकारसे सदुपयोग हो सकता है इस मनोहर चित्रकी ओर पाठकोंका ध्यान आकर्षण किया जाता है। जो शिक्षा हमें मिलती है उसका यदि हम व्यवहारमें उपयोग कर सकते हों तो उस शिक्षाकी सार्थकता है। हमें उचित है कि उपदेशके अनुसार अपना बर्ताव करें। यदि खराब विचारोंसे खराब

मनुष्योंका हमारी ओर आकर्षण होता है तो, अच्छे विचारोंसे अच्छे मनुष्योंका झुकाव हमारी ओर अवश्य होना चाहिए। यह हमारे अधिकारकी बात है। जैसे विचारवाले मित्र और साथियोंकी चाहना हम करते हों वैसे ही विचारोंकी उत्पत्ति और पुष्टि हमारे अन्तःकरणमें होनी चाहिए। इस प्रयत्नसे शीघ्र या धीरे हमें वैसे मित्रों या साथियोंका समागम प्राप्त हो सकेगा।

जिन्हें यह बात सुननेका प्रथम ही मौका मिला है उन्हें अपूर्व आनंद होना चाहिए। कई मनुष्य अपने काममें दिनभर इतने लीन रहा करते हैं कि उन्हें मित्रोंसे मिलने या उत्तमोत्तम पुस्तकें बाँचनेको समय ही नहीं मिलता। दिनभरके कामसे उन्हें रात्रिसमय इतनी बेचैनी रहती है कि उस समय अभ्यास करने, मीटिंगमें जाने या मित्रोंसे बातचीत करनेको भी उन्हें क्वचित् ही फुरसत मिलती हो।

यदि दिनभरके लिए एक विचार पसंद करनेके वास्ते मनुष्य प्रातःकाल सिर्फ पाँच मिनिट व्यतीत करे और उस समय सचाई, दया, शांति, परोपकार, धैर्य, साहस इत्यादिमेंसे किसी एक सद्गुणका दृढ चित्तसे विचार करे और दिनके समय जब कभी उसे फुरसत मिले वह उसी सद्गुणका विशेषतासे विचार किया करे तो शीघ्र या बिलंबसे वे मनुष्य उसके पास आके उससे मित्रता करेंगे कि जिनके विचार उससे मिलते हुए हैं। इसके लिए उसे दूसरे जन्मतक राह देखते रहना न पड़ेगा। इसी भवमें एक या दो महिनेमें या अधिक हुआ तो एक या दो वर्षमें वैसे विचारवाले मनुष्य

अवश्य तुम्हारे पास आवेंगे कि जिनके विचार तुम्हारे सदृश हैं, शर्त यह है कि तबतक तुम अपने विचार दृढ बनाये रहो।

विचारशक्तिके प्रभावसे जो काम हो सकता है उसका यह एक छोटासा हिस्सा है। याद रक्खो कि विचार एक सच्ची चीज़ है। प्रथम प्रत्येक विचार मनुष्यके चित्तमें उत्पन्न होता है पश्चात् उसकी वृद्धि होती जाती है। जगत्की महाशक्तिके तुल्य हमारे विचारमें भी उत्पादक शक्ति है। यद्यपि इस समय वह शक्ति कमज़ोर मालूम होती है परन्तु वैसी शक्ति है अवश्य। हम शक्तिके अनुसार शुभाशुभ विचारकी आकृतियाँ उत्पन्न करते हैं और उसी रूपमें दूसरोंको सहायता पहुँचाते या कष्ट देते हैं।

रोगी मनुष्य जो बिस्तर परसे या कुरसी परसे उठनेमें अशक्त होते हैं प्रायः चिड़चिड़ाया करते हैं और इस जगत्में उनके जीवनका कुछ भी उपयोग नहीं—इस विचारसे दुखी होते रहते हैं। परन्तु यदि उनमें शुभ और दृढ विचार करनेकी शक्ति हो तो वे भी अपने तन्दुरुस्त मित्रोंके सदृश दूसरोंको मदद पहुँचा सकते हैं।

इस स्थल पर इस नियमका प्रगट करना आवश्यक है कि यदि कोई एक विचार प्रतिदिन किसी खास समय पर किसी खास स्थानमें दीर्घकाल पर्यंत दृढताके साथ किया जाय तो उसका हम पर इधर उधर दौड़कर सख्त परिश्रम करनेकी अपेक्षा अधिक स्थायी असर पड़ेगा। कई मनुष्योंका कथन है कि जगत्के लेखक और विचारकर्तागण कोई भी काम नहीं करते; कारण कि वे शरीरसे काम नहीं लेते और कोई बड़ा व्यापार नहीं चलाते। परन्तु यह कथन ठीक नहीं। कारण, विचार ही तो कार्यका करनेवाला है।

इस धरातल पर कार्यकर्तागण अपने विचारानुसार काम करते हैं या उन पुरुषोंके विचारों पर अमल करते हैं कि जिन्हें विचारार्थ बहुत अवकाश मिला करता है। स्वयं विचार करनेमें ये प्रायः अशक्त हुआ करते हैं। संसारमें ऐसे भी अनेक मनुष्य हैं जो कि काम तो नहीं कर सकते; परन्तु विचार करते रहनेमें ही जिनका अधिकांश समय व्यतीत होता है।

जो आत्मविद्याके उपासक हैं उन्हें उचित है कि दोनों काम करें। भावार्थ–हमारा कर्तव्य है कि उत्तमोत्तम विचार किया करें और उन्हें अमलमें लानेके लिए भी सदा तत्पर रहें। अपने विचारोंके विषयमें हमें बड़ी सावधानी रखनी चाहिए। यद्यपि प्रत्येक धर्म हमें इसी प्रकार आदेश करता है; परन्तु विरला ही धर्म इस बातको प्रगट करता है कि किस प्रकारसे वह काम करना इष्ट है। अतएव मैं आपका ध्यान इस बात पर आकर्षण करता हूँ कि हम अपने विचारोंके लिए कितने जबाबदार हैं और इन विचारोंसे हम कितना काम कर सकते हैं।

जो मनुष्य, गुप्त ज्ञानके अभ्यासी होते हैं वे अच्छी तरह जानते हैं कि विचार किसी न किसी आकृतिमें होते हैं। मानसिक भवनकी प्रकृतिमेंसे अपने विचारके अनुसार भिन्न भिन्न रंगकी आकृतियाँ बनती हैं। (इस स्थल पर यह प्रगट करना आवश्यक है कि एक समय ऐसा था कि जब कोई मनुष्य साधारण जनताके विश्वासोंके विरुद्ध विचार दरसाता था तो उसे दूसरे मनुष्य अनेक प्रकारसे हैरान करते, जेलखानेमें डालते और कभी कभी तो उसे

जीता जला डालते थे। ऐसे विचार प्रगट करनेवालेको कड़ीसे कड़ी सजा हुए बिना न रहती थी; परन्तु आजकल सौभाग्यवश मनुष्योंके विचारका प्रवाह बदल गया है।) इस विषयकी पुस्तकें भी प्रकाशित होने लग गई हैं। ऐसी सचित्र पुस्तकें भी निकली हैं कि जिनमें यह बात बतलाई गई है कि नाना विचार और मनोभावनाओंसे किस किस प्रकारके रंगबिरंगे आकर बनते हैं और मनुष्योंके सूक्ष्म शरीरोंमें किस किसप्रकारका फेरफार होता है।

अपने विचारोंकी आकृतियाँ अपने सूक्ष्म शरीरमेंसे निकलकर दूर जाती हैं और दूसरे लोगों पर असर डालती हैं– उसी प्रकारसे दूसरे मनुष्योंके विचारोंकी आकृतियाँ भी हम पर असर डालती हैं। इस ज्ञानके द्वारा हम इस बातका भी विचार कर सकते हैं कि अपनी जातिवालोंको तथा दूसरोंको किस प्रकार सहायता पहुँचाई जाय। चाहे जैसा मनुष्य हो, उसमें कुछ न कुछ अच्छी बात होनी ही चाहिए। इसीसे यदि हम उस मनुष्यके प्रति प्रेम सहायता और कल्याणरूप विचार प्रगट करें तो कभी न कभी वे विचार उसके हृदयमें प्रवेश किये बिना न रहेंगे। ऐसा कोई भी मनुष्य नहीं जो सदा ही क्रोधी लोभी या कंजूस रहता हो। तब कोई दिन ऐसा भी आवेगा कि अपना शुभप्रेमरूपी विचार उसके हृदयमें प्रवेश करेगा और उसके सद्गुण बीजको पुष्ट करेगा। अतः शुभ विचार प्रगट करनेवालेको भविष्यमें एक मित्र मिलेगा और पुण्य बंध होगा।

एक छोटेसे ग्राम शहर या देशकी चहुँओर जो विचारोंकी आकृतियोंके बादल छाये रहते हैं उनका भी क्या तुमने कभी

विचार किया है? यदि न किया हो तो आज ही करो। विचारनेसे तुम्हें मालूम हो जायगा कि समग्र ग्रामके मनुष्य जिस कामको खराब समझते हैं उस कार्यको करना किसी भी मनुष्यके लिये कठिन क्यों होता है। यह बात सहज ही तुम्हारी समझमें आ जायगी। दूसरे मनुष्योंके विचार अपने सूक्ष्म शरीरसे सदा टकराते, मनमें घुसते और कुछ न कुछ असर करके बाहिर निकलते हैं। यही सबब है कि एक मनुष्यके लिए स्वतंत्र विचार करना कठिन होता है। इसी कारण हमारे लिए वैसे काम करना भी कठिन होता है कि जिन्हें दूसरे लोग खराब समझते हैं, परन्तु जिन्हें हम अच्छे समझते हैं।

संसारमें जो मनुष्य सभ्य कहाते हैं वे भी इस विषयमें बड़ी भूल करते हैं और दूसरोंके प्रति अत्यंत घातक वर्ताव करते हैं। वे दूसरोंमें जो दूषण देखते हैं उन्हें सदा ही विचारा करते हैं और समझते हैं कि वे मनुष्य अपनी भूल सुधार ही नहीं सकते अथवा भूलको दूर ही नहीं कर सकते। ऐसा करनेमें वे उनके दूषणोंको बढ़ाते रहते हैं और उन्हें दूर करनेमें विघ्न डाला करते हैं।

कई निर्दोष पुरुष ऐसे हैं कि जिनके माथे कलंक लगा हुआ है और जिन्हें दूसरोंके विचारोंको सुनकर बहुत दुःख सहना पड़ता है। कारण यह है कि उनके विषयमें दूसरे कुछ भी नहीं जानते। वे सिर्फ सुनते हैं कि अमुक कारणसे अमुक स्त्री या पुरुष दोषके पात्र हैं और यह बात सच समझकर वे उस बेचारेको धिक्कारा करते हैं।

जिस प्रकार यह सत्य है उसी प्रकार इससे विरुद्ध बात भी सत्य है (?) इस वास्ते हमें उचित है कि प्रत्येक मनुष्यमें जो बात अच्छी हो उसे देखनेकी आदत डालें और जब अवकाश मिले उस गुणका विचार किया करें। इतना ही नहीं किन्तु हमें मनमें सदा इस तरहके चित्रकी कल्पना करते रहना चाहिए कि वह सद्गुण उस मनुष्यमें धीरे धीरे बढ़ता जा रहा है और उसके जीवन पर अच्छा असर डाल रहा है। ऐसे कल्पित चित्रसे और इस प्रकार दूसरोंके शुभगुणोंका मनन करते रहनेसे हम अपने मित्रोंको शत्रुओंको (वास्तवमें तो अपना कोई शत्रु है ही नहीं) तथा सर्वसाधारणको सहायता पहुँचा सकते हैं और इसी मार्गसे हम अपने भविष्यके जीवनके लिए हजारों मित्र और साथी बना सकते हैं। *

अनुवादकः—

बुधमल पाटणी, इंदौर।

करनी और कथनीसुन्दरी।

कथनी करें सब कोई, करनी अति दुर्लभ होई। कथनी०।
शुक रामको नाम बखानै, नहिं परमारथ तसु जानै;
या विधि भनि वेद सुनावै, पर अकल-कला नहिं पावै ॥क०॥१॥
छत्तीस प्रकार रसोई, मुख गिनतहिं तृप्ति न होई;
शिशु नाम नाहिं तसु लेवै, रस स्वादत सुख अति वेवै ॥क०॥२॥
बन्दी जन कडखा गावै, सुनि सूरा सीस कटावै;
जब रुंड मुंड ता भासै, सब आगे चारण नासै ॥ क० ॥ ३ ॥

---

* जैनहितेच्छु, मास जून १९१० ई०, अंक छट्ठेसे अनुवादित।

कथनी तो जगत मजूरी, करनी है बंदी हजूरी,
कथनी शक्कर सम मीठी, करनी अति लगै अनीठी ॥ क० ॥ ४ ॥
जब करनीका घर पावै, कथनी तब गिनती आवै;
अब 'चिदानन्द' इम जोई, करनीकी सेज रहे सोई ॥ क० ॥ ५ ॥

—चिदानन्द ।

लीजिए, चिदानन्दजी महाराजने तो करनी कामिनीकी सेज पसन्द कर ली ! बेचारी कथनी सुन्दरी पतिवियोगसे व्याकुल होने लगी और सेज सँवारकर परीक्षा करने लगी; परन्तु जब कोई चाहे तब ही न कोई उसकी राह लगे ! बहुत समय तक–बहुत वर्षों तक–राह देख देख कर–वियोगातपमें सन्तप्त हो होकर उसने अपने रूपको मिट्टीमें मिला दिया; आशा नहीं रही कि कभी कोई भूला भटका भी उस राह आ निकलेगा । परन्तु एक बार घूरेके दिन भी फिरते हैं । वीर भगवान्की २५ वीं शताब्दिमें कथनी-सुन्दरीको एककी जगह अनेक आशक आ मिले ! जिस तरह इस वाचाल स्त्रीकी जीभके लिए शब्दोंकी कमी नहीं उसी तरह उसकी सेजके लिए अब आशकोंका भी टोटा नहीं रहा । एकाध आशकका स्थान खाली हुआ कि दूसरे सैकड़ों उम्मेदवारोंकी भीड़ तैयार है ।

बन्देकी एक बार इच्छा हुई कि कथनीसुन्दरीके आशकोंकी गिनती कर डालूँ—उनका नाम, उम्र, व्यापार, पहलेकी और पीछे-की स्थिति आदि सब बातोंका उल्लेख करनेवाली 'डिरैक्टरी' बना डालूँ । परन्तु बन्दा थोड़े ही समयमें निराश हो गया और इस तरहका प्रयास करना छोड़ बैठा । कारण, एक तो आशकोंकी संख्या लिखना ही कठिन और फिर प्रत्येकके व्यापारादिका इतिहास

लिखना तो साक्षात् सरस्वतीके लिए भी कठिन! कोई पहले व्यभिचारी, कोकेनखोर, आबारा था, पीछे जैनसमाजमें ढोंगकी पूजा देखकर ब्रह्मचारी बन गया और अब कुछ पढ़े लिखोंको फुसलाकर उनकी शिफारिशसे ऐश्वर्यशाली भट्टारक बनकर पुज रहा है! इधर ब्रह्मचर्यका उपदेश देता है और उधर 'मेरी भक्ति और गुरुकी शक्ति' से सन्तानवृद्धिके कार्यमें सहायता करता है! 'कोई नारि मुई घर संपति नासी, मूड़ मुड़ाय भये संन्यासी' के अनुसार ब्रह्मचारी क्षुल्लक ऐलक आदिके विविध वेष बनाकर चारों उँगली घीमें तर रखते हैं और भोले भक्तोंसे रुपये ऐंठकर अपने कुटुम्बको सहायता पहुँचाते हैं। कोई परम समयसारी अध्यात्मी बनकर शुद्ध आत्मस्वरूपका उपदेश दिया करता है, मूर्खोंसे पैर पुजवाता है और न्यायशास्त्र पढ़नेके बहाने काशी जाकर अपनी चेलियोंको कृतार्थ करता है! कोई शुद्धाम्नायियोंका पण्डितशिरोमणि बनकर प्रतिष्ठायें करवाता है, प्रतिमाओंको पास करनेकी दलाली खाता है, माँगकर धमकाकर —येन केन प्रकारेण हजारों रुपयोंका हाथ करता है और नीचसे नीच काम करनेसे भी बाज़ नहीं आता है। कोई मूर्खसमाजको नदी, पहाड़, देश, पत्थर, मिट्टी, चूल्हा, चक्कीके नाम सुनाकर रिझाताहै और बुढ़ापेमें भी जवानीका शृंगार और नजाकत बनाकर अपने पुराने पुण्यकर्मोंकी याद दिलाता है। कोई समाजका लीडर बनता है और किसी नगरनारिका घर पवित्र करते समय जूते खाकर भागता है। इस तरहके अनेक आशक कथनीसुन्दरीको इस २९ वी शताब्दिमें मिल रहे हैं जिससे उसके घरका द्वार सदा खुला रहता है और सेज सजी हुई रहती है।

उधर चिदानन्दजीकी परिणीता पत्नी करनीसुन्दरीकी ओर कोई आँख उठाकर भी नहीं देख सकता है। क्योंकि सतीके एक ही पति रहता है। पापीजन उसकी इच्छा भी नहीं कर सकते हैं। इस समय चिदानन्दजीका स्थूल या औदारिक शरीर इस लोकसे कूच कर गया है और उनकी प्रेयसी भी उनके पीछे 'सती' हो हो गई है।

अब तो कोई वीरजननी फिर दूसरी 'करनी' को जन्म दे, पालन पोषण करके बड़ी करे और उसे वैराग्यमें न पड़ने देकर किसी पतिकी धर्मपत्नी बनावे, तब कहीं काम चले। तब तक जो कुछ होता है सो देखा कीजिए और मीठी मिठाई सदृश कथनीसे मनकी मुरादें पूरी किया कीजिए। बोलो श्रीमती कथनी सुन्दरकी जय ! अखण्ड सौभाग्यवती कथनी देवीकी जय ! देवीके आशकोंकी जय ! निन्दकोंकी क्षय !

(जैनसमाचारसे कुछ परिवर्तन करके ।)

श्रीमत्पैसापुराण ।

अथ उत्तरपुराणम् ।

(१)

**आयुर्वृद्धिर्यशोवृद्धिर्वृद्धिः प्रज्ञासुखश्रियाम् ।
धर्मसन्तानवृद्धिश्च धर्मात्सप्तापि वृद्धयः ॥**

अर्थात्—आयुकी वृद्धि, यशकी वृद्धि, विद्याकी वृद्धि, लक्ष्मीकी वृद्धि, धर्म और सन्तानकी वृद्धि, ये सब वृद्धियाँ एक धर्मकी वृद्धिसे

होती हैं । गरज यह कि लक्ष्मीकी वृद्धि भी धर्मसे ही होती है । आश्चर्यकी बात है ! कंजूस चाचा, चेतो ! चटपट धर्मका आचरण करो ! नहीं तो याद रक्खो इकट्ठी की हुई लक्ष्मी भी चली जायगी ! लक्ष्मीका देनेवाला एक धर्म है और धर्मकी पहली सीढ़ी दान है । लीजिए, सारा शहर घूमकर, आये आखिर ठिकानेके ठिकाने !

(२)

धर्मः कल्पद्रुमो लोके धर्मश्चिन्तामणिर्नृणाम् ।
धर्मः कामदुधा धेनुः धर्मः किं वाक्षयो निधिः ॥

अर्थात् धर्म ही कल्पद्रुम है, धर्म ही चिन्तामणि रत्न है, धर्म ही कामधेनु है और धर्म ही अटूट खजाना है ।

यह सुनकर कि 'धर्म अटूट खजाना है' 'नादिहन्द' या कंजूस चाचाओंके मुँहमेंसे लार छूटती होगी ! धर्म नामकी मुफ्ती चीजसे यदि अटूट खजाना मिलता है तो फिर और क्या चाहिए ? परन्तु लोभी बनियोंके गुरु भी बड़े बने हुए हैं ! उन्होंने धर्मके भीतर ही सारा खजाना दबा दिया और उस धर्मकी खान खोदनेके लिए फावड़ा महँगे मूल्यका बनाया ! इस फावड़ेका नाम ही 'दान'— 'स्वार्थत्याग'—'परिग्रहकी ममताका त्याग' है !

(३)

बल्लाल नामका कवि कह गया है:—

यद्ददाति यदश्नाति तदेव धनिनां धनम् ।
अन्ये मृतस्य क्रीडन्ति दारैरपि धनैरपि ॥

जो दिया गया और जो खाया पिया गया वही धनियोंका धन

है। धनियोंकी मृत्युके बाद तो उनके धनसे और उनकी स्त्रियोंसे दूसरे लोग क्रीड़ा करते हैं, मौज उड़ाते हैं।

भाई कविराज, तुमने गजबकी बात कह दी! ऐसा 'कडुआ सत्य' कहकर तुम धनियों पर चोट करते हो और उनका 'डफेमेशन' करते हो! जान पड़ता है कि इस तरहकी सलाह देनेवाले बैरिस्टर लोग तुम्हारे जमानेमें मौजूद न थे!

भला तुमने यह बात भी साफ़ साफ़ क्यों न बतला दी कि वे भोगनेवाले दूसरे लोग कौन होते हैं? ट्रस्टी (पंच)? साले? जवान विधवाके नौकर? या और कोई साहब? तुम्हारे सारे ग्रन्थका अथसे इति तक पाठ कर जाने पर भी इस प्रश्नका उत्तर नहीं मिला। शायद तुम्हें उस समय इस बातका ज्ञान न होगा; परन्तु अब तो तुम देवपर्यायमें हो! अच्छा तो अब अपने अवधिज्ञानके बलसे जानकर बतला दो कि धनियोंके धनसे और स्त्रियोंसे 'दूसरे' कौन क्रीडा करते हैं? बता दो भैया! दो चार श्लोक और भेज दो बिना तारके तारद्वारा!

(४)

वही कवि और भी कह गया है कि:—

न दातुं नोपभोक्तुं च शक्नोति कृपणः श्रियम्।
किन्तु स्पृशति हस्तेन नपुंसक इव स्त्रियम्॥

कृपण लोग अपनी लक्ष्मी न किसीको दे सकते हैं और न स्वयं भोग ही सकते हैं; केवल उसके ऊपर, एक नपुंसक या नामर्दके समान हाथ फेरा करते हैं।

(५)

मूर्खो नहि ददात्यर्थं नरो दारिद्र्यशङ्कया ।
प्राज्ञस्तु वितरत्यर्थं नरो दारिद्र्यशङ्कया ॥

मूर्ख मनुष्य इस लिए दान नहीं करता है कि कहीं इससे मैं दरिद्र न हो जाऊँ और बुद्धिमान् ठीक इसी ढङ्गसे—मैं दरिद्र न हो जाऊँ इस शङ्कासे—दान करता है—अपना धन दूसरोंके उपकारमें लगाता है ।

मूर्खमें और समझदारमें सिर्फ इतना ही अन्तर है ! केवल समझका फेर है ! मूर्ख समझता है कि यदि दूँगा तो खर्च हो जायगा और मुझे दरिद्र बनना पड़ेगा । समझदार सोचता है कि धनकी चाहे जितनी रक्षा की जावे; वह एक न एक दिन तो हाथसे निकल ही जायगा । तो जब मैं गरीब हो जाऊँगा तब क्या कर लूँगा ? उस समय मेरे काममें भी कौन आवेगा ? इस लिए जब तक यह धन है तब तक तो दान करके 'वाहवाही' लूट लूँ ।

(६)

आगतानामपूर्णानां पूर्णानामपि गच्छताम् ।
यदध्वनि संघट्टो घटानां तत् सरोवरम् ॥

श्रेष्ठ सर या तालाब वही है कि जिसके मार्गमें खाली आते हुए और भरकर जाते हुए घड़ाओंकी भीड़ लगी रहती है । श्रेष्ठ धनी भी वही है जिसके द्वारपर दान पाकर जाते हुए और दान लेनेके लिए आते हुए पात्रोंकी भीड़ लगी रहती है—जहाँसे कोई निराश होकर नहीं जाता है ।

नोट—लोभी पुरुषोंको उनके खजानेकी कसम है कि वे इस लेखको न पढ़ें और न दूसरोंको पढ़ने दें ।

(जैनसमाचारसे)

पुस्तक-परिचय ।

हिन्दूजाति मर रही है—लेखक, श्रीयुक्त माँगीलालजी पाटणी और प्रकाशक, श्रीयुक्त ब्रजमोहनलालजी वर्मा छिन्दवाड़ा (सी. पी.) । मूल्य दो आना । यह डाक्टर यू. एन. मुकर्जीके एक अँगरेजी निबन्धका हिन्दी अनुवाद है । निबन्ध प्रधानतः बंगालप्रान्तको लक्ष्य करके लिखा गया है, तो भी इसमें सारे देशके हिन्दुओंकी दशाका अनुमान होसकता है । इसमें बतलाया गया है कि हिन्दुओंकी संख्या बराबर घट रही है । सन् १८७२ में मनुष्यगणनाके अनुसार बंगालमें हिन्दुओंकी संख्या १ करोड़ ७१ लाख और मुसलमानोंकी संख्या १ करोड़ ६७ लाख थी, अर्थात् मुसलमान हिन्दुओंसे ४ लाख कम थे; परन्तु आगे मुसलमान बढ़ते गये और हिन्दू उनसे कम होते गये । सन् १९०१ में जो मनुष्यगणना हुई उसमें मुसलमानोंकी संख्या २ करोड़ २० लाख हो गई और हिन्दुओंकी संख्या केवल १ करोड़ ९४ लाख हुई ! अर्थात् केवल ३० वर्षमें मुसलमान हिन्दुओंसे २६ लाख अधिक हो गये । यह बड़ी ही चिन्ताका विषय है; परन्तु कट्टर हिन्दुओंका ध्यान इस ओर नहीं है । मुसलमान और ईसाई यहाँ पर बराबर बढ़ते जा रहे हैं । इसका कारण यह है कि प्रतिवर्ष लाखों हिन्दू ईसाई और मुसलमान होते जाते हैं । क्योंकि हिन्दुओंकी वर्तमान सामाजिक पद्धति परस्पर प्रेम करना नहीं किन्तु घृणा करना सिखलाती है और इस कारण नीचजातिके हिन्दुओंको

हिन्दू बने रहनेकी अपेक्षा मुसलमान ईसाई आदि बन जानेमें बहुत सुख और प्रतिष्ठाकी प्राप्ति होती है। जिस 'नमः शूद्र'का हम आज स्पर्श नहीं कर सकते हैं कल उसके ईसाई बन जाने पर हम उससे प्रेमके साथ सेकहेन्ड करने लगते हैं। दूसरा कारण यह है कि अहिन्दुओंमें विवाह बड़ी उम्रमें होते हैं जिससे उनमें बलवान् और दीर्घजीवी सन्तान उत्पन्न होती है। तीसरे, उनमें विधवाविवाह जायज है और इस कारण उनमें विधवाओंकी संख्या कम रहती है। बंगालमें हिन्दुओंमें फी सदी ४८ विधवायें हैं परन्तु मुसलमानोंमें ३८ ही हैं। चौथा कारण हिन्दुओंकी शारीरिक निर्बलता है। नीच जातिके हिन्दुओंमें शराब, गांजा, चंडू आदिका प्रचार बहुत ही ज्यादा है परन्तु मुसलमानोंमें यह बहुत ही कम है। मुसलमानोंमें पारस्परिक प्रेम और धर्मप्रेम भी हिन्दुओंकी अपेक्षा बहुत अधिक हैं। इत्यादि और भी अनेक कारण हिन्दुओंकी समीपवर्ती मृत्युके विषयमें बतलाये गये हैं, जो हिन्दुओंके समान जैनोंके भी विचारने योग्य हैं। क्योंकि जैन भी हिन्दुओंके ही अन्तर्गत हैं। लेखकने अस्पृश्य जातियोंको ऊपर उठानेके लिए—उनकी गिरी हुई दशा सुधारनेके लिए बहुत जोर दिया है और कहा है कि इसके बिना हिन्दू जाति मौतके पंजेसे बच नहीं सकती।

मोक्षमार्गनिरूपण—यह २६ पृष्ठकी छोटीसी पुस्तिका सागर हाईस्कूलके रिटायर्ड और सेठ तिलोकचन्द जैन हाईस्कूलके वर्तमान हेडमास्टर राय साहब नानकचन्दजी बी. ए. की लिखी हुई है। हाईस्कूलके धार्मिक पठनक्रमकी पूर्तिके लिए इसकी

रचना हुई है । 'इसमें कर्मोंके क्षयका तथा शुद्ध दर्शन ज्ञान चारित्रके प्राप्त होनेका उपाय संक्षेप रूपमें वर्णन किया गया है।' भाषा यथेष्ट सरल और शुद्ध है । इस विषयको विद्यार्थी बिना कष्टके समझ लेंगे। हम आशा करते हैं कि राय साहब इस तरहकी और भी दो चार पुस्तकोंको निर्माण करके विद्यार्थियोंका उपकार करनेकी कृपा करेंगे। पुस्तक पर मूल्य नहीं लिखा।

जैनप्रभात—इन्दौरके सेठोंकी कृपासे मालवा प्रान्तिकसभा कुछ दिनोंसे खूब चेत गई है । बहुत दिनोंसे विचार करते करते अब उसने इस नामका एक मासिकपत्र भी निकालना शुरू कर दिया है। इसके सम्पादक हैं हरदानिवासी बाबू सूरजमलजी जैन। वार्षिक मूल्य १।) है। दूसरा अंक हमारे सामने उपस्थित है। यह उसका विशेष अक है । इसमें हितैषीके आकारके ११२ पृष्ठ हैं । बाबू सूरजमलजीके विचार उदार और समयकी गतिके अनुसार जान पड़ते हैं। यदि प्रान्तिकसभाके धर्मात्मा संचालकोंको कट्टरताने न बहकाया तो आशा की जाती है कि आपके द्वारा इस पत्रकी अच्छी उन्नति होगी और समाजकी यह खासी सेवा करेगा। लेखशैली अच्छी है । एक दो जगह सम्पादकने बड़ी निर्भीकतासे कलम चलाई है। जैनसमाजके गण्यमान्य पण्डित न्यायदिवाकर पन्नालालजीकी जो घृणित पोल खोली गई है उसे उक्त पण्डितजी जीवनभर स्मरण रक्खेंगे। खेद है कि ऐसे (प्रभातके शब्दोंमें) स्वार्थी छली, कपटी, क्रोधी, निर्लज्ज लोग भी मूर्ख जैनसमाजमें पूजे जाते हैं और समाजमें सदसद्विवेक बुद्धिका प्रवाह बहानेवाले दूसरे

जिनेन्द्र-पंचकल्याणक मंगल—लेखक और प्रकाशक, कुन्दनलाल जैन, चन्दाबाड़ी, गिरगाँव, बम्बई । मूल्य तीन आना । पाँडे रूपचन्द्रजीके बनाये हुए पंचमंगलका जैनसमाजमें सर्वत्र ही प्रचार है; परन्तु अभीतक इसकी कोई टीका प्रकाशित न हुई थी और इसकी कविता प्राचीन हिन्दीमें है, इस कारण इसका मर्म समझनेमें बहुत कठिनाई होती थी । अब इस टीकासे उक्त कठिनाई बहुत कुछ दूर हो जायगी । यह खास करके विद्यार्थियोंके लिए बनाई गई है । इसमें पहले पद्य, फिर उसके कठिन शब्दोंका अर्थ, फिर भावार्थ दिया गया है । इसके बाद प्रश्नावली दी है । प्रत्येक मंगलके अन्तमें उस मंगलका तात्पर्य भी दे दिया गया है । इसके तैयार करनेमें लेखकने अच्छा परिश्रम किया है । छपाई सुन्दर है ।

पद्यपुष्पाञ्जलि—प्रकाशक, बाबू नारायणप्रसाद अरोड़ा बी. ए. पटकापुर, कानपुर । मूल्य ६ आने । पं० लोचनप्रसादजी पाण्डेय हिन्दीके अच्छे कवि हैं । आपकी कवितायें हिन्दीके सामयिक पत्रोंमें अकसर प्रकाशित हुआ करती हैं । इस पुस्तकमें आपकी ४२ कविताओंका संग्रह है । इस संग्रहमें भूमिकालेखक स्वर्गीय राय देवीप्रसादजी (पूर्ण) के शब्दोंमें "अनेक पद्योंसे देशहितका ललित राग गाया गया है, ईश्वरकी प्रार्थना देशभक्तिके भावसे परिपूरित है, गोजातिकी अवस्थापर करुणाका प्रकाश किया गया है, दुर्भिक्ष और दरिद्रताके सताये दीन भारतवासियोंके प्रति आर्द्र हृदयसे सहानुभूति दरसाई गई है, देशवासियोंकी अस्वस्थता पर भी विचार किया गया है, 'चीनी' सम्बन्धी पद्योंमें स्वदेशीकी

भी पूरी झलक है; शिक्षा, हिन्दू विश्वविद्यालय, शिवाजी, हिन्दी, राष्ट्रभाषा, इत्यादि लेखों द्वारा विविध प्रकारसे पाठकोंका मनोरंजन किया गया है और देशसेवा और उन्नति-उद्योगका उपदेश दिया गया है। " छपाई अच्छी है।

जर्मनीके विधाता—ऊपरकी पुस्तकके प्रकाशक ही इसके प्रकाशक हैं। जिन लोगोंके उद्योग और अध्यवसायसे जर्मनी संसारके पहली श्रेणीके राज्योंमें गिना जाने लगा है और जिनके कारण वह वर्तमान महाभारतमें प्रवृत्त हुआ है, उन २४ पुरुषोंके संक्षिप्त चरित इस पुस्तकमें संगृहीत हैं। वर्तमान युद्धकी गति समझनेमें यह पुस्तक बहुत काम देगी। मूल्य चार आने।

सार्वजनिक हित—इस पुस्तकके दूसरे और तीसरे दो भाग हमें प्राप्त हुए हैं। इसके लेखक श्रीयुत मुनि माणिकजी हैं। आप श्वेताम्बर साधु हैं। आपके हृदयमें सार्वजनिक हितकी वासना बहुत प्रबल है। धार्मिक झगड़ों और वितण्डावादोंको छोड़कर आप निरन्तर इसी प्रयत्नमें रहते हैं कि जैन अजैन सबका हित कैसे हो। बहुत कम साधु आपके ढंगपर काम करनेवाले हैं। आपके उद्योगसे यू. पी. में अनेक पुस्तकालय खुल गये हैं। दिगम्बर, श्वेताम्बर, वैष्णव आदि सभीको आप उपदेश दिया करते हैं। अभी अभी आपने कई पुस्तकें छपाकर अपने विचारोंका प्रचार करना शुरू कर दिया है। पुस्तकें सब सस्ते मूल्यपर बेची और बाँटी जाती हैं। इस पुस्तकमें प्रश्न और उत्तरके रूपमें आपने सैकड़ों हितकी बातें सरलताके साथ लिखी हैं जिनसे सभी लोग लाभ उठा सकते

हैं । लेखकका जो उद्देश्य है—उसके लिहाज़से इसमें जो भाषादिके कुछ दोष हैं उन पर विचार करनेकी आवश्यकता नहीं जान पड़ती । दोनों भाग दो दो आनेमें आत्मलब्धिपब्लिक जैन लायब्रेरी, मेरठको पत्र लिखनेसे मिल सकते हैं ।

समाधिशतक—आचार्य पूज्यपादका समाधिशतक एक प्रसिद्ध ग्रन्थ है । यद्यपि यह केवल १०० अनुष्टुप् श्लोकोंका है; परन्तु है बहुत महत्त्वका । इसका गुजराती अनुवाद बड़ोदानरेशकी कृपासे प्रकाशित हो चुका है । सुनते हैं वह बड़ोदाके स्कूलोंमें भी जारी है । अँगरेजी अनुवाद स्वर्गीय मणिलाल नभूभाई द्विवेदीने किया था । एक मराठी अनुवाद भी छप चुका है । हिन्दीमें अभी तक इसका एक भी अनुवाद प्रकाशित न हुआ था, यह देखकर पूर्वोक्त मुनि माणिकजीने इसे हिन्दी भावार्थसहित प्रकाशित किया है । लेखक यद्यपि श्वेताम्बर सम्प्रदायके हैं तथापि वे लिखते हैं कि 'यह आत्महित चिन्तकोंके लिए अपूर्वग्रन्थ है । इसमें मन स्थिर करनेकी अमृत औषधि भव्यात्माओंके लिए रक्खी गई है । ऐसे ग्रन्थोंकी लाखों प्रतियाँ छपवाकर वितरण करानेकी आवश्यकता है । ' मूल्य तीन आना ।

वीर्यरक्षा या व्यभिचारकी रोक—लेखक, सेठ जवाहरलाल जैनी, सिकन्दराबाद (बुलन्दशहर) । जिन जिन रीति रवाजोंसे, जिन जिन कारणोंसे और जिन जिन संस्कारोंसे स्त्री पुरुषोंमें व्यभिचारकी वृद्धि होती है, लड़की लड़के दुराचारी हो जाते हैं, उन सब बातों पर इस पुस्तकमें खूब विस्तारके साथ विचार किया गया

है । भाषामें अनेक त्रुटियाँ होनेपर भी वह पढ़नेवालों पर प्रभाव डालनेवाली है । लेखकके हृदयपर समाजकी दुर्दशाकी चोट है, इसकी साक्षी पुस्तकमें जगह जगह मिलती है । पुस्तक परोपकारके लिए ही लिखी भी गई है । लगभग १४० पृष्ठकी पुस्तकका मूल्य तीन आना बहुत कम है । ऐसी पुस्तकोंका जितना अधिक प्रचार हो उतना ही अच्छा । ब्याहशादियोंके मौकों पर तो इस पुस्तककी दो दो सौ चार चार सौ प्रतियाँ अवश्य बाँटी जानी चाहिए ।

पुस्तकका नाम ठीक नहीं रक्खा गया । इससे तो 'शीलसंरक्षा' नाम ही अच्छा होता । लेखकके कई विचारोंसे हम सहमत नहीं । जैसे स्त्रियाँ यावनी भाषाओंके पढ़नेसे दुराचारिणी हो जाती हैं । किसी भाषाके पढ़नेसे कोई दुराचारी नहीं होता । बुरी पुस्तकें अवश्य ही चरित्रको बिगाड़ देती हैं; पर उनकी अँगरेज़ी उर्दू फारसीके समान हिन्दी संस्कृत प्राकृतमें भी कमी नहीं है ।

सर जोशुआ रेनाल्ड—यह मनोरंजन हिन्दी ग्रन्थमाला ग्वालियरकी नवीं पुस्तक है । इसके लेखक बाबू नत्थाबराय हैं । इसमें इंग्लेंडके प्रसिद्ध चित्रकार रेनाल्डका संक्षिप्त चरित और चित्रविद्यासम्बन्धी छोटा सा निबन्ध है । रेनाल्ड एक गरीब पादरीका लड़का था । उसने स्वावलम्बनके बल पर किस तरह चित्र बनाना सीखा और अन्तमें वह किस तरह नामी चित्रकार बन गया, यह जाननेके लिए और चित्रविद्या सम्बन्धी मोटी मोटी बातोंकी जानकारीके लिए यह पुस्तक अवश्य पढ़ना चाहिए । ८० पृष्ठकी पुस्तकका दाम पाँच आना अधिक है । मिलनेका पता—गोपाल कृष्णमण्डली, लश्कर, ग्वालियर ।

इतिहास-प्रसङ्ग।

(गताङ्कसे आगे)

चिंतामणि—चिन्तामणि काव्य।

मल्लिषेण प्रशस्तिमें चिन्तामणि काव्यके प्रणेता चिन्तामणि मुनिका उल्लेख मिलता है:—

धर्मार्थकामपरिनिर्वृतिचारुचिन्त-
श्चिन्तामणिः प्रतिनिकेतमकारि येन।
स स्तूयते सरससौख्यभुजा सुजात-
श्चिन्तामणिर्मुनिवृषा न कथं जनेन॥

एक जगह और लिखा है—

कृत्वा चिन्तामणिं काव्यमभीष्टार्थसमर्थनम्।
चिन्तामणिरभून्नाम्ना भव्यचिन्तामणिर्गुरुः॥

एक विद्वान्का कथन है कि यह 'चिन्तामणि काव्य' तामिल भाषाका ग्रन्थ है और तामिल साहित्यमें बहुत ही प्रसिद्ध है। यह मालूम नहीं हुआ कि इसके निर्माण होनेका समय क्या है।

श्रीवर्धदेव—चूड़ामणि काव्य।

चूड़ामणिः कवीनां चूड़ामणिसंव्यकाव्यकविः।
श्रीवर्धदेव एव हि कृतपुण्यः कीर्तिमाहर्तुम्॥

मल्लिषेणप्रशस्तिके इस श्लोकसे मालूम होता है कि श्रीवर्धदेव कवि कवियोंके चूड़ामणि थे और उन्होंने चूड़ामणि नामका काव्य बनाया था। इनकी प्रशंसामें प्रसिद्ध संस्कृत कवि दण्डीने कहा था:—

जह्नोः कन्यां जटाग्रेण बभार परमेश्वरः ।
श्रीवर्धदेव संधत्से जिह्वाग्रेण सरस्वतीम् ॥

अर्थात् महादेवजीने जटाओंके अग्रभागमें गंगाको धारण किया और श्रीवर्धदेवने जिह्वाके अग्रभागमें सरस्वती (एक नदीका भी नाम है) को धारण किया !

इससे ये महाकवि दण्डीके समकालीन जान पड़ते हैं । इनको तुम्बुलूराचार्य भी कहते हैं । क्योंकि ये तुम्बुलूर ग्रामके रहनेवाले थे । ये सिद्धान्तग्रन्थोंके टीकाकार भी हैं ।

आर्यदेव—कोई सिद्धान्तग्रन्थ ।

आचार्यवर्यो यतिरार्यदेवो राद्धान्तकर्त्ता ध्रियतां स मूर्ध्नि ।
यः स्वर्गयानोत्सवसीम्नि कायोत्सर्गस्थितः कायमुदुत्ससर्ज ।

आर्यदेव किसी सिद्धान्तग्रन्थके कर्त्ता थे । उन्होंने कायोत्सर्ग धारण किये हुए ही शरीर छोड़ दिया था ।

अनन्तकीर्ति—जीवसिद्धि और सर्वज्ञसिद्धि ।

वादिराजसूरिने अपने पार्श्वनाथचरितके प्रारंभमें लिखा है:–

आत्मनैवाद्वितीयेन जीवसिद्धिं निबध्नता ।
अनन्तकीर्तिना मुक्तिमार्गो × × वलक्ष्यते ॥

इससे मालूम होता है कि अनन्तकीर्तिका बनाया हुआ कोई जीवसिद्धि[1] नामका ग्रन्थ है । एक सर्वज्ञसिद्धि[2] नामका ग्रन्थ भी

---

१ जीवसिद्धि नामका एक ग्रन्थ स्वामिसमन्तभद्रका भी बनाया हुआ है । जिसका उल्लेख हरिवंशपुराणकी भूमिकामें मिलता है ।

२ सर्वज्ञसिद्धिमें एक जगह कालिदास और उनके कुमारसंभव काव्यका उल्लेख है ।

आपका बनाया हुआ है जिसके देखनेका सौभाग्य हमें पं० कलापा भरमापा निटवेकी कृपासे प्राप्त हुआ है। इस ग्रंथके एक प्रकरणके अन्तमें लिखा है:—

समस्तभुवनव्यापि यशसानन्तकीर्तिना।
कृतेयमुज्ज्वला सिद्धिर्धर्मज्ञस्य निरर्गला॥

अनन्तकीर्ति बहुत प्रसिद्ध और कीर्तिशाली नैयायिक जान पड़ते हैं। ये प्राचीन भी हैं। कमसे कम वादिराजसूरिसे—जो शककी दशवीं शताब्दिके विद्वान् हैं— पहलेके हैं।

वीरसेन—सिद्धिभूपद्धति।

वीरसेनस्वामीके विजयधवलटीकाके सिवाय एक 'सिद्धि-भूपद्धति' नामक ग्रन्थका उल्लेख गुणभद्रस्वामीने उत्तरपुराणमें किया है:—

सिद्धिभूपद्धतिर्यस्य टीकां संवीक्ष्य भिक्षुभिः।
टीक्यते हेलयान्येषां विषमापि पदे पदे॥

महासेन—सुलोचनाकथा।

हरिवंशपुराणकी भूमिकामें जिनसेन कवि महासेनकी सुलोचना कथाका इस प्रकार स्तुतिपाठ करते हैं:—

महासेनस्य मधुरा शीलालङ्कारधारिणी।
कथा न वर्णिता केन वनितेव सुलोचना॥

ये आचार्य हरिवंशकर्ता जिनसेनसे प्राचीन हैं। अन्यत्र कहीं इस कथाका उल्लेख नहीं देखा। अप्राप्य भी है।

रविषेणाचार्य—वरांगचरित।

उक्त पुराणमें ही पद्मपुराणके कर्ता रविषेणके वरांगचरित नामक ग्रन्थका उल्लेख किया है:—

वरांगनेव सर्वांगैर्वरांगचरितार्थवाक् ।
कस्य नोत्पादयेद् गाढमनुरागं स्वगोचरम् ॥

वरांगचरित प्राप्य नहीं है ।

(१३)

शिवकोटि, शिवायन और समन्तभद्र ।

आदिपुराणके कर्त्ताके निम्नलिखित श्लोकसे मालूम होता है कि भगवती आराधनाके कर्ता शिवकोटिमुनि थे:—

शीतीभूतं जगद्यस्य वाचाराध्यचतुष्टयम् ।
मोक्षमार्गं स पायान्नः शिवकोटिमुनीश्वरः ॥

परन्तु, भगवतीआराधनाकी प्रशस्तिकी निम्न गाथाओंसे मालूम होता है कि उसे शिवार्य नामक आचार्यने रचा है:—

अज्ज जिणणंदि गणि सव्वगुत्त गणि अज्जमित्तणंदीणं ।
अवगमिय पादमूलं सम्मं सुत्तं च अत्थं च ॥
पुव्वायरियणिवद्धा उपजीवित्ता इमा ससत्तीए ।
आराधणा सिवज्जेण पाणिदलभोजिणा रइदा ॥

अर्थात् आर्य जिननन्दि गणि, आर्य सर्वगुप्तगणि और आर्य मित्रनन्दिके चरणोंके समीप बैठकर और भले प्रकार सूत्र और अर्थको समझकर, पाणिपात्रभोजी शिवार्यने, अपनी शक्तिके अनुसार इस ग्रन्थकी रचना की ।

इससे जान पड़ता है कि शिवार्यका ही दूसरा नाम शिवकोटि होगा जिसका कि उल्लेख जिनसेन स्वामीने किया है और शायद शिवायन भी शिवार्यका ही एक रूप हो । परन्तु विक्रान्तकौरवीय नाटकके कर्त्ता—" शिष्यौ तदीयौ शिवकोटिनामा शिवायनः शास्त्र-

विदां वरिष्ठौ " आदि पद्यसे शिवायन और शिवकोटिको जुदा जुदा बतलाते हैं । उधर आराधनाकथाकोशमें समन्तभद्रकी जो कथा है उसमें शिवकोटिको एक राजा बतलाया है और उसका समन्तभद्रके द्वारा जैनधर्ममें दीक्षित होना लिखा है । परन्तु इसमें हमें सन्देह है । कारण शिवकोटि अपने ग्रन्थमें कहीं भी समन्तभद्रका उल्लेख नहीं करते हैं, बल्कि इनसे भिन्न जिननन्दिगणि आदि और ही आचार्योंको अपना गुरु बतलाते हैं । यह संभव नहीं कि जैनधर्मका लाभ करानेवाले समन्तभद्रको वे ग्रन्थ रचते समय सर्वथा ही भूल जायँ । इस विषयमें विद्वानोंको विचार करना चाहिए । हमारी समझमें शिवकोटि, शिवार्य और शिवायन एक ही हैं और वे संभवतः समन्तभद्रसे भी १००–२०० वर्ष पहलेके हैं ।

(१४)

शाकटायनके कर्ता कौन थे ।

कुछ समय पहले प्रो० पाठकने एक लेखमें यह सिद्ध करनेका प्रयत्न किया था कि शाकटायन व्याकरणके कर्त्ता श्वेताम्बरजैन थे । इस बातका उल्लेख उस समय जैनहितैषीमें भी कर दिया गया था । अब जुलाईकी सरस्वतीमें श्रीयुत मुनि जिनविजयजी नामके श्वेताम्बर साधु कहते हैं कि शाकटायन दिगम्बर थे, श्वेताम्बर नहीं ।

मलयगिरि नामके एक आचार्य श्वेताम्बरसम्प्रदायमें बहुत प्रसिद्ध हो गये हैं । उन्होंने अनेक ग्रन्थ रचे हैं । नन्दिसूत्र नामक आगमकी टीकामें वे एक जगह लिखते हैं—

“ शाकटायनोऽपि यापनीययतिग्रामाग्रणीः स्वोपज्ञशब्दानुशासन-वृत्तावादौ भगवतः स्तुतिमेवमाह” । (नन्दिसूत्र पृष्ठ २३, कलकत्ता)।

लेखक महाशय इससे दो बातें सिद्ध करते हैं, एक तो यह कि शाकटायन दिगम्बर थे । क्योंकि यापनीय संघ दिगम्बरसंघोंमेंसे एक है जिसका उल्लेख इंद्रनन्दिने अपने नीतिसारमें किया है और शाकटायन इसी संघके आचार्य थे। दूसरी यह कि देवसेनसूरिने द्राविड़ संघकी उत्पत्ति विक्रमकी मृत्युके ५२६ वर्ष बाद बतलाई है और नीतिसारके अनुसार यापनीय संघ द्राविड़संघसे पीछे हुआ है। अतः शाकटायन ५२६ से पीछे किसी समय हुए हैं। प्रो० पाठक इन्हें जो राजा अमोघवर्षके समयमें बतलाते हैं सो ठीक जान पड़ता है।

इस विषयमें हमारा निवेदन यह है कि जब तक इस बातका अच्छी तरह निश्चय न हो जाय कि यापनीय संघ या सम्प्रदायके सिद्धान्त क्या हैं, उसके सिद्धान्तोंमें और दिगम्बर श्वेताम्बरके सिद्धान्तोंमें क्या अन्तर है तब तक उन्हें दिगम्बर श्वेताम्बरकी अपेक्षा यापनीय कहना ही अधिक युक्तियुक्त जान पड़ता है। नीतिसारमें इन्द्रनन्दिने यापनीय संघको श्वेताम्बरके ही समान पृथक् सम्प्रदाय माना है और उसे पाँच जैनाभासोंमें गिनाया है। यद्यपि उन्होंने काष्ठासंघको भी जैनाभास ही बतलाया है जो बहुत ही सूक्ष्म–नहींके बराबर–मतभेद रखता है, इसलिए हम इसे भी वैसा समझ सकते थे, परन्तु दर्शनसारके कर्त्ता देवसेनके कथनानुसार यह संघ श्रीकलश नामके श्वेताम्बरसे चला है । इससे सन्देह है कि शायद इसके सिद्धान्त दिगम्बरकी अपेक्षा श्वेताम्बर सम्प्रदायसे अधिक मिलते-जुलते हों ।

कल्लाणे वरणयरे सत्तसए पंच उत्तरे जादे ।
जावणियसंघभावो सिरिकलसादो हु सेवडदो ॥ ३० ॥

अर्थात् विक्रमकी मृत्युके ७०५ वर्ष बाद कल्याण नगरमें श्रीकलश नामक सेवड या श्वेताम्बरसे यापनीयसंघकी उत्पत्ति हुई। इससे यह भी निश्चय हो जाता है कि शाकटायन विक्रम-मृत्युके ७०५ वर्षबाद किसी समयमें हुए हैं। लेखकके अनुमानकी अपेक्षा यह समय लगभग दो सौ वर्ष पीछे और भी हट कर राजा अमोघवर्षके समीप—जिसके स्मरणार्थ शाकटायनकी टीका अमोघवृत्ति बनी है—पहुँच जाता है।

(१५)

पाल्यकीर्ति कौन थे ?

पार्श्वनाथकाव्यकी उत्थानिकामें कवि वादिराजसूरिने लिखा है:—

कुतस्त्या तस्य सा शक्तिः पाल्यकीर्तेर्महौजसः ।
श्रीपदश्रवणं यस्य शाब्दिकान्कुरुते जनान् ॥

अर्थात् उस महातेजस्वी पाल्यकीर्तिकी शक्तिका क्या वर्णन किया जाय कि जिसके श्रीपदके सुनते ही लोग शाब्दिक या व्याकरणज्ञ हो जाते हैं।

इससे मालूम होता है कि पाल्यकीर्ति कोई बड़े भारी वैयाकरण थे; परन्तु उनके विषयमें हम कुछ भी नहीं जानते हैं। अब शाकटायनप्रक्रियाके मंगलाचरणको और देखिए:—

मुनीन्द्रमभिवन्द्याहं पाल्यकीर्तिं जिनेश्वरम् ॥
मन्दबुद्ध्यनुरोधेन प्रक्रियासंग्रहं ब्रुवे ॥

इसमें सन्देह नहीं कि यहाँ 'पाल्यकीर्ति' जिनेश्वरके विशेषण रूपमें आया है, परन्तु इसे कोरा विशेषण ही न समझना चाहिए। यह वास्तवमें उस वैयाकरणका नाम भी है जिसका स्मरण वादिराजसूरिने किया है और मुनीन्द्र तथा जिनेश्वर (जिनदेव जिसका ईश्वर है) ये उसके सुघटित विशेषण हैं।

हमारा अनुमान है कि यह शाकटायनका ही वास्तविक नाम होगा। यह बहुत संभव जान पड़ता है कि पाल्यकीर्ति बड़े भारी वैयाकरण थे और वैयाकरणोंमें शाकटायनका नाम बहुत प्रसिद्ध था, इसलिए लोग उन्हें शाकटायन कहने लगे हों। जिस तरह कवियोंमें कालिदासकी प्रसिद्धि अधिक होनेसे पीछेके भी कई कवि कालिदासके नामसे प्रसिद्ध हो गये थे। जैन शाकटायन महाराज अमोघवर्षके समयमें–विक्रम संवत् ९०० के लगभग–बना है और उस समय जैनोंमें शाकटायन, स्फोटायन, जैसे नाम नहीं किन्तु अनन्तकीर्ति, अमरकीर्ति, पाल्यकीर्ति जैसे नाम रखनेका ही प्रचार था। हमारा विश्वास है कि अधिक खोज करनेसे हमारा यह अनुमान सच निकलेगा। **सम्पादक।**

नोट--यहाँसे आगेके नोट श्रीयुत बाबू जुगलकिशोरजीके लिखे हुए हैं।

---

(१६)

एकसंधिभट्टारकका समय।

जिनेन्द्रकल्याणाभ्युदय नामका ग्रंथ अय्यपार्य नामके विद्वान् द्वारा शक संवत् १२४१ अर्थात् विक्रम संवत् १३७६ में रचा गया है। यथाः—

" शाकाब्देविधुवार्धिनेत्रहिमगौ सिद्धार्थसंवत्सरे ।
माघे मासि विशुद्धपक्षदशमीपुष्पर्क्षवारेऽहनि ॥
ग्रंथो रुद्रकुमारराज्यविषये जैनेन्द्रकल्याणभाक् ।
संपूर्णो भवदेकशैलनगरे श्रीपालवन्धूर्जितः " ॥ ३५ ॥

इस ग्रंथमें लेखकने वीराचार्य आदिके साथ एकसंधिभट्टारकका-भी उल्लेख निम्नप्रकारसे किया है:—

" वीराचार्यसुपूज्यपादजिनसेनाचार्यसंभाषितो-
यः पूर्वं गुणभद्रसूरिवसुनन्दीन्द्रादिनन्द्यूर्जितः ॥
यश्चाशाधरहस्तिमल्लकथितो यश्चैकसंधिस्ततः ।
तेभ्यः स्वाहृत्सारमध्यरचितः स्याज्जैनपूजाक्रमः " ॥ १-१९ ॥

इससे प्रकट है कि 'जिनसंहिता' के कर्त्ता एकसंधिभट्टारक विक्रम संवत् १३७६ से पहले हो चुके हैं। बहुत संभव है कि वे पं० आशाधरजीके समकालीन १३ वीं शताब्दीमें या उनसे भी कुछ पीछे हुए हों ।

(१७)

हस्तिमल्ल कविके समयादिकी चर्चा ।

विक्रान्तकौरवीय नाटकादिकके कर्ता हस्तिमल्ल कवि विक्रम संवत् १३७६ से पहले हो चुके हैं। क्योंकि शक संवत् १२४१ में बनकर समाप्त हुए 'जिनेन्द्रकल्याणाभ्युदय' नामके ग्रंथमें उनके नामादिकका बहुत कुछ उल्लेख पाया जाता है। हस्तिमल्लके पिताका नाम गोविन्द भट्ट था। गोविन्द भट्ट 'देवागमसूत्र' को पाकर उसके महात्म्यसे सम्यग्दृष्टि (जैन) हो गया था। श्री कुमार, सत्यवाक्य, देवरवल्लभ, उदयभूषण और वर्धमान हस्तिमल्लके भाई थे। ये सब कवि थे, दाक्षिणात्य थे तथा गोविंदभट्टको स्वर्ण-

यक्षीके प्रसादसे प्राप्त हुए थे। इन सब बातोंका उल्लेख भी जिनेन्द्र-कल्याणाभ्युदयमें मिलता है। यथाः—

" तच्छिष्यानुक्रमे यातेऽसंख्येये विश्रुतो भुवि।
गोविन्दभट्ट इत्यासीद्विद्वान्मिथ्यात्ववर्जितः॥ ३०॥ ११॥
देवागमनसूत्रस्य श्रित्या सद्दर्शनान्वितः।
अनेकान्तमतं तत्त्वं बहु मेने विदाम्बरः॥ १२॥
नन्दनास्तस्य संजाता वर्धिताखिलकोविदः।
दाक्षिणात्याटयन् तत्र (जयन्त्यत्र) स्वर्णयक्षीप्रसादतः १३
श्रीकुमारकविस्तथा (सत्य) वाक्यो देवरवल्लभः।
उद्यद्भूषणनामा च हस्तिमल्लाभिधानकः॥ १४॥
वर्धमानकविश्चेति षड्भूवन् कवीश्वराः।" *

इसके सिवाय 'जिनेन्द्रकल्याणाभ्युदय' से इस बातका भी पता चलता है कि हस्तिमल्लकविका कुछ सम्बंध सरण्यापुरिके पाण्ड्य-महीश्वर नामके राजासे रहा है। आश्चर्य नहीं कि इस सरण्यापुरीमें हस्तिमल्लका निवासस्थान भी रहा हो। हस्तिमल्लने एक मदोन्मत्त-हस्तिका, जो उन्हें मारनेके लिए आता था, मद उतारा था और एक जिनमुद्राधारी धूर्त्तको एक ही श्लोकसे निर्मद कर दिया था इस लिए उनका नाम मदेभमल्ल (मदहस्तिमल्ल) प्रसिद्ध हुआ और वे कवि चक्रवर्ती भी कहलाते थे। यथाः—

" सम्यक्त्वे सपरीक्षितुं (?) मदगजे मुक्ते सरण्यापुरे—
श्वास्याः पाण्ड्यमहीश्वरेण कपटाद्धन्तुं स्वमभ्यागते।
शैलूषं जिनमुद्रधारिणमपास्यासौ मदध्वंसिना-
श्लोकेनापि मदेभमल्ल इति यः प्रख्यातवान् सूरिभिः॥ १६॥

---

१ ये सब पद्य हस्तिमल्लकृत विक्रान्तकौरवीय नाटककी प्रशस्तिके हैं। जान पड़ता है इन्हें जिनेन्द्रकल्याणाभ्युदयमें उद्धृत कर लिया है। सम्पादक।

* इस पद्य नं. १५ का उत्तरार्ध दौर्बलि शास्त्रीकी प्रतिमें नहीं मिला।—लेखक

सोऽयं समस्तजगदूर्जितचारुकीर्तिः ।
स्याद्वादशासनरमाश्रितशुद्धकीर्तिः ॥
जीयादशेषकविराजकचक्रवर्ती ।
श्रीहस्तिमल्ल इति विश्रुतपुण्यमूर्तिः ॥ " १७ ॥

इस ग्रंथमें हस्तिमल्लके बाद गुणवीरसूरि और फिर उनके शिष्य पुष्पसेन मुनिका उल्लेख करके, ग्रंथकर्ता पं० अय्यपार्यने अपने पिता 'करुणाकर' को पुष्पसेन मुनिका गृहस्थ शिष्य बतलाया है। इससे मालूम होताहै कि विक्रम संवत् १३७६ (अय्यपार्यके अस्तित्वकाल) से अर्थात् ईसवी सन १३१९ से थोड़े ही वर्ष पहले हस्तिमल्ल कवि मौजूद थे। और इसलिए 'कर्णाटक-जैन-कवि' नामक पुस्तकके रचयिताने हस्तिमल्लका जो समय ई० सन १२९० बतलाया है वह प्रायः ठीक जान पड़ता है। बहुत संभव है कि आदिपुराणका कर्ता हस्तिमल्ल और विक्रान्तकौरवीय नाटकादिकका कर्ता हस्तिमल्ल, दोनों एक ही व्यक्ति हों। उक्त आदिपुराणके देखनेसे इसका भले प्रकार निर्णय हो सकता है। हस्तिमल्ल गृहस्थ विद्वान् थे, ऐसा नेमिचंद्रकृत 'प्रतिष्ठातिलक' नामक ग्रंथकी प्रशस्तिके निम्नलिखित श्लोकसे विदित होता है:—

" परवादिहस्तिनां सिंहो हस्तिमल्लस्तदुद्भवः ।
गृहाश्रमीबभूवार्हच्छासनादिप्रभावकः ॥ " १३ ॥

अंजनापवनंजय नाटकके अन्तमें जो प्रशस्ति दी है और जिसका उल्लेख जैनहितैषीके पिछले खास अंकमें सम्पादक द्वारा किया गया है उसकी लेखनप्रणालीसे भी हस्तिमल्ल कविका गृहस्थ होना पाया जाता है।

(१८)

रत्नकरण्ड और आयितवर्म्मा।

मिस्टर बी. लेविस राइस साहबने अपनी 'इन्स्क्रिप्शान्सऐट श्रवणबेल्गोला' नामक पुस्तककी भूमिकामें रत्नकरण्ड श्रावकाचारके, सल्लेखनासम्बन्धी, '**उपसर्गे दुर्भिक्षे........**' इत्यादि सात श्लोकोंको उद्धृत किया है और इस रत्नकरण्डको 'आयितवर्म्मा' का बनाया हुआ लिखा है–(Ratna Karandaka a work by Ayita varmmâ)। आयितवर्म्मा कौन थे और कब हुए, इसका कुछ उल्लेख नहीं किया। परन्तु आगे चलकर स्वामी समन्तभद्रका उल्लेख करते हुए उन्हें, 'राजावलीकथे' के आधारपर, 'रत्नकरण्ड' का कर्ता बतलाया है और लिखा है कि उन्होंने पुनर्दीक्षा लेनेके पश्चात् इस ग्रंथका सम्पादन किया है। संभव है कि 'आयितवर्म्मा' समन्तभद्रका ही नामान्तर हो। यदि ऐसा हुआ तो यह भी समन्तभद्रके क्षत्रियत्वका द्योतक हो सकता है। विद्वानोंको रत्नकरण्डकी प्राचीन प्रतियोंपरसे तथा समन्तभद्र स्वामीसे पीछेके बने हुए ग्रंथादिकोंके उल्लेखवाक्योंपरसे इस विषयका अच्छी तरहसे निर्णय करना चाहिए।

(१९)

स्वामी समन्तभद्र पदर्द्धिक थे।

'जिनेन्द्रकल्याणाभ्युदय' नामक ग्रंथके निम्न श्लोकसे प्रगट होता है कि मूलसंघरूपी आकाशके चंद्रमा स्वामी समन्तभद्राचार्य 'पदर्द्धिक' थे, अर्थात् चारणऋद्धिके धारक थे:—

" श्रीमूलसंघव्योमेन्दुर्भारते भावितीर्थकृद्-
देशे समन्तभद्रार्यो जीयात्प्राप्तपदर्द्धिकः ॥ ३०--२ " ॥

इस श्लोकमें यह भी बतलाया है कि समन्तभद्रस्वामी आगेको इस भारतवर्षमें तीर्थंकर होंगे । नहीं कह सकते कि ग्रंथकर्ताका यह कथन कहाँ तक सत्य है और किस आधारपर अवलम्बित है; परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि उस वक्त (शक सं. १२४१) के जैनोंका ऐसा विश्वास जरूर था । और ये सब बातें स्वामी समन्तभद्रके असाधारण महत्त्वकी सूचक हैं ।

जुगलकिशोर मुख्तार ।

नरजन्म ।
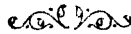
(१)

हृदयमें तीन मित्रोंके समाई,
चले परदेशको करने कमाई ।
पुनः धन साथमें अपने लिये वे,
कहीं व्यापार करने चल दिये वे ॥

(२)

ठिकाने पर पहुँच वे सब गये जब,
किया हरएकने धंधा शुरू तब ।
रहे व्यापार करते कुछ समय सब,
हुआ परिणाम क्या सुन लीजिए अब ॥

(३)

बहुत सा एकने तो धन कमाया,
सकल दारिद्रको उसने भगाया।
न खोया दूसरेने कुछ, न पाया,
बचा निज मूलधन वह लौट आया॥

(४)

न पूछो तीसरेका हाल भाई,
निजी पूँजी सभी उसने गँवाई।
कही है बात यह लौकिक यहाँपर,
मगर तुम धर्मपर देखो घटाकर॥

(५)

मनुजका मूलधन नर-जन्म मानो,
मिला यदि मोक्ष, तो तुम लाभ जानो।
वृथा जो मूलधनको हैं गँवाते,
सदा तिर्यंच गति या नरक पाते॥

—संशोधक।

जैनसिद्धांतभास्कर।

(समालोचना)

(२)

जिनसेन और गुणभद्रके लेखके बाद कोई ६ पेजमें श्रुतस्कन्ध यंत्रका परिचय है। पहले एक कविता है जो निरी तुकबन्दी है। शायद उसके रचयिता स्वयं ही नहीं जानते हैं कि श्रुतस्कंध क्या चीज़ है; पर साहसकी बात है कि उसका परिचय दूसरोंको कराने चले हैं। परिचयके गद्यलेखको पढ़कर भी कोई यह नहीं जान सकता

है कि श्रुतस्कन्धका अर्थ क्या है, अंग किसे कहते हैं, पूर्वका अर्थ क्या है, श्लोक, पद, चूलिका आदि किन्हें कहते हैं। यह विषय बहुत ही महत्त्वका और सर्व साधारणके लिए दुर्ज्ञेय हो रहा है। सम्पादक महाशयकी बड़ी कृपा होती, यदि वे इसका विस्तृत विवरण प्रकाशित कर देते; परन्तु भला वे इतना बड़ा परिश्रमका काम क्यों करने चले? बिना परिश्रमके ही जो धुरन्धर विद्वान् बननेके हथखंडे जानता है वह ऐसे झगड़ेमें क्यों पड़ने लगा? तब इस लेखमें लिखा क्या है? महावीर भगवान्से लेकर भट्टारकोंकी स्थापना होने तककी अट्टसट्ट प्रमाणरहित बातें। एक जगह लिखा है कि "जिस समय बौद्धोंका प्रतापसूर्य मध्याह्नावस्थापर था, जिस समय बौद्धाचार्य जैनधर्मके शास्त्रोंको जला जलाकर और नदियोंमें डुबोकर नष्ट भ्रष्ट कर रहे थे, मन्दिर और मूर्तियोंको तोड़ फोड़ कर अपनी मूर्तियोंकी स्थापना कर रहे थे ठीक उसी समय जैनधर्मके पुनरुद्धारक प्रधानरक्षक न्यायमार्तण्ड श्रीमदकलङ्कका अवतार हुआ।" यह सच है कि भगवान् अकलङ्कने बौद्धधर्मके सिद्धान्तोंका खण्डन किया है। उनके साथ वादविवाद करनेकी बात भी सत्य है; परन्तु इसके लिए कोई प्रमाण नहीं है कि बौद्ध-धर्मके अनुयायी जैनधर्मके शास्त्रोंको जलाते या बहाते थे अथवा मन्दिर और मूर्तियोंको तोड़ते फोड़ते थे। अकलङ्कस्वामीका समय भी ऐसा नहीं था कि बौद्धधर्म जैनधर्म पर किसी तरहके अत्याचार कर सके। उस समय तक उस प्रान्तमें जैनधर्मका पूरा जोर था; वह वहाँका राजधर्म और प्रधान धर्म था। सम्पादक

महाशयकी जिन विन्सेंट स्मिथ सा० पर अगाध श्रद्धा हैं उन्हों-ने भी लिखा है कि ई० सन्के पहले १००० वर्षोंमें जैनधर्म वहाँका मुख्य धर्म रहा है। यह ठीक है कि उस समय वहाँ बौद्धधर्म भी प्रचलित था और जैनधर्मके साथ उसके वादविवाद भी होते होंगे; परन्तु वह इस योग्य न था कि जैनधर्म पर किसी तरहका अत्याचार कर सके। इसके सिवाय बौद्धधर्मका इतिहास इस तरहके अत्याचारोंसे बहुत ही कम कलङ्कित है। ग्रन्थ जलाना या मन्दिर तोड़ना, यह उसकी नीति न थी। इतिहास-ज्ञताका दम भरनेवाले एक सम्पादककी कलमसे इस प्रकारकी बेलगाम बातें न निकलना चाहिए। उसे प्रत्येक शब्दको सोच–समझकर प्रमाणसहित लिखना चाहिए।

आगे इसी तरहकी एक बात फीरोजशाह तुगलकके दरबारमें जैनगुरुओंके रहने लगनेके विपयमें लिखी है; परन्तु उसके लिए भी कोई प्रमाण नहीं दिया गया है। टिप्पणीमें यह प्रतिज्ञा की गई है कि कोल्हापुरके भण्डारमें उस समयकी जो बादशाही सनदें हैं वे आगेके किसी अंकमें प्रकाशित की जायँगी। परन्तु तीन वर्षसे अधिक हो गये, अबतक भी उनके प्रकाशित होनेका मुहूर्त नहीं आया है और शायद कभी आयगा भी नहीं। भास्करके तीनों अं-कोंमें इस तरहकी बीसों प्रतिज्ञायें आपको मिलेंगीं; परन्तु हमारी समझमें वे केवल मौका टाल देनेके लिए और अपनी बहुज्ञता बत-लानेके लिए लिखी जाती हैं। चलते पुर्जे नये सम्पादकोंको आपका यह नया हथखंडा अवश्य सीख लेना चाहिए।

परिचयवाले लेखकी अन्य निरर्थक बातोंकी आलोचनाकी आवश्यकता नहीं जान पड़ती। इसके आगे दो तीन छोटे छोटे लेखोंके बाद 'अमोघवर्ष और उनके समयके आचार्य' शीर्षक लेख है। यह लेख विशेषतः अँगरेजी लेखोंके आधारसे लिखा गया है; कहीं कहीं जैनहितैषीके लेखकी भी छाया ली गई है! इसमें भी सम्पादक महाशयने जितनी बातें निजकी बुद्धिसे लिखी हैं, वे सब ऊँटपटांग हैं। डा० भाण्डारकरने राष्ट्रकूट या राठौरोंको द्रविड़ जातिकी एक कृषक जाति बतलाया है; पर यह आपको पसन्द नहीं। आप उन्हें 'सर्वमान्य सर्वोच्च क्षत्रियवंशीय' मानते हैं। खेद इतना ही है कि बड़े बड़े विशेषणविशिष्ट शब्दोंके लिखनेके सिवाय इस विषयमें आप कोई पुष्ट प्रमाण नहीं देते हैं। आप कहते हैं कि गोविन्द तृतीयकी पुत्रीका ब्याह बंगनरेश धर्मपालसे और अकालवर्षका हैहयवंशी चेदिनरेशसे हुआ था, इस कारण वे क्षत्रिय थे। परन्तु क्षत्रियोंको लड़की देने या उनकी लड़की लेनेसे कोई क्षत्रिय नहीं हो जाता है। इस विषयमें यहाँके राजा लोग प्रायः स्वतंत्र रहे हैं। यहाँतक कि शक और म्लेच्छ राजाओंके साथ भी यहाँके राजाओंका सम्बन्ध होता रहा है। बहुतसे विदेशी राजा यहाँ राज्य स्थापित करके कुछ समयके बाद क्षत्रियोंमें ही परिगणित होने लगे थे। कनिष्क हुविष्क आदि ऐसे ही राजाओंमेंसे थे। यह असंभव नहीं है कि राष्ट्रकूट लोग पहले द्रविड़ जातीय रहे हों और फिर अपने बढ़ते हुए अपरिमित बल और वैभवके कारण क्षत्रियोंमें गिने जाने लगे हों; साथ ही शिला-

लेख लिखनेवाले विद्वानोंने उनका सम्बन्ध यदुवंश या सोमवंशसे मिला दिया हो। इन्हें शुद्ध क्षत्रिय सिद्ध करनेके लिए डा० भाण्डारकरकी युक्तियोंका सप्रमाण खण्डन करनेकी आवश्यकता है।

एक जगह महाराजा अमोघवर्षकी प्रशंसा करते हुए आप लिखते हैं कि " यदि यह कहा जाय कि उस समय सारे भारतवर्षमें आपका एक-छत्र राज्य था तो हमारी समझमें कुछ अत्युक्ति न होगी। " आपकी समझमें अत्युक्ति तो कोई चीज़ ही नहीं है, फिर वह होगी ही क्यों ? और आप इतिहास थोड़े ही लिखते हैं; आल्हा या पँवारा लिखते हैं उसमें अत्युक्तिका डर ही क्या ? आप तो उन्हें भारत ही क्यों भारतेतर देशोंके भी सम्राट् बतला देते तो कुछ हर्ज न था। परन्तु वास्तवमें अमोघवर्ष महाराजके सिवाय उस समय भारतमें अनेक स्वतन्त्र राजा थे जो उनकी आज्ञामें न थे। यह अवश्य है कि वे बड़े राजा थे और अनेक राजा उनके आज्ञाकारी थे।

पृष्ठ ७६ में आपने अपनी बुद्धिसे एक नया आविष्कार किया है। वह यह कि गणितसारसंग्रहको आपने जिनसेनस्वामीके गुरु वीरसेनाचार्यका बनाया हुआ बतलाया है। पर इसे सिवाय मूर्खताके और क्या कहा सकते हैं। गणितसारसंग्रह छपकर प्रकाशित हो चुका है। वह वीरसेनका नहीं किन्तु महावीराचार्यका रचा हुआ है और ये महावीर अमोघवर्षके ही समयमें हुए हैं। भास्करके इसी अंकमें जो सेनसंघकी पट्टावली प्रकाशित की गई है उसमें भी

इनका नाम आया है। पर ऐसी छोटी छोटी बातोंतक बड़े सम्पादकों-की दृष्टि क्यों पहुँचने लगी! इसी सम्बन्धमें आपने गणितसारसंग्रहके कुछ मंगलाचरणके श्लोक और उनका अर्थ दिया है। अर्थ पढ़ने ही योग्य है। क्या मजाल जो आपकी समझमें कुछ भी आजाय! किसी ऐसे महात्मासे अर्थ लिखवा लिया गया है जो विवेकसे और जैनधर्मसे सर्वथा ही अपरिचित है। मंगलाचरणमें जितने विशेषण हैं वे सब जिनेन्द्रदेव और राजा अमोघवर्ष दोनोंमें घटित होते हैं, पर इसको समझे कौन? इसके लिए बुद्धि और परिश्रम दोनों चाहिए।

आगे एक जगह लिखा है कि "जिनसेनस्वामीने कई स्थानोंमें बौद्धोंको पराजित करके विजयकी डंका बजाई थी।" पर इसके लिए कोई प्रमाण? केवल आपके कहनेसे यह मान लिया जाय? जिनसेनस्वामीकी जिस प्रकृतिका परिचय उनके ग्रन्थोंसे मिलता है, वह तो वादविवादमें किसीको पराजित करनेवाली नहीं मालूम होती है। अमोघवर्ष महाराजने अन्तमें विवेकपूर्वक राज्य छोड़ दिया था, इसके लिए तो प्रमाण है; परन्तु वे मुनि हो गये थे, इसका सम्पादक महाशयके पास क्या प्रमाण है? अकालवर्ष गुणभद्रको अपना गुरु मानते थे, इसका प्रमाण भी आत्मानुशासनकी टीकापरसे उद्धृत करना चाहिए था।

आगामी अंकसे भास्करके २–३ अंककी समालोचना शुरू होगी।

विविध प्रसङ्ग।

१ सेठीजी पर एक और अन्याय!

सेठीजी पर जयपुर राज्यकी ओरसे एक अन्याय तो हो ही रहा था कि अब उनपर एक दूसरा अन्याय होना शुरू हुआ है। यह दूसरा अन्याय और किसीकी ओरसे नहीं, स्वयं जैनसमाजके कुछ लोगोंकी ओरसे—और सो भी धर्मात्माओंकी ओरसे होने लगा है। यदि पहला अन्याय राज्यमदान्धताका परिणाम है तो दूसरा कट्टर धर्मान्धताका। पहलेकी अपेक्षा दूसरा अन्याय और भी अधिक कष्टकर है। कारण, यह उन लोगोंके द्वारा हो रहा है जो सारे संसारको क्षमा, दया, समताका पाठ पढ़ानेवाले उसी जैनधर्मके जानकार समझे जाते हैं जिसका कि प्रचार करनेके लिए सेठीजीने अपना सर्वस्व अर्पण कर दिया था। इन अन्यायोंसे बचनेका कोई उपाय भी नहीं दिखलाई देता। जब बारी ही खेतको खाने लगी तब खेतकी रक्षाकी आशा ही क्या की जा सकती है! राजा प्रजाकी रक्षाके लिए है; परन्तु आज वह अपना कर्तव्य भूल रहा है। धर्म—जीव मात्रको अपनी शान्तिप्रद छायाके नीचे रखनेवाला उदार धर्म—आज इतनी संकीर्ण हो गया है कि अपनी एक छोटीसी परिधिके बाहरके तमाम लोगों पर घृणा और तिरस्कारकी बौछार करता हुआ उनकी रक्षा करना तो दूर रहा उनकी भलाईके मार्गमें काँटे बिछाता है। इस तरह राजा और धर्म दोनोंकी ही

विरुद्ध गति देखकर सिवाय इसके और क्या कहा जा सकता है कि सेठीजी;—

अब रहीम चुप है रहो, समुझि दिननको फेर ।
जब दिन नीके आय हैं, बनत न लागे बेर ॥

२ मरेको मारे शाह मदार ।

जिस समय सेठीजी स्वतंत्र थे, उनकी लेखनी और उनकी जिह्वा स्वाधीन थी, उस समय मालूम नहीं इन धर्मात्मा सज्जनोंकी यह बहादुरी कहाँ जा छुपी थी जो इस समय उनपर लगातार कठिन प्रहार कर रही है ! उस समय सत्यवादी भी था, उसके वर्तमान सम्पादक तथा उचितवक्ता नामधारी लेखक भी थे और सत्यवादीको छोड़कर विचार प्रकाशित करनेके दूसरे साधनोंकी भी कमी न थी । फिर मालूम नहीं यह सारा जोश जो आज एकाएक उबल आया है उस समय क्यों शान्त हो रहा था । सेठीजी जिस पंथके आज करार दिये गये हैं, गिरिफ्तार होनेके पहले भी वे उसी पंथके थे । उनके द्वारा जैनसमाजके श्रद्धानके बिगड़नेका—मिथ्यात्वकी वृद्धि हो जानेका—जो डर आज इन धर्मात्माओंके सामने मुहँ फाड़ रहा है, उनकी मुक्त अवस्थामें वह इससे भी अधिक भयावना था । क्योंकि उस समय वे अपने विचारोंका खूब स्वाधीनताके साथ प्रचार करते थे, अपने विद्यालयके सैकड़ों लड़कोंको शिक्षा देते थे और सुयोग्य समझे जाकर इन्दोरके जैन हाईस्कूलके संचालक चुन लिये गये थे । बात बातमें मिथ्यात्वकी छायासे डरनेवाले हमारे समाजके धर्मात्मा महाशयोंने यदि

सेठीजी पर उस समय कोई वार करनेकी आवश्यकता न समझी थी, तो थोड़े समयके लिए और भी उन्हें अपने जोशको दबाये रहना था। जिस समय वे एक बड़े भारी कष्टमें पड़े हैं, उनकी लेखनी और वाक्शक्ति पराधीन है, उस समय उनको कूंढ़ापंथी, मणिधरसर्पतुल्य, धर्महीन आदि कहकर उनकी जीभर निन्दा करना और सारे समाजको उनके विरुद्ध भड़काना अनुचित ही नहीं अतिशय निन्द्य कर्म है। मरेहुए पर या बेवशपर वार करना कोई बहादुरीका कार्य नहीं है। इस तरहके कर्म पर धर्मकी और सम्यग्दृष्टित्वकी चाहे जितनी भड़कदार कलई चढ़ाई जाय, पवित्र दिगम्बर सम्प्रदायकी चाहे जितनी दुहाई दी जाय, पर इसका कालापन कभी दूर न होगा! धर्मात्मा कहनेवालोंके लिए यह लांछनके सिवा और कुछ नहीं हो सकता।

३ हमारा नम्र निवेदन।

सेठीजी कभी न कभी तो छूटेंगे ही। एक न एक दिन वे विपत्तिसे मुक्त होंगे और फिर एक बार अपने प्यारे जैनधर्मकी और जैनसमाजकी सेवा करनेके लिए तत्पर होंगे। तब सत्यवादीके सम्पादक महाशयसे तथा उनकी मण्डलीके सज्जनोंसे हमारी प्रार्थना है कि इस समय तो आप सेठीजी पर और जैनसमाजपर कृपा करें। यह समय उनकी निन्दा करनेका नहीं है। अभी तो धार्मिकदृष्टि या करुणादृष्टि जो कुछ आपके पास हो वही उनपर करते रहें। इस बीचमें उनको मिथ्याती या जैनाभास सिद्ध करनेकी जो कुछ तैयारी आप कर सकते हैं कर रक्खें। इसके बाद ज्योंही

वे छूटकर आवें, त्योंही—जरा भी देर न करके—स्वागतके रूपमें ही उनपर अपने कूढ़ापंथी आदि सुन्दर सुन्दर शब्दोंकी पुष्पवृष्टि करना शुरू कर दें, इसके लिए आपको कोई न रोकेगा। पर यदि इतनी लम्बी प्रतीक्षा करनेका धैर्य आपमें न हो, ये शब्द बाहर आनेके लिए आपके मस्तकमें ऊधम ही मचा रहे हों, तो सेठीजी अकेले ही तो नहीं हैं; उनके हमख़याली और भी तो बहुतसे हैं। जिन्हें आप उन्हीं जैसे विचार रखनेवाले समझते हों—वर्णीजीका वर्ण, मुख्तारकी मुख्तारी, लट्ठेका लट्ठ, भानुमतीका कुनबा आदिका इशारा आप कर ही चुके हैं—इन्हींमेंसे किसी एक पर—या सभीपर अपना जोश निकालना शुरू कर दीजिए। इससे आप भी शान्त हो जायँगे और इधर, इस आपसी फूटसे सेठीजीका भी कुछ अनिष्ट न होगा। आपकी धार्मिक और करुणादृष्टिका पृथक्करण करनेवाली सूक्ष्म दृष्टिमें चाहे यह बात न आवे, परन्तु आपके लेख इस समय बहुत ही बुरा असर डाल रहे हैं। सेठीजी पर धार्मिक नहीं, करुणा-दृष्टि करके ही इन्हें बन्द कर दीजिए। इन लेखोंमें हमारे विषयमें जो कुछ लिखा गया हैं उसका उत्तर देनेकी हम आवश्यकता नहीं देखते। जैनसमाजमें काम करते करते हमें सहनशीलताका यथेष्ट अभ्यास हो गया है। सेठीजीके लिए हम इससे भी अधिक सहन करनेके लिए तैयार हैं। हमारी समझमें, उनके पंथ या धर्मका निर्णय इस तरहके वादविवादोंसे नहीं हो सकता। अभीतक जैनधर्म और जैनसमाजके लिए उन्होंने जो कुछ किया है और आगे इससे सैकड़ों गुणा जो कुछ वे करेंगे, उससे यह निर्णय होगा।

४ व्याख्यानवाचस्पति पं० लक्ष्मीचन्द्रजीका कृपापत्र ।

गत वैशाख मासमें जब पं० लक्ष्मीचन्द्रजी इन्दौरके उत्सवमें पधारे थे तब सहयोगी जैनमित्र और जैनतत्त्वप्रकाशकने उनके व्याख्यानोंके सम्बन्धमें कुछ आक्षेप किये थे। उस समय हितैषीके गत ५–६ अंकमें हमने भी एक नोट लिखा था। उस नोटका संक्षिप्त आशय यह था—जैसे देवता वैसे पुजारी। जैन-समाज जैसे मूर्खसमाजके लिए पं० लक्ष्मीचन्द्रजी जैसे व्याख्याता-ओंके व्याख्यान ही मनोरंजक हो सकते हैं; तत्त्वोंके व्याख्यान सुननेकी उसकी योग्यता नहीं है। इत्यादि।" उक्त नोटमें पण्डित-जीकी प्रशंसाका एक शब्द भी न था, बल्कि एक तरहसे उनके व्याख्यानोंपर कटाक्ष था। परन्तु पाठक यह जानकर आश्चर्य करेंगे कि व्याख्यानवाचस्पति विद्यासागर आदि बड़ी बड़ी पदवियोंसे विभूषित पण्डितजीने उस नोटको अपनी प्रशंसा करनेवाला समझ लिया और इस खुशीमें हमारे पास एक सन्तोषपत्र लिख भेजने-की कृपा की। पण्डितजीकी इस कृपाको हम सादर स्वीकार करते हैं और अपने पाठकोंकी जानकारीके लिए उक्त पत्रकी अक्षरशः नकल यहाँ प्रकाशित किये देते हैं। पण्डितजीकी योग्यताका और उनके हृद्गत भावोंका इससे अच्छा चित्र शायद ही कहीं देख-नेको मिले। हमें आशा है कि पाठक इससे जैनसमाजके पण्डितोंके मर्मको समझनेमें बहुत कुछ समर्थ हो सकेंगे। पत्रमें टीका टिप्पणी करनेकी बहुत कुछ गुंजाइश थी; परन्तु यह काम हमने अपने पाठकोंके लिए छोड़ देना ही उचित समझा है। पण्डितजी हमें

क्षमा करें जो हम उनकी आज्ञाके बिना इस पत्रको प्रकाशित कर देते हैं । इसके प्रकाशित होनेसे हमारी समझमें जैनसमाजका बहुत कल्याण होगा और आपके अभिप्राय भी लोगोंतक पहुँच जायँगे। अन्तमें हम इतना निवेदन और भी कर देना चाहते हैं कि पत्रमें जो इस तुच्छ लेखकके लिए बड़े बड़े 'वर–वर' युक्त विशेषण दिये गये हैं, यह उनके योग्य सर्वथा नहीं है–और न इसने कभी आपकी प्रशंसामें कुछ लिखा है जिसके बदलेमें ये दिये गये हैं। इसे दुःख है कि आपने हितैषीके नोटका अभिप्राय न समझा और भूलसे इसके लिए इतने बहुमूल्य शब्द खर्च करनेका परिश्रम उठाया—

यतो धमस्ततो जयः ।

प्रियवर मित्रवर भ्रातृवर उपमावर लायकवर साहित्यवर अनेक साइंसवर इतिहासवर नीतिवर श्रीयुत नाथूरामजी प्रेमी योग्य लशकरसे लखमीचन्दकेन धर्मस्नेह मालूम होय अपरंच हे महाशय जैनहितैषी पत्र आपका आया पढ़कर मयूवरमेघवत् आनन्द पाया । आगे आलूपंथी लोगोंने तथा मुरैनापंथी लोगोंने तथा १ ऊपर १८ हजार शीलपालक ब्रह्मचारी लोगोंने मिलकर मेरे ठीक जैनसिद्धांतानुकूल व्याख्यानपर जो मेरे दिलको दुखाया उस दुःखको वचनसे कह नहीं सकता परंतु आज जैनहितैषीमे किंचित् मेरे मनकी माफिक आपके उत्तर देनेमे जो मेरे चित्तमे आल्हाद हुवा वचनसे कह नहीं सकता ।

धन्य हे आपको कि जो मेरे दुःखित चित्तको सुखी किया आगे हे प्रियवर मैंने सामान्य वा विशेष हजारो व्याख्यान (दयाधर्म) को पुष्ट करते हुवे जैनसिद्धांतानुकूल तथा शैव वैश्नव वेदांनुकूल तथा कुरान हदीस बाइविल तथा २० लाष वर्षके प्रमाण देके जैनधर्मको पुष्ट करते हुवे व्याख्यान दिये लाखो आदमी मुसलमान शिया सुँनत ७२ तथा हिंदुवोमे ब्राह्मण वैश्नव शैवी वेदांती इसाई २

ओर अनेक जातिके लोगोने जैनधर्मकी तथा मेरी प्रशंसा करी वो प्रशंसा मेरे मुखसे मे कह नहीं सकता अंतमें ये कह देते हैं **कोई देवता सिद्ध है** मेने परमतके १४ पुराण ५ स्मृति २ संहिता २ वेद ४ उपपुराण वाल्मीक रामायण देवी भागवत सवा लक्ष महाभारत ३ वार ओल्ड ओर न्यू टेष्टमेंट वाइविल कुछ हदीस कासासुल अंविया तथा औलिया तथा सैकड़ो इतिहास तथा साइंससे जैनमतकी प्राचीनता तथा गुवालियर भंडारके सर्व ग्रंथ न्याय सिद्धांतोको छोड़-करके १ लाख श्लोक स्वेतांबर मतके ये सर्व ग्रंथ मेरे देखे हैं हजारो श्लोक मैने छांटे हैं हजारो कंठ किये हैं ५ हजार श्लोक जैनमतका १ हजार परमतका ६ हजार भाषाके कंठ किये हैं ४५ वर्षसे कोशिस कर रहा हूं ४५ हजार टीका (रु०?) हर्जा उठाया है शास्त्राभ्यासमें भला आप सोचिये में अन्यथा प्रकार सभामे व्याख्यान कैसे दे सकता हूं मेरे उपदेशसे हजारो स्त्रीपुरुषोने दयाधर्ममे प्रवर्तन किया हजारो अन्यमतियोने तथा मुसलमानोने दया पाली है वस मे आप सारसे साइंसके विद्वानको जादा क्या लिखूं येही संक्षेप वोहत है

एसे शास्त्रानुकूल व्याख्यानको इटाये पंथी वा मुरेनेपंथी वा ब्रह्मपंथी निंदा करै ये मेरे भाग्यका दोष है ये मुझमे अवश्य दोष है कि कोई जैन पुजाप्रतिष्ठा मे आदमी भेजके मुझे बुलालेवे और उस वकतमे ये भी आजाय तो इन लोगो के व्याख्यान कोई पसंद नही करता तब इनके कलदारोकी आमदनीमे फरक पड़जाता है सब लोग मुझे देखते हें जैसा अभी वैसाख वदीमे इंदोरमै मेरी सभामे १२ बजेतक ४ हजार आदमी इनकी सभामे एक दिन ४० आदमी ओर भी अनादर इसी वातपर जलकर जैनमित्रमे छपा दिया घरका गजट हे चाहे जो छपावै मेरे भाग्यसे आप उत्तरदाता खडे हो गये मैं आपको धन्यवाद देता हुं आप निष्पक्षपाती हो आपके जैनहितैषी पदार्थविद्यासे भरा उसकी तारीफ लिख नही सकता सरस्वती प्रशंसा करती है इस संक्षेप पत्रके पढ़नेमे तकलीफ होगी परंतु मेरी दिली वीमारी जाती रहेगी बस कृपादृष्टि रखना क्षमा चाहता हूं

मेरा ठिकाना लखमीचंद पदमचंद बाजार कसेरा ओली लशकर गुवालियर

आगे आपकी जैनहितेषी बराबर जैनमे कोई गजट नही साइंस भरा रहता है सरस्वती भी प्रशंसा करती है

आगे विषय कषायके लंपटी इटायेवाले कहते है आलूखानेका अष्टमी १४ को हरीखानेका उपदेश देवो ब्रह्मजी कहते है सर्वजातिके साथ शामिल बैठके भोजन करनेका उपदेश करो कोइ उन्मार्गपंथी कहते हे सम्यक्तीको सप्तव्यसनके सेवनका उपदेश करो मे इनका उलटा उपदेश करता हूं इस सबबसे उनका कलदार मारा जाता है

मिती द्वितिय वैसाखवदी १

L. Chand.

५ सेठीजीका मामला।

पं० अर्जुनलालजी सेठीको एक वर्षसे अधिक हो गया, पर उनके कष्टका अन्त नहीं आया। इस विषयमें सहयोगी प्रतापने एक बहुत अच्छा नोट किया है। वह लिखता है " यह आश्चर्यकी बात है कि अर्जुनलालजी एक वर्षसे उसी प्रकार जेलमें सड़ रहे हैं पर उनके विषयमें कुछ भी प्रकट नहीं किया जाता। हमारी दृष्टिसे तो ज्यों ज्यों समय बीतता जाता है—त्यों त्यों उन्हें हर प्रकार पूर्ण निर्दोष मान लेनेमें हमारी हिच-किचाहट दूर होती जा रही है। यदि वे निर्दोष न होते तो जयपुर इतनी नपुंसकता कभी प्रकट न कर सकता कि बारबार चुनौती दिये जाने पर भी वह चुप रहता और उनका कोई दोष सिद्ध न करता। हम अधिक कालतक इस सन्देहमें भी नहीं रह सकते कि उसकी चुप्पी अत्याचारका दूसरा रूप नहीं है और अत्याचारीकी चुप्पी उसकी कायरताके सिवा और कुछ भी नहीं होती। हाँ, भारतसरकार भी कुछ नहीं सुनती। और हम नहीं जानते कि वह अपने इस मौनका कौनसा नैतिक कारण बतला सकती है।"

चित्रशाला स्टीम प्रेस, पूना सिटीकी अनोखी पुस्तकें।

चित्रमयजगत्‌:-यह अपने ढंगका अद्वितीय सचित्र मासिकपत्र है। "इलेस्ट्रेटेड लंडन न्यूज" के ढंग पर बड़े साइजमें निकलता है। एक एक पृष्ठमें कई कई चित्र होते हैं। चित्रोंके अनुसार लेख भी विविध विषयके रहते हैं। साल भरकी १२ कापियोंको एकमें बंधा लेनेसे कोई ४००, ५०० चित्रोंका मनोहर अलबम बन जाता है। रंगीन चित्र भी इसमें रहते हैं। आर्टपेपरके संस्करणका वार्षिक मुल्य ५।।) डॉ० व्य० सहित और एक संख्याका मूल्य ।।) आना है। साधारण कागजका वा० मू० ३।।) और एक संख्याका ।=) है।

राजा रविवर्माके प्रसिद्ध चित्र-राजा साहबके चित्र संसारमें नाम पा चुके हैं। उन्हीं चित्रोंको अब हमने सबके सुभीतेके लिये आर्ट पेपरपर पुस्तकाकर प्रकाशित कर दिया है। इस पुस्तकमें ८८ चित्र मय विवरणके हैं। राजा साहबका सचित्र चरित्र भी है। टाइटल पेज एक प्रसिद्ध रंगीन चित्रसे सुशोभित है। मूल्य है सिर्फ १) रु०।

चित्रमय जापान-घर बैठे जपानकी सैर। इस पुस्तकमें जापानके सृष्टि-सौंदर्य्य, रीतिरवाज, खानपान, मृत्यु, गायनवादन, व्यवसाय, धर्मविषयक और राजकीय, इत्यादि विषयोंके ८४ चित्र, संक्षिप्त विवरण सहित हैं। पुस्तक अव्वल नम्बरके आर्ट पेपर पर छपी है। मूल्य एक रुपया।

सचित्र अक्षरबोध-छोटे २ बच्चोंके वर्णपरिचय करानेमें यह पुस्तक बहुत नाम पा चुकी है। अक्षरोंके साथ साथ प्रत्येक अक्षरको बतानेवाली, उसी अक्षरके आदिवाली वस्तुका रंगीन चित्र भी दिया है। पुस्तकका आकार बड़ा है। जिससे चित्र और अक्षर सब सुशोभित देख पड़ते हैं। मूल्य छह आना।

वर्णमालाके रंगीन ताश-ताशोंके खेलके साथ साथ बच्चोंके वर्णपरिचय करानेके लिये हमने ताश निकाले हैं। सब ताशोंमें अक्षरोंके साथ रंगीन चित्र और खेलनेके चिन्ह भी हैं। अवश्य देखिये। फी सेट चार आने।

सचित्र अक्षरलिपि-यह पुस्तक भी उपर्युक्त "सचित्र अक्षरबोध" के ढंगकी है। इसमें बाराखड़ी और छोटे छोटे शब्द भी दिये हैं। वस्तुचित्र सब रंगीन हैं। आकार उक्त पुस्तकसे छोटा है। इसीसे इसका मूल्य दो आने है।

—:राष्ट्रीय ग्रन्थ:—

(इस अंकके प्रकाशित होनेकी तारीख ८-८-१५।)

Reg. No. B. 719.

ॐ

जैनहितैषी ।

साहित्य, इतिहास, समाज और धर्मसम्बन्धी
लेखोंसे विभूषित
मासिकपत्र ।

सम्पादक और प्रकाशक—नाथूराम प्रेमी ।

भाग ११ } श्रावण, भाद्र, श्रीवीर नि० संवत् २४४१ } अंक १०-११

विषयसूची ।

पत्रव्यवहार करनेका पता—
मैनेजर, जैनग्रन्थरत्नाकर कार्यालय, गिरगांव बम्बई

Printed by C. S. Deole, at the Bombay Vaibhav Press, Servants of India Society's Building, Sandhurst Road, Girgaon Bombay, & Published by Nathuram Premi at Hirabag, Near C. P. Tank Girgaon, Bombay.

जैनहितैषी ।

श्रीमत्परमगम्भीरस्याद्वादामोघलाञ्छनम् ।
जीयात्सर्वज्ञनाथस्य शासनं जिनशासनम् ॥

११ वाँ भाग { श्रावण, भाद्र, वीर नि०सं० २४४१ । } अंक १०-११

पर्युषणपर्व
अथवा
पवित्र जीवनका परिचय ।

जो धर्म जीवनको उच्च बनाता है वही धर्म मुझे मान्य है । धर्मके जो कार्य, जो क्रियायें और जो भावनायें जीवनको ऊँचा बनानेके आशयसे वञ्चित हैं वे चाहे जैसे प्रतिष्ठित पुरुषकी बतलाई हुई क्यों न हों— स्वयं ब्रह्मा भी उनके उपदेष्टा क्यों न हो, उन्हें माननेके लिए मैं तयार नहीं ।

धर्मकी जो आज्ञायें आरोग्यरक्षामें सहायक हों, जो धार्मिक क्रियायें मनुष्यको संसारके प्रति उसके जो कर्तव्य हैं उनके पालनेमें यथेष्ट बल-प्रदान करती हों, और जो धार्मिक भावनायें आधि-व्याधि-उपाधिके समुद्रमें पड़े हुए मनुष्यको तैरनेकी कला सिखलाती हों, वे आज्ञायें, क्रियायें और भावनायें मुझे मान्य हैं और प्रत्येक विचारशील मनुष्यको मान्य होनी चाहिए ।

अनुपयोगी क्रियाओं, आज्ञाओं और भावनाओंमें अपनी शक्ति और समयका व्यय करना मुझसे---बीसवीं शताब्दिके गंभीर जीवन-कलहके बीच रहनेवाले तुच्छ मनुष्यसे---नहीं बन सकता। उपयोगिता (utility) ही इस जमानेका दृष्टिबिन्दु है। इस लिए, जिस पर्युषणपर्वको जैनसमाज हजारों वर्षोंसे पालता आ रहा है और पालता है, वह पालने योग्य है या नहीं, इस प्रश्नपर मैं उपयोगिता अथवा यूटिलिटीकी दृष्टिसे विचार करना चाहता हूं। मैं इस सिद्धान्तको नहीं मानता कि इसे लाखों मनुष्य पाल रहे हैं, इस लिए मुझे भी पालना चाहिए, या यह प्राचीन समयसे चला आ रहा है और अपने बड़े बड़े पूर्वजोंने इसका पालन किया है, इस लिए पालनीय है।

इसी तरह केवल इस कारण भी मैं इसका अंगीकार नहीं कर सकता हूं कि इसके पालनेके लिए अमुक अमुक महापुरुषोंकी आज्ञा है। क्योंकि क्रिश्चियन, मुसलमान आदि सारे धर्मोंके अनुयायी भी तो अपनी प्रत्येक क्रियाको इसी तरह परमेश्वरकी आज्ञा और ईश्वरनिर्मित ग्रन्थमें विहित बतलाते हैं, परन्तु जैनधर्मानुयायी अपनी बुद्धिसे प्रश्न करके उनकी क्रियाओंको स्वीकार करनेमें इंकार कर देते हैं।

पर्युषण पर्वको स्वीकार करनेके पहले उसका अर्थ या स्वरूप समझ लेना चाहिए, और उसकी उपयोगिता भी जान लेनी चाहिए। मैंने इस विषयमें अपनी शक्तिके अनुसार जो कुछ अध्ययन और मनन किया है, उससे मुझे निश्चय हो गया है इस पर्वका पालन अवश्य

करना चाहिए; बल्कि यदि बन सके तो इसे जो दश दिनके भीतर मर्यादित कर दिया है सो बढ़ाकर अपने जीवनकी अवधिके बराबर विस्तृत कर देना चाहिए।

पर्युषण अथवा पर्युपासना, अर्थात् अपने भीतर त्रिगढ़रूप गढ़की ओटमें विराजे हुए आत्मदेवकी उपासना, आत्मावरमण, आत्मस्थिरता, आत्मकला, मन वचन कायके योगोंका आत्माभिमुखीकरण और विशेष स्पष्ट शब्दोंमें कहना हो तो आत्मिक जीवन, देवीजीवन अथवा पवित्र जीवन।

यद्यपि आत्माके लिए आत्मिकजीवनमें जीना सहज अथवा स्वाभाविक ही है और इस कारण यह बहुत ही सुगम काम है; तथापि आत्माने अपनी ही इच्छासे जो जो शरीर बाँधे हैं वे सब अपने स्वभावके अनुरूप रात दिन प्रवर्तित होते रहते हैं, इस कारण उनके भीतर निवास करनेवाले आत्माको, उनके गाढ़ सहवासके कारण उनका स्वभाव ही निज स्वभाव जान पड़ता है और इससे स्वस्वभावका स्मरण नहीं रहता है; स्थूल शरीर, तैजस या इच्छाशरीर, और कार्माण या विचारशरीर, इन तीनों शरीरोंके साथ सतत सहवास रखनेवाला आत्मा उनके धर्मोंको अपना धर्म मानने लगता है और वह यहाँ तक कि स्वस्वभावको तो बिल्कुल ही भूल जाता है। जिस तरह गणिकाके सहवासमें रहनेवाले पुरुषको शायद ही कभी अपनी पत्नीका स्मरण होता है, उसी तरह आत्माको भी इन तीन शरीरोंके निरन्तर सहवासके कारण स्वस्वभावका स्मरण शायद ही कभी होता है और वह भी प्रयत्न करनेसे होता है।

इस परसे तीन सिद्धान्त फलित होते हैं—१ स्वभाव अथवा स्वस्वभावमें रमण करना मनुष्यके लिए स्वाभाविक है, अशक्य नहीं। २ परन्तु मनुष्य प्रायः विभावमें अथवा जड़भावमें ही मग्न रहता है—परप्रदेशमें ही और स्वभावविरुद्ध वातावरणमें ही सारा जीवन अथवा जीवनका अधिक भाग व्यतीत करता है। ३ और स्वभाव-विरुद्ध वातावरणमें रहनेके कारण उसे स्वभावतः ही दुःखानुभव करना पड़ता है,—जिस तरह कि हवामें स्वेच्छाविहार करनेवाले किसी पक्षीको यदि मछलियोंके साथ सरोवरमें रहना पड़े तो उसे दुःख ही होगा। यद्यपि यहाँ जिस प्रकार मछली या पानी स्वयं 'दुःख' नहीं है—वास्तवमें दुःख कोई पदार्थ ही नहीं है—स्वभाव-विरुद्ध वर्ताव करनेसे जिन परिणामोंका अनुभव होता है उन्हें ही दुःख कहते हैं—उसी प्रकार शरीरों अथवा सृष्टिके पदार्थोंके किसी भागविशेषमें कोई 'दुःख' नामकी चीज़ भरकर नहीं रख दी गई है कि जिससे उसका संग करनेवालेको दुःख चिपक जाता हो; तथापि जब अमर्यादित स्वभाववाला आत्मा इन मर्यादित स्वभाववाले शरीरों या पदार्थोंमें निवास करने लगता है तब उस स्वभावविरुद्ध कार्यसे स्वभावतः ही कुछ अप्रिय अनुभव होता है और उसे ही हमने 'दुःख' संज्ञा दे रक्खी है। वास्तवमें दुःख सुख ये सब कल्पनायें हैं, विना अस्तित्वके कोरे नाम मात्र हैं। अतएव दुःखके दूर कर-नेका केवल एक ही मार्ग हो सकता है कि विभावसे मुक्त होने और स्वभावमें रक्त होनेके लिए जितना बन सके उतना उद्योग करना।

अमुक स्थलमें बैठेंगे तभी विभाव-विरक्तता होगी, अमुक जातिके वस्त्र पहरेंगे तभी स्वभावका स्मरण होगा, अमुक मंत्र या पाठका जाप करेंगे, तभी स्वभावकी रमणता होगी, अमुक प्रकारकी क्रिया करेंगे तभी आत्मलीनता होगी— इस तरहका न कोई नियम है और न हो सकता है। क्योंकि स्थल, वस्त्र, पाठ, क्रिया ये सब स्वयं भी विभाव हैं—जड़ हैं। जो पन्थ या सम्प्रदाय सबसे श्रेष्ठ होनेका दावा करता हो उसीकी आज्ञाके अनुसार वस्त्र पहने जावें, उसीकी बतलाई हुई उग्र तपश्चर्या की जावे और उसीके पवित्र शास्त्र जिह्वाग्र कर लिये जावें, तो भी ऐसा हो सकता है कि विभाव वृत्ति न मिटे और स्वभावलीनता न हो। क्योंकि साधनोंमें स्वयं कोई शक्ति नहीं है—वे आत्माभिमुखीकरणके निमित्त मात्र हैं। यह सच है कि साधन किसी न किसी अच्छे आशयसे बतलाये जाते हैं; परन्तु वे जड़ शरीरके लिए नहीं किन्तु आत्माके लिए हैं और उनका उपयोग आत्माभिमुख वृत्तिमें जितने परिमाणमें किया जायगा उतने ही परिमाणमें उनमें आत्मस्मरण और आत्मस्थैर्यका होना संभव है।

ऊपर जो तीन सादे सिद्धान्त बतलाये गये हैं वे सादे होने पर भी बहुत गहन हैं, बारबार विचार करने योग्य हैं और हृदयपट पर लिख रखने योग्य हैं। स्वभावमें रमण करना मनुष्यके लिए यद्यपि चिरकालीन विभावपरिचयके कारण कठिन है, परन्तु अशक्य नहीं है—बल्कि स्वभावरमणता, धार्मिक जीवन, पवित्र जीवन या दैवी जीवनको हमने जितना समझ रक्खा है उतना कठिन भी नहीं है।

एक काम अभ्यास आदत या टेवके बिना अतिशय कठिन जान पड़ता है, परन्तु वह काम कठिन नहीं होता उसका अभ्यास डालना या उसे अपनी आदत बना लेना ही कठिन होता है। आदत या टेव पड़ी कि वह काम सुगम और स्वाभाविक हो जाता है। पानीमें डुबकी लगाना बहुत ही कठिन काम है, परन्तु आदत पड़ जानेसे वही एक मामूली बात हो जाती है और इस कारण लाखों आदमी डुबकी लगानेमें ही आनन्दानुभव करते हैं। इसी तरह आत्माकी उपासना, आत्मरमणता या धार्मिक जीवनका भी सारा दारोमदार टेव या आदत पर है। शराब पीनेवाले कहते हैं कि क्लेरेट नामकी शराबका प्याला जब सबसे पहले वे अपने मुँहके पास ले गये, तब ऐसा मालूम हुआ कि कै हुई जाती है, परन्तु पीछे अभ्यास पड़ जानेपर उन्हें इस शराबके आगे और सब शराबोंका मजा तुच्छ मालूम होने लगा! योगी जनोंको शहरके कोलाहल और ठाटबाटके पास जाना भी पसन्द नहीं आता, पर जिस एकान्तवाससे हम लोग घबड़ाते हैं उसमें उन्हें निःसीम आनन्द आता है। एक शहरके एक मीनारमें बहुत बड़ी घड़ी लगी हुई थी। एक पागल मनुष्य उसीके समीप रहता था। इस लिए ज्योंही घंटा बजता था त्योंही वह एक—दो—तीन—गिनने लगता था—यह बात उसकी आदतमें शामिल हो गई थी। एक बार घड़ी बिगड़ गई और घंटा बजना बन्द हो गया; तो भी कहते हैं कि वह पागल अपनी आदतके अनुसार ठीक घंटे पर एक—दो—तीन आदि गिनने लग जाता था! एक निर्दोष मनुष्य बास्टाइलके किलेमें कैद कर दिया गया था।

लम्बी सजाकी अवधि बीत जानेपर जब वह जेलखानेकी अँधेरी कोठरीमेंसे बाहर निकाला गया, तब उसने यह प्रार्थना की थी कि मुझे उसी अँधेरी कोठरीमें अपना शेष जीवन व्यतीत करनेकी आज्ञा दी जाय! वर्षोंके अभ्यासके कारण, आदत पड़ जानेके कारण वह स्थान ही उसे सुखरूप भासने लगा था और उसे छोड़कर प्रकाशमें आनेसे उसे दुःख होता था। बीड़ी सिगरेट चुरुट पीना और तमाखू खाना पहले तो बुरा मालूम होता है—इनके पीने खानेसे एक तरहकी अरुचि होती है; परन्तु कुछ समयमें आदत पड़ जानेसे ये बलायें भी मजेदार जान पड़ने लगती हैं। डा० एटरबरी नामका विद्वान् कहता है कि "पहले मुझे दफ्तरके और हिसाबकी जाँच करनेके काममें जरा भी अच्छा न मालूम होता था—मेरी तबीयत ऊब जाती थी, परन्तु अब लगातार इसी काममें लगे रहनेसे मुझे इसमें बड़ा आनन्द आता है।" इन सब दृष्टान्तोंसे लार्ड बेकनके ये वाक्य सर्वथा सत्य मालूम होते हैं कि "जो चीज हमें पहले बुरी और कठिन मालूम होती है वही चीज, जब हमारे अभ्यासमें आ जाती है—आदतमें दाखिल हो जाती है, तब इतनी आनन्ददायक स्वाभाविक और सुगम हो जाती है कि उतनी और कोई चीज नहीं होती!" मनुष्यस्वभावकी रचनाका यह रहस्य—यह छुपी हुई कल जान लेनेसे मनुष्यको एक प्रकारका आश्वासन मिलता है। वह इस विश्वासको दूर कर सकता है कि धर्ममय या पवित्रजीवन बहुत कठिन है और आदत डालनेका प्रयत्न करने लगता है। जगत्के अकारणबन्धु तीर्थंकरोंने भी इस आदतके डालनेके लिए ही पर्युषणपर्वकी योज-

ना की है। पर्युषणपर्वको पर्युपासनाका परिचय करानेवाला, आत्मिक जीवनकी टेव डालनेवाला, एक पाठ—एक अभ्यास पाठ (Exercise) समझना चाहिए।

मेरी समझमें, विभावके वातावरणमें ३६५ दिन फिरनेवाले या अस्वाभाविक जीवन व्यतीत करनेवाले मनुष्यको केवल दश दिनोंमें स्वाभाविक जीवनका परिचय करानेके लिए—आन्तर्जीवनका अभ्यास अथवा टेव डालनेके लिए ही पर्युषणपर्वकी योजना की गई है। इन दश दिनोंमें जिस प्रकारका जीवन व्यतीत किया जाता है, उसी प्रकारका जीवन व्यतीत करनेकी टेव हमेशाको लिए पड़ जाय तो मनुष्य कृतकृत्य हो जाय।

यहाँ इस प्रश्नका खुलासा करनेकी आवश्यकता है कि पर्युषण पर्वके लिये भाद्रपदका महीना ही क्यों नियत किया गया? यह समय किसी ऐतिहासिक घटनाके स्मरणार्थ नहीं चुना गया है, अर्थात् न तो इन दिनोंमें पहले किसी महान् पुरुषका कोई कल्याणक हुआ है और न कोई विशेष स्मरणीय धार्मिक घटना हुई है। अतः मेरी समझमें तो इस चुनावका या पसन्दगीका कारण नैसर्गिक सौन्दर्य है। अर्थात् इस समय प्रकृतिके सारे पदार्थ आर्द्रता, नवीनता, सौन्दर्य और शक्ति प्राप्त करते हुए जान पड़ते हैं। सारा जगत् हँसता—खिलता—विकसता हुआ मालूम होता है। ये सब संयोग आत्मविकासके विचारोंके लिए बहुत ही अनुकूल हैं और इस लिए संभव है कि पर्युपासना, आत्मरमणता या दैवीजीवनका परिचय करानेके कार्यके लिए यह समय पसन्द किया गया हो। लोगोंको इस

समय बहुत फुरसत मिल सकती है, इन दिनों मुनियों साधुओंका समागम हो सकता है, इत्यादि कई कारण इस विषयमें उपस्थित किये जाते हैं; परन्तु उनमें विशेष तथ्य नहीं जान पड़ता। एक तो साधु या मुनि प्रत्येक ग्राम या नगरमें उपस्थित नहीं हो सकते और दूसरे यह पर्व उस समयसे चला आ रहा है जब साधु मुनि बस्तीमें रहते ही न थे। प्राचीन कालमें आजकलकी अपेक्षा खेती अधिकतासे होती थी और जैनधर्मका पालन करनेवाले हजारों लाखों श्रावक खेती करते थे, इससे यह कहना भी ठीक नहीं कि फुरसतके कारण ये दिन पसन्द किये गये हैं। एक प्रश्न यह भी हो सकता है कि भादों सुदी ५ को ही पर्युषण पर्व शुरू हो और चतुर्दशीको ही समाप्त हो, इसका क्या कारण? क्या इनसे आगे पीछेके दिवसोंमें नैसर्गिक आकर्षण या सौन्दर्य कम हो जाता है? यदि मेरा कल्पना करनेका अधिकार छीना न जाय तो इसका उत्तर मैं यह दूंगा कि पर्युषण पर्वकी योजना करनेवाले महापुरुष यदि चाहते तो इनसे आगे पीछेके दिनोंमें भी इतनी ही योग्यताके साथ इस पर्वकी स्थापना कर सकते—उन्हें किसी तिथि या समयपर किसी तरहका राग द्वेष न था; परन्तु जब किसी समाजके लिए कायदे कानून बनाये जाते हैं तब कोई न कोई निश्चित बात तो मुकर्रर करनी ही पड़ती है। जैसे 'ताजिरात हिन्द' में किसी अपराधके लिए ५०) से १००) तकका दण्ड मुकर्रर है, तो इससे क्या यह समझ लेना चाहिए कि वह अपराध ५०) के ही योग्य है ४८) या ४९) के योग्य नहीं? ५०) से १००) तकके बदले ४०) से ६०) या ६०) से १२०) आदि और भी चाहे जो

संख्या नियत की जा सकती है और उसकी भी पहली संख्याके ही बराबर सार्थकता हो सकती है; परन्तु विचारनेकी बात यह है कि कोई न कोई संख्या तो नियत करनी ही पड़ेगी; समाजके व्यवहारके लिए यह है भी बहुत आवश्यक । इसी तरह चौदस, पूनों एकम आदि कोई न कोई एक तिथिका पर्युषणकी समाप्तिके लिए नियत करना आवश्यक था । क्यों कि एक तो इस अन्तिम दिनके आवश्यक कार्योंमें क्षमापना, प्रार्थना और विश्व-भावना आदि तत्त्वोंका खास तौरसे समावेश किया गया है, और दूसरे ये सब भावनायें सब स्थानोंमें एक ही समय हों तो इनका संयुक्त भावनाबलसे विश्वके मानसिक वातावरण पर बहुत बड़ा प्रभाव पड़ता है । वर्तमान जैनसमाज क्षमापना अथवा हार्दिक औदार्यके रहस्यसे प्रायः अनभिज्ञ है, सांवत्सरिक प्रतिक्रमणमें जो विश्वभाव (लोकालोकस्वरूपकी कल्पना) प्राप्त होता है उसकी कल्पना नहीं कर सकता है, और प्रतिक्रमणके अन्तकी प्रार्थनाके तौरसे जिन शक्तियोंकी वन्दना की जाती है उनका अपनेमें आकर्षण नहीं कर सकता है, इससे संभव है कि वह उपर्युक्त कारणोंकी गंभीरताको स्वीकार न कर सके; परन्तु उसके मानने न माननेसे उनकी सचाई कम नहीं हो सकती ।

अब हमें वास्तविक महत्त्वके मुद्देपर आजाना चाहिए । किस प्रकारके जीवनका अभ्यास डालनेके लिए पर्युषण पर्वकी योजना की गई है ? संक्षेपमें यदि हम कहें कि दैवी जीवनका, तो प्रश्न होता है कि क्या दैवी जीवन मानवीय जीवनसे भिन्न या विरुद्ध है ? नहीं, जिस तरह एक मनुष्यका मनुष्यरूप जीवन होता है, उसी

तरह उसका मृत्युके वादकी स्थितिमें भी जीवन होता है—यह बात दूसरी है कि दोनोंमें स्थूल शरीरके सद्भाव और अभावका भेद हो। जिसतरह मनुष्यके इच्छायें, विचार, भावनायें, परिणाम, आदि बातें मनुष्य जीवनमें होती हैं उसी तरह मृत्युके बादकी स्थितिमें भी रहती हैं। प्रकृति किसी आकस्मिक परिवर्तन या रद्दो बदलको सहन नहीं कर सकती है। जो मनुष्य मनुष्यरूपमें संकीर्णहृदय है, वह बदलकर देवरूपमें विशाल हृदय कैसे हो जायगा? इसी तरह मनुष्यकी अवस्थामें जो शोकातुर उदास आनन्दरहित है वह मृत्युके बाद एकाएक छलांग मारकर शुद्ध आनन्दमय सिद्ध स्थितिमें कैसे पहुँच जायगा? यह मैं पहले ही कह चुका हूँ कि प्रकृतिके कार्योंमें उछल कूद या एकाएक बड़ाभारी परिवर्तन होना संभव नहीं है। इसलिए आनन्दस्वरूपकी भावना भाओ, आनन्द अनुभवन करनेका अभ्यास करो और संकटरूप परिस्थितियोंमें भी आत्मस्थिरता या आनन्दानुभव करना सीखो; ऐसा करनेसे तुम्हें टेव पड़ जायगी, धीरे धीरे वह टेव बलवती हो जायगी और अन्तमें तुम्हें अखण्ड आनन्दरूप स्थितिमें पहुँचा देगी। जिन क्रियाओंकी आत्मिक बलको बढ़ानेके आशयसे योजना की गई है, उन सबको करते हुए भी यदि तुम रोती सूरत बनाये रहोगे, उदास रहोगे, सर्वत्र दुःख तथा पापोंकी ही कल्पना किया करोगे और एक कोनेमें बैठकर बिना अर्थके स्तोत्रपाठ किया करोगे तो उक्त कल्पनाके अनुसार ही तुम्हारी मृत्युके बादका जीवन गढ़ा जायगा। और लोग चाहे जो कहें, पर हम जैनोंको तो 'जन्मघूटी'के साथ ही यह ज्ञान पिला दिया जाता है कि आकाशमें कोई ऐसा राजा नहीं बैठा है जो प्रार्थनाओंकी

या स्तोत्रोंकी खुशामदसे प्रसन्न होकर स्वर्ग या मोक्ष दे देता हो, या अमुक अमुक कोरी भावशून्य क्रियाओंके करनेसे रीझकर सिद्धशिलाका निवास पारितोषिकमें दे देता हो। जब कोई देनेवाला है ही नहीं तब यही मानना अधिक युक्तियुक्त है कि एक जन्ममें जैसी इच्छायें, विचार और भावनायें होती हैं उन्हींके अनुसार जीवको नया स्वरूप प्राप्त होता है। देव स्थूल (औदारिक) देहके बन्धनसे रहित एक प्रकारके मनुष्य ही हैं, इसलिए जहाँ दैवी जीवनका उपदेश दिया जाय वहाँ उच्च मानवजीवन प्राप्त करनेका उपदेश समझना चाहिए।

तब उच्च मानव जीवनके अंग कौन कौन हैं? उच्चतम मनुष्य भगवान् महावीरने दान, शील, तप और भावना ये चार अंग उच्च जीवनके बतलाये हैं। उत्तमक्षमादि दश धर्म भी इन्हींमें गर्भित हैं। इन चार अंगोंका नामोच्चारण यद्यपि हम प्रतिदिन किया करते हैं; परन्तु इनका रहस्य बहुत कम लोग समझते हैं और इसीलिए जैनोंका व्यवहार अथवा जीवन शुष्क, अनुदार और अनेक अंशोंमें घृणोत्पादक दिखलाई देता है। इन चार अंगोंसे उच्च मानवजीवनकी दीवाल खड़ी होती है और इन्हीं चार अंगोंकी कसरतके लिए पर्युषण पर्वकी योजना की गई है। पर्युषण पर्वके समस्त कर्तव्य कर्मोंका इन्हीं चारके भीतर समावेश हो जाता है। *

---

१ तपका रहस्य और दानशीलका रहस्य जैनहितैषीके पिछले अंकोंमें निकल चुका है।

* जैनहितेच्छुके खास अंकसे अनुवादित।

पापका भान।

(महात्मा केशवचंद्रसेनकी डायरीसे)

मेरा हृदय निरन्तर यही पुकारता रहता है कि मैं पापी हूँ, मैं पापी हूँ। दो पहरको, शामको, हर समय जबतक कि मैं जागता रहता हूँ तबतक इस पापके भानको मैं दूर नहीं कर सकता। संसारके शब्दकोषमें चोरी, लूटमार आदि पाप कहे जाते हैं, पर मेरे शब्दकोषमें पापका अर्थ हृदयका काँटा, मनकी पीडित दशा और दुर्बलता है। पापी होनेकी कल्पनाको भी मेरा मन पाप समझता है। पापमय बर्तावको ही पाप मानकर मैं सन्तुष्ट नहीं हुआ; किन्तु पापी बननेकी योग्यताका होना, पापका पात्र होना यह भी मेरे मनको कष्ट पहुँचाता है। जब अन्तरात्माका प्रकाश पहली ही बार मेरे हृदयपर पड़ा, तब प्रमाद, जड़ता, निर्बलता और अनेक प्रकारकी विषयाभिलाषायें आदि छोटे बड़े पापोंको मैंने देखा। ये सब अनिष्टके मूलकारण वहाँ गुप्तरूपसे छुप रहे थे और यदि अन्तरात्माका प्रकाश उनपर पहले पड़ा हुआ होता तो वे इस समय देख भी न पड़ते। जबतक यह स्थूल शरीर है तब तक काम क्रोधादिके कारण भी हैं। मैं यह नहीं कहता कि मनुष्य पापमें ही पैदा हुआ है, किन्तु जब मनुष्यकी प्रवृत्ति

" क्या तू आज खानेका कल खा सकेगा ? तू पैसेवाला है और सुखसे खाता–पीता है, इसलिए समझता नहीं है कि तेरा नौकर गरीब है और पैसेके बिना उस बेचारेको अनेक कष्ट सहना पड़ते हैं; इस दशामें भी तू उसकी चढ़ी हुई तनख्वाह कल देनेको कहता है !" इससे अधिक और क्या कहूँ ? दुनियामें ऐसा एक भी पाप नहीं जिसे मैं न कर सकूँ। अपनी इस स्थितिके देखते मेरी उन लोगोंपर भी श्रद्धा नहीं होती कि जो पवित्रपनेका अभिमान करते हैं। मुझे यदि कोई पापी कहे तो मैं जरा भी शरमिन्दा नहीं होता। और सच भी है कि जो मनुष्य हृदयमें रहनेवाले लाखों पापोंको हमेशा ही गिना करता है, उसे यदि कोई पापी कहकर पुकारे तो उसके लिए बुरा क्यों माना जाय ? अरे लोगो, जरा आँखें खोलकर देखो कि जिसे तुम इतना मान देते हो, वह कैसा पापी है। तुम उस पापीको पापरूपमें देखतक नहीं सकते, विचार तक नहीं सकते इससे मेरा पश्चात्ताप, मेरा कष्ट बहुत ही उग्ररूप धारण कर उठता है।

परन्तु परमात्माकी मुझपर कृपा है। इसलिए जब मैं दूसरी दृष्टिसे देखता हूँ तो मुझे जान पड़ता है कि मेरे समान सुखी मनुष्य थोड़े ही होंगे। ये पापरूपी नरकके कीड़े–जो आँख, कान, और जबानद्वारा उभराते रहते हैं तथा बाहर आते रहते हैं–मेरा हित ही करते हैं। एक ओर जैसे मैं नरकका सा अनुभव करता हूँ उसी तरह दूसरी ओर स्वर्गका सा अनुभव भी करता रहता हूँ। जो शरीर बहुत समयसे रोगवश हो रहा है और अनेक तरहकी व्याधियोंसे घिर

गया है उसमें रोगके स्थानका निर्णय करना बहुत ही कठिन है; परन्तु निरोगी शरीरमें व्याधिका चिह्न बहुत जल्दी जान लिया जाता है। यही कारण है कि अन्तरात्मा द्वारा प्रकाशित हृदयमें पापरूपी रोगका मुझे झटसे भान हो जाता है। मैं तुरन्त ही उसका उपचार करने लग जाता हूँ और तब मैं ईश्वराराधन और योगसाधनामें तल्लीन हो जाता हूँ। जो दस पाँच ही पापोंका भान मुझे होता रहता हो, या दस पाँच ही पापोंको मैं अपने द्वारा होनेकी कल्पना कर बैठूँ और उन्हें दूर होनेपर मैं अपने आत्माको पवित्र मान लूँ तो यह मेरी भूल होगी; पर मेरा अन्तरात्मा तो मुझमें असंख्य पापोंका भान सदा जागृत रखता है और एकके पीछे एकको, इसी तरह सब पापोंके दूर करने और आगे आगे उन्नति करते रहनेके लिए प्रेरणा करता रहता है। कभी नास्तिक दशामें मैं ऐसा भी बोल उठता हूँ कि "क्या ईश्वर है? खीष्ट और चैतन्यआदिके प्रकाशमय मुख क्या अब तक मौजूद है?" इस शंकाके समयमें मुझे कितना कष्ट होता है, उसे मैं क्या कहूँ? तब "अरे पापी! अब भी तू इस बातकी शंका करता है?" इस प्रकार कहकर और दौड़-धूप करके मैं शान्तिनगरके आनन्दाश्रममें प्रवेश करता हूँ। मनुष्य एकबार जब तक रोगी न हो तब तक उसे तन्दुरुस्तीकी कीमत मालूम नहीं होती। मैंने जिस प्रकार संतापका अनुभव किया है उसी प्रकार उससे छुटकारा पानेकी आनन्ददशाका भी अनुभव किया है। जिस प्रकार घड़ीका मिनिटका काटा निरन्तर टकटक करता रहता है उसी प्रकार मेरे हृदयमें भी स्वर उठता रहता है कि

" अभी तुझे बहुत कुछ प्राप्त करना है। तू कुछ भी नहीं है। तेरी प्रगति अभी प्राथमिक स्थिति की है।" घोड़े पर जिस प्रकार चाबुक की मार पड़ती है उसी प्रकार मुझपर भी इस अन्तरस्वरके चाबुककी मार पड़ती रहती है। इन सबमें यदि मैं कुछ नयापन देखता हूँ तो वह यह है कि जब मैं रोता हूँ तब हँसता भी हूँ। ज्योंही मेरा रोना बढ़ता है त्योंही हँसना भी बढ़ता है। जो दवा तन्दुरुस्ती दे सकती है उसे ऐसा कौन अभागा होगा जो न पिये? मैं तो यही चाहता हूँ कि मेरे पापोंका भान बढ़ता ही रहे। पापके भानमेंसे उत्पन्न होने वाले पश्चात्ताप और कष्टादिकों मैं सदा चाहता हूँ। परमात्माकी सत्ता ऐसी प्रेममय है कि कष्टोंमें भी वह आनन्द देती है। अपराधका जो भान कष्ट देता है वह आनन्द भी देता है। पापोंका पश्चात्ताप आत्माको परमात्माके साथ मिलाता है। परमात्माकी सत्ताको समझनेके बाद और उस सत्ताके साथ सम्मुखताका अनुभव किये बाद प्रायः कष्ट और सन्ताप कुछ गिनतीमें नहीं रहते। जिसने उस सत्ताको अपना सर्वस्व अर्पण कर दिया उसे फिर किस बातकी चिन्ता? इस सत्ताके साथमें बेचारे पापोंकी सत्ता किस खेतकी मूली है?

मित्रो, मैंने तुम्हें जीवनकी अँधेरी और उजली इन दोनों दिशाओंका ज्ञान कराया। जो तुमने कोई पाप किया हो तो अपने आत्माको असुखी होने दो। शान्तिस्वरूप परमात्मा तुम्हारे पास आकर तुम्हारे हृदयको अपनी स्वरूपभूत शान्तिसे खूब भर देगा।

उदयलाल काशलीवाल।

जैनसिद्धान्तभास्कर ।

(३)

भास्करकी दूसरी तीसरी किरणमें जितने लेख हैं उनमें 'पद्मपुराण' और 'हरिवंश पुराण' शीर्षक दो लेख उसके सम्पादककी योग्यताको बहुत ही स्पष्टतासे प्रकट करनेवाले हैं, इसलिए हम सबसे पहले उन्हींकी आलोचना करना चाहते हैं:--

इन लेखोंमें रविषेणाचार्यकृत पद्मपुराण और जिनसेनाचार्यकृत हरिवंशपुराणके मङ्गलाचरण, प्रशस्ति और कथासूत्रके श्लोक उद्धृत करके उनका अनुवाद लिख दिया गया है। अच्छा होता यदि सम्पादक महाशय अनुवाद प्रकाशित करनेकी कृपा न करते—इससे उनकी बहुत कुछ प्रतिष्ठा बनी रहती। ये अनुवाद साफ साफ बतला रहे हैं कि वे केवल संस्कृतज्ञानसे ही नहीं, विचारबुद्धिसे भी शून्य हैं। उनमें इतनी भी योग्यता नहीं कि अनुवादोंको पढ़कर यह जान लें कि इनमें कुछ दोष है या नहीं। दूसरोंसे लेख लिखवाने और लेख संग्रह करनेके सिवाय सम्पादकका यह भी कर्तव्य है कि वह दूसरोंके लेखोंकी जाँच कर सके—यह समझ सके कि वे प्रकाशित करने योग्य हैं या नहीं। पद्मपुराण और हरिवंशके उक्त लेखोंके विषयमें सेठ पदमराजजी यह कहकर छुट्टी नहीं पा सकते कि उनका अनुवाद स्वयं हमने नहीं किया है, इसलिए हम उसके उत्तरदाता नहीं हैं। यदि ऐसा कहेंगे तो वे विद्वानों-

की दृष्टिमें और भी गिर जायँगे—मानों वे यह बतला देंगे कि हम सम्पादकके कर्तव्यसे भी सर्वथा अज्ञान हैं।

पहली किरणमें पं० झमनलालजी महाशयने जो पाण्डित्य दिखलाया था इस किरण-युगलमें पं० हरनाथजी द्विवेदीने उसका भी नम्बर ले लिया। द्विवेदीजीने इन लेखोंमें केवल अपनी मूर्खताहीकी हद नहीं बतलाई है किन्तु अपने आश्रय-दाता सेठजीको भी कलशेपर चढ़ा दिया है। इस अनुवादमें जो भूलें हैं वे इतनी भद्दी हैं कि उन्हें जानकर स्वयं सेठ पद्मराजजी ही कह बैठेंगे कि हाय! मुझे इन पण्डितोंने बड़ा धोखा दिया!

यद्यपि अनुवादकी एक भी पंक्ति ऐसी नहीं है जिसमें कोई न कोई भूल न हो; परन्तु हम यहाँ केवल वही अंश उद्धृत करेंगे जिससे पाठक सारे अनुवादकी उत्तमताका अनुमान कर सकें।

पद्मपुराण।

पद्मपुराणके प्रारंभमें ग्रन्थका संक्षिप्त कथासूत्र है। यह लगभग ९४ श्लोकोंमें है। इसे इस ग्रन्थका संक्षिप्त सूचीपत्र कहना चाहिए। इसका पहला श्लोक यह है:—

पद्मवेष्टितसम्बधकारणं तावदत्र च।
त्रैशलादिगतं वक्ष्ये सूत्र संक्षेपि तद्यथा॥ ४५॥

इसका भावार्थ यह है कि "मैं यहाँ उस कथासूत्रको संक्षेपमें कहूँगा जिसमें पद्मचरित (पद्मचेष्टित) के कहेजानेका कारण बतलाया है और जिसे त्रिशलाके पुत्र महावीर भगवान् आदिने प्रकट

किया है।" पं० हरनाथजी इसका अनुवाद करते हैं—" त्रिशलादिनायकसम्बन्धी वृतान्त इस पद्मपुराणमें मैं कहता हूँ।" कहिए पाठक, आप क्या समझे? त्रिशलादिनायकसम्बन्धी वृत्तान्त आपने और भी कभी इस पुराणमें सुना था?

उपसर्गं जयन्तस्य केवलज्ञानसम्पदम्।
नागराजस्य संक्षोभं विद्याहरणसर्जनं ॥ ५२ ॥

इसका वास्तविक अर्थ इस प्रकार होता है—" संजयन्त नामक मुनिपर विद्युद्दंष्ट्र नामक विद्याधरके द्वारा अनेक तरहके उपसर्ग या उपद्रव होना, मुनिका केवलज्ञान प्राप्त करना, मुनि-उपसर्गके कारण धरणीन्द्रका विद्युद्दंष्ट्रपर क्रोधित होकर उसकी विद्यायें छीन-लेना और फिर यह बतलाना कि ये विद्यायें तुझे इस प्रकार तप आदि करनेसे फिर प्राप्त हो जायँगी।" द्विवेदीजी इसका अर्थ करते हैं—" जयन्तका उपसर्ग और केवल ज्ञानकी प्राप्ति, विद्याध्ययनाध्यापनमें नागराजका संक्षोभ।" क्या सेठ पद्मराजजी अनुवादकके इस वाक्य—' विद्याध्ययनाध्यापनमें नागराजका संक्षोभ ' का क्या अर्थ होता है बतलानेकी कृपा करेंगे? विद्या पढ़ने पढ़ानेमें नागराज नाराज़ हो गया, यही कि और कुछ?

अजितस्यावतरणं पूर्णाम्बुदसुतासुखम्।
विद्याधरकुमारस्य शरणं प्रतिसंश्रयम ॥ ५३ ॥

इसका सीधा अर्थ यह है—" अजितनाथका जन्म, पूर्णमेघके पुत्र मेघवाहनकी विपत्ति, और उस विद्याधरकुमार (मेघवाहन) का भागकर अजितनाथके समवसरणका आश्रय लेना।" पर

अनुवादक महाशय इसका अर्थ करते हैं—"अजितनाथका अवतार, पूर्णाम्बुदकी लड़कीका सौख्य, विद्याधरकुमारकी शरण।" यदि थोड़ीसी तकलीफ उठाकर भाषा पद्मपुराण ही बाँच लिया होता तो बेचारा पूर्णमेघका लड़का लड़की होनेसे तो बच जाता!

तडित्केशस्य चरितमुदधेरमरस्य च।
किष्किन्धान्धखगोत्पादं श्रीमालाखेचरागमम् ॥ ५६ ॥
वधाद्विजयसिंहस्य कोपं चाशनिवेगजम्।

इसका वास्तविक अर्थ यह है—"विद्युत्केश विद्याधरका चरित; उसकी रानी श्रीचन्द्राके कुचोंको उद्यानक्रीड़ाके समय एक बन्दरने नोच लिया इस कारण विद्युत्केशका उसे बाणसे मार डालना और उसका उदधिकुमार जातिका देव होना. इस तरह उदधिदेवका चरित; किष्किन्ध और अन्धक विद्याधरोंकी उत्पत्ति. आदित्यपुरके राजकी कन्या श्रीमालाके स्वयम्वरके लिए विद्याधर राजाओंका आगमन, श्रीमालाको किष्किन्धको व्याह लेनेके कारण विद्याधरोंमें युद्ध, उसमें विजयसिंहका मारा जाना और इस कारण उसके पिता अशनिवेगका क्रोधित होना।" परन्तु अनुवादक महाशय यह अर्थ करते हैं—"समुद्र–देवता तथा तडितकेशका चरित्र, विजयसिंहके मारनेसे वज्रसदृश वेगवाले क्रोधका वर्णन।" देखिए, कितने संक्षेपमें कर दिया! द्विवेदीजीने समझा होगा कि जैनोंके यहाँ भी समुद्रको देवता माना होगा, इस लिए उसका चरित पद्मपुराणमें अवश्य लिखा होगा! ५६ वें श्लोककी दूसरी तुकका अर्थ लिखनेकी तो आपने आवश्यकता ही न समझी। तीसरी तुकमें

बेचारे अशनिवेगकी तो खूब ही दुर्दशा कर डाली—क्रोधका विशेषण बनाकर उसके अस्तित्वको ही मिटा डाला !

कथासूत्रका साराका सारा अनुवाद इसी तरहका किया गया है। बेचारे द्विवेदीजी करें भी क्या ? जैनपद्मपुराणकी कथाओंकी उन्हें कभी हवा भी लगी हो तब न ? यह कार्य तो सेठ पद्मराजजीका था—वे तो अपनेको जैनधर्मका भी विद्वान् समझते हैं; यदि एक नजर इधर डाल लेते, तो यह अनर्थ क्यों होता ?

ग्रन्थके अन्तिमभागके भी कुछ श्लोकोंके अनुवादका नमूना लीजिए:—

उपायाः परमार्थस्य कथितास्तत्त्वतो बुधाः
सेव्यतां शक्तितो येन निष्क्रामथ भवार्णवात् ॥ ३७ ॥

इसका अर्थ यह है कि "हे सज्जनो, परम अर्थ अर्थात् मोक्षके जो वास्तविक उपाय (दर्शन ज्ञान चारित्र) कहे गये हैं उन्हें अपनी शक्तिके अनुसार सेवन करो जिससे संसार समुद्रसे पार हो जाओ।" परन्तु अनुवादकजी कहते हैं—"परमार्थके ठीक ठीक उपाय विद्वान् ही (आप या सेठजी ?) कह गये हैं, इस लिए यथाशक्ति इनकी सेवा करके (अवश्य ही) संसार समुद्रसे आप लोग पार होंगे।" लीजिए, भास्करका यह नया सिद्धान्त सुन लीजिए और इसको शीघ्र अमलमें लाइए !

यह समझमें न आया कि पद्मपुराणके मंगलाचरण कथासूत्र आदिमें ये १२ पृष्ठ क्यों काले किये गये ? इनमें ग्रन्थकर्त्ताका

नाम और ग्रन्थनिर्माण समय, इन दो बातोंके सिवाय और तो कोई भी ऐतिहासिक बात नहीं आई। बल्कि ग्रन्थान्तके जिन ५–६ श्लोकोंमें रविषेणने अपनी गुरुपरम्परा—'इन्द्रगुरु–दिवाकरयति–अर्हन्मुनि–लक्ष्मणसेन–रविषेण'—बतलाई है उनका ही लोप कर दिया। ये श्लोक प्रायः सब ही प्रतियोंमें मिलते हैं, और भाषा-वचनिकामें भी इनका अर्थ किया गया है, फिर मालूम नहीं सम्पादकने उक्त श्लोकोंको इतिहासकी चीज़ क्यों न समझा? कथासूत्र आदिका उपयोग तो तब मालूम होता जब सम्पादक महाशय इस ग्रन्थके विषयमें एकाध स्वतंत्र लेख लिखनेकी कृपा करते और उसमें रविषेण आदिके विषयमें कुछ नया प्रकाश डालते। पर यह लिखें कैसे? इसके लिए तो परि-श्रमकी ज़रूरत होती है! बिना परिश्रमके ही प्रशंसाकी लूट करनेवाले भला इस झंझटमें क्यों पड़ने लगे!

हरिवंशपुराण।

अब हरिवंशपुराणके मंगलाचरणादिके अनुवादके भी कुछ नमूने देख लीजिए:—

जीवसिद्धिविधायीह कृतयुक्त्यनुशासनम्।
वचः समन्तभद्रस्य वीरस्येव विजृम्भते॥ ३०॥

इस श्लोकका भावार्थ यह है कि "समन्तभद्राचार्यके वचन—जो कि 'जीवसिद्धि' और 'युक्त्यनुशासन' नामक शास्त्रोंके प्रगट करनेवाले हैं—महावीर भगवानके वचनोंके समान प्रकाशित

होते हैं। " परन्तु द्विवेदीजी इसका अर्थ करते हैं-" संसारमें जीवसिद्धि करके अकाट्य युक्तियोंसे भरी हुई संभ्रान्त वीरकेसे श्रीसमन्तभद्र स्वामीकी बातें आज सर्वत्र माननीय हो रही हैं। " बेचारे द्विवेदीजी तो ठहरे कोरे काव्यतीर्थ, इसलिए वे तो समझें ही क्या कि जीवसिद्धि और युक्त्यनुशासन नामके कोई ग्रन्थ भी हैं—उन्हें तो अपना विभक्त्यर्थ करनेसे मतलब; और सम्पादक ठहरे सेठजी, उन्हें अपने सैकड़ों कामोंके मारे फुरसत कहाँ जो ऐसी बातें सोच सकें? इसके आगेके प्रायः सभी श्लोकोंका अर्थ ऐसा ही ऊँटपटाँग किया गया है।

महासेनस्य मधुरा शीलालङ्कारधारिणी।
कथा न वर्णिता केन वनितेव सुलोचना॥ ३४॥

इस श्लोकमें महासेन कविके ' सुलोचना कथा ' नामक काव्यका उल्लेख किया गया है, परन्तु उसे कथाका विशेषण मानकर यह अर्थ किया गया है-" सुन्दर आँखवाली स्त्रीकी सी महासेनकी विनयालंकारालंकृता कथा कौन नहीं वर्णित करेगा? "

कृतपद्मोदयोद्योता प्रत्यहं परिवर्तिता।
मूर्तिः काव्यमयी लोके रवेरिव रवेः प्रिया॥ ३५॥

वरांगनेव सर्वांगैर्वरांगचरितार्थवाक्।
कस्य नोत्पादयेद्गाढमनुरागं स्वगोचरम्॥ ३६॥

इन श्लोकोंमें पद्मपुराणके कर्त्ता रविषेणकी और उनकी रचनाकी प्रशंसा की गई है। इनका भावार्थ इस प्रकार है-ये बड़े ही सुंदर श्लोक हैं—" रवि (सूर्य) के समान पद्मोदय करनेवाली

(कमलोंको खिलानेवाली और कविके पक्षमें पद्मपुराणको रचनेवाली), रविषेणकी काव्यमयी प्यारी मूर्ति इस लोकमें प्रतिदिन परिवर्तित होती रहती है (सूर्य प्रतिदिन परिवर्तन करता रहता है और कविके काव्यकी प्रतिदिन आवृत्तियाँ होती रहती हैं) । उन्हीं रविषेणका वरांगचरित नामका काव्य वारांगनाके समान किसको स्वानुभवगोचर गहरा अनुराग उत्पन्न नहीं करता ? " भास्करमें इसका अर्थ इस प्रकार किया गया है–" प्रतिदिन काव्यशोभा अथवा लक्ष्मीको बढ़ानेवाली संसारमें काव्यमूर्तिकी सी सूर्यप्रियाकी नाई वरांग शब्दको चरितार्थ करनेवाली वरांगनाकी ऐसी कविता भला किसके मनमें सुभग अनुराग उत्पन्न नहीं करती । " सावधान पाठक ! कहीं बीचमें ठहर न जाइए. बराबर एक स्वासमें पूरा पाठ पढ़ जाइए ! रहा अर्थ, सो उसकी तो आप चिन्ता ही मत कीजिए, इन वाक्योंपरसे उसका समझना तो छद्मस्थोंकी बुद्धिसे अतीत

हरिवंशपुराणके मंगलाचरणादिकी प्रत्येक पंक्ति अशुद्धियोंसे भरी हुई है । इतना स्थान नहीं कि उन सब अशुद्धियोंकी अलोचना की जाय–पाठकोंको वह रुचिकर भी नहीं हो सकती । मालूम नहीं सेठजी ऐसे अनधिकारी लोगोंके हाथसे जैनग्रन्थोंके अभिप्रायोंकी यह दुर्दशा क्यों कराते हैं ?

चन्द्रगिरिका परिचय ।

यह लेख छह पेजका है । इसमें श्रवणबेल्गुलके चन्द्रगिरि नामक पर्वतका और उसपरके मन्दिर आदिका वर्णन है । संभवतः यह राइस साहबके अँगरेज़ी ग्रन्थ ' इनस्क्रप्शन एट् श्रवणबेल-

गोलाके आधारसे लिखा गया है और इसी कारण इसमें अत्युक्तियों और अति प्रशंसाओंका अभाव न होनेपर भी ऊँटपटाँग बातें बहुत कम हैं। इसमें एक जगह लिखा है कि महाराज अशोकने श्रवणबेलगुल ग्रामके नाममें सरोवर शब्द जोड़ दिया। पर यह न मालूम हुआ कि इसके लिए कुछ प्रमाण भी है या नहीं। चन्द्रगुप्तबस्ती नामक मन्दिरके विषयमें भी लिखा है कि उसे सम्राट् अशोकने बनवाया था। इससे मालूम होता है कि सम्पादक महाशय अशोकको भी जैन समझते हैं! पहले अंकके चन्द्रगुप्तवाले लेखमें उन्होंने एक जगह लिखा भी है कि अशोक अपने राज्याभिषेकके १३ वें वर्ष तक जैन था—पीछे बौद्ध हो गया था। परन्तु यह निरी गप्प है और साम्प्रदायिक मोहवश लिखी गई है। बौद्धधर्म धारण करनेके पहले वह वेदानुयायी था—कमसे कम यह तो निश्चित है कि जैन नहीं था। अपने गिरनारके पहले शिलालेखमें वह स्पष्ट शब्दोंमें लिखता है कि—" पहले मेरी पाकशालामें प्रतिदिन हजारों जीव मारे जाते थे; परन्तु अब (बौद्धधर्म धारण करने पर) भोजनके लिए केवल तीन ही प्राणी मारे जाते हैं और आगे ये भी न मारे जायँगे। " इससे स्पष्ट है कि वह पहले मांसभक्षी अजैन था। इस विषयमें और भी अनेक प्रमाण दिये जा सकते हैं। सम्पादक महाशयके पास जैन होनेके कोई प्रमाण हों तो उन्हें प्रकट करना चाहिए। कमसे कम किसी जैनग्रन्थका ही प्रमाण देना चाहिए जिसमें लिखा हो कि अशोक जैन था।

बाहुबलिस्वामीकी प्रतिमापर एक तरफ लिखा है कि चामुण्डरायने बनवाई और दूसरी ओर लिखा है कि गंगराजने चैत्यालय

बनवाया । सम्पादक महाशय कहते हैं कि " ये गंगकुलोत्पन्न परम जैनधर्माभिमानी महाराज गंगराज चामुण्डरायके दो सौ वर्ष पीछे हुए हैं ।" परन्तु गंगराज गंगकुलके किस राजाका नाम था और उसने कबसे कब तक राज्य किया है यह बतलानेकी आवश्यकता नहीं समझते । हमारी समझमें चामुण्डराय जिनके मंत्री थे वे महाराज राचमल्ल ही उक्त चैत्यालयके बनवानेवाले होंगे । वे गंगवंशके ही थे और जैनधर्मके अनुयायी थे । गंगराज नाम उन्हींके लिए आया है । जब दोनों लेख एक ही समयके लिखे हुए हैं तब गंगराजको चामुण्डरायके २०० वर्ष बादका बतलाना असंगत है । हाँ, राचमल्लके एक भाईका नाम रक्कस गंगराज था । उसने ई० सन् ९९७ से १००८ तक राज्य किया है । प्रसिद्ध जैन कवि नागवर्मा (चामुण्डरायके गुरु अजितसेनका शिष्य) इसका आश्रित कवि था । संभव है कि गंगराज उसीका संक्षिप्त नाम हो । गरज यह कि राचमल्ल या उनका भाई, इन दोमेंसे किसी एकको चैत्यालयका बनवानेवाला समझना चाहिए ।

इस लेखमें भी सम्पादकने तीन चार प्रतिज्ञायें की हैं जो अभीतक पूरी नहीं हुई हैं और शायद आगे भी न होंगी । इस तरहकी प्रतिज्ञायें करना उनकी लेखशैलीमें दाखिल है !

इस लेखमें चन्द्रगुप्तबस्ती आदिके जो ४–९ चित्र दिये हैं, वे राइस साहबकी पुस्तकसे ज्योंके त्यों उतार लिये गये हैं । उस समय फोटो आदि लेनेका अधिक सुभीता न होगा, इसलिये राइससाहबने मन्दिरोंके रेखाचित्र हाथसे खींच लिये होंगे और उन्हें

ही पुस्तकमें छपवा दिया होगा। बड़े अफसोसकी बात है कि जो जो सम्पादक अपने पत्रके एक एक अंकको एक एक वर्षमें तैयार करते हैं और इसका कारण साधनसामग्री जोड़नेका अटूट परि-श्रम बतलाते हैं तथा जो प्रत्येक अंकके लिए हज़ार हज़ार रुपया खर्च कर डालते हैं उनसे उक्त मन्दिरोंकी ताजा फोटो मँगवाकर न लगवाई गई !

दिगम्बरमतपर एक विदेशी विद्वान्का विचार ।

यह एक पादरी साहबके अँगरेजी लेखका अनुवाद है; पर यह नहीं बतलाया गया कि मूल लेख किस पुस्तकपरसे लिया गया और वह किस समयका लिखा हुआ है। लेख अच्छा है, पर पुराना मालूम होता है और इस कारण उसमें कई भ्रमपूर्ण बातें मौजूद हैं जिन्हें इस समयके इतिहासज्ञ नहीं मानते। जैसे, इसमें एक जगह लिखा है कि गौतम (इन्द्रभूति) महावीरके शिष्य थे और वही पीछेसे बुद्ध नामसे प्रसिद्ध हुए। पर यह भ्रम है। महावीरके शिष्य गौतम गणधरसे गौतम बुद्ध पृथक् व्यक्ति हैं। पहले ब्राह्मण थे और दूसरे क्षत्रिय राजपुत्र। ग्रीक लोगोंने जिन जिम्नासोफिस्ट साधुओंका उल्लेख किया है उनको दिगम्बरजैन-सम्प्रदायके साधु सिद्ध करना बहुत कठिन है। उनकी चर्या दिगम्बर जैनसाधुओंसे बहुत भिन्न बतलाई गई है। केवल नग्न होनेसे या मांसभोजी न होनेसे उन्हें दिगम्बर कहना ज़बरदस्ती है। सिकन्दर बादशाहने जिस जिम्नासोफिस्ट साधुके पास अपना दूत भेजा था, वह ईश्वरका कर्तृत्व माननेवाला, अपक्व फलमूल

खानेवाला और नदीका जल पीनेवाला था। मालूम नहीं मूल लेखकका ध्यान इन बातोंकी ओर क्यों नहीं गया। इसमें एक जगह लिखा है कि "कपिलके बाद भारतवर्षमें जिनके धार्मिक साम्राज्यका डंका बज गया था वह जैनियोंके तत्त्ववेत्ता प्रातः-स्मरणीय तीर्थंकर श्री १००८ पार्श्वनाथ स्वामी थे।" क्या ये 'प्रातःस्मरणीय' आदि शब्द मूल लेखक पादरी साहबके लिखे हुए हैं? हमारी समझमें एक पादरी इस तरह कभी नहीं लिख सकता, तब सम्पादक महाशयको या अनुवादक महाशयको क्या आवश्यकता थी कि अपनी भक्ति और श्रद्धाको दूसरेके लेखमें घुसकर प्रकाशित करें? क्या आश्चर्य है कि लेखके अन्यान्य अंशोंमें भी इस भक्ति और श्रद्धाके मोहसे—जिसका इति-हाससे कोई सम्बन्ध नहीं है—सम्पादक महाशयने मूल लेखकके विचारोंमें भी थोड़ा बहुत परिवर्तन कर दिया हो और तब हम कैसे विश्वास कर सकते हैं कि लेखके सब विचार मूल लेखकके हैं? ऐसे अनुवादोंपर विश्वास करना जोखिमका काम है। एक ऐतिहा-सिक पत्रके अभिमानी सम्पादकको अनुवादकके उत्तरदायित्वका इतना भी ज्ञान न होना आश्चर्यका विषय है।

जिनसेनाचार्यका पाण्डित्य।

इसके लेखक पं० हरनाथजी द्विवेदी हैं। आपने आदिपुराणसे बहुतसे श्लोक उद्धृत करके यह बतलाया है कि जिनसेन स्वामी बड़े नामी कवि थे, उनकी उपमा, उत्प्रेक्षा, व्याकरणज्ञता आदि बहुत ऊँचे दर्जेकी की हैं। इस विषयमें हमें कुछ कहना नहीं है, हम भी जिनसेन

स्वामीको अच्छा कवि समझते हैं; परन्तु द्विवेदीजीने यह लेख हमारा विश्वास है कि केवल अपने सेठजीको प्रसन्न करनेके लिए लिखा है; उनके हृदयसे उसका कोई सम्बन्ध नहीं है। लेखमें तथ्य भी बहुत थोड़ा है। शब्दाम्बर और प्रशंसाकी भरमार ही अधिक है। बहुतसी अप्रासङ्गिक बातें भी लिख दी गई हैं। एक जगह आपने मालूम नहीं किसको लक्ष्य करके यह लिखा है कि—"कितने ही लोग भगवज्जिनसेनको एक साधारण विद्वान् निश्चित करनेके लिए लम्बी चौड़ी चेष्टा कर रहे हैं।" और फिर इसके लिए आपने पंचमकालको दोष दिया है। यह तो आपने एक ही कही। अरे भाई, उन्हें साधारण विद्वान् कौन बनाता है सो तो बतला दो; व्यर्थ ही पंचमकालको क्यों कोस रहे हो? एक इतिहासके पत्रमें इस प्रकारकी बातें अच्छी नहीं मालूम होतीं। किसीके बनानेसे कोई छोटा बड़ा नहीं बन सकता-जो जितना होता है उतना ही रहता है। आप जैसे चाहे जितने किरायेके लेखक मिल जावें, पर क्या आप समझते हैं कि इससे आपके सम्पादक महाशयकी योग्यता बढ़ जायगी? कभी नहीं।

लेखके अन्तिम भागमें जिनसेन और कालिदासके समान-भावव्यंजक दो दो श्लोक उद्धृत किये गये हैं। द्विवेदीजीने वास्तवमें अपने आन्तरिक विश्वासके अनुसार दिखलाना तो यह चाहा है कि कालिदासकी छाया लेकर जिनसेनने अपने श्लोक रचे हैं, परन्तु अपने भोले सेठजीको प्रसन्न करनेके लिए इस समानताका निष्कर्ष यह निकाला है—"उक्त श्लोकोंसे पाठक स्वयं विचार कर सकते

कि भगवज्जिनसेन और कविवर कालिदास ये दोनों समसामयिक कवि अपने काव्यमें सर्वोत्कृष्टता दिखलानेके लिए कितना प्रयास करते थे ? केवल प्रयास ही तक नहीं बल्कि सफलता भी प्राप्त करते थे, जिसकी साक्षिता उपर्युक्त पद्य ही दे रहे हैं। " वाह द्विवेदीजी ! इस जगह तो आपने सेठजीको खूब ही बनाया। हम लोगोंकी छोटीसी समझमें तो यह बात नहीं आई कि जो श्लोक बिलकुल मिलते-जुलते हुए हैं वे अपने अपने काव्यमें सर्वोत्कृष्टता दिखलानेके लिये बने हुए कैसे कहे जासकते हैं ? उनके विषयमें ऐसा क्यों न कहा जाय कि एकने दूसरेकी छाया ली है ? यदि आप कालिदास और जिनसेनको समसामयिक कहते हैं और सेठजीका ही मन रखना चाहते हैं तो यही क्यों नहीं कहते कि कालिदासने जिनसेनके श्लोकोंकी छाया ली है ? पर ऐसा आप क्यों लिखने लगे ? आप तो बेचारे सेठजीको बना रहे हैं !

अन्तमें आदिपुराणका एक श्लोक दिया है जिसमें ' अमोघशासन ' शब्द आया है। इस श्लोकमें राजा वज्रजंघके राज्यशासनकी प्रशंसा की गई है। इसके केवल ' अमोघ ' शब्दसे यह अर्थ निकालना कि कविने अमोघवर्ष महाराजका स्मरण किया है, जबर्दस्तीके सिवाय कुछ नहीं है। (क्रमशः)
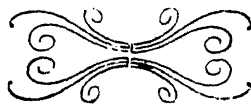
विधवा-सम्बोधन ।

(१)

विधवा बहिन, समझ नहिं पडता, क्यों उदास हो बैठी हो,
क्यों कर्तव्यविहीन हुई तुम, निजानन्द खो बैठी हो ।
कहाँ गई वह कान्ति, लालिमा, खोई चंचललाई है,
सब प्रकारसे निरुत्साहकी, छाया तुमपर छाई है ॥

(२)

अंगोपांग न विकल हुए कुछ, तनुमें रोग न व्यापा है;
और शिथिलता लानेवाला, आया नहीं बुढापा है ।
मुरझाया पर वदन, न दिखती जीनेकी अभिलाषा है,
गहरी आहें निकल रही हैं, मुँहसे, घोर निराशा है ॥

(३)

हुआ हाल क्यों भगिनी ऐसा, कौन विचार समाया है,
जिसने करके विकल हृदयको, 'आपा' भाव भुलाया है ।
निजपर का नहिं ज्ञान, सदा अपध्यान हृदयमें छाया है
भववनमें न भटकनेका भय, क्या अन्धेर मचाया है ॥

(४)

शोकी होना स्वात्मक्षेत्रमें, पाप बीजका बोना है,
जिसका फल अनेक दुःखोंका संगम आगे होना है ।
शोक किये क्या लाभ ? व्यर्थ ही अकर्मण्यअन जाना है,
आत्मलाभसे वंचित होकर, फिर पीछे पछताना है ॥

(५)

योग अनिष्ट, वियोग इष्टका, अघतरु दो फल लाता है,
फल नहिं खाना वृक्ष जलाना, इह परभव सुखदाता है ।

इससे पतिवियोगमें दुख कर, भला न पाप कमाना है,
किन्तु स्व-पर-हितसाधनमें ही, उत्तम योग लगाना है ॥

(६)

आत्मोन्नतिमें यत्न श्रेष्ठ है, जिस विधि हो उसको करना,
उसके लिए लोकलज्जा अपमानादिकसे नहिं डरना ।
जो स्वतंत्रता लाभ हुआ है, दैवयोगसे सुखकारी,
दुरुपयोगकर उसे न खोओ, जिससे हो पीछे ख्वारी ॥

(७)

माना हमने, हुआ, हो रहा, तुमपर अत्याचार बड़ा,
साथ तुम्हारे पंचजनोंका, होता है व्यवहार कड़ा ।
पर तुमने इसके विरोधमें, किया न जब प्रतिरोध खड़ा,
तब क्या स्वत्व भुलाकर तुमने, किया नहीं अपराध बड़ा ?

(८)

स्वार्थसाधु नहिं दया करेंगे, उनसे इस अभिलाषाको-
छोड़, स्वावलम्बिनी बनो तुम, पूर्ण करो निज आशाको
सावधान हो स्वबल बढ़ाओ, निजसमाज उत्थान करो,
' दैव दुर्बलोंका घातक ' इस नीतिवाक्यपर ध्यान करो ॥

(९)

बिना भावके बाह्यक्रियासे, धर्म नहीं बन आता है,
रक्खो सदा ध्यानमें इसको, यह आगम बतलाता है ।
भाव बिना जो व्रत नियमादिक, करके ढोंग बनाता है,
आत्मपतित होकर वह मानव, ठग-दंभी कहलाता है ॥

(१०)

इससे लोकदिखावा करके, धर्मस्वाँग तुम मत धरना,
सरल चित्तसे जो बन आए, भावसहित सोही करना ।

प्रबल न होने पायें कषायें, लक्ष्य सदा इसपर रखना,
स्वार्थत्यागके पुण्य पन्थपर, सदा काल चलते रहना ॥

(११)

क्षणभंगुर सब ठाठ जगतके, इनपर मत मोहित होना
काया मायाके धोखेमें, पड़, अचेत हो नहिं सोना ।
दुर्लभ मनुज जन्मको पाकर, निजकर्तव्य समझ लेना,
उसहीके पालनमें तत्पर, रह, प्रमादको तज देना ॥

(१२)

दीन दुखी जीवोंकी सेवा, करनी सीखो हितकारी,
दीनावस्था दूर तुम्हारी, हो जाए जिससे सारी ।
दे करके अवलम्ब उठाओ निर्बल जीवोंको प्यारी,
इससे वृद्धि तुम्हारे बलकी, निःसंशय होगी भारी ॥

(१३)

हो विवेक जागृत भारतमें, इसका यत्न महान् करो,
अज्ञ जगतको उसके दुख दारिद्य आदिका ज्ञान करो ।
फैलाओ सत्कर्म जगतमें, सबको दिलसे प्यार करो,
बने जहाँ तक इस जीवनमें, औरोंका उपकार करो ॥

(१४)

'युग-वीरा' बनकर स्वदेशका फिरसे तुम उत्थान करो,
मैत्री भाव सभीसे रखकर, गुणियोंका सन्मान करो ।
उन्नत होगा आत्म तुम्हारा, इन ही सकल उपायोंसे,
शांति मिलेगी, दुःख टलेगा, छूटोगी विपदाओंसे ॥

देवबन्द, जि० सहानुपुर
ता. १९-७-१५

समाजसेवक—
जुगलकिशोर मुख्तार ।

ज्वालापुर महाविद्यालय और गुरुकुल कांगड़ी।

उक्त दोनों संस्थायें आर्यसमाजकी हैं। पहली संस्था अर्थात् महाविद्यालय हरिद्वारसे लगभग ३ मीलके अंतरपर ज्वालापुरके निकट रेलकी सड़क पर एक बड़े रम्य और विशाल क्षेत्र पर स्थित है। इसे आर्यसमाजके प्रसिद्ध विद्वान् स्वामी दर्शनानंदजीने स्थापित किया था। इसमें संस्कृत प्रथम भाषा और अँगरेजी द्वितीय भाषाके तौर-पर पढाई जाती है। इस समय इसमें लगभग ८० विद्यार्थी अध्ययन कर रहे हैं। समस्त विद्यार्थी ब्रह्मचारी हैं। इनके माता पिताओंने विद्यार्थी अवस्था पर्यंतके लिए इन्हें विद्यालयके संरक्षणमें छोड़ दिया है। इस विद्यालयमें विद्यार्थियोंसे किसी प्रकारकी कोई फीस वगैरह नहीं ली जाती। सम्पूर्ण खर्च विद्यालयको ही उठाना होता है।

इस विद्यालयमें जितने अध्यायक हैं, सब विद्वान् हैं। विद्वानोंकी यहाँ बहुत अच्छी मंडली है। यद्यपि यहाँ पर संस्कृतज्ञ विद्वानोंकी ही बहुलता है तथापि इससे अँगरेजी आदिकी शिक्षामें किसी प्रकारकी क्षति नहीं रहती है, कारण कि जितने भी कार्यकर्त्ता हैं सब समयके अनुसार उपयोगी शिक्षाकी आवश्यकताको समझे हुए हैं।

ब्रह्मचारी देखनेमें बड़े सुंदर स्वस्थ और प्रसन्नचित्त मालूम होते हैं। उनकी आकृतिसे मालूम होता है कि एकदिन ये लोग बड़े विद्वान् होंगे और इनके द्वारा आर्यसमाजके सिद्धांतोंका बहुत प्रचार होगा। बच्चोंमें आपसमें बड़ा प्रेम है। पढ़ने लिखनेकी तरफ़ विशेष रुचि है। पाठ्य पुस्तकोंके अतिरिक्त अन्य पुस्तकें भी बड़े प्रेमसे पढ़ते हैं।

इस विद्यालयका प्रबंध भी बहुत प्रशंसनीय है। बच्चोंके चरित्र-गठनकी ओर प्रबंधकोंका विशेष ध्यान है। ब्रह्मचर्यकी पूर्ण रूपसे रक्षा कराई जाती है। खेल कूद और व्यायामका भी पूरा पूरा ख़याल रक्खा जाता है। विद्यालयके पास ही नहर है जिसमें बच्चे ख़ूब तैरते हैं।

पाकशाला, यज्ञशाला तथा स्नानागार बड़े ही उत्तम और उचित रूपसे बने हुए हैं। भोजनशाला इतनी बड़ी है कि उसमें एक साथ ७०, ८० ब्रह्मचारी बैठकर भोजन कर सकते हैं। वह इतनी साफ़ रहती है कि कहीं एक तिनका भी दिखलाई नहीं देता। यज्ञ-शाला इतनी विशाल है कि १००–१५० व्यक्ति चारों ओर बैठकर आनंदसे हवन कर सकते हैं। स्नानागार भी इतना विस्तरित है कि ४०, ५० विद्यार्थी एक समयमें स्नान कर सकते हैं। फरश तीनों स्थानोंका पक्का बना हुआ है। पानीसे धो डालनेसे सब साफ़ हो जाता है।

यहाँका औषधालय भी विशेष रूपसे उल्लेखनीय है। जो वैद्य यहाँपर हैं वे बड़े ही योग्य और अनुभवी हैं और इतने प्रसिद्ध हैं

कि बाहरसे भी इलाजके लिए लोग उनके पास आते हैं और ओषधि मँगाते हैं।

भारतोदय नामका हिन्दी साप्ताहिक पत्र भी यहाँसे निकलता है।

यहाँके अधिष्ठाता तथा कार्यकर्ता बड़े ही सज्जन पुरुष हैं। उनका व्यवहार दर्शकों प्रति बड़ा चित्ताकर्षक है। इस विद्यालयमें दिखावा बहुत कम है और काम बहुत ज्यादह होता है। यहाँके पठनक्रमसे यद्यपि हम पूर्ण रूपसे सहमत नहीं हैं; परंतु यह एक ऐसा प्रश्न है कि जिसका सम्बंध विद्यालयकी कमेटी अथवा आर्यसमाजसे है। चाहे पठनक्रम कुछ हो, तात्पर्य इससे है कि बालकोंपर शिक्षाका क्या प्रभाव पड़ता है। आया बालकोंका स्वास्थ्य और उनका ज्ञान बढ़ता है या नहीं? सो दोनों चीजें यहाँ पर बढ़ रही हैं। बच्चोंका चरित्रगठन खूब होता है। यहाँकी शिक्षा पक्षपातरहित उदार है। यद्यपि यह संस्था आर्यसमाजकी है परंतु बच्चोंके हृदयोंमें पक्षपातका बीज यहाँ नहीं बोया जाता और न किसी धर्मविशेषसे अथवा व्यक्तिविशेषसे द्वेष रखना सिखलाया जाता है। हमने विद्यालयके एक कमरेमें दिगम्बर जैनद्वारा प्रकाशित स्वर्गीय सेठ माणिकचन्द्रजीका कैलेंडर भी लटका हुआ देखा। जान पड़ता है कि अब पक्षपात और द्वेष संसारसे कम होता जाता है। जैनियोंको भी कम कर देना उचित है। अब समय इस बातका है कि प्रेमसे अपने मतके सिद्धान्तोंका प्रकाश किया जाय। आपसमें लड़ने भिड़ने और द्वेषभाव रखनेका अब समय नहीं रहा है।

दूसरी संस्थाका नाम **गुरुकुल कांगड़ी** है। यह बहुत पुरानी और बड़ी संस्था है। इसके देखनेकी इच्छा हमारे मनमें बर्षोंसे थी। हरिद्वारसे दो मीलके अंतर पर कनखल है। कनखलसे गंगापार करके पैदल सैर करते हुए गंगाकी घाटियोंमेंसे होते हुए हम गुरुकुल पहुँचे। रास्तेमें ऐसे जंगल पड़ते हैं कि कहीं मनुष्यकी परछांई मी दिखलाई नही देती। वास्तवमें गुरुकुल जैसी संस्थाका ऐसे ही स्थान पर होना उपयुक्त है।

गुरुकुलकी इमारतसे बाहर, बाहरसे आये हुए लोगोंके लिए एक धर्मशाला बनी हुई है। उसीमें हम ठहरे। थोड़ी ही देर हुई थी कि इतनेमें गुरुकुलका चपरासी आया और उसने हमसे स्नान वगैरहके लिए कहा। हम स्नान ध्यान वगैरहसे निवृत्त होकर डेरेसे चले थे। तब वह हमको बड़े प्रेमके साथ भोजन-शालामें ले गया। भोजनशालामें हमारा पहुँचना था कि वहाँके प्रबंधकोंने बिना किसी प्रकारकी जान पहिचानके हमारा बड़ा आदर सत्कार किया और बड़े प्रेमके साथ हमको भोजन कराया। कुछ ब्रह्मचारी लोग भी हमारे साथ भोजन कर रहे थे। भोजन सादा, हल्का और बलबर्धक था। दाल तरकारीमें स्वास्थ्यको बिगाड़नेवाले मसाले नहीं थे। सबसे उत्तम पदार्थ जो देखनेमें आया वह मीठा शुद्ध दही था। मीठा दही कितना रुचिकर और लाभदायक होता है इसके कहनेकी आवश्यकता नहीं। दही छाँछ मट्ठा वगैरह पदार्थ यहाँ उमदा और ज्यादह मिलते हैं। शहरों-में अच्छे अच्छे अमीर लोग भी इनके लिए तरसते हैं। मिठाइयाँ

और मसाले यहाँ खानेको नहीं नहीं दिये जाते; किंतु दूध, मीठा दही, फल तरकारी तथा हरी चीजें जितनी मिल सकती हैं दी जाती हैं। दूध दहीके लिए गोशाला है जिसमें दूध देनेवाली गायों-की बड़ी संख्या है। हरी तरकारीके लिए खेत और बाड़े है जिनमें ऋतुओंकी तमाम चीजें पैदा होती हैं।

भोजन करनेके पश्चात् आश्रमको देखा। इस समय इसमें ३१९ ब्रह्मचारी हैं। स्कूल और कालिज दो पृथक् पृथक् विभाग हैं। दोनोंके रहन सहन, खान पान, पठन पाठनका पृथक् पृथक् प्रबंध है। स्कूलमें पढ़नेवाले ब्रह्मचारियोंसे १०) मासिक और कालिजमें पढ़नेवाले ब्रह्मचारियोंसे १९) मासिक फीस ली जाती है। ज्वाला-पुरमें फीस बिलकुल नहीं ली जाती और यहाँ पूरी ली जाती है। वहाँ प्रायः साधारण स्थितिके लोगोंके बालक रहते हैं, यहाँ श्रीमा-मानोंके रहते हैं।

छोटी कक्षासे लेकर ऊँचीकक्षा तक यहाँ पर सब पढ़ाई मातृ-भाषा हिंदीमें होती है। यहाँका पुस्तकालय बड़ा विशाल है। उसमें प्रत्येक विषयके अच्छे अच्छे ग्रंथोंका संग्रह है। पत्र और पत्रिकायें भी कितनी ही आती हैं।

यहाँका अखाड़ा—व्यायामशाला भी दर्शनीय है। उसमें व्याया-मकी कितनी ही उपयोगी चीजें हैं।

जल वायु यहाँका बड़ा स्वच्छ है। गुरूकुलके पीछे गंगा बहती है। यहाँका दृश्य बड़ा ही मनोहारी है। वर्षाऋतुमें यहाँ अवर्णनीय आनंद रहता होगा।

भोजनशाला, यज्ञशाला तथा स्नानागार यहाँ भी ज्वालापुरके समान उत्तम बने हुए हैं। विशेष बात यहाँ पर यह है कि गुरूकुलको स्थान बहुत मिला हुआ है। स्थानकी अधिकतासे यहाँ पर किसी बातकी त्रुटि नहीं है।

सबसे अच्छी बात जो गुरुकुलमें देखनेमें आई वह वहाँके कार्यकर्ताओं और सेवकोंका प्रेम और शिष्ट व्यवहार है। छोटेसे लेकर बड़े तक सबके सब बड़े ही सभ्य और शिष्ट हैं—प्रेम उनके हृदयोंमें कूटकूट कर भरा हुआ है।

क्या जैनसंस्थायें भी इन संस्थाओंसे कुछ पाठ सीखेंगी ?

दर्शक—
दयाचन्द्र गोयलीय।

सट्टा।

(व्येंकटेश्वरसे उद्धृत)

सट्टेका 'लक्षण' अनिश्चित है। साधारण भाषामें सट्टेका अर्थ 'बदला' होता है। एक चीजके बदले दूसरी चीजका लेना देना 'सट्टा' या 'सौदा' कहलाता है, परन्तु इस अर्थके सिवाय सट्टेका और सच्चे व्योपारका शब्दोंमें भेद करना बहुत ही कठिन है। प्रत्येक व्योपारमें सट्टेका अंश उपस्थित रहता है एवं बड़े बड़े सट्टे वास्तवमें व्योपार कहलाते हैं। 'जोखम' जैसी सट्टेमें रहती है, वैसी प्रत्येक व्यापारमें भी रहती है। दूरदर्शिता और बुद्धिमत्ताकी दोनोंमें आवश्यकता है। मालकी आयत और निकास, उपज और खप दोनोंहीमें देखी जाती है और दोनोंहीमें लोग अपनी शक्तिके बाहर काम करने लगते हैं। अतः इनके भेदका वर्णन करना सरल नहीं है, किन्तु व्यवहारमें सट्टे और व्योपारका अन्तर स्पष्ट प्रतीत होता है और सर्व विदित है।

रेल्वे, तार, मिल इत्यादि उद्यमोंके सञ्चालक कभी सटोरिये नहीं कहलायँगे, परन्तु रुई, अलसी, चाँदी, सन, पाट, शेर इत्यादिको अनापशनाप खरीदने वेचनेवाले एवं केवल लाभ हानिके फर्कका लेनदेन करनेका आभ्यन्तरिक सङ्केत रखनेवाले, तथा कानूनसे बचनेके लिये, इस मतलबसे, मालकी 'डिलीवरी' अर्थात् तैयारी लेनदेन करनेवाले, अतएव इसी मतलबसे, लिखित कबूलियतके बन्धनका

आश्रय लेनेवाले अवश्य सटोरिये हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं। कानूनमें भिन्न भिन्न जजोंकी प्रवृत्ति तथा ज्ञानके अनुसार सट्टा जूआ या व्योपार ठहराया जाता है, इससे सट्टेका खास स्वरूप नहीं जाना जा सकता। कानूनी चिह्न इसका निर्णय करनेमें असमर्थ हैं, परन्तु वास्तवमें हम उस व्यापारको सट्टेके नामसे कलंकित करेंगे, जो बूतेके बेहद बाहर है, जो जूएका स्वरूपविशेष है, जिसमें धनी होते उतना ही समय लगता है जितना कि कंगाल होते लगता है। जिसमें 'चान्स' अर्थात् अकस्मात् और 'भाग्यलक्ष्मी' पर अधिक विश्वास रक्खा जाता है, जिसमें प्रायः सौके सौ टका जोखम रहती है। जो अल्प समय एक वायदेसे दूसरे वायदेतकके लिये क्षण भरमें लिया दिया जाता है, जिसमें निरन्तर त्रास बना रहता है और जिसके करनेवाले संसारके सारे सुखोंको भोगते हुए भी सदा पीडित रहते हैं।

सट्टा विश्वव्यापी है। अमेरिका (न्यूयार्क), इंग्लेण्ड (लिवरपुल) इत्यादि बड़े बड़े देशोंमें सट्टा होता है। अतः यह एक महान् अनिष्ट है, जिसको जड़मूलसे उखाड़ना एक बड़ी भारी समस्या है। अमेरिकाके अर्थशास्त्री, प्रोफेसर टासिग लिखते हैं "सट्टेका जोर इतना किसी देशमें नहीं जितना कि अमेरिकाके युनाइटेड स्टेट्समें है। यहाँ सट्टेके सारे साधन उपस्थित हैं। जैसे कि अनेक भागोंमें विभक्त जङ्गी संस्थाएँ, विश्वव्यापी बाजार, बड़े बड़े सौदे, अतिसाहसी और धनी प्रजा इत्यादि। अतः बहुतेरे अमेरिकन साहूकारोंने सट्टेरूपी जूएको ही व्योपार मान रक्खा है। न्यूयार्कका स्टाक एक्श्चेञ्ज अर्थात् शेरबाजार संसार भरमें धीज-

पतीजकी एक अनोखी संस्था है, परन्तु संसार भरमें जूएका सबसे बड़ा नरक भी वही है।"

सट्टेके मुख्य गुण आयात और निकास, उपज और खपकी समतोल रखनेका है, अथार्त् माल बाजारमें आनेसे पहले ही खरीद लिया जाता है और खपसे ज्यादा होनेपर गोदाममें जमा कर लिया जाता है तथा खपसे उपजके कम होने पर जमा किया हुआ माल बेच दिया जाता है। यों करनेसे भावका तारतम्य कम होता है और माल नियमित भावसे बिकता है। दैनिक बाजार और मौसमका बाजार एवं भिन्न भिन्न देशोंका बाजार प्रायः एक रहता है। सट्टेके कारण देश देशका व्यापार बढ़ता है और व्यापारके सम्बन्धसे परस्पर विद्या विचार सभ्यता इत्यादिका बड़ा प्रभाव पड़ता है और देशीय शत्रुता दूर होकर अन्योन्य प्रेमभाव उत्पन्न होता है। किसान लोगोंको एवं मजदूरोंको सट्टेकी चलवलके प्रतापसे सदैव अपने अपने काममें अवकाश नहीं मिलता और बाजारकी चिन्ता किये बिना उन्हें नियमित रोजाना मिलता है, एवं यदि अन्नके कबाले किये हुए होते हैं और माल इकट्ठा हुआ पड़ा होता है, तो दुष्कालके समय प्रजा अन्नके अभावसे पीड़ित नहीं होती। सट्टेमें माल नमूनेसे बिकता है: जिससे सौदा सुगमतासे होता है। ईमानदारी, विश्वास और धीजपतीज बढ़ते हैं, जिससे सदर जाइण्ट स्टाक कोओपरेटिव कम्पनियाँ बेङ्क इत्यादि देशको अतुल लाभ पहुँचानेवाली संस्थाओंका निर्माण किया जा सकता है।

सट्टेके गुणकी अपेक्षा उससे उत्पन्न होते हुए अनिष्ट अधिक प्रबल

हैं। सट्टा एक प्रकारका व्यसन है। एक बार सट्टेके जालमें फँसा हुआ मनुष्य सही सलामत बाहर नहीं निकल सकता। सट्टेके बन्द होनेसे सटोरियेकी आजीविका नष्ट हो जाती है। इतना ही नहीं किन्तु वह किसी कामका नहीं रहता। सटोरियेका उद्यम, उसके दलालका वास्तवमें देशके लिये उद्यम नहीं माना जाता। इनका परिश्रम देशको फलप्रद नहीं, किन्तु अति हानिकर है। सट्टेमें कतिपय चालाक अनुभवी और साहसी लोगोंके सिवाय प्रायः सारे नुकसान ही हासिल करते हैं। तेजी मन्दीका लेन देन उत्तरोत्तर कईबार हो जाता है। प्रथम बेचनेवाला दूसरेके पाससे कुछ अन्तर रखकर खरीद लेता है एवं दूसरा तीसरेसे, इत्यादि। यों करनेसे प्रत्येक व्यक्तिको लाभ व हानि दोनों होते हैं, किन्तु जब एक बड़ा सटोरिया दिवाला निकाल देता है और दूसरा 'कोर्नर' अर्थात् कबाला करता है तब छोटे, अधबिचले सटोरिये इधरके उधर घसीटे जाते हैं और दो विरोधी वेगोंके बीचमें आकर पीसे जाते हैं। इतना ही नही किन्तु देशकी आर्थिक व्यवस्थाको बिगाड़ देते हैं और उपद्रव फैलाते हैं। धनी क्षणमें निर्धन बनते हैं, देशका व्यापार अस्तव्यस्त हो जाता है और देशकी अवस्था अस्थायी बन जाती है। सट्टा आलस्यको उत्तेजित करता है। प्रामाणिक और उद्यमी पुरुषोंके चित्तपर विक्षेप डालता है। ये लोग अपने व्यवसायका परित्याग कर सटोरियोंकी देखादेखी शीघ्रतया धनी बननेकी दुराशामें अपना सर्वस्व खो देते हैं और देशमें चौतरफा आपत्तिका प्रसार हो जाता है।

यदि ये कुशाग्रबुद्धि, चालाक, साहसी, वणिक महाजन अपने इस व्यर्थ परिश्रम द्वारा मुफ्तका असीम धन प्राप्त करनेकी तृष्णाका त्याग कर अपने देशकी सुप्त कारीगरीको जागृत करें अर्थात् इतर बड़े बड़े व्यवसायोंको हाथमें लेकर अपनी तीव्र बुद्धिके खर्चसे स्वार्थ और परमार्थ दोनों सम्पादन करनेका प्रयत्न करें तो क्या ही अच्छा हो।

सट्टेके दुर्गुण स्पष्ट हैं, किन्तु राज्यके शासनसे उसे रोकना अतीव कठिन है। साधारण विचार सुधरनेसे बाहरी सट्टा कम होगा किन्तु विचार, सुधारनेके प्रयत्न करनेसे सुधरेंगे और व्यापार-सम्बन्धी सुधार इन विषयोंपर तर्क वितर्क अर्थात् चर्चा करनेसे शुद्ध होंगे। प्रोफेसर जेवंसने लिखा है—"सृष्टिभरमें मनुष्यके समान कोई वस्तु नहीं है और मनुष्यमें तर्कके समान दूसरा कोई गुण नहीं।" इसलिये इस तर्कशक्तिको बढ़ाइये और ऐसी चर्चा करनेके स्थानोंकी योजना कीजिये। हमारे मारवाड़ी भाइयोंमें विशेषकर ऐसी संस्थाओंकी बड़ी आवश्यकता है। यह उनके सौभाग्यका चिह्न है कि बम्बईमें 'मारवाड़ीसम्मेलन' के अधिपतित्वमें प्रति रविवारको ऐसी चर्चा विषयक (डिबेटिङ्ग) अधिवेशन होते हैं, जिसमें गम्भीर विषय उठाये जाते हैं। ऐसी संस्थायें स्थान स्थान पर होनी चाहिये।

माधवप्रसाद शर्मा।

इतिहास--प्रसङ्ग ।

(२०)

जम्बुस्वामिका समाधिस्थान ।

मिस्टर बी. लेविस राइस साहबने अपनी ' इन्स्क्रिप्शन्स ऐट् श्रवणबेलगोला, नामक पुस्तककी भूमिकामें, ' राजावलीकथे ' के आधारपर, लिखा है कि—**गोवर्धन** महामुनि, विष्णु, नन्दिमित्र और अपराजित नामके श्रुतकेवलियोंके संग, और पांचसौ शिष्योंके साथ, **जम्बुस्वामिके** समाधिस्थानकी बन्दना करनेके लिए **कोटिकपुर** पधारे थे (had come to kotikapura in order to do reverence at the tomb of Jambuswami) इससे अन्तिम केवली **श्रीजम्बुस्वामि**का समाधि-स्थान ' कोटिकपुर ' नामके नगरमें जान पड़ता है। कोटिकपुरको, राइस साहबने, उसी कथाके आधार पर उक्त भूमिकामें. और **रत्ननन्दि** नामके आचार्यने, अपने ' भद्रबाहुचरित्रमें, पुण्ड्रवर्धन देशके अन्तर्गत बतलाया है। और पुण्ड्रवर्धनको जनरल कनिंघमने, बंगाल देशके अन्तर्गत ' बेगरा ' के उत्तरकी ओर, ' महास्थान ' प्रगट किया है। परन्तु सूरतसे प्रकाशित ' जम्बूस्वामीचरित्र ' में जम्बुस्वामिकी निर्वाण भूमि ' मथुरा '

१ देखो Arch. Surv. Rep. XV, V., 104 and 110.

नगरीको लिखा है। मथुरामें जो जम्बुस्वामिका मेला होता है उसके विज्ञापनादिकोंमें भी ऐसा ही प्रगट किया जाता है। और सकलकीर्ति आचार्यके शिष्य **जिनदास** ब्रह्मचारीने अपने बनाये हुए जम्बुस्वामि-चरित्रमें लिखा है कि श्रीजम्बुस्वामि महाराज ' **विपुलाचल** ' पर्वतसे मोक्ष गये हैं। अतः विद्वानोंको इस बातका निश्चय करना चाहिए कि वास्तवमें जम्बुस्वामिका समाधिस्थान कहाँपर है।

(२१)

' शतक ' ग्रन्थ।

बहुतसे ग्रंथ 'शतक' नामसे प्रसिद्ध हैं। जैसे नीतिशतक, वैराग्यशतक, जैनशतक, जिनशतक और समाधिशतकादि। ग्रंथोंके सम्बंधमें ' शतक ' शब्दका अर्थ ' सौपद्योंका समूह ' (A collection of one hundred stanzas) होता है। अर्थात् जिस ग्रंथमें एक शत (सौ) पद्योंका समूह हो उसे ' शतक ' कहते हैं। नीतिशतकका अर्थ है, नीतिविषयक सौ पद्योंका समूह। इसी प्रकारसे वैराग्यशतकादिकका अर्थ भी जानना। शतक शब्दके इस अर्थसे उपर्युक्त नीतिशतकादि प्रत्येक ग्रंथमें केवल सौ सौ पद्य होने चाहिएँ। परन्तु ग्रंथोंके देखनेसे मालूम होता है कि भर्तृहरिकृत **नीतिशतकमें** ११०, **वैराग्यशतकमें** ११६, भूधरदासकृत **जैनशतकमें** १०७, स्वामि समन्तभद्राचार्यविरचित **जिनशतकमें** ११६ और श्रीपूज्यपादाचार्यके **समाधिशतकमें** १०९ पद्योंका समूह है। यह क्यों? इसका यथार्थ उत्तर अभीतक हमारी समझमें

नहीं आया। संभव है कि इन ग्रंथोंमें पीछेसे कुछ क्षेपक श्लोक मिल गये हों और उनसे पद्योंकी यह संख्यावद्धि हुई हो। विद्वानोंको इस विषयका शीघ्र निर्णय करना चाहिए और यदि क्षेपकोंके मिलनेसे यह संख्या वद्धि हुई हो तो उन्हें मालूम करनेका यत्न भी करना चाहिए। *

(२२)

पार्श्वनाथचरितका निर्माणकाल।

श्रीवादिराज मुनिका बनाया हुआ 'पार्श्वनाथचरित' नामका एक संस्कृत ग्रंथ है। श्रीयुत टी. एस्. कुप्पूस्वामी शास्त्रीने, यशोधर-चरितकी भूमिकामें, लिखा है कि यह ग्रंथ (पार्श्वनाथचरित) शक संवत् ९४८ में बनकर पूर्ण हुआ है। तदनुसार दूसरे विद्वानोंने भी, विद्वद्रत्नमालादिमें, उसी शक संवत् ९४८ का उल्लेख किया है। शास्त्रीजीने इस संवत्की प्रमाणतामें स्वयं पार्श्वनाथचरितकी प्रशस्तिका निम्न वाक्य उद्धृत किया है:—

' शाकाब्दे नगवार्धिरन्ध्रगणने संवत्सरे क्रोधने।
मासे कार्तिकनाम्नि बुद्धिमहिते शुद्धे तृतीया दिने॥
सिंहे पाति जयादिके वसुमतीं जैनी कथेयं मया।
निष्पत्तिं गमिता सती भवतु वः कल्याणनिष्पत्तये॥ '

---

* इसका भी नियम है कि शतकमें सौसे ऊपर अधिकसे अधिक कितने पद्य हो सकते हैं। शतक ही क्यों पञ्चाशत् (पचासा), पञ्चविंशतिका (पच्चीसी), और अष्टक आदिके लिए भी नियम हैं। इस समय स्मरण नहीं परन्तु किसी ग्रन्थमें हमने यह नियम पढ़ा है। सौसे अधिक होनेपर क्षेपक आदिकी कल्पना ठीक नहीं।

—सम्पादक।

इस वाक्यमें संवत्का नाम '**क्रोधन**' दिया है, जो ६० संवत्सरोंमेंसे ५९ वें नम्बरका संवत् है। ज्योतिषशास्त्रानुसार शक संवत्में बारह जोड़कर साठका भाग देनेसे जो शेष रहे उससे क्रमशः प्रभवादि संवतोंका निश्चय किया जाता है। इस हिसाबसे शक संवत् ९४८ का नाम 'क्रोधन' नहीं हो सकता। तब ठीक संवत् कौनसा होना चाहिए, यह जाननेकी ज़रूरत है। मेरी रायमें पार्श्वनाथचरितकी समाप्तिका यथार्थ शक संवत् ९४७ है। 'नग' शब्दसे सातकी संख्याका ग्रहण होना चाहिए, आठका नहीं। श्रीयुत वामन शिवराम आपटेने भी, अपने संस्कृत-इंग्लिशकोशमें, 'नग' का अर्थ The number seven, अर्थात् संख्या सात, दिया है।

(२३)

वादिचन्द्रभट्टारक और यशोधरचरित।

ज्ञानसूर्योदयनाटकके कर्ता वादिचंद्र भट्टारकने एक 'यशोधरचरित' भी बनाया है। यह चरित ज्ञानसूर्योदयनाटकके बाद रचा गया है। ज्ञानसूर्योदय नाटक सवंत् १६४८ में, मधूक (महुआ) नगरमें, बनाकर समाप्त किया गया है और इस चरितकी परिसमाप्ति, वादिचंद्रने, अंकलेश्वर ग्राममें रहकर, संवत् १६५७ में की है। जैसा कि इस चरितके अन्तिम दो पद्योंसे प्रगट है:—

तत्पट्टविशदख्यातिर्वादिवृंदमतल्लिका।
कथामेनां दयासिद्धै वादिचंद्रो व्यरीरचत्॥ ८०॥
अंकलेश्वरसुग्रामे श्रीचिन्तामणिमंदिरे।
सप्तपंचरसाब्जाङ्के वर्षेऽकारि सुशास्त्रकम्॥ ८१॥

इस चरितके आरंभमें लिखा है कि श्रीसोमदेव और वादिराजसूरिने जो यशोधरचरित बनाये हैं वे अति कठिन हैं—बालकोपयोगी नहीं हैं, इस लिए यह ग्रंथ बालकोंके—मंदबुद्धियोंके—हितार्थ रचा जाता है।

जिस प्रतिपरसे यह नोट लिखा गया है वह सवंत् १६७३ की अर्थात् ग्रंथकी रचनासे केवल ३६ वर्ष बादकी लिखी हुई है और प्रायः शुद्ध है। इस प्रतिसे यह भी मालूम होता है कि वादिचंद्रके पट्टपर महीचंद्र भट्टारक बैठे हैं और उन्हींको यह प्रति कराकर एक स्त्रीद्वारा समर्पित की गई है।

समाज सेवक—

जुगलकिशोर मुख्तार।

नोट—इसके आगेके नोट सम्पादकके लिखे हुए हैं:—

(२४)

सोमदेवके शिष्य वादिराज और वादीभसिंह।

यशस्तिलकचम्पूके कर्त्ता सोमदेवसूरि बहुत बड़े विद्वान् हो गये हैं। उन्होंने यह ग्रन्थ शकसंवत् ८८१ में बनाया है। वे सकलतार्किकचक्रचूडामणि नेमिदेवके शिष्य थे। यशस्तिलक निर्णय-सागर प्रेसकी काव्यमालामें श्रुतसागरसूरिकृत टीकासहित छप गया है। दूसरे आश्वासनमें पृथक्त्वानुप्रेक्षाकी टीकामें श्रुतसागर-सूरिने वादिराज महाकविका एक श्लोक उद्धृत किया है:—

कर्मणाकवलिता जनिता जातः पुरान्तरजनङ्गमवाटे।
कर्मकोद्रवरसेन हि मत्तः किं किमेत्यशुभधाम न जीवः॥

और इसके बाद ही लिखा है—" स वादिराजोऽपि श्रीसोमदेवाचार्यस्य शिष्यः,

'वादीभसिंहोऽपि मदीयशिष्यः
श्रीवादिराजोऽपि मदीयशिष्यः'

इत्युक्तत्वाच्च।" इससे मालूम होता है कि वादिराज और वादीभसिंह दोनों महाकवि सोमदेवके शिष्य थे; परन्तु टीकाकार महाशयने यह नहीं लिखा कि उपर्युक्त श्लोकार्ध किस ग्रन्थका है। वादिराज अपनेको मतिसागर मुनिके (पार्श्वकाव्यमें) और वादीभसिंह (गद्यचिन्तामणिमें) अपनेको पुष्पषेण मुनिके शिष्य बतलाते हैं। इसके सिवाय वादिराजने पार्श्वचरित शकसंवत ९४७ में समाप्त किया है जब कि यशस्तिलकको बने हुए ६६ वर्ष बीत चुके थे और वह उनकी प्रौढ़ अवस्थाकी रचना जान पड़ती है। वादीभसिंहके गुरु पुष्पषेण थे और मल्लिषेणप्रशस्तिसे मालूम होता है कि वे (पुष्पषेण) अकलंकदेवके गुरुभाई थे। अष्टसहस्रीकी उत्थानिकामें 'वादीभसिंहेनोपलालिता आप्तमीमांसा' लिखा है। इससे वादीभसिंह अकलंकदेवके समकालीन अर्थात् शक संवत् ७०२ के लगभगके विद्वान् ठहरते हैं जो यशस्तिलक कर्त्ताके शिष्य नहीं हो सकते। इन सब कारणोंसे श्रुतसागरसूरिके उक्त कथनमें शङ्का होती है।

(२५)

तत्त्वार्थसूत्रका मङ्गलाचरण।

मोक्षमार्गस्य नेतारं भेत्तारं कर्मभूभृताम्।
ज्ञातारं विश्वतत्त्वानां वन्दे तद्गुणलब्धये॥

इस प्रसिद्ध मंगलाचरणको कोई सर्वार्थसिद्धि टीकाका कोई गन्धहस्तिमहाभाष्यका और कोई राजवार्तिक श्लोकवार्तिकादिका

कहते हैं; परन्तु वास्तवमें यह मूल सूत्रकार तत्त्वार्थशास्त्रके कर्ता उमास्वामीका रचा हुआ है ।

श्रीमत्तत्त्वार्थशास्त्राद्भुतसलिलनिधेरिद्धरत्नोद्भवस्य,
प्रोत्थानारम्भकाले सकलमलभिदे शास्त्रकारैः कृतं यत्,
स्तोत्रं तीर्थोपमानं प्रथितपृथुपथं स्वामिमीमांसितं तत् ।
विद्यानन्दैः स्वशक्त्या कथमपि कथितं सत्यवाक्यार्थसिद्ध्यै॥
इति तत्त्वार्थशास्त्रादौ मुनीन्द्रस्तोत्रगोचरा ।
प्रणीताप्तपरीक्षेयं कुविवादनिवृत्तये ॥ १२४ ॥

आप्तपरीक्षाके अन्तके इन दो श्लोकोंसे इस विषयमें ज़रा भी शङ्का नहीं रहती है । इनका सारांश यह है कि:—तत्त्वार्थसूत्रके प्रारंभमें शास्त्र कारने अर्थात् भगवान् उमास्वामीने जो 'मोक्षमार्गस्य नेतारं' आदि स्तोत्र बनाया है और स्वामी समन्तभद्रने जिसकी मीमांसा (आप्तमीमांसा) की है, मुझ विद्यानन्दने आप्तकी सिद्धिके लिए उसीका यह व्याख्यान किया ॥ १२३ ॥ इस तरह यह तत्त्वार्थसूत्रकी आदिके मंगलाचरणरूप स्तोत्रका विचार करनेवाली आप्तपरीक्षा रची गई ।

आप्तपरीक्षाके प्रारंभके श्लोकोंसे भी यही बात मालूम होती है:—

श्रेयोमार्गस्य संसिद्धिः प्रसादात्परमेष्ठिनः ।
इत्याहुस्तद्गुणस्तोत्रं शास्त्रादौ मुनिपुङ्गवाः ॥
मोक्षमार्गस्य नेतारं........................ ।
.. ॥

अर्थात् परमेष्ठीके प्रसादसे मोक्षमार्गकी प्राप्ति होती है, अतएव तत्त्वार्थशास्त्रके आदिमें मुनिपुङ्गव उमास्वामि 'मोक्षमार्गस्य नेतारं' आदि उनके गुणोंका स्तोत्र करते हैं ।

सम्पूर्ण आप्तपरीक्षा ग्रन्थमें इसी मंगलाचरणकी विस्तारपूर्वक व्याख्या की गई है।

(२६)

आचार्य सिद्धसेन।

आदिपुराण, हरिवंपुराण आदिके कर्त्ताओंने एक सिद्धसेन नामक महाकवि और नैयायिकका स्तवन किया है; परन्तु न तो इनका कोई ग्रन्थ ही प्राप्य है और न यह मालूम है कि ये कब हुए हैं। श्वेताम्बर सम्प्रदायमें भी एक 'सिद्धसेन' नामके महान् विद्वान् हो गये हैं जो 'सिद्धसेनदिवाकर' कहलाते हैं और जो विक्रमकी सभाके 'क्षपणक' नामसे प्रसिद्ध रत्न थे। अभीतक हमारा यह ख़याल था कि उमास्वामीके समान सिद्धसेन भी एक ही होंगे और उन्हें दोनों सम्प्रदायवाले अपना अपना मानते होंगे; परन्तु अब हमें इस विषयमें सन्देह होने लगा है। श्वेताम्बरसम्प्रदायमें हरिभद्र नामके एक प्रतिष्ठित आचार्य हो गये हैं। उनका स्वर्गवास विक्रमसंवत् ५८५ या ५७५ में हुआ था। उनके बनाये हुए बहुतसे ग्रन्थ हैं जिनमें एक धर्मबिन्दु भी है। इस ग्रन्थके चौथे अध्यायमें दीक्षा लेने योग्य मनुष्यका वर्णन करतेहुए ग्रन्थकर्त्ताने वाल्मीकि, व्यास, सम्राट्, वायु, नारद, वसु, क्षीरकदम्बक, बृहस्पति, विश्व, और सिद्धसेन इन दश आचार्योंके मत दिये हैं और उनको ठीक न बतलाकर अन्तमें अपना मत दिया है। सिद्धसेनका मत सबसे पीछे दिया है और उसके बाद अपना दिया है। इससे मालूम होता है कि ये सिद्धसेनाचार्य हरिभद्रके पहले हो गये हैं और

सम्भवतः उनके सम्प्रदायके नहीं किन्तु दिगंबर संप्रदायके थे। दीक्षाके विषयमें सिद्धसेनका मत यह है कि ' बुद्धिमान् पुरुषोंको द्रव्य, क्षेत्र, काल भावका विचार करके जो योग्य मालूम हो वह करना चाहिए । "

जैनजातियोंमें पारस्परिक विवाह ।

मनुष्यजातिरेकैव जातिनामोदयोद्भवा ।
वृत्तिभेदा हि तद्भेदाच्चातुर्विध्यमिहाश्नुते ॥ ४५ ॥

—आदिपुराण, पर्व ३८ ।

जैनसमाजके समक्ष यह प्रश्न उपस्थित हो चुका है कि, जैन-धर्मकी माननेवाली जो अनेक जैनजातियाँ हैं उनमें परस्पर विवाहसम्बन्ध या बेटीव्यवहार होना चाहिए अथवा नहीं । इस विषयकी चर्चाका प्रारंभ भी हो गया है—एक पक्ष इसे आवश्यक तथा लाभजनक बतलाता है और दूसरा अनावश्यक तथा हानिकारक बतलाता है; परन्तु दोनों ही पक्षोंकी ओरसे अभीतक इस विषयमें ऊहापोहपूर्वक विचार नहीं किया गया है और न सर्वसाधारणको यह समझाया गया है कि इसमें क्या क्या लाभ और क्या क्या हानियाँ हैं । इस लेखमें हम पारस्परिक विवाहोंके बिना जो हानियाँ होती हैं, उनपर विचार करेंगे । आशा है कि, जो सज्जन इस विषयमें हमसे विरुद्ध हैं वे भी अपने विचार विस्तारपूर्वक प्रकाशित करनेकी कृपा दिखलावेंगे ।

सबसे पहले हमें यह देखना चाहिए कि इस विषयमें कोई धार्मिक हानि तो नहीं है । वर्तमानमें जो जैन ग्रन्थ प्राप्य हैं और

जिन्हें हम प्रामाणिक मानते हैं, उनमें आज कलकी जातियोंका जिक्र तक नहीं है। जातियाँ पहले थीं भी नहीं। पिछले हजार वर्षमें ही इनकी रचना हुई है, ऐसा अनुमान होता है। आदिपुराणमें जाति शब्द कई जगह आया है; परन्तु उस समय इस शब्दका अर्थ वर्तमानकी जातियोंसे भिन्न थाः—

पितुरन्वयशुद्धिर्या तत्कुलं परिभाष्यते।
मातुरन्वयशुद्धिस्तु जातिरित्यभिलप्यते॥

—आदि० पर्व ३९, श्लो० ८५।

अर्थात् पिताकी परम्पराकी शुद्धिको कुल और माताकी परम्पराकी शुद्धिको जाति कहते हैं। परन्तु वर्तमानमें जातिका कुछ और ही रूप है। माताकी परम्परा शुद्धिसे उसका कोई विशेष सम्बन्ध नहीं है। आजकल जो जातियाँ हैं वे ग्रामों या नगरोंके नामसे, व्यापारधंधोंके सम्बन्धसे, आचारभेदसे, तथा धर्मभेदसे बनी हैं और नई नई बनती भी जाती हैं।

जिन धर्मग्रन्थोंकी इस समय हमें प्राप्ति है वे इस विषयमें बहुत कुछ उदार हैं। उनमें अनुलोमवर्णविवाहकी आज्ञा दी गई है। पहले—जातियोंकी उत्पत्तिके पहले—भारतवर्षमें चार वर्ण थे—ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य और शूद्र। उनमें अनुलोम और प्रतिलोम विवाह होते थे जिनमेंसे अनुलोमविवाह सर्वमान्य थे। यशस्तिलक महाशास्त्रके कर्त्ता सोमदेवसूरि अपने नीतिवाक्यामृतके विवाहसमुद्देशमें कहते हैंः— " **आनुलोम्येन चतुस्त्रिद्विवर्णकन्याभाजना ब्राह्मणक्षत्रियविशः।** " अर्थात् ब्राह्मण, ब्राह्मण

क्षत्रिय वैश्य और शूद्रकी; क्षत्रिय, क्षत्रिय वैश्य और शूद्रकी; और वैश्य वैश्य और शूद्र वर्णकी कन्याओंको ले सकता है । आदिपुराणमें भी इस अनुलोमविवाहका उल्लेख है । इससे हम विचार कर सकते हैं कि जब हमारे धर्मशास्त्र वैश्योंको शूद्रतककी कन्या लेनेमें पाप नहीं बतलाते हैं तब खण्डेलवालको अग्रवालकी और परवारको पोरबाड़की कन्या लेनेमें कैसे पाप बतला सकते हैं ?

हमारे कथाग्रन्थोंमें इस तरहके विवाहसम्बन्धोंका उल्लेख भी मिलता है । चक्रवर्ती म्लेच्छोंकी कन्यायें लाते थे । यह अभी २२०० वर्षकी ही बात है कि चन्द्रगुप्त मौर्यने सेल्यूकसकी बेटीके साथ विवाह किया था । जरत्कुमारकी माता भिल्लनी थी । राजा उपश्रेणिकने एक भीलकी कन्याके साथ शादी की थी । उनके पुत्र श्रेणिक नन्दिश्री नामकी रानी एक वैश्यसेठकी कन्या थी । पद्मपुराण और हरिवंशपुराणमें भी ऐसी कई कथायें हैं जिनसे मालूम होता है कि पहले असवर्णविवाह खूब होते थे और वे किसी प्रकार निन्द्य नहीं समझे जाते थे । गरज यह कि धर्मशास्त्रोंकी आज्ञानुसार अनुलोमवर्णविवाहमें कोई दोष नहीं है और जब असवर्ण विवाहमें दोष नहीं है तब एक वर्णकी ही बनी हुई अनेक जातियोंके पारस्परिक विवाहसम्बन्धमें तो दोषकी कल्पना भी नहीं हो सकती ।

धार्मिक बुद्धिसे विचार करनेमें भी इस प्रकारके सम्बन्धमें कोई दोष नहीं जान पड़ता । जिनके साथ हमारा भोजनव्यवहार होता है, जिनके आचार-व्यवहार-विचारादि हमी जैसे हैं और जो एक ही धर्म और देवकी उपासना करते हैं, उनमें बेटी-व्यवहार होने लग-

नेसे हम तो नहीं सोच सकते कि धर्मके कौनसे अंगका घात हो जायगा और कौनसा पातक लग जायगा।

कुछ लोग यह आपत्ति उपस्थित करते हैं कि जब हमारे पूर्व-पुरुषोंने जातिसंस्थाको आश्रय दिया है और सैकड़ों वर्षोंसे यह चली आ रही है, तब हम इसके नियमोंका उलंघन क्यों करें? इसके उत्तरमें हमारा निवेदन यह है कि पूर्व पुरुषोंकी चलाई होनेसे ही जातिसंस्था अच्छी नहीं हो सकती है—हमें उसके हानि-लाभोंपर विचार करना चाहिए। बापदादाओंका खुदवाया हुआ होनेके कारण ही खारे कुँआका पानी मीठा कहके नहीं पिया जा सकता। और आदिपुराण आदिके रचयिता भी तो हमारे पूर्व पुरुष थे, यदि पूर्वपुरुषोंकी ही बात मानना है तो फिर उनके अनुलोम-विवाहके नियमको हम क्यों नहीं मानते? और इस विषयका दाव, कैसे किया जा सकता है कि पूर्वपुरुष भूल नहीं करते? आगे होनेवाली सन्तानके हम भी तो पूर्वपुरुष हैं। क्या हम कह सकते हैं कि हमसे भूलें नहीं होती हैं? संभव है कि हमारे पूर्वपुरुष भी अनेक अच्छी बातोंके साथ यह एक भूल कर गये हों। अथवा अपने देशकालादिकी परिस्थितियोंके अनुसार उस समय उन्होंने इस संस्थाके ज़ारी करनेमें लाभ सोचा हो और शायद उस समय लाभ हुआ भी हो; परन्तु आजकलकी परिस्थितियाँ ऐसी नहीं हैं कि हमारी जातिसंस्थाके नियम इतने कड़े रहें कि हम परस्परविवाह सम्बन्ध न कर सकें। ऐसी दशामें हम क्यों लकीरके फकीर बने रहें? हमारे पूर्वपुरुषोंकी यह आज्ञा भी तो है कि प्रत्येक कार्य देशकालकी योग्यताके अनुसार करना चाहिए।

पारस्परिक विवाहसम्बन्ध न होनेसे क्या हानियाँ हो रही हैं, यह बतलानेके पहले हम यह कह देना चाहते हैं कि हम जाति-भेदको नहीं उठाना चाहते। जैनोंमें इस समय डेड़सौ या दोसौ जितनी जातियाँ हैं वे सब बनी रहें—उनके बने रहनेसे हमारी कोई हानि नहीं है। हम सिर्फ यह चाहते हैं कि सब जातियोंमें परस्पर बेटीव्यवहार होने लगे और इस तरह विवाहसम्बन्धका क्षेत्र विस्तृत हो जाय।

१ **जातियोंका क्षय**—पारस्परिक विवाहसम्बन्ध न होनेसे छोटी छोटी जातियोंका क्षय होता जाता है। ऐसी कई जातियोंका क्षय हो चुका है—उनका अब केवल नाम मात्र सुन पड़ता है और कई-का हो रहा है। ऐसी जातियोंमें जिनमें सौ सौ पचास पचास ही घर होते हैं, विवाहका क्षेत्र बहुत ही संकुचित हो जाता है। एक तो वर ही थोड़े और फिर उनमें भी एक गोत्रके, तथा मामा-फुआ-मौसी आदिके सम्बन्धके वर; ऐसी अवस्थामें वरको कन्यायें और कन्या-ओंको वर मिलना कितना कठिन होना होगा, इसका अनुमान सब ही कर सकते हैं। इसका फल यह होता है बहुतसे लोग ब्याह किये बिना ही—सन्तानोत्पादन किये बिना ही मर जाते हैं, जो विवाह होते हैं वे बेजोड़ होते हैं इस कारण सन्तान दीर्घजीवी नहीं होती, कमजोर बालकोंके साथ ब्याहे जानेसे लड़कियाँ विधवा अधिक होती हैं और इस तरह थोड़े ही समयमें ऐसे जातियोंका नामशेष हो जाता है। सन् १९११ की मनुष्यगणनाकी रिपोर्टसे मालूम होता है कि जैनोंकी ऐसी ५९ जातियाँ हैं जिनकी जनसंख्या १०० से भी

कम है ! १७ जातियाँ ऐसी हैं जो बराबर घट रही हैं और कुछ दिनोंमें समाप्त हो जायँगी ! १९०१ में दिसवाल जातिकी जन-संख्या ९७१ थी, जो १९११ में घटकर सिर्फ ३२९ रह गई ! बरारमें एक 'कुकेकरी' नामकी जाति थी जिसमें अब एक भी पुरुष या स्त्री जीवित नहीं है। यदि विवाहका क्षेत्र बढ़ जायगा तो इन छोटी जातियोंका क्षय होना बन्द हो जायगा—इनमें जो लोग कुँआरे ही मर जाते हैं वे न मरने पावेंगे। इस विषयमें यह शंका हो सकती है "यदि इन अल्पसंख्यक जातियोंके पुरुष दूसरी जातिकी कन्यायें व्याह लेंगे, तो उन जातियोंमें कन्याओंकी कमी हो जायगी और कुँआरोंकी संख्या बढ़ जायगी।" इसका समाधान यह है कि यद्यपि समूची जैन जातिमें स्त्रियोंकी संख्या पुरुषोंकी अपेक्षा कम है तो भी बहुत जातियाँ ऐसी हैं जिनमें विवाहयोग्य पुरुषोंकी अपेक्षा विवाहयोग्य कन्याओंकी संख्या अधिक है, अथवा अल्प संख्याके कारण गोत्रादि नहीं मिलते हैं इससे स्त्रिया भी कुँआरी रह जाती हैं और पुरुष भी कुँआरे रह जाते हैं। १९११ की मनुष्यगणनासे मालूम होता है कि जैनोंमें २९ वर्षसे अधिक अवस्थाकी २०३२ स्त्रियाँ कुँआरी हैं और १९ वर्षसे अधिक उम्रकी कुमारियोंकी संख्या तो छह हजारसे भी अधिक है ! कुछ समय पहले जैनमित्रमें एक लेख प्रकाशित हुआ था, जिसमें बतलाया था कि अग्रवाल जातिमें ऐसी सैकड़ों जवान और प्रौढ स्त्रियाँ हैं जिनको विवाहका सुख नसीब नहीं हुआ। सो यदि सब जातियोंमें बेटीव्यवहार होने लगेगा, तो इस प्रकारकी कुमारियोंकी संख्या बिलकुल न रहेगी।

इस विषयमें एक शंका यह की जाती है कि पारस्परिक विवाह-सम्बन्ध जारी होनेसे पहले पहल उन जातियोंको बहुत हानि उठानी पड़ेगी जिनकी संख्या थोड़ी है और जो निर्धन हैं । क्योंकि उन धनिक जातियोंके लोग जिनमें कन्यायें कम हैं छोटी जातियोंपर टूट पड़ेंगे और उनकी सारी कन्याओंको हथया लेंगे । इसका फल यह होगा कि छोटी जातियोंके लड़के कुँआरे रह जायँगे और निर्धन होनेके कारण अन्य जातिके लोग उन्हें कन्यायें देंगे नहीं । परन्तु हमारी समझमें यह शंका निरर्थक है । कारण एक तो ऐसी जाति शायद ही कोई हो जिसमें निर्धन ही निर्धन हों धनी कोई न हो; सभी जातियोंमें धनी और निर्धन पाये जाते हैं, दूसरे जिन जातियोंमें धनी अधिक हैं उनमें निर्धन भी बहुत हैं जो दूसरी जातिके निर्धनोंको अपनी लड़कियाँ खुशीसे देनेको तैयार हो जायँगे । तीसरे धनी प्रायः धनियोंके ही साथ सम्बन्ध करते हैं; गरीबोंके साथ तो उस समय सम्बन्ध करते हैं, जब उम्र बहुत अधिक हो जाती है । सो ऐसे लोगोंको तो रुपयोंके जोरसे कहीं न कहीं लड़कियाँ मिल ही जायँगी, चाहे वे जातिमें मिलें या दूसरी जातियोंमें । यदि वे दूसरी जातियोंकी कन्यायें ले आयँगे तो उनकी जातिकी कन्यायें औरोंके लिए बची रहेंगी । बात यह है कि इस प्रश्नका विचार समग्र जैन-समाजके हानि लाभपर दृष्टि रखकर करना चाहिए । तमाम जैन-जातियोंमें जितनी कन्यायें हैं यदि उन सबका यथोचित सम्बन्ध हो जाय, किसीको कुँआरी न रहना पड़े—और विवाहक्षेत्र बढ़ जानेसे यह निस्सन्देह है कि लड़कियाँ कुँआरी न रहेंगी—तो समझना होगा

कि पारस्परिक विवाहसम्बन्ध लाभकारी है। यदि इससे किसी एक जातिको कुछ हानि भी हो—और आरंभमें ऐसा होना कई अंशोंमें संभव भी है—तो सारे जैनसमाजके लाभके ख़यालसे उसको दर गुज़र करना होगा।

२ कन्याविक्रय और वरविक्रय—जैनोंकी बहुतसी जातियोंमें कन्याविक्रय होता है और बहुतसी जातियोंमें वरविक्रय होता है। इसके लिए बहुत उपदेश दिये जाते हैं, पाप आदिके डर बतलाये जाते हैं, पंचायतियोंमें नियम बनाये जाते हैं. पर फल कुछ नहीं होता। हो भी नहीं सकता। क्योंकि इसका कारण कुछ और ही है। जिन जातियोंमें लड़कियोंकी संख्या कम है उनमें कन्यायें और जिनमें लड़कोंकी संख्या कम है उनमें वर विकते हैं। कोई अपने लड़के लड़कियोंको ब्रह्मचारी तो रखना नहीं चाहता है, तब उनके ब्याहके लिए औरोंके साथ प्रतिस्पर्धा करनी पड़ती है—करनी ही चाहिए; क्योंकि चीज़ कम और ग्राहक ज्यादा। सब ही यह चाहते हैं कि रुपया चाहे जितना लग जावे, पर मेरा लड़का या लड़की अविवाहित न रहे। उधर लड़की या लड़कावाला जब देखता है कि ग्राहक अधिक हैं तब वह अधिक रुपया कमानेकी इच्छा करने लगता है। यदि विवाहका क्षेत्र बढ़ जायगा—सब जातियोंमें सम्बन्ध होने लगेगा, तो कन्याविक्रय और वरविक्रय ये दोनों दुष्प्रथायें बहुत कुछ कम हो जायँगी।

कुछ लोगोंका यह खयाल है कि सब जातियोंमें बेटीव्यवहार होने लगनेसे कन्याविक्रय बढ़ जायगा। ऐसे लोग अपने विचारकी पुष्टिमें यह युक्ति देते हैं कि जो लोग अपनी लड़कियोंको बेचते हैं, उनके लिए बिक्रीका क्षेत्र बढ़ जायगा और इस कारण वे जिस जातिमें अधिक धन देनेवाले मिलेंगे उसी जातिमें अपना काम बनानेकी कोशीश करेंगे; परन्तु यह युक्ति इस प्रश्नके एक ही ओर दृष्टि डालकर की जाती है—यह नहीं सोचा जाता कि जब बेचनेवालेके लिए विक्रीका क्षेत्र बढ़ जाता है तब खरीददारोंके लिए भी तो खरीद करनेका क्षेत्र छोटा नहीं रहता है। जो रुपये देकर ब्याह करना चाहेंगे, उनके लिए फिर लड़कियाँ भी तो बहुत मिलने लगेंगी—वे बेचनेवालोंके बढ़ते हुए लोभमें सहायक क्यों होंगे ?

३ **बाल्यविवाह**—विवाहका क्षेत्रका संकुचित होनेसे लोगोंको अपने लड़के-लड़कियोंके ब्याहकी चिन्ता बहुत अधिक हो गई है और इस कारण वे जब योग-जोग जुड़ता है तब ही विवाह कर डालते हैं—उम्र आदिकी ओर देखते भी नहीं। यदि वे उम्रका विचार करते रहें तो उन्हें वर कन्याओंका मिलना ही कठिन हो जाय। अल्पजनसंख्यावाली जातियोंमें बाल्यविवाहका जोर औरोंकी अपेक्षा इसी कारण अधिक देखा जाता है। विवाहका क्षेत्र विस्तृत होनेसे बाल्यविवाह अवश्य ही बहुत कम हो जायगा। यहाँ यह करनेकी जरूरत नहीं मालूम होती कि बाल्यविवाहके कारण हमारे समाजको शारीरिक—मानसिक निर्बलता, गार्हस्थ्य सुखकी हानि

आदि कितनी हानियाँ उठानी पड़ी हैं। इन बातोंको अब सभी लोग जानने लगे हैं।

४ आँटा–साँटा—कन्याव्यवहारके क्षेत्रके संकीर्ण होनेका एक परिणाम आँटासाँटा भी है। यदि कोई अपने लड़केका ब्याह करना चाहता है अर्थात् दूसरेकी लड़की लाना चाहता है तो उसे अपनी या अपने भाई बन्धुओंकी एक लड़की उस लड़कीवालेके लड़केके लिए तैयार करके रखनी पड़ती है। इसी दुष्ट प्रथाका नाम आँटासाँटा है। इससे अपने लड़केके स्वार्थके लिए लड़की चाहे जैसे घरमें झोंक दी जाती है! विवाहका क्षेत्र विस्तृत होनेसे यह दुष्ट रिवाज़ जड़ मूलसे उखाड़ा जा सकता है। अब भी यह उन्हीं जातियोंमें ज़ारी है जिनकी जनसंख्या बहुत थोड़ी है।

५ अनमेलविवाह—वर छोटा कन्या बड़ी, कन्या छोटी वर बड़ा, वर मूर्ख और कन्या विदुषी, वर विद्वान् और कन्या मूर्ख, वर दुश्चरित्र और कन्या सुशीला आदि तरह तरहके बेजोड़ विवाह होनेका भी एक कारण विवाहक्षेत्रकी संकीर्णता है। जहाँ चुनावका क्षेत्र छोटा होता है वहाँ इस तरहके अनमेलविवाह लाचार होकर करना पड़ते हैं। आजकल जो लोग अपने लड़के और लड़कियोंको ऊँचे दर्जेकी शिक्षा देते हैं, यदि उनकी जाति अल्पसंख्यक है तो उनकी चिन्ताका और शिक्षित लड़के लड़कियोंकी दुर्दशाका कुछ पार ही नहीं रहता। लड़कीको आपने खूब पढ़ाई लिखाई; परन्तु जब ब्याहका वक्त आया तब

जातिमें योग्य शिक्षित वरके न मिलनेसे उसे किसी मूर्खके गले बाँध दी! बस, उसकी ज़िन्दगी ख़राब हो गई। ऊँचे दर्जेकी शिक्षा पाये हुए युवकोंकी भी मिट्टी इसी तरह पलीद होती है। वे या तो किसी अशिक्षिताके गलग्रह बन जानेसे जीवनभर दुखी रहते हैं या केवल इसी कारण—शिक्षिता स्त्रीके प्राप्त करनेकी इच्छासे—आर्य-समाज आदि इतर समाजोंके अनुयायी हो जाते हैं। इन बेजोड़ ब्याहोंके फलसे हमारे गृहस्थाश्रमके सुखका सर्वथा लोप हो रहा है—न स्त्रियाँ सुखी हैं और न पुरुष। यदि विवाहका क्षेत्र विस्तृत हो जायगा तो बहुत लाभ होगा—इच्छित वर और कन्याओंकी प्राप्तिका मार्ग बहुत कुछ सुगम हो जायगा।

६ **दुराचारकी वृद्धि**—जिन जातियोंमें कन्यायें थोड़ी हैं उनमें कुँआरे पुरुष अधिक रहते हैं और जिनमें कन्यायें अधिक हैं उनमें कुँआरी अधिक रहता हैं। इन दोनोंका फल यह होता है कि समाजमें दुराचारकी वृद्धि होती है। बाल्यविवाह, अनमेल-विवाह आदिके कारण भी दुराचारकी वृद्धि होती है और इन सबका मूल, विवाहक्षेत्रकी संकीर्णता है। यह विस्तृत हो जायगा तो जिस दुराचारको लोग प्रकृतिपर विजय न पा सकनेके कारण लाचार होकर करते हैं, वह बहुत कुछ कम होजायगा।

७ **उत्तम सन्तान न होना या निःसन्तान होना**—विवाह-क्षेत्रकी संकीर्णताका सबसे बड़ा भयंकर परिणाम यह हुआ है कि हमारी सन्तान दिन पर दिन दुर्बल और अल्पजीवी होती जाती है।

एक तो बेजोड़ विवाहोंकी, परस्पर प्रेम न रखनेवाले जोड़ोंकी, और बाल्यविवाहोंकी सन्तान यों ही अच्छी नहीं होती और फिर अल्पसंख्यावाली जातियाँ लाचार होकर बहुत ही नजदीकके सम्बन्धमें ब्याह करने लगती हैं। जो जाति जितनी ही छोटी है, उसमें ब्याह शादियाँ उतनी ही नजदीककी होने लगती हैं–बहुत ही निकटका रक्तसम्बन्ध होने लगता है और यह उत्तम और दीर्घजीवी सन्तानके न होनेका अथवा सन्तान ही न होनेका प्रधान कारण है। शरीरशास्त्रके विद्वानोंका मत है कि रक्तका सम्बन्ध जितनी ही दूरका होगा सन्तान उतनी ही अच्छी और बलिष्ठ होगी। हमारे प्राचीन आचार्योंने भी इसी कारण निकट सम्बन्धोंका निषेध किया है। असवर्णविवाहकी पद्धतिका मूल भी यही मालूम होता है। ईसाईयों और मुसलमानोंमें काका-जात भाई बहनोंका ब्याह करदेनेकी पद्धति है। यूरोपके शरीरशास्त्रज्ञ विद्वान् इस प्रथाको बहुत ही हानिकारक बतलाते हैं और इसको रोकनेके लिए आन्दोलन कर रहे हैं। उन्होंने परीक्षायें करके सिद्ध कर दिया है कि निकटसम्बन्धकी सन्तान बहुधा रुग्ण विकलाङ्ग और बुद्धिहीन होती है। यूरोपमें और इस देशमें ऐसे बहुतसे प्रतिष्ठित वंश हैं जो अपने ही जैसे कुछ इनेगिने वंशोंसे ही सम्बन्ध करते हैं। इसका फल यह हुआ है कि उनके सन्तान बहुत कम होती है और जो होती है वह अयोग्य होती है। ईराणकी, 'बाहाई' जातिके लोगोंमें निकट सम्बन्ध करनेकी पद्धति नहीं है, इस कारण उक्त जातिके लोग वहाँकी अन्य समकक्ष जातियोंकी अपेक्षा अधिक बुद्धिवान् और बलवान् होते हैं। हम

लोग यदि जैनसमाजकी तमाम जातियोंमें विवाहसम्बन्ध करने लगेंगे, तो यह दिन पर दिन बढ़नेवाला निकट सम्बन्धका हानिकारक प्रचार अवश्य कम हो जायगा।

८ **एकताकी हानि**—यह एक बहुत मोटी बात है कि विवाहसम्बन्धसे पारस्पारिक स्नेहकी और सहानुभूतिकी वृद्धि होती है। जिस जातिके लोगोंके साथ हमारा सम्बन्ध होगा यह संभव नहीं कि उनके साथ हमारी एकता घनिष्ठ न हो। जैनसमाजकी सम्पूर्ण जातियोंके साथ अभी हमारा सिर्फ धर्मका सम्बन्ध है, यदि रक्तका सम्बन्ध भी हो जाय, तो प्रेम और सहानुभूति बहुत कुछ बढ़ जाय। हम एकताके एक लम्बे चौड़े सूतमें बँध जायँ और एक दूसरेके सुख दुःखोंका भलाई बुराइयोंका बहुत कुछ अनुभव करने लगें। एक दूसरेकी सहायतासे हमें उन्नति करनेके अवसर भी बहुत मिलने लगें। हम एक विशाल जातिके अंग बन जायँ। अभी तो हम अपनी अपनी ढपली और अपने अपने रागमें ही मस्त हैं। अपनी जातिसे भिन्न जातिकी उन्नति अवनतिका हमें बहुत ही कम ख़याल है।

जो लोग विवाहसम्बन्धसे एकता और पारस्परिक सहानुभूतिकी वृद्धि नहीं मानते हैं उन्हें बादशाह अकबरकी उस कूटनीति पर ध्यान देना चाहिए जिससे उसने राजपूत जैसी उद्दण्ड उद्धत और अजेय जातिको भी विवाह सूत्रमें बाँधकर अपने वशमें कर लिया था और अपने राज्यकी नीवको बहुत ही दृढ बना दिया था। विवाहसम्बन्धके कारण जब राजपूत और मुसल्मान जैसी अतिशय

भिन्न जातियोंमें प्रेम और एकताकी वृद्धि हुई–मानसिंह जैसे वीरोंने मुगलसाम्राज्यकी रक्षाके लिए अपना जीवन लगा दिया, तब हमारी एक धर्मकी माननेवाली समीपवर्तिनी जातियोंमें इससे प्रेम और सहानुभूति क्यों न बढ़ेगी ?

ये बहुत ही मोटी मोटी बातें हैं जो हमें बतलाती हैं कि तमाम जैनजातियोंमें बेटी व्यवहार होने लगनेसे बहुत लाभ होगा और हम अनेक हानियोंसे बच जावेंगे । विचार करनेसे इनके सिवाय और भी अनेक बातें मालूम हो सकती हैं । हम आशा करते हैं कि हमारा यह लेख जगह जगह पंचायतियोंमें पढ़ा जायगा और विचारशील सज्जनोंका ध्यान इस विषयके हानिलाभोंकी ओर आकर्षित होगा । यहाँ हम यह भी कह देना चाहते हैं कि अभी यह विषय केवल चर्चाका है–अभी यह आशा नहीं कि लोग इस तरहका विवाह-सम्बन्ध करनेके लिए तैयार हो जायँगे । पहले अच्छी तरह चर्चा हो ले, लोग इसविषयको अच्छी तरह समझ लें, वादविवाद तर्क वितर्क कर लें, तब हम इसे कार्यमें परिणत देखनेकी आशा करेंगे। पर हमें यह विश्वास अवश्य है कि एक न एक दिन सारा जैनसमाज पारस्परिक विवाहसूत्रमें आबद्ध हुए बिना न रहेगा ।
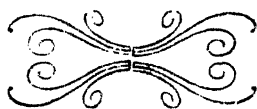
जैनोंकी राजभक्ति और देशसेवा ।

१–अजमेरके गवर्नर डूमराज ।

जब मारवाड़के महाराजा विजयसिंहने सन् १७८७ ईस्वीमें अजमेरको पुनः मरहटोंसे जीत लिया तो उन्होंने डूमराज सिंघीको जो ओसवाल जातिके जैन थे अजमेरका गवर्नर नियुक्त किया । मरहटोंने शीघ्र ही अपनी हानियोंकी पूर्ति कर ली और चार सालके पश्चात् फिर मारवाड़ देशपर आक्रमण किया । मेड़ता और पाटनके दो भीषण युद्ध हुए जिनमें मारवाड़ी पददलित कर दिये गये ।

इसी बीचमें मरहटोंके सरदार डी. बाइनने अजमेर पर हमला कर दिया और उसको चारों ओरसे घेर लिया । अजमेरके गवर्नर डूमराजने अपनी छोटीसी सेनासे शत्रुका बड़ी वीरतासे सामना किया और उनको आगे बढ़नेसे रोक दिया ।

पाटनयुद्धके बुरे परिणामके कारण विजयसिंहने डूमराजको हुक्म दिया कि मरहटोंको अजमेर सौंपकर जोधपुर चले आओ । उस साहसी वीरके लिए यह उत्तम कसौटी थी, क्योंकि न तो वह अपमानके साथ शत्रुको देश देना चाहता था और न वह अपने स्वामीकी आज्ञाका ही उल्लंघन करना चाहता था । इस भयंकर समयमें वह द्विविधामें पड़ गया । अन्तमें उसने निश्चय

कर लिया कि शत्रुकी अधीनता स्वीकार करनेसे तो मरना श्रेष्ठ है। वह अपने हाथमें हीरेसे जटित अँगूठी पहने हुए था। उसने हीरेको निकाल कर पीसा और खा गया ! मृत्युशय्यापर लेटे हुए इस वीर योद्धाने चिल्लाकर कहा "जाओ और महाराजसे कहो कि मैंने प्राण त्याग करके ही स्वामीभक्तिका परिचय दिया है। मेरी मृत्यु पर ही मरहटे अजमेरमें प्रवेश कर सकते हैं, पहले नहीं।"

२–मेवाड़के जीवनदाता भामाशाह।

कर्नल टाड साहबका कथन है कि इतिहासमें भामाशाह 'मेवाड़के जीवनदाता'के नामसे प्रसिद्ध हैं। वे ओसवाल जातिके जैन थे। देशभक्ति और देशसेवाके आदर्श नमूने थे। आप जगद्विख्यात लोकमान्य राणा प्रतापसिंहके दीवान थे। इस पदपर आपके घरानेके लोग पीढ़ियोंसे चले आते थे।

जिन लोगोंने इतिहासके पन्ने पल्टे हैं उन्हें ज्ञात होगा कि मुगल सम्राट् अकबरने चित्तौरपर आक्रमण किया था और भारतकेसरी वीर राणाप्रतापसिंहने बड़ी वीरतासे उसकी रक्षा की थी। एकबार राणाप्रतापके कोषमें द्रव्यका अभाव हो गया जिसके कारण वे अत्यन्त क्लेशित और पीड़ित हो रहे थे। उस समय उनकी दशा ऐसी शोचनीय थी कि उन्होंने इस हीनदशाके कारण मेवाड़का परित्याग करके कुटुम्बियों और साथियों सहित सिन्ध जानेका दृढ़ संकल्प कर लिया। वे अर्वली पर्वतसे नीचे उतरकर मरुभूमिमें पहुँच गये थे कि इतनेमें उनके देशभक्त मंत्री भामाशाहने आकर उन्हें लौटा लिया। भामाशाहने अपने पूर्वजोंका संचय किया

हुआ पुष्कल द्रव्य राणाको दे दिया । कहा जाता है कि वह इतना था कि उससे पच्चीस हजार मनुष्य बारह वर्षतक आनन्दपूर्वक निर्वाह कर सकते थे ! स्वामिभक्त मंत्रीने राणासे हाथ जोड़कर प्रार्थना की कि महाराज, मेरे पास जो धन है वह सब आपका ही है; आप स्वदेशको पधारिए और शत्रुसे पुनः युद्ध कीजिए । परिणाम यह हुआ कि थोड़ीसी सेनाके होनेपर भी राणाने चित्तौर, अजमेर और मंडलगढ़के अतिरिक्त शेष सम्पूर्ण मेवाड़ वापिस ले लिया । यद्यपि इस घटनाको ३०० बर्षसे अधिक हो गये तथापि भामाशाहके नामसे जिसने आपत्तिके समय देशके गौरवकी रक्षा की मेवाड़का बच्चा बच्चा परिचित है । निस्सन्देह इससे बढ़कर देशहित और राज्यभक्तिका दूसरा उदाहरण नहीं मिल सकता ।

३–बीकानेरके अमरचन्द्र सुराना ।

अमरचन्द्र बीकानेरके प्रतिष्ठित ओसवाल जातिके एक जैन थे । महाराज सूरतसिंहके समयमें जिनका राज्यकाल सन् १७८७ से १८२८ तक रहा है इन्होंने बहुत प्रसिद्धि पाई ।

सन् १८०५ ईस्वीमें अमरचन्दजी भटियोंके खान जब्ता खांसे युद्ध करनेके लिए भेजे गये । इन्होंने खान पर आक्रमण किया और उसकी राजधानी भटनेरको घेर लिया । पाँच मासतक किलेकी रक्षा करनेके बाद जब्ता खाँने किलेको छोड़ दिया और उसको अपने साथियोंके साथ रैना जानेकी आज्ञा मिल गई । इस वीरताके कार्यके उपलक्ष्यमें राजाने अमरचन्द्रजीको दीवान पद पर नियत कर दिया ।

सन् १८०८ ईस्वीमें जोधपुरनरेश मानसिंहने बीकानेर पर आक्रमण किया। इस अभागे राज्यमें इन्द्रराज सिंघीकी अधीनतामें एक सेना भेजा गई जिसमें कितने ही अधीन राजाओंके वीरगण तथा राजपूतानेके काल अमीरखाँके भी वीर सिपाही शामिल थे। सूरतसिंहने भी सेना इकट्ठी की और अमरचन्द्रको उसका सेनापति बनाकर शत्रुको रोकनेके लिए भेजा। दोनों सेनायें बपरीके मैदानमें मिलीं। थोड़ी देर तक घमासन युद्ध होनेके बाद—जिसमें अमरचन्द्रके दो सौके करीब आदमी काम आगये थे—अमरचन्द्र बीकानेरकी तरफ़ लौट पड़ा। विजयी इन्द्रराजने उसका पीछा किया और अन्तमें दोनों राज्योंमें गजनेरमें सन्धि हो गई।

सूरतसिंहके राज्यमें बीकानेरके ठाकुर कुछ स्वाधीनसे हो चले थे। इस कारण महाराजने इस असन्तोषजनक दशाको समूल नष्ट करने, नीच ठाकुरोंको दण्ड देने और उनकी करतूतका फल उन्हें चखानेके लिए अमरचन्दको भेजा। चार वर्षतक अमरचन्द इस कार्यमें लगा रहा। इसके कहनेमें हमें संकोच नहीं होता कि उसने अपने कर्त्तव्यके पालनमें बहुत ही निष्ठुरता दिखाई और शोणित-सरिता बहाई जिसके लिए वह अवश्य कलङ्की है।

हा! यह उसे कभी न सूझा कि जो मैं दूसरेके लिए कर रहा हूँ वही मेरे लिए भी एक रोज़ होगा। यदि मैं दूसरोंके लिए गड्ढा

१ इन्द्रराज सन् १७६७ ईस्वीमें ओसवाल जातिके सिंघवी कुलमें सोजतमें पैदा हुआ था। ओसवालोंमें यही सबसे बड़ा जेनरल हुआ है। इसने न केवल बीकानेरके राजाको हराया, किन्तु जयपुरका मान भी इसीने ग़लत किया। सन् १८१५ ईस्वीमें यह जोधपुरमें मार डाला गया।

खोदता हूँ तो दूसरे मेरे लिए कुँवा खोदेंगे। उसने पहले सरनबीके ठाकुरोंसे भारी कर वसूल किया, फिर रतनसिंह बेदवन्त पर हमला किया और उसको शूली पर चढ़ा दिया। पश्चात् भट्टियोंपर आक्रमण किया और सबको मार डाला। ३०० में से केवल एक अपनी स्त्रीसहित बचकर भाग सका। फिर शीघ्र ही नाहरसिंह और पूरनसिंह इन दो प्रसिद्ध ठाकुरोंपर आक्रमण किया और उनको कैद करके बीकानेर भेजा जहाँ वे दोनों शूली पर चढ़ा दिये गये।

सूरतसिंहजीने अमरसिंहके इस वीरताके कार्यसे प्रसन्न होकर उसको अपने महलमें अपने साथ भोजन करनेकी आज्ञा देकर सम्मानित किया।

सन् १८१९ ईस्वीमें अमरचन्द्रजी सेनापति बनाकर चुरूके ठाकुर शिवसिंहके साथ युद्ध करनेको भेजे गये। अमरचन्द्रने शहरको घेर लिया और शत्रुका आना जाना रोक दिया। जब ठाकुरसाहब अधिक कालतक न ठहर सके तो उन्होंने अपमानकी अपेक्षा मृत्युको उचित समझा और आत्मघात कर लिया। अमरचन्द्रकी इन सेवाओंसे राजा बड़ा प्रसन्न हुआ, यहाँतक कि उसको रावकी पदवी, एक खिलत तथा सवारीके लिए एक हाथी प्रदान किया।

परन्तु अब अमरचन्द्रके जीवनने पल्टा खाया। उसके भाग्यके सितारेकी ज्योति और कान्ति धीरे धीरे मलीन होने लगी। उसकी विजयसे उसके शत्रुगण ईर्षावश भड़क उठे और उसके नाश-

के लिए एक षड्यन्त्र रचा गया। शत्रुओंने उसको उन्नतिके शिखरसे केवल गिरा ही नहीं दिया किन्तु उसका एक फौजदारी मुकद्दमेंसे सम्बन्ध कराकर उससे भारी जुर्माना दिलवाया। सन् १८१७ ईस्वीमें पिण्डारियोंके सर्दार अमीरखाँके साथ साजिश करनेका झूठा दोष उसपर लगाया गया। यद्यपि उसके मित्रोंने उसकी रक्षाके लिए बहुत कुछ प्रयत्न किया परंतु कुछ लाभ न हुआ। उसके शत्रुओंकी बन आई और वह बेचारा निरपराध अत्यन्त निर्दयतासे मार डाला गया।

—नाथूराम जैन,
लखनऊ।

मुक़द्दमेबाजीके दोष।

भारतवासियोंकी आजकलकी निर्धनता और दरिद्रताका एक कारण हदसे ज्यादा मुक़द्दमेबाज़ी भी है। जिन लोगोंको ऐतिहासिक ग्रंथोंके पढ़नेका अवसर प्राप्त हुआ है वे जानते हैं कि प्राचीन समयमें भारतवासी इस दोषसे कितने रहित थे। एक चीनी तीर्थयात्री सातवीं शताब्दीमें भारतवर्षकी यात्रा करके जब लौट कर अपने देशमें गया; तब वह भारतवासियोंके विषयमें ऐसा कहता था कि "भारवासी झूठ बोलना महापाप समझते हैं इस लिए वे बिलकुल झूठ नहीं बोलते।" इस बातको उसने स्वरचित एक पुस्तकमें भी लिख दिया है। प्रोफेसर मेक्समूलर साहबने (जो यूरोपमें बड़े भारी संस्कृतके विद्वान् और भारत-

वर्षके सच्चे हितैषी थे) अपनी पुस्तक " भारतसे हम क्या सीख सकते हैं " में लिखा है कि प्राचीन आर्य्यगण सत्य बोलनेके लिए बहुत प्रसिद्ध थे। परन्तु शोक है कि आज कल हम उसी भारतके निवासी और उसी प्रशंसित आर्य्यजातिकी सन्तान इतने बदनाम हो गये हैं कि यूरोप अमेरिका और अन्य सभ्य देशके लोग हमारे नामसे घृणा करते हैं। विदेशी लोग हमको झूठे, कपटी, छली और दग़ाबाज़के नामसे पुकारते हैं। जिन लोगोंको आज कल कचहरियों, अदालतोंकी कार्रवाईका ज्ञान है, वे भलीभाँति जानते हैं कि कितने लोग दीवानी फ़ौजदारी अदालतमें कैसा झूठ बोलते हैं और कदाचित् उतना झूठ वे कचहरीके बाहर कभी नहीं बोलते होंगे। अनेक जन चार आनेके लिए पवित्रसे पवित्र नामोंकी शपथें खाते हैं, जिसका परिणाम यह हुआ कि आज कल हमारी जाति असत्य, छल, कपटके लिए बहुत बदनाम हो गई है। यहाँतक कि परस्पर मित्रों और रिश्तेदारोंमें भी एक दूसरेपर विश्वास नहीं रहा और इसी लिए भारतवासी वाणिज्य, तिजारतमें भलीभाँति उन्नति नहीं कर सकते। इस मुक़द्दमेबाज़ीसे भारतवासियोंको जो हानि पहुँचती हैं वह बुद्धिमानोंसे छिपी नहीं। असल रकमसे पाँच गुणा अधिक मुक़द्दमा पर खर्च हो जाता है और उभयपक्ष (फ़रीकेन) मुक़द्दमेबाज़ीसे बरबाद हो जाते हैं। इस कारण हमें पञ्चायत करनी चाहिए।

टहलराम गंगाराम जमींदार।

भारतमें शिक्षाकी उन्नति ।

भारतवर्ष अपनी प्राचीन सभ्यता धन और प्रतापको कभी भी प्राप्त नहीं कर सकता, जब तक शिक्षा मुफ्त और जरूरी न दी जायगी। यदि भारतसरकार शिक्षाको मुफ्त और जरूरी रूपमें नहीं देना चाहती तो भारतके नेताओं, राजा महाराजाओं, जागीरदारों, कमेटीके मेम्बरों, सभाओं और शुभचिन्तकोंका कर्तव्य है कि वे स्वयं ही इस कार्य्यको अपने हाथमें लें । हर एक मन्दिर और धर्मशालाके साथ वाचनालय और पुस्तकालय खोलें जहाँ वे लोग जिनको दिनमें फुर्सत मिलती है शिक्षा प्राप्त कर सकें। मजदूरोंके लिए हर एक गाँवमें और नगरकी हर एक गलीमें रात्रि-पाठशालायें खोली जायँ ।

जरूरी सामाजिक राजनैतिक, धार्मिक और आर्थिक विषयों पर देशी भाषाओंमें पुस्तकें छापी जायँ और उनको मुफ्त या थोड़ी सी कीमत पर साधुओं और ब्राह्मणोंमें जो देशी भाषायें जानते हों बाँटा जाय। क्योंकि साधुओं और ब्राह्मणोंका आम लोगों पर बहुत प्रभाव है। ज्यों ही इन धार्मिक श्रेणियोंके समय और ताकतोंको जो दुर्भाग्यसे इस समय नष्ट हो रहीं हैं सामाजिक राजनैतिक और धार्मिक विषयोंके सुधारके लिए काममें लगाया जायगा, त्यों ही हिन्दू जाति अवश्यमेव उन्नत होगी। अन्य सभ्य जातियाँ कुदरतके तत्त्वोंको यानि अग्नि, वायु, जलको, रेलों, स्टीमरों, मिलों, हवाईजहाजोंमें लगा रही हैं और अपनी सभ्यता, धन और अभ्युदयको बढ़ा

रही हैं; परन्तु शोक कि हम कुदरतके तत्त्व स्वामियों अर्थात् पुजारी श्रेणियों, साधुओं और ब्राह्मणोंको अपनी जातिकी उन्नतिके लिए इस्तेमाल नहीं कर रहे हैं।

ईश्वर उनकी मदद करता है जो अपनी मदद आप करते हैं।

टहलराम गंगाराम, जमीदार।

डेरा स्माइलखां।

विविध-प्रसङ्ग।

१-हमारे धर्मतीर्थ और मुक़द्दमेबाज़ी।
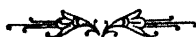
अन्यत्र डेरा स्माइलखाँके जमींदार श्रीयुत टहलराम गंगारामजीका एक लेख प्रकाशित किया जाता है जिसमें मुक़द्दमेबाज़ीके दोष बतलाये गये हैं और अपने झगड़ोंको अदालतोंतक न ले जाकर पंचायतियों द्वारा तै कर डालनेकी प्रेरणा की गई है। हम अपने पाठकोंका ध्यान उक्त लेखकी ओर आकर्षित करते हैं और इसके साथही जैनतीर्थोंपर जो मुक़द्दमें चला करते हैं उनके विषयमें विशेषरूपसे विचार करनेकी प्रार्थना करते हैं। हमें कुछ समयके लिए धर्मान्धता और धार्मिक द्वेषको एक ओर रख देना चाहिए और शान्त होकर सोचना चाहिए कि तीर्थोंकी मुक़द्दमेबाज़ीमें प्रतिवर्ष जो लाखों रुमया ख़र्च होता है

वह कहाँ तक उचित है और उसके बन्द करनेका कुछ उपाय भी है या नहीं ?

तीर्थक्षेत्रोंके मुखियाओंको और मुक़द्दमेबाज़ीके सूत्रधारोंको पहले यह सोचना चाहिए कि आजकलके समयमें रुपयेका क्या महत्त्व है और उसके सदुपयोग तथा दुरुपयोगसे किसी जातिकी उन्नति अवनतिसे कितना सम्बन्ध है ? तीर्थोंमें जो रुपया आता है उसका अधिकांश उन लोगोंकी कमाईका होता है जो सबेरेसे शामतक कठिन परिश्रम करके अपने कुटुम्बका निर्वाह करते हैं और परम्परागत धार्मिक विश्वासके कारण पुण्य समझकर आपलोगोंको सौंपदेते हैं । मुकद्दमें लड़ते समय आपको इन बेचारोंकी पसीनेकी कमाईका ख़याल अवश्य कर लेना चाहिए । जिन रुपयोंसे हज़ारों भूखे प्यासे दरिद्रियोंके प्राण बचाये जा सकते हैं, हजारों निरक्षर विद्वान् बनाये जा सकते हैं, लाखों दुखी जीवोंकी रक्षा की जा सकती है और धर्मप्रभावनाके बीसों कृत्य किये जा सकते हैं उन्हीं रुपयोंको धर्मके भयसे पानीमें फेंकते समय—वकील बैरिस्टरोंकी जेबोंमें भरते समय बड़े ही अफसोसकी बात है कि न आपके हाथ ही काँपते हैं और न आप इसको कुछ बुरा ही समझते हैं ।

गत पचास वर्षोंमें मक्सी, सम्मेदशिखर, सोनागिर, पावापुरी, अन्तरिक्ष, आदि तीर्थोंके मुकद्दमोंमें बहुत ही कम ख़र्च हुआ होगा तो लगभग २५ लाख रुपया अवश्य ही ख़र्च हो गया होगा ! क्या आप समझते हैं कि इन सब रुपयोंका सदुपयोग हुआ है और इनसे इन मुक़द्दमोंसे अच्छे और कोई कृत्य न किये जासकते थे ?

पच्चीस लाखकी रकम थोड़ी नहीं होती है! इतनी बड़ी रकमसे जैनधर्म और जैनजातिकी उन्नतिके लिए बहुत कुछ किया जा सकता था।

इस मुकद्दमेबाजीमें हमारा केवल रुपया ही बरबाद नहीं होता है; इसके साथ ही हमारी धार्मिक हानि भी बहुत बड़ी होती है। कहाँ तो हमारे धर्मका यह उपदेश कि सारे संसारमें मैत्रीभावकी वृद्धि करो, शत्रुपर भी क्षमा करो और कहाँ उसी पवित्र धर्मके नामसे हमारा यह अपने भाइयोंसे शत्रुता बढ़ाना, कषायोंकी वृद्धि करना और शत्रुताकी जड़को मजबूत बनानेके लिए निरन्तर प्रयत्न करना! क्या जैनधर्मकी महती उदारता, मित्रता और मध्यस्थताकी पालना हमें इसी तरह करना चाहिए?

और यह कहनेकी तो जरूरत ही नहीं है कि ये धार्मिक मुकद्दमें देशकी एकताको नष्ट करनेके लिए, पारस्परिक सहानुभूति और सहयोगिताको नष्ट करनेके लिए कुठारके तुल्य हैं। इनके शान्त हुए बिना देशकी उन्नतिकी आशा करना नितान्त मूर्खता है।

जैनसमाजको अब रुपयेका मूल्य समझ लेना चाहिए। पहला जमाना अब नहीं रहा। इस समय हमारी जो संस्थायें हैं उनके पेट प्रायः खाली पड़े हैं, नई नई संस्थाओंकी आवश्यकतायें नजर आ रही हैं और देशकी सार्वजनिक संस्थायें भी हमसे द्रव्यकी उचित आशा रखती हैं। ऐसे समयमें यदि हम द्रव्यके सदुपयोग-पर ध्यान न देंगे और इन मुकद्दमोंमें ही अपना सर्वस्व लुटाते रहेंगे

तो हमारी संस्थायें नष्ट होने लगेंगीं और हममें जो थोड़ा बहुत काम हो रहा है वह भी न होगा।

और मुकद्दमें लड़नेसे कुछ फ़ायदा भी तो नहीं होता है। 'मरज बढ़ता ही गया ज्यों ज्यों दवा की' वाली बात यहाँ अच्छी तरह घटित होती है। एक मुकद्दमा तै ही नहीं होता कि दूसरा दायर हो जाता है। कभी श्वेताम्बरी हारते हैं कभी दिगम्बरी जीतते हैं। आज सम्मेदशिखरपर तो कल सोनागिरपर, परसों अन्तरीक्षपर तो तीसरे दिन और किसी तीर्थपर। इस तरह परम्परा ज़ारी ही रहती है। गत बीस वर्षोंमें शायद ही ऐसा कोई समय आया हो जब दिगम्बरी श्वेताम्बरियोंका कोई न कोई मुक़द्दमा किसी न किसी तीर्थपर ज़ारी न रहा हो। यदि जी खोलकर लड़ लेनेसे ही इन झग-ड़ोंका अन्त आ जानेकी आशा होती तो हम कभी शान्त होनेके सम्मति नहीं देते; परन्तु अन्त हो तब न! यदि दिगम्बरी हज़ार रुपया ख़र्च कर सकते हैं तो श्वेताम्बरी दो हज़ार ख़र्च करनेको तैयार हैं और श्वेताम्बर दो हज़ार ख़र्च करते हैं तो दिगम्बरी तीन हज़ार ख़र्च करनेकी कोशिश करते हैं। कषायभावोंकी और धार्मिक द्वेषकी भी दोनों ओर कमी नहीं है। इस विषयमें एक दूसरेसे सवाये बढ़ जानेका दोनों ही दावा करते हैं। रही यह बात कि तीर्थोंपर प्राचीन स्वत्व किसका है, सो इसका निबटारा कभी होनेका नहीं। कहीं दिगम्बरियोंका स्वत्व पुराना है और कहीं श्वेताम्बरियोंका। कहीं एकका स्वत्व तो पुराना है, परन्तु वह पुराना सिद्ध नहीं कर सकता। कहीं एकका नया है; परन्तु वह मजिस्ट्रेटकी आँखोंमें धूल झोंककर नया सिद्ध कर देता है। ग़रज़

यह कि किसीकी प्राचीनता या नवीनताके सिद्ध होने न होनेसे भी इन झगड़ोंके अन्त होनेका कोई सरोकार नहीं है ।

तब इस मुकद्दमेबाज़ीका अन्त कैसे हो? इसके उत्तरमें हम यह प्रेरणा नहीं करते हैं कि दिगम्बरी श्वेताम्बरी आपसमें मिलकर एक हो जायँ, या तीर्थोंका मानना ही छोड़ दिया जाय । ऐसा होना संभव नहीं और इष्ट भी नहीं । अन्त होनेका उपाय केवल यही है कि दोनों सम्प्रदायवाले इसके अन्त करनेका निश्चय कर लें और समझ लें कि इसीमें जैनसमाजका कल्याण है । यदि दोनों ही समाजके मुखिया और मुकद्दमेबाज़ीके सूत्रधार यह समझ लें अथवा वे न समझें तो सारा समाज उन्हें समझनेके लिए लाचार कर दे, तो तीर्थोंकी मुकद्दमेबाज़ीका अन्त शीघ्र ही हो सकता है । यहाँ यह अवश्य कहना पड़ेगा कि इसके अन्त करनेके विचार दोनों ही सम्प्रदायवालोंके होंगे तभी कुछ सफलता होगी, एकके विचारोंसे कुछ न होगा ।

यदि कभी ऐसी बातोंकी चर्चा की जाती है तो मुखियोंकी ओरसे प्रायः यह उत्तर मिलता है कि हम क्या करें? श्वेताम्बरी लोगोंने बहुत सिर उठाया है, वे हमें दर्शन पूजनतककी मनाई करते हैं, तब हम मुकद्दमें न लड़ें तो क्या करें? अथवा सन्धिका प्रस्ताव हम ही क्यों करें? हम क्या किसी बातमें उनसे कुछ कम हैं? वे तो सन्धि करना ही नहीं चाहते । कहना नहीं होगा कि श्वेताम्बरियोंके मुखिया भी इसी प्रकारका उत्तर देते हैं और वे दिगम्बरियोंको दोषी ठहरते हैं । पर वास्तवमें देखा जाय तो निर्दोष

दोनों ही नहीं हैं। यह ठीक है कि कभी कभी किसी एक पक्षकी ओरसे अधिक अन्याय हो जाता है, परन्तु साथ ही यह बात भी है कि मौका पानेपर दूसरा पक्ष भी अपनी शक्ति भर अन्याय करनेमें कुछ बाकी नहीं रख छोड़ता। ये सब बातें यही प्रकट करती हैं कि दोनों ही अपनी अपनी प्रधानता चाहते हैं और वास्तवमें सन्धि करना उन्हें अभीष्ट नहीं है।

अब समय आ गया है कि कुछ शिक्षित लोग आगे बढ़ें और इस आन्दोलनको उठा लेवें। यदि इस विषयमें जीजानसे परिश्रम किया जायगा और वह लगातार जारी रक्खा जायगा तो अवश्य सफलता होगी। सच पूछा जाय तो अभीतक इस विषयमें एक भी व्यवस्थित प्रयत्न नहीं किया गया है और यही कारण है जो इस ओर लोगोंका बहुत ही कम ध्यान गया है।

हमारी समझमें इसके लिए एक सभा स्थापित होनी चाहिए जिसमें दोनों ही सम्प्रदायोंके भाई मेम्बर बनाये जावें। यह सभा ट्रेक्टोंके द्वारा, लेखोंके द्वारा, व्याख्यानोंके द्वारा, अपने विचारोंका प्रचार करे, और कमसे कम वर्षभरमें एक बार दिगम्बरी और श्वेताम्बरी कान्फरेंसोंके साथ साथ बारी बारीसे अपना अधिवेशन करे। प्रत्येक तीर्थके प्रत्येक मुकद्दमेकी बुनियादका पता लगावे, उसके कारण मालूम करे और फिर उसके सम्बन्धमें दोनों पक्षके मुखियोंको पत्रव्यवहारसे या जरूरत हो तो डेप्यूटेशन भेजकर समझावे और सुलहकी कोशिश करे। इस पद्धतिसे यदि काम चलाया जायगा तो वर्ष ही दो वर्षमें इसका अच्छा फल नजर आये बिना न रहेगा।

हम आशा करते हैं कि हमारे सहयोगी इस विषयकी चर्चाको जारी रक्खेंगे और दोनों सम्प्रदायोंके अगुओंके कानोंतक इस आवश्यक सन्देशको अवश्य पहुँचा देंगे ।

२ ' भट्टारक ' पदकी दुर्दशा ।

किसी समय ' भट्टारक ' पद बहुत ही पूज्य और प्रतिष्ठित समझा जाता था; परन्तु समयके फेरसे आज वही पद बहुत ही निन्द्य और अपमानास्पद गिना जाने लगा है । आज कोई भी अच्छा विद्वान् और विचारशील पुरुष समझाने बुझाने पर भी किसी भट्टारककी गद्दी पर बैठनेके लिए तैयार नहीं होता है । इससे एक नीतिज्ञका यह वचन बहुत ही सच जान पड़ता है कि " कोई पद मनुष्यको ऊँचा नही बना सकता, मनुष्य ही पदको ऊँचा बनाता है। मनुष्योंकी करामातसे ही आज भट्टारक पद सिंहासनसे नीचे लुढ़क कर पैरोंसे ठुकराने योग्य हो गया है। कई सौ वर्षोंसे इस पद पर प्रायः ऐसे ही लोग बिठाये गये जो इसके सर्वथा अयोग्य थे और अब तो प्रायः ऐसे ही लोग इस पदके एकाधिकारी हो गये हैं जिनमें मनुष्यता का पता ढूंढ़ने पर भी कठिनाईसे मिलता है । ऐसी दशामें यदि इस पूज्यपदकी दुर्दशा हो गई तो इसमें आश्चर्य ही क्या है ?

३ भट्टारकोंका टिमटिमाता हुआ दिया ।

दिगम्बर जैनसमाजका एक बहुत बड़ा भाग बहुत दिनोंसे इन महात्माओंके शासनके जूएँको अपने कन्धोंसे उतार कर फेंक चुका है जो कि आज तेरहपन्थके नामसे प्रसिद्ध है और इसके कारण भट्टारकोंका शासनप्रदीप निर्वाण होनेके बहुत ही समीप

पहुँचता जा रहा है। वह कभीका बुझ गया होता, परन्तु एक तो समाजका एक बहुत बड़ा भाग अज्ञानके गढ़हेसे निकलनेकी कोशिश ही नहीं करता है और दूसरे बीच बीचमें कुछ भट्टारक भी ऐसे होते रहे हैं जो इस पदकी इज्जतको बहुत कुछ बचाये रहे हैं, इस लिए वह अब भी टिमटिमा रहा है। किन्तु ऐसा मालूम होता है कि अब बहुत दिनोंतक न टिक सकेगा—उसका स्नेह निःशेष हो चुका है और बर्तिका भी नष्ट हो चुकी है। हमारी समझमें अब उसकी जरूरत भी नहीं है। एक प्रतिष्ठित पदकी दिल्लगी करानेके लिए टिमटिमाते रहनेकी अपेक्षा तो उसका बुझ जाना ही अच्छा है।

४—भट्टारक विजयकीर्तिकी सुकीर्ति।

हितैषीके पाठक ब्रह्मचारी मोतीलालके शुभनामको भूले न होंगे। आजकल आपके बड़े ठाठवाट हैं—आपके सुखसौभाग्यका सूर्य इस समय मध्याह्न पर पहुँचा हुआ है। अब आप मोतीलाल नहीं, किन्तु श्री १०८ भट्टारक विजयकीर्तिजी महाराज कहलाते हैं। आपके साथ इस समय गाड़ी, घोड़ा, पालकी आदि सारे राजोचित साजबाज हैं। शास्त्री, चपरासी, हवालदार, रसोइया, नाई, धोबी, खिदमतगार आदि २०—२५ नौकर चाकर हैं। जरी और मखमलके वस्त्रोंका उपयोग करके आप अपने पूर्वनिर्ग्रन्थोंकी दरिद्रताके दोषको दूर कर रहे हैं। आपका प्रतिदिनका खर्च सिर्फ २५—३० पचीस तीस रुपया रोज है! इस समय आप बाकरोल नामक ग्राममें आनन्द कर रहे हैं और शायद चातुर्मास भर वहीं रहेंगे। ग्राममें जैन भाइयोंके सिर्फ ३० घर हैं, जिनकी आर्थिक अवस्था बहुत मामूली है

पर मामूली होनेसे ही क्या हो सकता है ? श्रावक होनेका फल तो उन्हें कुछ न कुछ मिलना ही चाहिए ! गवर्नमेंट जिस तरह आवश्यकता पड़ने पर किसी स्थानमें प्यूनीटिव पुलिस बिठा देती है और उसका खर्च वहाँके रहनेवालोंसे वसूल करती है उसी तरह हमारा धर्म भी जिस स्थानके श्रावकोंके लिए आवश्यक समझता है उस स्थानपर इस पाखण्ड-पुलिसको भेज देती है जो श्रावकोंकी अक्लको बहुतही जल्द ठिकाने ला देती है। अभागे गुजरातके श्रावको ! अपनी मूर्खताका, अन्धश्रद्धाका और अविचारशीलताका यह सुपरिणाम भोगो और तब तक भोगते रहो जबतक तुमने जैनधर्मका और उसके गुरुओंका वास्तविक स्वरूप नहीं समझ लिया है ।

५ भट्टारकजीका प्रतिज्ञापत्र ।

जिस समय ब्रह्मचारी मोतीलालजी ईडरकी गद्दीपर बैठनेके लिए उम्मेदवार हो रहे थे उस समय आपने पूज्य पं० पन्नालालजी बाकलीवालको एक प्रतिज्ञापत्र लिख दिया था । गुरुजी (पं० पन्नालालजी) ने अब उक्त प्रतिज्ञापत्र सार्वजनिक पत्रोंमें प्रकाशित करवा दिया है । उसमें लिखा है कि " मैं भट्टारक होनेपर ईडर तथा सागवाड़ा आदिके प्राचीन शास्त्रभण्डारोंका जीर्णोद्धार कराऊँगा, उनके प्रचारके लिए अर्थव्यय करूँगा, अपने उपासक श्रावकोंके प्रत्येक ग्राममें पुस्तकालय खोलूँगा, पाठशालायें स्थापित करूँगा, उपदेशकों, समाचारपत्रों और ग्रन्थमालाओंके द्वारा धर्मका प्रचार करूँगा । यदि मैं ऐसा न करूँ और कोई धर्मविरुद्ध या नीतिविरुद्ध कार्य करूँ, तथा तीन बार चेतावनी देनेपर भी न मानूँ,

तो आप लोग और रायदेशके पंच मुझे जो सज़ा देंगे, उसे मैं सहर्ष स्वीकार करूँगा।" हमारा विश्वास है कि मोतीलालजी इसी प्रतिज्ञापत्रकी कृपासे ही आज अपनी पाँचों अँगुली घीमें तर कर रहे हैं। यदि गुरुजीको वे प्रतिज्ञापत्रके द्वारा धर्मप्रचारका विश्वास न दिलाते और गुरुजी सिफारिश न करते तो यह चार दिनाकी चाँदनी उन्हें लभ्य न होती; परन्तु ऐसे अच्छे मौकेको मोतीलालजी जैसे पुरुषरत्न कैसे चूक सकते थे? और गुरुजी जैसे दुनियाकी चालबाजियोंसे सर्वथा अज्ञान और मनुष्यप्रकृतिको न पहचाननेवाले भोले धर्मप्रचाराभिलाषी भी क्या बारबार मिलते हैं? आपने गुरुजीको बना लिया और लिख दिया प्रतिज्ञापत्र। अब गुरुजी और रायदेशके पंच उक्त प्रतिज्ञापत्रको शहद लगाकर चाँटा करें और भट्टारकजी महाराज अपनी चालबाज़ीपर खुश होते हुए हलुआ पूड़ियोंपर हाथ साफ़ किया करें।

६ शेतवालोंके बालक-भट्टारक।

लातुर (निज़ाम) में शेतवाल जातिके भट्टारकोंकी एक गद्दी है। वह अभीतक खाली थी। वर्धाके श्रीयुत यादव दाजीबा श्रावणेके पत्रसे मालूम हुआ कि अब उक्त गद्दीपर एक बालक बिठा दिया गया है और पं० रामभाऊजी उसकी पूजा उपासना करनेके लिए भक्तमण्डली एकट्ठी कर रहे हैं। बालककी उम्र सिर्फ ११ वर्षकी है। वह मराठीकी सिर्फ़ तीन क्षायें पढ़ा है! शेतवाल समाज अब अपने धर्मकी और समाजकी उन्नति इसी बालकके चरणोंके प्रसादसे करेगा! 'प्रगति आणि जिनविजय' के सम्पादक इस विष-

यमें एक नोट करते हुए लिखते हैं—“हमारी समझमें नहीं आता कि हम जैनसमाजके इस लांछनास्पद अज्ञानके लिए रोवें या दुनियाको झुकानेवालों (पं० रामभाऊ आदि) की अक्लकी तारीफ़ करें। 'गद्दी खाली है' इस कारणसे निरन्तर आँसू बहानेवाले शेतबाल भाइयो ! करो इस गुरुके स्वाँगका सत्कार और होने दो जातिकी उन्नति !”

७ तेरहपंथियोंके भट्टारक।

चौंकिए नहीं, हम आजकलके कुछ त्यागी ब्रह्मचारियोंको तेरहपंथियोंका भट्टारक कहते हैं। हमारी समझमें ये भी एक तरहके भट्टारक हैं। तेरहपंथी भाई बीसपंथियोंके भट्टारकोंको छोड़कर आजकल इन्हींकी पूजा करते हैं। मूर्खता और निरक्षरतामें तो ये भट्टारकोंकी ही जोड़के हैं; परन्तु चारित्रमें अभी इनका नम्बर बहुत पीछे है। पर, यह आशा अवश्य है कि यदि श्रावकोंकी भक्ति इनके पीछे इसी तरह अन्धी होकर दौड़ती रही तो ये बहुत ही जल्दी अपनी इस कमीको पूरी कर डालेंगे। यहाँ आये हुए पं० मूलचन्दजीसे मालूम हुआ कि श्रीमान् त्यागीजी महाराज मुन्नालालजी क्षुल्लक किसी एक स्थानके मन्दिरमें अपनी एक पेटी पैक करके और शीलमुहर लगाकर रख गये थे। उनके बाद ही वहाँ ऐलक पन्नालालजी जा पहुँचे। त्यागियोंमें पारस्परिक सौहार्द कैसा होता है, सो तो प्रायः सब ही लोग जानते हैं और फिर किसीने जिक्र कर दिया कि मुन्नालालजी अपनी एक पेटी यहाँके पंचोंके सिपुर्द कर गये हैं! सुनते ही

त्यागीजीने पेटी मँगवाई। लोगोंने बहुत मना किया कि पेटी मत खोलिए; परन्तु उन्होंने एक न मानी और पेटी खुलवा डाली! देखा तो उसमें २०००) दो हज़ार रुपयेके नोट रक्खे हुए थे। खण्डवस्त्र मात्र रखनेवाले क्षुल्लकोंके पास नोट! दो हज़ारके!! लोगोंके आश्चर्यका ठिकाना न रहा। हम यह जाननेके लिए उत्सुक हो रहे हैं कि इसके आगे क्या हुआ और अब उक्त रुपये किसके पास हैं। क्षुल्लकजी महाराजसे पूछना चाहिए कि उनके पास उक्त नोट कहाँसे आये और यदि वे किसी मंत्रके बलसे नोट बनाना जानते हों तो यह शुभसंवाद उनके भक्तवृन्दोंके पास अवश्य पहुँचा देना चाहिए।

८ भट्टारकोंसे समाजकी रक्षा कैसे हो?

इन भट्टारकों और त्यागियोंसे समाजकी रक्षा करनेका प्रधान उपाय अन्धश्रद्धाका काला मुँह कर देना है। यदि अन्धश्रद्धाको हमारे यहाँ स्थान न मिलता तो आज न भट्टारकोंके अन्यायोंसे हमें पीडित और लज्जित होना पड़ता और न ये त्यागियोंकी ही लीलायें देखनी पड़तीं। यह सब अन्धश्रद्धाकी कृपाहीका फल है। अन्ध-श्रद्धा उस पुरुषको अपने बड़प्पनका या पूज्यताका दुरुपयोग करनेके लिए ललचाती है जिसपर कि लोग श्रद्धा करते हैं। यदि अन्धश्रद्धा न हो तो न उपासकोंका ही अधःपतन हो और न उपास्य साधु भट्टारकोंको आज कल जैसी नीचवृत्तिका अवलम्बन करना पड़े। इसलिए जैसे बने तैसे—शिक्षाका प्रचार करके, उप-देशोंका भ्रमण कराके, छोटे छोटे ट्रेक्टोंके द्वारा या समाचार-

पत्रोंद्वारा भट्टारकोंका कच्चा चिट्ठा प्रकाशित करके इस अन्धश्रद्धाको देशनिकाला दे देना चाहिए । इससे अच्छा और कोई उपाय इस रोगसे मुक्त होनेका नज़र नहीं आता ।

९ एक तात्कालिक उपाय ।

इस समय भट्टारकोंके चातुर्मास हो रहे हैं । शायद ही ऐसा कोई भट्टारक हो जिसका ख़र्च २०–२५) रुपये रोज़से कम हो । ये सब रुपये निरीह भोले श्रावकोंसे वसूल किये जाते हैं । एक दो स्थानोंसे हमें जो समाचार मिले हैं उनसे बड़ा ही दुःख होता है और भट्टारकोंपर बड़ी ही घृणा उत्पन्न होती है । इन लोगोंने अब बड़ा ही करालरूप धारण किया है । ये श्रावकोंके द्वारोंपर धरणा देकर बैठते हैं, लंघनें करते हैं, कमंडलु फोड़ते हैं, और जब इससे भी काम नहीं चलता है तब अपने ग़रीब सिपाहियोंसे श्रावकोंको पकड़वाते और पिटवाते तक हैं! गरज़ यह कि जब तक रुपया नहीं पा लेते तब तक श्रावकोंका पिण्ड नहीं छोड़ते हैं! भाइयो ! यह क्या है ? जैनधर्मकी इससे अधिक दुर्दशा और क्या हो सकती है ? ग्रामीण अज्ञानी श्रावकोंमें यद्यपि इस विपत्तिसे बचनेकी शक्ति नहीं है; परन्तु यदि हमारे समाजके शिक्षित चाहें तो इस मर्ज़का तात्कालिक उपाय हो सकता है । प्रयत्न करनेसे, आन्दोलन करनेसे, सब लोगोंकी सम्मतिसे ये लोग अनधिकारी ठहराये जा सकते हैं और गवर्नमेंटके द्वारा इस तरहके अत्याचार करनेसे रोके जा सकते हैं । हम आशा करते हैं कि हमारे गुजरातीभाई इस विषयमें आगे बढ़नेका साहस दिखलायँगे ।

१०–जैन-सिद्धान्त-भवन, आरा।

सहयोगी 'जैनप्रभात' के सम्पादकमहोदयने बाबू देवेन्द्र-प्रसादजीसे मुलाकात करके भवनके सम्बन्धमें एक नोट प्रकाशित किया है। उसमें कहा गया है कि भवनके विषयमें जैनमित्र जैन-हितैषी आदिने जो आक्षेप किये हैं वे निर्मूल हैं। भवन एक बहुत बड़ी सूचीके बनानेमें व्यस्त हो रहा है जो समयसाध्य व्ययसाध्य और परिश्रमसाध्य है। लोगोंको ग्रन्थ सहजमें नहीं मिल सकते हैं, इसका कारण यह है कि बहुतसे ग्रन्थ ऐसे जीर्ण हैं जिन्हें हम बाहर भेजनेसे लाचार हैं। पत्रसम्पादकोंको चाहिए कि भवनको स्वयं जाकर देखें; इसके बिना कुछ टीका टिप्पणी न करें और समाजको चाहिए कि उसे सहायता प्रदान करें। इत्यादि। अच्छा होता यदि बाबू सूरजमलजी उक्त नोटके बदले बाबू देवेन्द्रप्रसाद-जीसे–यह प्रकाशित करवाते कि, "भवनकी पाँच वर्षकी रिपोर्ट अमुक तिथि तक प्रकाशित हो जायगी और सर्व साधारणके लाभके लिए ग्रन्थोंकी एक संक्षेपसूची बहुत जल्द प्रकाशित की जायगी, भवनमें समयपर पत्रोत्तर देनेका यथेष्ट प्रबन्ध कर दिया गया है और लेखक रख लिये गये हैं, जिसे चाहिए वह चाहे जिस ग्रन्थकी नकल करवाके मँगवा ले।" बिना इसके भवनकी चाहे जितनी प्रशंसा की जाय, उसके सूचीपत्रके कार्यको चाहे जितना महान् कार्य बतलाया जाय और पत्रसम्पादकोंको इस लिए कि वे भवनके कार्यकर्ताओंको उत्साहित करते रहें चाहे जितने उपदेश दिये जावें, आक्षेप निर्मूल नहीं हो सकते। किसी भी सार्वजनिक संस्थाके

कामकी तबतक प्रशंसा नहीं हो सकती है जबतक कि उसका हिसाब किताब साफ़ न हो, उससे सर्वसाधारण लाभ न उठा सकें और उसमें क्या होता रहता है इसका समय समयपर लोगोंको ज्ञान न कराया जाय। संस्थाकी कोरी प्रशंसाओंसे, उसका काम इतने महत्त्वका है, ऐसा है, वैसा है आदि कहनेसे और आक्षेप करनेवालों पर अप्रसन्न होनेसे कोई भी संस्था जनसाधारणकी सहानुभूति प्राप्त नहीं कर सकती है। बाबू देवेन्द्रप्रसादजी और बाबू किरोड़ीचन्द्रजीको इस ओर ध्यान देना चाहिए और बातें बनाना छोड़कर काम करके दिखलाना चाहिए।

क्या हम पूछ सकते हैं कि भवन जो सूचीपत्र बना रहा है वह कितना बड़ा बनेगा और उसमें क्या क्या बातें रहेंगी? डाक्टर भाण्डारकर आदिकी जैसी रिपोर्टें छपी हैं और उनमें जिस ढंगसे प्रत्येक ग्रन्थका मंगलाचरण, प्रशस्ति, ग्रन्थकर्ताका परिचय आदि दिया है वैसा ही सूचीपत्र आप बनायँगे या और किसी तरहका? यह भी बतलाइए कि वह कमसे कम कितने वर्षोंमें बनेगा और अभी उसके बनानेका प्रारंभ भी हुआ है या नहीं? इन बातोंके प्रकट किये बिना समाज आपके इस हौएका स्वरूप न समझ सकेगा। हमने तो इसे खूब समझ लिया है और निश्चय कर लिया है कि यह केवल लोगोंको बातोंमें खुश रखनेके साधनके सिवाय और कुछ नहीं है। वास्तवमें आपके भवनमें कुछ भी नहीं हो रहा है। वहाँ कोई पत्रोंका उत्तर देनेवाला भी नहीं है। अभी यहाँसे पं० उदयलालजी काशलीवालने हरिवंशपुराण-संस्कृतके मँगानेके लिए—जो भवनमें मौजूद है—पत्र लिखा

था; परन्तु ग्रन्थ आना तो दूर रहा, पत्रका उत्तर भी न मिला! जब आपका बड़ा सूचीपत्र कई वर्षोंमें तैयार होगा, तब यदि एक छोटी सी सूची ही आप छपा देवें जिसमें ग्रन्थोंके नाम, कर्त्ताओंके नाम, ग्रन्थोंकी श्लोकसंख्या, सिर्फ़ इतनी ही बातें रहें तो क्या भवनका कुछ गौरव कम हो जायगा? क्या यह समाज नहीं सोच सकता कि जब तक सूची ही नहीं है तब तक किसी पुस्तकालयका उपयोग ही क्या हो सकता है? ईडर या नागौरके भण्डारमें और आपके भवनमें हम तो कोई विशेष अन्तर नहीं देखते हैं।

बड़े अफ़सोसकी बात है कि आप सबके सारे आक्षेपोंको निर्मूल बतलाते हुए भी यह नहीं प्रकट करते हैं कि भवनके हिसाब किताबका क्या हाल है? उसकी रिपोर्ट क्यों प्रकाशित नहीं की जाती है? क्या यह भी सूचीपत्र जैसा कोई महान् कार्य है? यदि आप यही बतला देवें कि भवनमें आजतक कितनी आमदनी हुई और कितना खर्च हुआ तथा अबतक कितने ग्रन्थ लोगोंने नकल कराके मँगवाये और कितने देखनेके लिए, तो समाजको बहुत कुछ संतोष हो जाय। आपका कर्तव्य है कि इस विषयमें गोलमाल उत्तर न देकर समाजको स्वर्गीय बाबू देवकुमारजीकी इस बहुत ही उपकारिणी संस्थाका वास्तविक परिचय दें और उसे सन्तुष्ट करें।

११ बम्बईमें जैन सबसे अधिक मरते हैं।

बम्बई नगरकी मृत्युसंख्याका लेखा देखनेसे मालूम होता है कि यहाँ जैनोंकी मृत्यु सबसे अधिक होती है। विगत वर्ष हजार जैनबच्चोंमें ७९२ मरे थे; परन्तु गतवर्ष उनकी संख्या और भी बढ़

गई और ८२३ पर पहुँच गई! अधिक उम्रवालोंकी मृत्यु भी और जातियोंकी अपेक्षा जैनोंमें अधिक हुई। २०४६० जैनोंमें १२१४ मर गये, अर्थात् फी हज़ार ५९ मरे। यहाँके प्रसिद्ध अँगरेजी पत्र क्रानिकलमें एक लेखकने इसका कारण यह बतलाया है कि यहाँ जैन लोग बहुत ही तंग जगहोंमें अपनी गृहस्थियोंको लेकर रहते हैं। उनकी रायमें जैनधनिकोंको निर्धन जैनोंके लिए पारसियोंके समान खुली हवादार जगहोंमें सस्ते किरायेके मकान बनवा देना चाहिए। हो सकता है कि अधिक मृत्युसंख्याका यह भी एक कारण हो; परन्तु हमारी समझमें इनके सिवाय और भी कई कारण होंगे जिनके विषयमें जैनशिक्षितोंको विचार करना चाहिए।

१२ विजातीय विवाह शुरू हो गये।

जैनसमाजके भीतर जो अनेक छोटी बड़ी जातियाँ हैं उन सबमें परस्पर बेटी व्यवहार होने लगे, इसके लिए जो आन्दोलन शुरू हुआ है उसका फल प्रकट होने लगा। गत वर्ष कोल्हापुरमें प्रो० लट्ठे एम. ए. ने—जो पंचम जातीय हैं—अपनी भतीजीका ब्याह—एक चतुर्थ जातिके युवकके साथ किया था—यह हितैषीके पाठकोंको स्मरण ही होगा। इसके विरुद्ध कुछ नासमझ लोगोंने सिर भी उठाया था, पर उसका फल कुछ न हुआ और अब उनके विरोधकी कुछ भी परवा न करके हालहीमें नागराल (बीजापुर) निवासी पंचम जैन श्रीयुत सिद्धापा कुपानहट्टीने अपने लड़केका विवाह निडौली ग्रामकी एक चतुर्थ जातीय कन्याके साथ कर डाला। पहलेकी अपेक्षा यह दूसरा विवाह इस दृष्टिसे और भी अधिक महत्त्व-

का है कि यह उन पुराने खयालके लोगोंके बीचमें हुआ है जिनमें नये विचारोंकी गन्ध भी नहीं है। इससे मालूम होता है कि यदि बराबर आन्दोलन होता रहा तो दश बीस वर्षमें ही जैनसमाजकी बीसों जातियोंमें पास्परिक विवाह होने लगेंगे।

१३ प्लेग और चूहे।

लगभग अधिकांश प्रभावशाली डाक्टर इस मतको मानते हैं कि चूहे प्लेगके फैलानेवाले हैं, इसी लिए यह देखा जाता है कि लोग चूहोंके पीछे पड़े रहते हैं, उन्हें ज़हर खिलाते और 'एंटी-रेट' का शिकार बनाते रहते हैं, और म्यूनिसिपलटियाँ भी उनके खूनसे हाथ रँगा करती हैं। परन्तु, हालमें, कलकत्ता म्यूनिसि-पलटीके हेल्थअफ़सर मि० क्रेकने इस विषयमें अपना जो मत प्रकट किया है, उससे, चूहोंको यदि, उन्हें कुछ भी दीन-दुनियांकी खबर होगी तो, कुछ खुशी अवश्य होगी। क्रेक साहबका कहना है कि चूहोंके मारनेसे कोई लाभ नहीं है क्योंकि उनसे और प्लेगसे कोई सम्बन्ध नहीं है। उन्होंने कलकत्ताके म्युनिसिपल बोर्डके सामने अपना यह प्रस्ताव भी पेश कर दिया कि कलकत्ता म्यूनिसिपलटी चूहा-हत्यामें ६०००) रु० की रकम प्रतिवर्ष खर्च करती है अबसे इसके खर्च करनेकी आवश्यकता नहीं है। यद्यपि उनका प्रस्ताव माना नहीं गया तो भी उनकी बात एक कानसे सुनकर दूसरे कानसे उड़ाई नहीं जा सकती। वे साधारण योग्यताके मनुष्य नहीं हैं। उनकी यह दलील भी पूरा ज़ोर रखती है कि कलकत्ताके चतुर्थ खण्डमें, जहाँ चूहे नहीं मारे

जाते, आज ९ वर्षसे प्लेग आपसे आप कम होता जारहा है; परन्तु द्वितीय खण्डमें, जहाँ चूहे ९० से लेकर ८० फ़ीसदी तक मारे गये, प्लेगका कम होना तो दूर रहा, उलटा वह और बढ़ा। केवल डा० क्रेकहीका यह मत नहीं है, और लोगोंने भी पहले इसी बातको कहा है। १९१२ में मद्रासमें इम्पीरियल सेनेटरी कानफ्रेंस हुई थी, जिसमें बा० मोतीलाल घोष और स्वर्गीय बा० गंगाप्रसाद वर्म्मा भी निमन्त्रित थे। उसमें भी एक डाक्टरने कहा था कि आज तक लाखों चूहे मारे गये, परंतु प्लेगकी गतिमें इस हत्या-लीलाका कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ा। जब कुछ योग्य डाक्टर इस मतको ज़ोरके साथ आगे रख रहे हैं तो कमसे कम देशकी म्यूनिसिपलटियोंका तो यह कर्तव्य है कि वे इस प्रश्नके ऊपर पूरा विचार करें, और यदि देखें कि चूहोंके मरनेसे कुछ नहीं होता, तो उन बेचारोंको त्राण दें, और अपने हज़ारों रुपये किसी उपयोगी काममें लगावें। हालहीमें पंजाबमें प्लेगके प्रकोपसे ३९ लाख आदमियोंसे अधिकके मरजाने पर, पंजाबके लेफ्टीनेन्टगवर्नरकी धर्म्मपत्नी लेडी ओडायरने उस प्रान्तकी स्त्रियोंके नाम खुली चिट्ठी भेजी है। उसमें भी, आपने इसी बातपर ज़ोर दिया है कि सारी आफ़तकी जड़ चूहे ही हैं, इन्हें न छोड़ो, घरको इनसे साफ़ रक्खो। घरोंको साफ़ रक्खो यह तो एक ऐसी बात है, जो सदा कही जा सकती है, परन्तु क्या चूहोंके पीछे भी हाथ धोकर पड़ जानेकी वैसी ही आवश्यकता है, इसमें सन्देह बढ़ता ही जाता है।

—प्रताप।

१४ अलमोनियम धातुसे हानि।

देश गरीब है, और अलमोनियमके वर्तन सस्ते आते हैं, और जो अमीर हैं वे अपनी नाजुकमिजाजीके कारण, और कुछ लोग दोनों बातोंसे इन हलके बर्तनोंका व्यवहार करते हैं। जो हो, देशमें इन बर्तनोंका व्यवहार दिन पर दिन बढ़ता जाता है। किन्तु काँसा पीतल, फूलके बर्तनोंकी भाँति लोग इसके गुण और दोषोंसे परिचित नहीं हैं। हालमें डाक्टर हर्बर्टने इस धातुके विषयमें पता लगाया है कि इसके बर्तनोंका व्यवहार स्वास्थ्यके लिए अत्यन्त हानिकर है। क्योंकि भक्ष्य पदार्थोंमें नमकका होना आवश्यक है और नमक-अलमोनियमके संसर्गसे क्लोराइड नामक विष पैदा हो जाता है, जो सब तरहसे हानिकर है।

—प्रताप।

१५ एक दस्सा परवारकी प्रार्थना।

हमारे कई परवार भाई विनेकावारोंसे बड़ी घृणा करते हैं और उनसे किसी भी प्रकारका व्यवहार नहीं रखना चाहते। यदि उनसे इसका कारण पूछा जाता है तो उत्तर मिलता है कि तुम्हारे पूर्वजोंने अन्याय किया था।

बुंदेलखंड प्रान्तमें मैंने बहुधा देखा है कि परवार भाई विनेकावारोंको भगवद्दर्शनोंकी क्या चली जिनालयके दरवाजे तक भी नहीं फटकने देते। दशलाक्षणिक पर्वमें भी यही हाल रहता है; हमारा कुररी-रोदन कोई भी कानों नहीं देता। विमानोत्सव, सभा

न किसी भी प्रकारके जलसेमें हम लोग पहुँच ही नहीं पाते और न हम लोगोंके हितकी कोई बात ही की जाती है। मानों हमारे परवार भाई हमें बिलकुल ही और सब तरफ़से छोड़ चुके हैं। मेरी इस छोटी बुद्धिसे मुझे जँचता है कि उनका कर्तव्य है कि हम लोगोंकी गल्तियाँ हमें सुझावें और यदि उचित समझें तो कोई दंड भी हमें देवें—हम लोग दण्ड भोगनेके लिए तैयार हैं।

कहीं कहीं हमारे श्रीमानों, और विद्वानोंके अटूट परिश्रमसे जैनपाठशालायें, और वाचनालय आदि दिखने लगे हैं जो कि सुशिक्षा देने और कुरीतियोंका काला मुँह करनेमें शक्तिभर परिश्रम कर रहे हैं और उन्हीं सज्जनोंके प्रतापसे हमारा अधिकांश समाज जाग उठा है; पर खेद है कि उसी समाजका एक भाग बहुत बुरी हालतमें है—उसके जगानेका कोई भी प्रयत्न हमारे भाई नहीं करते। जिस स्थानका मैं जिक्र करता हूँ वहाँ एक जैनपाठशाला तथा एक वाचनालय भी है। वहाँके एक सुयोग्य शिक्षक और कार्यकर्त्ताने एक रेलवे बाबूका लड़का (जो कि जातिके विनैकावार हैं) शालामें भरती कर लिया। कुछ दिनों बाद जब दूसरे कार्यकर्त्ताओंकी दृष्टि इस ओर पड़ी तब उस लड़केको पाठशालामें आनेसे साफ़ इंकार कर दिया गया। बेचारे पंडितजीने बहुत कुछ कहा सुना, सभा की, पर उनकी एक भी न चली। ऐसे ही यहाँके वाचनालयकी पुस्तकें भी बहुत कोशिश करने पर पढ़नेको नहीं मिलतीं। यद्यपि हम इस समय धर्मशून्य हैं, तथापि विद्वानोंकी संगतिसे हमारा सुधर जाना असंभव नहीं है। हम लोगोंकी संख्या

बढ़नेके कारण बालविवाह, वृद्धविवाह, कन्याविक्रय और अज्ञान ही मालूम होते हैं। क्योंकि यदि ये कारण न होते और हमारे पर-वार भाइयोंके ख्यालके मुताबिक मन्दिरोंमें व सभाओंमें न आने देने ही से हम लोगोंकी जाति बढ़ती होती तो आजकल इस खूबीसे विनैकावार जाति न बढ़ती। मैं ऐसे परवारोंको भी जानता हूँ कि जिन्हें गरीबीके कारण परवारोंमें लड़की नहीं मिली और उन्हें विनैकावारोंमें अपनेको ब्याह कर परवश बिनैकाबार बनना पड़ा। जैसा ख्याल आजकल कई परवार भाइयोंका हमारे विषयमें है उससे इस अज्ञको नहीं जान पड़ता कि धर्म और जातिकी तरक्की क्यों कर हो सकेगी? हम लोगोंकी अज्ञानता दूर करने और धर्मकी शिक्षा देनेके प्रयत्नसे भी बहुत कुछ हो सकता है। हमारे कई परवार भाई हमें जातीय दंडके साथ ही साथ धर्मके मर्मसे भी अनभिज्ञ रक्खा चाहते हैं; नहीं जान पड़ता हमारे भाइयोंने इससे क्या फायदा सोच रक्खा है!

प्रार्थी:—

छोटेलाल (विनैकावार) जैन विद्यार्थी,

खुरई (सागर)।

सूचना।

सम्पादकके बीचमें बीमार हो जानेसे यह युग्म अंक पूरा न हो सका और कुछ विलम्बसे भी निकला। जितने पृष्ठ कम हैं वे आगामी अंकमें पूरे कर दिये जावेंगे। —**मैनेजर**।

पवित्र असली
आजमूदा
२० वर्षका
सैकडों प्रशंसा पत्र प्राप्त
हाजमेकी
प्रसिद्ध अक्सीर दवा
नमक सुलेमानी
फायदा न करे तो दाम वापस.
मिलने का पता
कि ॥) सी
एक दर्जन ५) स
डा०अलग.
चन्द्रसेन जैन वैद्य
इटावा.

नई पुस्तकोंका सूचीपत्र।

कर्नाटक जैन कवि--कनड़ी भाषाके लगभग ७५ प्रसिद्ध जैनकवियोंका इतिहास। मूल्य सिर्फ आधा आना।

अनित्यभावना-पद्मनन्दि आचार्यकृत संस्कृत अनित्यपंचाशत् और बाबू जुगलकिशोरजी मुख्तार, देवबन्दकी बनाई हुई भाषा कविता। शोकके समय बाँचनेसे बड़ी शान्ति मिलती है। मूल्य -)॥

नेमिचरित या नेमिदूत-विक्रम कविका बनाया हुआ सुन्दर काव्य हिन्दी भाषाटीका सहित। नेमि और राजुलका बहुत सुन्दर सरस वर्णन है। मूल्य ।)॥

न्यायदीपिका-प्रसिद्ध न्यायका ग्रन्थ भाषाटीका सहित। भाषा बहुत सरल सबके समझने योग्य है। प्रारंभमें न्यायका स्वरूप समझनेवालोंके लिए बड़े कामकी है। मू० ॥।)

चरचाशतक-द्यानतरायजीका चरचाशतक सरल हिन्दी भाषाटीका सहित। बहुतही अच्छा छपा है। चार नकशे भी दिये हैं। मूल्य ॥।)

द्यानतविलास या धर्मविलास-कविताका सुन्दर ग्रन्थ शुद्धताके साथ छपा है। द्यानतरायजीका बनाया हुआ प्रसिद्ध ग्रन्थ है। मूल्य १)

पंचमंगल अर्थसहित—अभी हालहीं यह पुस्तक छपी है। मूलपाठ, कठिन शब्दोंका अर्थ, भावार्थ, प्रश्नावली और प्रत्येक मंगलका सारांश इस क्रमसे इसकी रचना खास विद्यार्थियोंके लिए की गई है। प्रत्येक पाठशालामें इसे जारी कर देना चाहिये। मूल्य तीन आने।

कल्याणमन्दिर सटीक—भक्तामरके समान पहले मूलश्लोक, फिर अन्वयानुगत अर्थ, फिर नया हिन्दी पद्यानुवाद, और अंतमें बनारसीदासजीका पद्य, इस तरह यह पुस्तक छपी है। पं० बुद्धूलालजीने इसका सम्पादन किया है। मूल्य चार आने।

सम्यक्त्वकौमुदी—सम्यक्त्वकी सुन्दर सुन्दर कथायें। मूल और हिन्दी अनुवाद सहित हाल ही छपी है। मूल्य १।≈)

विद्वद्रत्नमाला—जैनधर्मके प्रसिद्ध २ जिनसेन, गुणभद्र, आशाधर, अमित-

गति, समन्तभद्र, वादिराज, मल्लिषेण, इन सात आचार्योंका ऐतिहासिक चरित्र। बड़ी ही खोजसे यह पुस्तक लिखी गई है। मूल्य ॥≈)

गृहस्थधर्म—ब्रह्मचारी शीतलप्रसादजीने इसकी रचना की है। गृहस्थोंके सभी कर्तव्योंका शास्त्रोक्त वर्णन इस ग्रन्थमें किया गया है। इसे लोगोंने बहुत पसन्द किया है। मूल्य १≈)

ज्ञानार्णव—आचार्य शुभचन्द्रका बनाया हुआ योग और वैराग्यका प्रसिद्ध ग्रन्थ। सरल हिन्दी भाषाटीका सहित। एक बार छपके बिक चुका। अब फिर छपाया गया है। मूल्य चार रुपया।

धर्मप्रश्नोत्तरश्रावकाचार—सकलकीर्ति आचार्यने साधारण बुद्धिवालोंके लिए प्रश्न और उत्तरके रूपमें संस्कृत श्रावकाचारकी रचना की है। यह ग्रन्थ उसीका सरल हिन्दी अर्थ है। मोटे कागजपर सुन्दरतासे छपा है। मूल्य दो रुपया।

कठिनाईमें विद्याभ्यास—यह एक अँगरेजी पुस्तकका अनुवाद है। बड़ीसे बड़ी विपत्तियोंमें रहकर भी–कंगालीकी हालतमें भी जिन जिन लोगोंने विद्या पढ़ी है, उन महापुरुषोंके जीवन चरित इसमें दिये गये हैं। विद्यार्थियोंको अवश्य पढ़ना चाहिए। मूल्य सादीका ॥) जिल्दबँधीका ॥≈)

गृहिणीभूषण—स्त्रियोंके पढ़ने योग्य इससे अच्छी पुस्तक जैनसमाजके लिए और कोई नहीं छपी। स्त्रीके प्रत्येक कर्तव्यका इसमें विस्तारसे वर्णन किया है। थोड़ीसी प्रतियाँ रह गई हैं। मूल्य ॥)

सागारधर्मामृत–हिन्दी भाषाटीका सहित। श्रावकाचारका बहुत प्रसिद्ध ग्रन्थ है। पण्डित प्रवर आशाधरका बनाया हुआ है। भाषा सरल है। मूल्य १॥)

श्रावकधर्मसंग्रह–पं० दरयावसिंहजी सोधियाने ३०--३२ श्रावकाचारोंके आधारसे इसकी रचना की है। इस विषयकी सभी बातोंपर विचार किया गया है। मूल्य २।)

गोम्मटसार कर्मकाण्ड–यह भाषाटीका सहित छपा है। इस ग्रन्थकी प्रशंसा करनेकी जरूरत नहीं है। मूल्य २) जीवकाण्डका अनुवाद हो रहा है।

आराधनाकथाकोश—मूल और पं० उदयलालजी कृत नई भाषाटीका सहित। भाषा बहुत ही सरल है। पहले भागका १।) दूसरे भागका मूल्य १।≈)

भक्तामरचरित—भक्तामरस्तोत्र, उसके मंत्र और यंत्र, प्रत्येक मंत्रके सिद्ध

होनेकी कथा आदि सब बातें शामिल हैं। कथायें बहुत सरल भाषामें लिखी गई हैं। मूल्य जिल्दबंधीका १।) सादीका १)

नाटकसमयसार—बनारसीदासजीका प्रसिद्ध ग्रन्थ भाषावचनिका सहित खुले पत्रोंपर छपा है। मूल्य २॥)

प्रवचनसार—कुन्दकुन्दका मूल ग्रन्थ, अमृतचन्द्र और जयसेनकी दो संस्कृत टीकायें और हिन्दी भाषा। इस तरह यह ग्रन्थ छपा है। मू० ३)

अष्टसहस्री—न्यायका प्रसिद्ध संस्कृत ग्रन्थ विद्यानन्दस्वामी रचित। बहुत ही शुद्धतासे छपा है। मूल्य अढ़ाई रुपया।

प्रमेय-कमल-मार्तण्ड—आचार्य प्रभाचन्द्रका प्रसिद्ध न्यायका ग्रन्थ। यह भी संस्कृत है। मूल्य चार रुपये।

उपमितिभवप्रपंचा कथा (दूसरा भाग)	।~)
जम्बूस्वामीचरित	।)
हनुमानचरित	।=)
सीताचरित	≡)
श्रेणिकचरित	१॥।)
यशोधरचरित	।)
प्रद्युम्नचरितसार	।=)
नागकुमारचरित	।=)
पवनदूतकाव्य सार्थ	।)
सुशीला उपन्यास (नई आवृत्ति)	१।)
हिन्दी भक्तामर	~)।
हिन्दी कल्याणमंदिर	~)
छहढाला सार्थ	=)॥
सत्यार्थ यज्ञ (चौबीसी पाठ)	॥)
उपदेशी गायन	=)॥
जैनार्णव कपड़ेकी जिल्दका १।) सादीका	१)
जैनगीतावली—बुंदेलखंडकी स्त्रियोंके लिये	।~)

मुंबईवैभव प्रेस, सँडर्स्टरोड गिरगांव—मुंबई.

(इस अंकके प्रकाशित होनेकी तारीख १८-६-१५ ।)

Reg. No. B. 719.

ॐ

जैनहितैषी ।

साहित्य, इतिहास, समाज और धर्मसम्बन्धी लेखोंसे विभूषित मासिकपत्र ।

सम्पादक और प्रकाशक—नाथूराम प्रेमी ।

भाग ११ | आश्विन श्रीवीर नि० संवत् २४४१ | अंक १२

विषयसूची ।

पत्रव्यवहार करनेका पता—
मैनेजर, जैनग्रन्थरत्नाकर कार्यालय, गिरगाँव बम्बई

जैनहितैषी ।

श्रीमत्परमगम्भीरस्याद्वादामोघलाञ्छनम् ।
जीयात्सर्वज्ञनाथस्य शासनं जिनशासनम् ॥

११ वाँ भाग { आश्विन, वीर नि० सं० २४४१। } अंक १२.

उपदेशसिद्धान्तरत्नमाला और षष्ठिशतप्रकरण ।

(एक खोज)
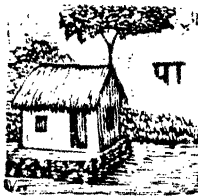
पाठक उपदेशसिद्धान्तरत्नमाला नामक ग्रन्थसे परिचित होंगे । स्वर्गीय पं० भागचन्द्रजीने विक्रम संवत् १९१२ में इसकी एक भाषा-वचनिका लिखी है और वह कुछ परिवर्तितरूपमें पं० जयचन्द्र श्रावणे द्वारा वर्धामें छप भी चुकी है । मूल ग्रन्थ प्राकृतमें है । उसमें १६१ गाथायें हैं । नेमिचन्द्र भण्डारी नामके विद्वान् उसके रचयिता हैं । जैनधर्मके साधु निस्पृही और परिग्रहादिसे रहित होते हैं, वे चैत्यों या नगरोंमें नहीं रहते—बाहर वसतिकओंमें रहते

हैं, उनका चरित्र ऊँचा होता है, जैनधर्ममें उन्हींको पूज्य बताया है, इसके विरुद्ध आजकलके साधु बहुत ही शिथिलाचारी हैं, उनकी उपासना कदापि न करना चाहिए; मुख्यतः इन्हीं बातोंका इस ग्रन्थमें प्रतिपादन किया गया है।

जबसे इस ग्रन्थकी भाषावचनिका हुई है और स्वाध्याय करनेवालोंमें इसका प्रचार हुआ है तबसे यह दिगम्बर सम्प्रदायका ही ग्रन्थ समझा जाने लगा है। लोगोंको इसके दिगम्बर ग्रन्थ होनेमें अणुमात्र भी सन्देह नहीं है; परन्तु वास्तवमें यह एक श्वेताम्बर सम्प्रदायके विद्वान्की रचना है।

मोक्षमार्गप्रकाशमें पं० टोडरमलजीने एक जगह 'संघपट्टक' नामक श्वेताम्बर ग्रन्थका एक श्लोक उद्धृत किया है। जब यह ग्रन्थ छप रहा था, तब प्रूफ संशोधन करते समय मैंने देखा कि संघपट्टकका उक्त श्लोक अशुद्ध है। मेरे पास मोक्षमार्गकी जो प्रतियाँ थीं, जब उनमें श्लोकका पाठ शुद्ध नहीं हुआ तब मैंने संघपट्टककी खोज की और सौभाग्यवश मुझे वह छपा हुआ मिल गया, जिससे उक्त श्लोक शुद्ध कर दिया गया। उसी समय मैंने संघपट्टककी विस्तृत भूमिका बाँची जिसमें संघपट्टकके टीकाकार **जिनपतिसूरिके** शिष्य **नेमिचन्द्र भण्डारी** और उनके 'षष्ठिशत प्रकरण' नामक ग्रन्थका उल्लेख पढ़कर मुझे सन्देह हुआ कि उपदेश-सिद्धान्तरत्नमालाके कर्ता और जिनपतिसूरिके शिष्य नेमिचन्द्र भण्डारी एक ही होंगे और आश्चर्य नहीं जो षष्ठिशत प्रकरणका ही नाम उपदेशसिद्धान्तरत्नमाला रख दिया गया हो।

अब मैं षष्टिशतप्रकरणकी खोज करने लगा; क्योंकि इस ग्रन्थके मिले बिना उक्त सन्देह दूर नहीं हो सकता था।

अभी पर्युषण पर्वमें मैं एकदिन बम्बईकी "मुनि मोहनलालजी जैन सेन्ट्रल लायब्रेरी" को देखनेके लिए गया था कि अचानक उसका सूचीपत्र देखते समय मेरी दृष्टि षष्टिशतप्रकरण पर जा पड़ी और मुझे उक्त लायब्रेरीमें इसकी दो प्रतियाँ प्राप्त हो गई। ये दोनों ही प्रतियाँ सावचूरि या सटीक हैं। टीका धवलचन्द्र गुरुके किसी शिष्य महाशयकी लिखी हुई है। पहली प्रति जीर्ण और प्राचीन है, लगभग ३०० वर्ष पहलेकी लिखी हुई जान पड़ती है। दूसरी प्रति हालकी ही है, संभवतः पहली परसे ही नकल कराई गई है। इन प्रतियोंसे मुझे इस विषयमें कोई सन्देह नहीं रहा कि नेमिचन्द्र भण्डारी श्वेताम्बरी थे और उनका षष्टिशत प्रकरण ही हमारे यहाँ उपदेशसिद्धान्तरत्नमालाके नामसे प्रचलित हो रहा है।

नेमिचन्द्र भण्डारी ओसवाल जातिके श्वेताम्बर जैन थे। उनका 'भण्डारी' उपपद बतला रहा है कि वे ओसवाल थे। छपी हुई उपदेशसिद्धान्तरत्नमालाके टाइटिलपेजपर उनके नामके साथ 'आचार्य' पद लिखा गया है; परन्तु यह भूल है—वे श्रावक थे। उपदेशसि० र० की १५६ वीं गाथाको

---

१ [illegible]

[illegible] ॥

* जइ वि हु उत्तमसावय-पयवीए चडणकरणअसमत्थो।
तहवि पहुवयणकरणे मणोरहो मज्झ हिययम्मि॥ १५६॥

अर्थात् यद्यपि मैं उत्तम श्रावककी पदवीपर चढ़नेको असमर्थ हूँ, तथापि जिन-वचनके करनेमें मेरे हृदयमें मनोरथ बने हैं।

पढ़नेसे इस विषयमें कोई भी सन्देह नहीं रहता है। वे जिनपति-सूरि नामक प्रसिद्ध आचार्यके शिष्य थे जिन्होंने कि जिनवल्लभसूरिके संघपट्टककी विशाल संस्कृत टीका लिखी है। वे 'सज्जन'के पुत्र और जिनेश्वरसूरि नामक आचार्यके पिता थे, अर्थात् उनका एक पुत्र दीक्षित होकर पीछे आचार्यपदको प्राप्त हो गया था। टीकाकी उत्थानिका और अन्तिम गाथाकी टीकामें इन बातोंका पता लगता है:—

"इह प्राप्तसकलमानुष्यादिसामग्री केन पुंसा ज्ञातचारित्राधारभूते श्रीसम्यक्त्व एव प्राक् प्रयतितव्यमित्याकलय्य नेमिचन्द्रनामा श्रावकस्तदुपदेष्टृगीतार्थसंविग्नगुरुं परीक्ष्यन् चिरस्य परिभ्रम्य तत्कालवर्तिसंविग्नगीतार्थमुनिजनाग्रगण्यं श्रीजिनपतिसूरिसुगुरुं लब्धवान्। ततस्तेभ्यो ज्ञातशुद्धदेवादितत्त्वः परांश्च देवादितत्त्वेषु दृढयन्निदं प्रकरणं चक्रे।" अन्तिमगाथा–**" एवं पूर्वोक्तयुक्त्या भाण्डागारिकः स चासौ नेमिचन्द्रश्च सज्जनसुतः श्रीजिनेश्वरसूरिपिता च तेन रचिता कतिचिद्गाथा..."**

खरतरगच्छकी पट्टावलीके देखनेसे मालूम होता है कि जिनपति-सूरि ४६ वें पट्टके आचार्य थे। विक्रमसंवत् १२२३ में उन्हें आचार्यपद मिला था और संवत् १२७७ में पालणपुरमें उनका स्वर्गवास हुआ था। इनके पट्ट पर जिनेश्वरसूरि संवत् १२७८ में बैठे थे। ये ही जिनेश्वरसूरि नेमिचन्द्र भण्डारीके पुत्र थे। पट्टावलीमें लिखा है कि इनका मूल नाम अम्बड़, पिताका नाम नेमिचन्द्र भाण्डागारिक और माताका लक्ष्मी था। इनका जन्म मारोठमें संवत् १२४५ की मार्गशीर्ष सुदी ११ को हुआ था।

केवल १० वर्षकी अवस्थामें खेडानगरमें इन्होंने दीक्षा ले ली थी! इस प्रकार नेमिचन्द्र भण्डारीके गुरु जिनपतिसूरि और पुत्र जिनेश्वरसूरिका समय निर्णीत होनेसे निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि वे विक्रमकी तेरहवीं शताब्दिके विद्वान् हैं।

यहाँ यह शङ्का की जा सकती है कि उपदेशसिद्धान्तरत्नमाला दिगम्बर ग्रन्थ ही है; क्या आश्चर्य है जो भण्डारीने ही उसे अपना बना लिया हो। परन्तु इसका समाधान स्वयं उपदेशसिद्धान्तरत्नमाला ही कर देती है। रत्नमालाकी १०७–०८ नम्बरकी गाथाओंको आप ध्यानसे पढ़िए:—

अज्जवि गुरुणो गुणिणो सुद्धा दीसंति तडयडा केई।
पर जिणवल्लहसारिसो पुण्णा वि जिणवल्लहो चेव॥ १०७॥
वयणे वि सुगुरु जिणवल्लहस्स केसिं ण उल्लसई सम्मं।
अह कह दिनमणितेयं उलुयाणं हरइ अंधत्तं॥ १०८॥

इनका अर्थ यह है कि "आजकल भी कितने ही गुणी और शुद्ध प्ररूपणा करनेवाले गुरु साक्षात् दिखलाई देते हैं; परन्तु जिनवल्लभके समान तो जिनवल्लभसूरि ही हैं, अर्थात् इस विषयमें उनकी बराबरी करनेवाला कोई नहीं है। परन्तु जिनवल्लभके वचनोंसे भी जो किसी किसीको सम्यक्त्व उल्लसित नहीं होता है, सो इसमें उनका दोष नहीं। क्या सूर्यका तेज उल्लुओंका अन्धापन दूर कर सकता है?"

संस्कृतटीकाकार भी इसका यही अर्थ करते हैं:—

"अस्मिन्नपि काले गुरवो गुणिनो ज्ञानादियुक्ताः शुद्धाः शुद्धप्ररूपकाः साक्षाद्वीक्ष्यन्ते, तडयडेति देश्यत्वात्क्रियाकठोराः,

केऽपि कियन्तोऽपि । परं जिनवल्लभसदृशः पुनरपि जिनवल्लभ एव । स हि श्रीजिनेश्वराचार्यदीक्षितोऽपि चैत्यकावासं सकटु-विपाकं मत्वा संवेगात्सुविहितशिरोमणिश्रीमदभयदेवसूरिपार्श्व-मुपसम्पन्न इति । वचनात्सुगुरु जिनवल्लभस्यापि केषांचित्सम्यक्त्वं नोल्लसति । अत्र दृष्टान्तमाह । अथेति पक्षान्तरे दिनमणितेज उलूकानानामन्धत्वं कथं केन प्रकारेण हरति ॥ "

इस टीकामें इतनी बात और भी मालूम हो जाती है कि जिनवल्लभसूरि पहले जिनेश्वराचार्यके दीक्षित थे; परन्तु पीछे साधुओंका मन्दिरमें रहना बुरा समझकर अभयदेवसूरिके शिष्य हो गये थे। इतिहाससे पता लगता है कि ये अभयदेव अच्छे विद्वान् थे, इन्होंने वि० संवत् ११२० से ११२८ तकके समयमें स्थानांग सूत्र आदि नौ ग्रन्थोंकी टीकायें लिखी थीं।

उक्त १०६–१०८ नम्बरकी गाथाओंमें 'जिनवल्लभ' शब्द तीन बार आया है और वह इतना स्पष्ट है कि उसका दूसरा अर्थ बिना जबर्दस्तीके बन ही नहीं सकता। निश्चयपूर्वक वह एक आचार्यकी प्रशंसा करनेके लिए आया है जो कि ग्रन्थकर्त्ताकी दृष्टिमें शिथिलाचारी चैत्यवासी न होकर आदर्श साधु या मुनि थे। उपदेश सि० रत्नमालामें ये गाथायें ज्योंकी त्यों हैं; परन्तु उनका अर्थ पं० भागचन्द्रजीने इस प्रकार किया है:—

"अवार भी कैई गुणवान् निर्दोष गुरु दीसैं हैं। कैसे हैं ते, जिनराज समान हैं, नग्न मुद्राके धारी हैं। बहुरि केवल बाह्य लिंग

ही नाहीं । तो कैसे हैं, जिनराज ही हैं इष्ट जिनके, ऐसे हैं। भावार्थ—जिनभाषित धर्मके धारी हैं, केवल नग्न परमहंसादिककी ज्यों नाहीं। इहां कोई कहे जो अबार इस क्षेत्रमें मुनि तौ दीसते नाहीं, इहां कैसे कहे? ताका उत्तर—जो तुमारी ही अपेक्षा तौ वचन नाहीं, वचन तौ सबनिकी अपेक्षा है, सो कोईनके प्रत्यक्ष होंयहीगे। जातें दक्षिण दिशामें अबार भी मुनिनका सद्भाव शास्त्रमें कह्या है॥ १०७॥ जिनराज है इष्ट जिनके ऐसे निर्ग्रन्थ गुरुका उपदेश होत संतें भी कैई जीवनिके सम्यक्त हुलसायमान न होय है। अथवा सूर्यका तेज घूघूनिका अंधपना कैसे हरै? नाहीं हरै॥ ॥ १०८॥"

इसमें एक जगह 'जिनवल्लभ'का अर्थ "जिनराज' और शेष दो जगह 'जिनराज हैं इष्ट जिनके ऐसे' किया है; परन्तु साफ मालूम होता है कि ये अर्थ खींचतानके जबर्दस्ती किये गये हैं—वास्तवमें ठीक नहीं हैं।

उक्त गाथाओंके सिवाय नीचे लिखी दो गाथाओंपर भी विचार कीजिए:—

सिरिधम्मदासगणिणा रइयं उवएसमालसिद्धंतं।
सव्वे वि समण सड्ढा मणंति पढंति पाढंति॥ ९६॥
तं चेव केइ अहमा छलिया अइमाणमोहभूएण।
किरियाए हीलंता हा हा दुक्खाइ ण गणंति॥ ९७॥

इनका अर्थ यह है कि "श्रीधर्मदास गणिका रचा हुआ 'उपदेशमाला' नामका सिद्धान्त ग्रन्थ है जिसको सारे श्रमण (मुनि) और श्राद्ध (श्रावक) मानते हैं, पढ़ते हैं और पढ़ाते हैं; परन्तु उसकी भी अभिमान और मोह भूप (राजा) के द्वारा छले गये कितने ही अधम लोग अपनी क्रियामें–आचरणमें अवहेलना करते हैं और खेद है कि नरकादिके दुःखोंको कुछ भी नहीं गिनते हैं।"

ये धर्मदास गणि श्वेताम्बरसम्प्रदायमें बहुत ही प्रसिद्ध हैं और प्राचीन हैं। इनका बनाया हुआ उपदेशमाला ग्रन्थ सर्वत्र प्रसिद्ध और प्रचलित ग्रन्थ है। नेमिचन्द्र भण्डारी उक्त गाथाओंमें इसी ग्रन्थका उल्लेख करते हैं और खेद प्रकट करते हैं कि बहुतसे नीच साधु इतने माननीय ग्रन्थकी भी अवहेलना करते हैं–उसके अनुसार नहीं चलते हैं। इससे भी साफ़ मालूम होता है कि यह ग्रन्थ श्वेताम्बर सम्प्रदायका है।

पं० भागचन्द्रजीने इन गाथाओंका भी गोलमाल अर्थ किया है। वे कहते हैं–"श्रीधर्मदास आचार्य (?) करि उपदेशानि की है माला जा विषं ऐसा सिद्धान्त यहु रच्या है, ताहि सर्व ही मुनि वा श्रावक माने हैं पढ़े हैं पढ़ावे हैं। भावार्थ, यह उपदेश आगे धर्मदास आचार्यने रच्या है सो ही मैंने कह्या कछू कपोलकल्पित नाहीं ॥ ९६ ॥ बहुरि ताही शास्त्रकों केई अधम मिथ्यादृष्टी हैं आचरणविषें निन्दा करे हैं ॥९७॥" पर यह अर्थ ठीक नहीं है।

पं० भागचन्द्जीकी उक्त ९६ वीं गाथाकी टीकासे मालूम होता है कि उन्होंने इसी गाथाका यथार्थ अभिप्राय न समझकर

इस पुस्तकका उपदेशसिद्धान्तरत्नमाला, यह नामकरण किया है। उन्हें धर्मदासगणिकी उपदेशमालाका परिचय न रहा होगा।

ग्रन्थभरमें ये ही चार गाथायें ऐसी हैं जो इसको बहुत स्पष्टता और दृढताके साथ श्वेताम्बर ग्रन्थ सिद्ध कर सकती हैं। अन्यथा सारे ग्रन्थमें ऐसे साधारण और व्यापक उपदेश हैं कि उन्हें दिगम्बरसम्प्रदायवाले अपने शिथिलाचारी परिग्रहधारी भट्टारकोंके लिए और श्वेताम्बरसम्प्रदायके विधिमार्गानुयायी अपने चैत्यवासी शिथिलाचारी साधुओं तथा यतियोंके लिए समानरूपसे समझ सकते हैं। ऐसे शब्द कठिनाईसे मिलेंगे जो केवल श्वेताम्बर सम्प्रदाय पर ही लागू हो सकते हैं और जो हैं वे ऐसे हैं कि उनका अर्थ सहज ही बदला जा सकता है।

विक्रमकी बारहवीं शताब्दिके लगभग श्वेताम्बर सम्प्रदायके साधुओंमें इस तरहका शिथिलाचार बहुत बढ़ गया था जो कि—उक्त सम्प्रदायके सिद्धान्तानुसार निषिद्ध है। जहाँ तहाँ शिथिलाचारी साधुओंका ही जोरशोर था। उस समय श्रीजिनवल्लभसूरि आदि विद्वान् ऐसे लोगोंके विरुद्ध खड़े हुए और उन्होंने इस विषयका जबर्दस्त आन्दोलन उठाया। संघपट्टक, उसकी टीका, यह षष्ठीशतक आदि ग्रन्थ उसी आन्दोलनको जागृत रखनेके लिए लिखे गये थे। यह आन्दोलन कब तक जारी रहा और उसका परिणाम क्या हुआ, इसका इतिहास श्वेताम्बर सम्प्रदायमें मौजूद है। अभिप्राय यह है कि षष्ठिशतक ग्रन्थ साधुओंके शिथिलाचारको दूर करनेके लिए ही लिखा गया था और इसी

कारण वह दिगम्बरसम्प्रदायके शिथिलाचारी भट्टारकों पर अच्छी तरह लागू होता है।

हम निश्चयपूर्वक नहीं कह सकते कि पं० भागचन्द्रजी इस बातको जानते थे या नहीं कि यह ग्रन्थ श्वेताम्बर है। वे ओसवाल जातिके थे, इसलिए उनका श्वेताम्बर साहित्यसे थोड़ा बहुत परिचय अवश्य रहा होगा। संभव है कि श्वेताम्बरसम्प्रदायका जानकर भी उन्होंने इस ग्रन्थको दिगम्बरसम्प्रदायके लिए उस समय बहुत उपयोगी समझा हो; क्योंकि उन दिनों भट्टारकोंके शिथिलाचार और अत्याचार बहुत बढ़े हुए थे और इस लिए इसे अपने सम्प्रदायमें प्रचलित करनेके लिए यह भाषाटीका कर दी हो। साथ ही इस बातकी सावधानी रक्खी हो कि कोई इसे श्वेताम्बरसम्प्रदायका ग्रन्थ न समझे। वह समय ऐसा न था कि किसी सम्प्रदायका अच्छा ग्रन्थ भी दूसरे सम्प्रदायमें श्रद्धापूर्वक पढ़ा जाय और लोग उसके उपदेशपर चलने लगें। इसमें सन्देह नहीं कि उनका उद्देश्य अच्छा था; परन्तु यदि उन्होंने जानबूझकर श्वेताम्बर ग्रन्थको अपना बनाया है तो एक दृष्टिसे अनुचित कार्य किया है। यह भी संभव है कि उन्हें यह मालूम ही न हो और दिगम्बर सम्प्रदायका ग्रन्थ समझकर ही भाषाटीका की हो। दो चार स्थलोंपर जो अर्थकी खींचातानी की गई है उसको छोड़कर मूलग्रन्थके पाठमें ज़रा भी परिवर्तन नहीं किया गया है–सारी गाथायें ज्योंकी त्यों हैं, इससे इस पिछले अनुमानकी कुछ कुछ पुष्टि होती है।

यदि कोई कहे कि भागचन्द्जीने दोनों सम्प्रदायोंके लाभके लिए मध्यस्थभावसे यह भाषाटीका की होगी, तो यह ठीक नहीं। क्योंकि कुछ गाथायें ऐसी हैं—उदाहरणार्थ ५ वीं और ३३ वीं गाथा—जिनकी टीकामें भट्टारकोंके साथ साथ श्वेताम्बरसाधुओंपर भी वस्त्रधारी होनेके कारण आक्रमण किया है और इससे साफ़ मालूम होता है कि उन्होंने केवल दिगम्बरियोंके उद्देश्यसे टीका रची है।

कुछ भी हो, पर यह निश्चय है कि उपदेशसिद्धान्तरत्नमाला श्वेताम्बर-ग्रन्थ है और उसका वास्तविक नाम 'षष्ठिशतप्रकरण' है और इसी लिए दिगम्बरसम्प्रदायके किसी भी ग्रन्थमें न उसका कहीं उल्लेख है और न उसकी कोई गाथा उद्धृत की गई है। ६००–७०० वर्षका बना हुआ ग्रन्थ अबतक छुपा रहता, यह संभव नहीं जान पड़ता।

अस्तु। ग्रन्थ किसी सम्प्रदायका हो; परन्तु हमारी समझमें यह दोनों ही सम्प्रदायके कामकी चीज़ है और इस कारण इसका दोनों ही सम्प्रदायोंमें अधिकताके साथ प्रचार होना चाहिए। शिथिलाचारियोंकी दोनों ही सम्प्रदायोंमें कमी नहीं है। उनको राहपर लानेके लिए यह आवश्यक है कि हमारे श्रावक भाई गुरुके स्वरूपको जान जावें और इसके लिए उपदेशसिद्धान्तरत्नमाला तथा षष्ठिशतककी दो दो चार चार हज़ार प्रतियाँ मुफ्तमें बाँटी जानी चाहिए।

आशा है कि विद्वान् पाठक इस लेखको ध्यानसे पढ़ेंगे और

यदि इस विषयमें मेरा कुछ भ्रम हो तो उसको दूर करनेका यत्न करेंगे। मैं यहाँ यह निवेदन अवश्य कर देना चाहता हूँ कि किसी सम्प्रदायकी निन्दा प्रशंसासे इसका कोई सम्बन्ध नहीं है—सत्यकी खोज ही इस लेखका उद्देश्य है। (२८-९-१५)

जैनोंकी राजभक्ति और देशसेवा।

३-जोधपुरके भण्डारी।

जोधपुरके भण्डारी ओसवाल जातिके हैं। इनके यहाँ सदा मुत्सद्दीगरी अर्थात् नौकरी पेशा रहा है। मारवाड़ी समाजमें इनकी अच्छी प्रतिष्ठा है। वर्त्तमानमें जोधपुरमें इनके लगभग तीन सौ घर हैं।

ये लोग अपनी उत्पत्ति अजमेरके चौहान घरानेसे बताते हैं। इनके पितामह राव लक्ष्मणने (लखमसी) अजमेरके घरानेसे पृथक् होकर नाडौलमें एक स्वतन्त्र राज्यकुल स्थापित किया था। इस कुलमें कितने ही राजा हुए। सबसे अन्तिम राजा अल्हणदेव था जिसने सन् ११६२ ईस्वीमें नाडौलके जैनमंदिरके सहायतार्थ बहुतसी सम्पत्ति अर्पण की थी। इसमें कोई सन्देह नहीं कि लाखा एक महापुरुष था। वीरता और देशभक्तिमें कोई उसका सानी न था। उसने अणहिलवाड़ासे कर और चित्तौरके राजासे खिराज वसूल किया था। अब भी जो कोई यात्री वहाँ जाता है, उसे

नाडौलका किला दिखाया जाता है। कहते हैं कि इसे लाखाने ही बनवाया था। लाखा बड़ा ही सौभाग्यशाली पुरुष था। उसके चौवीस पुत्ररत्न थे। उनमें से एकका नाम दादराव था। वही भण्डारी कुलका जन्मदाता है। कहा जाता है कि राजघरानेके भण्डारका प्रबन्ध दादरावके हाथमें था। इसी कारणसे इसकी सन्तान भण्डारीके नामसे प्रसिद्ध हो गई। विक्रम सम्वत् ११४९ अथवा ई० सन् ९९२ में यशोभद्रसूरिने दादरावको जैनधर्म ग्रहण कराया था और उसके कुलको ओसवाल जातिमें मिलाया था।

भण्डारी लोग मारवाड़में रावजोधाके समय (१४२७–८९ ई०) से रहते हैं जिसकी उन्होंने भारी सेवा की थी। अपने सेनापति नर भण्डारीकी अधीनतामें ये लोग जोधाके लिए मेवाड़की सेनासे झिलवाड़ेमें लड़े थे और उन पर विजय प्राप्त की थी। जबसे ये लोग जोधपुरमें आये उसी समयसे दर्बारमें इनकी बड़ी मानता रही और ये बड़े बड़े उच्च पदोंपर नियुक्त रहे। संघवियोंकी भाँति ये भी असि मसि, अर्थात् तलवार और कलमके धनी थे तथा जोधा घरानेके सच्चे भक्त और उपासक थे। ये लोग अब भी राज्यके सच्चे सेवक समझे जाते हैं। अब हम पाठकोंको उन भण्डारियोंका संक्षिप्त परिचय कराते है जिन्होंने युद्धमें नाम पैदा किया था।

१ रघुनाथ। यह महाराजा अजीतसिंहके समयमें (१६८०–१७२५ ईस्वी) हुआ। महाराजने इसे दीवानके पद पर नियुक्त करके राज्यसम्बन्धी सम्पूर्ण कार्योंको इसे सौंप

दिया था। राज्यप्रबन्ध और सिपाहगिरी दोनों कार्योंमें इसका अनुभव बहुत बढ़ा चढ़ा था। कर्नेल वाल्टर साहबका कथन है कि जब महाराजा अजीतसिंह देहलीमें विराजमान थे, तब रघुनाथ भण्डारीने अपने स्वामीके नामसे मारवाड़में कितने ही वर्ष शासन किया था। यह बात नीचे लिखे हुए पदसे भी प्रगट होती है जो जनसाधारणमें बड़ी बहुत प्रसिद्ध है।

" अजि दिल्ली रो पतशो राजा तो रघुनाथ। "

अर्थात् जब अजीतसिंह दिल्ली पर शासन कर रहे थे, उस समय रघुनाथ भण्डारी मारवाड़ पर राज्य कर रहा था।

भण्डारी खिमसी। यह भी महाराजा अजीतसिंहके समयमें दीवान पदपर नियुक्त था। इसने दिल्लीके अधिपतिसे गुजरातकी सूबेदारीकी सनद प्राप्त कर ली थी। मारवाड़का इतिहास इस बातका साक्षी है कि भण्डारी खिमसीने जजिया करको—जिसे औरङ्गजेबने पुनः हिन्दुओंपर लगा दिया था—बंद करा दिया था। यह यश भण्डारी खिमसीको ही प्राप्त है।

३ भण्डारीविजय। महाराजा अजीतसिंहने इसे पाटनका सूबेदार नियत किया था।

४ रतनचन्द। यह महाराजा अभयसिंहका—जिन्होंने सन् १७२५ से १७५० ईस्वी तक राज्य किया—बड़ा भारी सरदार था। जब अभयसिंहने बीकानेर पर आक्रमण किया था उस समय रतनचन्द ही मारवाड़सेनाका नायक था। इसने बड़ी वीरतासे

शत्रुका सामना किया; परन्तु शोक है कि वह लौटते समय मार डाला गया।

५ गंगाराम। यह विजयसिंहके समय (सन् १७५२-९२ ईस्वी) में हुआ। यह केवल राजनीतिज्ञ ही नहीं था वरन् बहादुर सिपाही भी था। यह मेड़ताके युद्धमें भी गया था जो सन् १७९० ईस्वीमें मरहठों और राठौरोंके बीचमें हुआ था।

६ लक्ष्मीचन्द। यह महाराजा मानसिंहके राज्यकालमें (सन् १८०३-४३) दीवान पद पर आसीन रहा। इसको जागीरमें एक गाँव मिला था जिसकी आय २००० रुपयोंके लगभग थी।

७ बहादुरमल। यह महाराजा तख्तसिंहके समयमें (सन् १८४३-७३) हुआ। सम्भवतया मुत्सद्दीवंशमें यह सबसे अन्तिम था। इसका महाराजाके ऊपर ऐसा प्रभाव पड़ा हुआ था कि यथार्थमें लोग इसीको मारवाड़का राजा मानते थे। यह बात इसकी कीर्तिको और भी बढ़ाती है कि राजा और प्रजा दोनोंकी भलाई करनेमें जिनका प्रेम इसकी नस नसमें भरा हुआ था, इसने कोई भी बात उठा नहीं रक्खी। इसी कारणसे वहाँकी प्रजा इससे बहुत ही प्रसन्न और आह्लादित रहती थी। नमकके ठेकेके काममें इसने जो कुछ सेवा की थी उसके लिए मारवाड़ी प्रजा चिरकाल तक इसका आभार मानती रहेगी। सन् १८८९ ईस्वीमें सत्तर वर्षकी अवस्थामें इसका स्वर्गवास हो गया।

८ किशनमल। यह महाराजा सरदारसिंहसे पहले राजा तथा महाराजा सरदारसिंहके राज्यके प्रारम्भमें कोषाध्यक्ष था।

यह आर्थिक विषयोंमें बड़ा निपुण था। इसने मारवाड़के कोषकी नींव बहुत पक्की डाल दी थी। निम्नलिखित पदसे इस बातका पता लगता है कि मारवाड़के आदमी इसका कितना आदर करते थे-

" बक फटत बैरियां, हक जशरा होय।
सुत बहादर रे सिरे, किशना जैसा न कोय "॥

भण्डारियोंके रीति रिवाज अन्य ओसवालोंके समान ही हैं। उनकी आसपूरा देवीका मन्दिर नाडौलमें है जहाँपर वर्षमें दो बार मेला लगता है। कहा जाता है कि जब लाखाके कोई सन्तानोत्पत्ति न हुई तब उसने देवीसे प्रार्थना की कि हे माता मुझे एक पुत्र दे। देवीने उसकी इस प्रार्थनापर प्रसन्न होकर उसको चौबीस पुत्ररत्न दिये। भण्डारी लोग कभी काली गाय, काली बकरी अथवा काली भैंसको नहीं खरीदते। हाँ, यदि कोई भेंटमें दे तो बड़े हर्षसे ले लेते हैं।

भण्डारी लोग वाणिज्यकी अपेक्षा राज्यसेवाको पसन्द करते हैं। दीपावत, मानावत, लुनावत, निवावत इत्यादि उनकी भी कितनी ही जातियाँ हैं। इनमें आपसमें शादी विवाह नहीं होते। भण्डारियोंकी स्त्रियोंमें बड़ा परदा है। अन्य ओसवालोंकी भाँति वे मस्तक पर ' बोर ' आभूषणको नहीं पहनतीं।

—नाथूराम जैन।

अंजना ।

(अंक ५, ६ से आगे ।)

(५४)

थोड़े दिन तक तो परिजनने,
पाया नहीं यही संवाद ।
नहीं अंजनाको छूता है,
पवनकुमार धार सुविषाद ॥

(५५)

पर धीरे धीरे यह सबको,
जान पड़ा दुख है भारी ।
सब सुखयारी समझें जिसको,
वही अंजना दुखियारी ॥

(५६)

रहती रात दिवस चिन्तामें,
कब देंगे दर्शन स्वामी ।
कब होगी पूरी अभिलाषा,
कब पाऊँगी सुख नामी ॥

(५७)

रोती कभी कभी दुख पाती,
लेती कभी दीर्घ निश्वास ।
अछताती पछताती दुखिया,
तज देती थी जीवन-आश ॥

(५८)

बरसों बीत गये दुखियाको,
पाये नहिं नीके दर्शन ।

छलिया कपटिन पगली कहते,
रुका पवनजयका नहिं मन ॥

(५९)

लाख लाख तकलीफ़ उठाती,
तरुणी हा हा खाती थी ।
नहीं पवनजयके मनको वह,
तोभी पिघला पाती थी ॥

(६०)

मन था या अनघड़ पत्थर था,
लोहा था या वज्जर था ।
प्रेमभिखारिन परम सुन्दरी,
नारीको न जहाँ स्थल था ॥

(६१)

बरसों बीत गये ऐसे ही,
स्त्रीको दुख पाते पाते ।
तोभी रुके न पतिके जीमें,
दुष्ट भाव आते आते ॥

(६२)

इतनेमें प्रल्हाद भूप पर,
पत्र लंकपतिका आया ।
सैन्यसहित सज रणमें शामिल,
होनेको था बुलवाया ॥

(६३)

कहा पवनजयने पढ़ उसको,
पूज्य पिता मैं जाऊँगा ।

क्षत्रियसुत कैसे होते हैं,
रणमें यह दिखलाऊँगा ॥

(६४)

नृप रावणके सब रिपुओंको,
दल मल मार भगाऊँगा ।
अपना अपने कुलका गौरव,
जगमें पूर्ण जमाऊँगा ॥

(६५)

ऐसे विनती कर आज्ञा ले,
सजा सैन्य चढ़ चला कुमार ।
मूर्तिमान जा रहा वीररस,
मानों लिए ढाल तलवार ॥

(६६)

लेकर मंगल द्रव्य मनोरम,
पतिव्रता सन्मुख आई ।
सती अंजना, पर वह पतिसे,
तिरस्कार भारी पाई—॥

(६७)

चली गई दुखिया महलोंमें,
व्याकुल करने लगी विचार ।
देखें जय पाकर आते हैं,
कब तक मेरे प्राणाधार ॥

(६८)

दिन भर चल सेना जा ठहरी,
मानसरोवरके शुचि तीर ।

लगे टहलने ले प्रहस्तको,
तीरों तीर पवनजय वीर ॥

(६९)

वहाँ नजर आया चकवेको,
झपट ले गया पक्षी बाज ।
चकवी तड़प तड़प जी देती,
करती हुई आर्त आवाज ॥

(७०)

उड़ती कभी कभी भूतल पर
गिरती पड़ती चलती थी ।
अपनी छायाको जलमें लख,
चकवा जान लपकती थी ॥

(७१)

चकवा कहाँ कहाँ चकवी थी,
चकवा तो तज गया जहान ।
चकवीका दुख लखा न जावे,
थी संकटमें उसकी जान ॥

(७२)

इस घटनासे पवनंजयके,
दिलपर असर पड़ा भारी ।
लगा कोसने अपनेको ही,
मैं हूँ दुष्ट बड़ा भारी ॥

(७३)

मम वियोगमें मेरी प्यारी,
क्या क्या दुख न उठाती है ।

इस चकवीसे भी वह ज्यादा
बार बार बिलखाती है ॥

(७४)

हूँ हत्यारा, हूँ मैं पापी,
बड़ा घातकी हूँ मैं क्रूर ।
जो अबलाको दुख देनेको,
रहता हूँ उससे अति दूर ॥

(७५)

औरोंसे बातें करता हूँ,
घुल घुल कर प्यारी प्यारी ।
पर अपनी सच्ची प्यारीको,
कहता हूँ दुष्टा नारी ॥

(७६)

निजको धिक् धिक् कह पछताता,
चला गया प्यारीके पास ।
लगा माँगने क्षमा दीन हो,
मनमें होता हुआ उदास ॥

(७७)

चरणोंमें गिर पड़ी अंजना,
मेरे जीवन, मेरे प्रान ।
मेरे कर्मोंका दूषण था,
नहीं आपका दोष सुजान ॥

(७८)

मेरे मोती, मेरे माणिक,
चन्दा हो मेरे प्रभु आप ।

मेरे सब शृंगार आप हो,
मेरे सब भूषण हो आप ॥

(७९)

मैं इन चरणोंकी दासी हूँ,
मेरे हो प्रभु प्राणाधार ।
जीवनधन हो आनँदघन हो,
सरबस हो मेरे सरदार ॥

(८०)

भूल चूक अपराध हुए हों,
मुझसे उन्हें क्षमा करिए ॥
हूँ अबला अनजान मूढ़ मैं,
मेरे दोष न हिय धरिए ॥

(८१)

सुनी अंजनाकी मृदुवाणी,
हुआ पवनजय बड़ा प्रसन्न ।
हँसी खुशीमें समय बिताया,
मा बापोंसे रह प्रच्छन्न ॥

(८२)

वीरवेशमें सजा हुआ था ।
जाना था रणको चढ़कर ।
पीछा जाने लगा सैन्यमें,
तभी अंजनाने नमकर- ॥

(८३)

'स्वामीकी जय हो जय हो' कह,
जय-कंकण बाँधा करमें ।

"तेज नाथका ग्रहण किया है"
और कहा—"अपने उरमें"॥

(८४)

"इसी लिए स्वामी बिनती है,
निज मुद्रा मुझको दीजे।
रिपुको जीत नाम पा जल्दी,
दासीकी फिर सुध लीजे॥"

(८५)

दासी नहीं सुन्दरी तू है,
मेरे प्राणोंकी प्यारी।
चिन्ता न कर शीघ्र आता हूँ,
रिपुबल मर्दन कर प्यारी॥

(८६)

यों कह निज मुद्रा दे खुश हो,
गया पवनजय निज दलमें।
इधर अंजना खुशी हुई अति,
पतिप्रेम पाकर दिलमें॥

(८७)

थोड़े ही दिन भीतर बातें,
लगीं फैलने चारों ओर।
हुई अंजना गर्भवती है,
पाप किया इसने अति घोर॥

(८८)

कोई कहने लगा "अंजना
बड़ी सती थी कहलाती।

पर, ऐसी है, इसी लिए तो,
नहीं पवनजयको भाती ॥ ”

(८९)

कहा किसीने “ वाह वाह जी,
क्या ऐसा हो सकता है ?
बड़ी सुशीला है वह, उसके
लिए व्यर्थ जग बकता है ॥ ”

(९०)

“ तुम हो भोले भाले भाई,
त्रियाचरित तुम क्यो जानो ।
जो छल कपट अंजना करती,
कहो उन्हें तुम क्या जानो ॥”

(९१)

धीरे धीरे ऐसी बातें,
पहुँचीं राजा रानीको ।
उनको हुआ बड़ा भारी दुख,
हो दुख क्यों नहिं मानीको !

(९२)

रानी केतुमती झट आई,
अपनी पुत्रवधूके पास ।
गर्भवती जब उसको देखी,
लगी डालने तब निश्वास ॥

(९३)

कोप अंजना पर कर भारी,
उसको दिया तुरन्त निकाल ।

तथ्य कथन, मुद्रा दिखलाना,
उसका इसने माना जाल ।

(९४)

गई कोसती हुई गर्भको,
दुखिया पापोंकी मारी ।
अपने मातापिताके घरपर,
तिरस्कार पाई भारी ॥

(९५)

पा अपमान चली जंगलमें,
निराधार दुखिया बाला ।
दुख-सुख-संगातिन थी सँगमें,
प्यारी सखि वसन्तमाला ॥

(९६)

प्रथम गर्भिणी, फिर वह वन-महि,
चला न कुछ भी जाता था ।
कठिनाईसे राम राम कर
कुछ कुछ पद उठ पाता था ॥

(९७)

धीरे धीरे शैल-गुफातक
पहुँची, पहुँची मुनिके पास ।
कुशल पूछ वचनामृत सुनकर
मनमें बँधा इसे विश्वास ॥

(९८)

चैत्र शुक्ल अष्टमी सुतिथिको
बीती जब थी आधी रात ।

हुआ अंजनाके बलशाली,
तेजस्वी बालक दृढगात॥

(९९)

इतनेमें ही सिंहगर्जना,
एकाएक हुई भारी।
प्रतिधुनिसे सारे जंगलमें
कोलाहल छाया भारी॥

(१००)

चिल्ला उठी अंजना इससे,
भय खाकर अपने मनमें।
इतनेमें ही व्योमयान इक,
आया इसके ढिग पलमें॥

(१०१)

उससे उतरे नृप प्रतिसूरज,
पूछा उनने इसका हाल।
बातें कर, जाना यह तो है
सती अंजना मेरी बाल॥

(१०२)

अपना परिचय देकर बोले,
तव मामा प्रतिसूरज हूँ।
बेटी, घरको चलो, चलें अब,
चलनेको मैं उद्यत हूँ॥

(१०३)

'अच्छा चलिए' कह सब बैठे,
जल्दी चलने लगा विमान॥

रस्तेके भीतर हाथोंसे,
छिटक पड़ा बालक बलवान ॥

(१०४)

हा हा कर सब नीचे आये,
देखा तो खुश था बालक ।
चोट न उसको कुछ आई थी,
फूट गया गिरिपत्थरतक ॥

(१०५)

बच्चेको कर प्यार साथ ले,
प्रतिसूरज निजघर आया ।
सती अंजनाने निज शिशुका,
यहाँ आय आनँद पाया ॥

(१०६)

आनँद मना रही थी कुछ कुछ,
पर यह क्या आया संवाद ।
जिसको सुन हो गई अंजना,
मूर्छित मनमें पाय विषाद ॥

(१०७)

" विजयश्रीको पाकर आये,
वीर पवनजय निज घरपर ।
नहीं अंजनाको जब पाई,
चले गये वन, घर तजकर ॥

(१०८)

अपनी भागिनीकी तनयाको,
प्रतिसूरजने किया सचेत ।

कहा अंजना मत घबरा तू
जाता हूँ मैं खोजन हेत ॥

(१०९)

होंगे जहाँ वहाँसे उनको,
ले आऊँगा तेरे पास ।
चिन्ता न कर ज़रा भी मनमें,
प्रभुपर पूरा रख विश्वास ॥

(११०)

यों कहकर प्रतिसूरज नृपने,
आदितपुरको किया प्रयाण ।
केतुमती प्रह्लाद भूपको,
समाचार जा दिये महान ॥

(१११)

सती अंजना मेरे घर है,
हुआ पुत्र उसके शुचिगात ।
पर वह पतिके दर्शनको है,
अकुलाती रहती दिनरात ॥

(११२)

दीनवदन राजा रानीने,
कहा, आपका है उपकार ।
भ्रममें पड़ हमने ही उसका,
किया बड़ा ही है अपकार ॥

(११३)

वह जीती है, पुत्र हुआ है,
अच्छे हैं सब, अच्छा है ।

मिल जावे अब पवन हमारा,
तब यह जीवन अच्छा है ॥

(११४)

बार बार ऐसा कहकहकर,
पछताते थे नृप प्रह्लाद ।
केतुमती आँसू बरसाती,
रोती थी कर बातें याद ॥

(११५)

हाय शुद्धशीलाको हमने,
घरके बाहर दिया निकाल ।
अपने पैरों आप कुल्हाड़ी,
मारी किसको कहिए हाल ॥

(११६)

समझा बुझा इन्हें प्रतिसूरज,
कहने लगा करो मत देर ।
खोज लगावें भलीभाँतिसे,
लावें शीघ्र पवनको हेर ॥

(११७)

सभी चले नृप महेन्द्रको भी,
अपने सँगमें बुलवाया ।
खोजा जहाँ तहाँ आखिरमें,
सघन गहन वनमें पाया ॥

(११८)

ध्यान लगाकर उस जंगलमें,
बैठा था निश्चल होकर ।

प्रिये प्रिये मनमें रटता था,
दिखता था कोरा पंजर ॥

(११९)

कहा पिताने प्यारे बेटा,
उठो उठो क्या करते हो।
माता पिता श्वसुर सब जनका,
दुख क्यों नहिं उठ हरते हो ॥

(१२०)

" प्यारी, प्यारी, प्रिये अंजना,
आ, मिल, " सहसा बोल उठा।
पर जब देखा पूज्य पिताको,
सकुचाया नत होय उठा ॥

(१२१)

माता देखी ससुरा देखा,
मामी-ससुरा भी देखा।
देखा सब कुछ पर न प्रियाको
इधर उधर झाँका देखा ॥

(१२२)

प्रतिसूरजने कहा " कृपाकर,
सब मेरे घरको चलिए।
वहाँ अंजना बाट देखती—
होगी, उसका दुख हरिए ॥"

(१२३)

हनूद्वीपको सभी गये तब,
हुआ वहाँ पर मँगलाचार।

मिली अंजना निज स्वामीसे
सुखी हुआ सारा परिवार ॥

(१२४)

बेटा पुत्रवधू पोतेको,
पाकर केतुमती-प्रह्लाद ।
कविकी कलम न कह सकती है,
कैसा हुआ उन्हें आह्लाद ॥

(१२५)

प्रतिसूरज त्यों महेन्द्र नृपके,
आनँदका कुछ रहा न पार ।
सती अंजनाके सतीत्वको,
मान गया सारा संसार ॥

(१२६)

आनँदमंगल छाया सबमें,
हुआ प्रशंसित शीलसिंगार ।
सती अंजनाका अति सुंदर,
छाया जगमें जयजयकार ॥

—भँवरलाल सेठी ।

शान्ति और सुखकी वृद्धि करनेके नियम।

१ सम्भव है कि हमको प्रति दिवस दुःख तथा निराशाका सामना करना पड़े, इस लिए उत्तम होगा कि हम उसके लिए पहलेहीसे तैयार रहें।

२ सब बातोंमें पूर्ण कोई भी नहीं है, अतएव बहुत पानेकी आशा मत करो।

३ प्रत्येक पुरुषके स्वभावको अच्छी तरह जाँचो ताकि उसे समझकर तुम उसका बन्धेज कर सको।

४ यदि तुम्हारा स्वभाव चिड़चिड़ा है तो बोलनेके लिए शीघ्रता मत करो; यदि तुम क्रोधमें होओ तो किसी कार्यके करनेमें शीघ्रता मत करो।

५ दूसरोंको सुखी बनानेमें अपनी शक्तिभर प्रयत्न करो।

६ जीवनको प्रसन्नताकी दृष्टिसे देखो।

७ अपनेसे जो बड़े हों उनसे शिष्टतापूर्वक और अपनेसे छोटोंसे नम्रतापूर्वक वर्ताव करो। भृत्यों (नौकरों) से दयालुतासे बोलो।

८ जब किसीकी स्तुति करना हो तो सबके समक्ष करो और दोष ढूँढना हो तो अकेलेमें ढूँढो।

९ किसीकी प्रशंसा तो जब कर सको तबही करो; किन्तु किसीको दोष केवल उसी समय दो जब बहुत आवश्यक हो।

१० नम्रतासे दिया गया उत्तर क्रोधकी आँधीको भी छूमन्तर कर देता है।

११ यदि किसी पर क्रोधित होनेका मौका आवे तो स्मरण रक्खो कि तुमसे स्वयम् भी कभी भूल हुई होगी।

१२ सब आनन्दोंमें दूसरोंको पहले सम्मिलित करो।

१३ जब कभी तुमसे हो सके अच्छे सञ्चालनका श्रेय दूसरोंको दो।

भैय्यालाल जैन।

द्वेष।

द्वेष एक बड़भारी अवगुण है। जिस पुरुषमें यह अवगुण हो उसे पशुसे भी गया बीता जानना चाहिए। इसका अर्थ पूर्ण रीतिसे समझना हो तो एक उदार प्रेमी और एक नीच द्वेष रखनेवाले मनुष्यके मुँहकी ओर देखो। एकके मुखपर तुमको उज्ज्वल आनन्द दृष्टिगोचर होगा, दूसरेके मुँहपर गुर्राते हुए कुत्तेके समान क्रूरता नजर पड़ेगी। एक कुत्ता भी द्वेष रखनेवाले पुरुषसे उत्तम है; क्योंकि पशुओंमें तो द्वेष, वैर भँजानेके समयतक ही रहता है-वह उनके मनमें सर्वदा घुला नहीं करता, किन्तु मनुष्यके हृदयमें तो द्वेष, गहरेसे गहरे भागमें दुष्ट कीड़ेके समान प्रवेश करके उसकी उत्तमताका नाश कर देता है। द्वेष रखनेवाला पुरुष, दूसरेका तो नुकसान जब कर सकता है, तब

करता है किन्तु प्रथम तो वह अपनी ही हानि करता है। जबतक वह द्वेष रखता है तबतक उसका मन क्रोध और चिन्ताओंसे ग्रसित रहता है। उसका चित्त प्रफुल्लता क्या है, इसको तो कभी जानता ही नहीं है। सबको प्रेम भरी मीठी दृष्टिसे देखनेमें कितना आनन्द भरा है, इसका उसे स्वप्न भी नहीं होता।

पशु तो अपने स्वार्थसाधनके लिए ही कोई अनुचित कार्य करता है और ऐसा करनेसे उसे जो रोकता है उसे हानि पहुँचाता है किन्तु द्वेष रखनेवाला पुरुष तो, स्वार्थ न रहनेपर भी, "मुझे अमुक मनुष्यका नुकसान करना है" इतना विचार आने मात्रसे उसकी हानि करनेको तत्पर हो जाता है और ऐसा करनेमें आनन्द मानता है।

यह तो हुई द्वेष रखनेवाले पुरुषकी बात, अब एक पवित्र हृदयवाले व्यक्तिका भी उदाहरण दिया जाता है जिससे द्वेष और उदारताका अन्तर भलीभाँति समझमें आ जावे।

बौद्धधर्मके एक ग्रंथमें लिखा है कि काशीके एक ब्रह्मदत्त नामक राजाने कौशलदेशके राजा और रानीको एक समय बड़ी क्रूरतासे मार डाला और उनका राज्य ले लिया। मरते समय कौशल्य राजा अपने पुत्रको यह उपदेश देता गया कि, "भाइ! शत्रुताकी ओषधि शत्रुता नहीं है किन्तु प्रेम है।" मातापिताविहीन राजपुत्र बहुत समय तक जंगलोंमें भटकता फिरा। अन्तमें वह ब्रह्मदत्तकी घुड़सारमें नौकर हो गया। एक बार वह घुड़सारमें बैठा बैठा बाँसुरी बजा रहा था। उसे सुनकर राजा बहुत प्रसन्न

हुआ और उसने उसको अपनी अर्दलीमें रख लिया। राजाने उसे नहीं पहचाना। इसके पश्चात् राजा उसको अपने साथ लेकर आखेटको गया। वहाँ बहुत थक जानेके कारण, एक वृक्षकी छायामें राजा उस युवाकी गोदमें सिर रखके सो गया। पास ही तलवार रक्खी थी, उसे खींचकर राजपुत्रने विचारा कि राजाका सिर उतार कर, अपने पिताके वैरका बदला लूँ। किन्तु उसी समय, उसे अपने पिताका अन्त समयका दिया हुआ उपदेश याद आया। थोड़ी देरमें राजा जागा और उससे राजपुत्रने अपना सारा वृतान्त कह दिया। राजा उसका क्षमाका गुण देख कर दंग रह गया और उसने उसके पिताका राज्य उसे वापिस दे दिया।

उदारहृदय मनुष्य किसीसे वैर नहीं करता और जो उसके साथ बुराई करता है उसका बदला वह भलाईमें देता है। सच्ची शूरता (बहादुरी) वैर करनेमें नहीं है किन्तु क्षमा करनेमें है। क्षमा वीर पुरुषका भूषण है। *

भैय्यालाल जैन।

* गुजराती पाँचवीं पुस्तकसे अनुवादित।

इतिहास प्रसङ्ग ।

(२७)

नीतिसारके कर्त्ता इन्द्रनन्दि ।
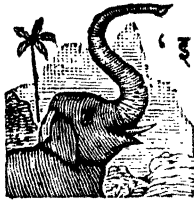
'**इन्द्रनन्दि**' नामके धारक अनेक आचार्य और भट्टारक हो गये हैं जिन सबके समयादिकका प्रायः अभीतक कोई ठीक निश्चय नहीं हुआ। 'नीतिसार' अथवा 'नीतिसारसमुच्चय' नामक ग्रंथके कर्त्ता भी एक '**इन्द्रनन्दि**' हुए हैं। उनका भी समय अभीतक अनिश्चित है। परन्तु वे सोमदेवाचार्यके पीछे जरूर हुए हैं। क्योंकि उन्होंने, उक्त नीतिसारमें **जिनसेन गुणभद्रादिक** उन आचार्योंका उल्लेख करते हुए जिनके रचेहुए शास्त्र, उनकी दृष्टिमें, माने जानेके योग्य हैं, '**सोमदेव**' का भी नामोल्लेख किया है। यथाः—

" अकलंको महाप्राज्ञः सोमदेवो विदाम्वरः ।
प्रभाचंद्रो नेमिचंद्र इत्यादिमुनिसत्तमैः ॥ ७० ॥ "

'सोमदेव' नामके दो विद्वान् आचार्य हुए हैं। एक 'यशस्तिलक' के कर्त्ता और दूसरे 'शब्दार्णवचंद्रिका' के रचयिता। पहले विक्रमकी ११ वीं शताब्दीमें और दूसरे १३ वीं शताब्दीमें हुए हैं। इसमें कोई संदेह नहीं है कि उक्त **इन्द्रनन्दि** यशस्तिलकके कर्त्ताके बाद हुए हैं और बहुत संभव है कि वे शब्दार्णवचंद्रिकाके रचयिताके भी पीछे हुए हों। क्योंकि उनके नीतिसारसे समयकी जिस स्थितिका बोध होता है वह उन्हें १३ वीं शताब्दीमें या

उससे भी कुछ पीछे ले जाती है । उनके समयमें भट्टारकी प्रवाह बह चुका था । वे स्वयं भट्टारकोंके सम्प्रदायमें थे, या कमसे कम भट्टारकोंकी धनादिक ग्रहण करने और दीनदुःखित जीवोंको, गृहस्थोंकी तरह, भोजनादिक बाँटनेकी प्रवृत्तिको अनुचित नहीं समझते थे । यही कारण है कि उन्होंने, अपने नीतिसारमें, जैनमुनियोंके लिए उसका विधान किया है । यथाः—

"**मध्याह्ने दुःखितान्दीनान् भोजनादिभिरादरात् ।
अनुग्रहन्यतिः संघैः पूजनीयो भवेत्सदा ॥ ४२ ॥
क्वचित्कालानुसारेण सूरिर्द्रव्यमुपाहरेत् ।
संघपुस्तकवृद्ध्यर्थमयाचितमथाल्पकम् ॥ ८६ ॥**"

दूसरे श्लोकमें द्रव्यके '**अयाचितम्**' और '**अल्पकम्**' विशेषण करनेसे तथा '**क्वचित्कालानुसारेण**' यह पद देनेसे ऐसा भी ध्वनित होता है कि इन्द्रनन्दिके समयमें भट्टारकोंकी धनादिक ग्रहण करनेकी प्रवृत्ति कुछ बढ़ चली थी, उसे कम करनेके लिए ही शायद उन्होंने यह नियम बनाया है । इस ग्रंथमें भट्टारकका लक्षण भी दिया है जिसमें भट्टारकके लिए विद्वान्, उदार और प्रभावशाली होनेके सिवाय दिगम्बर मुनिपनेका कोई भी विशेष चिह्न नहीं रक्खा है ।

(२८)

वादिराज और कविचंद्रिका।*

एकीभावस्तोत्र और पार्श्वनाथचरित आदिके कर्ता **श्रीवादि-**

* जैनहितैषी भाग ६ अंक ११–१२ में प्रकाशित 'ग्रन्थविवरणसंग्रह' शीर्षक लेखमें भी इन वादिराजका और उनकी कविचन्द्रिकाका परिचय दिया जा चुका है । —**सम्पादक ।**

राजसूरिसे भिन्न एक दूसरे 'वादिराज' नामके कवि भी हुए हैं जिन्होंने 'वाग्भटालंकार' नामक ग्रंथपर 'कविचंद्रिका' नामकी संस्कृत टीका लिखी हैं। वादिराजसूरिका समय विक्रमकी ११ वीं शताब्दी है और यह टीका संवत् १७२९ में बनकर समाप्त हुई है। जैसा कि इसकी प्रशस्तिसे मालूम होता है:—

" संवत्सरे निधिदृगश्वशशाङ्कयुक्ते,
दीपोत्सवाख्यदिवसे सगुरौ सचित्रे।
लग्नेऽलिनाम्नि च समाप गिरः प्रसादात्,
सद्वादिराजरचिता कविचंद्रिकेयम् " ॥ १ ॥

ये **वादिराज** कवि खाण्डिल्यवंश (खण्डेलवाल) में उत्पन्न हुए पोमराज श्रेष्ठिके पुत्र थे और तक्षक नगरीके राजा राजसिंहके यहाँ किसी पदपर नियुक्त थे। उन्हींकी सेवामें अपना गार्हस्थ्य जीवन व्यतीत करते हुए कविने यह टीका लिखी है, ऐसा प्रशस्तिके शेष पद्योंमे जान पड़ता है। इस टीकामें कविने अपने आपको **धनंजय**, **आशाधर** और **वाग्भट**की जोड़का विद्वान् बतलाया है। यथा:—

" धनंजयाशाधरवाग्भटानां धत्ते पदं सम्प्रति वादिराजः।
खाण्डिल्यवंशोद्भवपोमसूनुर्जिनोक्तिपीयूषसुतृप्तचित्तः॥ ३॥ "

(२९)

चन्द्रकीर्ति और पार्श्वनाथपुराण।

'चंद्रकीर्ति' नामके एक भट्टारक हो गये हैं, जिन्होंने विक्रमसंवत् १६५७ में 'पार्श्वनाथपुराण' की रचना की है। यह पुराण उन्होंने देवगिरि नामक मनोहरपुरके पार्श्वनाथ चैत्यालयमें बनाकर समाप्त किया है। यथा:—

" श्रीमद्देवगिरौ मनोहरपुरे श्रीपार्श्वनाथालये,
वर्षेऽब्धीषुरसैकमेय इह वै श्रीविक्रमाधीशतुः ।
सप्तम्यां गुरुवासरे श्रवणभे वैशाख मासे सिते,
पार्श्वाधीशपुराणमुत्तममिदं पर्याप्तमेवोत्तरम् ॥ ८५ ॥ "

इस पुराणकी श्लोकसंख्या ग्रंथके अन्तिम पद्य (नं० ८७) में २७१० प्रगट की गई है । कविने यह ग्रंथ **श्रीगुणभद्राचार्य**के 'उत्तरपुराण' को देखकर लिखा है । ऐसा इस ग्रंथकी आदिमें कविकी प्रतिज्ञासे मालूम होता है । ग्रंथमें, ग्रंथकर्ताने अपनी गुरुपरम्परा काष्ठासंघके प्रधान गच्छ 'नन्दीतट' के मुकुटमणि **श्रीरामसेना**चार्यसे प्रारंभ की है, अन्तमें अपनेको 'श्रीभूषणसूरि' का शिष्य बतलाया है और उनके नामका प्रायः प्रत्येक सर्गके अन्तिमकाव्योंमें स्मरण किया है । **रामसेन**के अन्वय (वंशपरम्परा) में **धर्मसेन** नामके आचार्य हुए । फिर उनके पट्टपर क्रमशः **विमलसेन, विशालकीर्ति, विश्वसेन, विद्याभूषण** और **श्रीभूषण**का प्रतिष्ठित होना लिखा है ।

सकलकीर्ति और सुरेन्द्रकीर्तिका समय ।

पार्श्वनाथपुराणकी जिस प्रतिपरसे यह नोट लिखा जाता है वह संवत् १८२० की लिखी हुई है और उसे भट्टारक **सुरेन्द्रकीर्ति**के पट्टपर प्रतिष्ठित होनेवाले **सकलकीर्ति** नामके भट्टारकने अपने पढ़नेके लिये सुरम्यपुरमें लिखाया है । इससे सकलकीर्ति और सुरेन्द्रकीर्ति भट्टारकोंका समय भी मालूम हो जाता है । जैनसमाजमें सकलकीर्तिके नामसे सैकड़ों ग्रंथ प्रचलित हैं । परन्तु इस नामके अनेक आचार्य और भट्टारक होगये हैं । कौन ग्रंथ कौनसे सकलकीर्तिका

बनाया हुआ है और कब बना है, इसका निर्णय होनेकी जरूरत है। विद्वानोंको इस विषयमें प्रयत्न करना चाहिए।

(३०)

भद्रबाहुका समाधि-स्थान।

मिस्टर बी. लेविस **राइस** साहबने अपनी ' इन्स्क्रिपूशन्स ऐट श्रवणबेल्गोल ' नामक पुस्तककी भूमिकामें, अनेक प्राचीन शिलालेखों और ' राजावलीकथे ' आदिके आधारपर, अन्तिमश्रुतकेवली श्री**भद्रबाहु**स्वामिका समाधि-स्थान कर्णाटकदेशके अन्तर्गत श्रवणबेल्गोल नामक नगरके ' चंद्रगिरि ' पर्वतकी, जिसे ' कटवप्र ' और ' कल्बुप्पु ' भी कहते हैं, एक गुफामें बतलाया है। साधारण जनताका भी ऐसा ही विश्वास है। इसी लिए वह स्थान एक तीर्थस्थान माना जाता है। हरसाल सैकड़ों यात्री उस स्थानकी वंदनादिक करनेके लिए वहाँ जाते हैं। इन्हीं सब बातोंको लेकर ' **जैनसिद्धान्तभास्कर** ' ने भी अपनी किरणोंद्वारा उसे प्रकाशित किया है, अन्यथा उसके माननीय ' **भद्रबाहुचरित्र** ' में इसका कोई उल्लेख नहीं है। चरित्रलेखक **रत्ननन्दि**ने इस विषयमें सिर्फ इतना ही लिखा है कि " दक्षिणदेशको संघसहित जानेके लिए प्रस्तुत हुए श्री **भद्रबाहु**स्वामि **उज्जयिनी**से चलकर विहार करते हुए जब एक गहन अटवीमें पहुँचे तब उन्हें एक ' आकाशवाणी ' सुन पड़ी। उसपर निमित्तज्ञानद्वारा विचार करनेसे उन्हें मालूम हो गया कि उनका अन्त निकट है, आयु थोड़ी रह गई है। तब उन्होंने समस्त मुनिसंघको **विशाखा**चार्यके आधिपत्यमें सौंपकर उसे

दक्षिणकी ओर भेज दिया और आप स्वयं '**चंद्रगुप्त**' मुनिके साथ उसी अटवीकी गिरिगुहामें रहने लगे। वहींपर अन्तमें उन्होंने समाधिपूर्वक अपना देह त्याग किया।" किन्तु वह '**महाऽटवी**' या '**गिरिगुहा**' कौनसे देश या नगरमें थी, इसका उक्त चरित्रमें कहीं कुछ पता नहीं है। हाँ, इतना पता जरूर है कि वह, पर्वत और गुफायुक्त अटवी '**उज्जयिनी**' में नहीं थी। उज्जयिनीसे आगे चलकर दूसरे देशोंमें विहार करते हुए ही वह कहीं पर उन्हें मिली थी। परन्तु **श्रीमल्लिभूषण**के शिष्य **नेमिदत्त**, अपने 'आराधनाकथाकोश' में, **भद्रबाहु**का समाधि-स्थान **उज्जयिनी** नगरीमें एक वटवृक्षके निकट बतलाते हैं और यहाँतक लिखते हैं कि श्रीभद्रबाहुस्वामी स्वयं उज्जयिनीसे गये ही नहीं; बल्कि उन्होंने मुनियोंसे अपनी अल्पायुका कारण बतलाकर उन्हें अपने प्रधान शिष्य विशाखाचार्यके साथ, चरित्र-रक्षाके लिए, दक्षिणदेशको भेज दिया और आप वहीं उज्जयिनीमें ठहरे रहे। मुनियोंके चले जानेके बाद उनके वियोगसे उज्जयिनीका राजा चंद्रगुप्त भी भद्रबाहुको नमस्कार करके मुनि हो गया। यथा:—

"अत्र द्वादशवर्षाणां भाविदुर्भिक्षकं ध्रुवम्।
मया त्वल्पायुषात्रैव स्थीयते भो तपस्विनः॥ १९॥
यूयं दक्षिणदेशं तु संगच्छन्तु कृतोद्यमाः।
इत्युक्त्वा दशपूर्वज्ञं विशाखार्यमुनीश्वरम्॥ २०॥
स्वशिष्यं संघसंयुक्तं सुधीः संज्ञानलोचनम्।
प्रेषयामास चारित्ररक्षार्थं दक्षिणापथम्॥ २१॥
तदा ते मुनयः संतो गत्वा तत्र सुखं स्थिताः।
गुरोर्वाक्यानुगाः शिष्याः संभवंति सुखाश्रिताः॥ २२॥

ततश्चोज्जयिनीनाथश्चंद्रगुप्तो महीपतिः ।
वियोगाद्यतिनां भद्रबाहुं नत्वाऽभवन्मुनिः ॥ २३ ॥
तदा श्रीभद्रबाहुश्च मुनीन्द्रः सुतपोनिधिः ।
श्रीमज्जिनेन्द्रचन्द्रोक्तसारतत्त्वविदाम्बरः ॥ २४ ॥
उज्जयिन्यां सुधीर्भद्रवटवृक्षसमीपके ।
क्षुत्पिपासादिकं जित्वा संन्यासेन समन्वितः ॥ २५ ॥
स्वामी समाधिना मृत्वा संप्राप्तः स्वर्गमुत्तमम् ।
सोऽस्माकं सन्मुनिर्दद्यात्सन्मार्गं शर्मकोटिदम् ॥ २६ ॥

जो लोग चरित्रग्रंथोंको **अक्षरशः** सत्य मानते हैं—उन्हें साक्षात् वीर भगवान्की वाणी समझते हैं—और जो ऐतिहासिक पर्यालोचना करनेवाले दूसरे विद्वानोंको इस प्रकारके उत्तर देते हैं:—“ आपको अमुक चरित्रग्रंथ माननीय है या कि नहीं ? यदि नहीं है तो आपसे कुछ कहना ही खपुष्पके ऐसा है (आकाशके फूल समान है ।) ” ऐसे लोगोंके लिए नेमिदत्तका उपर्युक्त लिखना बड़ा ही चिन्ताजनक है और उन्हें बहुत ही सोचमें डालेगा ।

नेमिदत्तके अस्तित्वका समय विक्रमकी १६ वीं या १७ वीं शताब्दिके लगभग माना जाता है । उनके इस कथनको सत्य माननेसे चंद्रगिरिपर्वत तथा अन्यस्थानोंके बहुतसे प्राचीन शिलालेखोंको और दूसरे विद्वानोंके गवेषणापूर्ण कथनोंको भी बिना ही कारण, अप्रमाण ठहराना होगा । साथ ही श्रवणबेलगोलसे, जिसे जैनबद्री भी कहते हैं, उक्त तीर्थको भी उठाना पड़ेगा और जैनसिद्धान्तभास्करके लेख भी गलत हो जायँगे । अतः जैनविद्वानोंको इस विषयमें अपना प्रगट मन्तव्य करना चाहिए ।

समाजसेवक—

जुगलकिशोर मुख्तार ।

समालोचनाकी आलोचना।

(एक अर्थशास्त्रका प्रश्न।)

कुछ दिन हुए धूलियानिवासी सेठ गुलाबचंदजीने मालवा प्रान्तिक सभाके अधिवेशन पर एक व्याख्यान दिया था। तत्पश्चात् शोलापुरनिवासी सेठ हीराचंद नेमचन्दजीने 'जैनमित्र' में इस व्याख्यानकी समालोचना प्रकाशित की। समालोचना कैसी हुई इसका पता इस बातसे लग सकता है कि इस समालोचनासे जैनसमाजमें एक हलचल पैदा हो गई है। 'जैनतत्त्वप्रकाशक,' 'सत्यवादी,' 'जैनमित्र' में अबतक इस समालोचनाकी अनेक आलोचनायें हो चुकी हैं और उनमें सेठ हीराचंद नेमचन्दजीकी कई बातों पर कटाक्ष किये गये है। वास्तवमें बात भी यही है कि सेठजीने अपनी समालोचनामें कई बातें ऐसी कह डालीं और जैनसमाजपर एक ऐसा मिथ्या दोष लगाया कि इन सबके कारण जैनसमाजमें असंतोष फैले बिना न रहा। हमको भी सेठजीकी कई बातें बहुत खटकी हैं। उनमेंसे प्रायः सभी बातोंकी आलोचना हो चुकी है; परन्तु एक बात ऐसी है जिस पर अभी अधिक लिखनेकी गुंजाइश है। वह भारतवर्षकी दरिद्रताका प्रश्न है।

सेठ गुलाबचंदजीने अपने व्याख्यानमें कहा था कि " देशका सोना, चाँदी, मोती, माणिक, हीरा आदिके रूपमें अनन्त वैभव विदेशोंमें पहुँच गया और उसके बदलमें हमें मिला लोहा, काँच,

पत्थर, मिट्टी, लकड़ी। इससे अधिक और क्या हमारी दुर्दशा होगी; हम दरिद्र बन गये। हमारे पास खानेको अन्न नहीं, पहरनेको वस्त्र नहीं। हमारे करोड़ों भाई इसी दुर्दशाके मारे प्रतिदिन कालके कराल मुँहमें फँसे जा रहे हैं।" अर्थात् यह कह कर सेठजीने भारत-वर्षकी दरिद्र अवस्थाको दिखाना चाहा है। इस पर सेठ हीराचन्द नेमचन्दजीने अपनी समालोचनामें सन् १९०९ से सन् १९१३ ईसवीतकका सोने चाँदीका हिसाब प्रकाशित किया है जिससे यह मालूम होता है कि इन पाँच वर्षोंमें यहाँसे विदेशोंमें जितना सोना चाँदी गया है उससे छः गुण सोना और चार गुण चाँदी इस देशमें आई है। इसके सिवाय और भी दो चार बातें लिखकर सेठजीने यह साबित करना चाहा है कि देश धनसम्पन्न होता जाता है।

सेठजी! यह अर्थशास्त्रका प्रश्न है। केवल सोने—चाँदीका हिसाब प्रकाशित कर देनेसे काम नहीं चलेगा। अनेक बातोंसे देशके धनकी जाँच होती है। क्या आप सोने—चाँदीको ही धन समझ बैठे हैं? सोने—चाँदीके सिवाय देशमें जो और सैकड़ों चीजें पैदा होती हैं अथवा विदेशोंसे आती हैं उनका भी तो हिसाब लगाना चाहिए। और जो देशी चीजें विदेशोंको चली जाती हैं उनका भी खयाल रखना चाहिए। गरज यह कि किसी देशके धनका अंदाजा तब हो सकता है जब उस देशकी पैदावार और उस देशमें बाहरसे आनेवाली चीजोंमें से वे चीजें घटा दी जायँ जो विदेशोंको जाती हैं। सोना—चाँदी तो देशके धनका केवल एक अंश है। क्या अन्न, कपास इत्यादि जमीनमें पैदा होनेवाली

अनेक चीजें, सोने–चाँदीके अतिरिक्त अनेक खनिज पदार्थ, मकान, पशु इत्यादि धनमें शामिल नहीं हैं ? यदि हैं तो इनका भी हिसाब प्रकाशित करना था।

सबसे प्रसिद्ध और प्रमाणित अँगरेज़ी अर्थशास्त्रज्ञ मिस्टर मारशल हैं। देखिए, उन्होंने धनकी व्याख्या इस प्रकार की है–"धनमें ऐसी चीज़ोंकी गिनती है जो हमारी आवश्यकताओंकी पूर्ति किसी न किसी प्रकार करती हों। अर्थात् धनमें वे ही चीज़ें शामिल करनी चाहिए जो हमारे काम की हैं; परन्तु साथ ही इसके यह भी याद रखना चाहिए कि जिन चीज़ोंकी हमको ज़रूरत है वे सभी धनमें गर्भित नहीं हैं। कुछ चीज़ें ऐसी भी हैं जिनकी हमें ज़रूरत तो है, परन्तु हमको उन चीज़ोंको धनमें शुमार न करना चाहिए। उदाहरणके लिए ' मित्रोंका प्रेम ' ले लीजिए। इस प्रेमकी हमको ज़रूरत तो है परन्तु यह धन नहीं है। अच्छा तो अब हमको यह देखना चाहिए कि ज़रूरतकी चीज़ोंमेंसे किन किन चीज़ोंको हम धन कह सकते हैं। धनमें एक तो सब तरहके द्रव्यरूप पदार्थ शामिल हैं, जैसे प्राकृतिक पदार्थ–ज़मीन, पानी, हवा, खेती, खान, मछलीके शिकार और कारखानोंकी पैदावार; मकान, मशीन और औज़ार; रहननामे दूसरी तरहकी दस्तावेजें; कम्पनियोंके शेर (हिस्से), एकाधिकार और तरह तरहके स्वत्त्व, कापी राइट इत्यादि। दूसरे, वे सब बाहरी चीज़ें शामिल हैं जो मनुष्यसे संबंध रखती हैं और जिनके द्वारा द्रव्य प्राप्त हो सकते हैं, जैसे दूसरोंके साथ मनुष्यके व्यापारिक संबंध–उसकी विश्वासपात्रता इत्यादि।

यदि किसी मनुष्यके पास गुलाम हों, तो वे भी धन हैं। धनमें मनुष्यकी निजी शक्तियाँ और गुण शामिल नहीं हैं, यहाँ तक कि वे शक्तियाँ भी शामिल नहीं हैं जिनके द्वारा मनुष्य अपना निर्वाह करता है; क्योंकि ये सब चीज़ें मनुष्यके **अंदर** हैं। धनमें (ज़रूरतकी) केवल वे ही चीज़ें शामिल हैं जो मनुष्यके **बाहर** हैं।"

अब विचार कीजिए कि सोने-चांदीके अतिरिक्त और भी कितनी ही महत्त्वकी चीज़ें हैं जिनका धनमें शुमार होना चाहिए। यह तो हुई सामान्य बात। अब यह देखना चाहिए कि भारतवर्षके धनके विषयमें इन बातोंपर किस तरह विचार करना चाहिए। क्योंकि भारतवर्षके धनके विषयमें धनसंबंधी कुछ बातें ऐसी भी हैं जिनका विचार दूसरे देशोंके धनका अंदाज़ा लगानेमें नहीं करना पड़ता; जैसे इँग्लेण्डके 'इंडिया आफिस' इत्यादिका ख़र्च जो हमको देना पड़ता है। अब यह पता लगानेके लिए कि भारतवर्षका धन बढ़ रहा है या घट रहा है, हमको भारतवर्षकी आमदनी और ख़र्चका हिसाब लगाना चाहिए। भारतवर्षकी आमदनी और ख़र्च दो तरहके हैं, एक तो देशी और दूसरे विदेशी। देशी आमदनीमें वे चीज़ें (पैदावर) शामिल हैं जो भारतवर्षमें ही पैदा होती हैं और देशी ख़र्चसे उस ख़र्चसे मतलब है जो देशी चीज़ोंके पैदा करनेमें पड़ता है। भारतवर्षकी पैदावर भी दो विभागोंमें बाँटी जा सकती है, एक तो वह भाग जो इसी देशमें रह जाता है अर्थात् भारतवासियोंके ही काममें आजाता है, और दूसरा वह भाग

जो यहाँसे विदेशोंको चला जाता है। इन दोनों भागोंका अलग अलग हिसाब लगाना पड़ेगा। विदेशी आमदनीमें वह माल या रुपया शामिल है जो हमको विदेशोंसे मिलता है और इसी तरह विदेशी ख़र्चसे उस माल या रुपयेसे मतलब है जो यहाँसे विदेशोंको चला जाता है। विदेशी आमदनी और ख़र्चमें ये मद्द शामिल हैं:—

विदेशी आमदनी—

(१) भारतवर्षसे विदेशोंको जो (तिजारती) माल जाता है उसकी विक्रीकी आमदनी। (इसी मालमें सोना—चाँदी भी शामिल है।)

(२) भारतवर्षमें जो रुपया या माल विदेशोंसे क़र्ज़के तौर पर आता है। भारतवर्ष विदेशोंसे बहुत रुपया क़र्ज़ लेता रहता है। यह रुपया रेलों, कारखानों इत्यादि अनेक कामोंमें लगा हुआ है।

(३) वह रुपया जो विदेशी यात्री भारतवर्षमें आकर ख़र्च कर जाते हैं।

(४) वह रुपया जो विदेशी लोग भारतवासियोंको दान कर देते हैं, वह रुपया जो विदेशी व्यापारी भारतवर्षको भेजते हैं और वह रुपया जो विदेशोंमें गये हुए भारतवासी इस देशमें भेजते हैं।

विदेशी ख़र्च—

(१) विदेशोंसे जो माल इस देशमें आता है उसका मूल्य। (इसी मालमें सोना-चाँदी भी शामिल है।)

(२) भारतवर्षमें जो विदेशी मूलधन लगा हुआ है उसका व्याज।

(३) वह रुपया जो भारतवर्ष विदेशी क़र्जमें चुकाता रहता है; क्योंकि भारतवर्ष अपने पुराने (विदेशी) क़र्जको बराबर चुकाता भी जाता है।

(४) वह रुपया जो भारतवर्षमें रहनेवाले विदेशी सौदागर, वकील, डाक्टर और अनेक सरकारी कर्मचारी अपनी आमदनीमें से बचा बचाकर अपने घर अथवा भारतवर्षके बाहर विदेशोंको भेजते रहते हैं।

(५) वह रुपया जो भारतवर्षके व्यापारियोंको विदेशी जहाज़-वालोंको किरायेकी तरह पर देना पड़ता है । क्योंकि भारतवर्षके पास जहाज़ नहीं हैं; कुछ हैं भी तो उनकी संख्या 'नहीं' के बराबर है। जहाज़ोंके किरायेमें भारतवर्षको बहुत रुपया देना पड़ता है। यह सब रुपया विदेशियोंको मिलता है अर्थात् विदेशोंमें पहुँचता है।

(६) वह रुपया जो भारतवासी विदेशियोंमें जाकर खर्च कर आते हैं। वह रुपया जो भारतवासी विदेशोंको सहायतार्थ भेजते हैं। जैसे आज कल युद्धमें सहायता देनेके लिए यहाँसे लाखों रुपया इँग्लेंड और फ्रांसमें पहुँच रहा है।

(७) वह रुपया जो भारतसरकार अँगरेज़ी सरकारको देती है। अँगरेज़ी सरकार भारतवर्षके शासनका जो प्रबंध इंडिया आफिस द्वारा करती है उसीके बदलमें यह रुपया लेती है। सन् १९०९।१० ई० में (अर्थात् एक वर्षमें) इस खर्चेके लिए २८ करोड़ रुपया भारतवर्षको देना पड़ा था। प्रति वर्ष लगभग इतना ही रुपया देना पड़ता है।

विदेशी आमदनी और ख़र्चका उपर्युक्त मद्दोंमें हिसाब लगाना चाहिए। देशी और विदेशी आमदनी और ख़र्चका हिसाब लगाते समय इस बातपर भी ध्यान रखना चाहिए कि कोई रक़म दो बार हिसाबमें न आजाय । आमदनी और ख़र्चके सिवाय कुछ हिसाब उस धनका भी लगाना चाहिए जो पहलेसे भारतवासियोंके घरोंमें ज़मीनके नीचे गढ़ा हुआ रक्खा है। यह देखना चाहिए कि इस गढ़ेहुए धनमें कमी हो रही है या ज़ियादती ?

सेठजी ! अब आपने देखा कि भारतवर्षके धनका अंदाज़ा लगानेके लिए सिर्फ़ सोने-चाँदीका हिसाब लगानेसे कुछ काम नहीं चल सकता। हाँ, अभी एक बात और है। यदि हम थोड़ी देरके लिए यह मान भी लें कि भारतवर्षके धनका अंदाज़ा केवल सोने-चांदीके हिसाबसे ही लग सकता है, तो क्या आप यह समझते हैं कि यह सोना-चाँदी भारतवर्षमें लाभके रूपमें या मुफ्त चला आता है ? क्योंकि लाभके रूपमें या मुफ्त चले आनेसे ही धनकी वृद्धि हो सकती है। यदि हमको इसके बदलेमें उतने ही मूल्यका माल देना पड़ता है तो हमारे धनकी वृद्धि कैसे हुई ? हम तो वैसेके वैसे ही रहे। जितना हमारे पाससे गया उतना ही आया। यदि आप किसी मनुष्यको दो लाख रुपयेकी रुई दे दें और उसके बदलेमें वह मनुष्य आपको दो लाख रुपयेका सोना-चांदी दे जाय, तो क्या आपके धनकी वृद्धि होगी ? वृद्धि तो उसी सूरतमें होगी जब आपको इस व्यापारसे कुछ लाभ हुआ हो, अथवा आपको कोई मुफ्तमें सोना-चाँदी दे जाय। श्रीयुत दादाभाई नोरोजीने एक पुस्तक

लिखी है। उसका नाम है Poverty and un-British Rule in India। यह पुस्तक सन् १९०१ ईसवीमें लंडनमें प्रकाशित हुई थी। इसी पुस्तकमें एक जगह ठीक इसी विषयपर विचार किया गया है और आपकी बातका उत्तर इस प्रकार दिया है। यहाँपर हम उस अंशका आशयानुवाद देते हैं;—

"बहुधा कहा जाता है कि भारतवर्षमें विदेशोंसे बहुत सोना–चांदी (Bullion) आया है, इस लिए भारतवर्ष बहुत धनवान् हो गया है। अब देखिए कि असलियत क्या है।

"सबसे पहली बात तो यह है कि भारतवर्षमें विदेशोंसे जो चाँदी आई है वह हमको लाभके रूपमें नहीं मिली। विदेशोंसे जो माल इस देशमें आता है वह उस मालसे कम है जो यहाँसे विदेशोंको जाता है और उसपर जो कुछ मुनाफ़ा मिलता है। अर्थात् जितना माल यहाँसे बाहर जाता है उतना बाहरसे नहीं आता। यदि यह कहा जाय कि विदेशोंसे जो चाँदी हमको मिलती है वह मालकी इसी कमीको पूरा करनेके लिए मिलती है, तो यह भी ठीक नहीं है। क्योंकि यह कमी तो बहुत बड़ी है। जितनी चाँदी यहाँ पर आती है वह इस कमीको देखते हुए बहुत ही थोड़ी है। हम पहले भी कह चुके हैं कि विदेशोंसे आनेवाला माल (जिसमें विदेशोंसे आया हुआ सब सोना-चाँदी भी शामिल है) विदेशोंको गये हुए माल और उसके मुनाफ़ेसे बहुत ही कम है। यह कमी इतनी है कि विदेशमें गये हुए मालपर जो मुनाफ़ा हमको मिलता है, सरकारको अफ़ीमसे जितनी आमदनी होती है

और स्वयं अफ़ीमका भी एक बहुत बड़ा भाग, इन तीनोंको मिला दिया जाय तब कहीं यह कमी पूरी हो सकती है। अच्छा तब यह सोना-चाँदी यहाँ क्यों आता है? इसके आनेका मुख्य कारण यह है कि हमको व्यापार और सरकारी कामकाज चलानेके लिए सिक्कोंकी ज़रूरत है। पहले सिक्कोंकी इतनी ज़रूरत न थी। पहले भूमिके लगान या मालगुज़ारीमें अन्नका कुछ भाग दिया था, परन्तु ब्रिटिश गवर्नमेन्ट इस लगानको सिक्कोंमें लेने लगी। इसी कारण सिक्कोंकी ज़रूरत बहुत बढ़ गई और सिक्कोंके लिए सोना—चाँदीकी ज़रूरत पड़ी। भारतवर्षका विदेशोंके साथ व्यापार भी बढ़ गया (यद्यपि इससे भारतवर्षको कुछ लाभ न हुआ) और इससे भी सिक्कोंकी ज़रूरत बढ़ गई। सन् १८०१ से सन् १८६९ तक भारतवर्षमें जितना सोना—चाँदी विदेशोंसे आया यदि उसमें वह सोना चाँदी जो इसी समयमें विदेशोंको गया, घटा दिया जाय, तो ३३९४७७१३४ पौंड*का सोना—चाँदी बचता है, अर्थात् इतने पौंडका सोना—चाँदी भारतवर्षमें ज़ियादा आया। इसमेंसे २६९६९२७४९ पौंडके सोने—चाँदी के सिक्के बनाये गये। सिक्कोंकी इस रकम में वे सिक्के शामिल नहीं हैं जो सन् १८०१ से सन् १८०७ तक मद्रासमें बने और सन

---

* मूल पुस्तकमें पौंडमें ही मूल्य दिया है। सुभीतेके कारण हमने इसके रुपये नहीं बनाये। पाठक जानते ही हैं कि एक पौंड १५) का होता है। बीस शिलिंगका एक पौंड और बारह पेंसका एक शिलिंग होता है। यह रक़म और आगेकी और रक़में श्रीयुत दादा भाई नौरोजीने पार्लियामेंटके सरकारी नक्शों से ली हैं।

१८२१-२२, १८२४-१८३१ और १८३३ ईसवीमें बम्बई में बने, क्योंकि इनका हिसाब न मिल सका। अब जितने पौंड का सोना-चाँदी आया और उस सोना-चाँदीमेंसे जो सिक्के बनें उस रकमको घटा दिया जाय, तो ७०००००० पौंडका सोना-चाँदी बच रहता है। यही सोना-चाँदी भारतवर्षके दूसरे कामोंके लिए-जैसे गहने इत्यादिके लिए बचा। यह कहा जा सकता है कि कुछ सिक्के फिर गला दिये गये होंगे और उनकी धातु बन गई होगी। परन्तु इन सिक्कोंकी संख्या जियादा नहीं हो सकती, क्योंकि सोना-चाँदी सिक्कोंसे सस्ता था। सस्ते होनेका कारण यह है कि सरकार सिक्के बनानेकी सैकड़ा पीछे दो पौंड मज़दूरी ले लेती थी।* मिस्टर हेरीसनने भी कहा था कि चूँकि सिक्के बनानेकी मज़दूरी सैकड़ा पीछे दो (पौंड या रुपये) लगती है, इस लिए जो मनुष्य सिक्कोंको किसी और काममें लाना चाहते हैं उनको हानि उठानी पड़ती है।

"इसके सिवाय हमको सिक्कोंके घिसनेका भी हिसाब लगाना चाहिए। इँग्लेंडमें शिलिंगके सिक्कोंके घिसनेसे सैकड़ा पीछे २८

*श्रीयुत दादाभाई नोरोजी जिस समयका (सन १८०१-१८६९ का) हाल लिख रहे हैं उस समय भारतवर्षमें कायदा था कि चाहे जो मनुष्य सरकारी टकसाल पर अपना सोना-चांदी ले जाय, सरकार उसके सिक्के बना देती थी और यदि सो रुपयाकी चाँदीके सिक्के बनते थे तो दो रुपया बनानेकी मज़दूरी ले लेती थी। उन दिनों सिक्के खालिस धातुके बनते थे। किसी तरहकी मिलावट न होती थी। यह कायदा जिसको Free coinage कहते हैं भारतवर्षमें सन् १८९३ ईसवी तक रहा।

शिलिंगका नुकसान हो जाता है और सिक्का पेंसके सिक्कोंके घिसने-से सैकड़ा पीछे ३७ सिक्स-पेंसका नुकसान हो जाता है। जिस नक्शेपरसे यह हिसाब लिया गया है उसमें यह नहीं लिखा है कि इतना नुकसान कितने समयमें होता है। भारतवर्षमें सिक्कोंके घिसनेसे इससे कहीं जियादा नुकसान होता होगा; क्योंकि इस देशमें सरकारी कामोंके लिए सिक्कोंका इधरसे उधर आनाजाना बहुत होता है और इसके सिवाय यहाँके लोग भी सिक्कोंको जियादा सख्तीसे काममें काम लाते हैं और सिक्कोंका उपयोग भी इस देशमें बहुत होता है। एक हाथसे दूसरे हाथमें जानेसे और उठाने रखनेसे सिक्के घिसते जाते हैं और उनकी धातु कम होती जाती है। मिस्टर हैरीसनने हिसाब लगाया था कि भारतवर्षमें प्रतिवर्ष १० लाख पौंडका सोना-चाँदी सिक्कोंमेंसे घिस जाता है!

"अब हम यह देखते हैं कि जो सोना-चाँदी सन् १८०१ से लेकर १८६९ ईसवी तक अर्थात् ६९ वर्षमें आया उसमेंसे कितने सोने-चाँदीके सिक्के बने, कितना सोनाचाँदी सिक्कोंमेंसे घिस घिस कर बरबाद हो गया और कितना सोना-चाँदी हमारी अन्य आवश्यकता-ओंके लिए बच रहा। हम ऊपर लिख आये हैं कि इन ६९ वर्षों-में ३३९४७७१३४ या लगभग ३३९०००००० पौंडका सोना-चाँदी देशमें जियादा आया और इसमेंसे लगयग २६६०००००० पौंडके सिक्के बने। सिक्कोंमेंसे ६६०००००० पौंडका सोना-चाँदी ६९ वर्षमें घिस गया होगा। इस रकमको निकाल देनेसे

२०००००००० पौंडके सिक्के बचे। इसमेंसे भी, यद्यपि सिक्कोंके गलानेमें सैकड़ा पीछे २ पौंडका नुकसान होता है, परन्तु फिर भी हम मान लेते हैं कि ५०००००००० पौंडके सिक्कोंको गला कर फिर सोना-चाँदी बना लिया गया होगा। इस रकमको भी घटा देनेसे केवल १५०००००००० पौंडके सिक्के रह गये। अब इस रकमको और जितना सोना–चाँदी घिस गया (अर्थात् ६६०००००० या कमसे कम ५०००००००० पौंड) को जोड़कर–यह जोड़ २०००००००० पौंड हुआ–भारतवर्षमें कुल जितना सोना-चाँदी आया उसमेंसे घटा दो। घटानेसे १३५०००००० पौंडका सोना चाँदी सिक्कोंके अतिरिक्त देशकी बाकी तमाम जरूरतोंके लिए बचा। भारतवर्षकी जन–संख्या, उस समय २०००००००० थी। इस जनसंख्या पर १३५०००००० पौंडको बाँट दो, तो ६९ वर्षके समय तक सिक्कोंके अतिरिक्त और अनेक कामोंके लिए प्रति मनुष्य १३ शिलिंग ६ पेंस (१३ १/२ आना) से भी कम सोना–चाँदी पड़ा! एक मनुष्यके लिए ६९ वर्षमें केवल १३ १/२ आनेका सोना–चाँदी कितनी छोटी रकम है!! यदि कुल सोना–चाँदी अर्थात् ३३५०००००० पौंडको भी जन-संख्या पर फैला दिया जाय, तो भी ६९ वर्षमें ३३ शिलिंग ६ पेन एक मनुष्यकी तमाम जरूरतोंके लिए हुए; इसमेंसे हमने सिक्कोंके घिसनेकी भी रकम नहीं घटाई। अब आप इस रकमका मिलान यूनाइटेड किंग्डम (अँगरेजोंकी विलायत–इँग्लेंड, वेल्स, स्काटलेंड और आयरलेंड) के साथ कीजिए। वहाँपर सिक्कोंके

सोना-चांदीको निकाल कर बारह वर्ष (सन् १८९८–१८९९) में ही प्रति मनुष्य ३० शिलिंग (२२॥ रुपया) का औसत पड़ता है, जब कि भारतवर्षमें ६९ वर्षमें १३$\frac{1}{2}$ आनेसे भी कमका औसत पड़ता है ! कहा जाता है कि भारतवासी धन जमा करते जाते हैं, परन्तु यह तो विचारिए कि जमा करनेके लिए प्रतिमनुष्य कितने रुपयेका औसत पड़ सकता है; उनको मिलता ही क्या है जिसमेंसे वे जमा करें। इसके साथ ही ज़रा यह भी देखिए कि इँग्लेंडवाले सोने चाँदीके बरतनों, जवाहिरातों, क़ीमती घड़ियों इत्यादिके रूपमें कितना जमा कर लेते हैं।........असली बात यह है कि जमा करना तो दूर रहा लाखों भारतवासी, जिनको भरपेट खाना भी नहीं मिलता, यह भी नहीं जानते कि गिरहमें एक रुपया होना कैसा होता है।....यह विचार भी कि चांदीके आनेसे भारतवर्ष धनवान् हो गया है एक विचित्र भ्रम है ! इस भ्रमका कारण यह है कि मनुष्य एक ज़रूरी बातपर ध्यान नहीं देते, अर्थात् वे यह नहीं सोचते कि जो चाँदी भारतवर्षमें आती है वह उस फ़र्क़को पूरा करनेके लिए नहीं आती जो यहाँसे बाहर जानेवाले माल और उसके मुनाफ़े, और विदेशोंसे आनेवाले मालमें होता है। चाँदी इस गरज़से यहाँ आती ही नहीं, यह बात हम ऊपर समझा चुके हैं। चाँदी इस देशमें इस लिए आती है कि यहाँ पर उसकी ज़रूरत है। इस लिए यह न समझना चाहिए कि चाँदीके आनेसे भारतवर्ष धनवान् होता जाता है। मान लो कि हम किसी मनुष्यको २०) का माल दे दें और उसके बदलेमें हमको ९) का

तो दूसरी तरहका माल मिले और ९) की चाँदी मिले, अर्थात् हमको २०) की चीज़ोंके बदलेमें केवल १०) की चीज़ें मिलें, और फिर भी हम यह कहें कि चूँकि हमारे पास ९) की चाँदी आगई है इस लिए हमारे धनमें ९) की वृद्धि हो गई, तो भला ऐसा धनवान् होना कौन पसंद करेगा ? इस तरहसे धनवान् होनेका विचार करनेसे सचमुच बड़े भ्रमपूर्ण परिणाम होते हैं। जो मनुष्य बहुतसी चाँदीको भारतवर्षमें आते हुए देखकर, इस तरह धोखेमें आजाते हैं वे उस बच्चेके समान हैं जो किसी बड़े आदमीको एक पूरी रोटी खाते हुए देखकर बड़ा आश्चर्य करता है, क्योंकि उस बच्चेको स्वयं उस रोटीमेंसे एक छोटा टुकड़ा खानेसे ही संतोष हो जाता है। और वह बच्चा यह तो बिलकुल ही नहीं जानता कि वह पूरी रोटी भी उस बड़े आदमीके लिए बिलकुल नाकाफ़ी है।" इत्यादि।

सेठजी ! अब आपने देखा कि केवल सोना—चाँदीके आने जानेका विचार करनेसे देशके धनका पता नहीं लग सकता। ऐसा विचार करना एकान्तवाद है। आपको सभी बातोंपर विचार करना चाहिए। संभव है कि देशमें सोना—चाँदी तो अधिक आता हो, परन्तु इससे भी जियादा माल देशके बाहर चला जाता हो। तब कहिए सोना—चाँदी देशके धनकी कैसे वृद्धि कर करता है। एक ही अंशको ग्रहण करनेसे बहुधा भ्रम हो जाता है; इस बातको हम एक उदाहरण देकर समझाते हैं। फ्रांस देशके व्यापारका पाँच वर्षका हिसाब देखिए:—

ईसवी सन्	कितने डौलर*का माल फ्रांसके बाहर गया	कितने डौलरका माल फ्रांसमें विदेशोंसे आया
१८९७	७२००००००००	७९१००००००
१८९८	७०२००००००	८९५००००००
१८९९	८३१००००००	९०४००००००
१९००	८२२००००००	९४०००००००
१९०१	८३३००००००	९४३००००००
कुलजोड़	३९०८००००००	४४७३००००००

इस हिसाबसे मालूम होगा कि फ्रांसने विदेशोंको जितना माल बेचा उससे जियादा माल विदेशोंसे खरीदा, अर्थात् केवल पाँच वर्षमें ही फ्रांसने विदेशोंसे ५६५०००००० डौलरका माल जियादा खरीदा, या यों कहिए कि एक वर्षमें ११३०००००० डौलरका माल जियादा खरीदा। अब क्या आप इससे यह नतीजा निकालेंगे कि फ्रांसको प्रतिवर्ष ११३०००००० डौलर विदेशोंको जियादा देने पड़ते हैं? अगर इसी हिसाबसे प्रतिवर्ष फ्रांसका धन कम होता रहे तो कुछ ही वर्षमें फ्रांसके पास एक कौड़ी भी न रहे। यदि आप इँग्लेंडका हिसाब देखें, तो आपको और भी आश्चर्य होगा। इँग्लेड प्रति वर्ष विदेशोंसे १२००००००००डौलरका माल अधिक खरीदता है। यदि इस मालका मूल्य इँग्लेड विदेशोंको दे, तो छः

* डौलर अमेरिकाके यूनाइटेड स्टेट्सके एक सिक्केका नाम है। इसका मूल्य ४ शि० २ पे० अर्थात् ३ रु० दो आनेके लगभग होता है।

महीनेमें ही इँग्लेंडका सारा रुपया विदेशोंको चला जाय और इँग्लेंडमें एक पेंस भी न रहे। क्या कारण है कि फ्रांस या इँग्लैंडका झटपट दीवाला नहीं निकल जाता? इसका करण यह है कि इँग्लेंड और फ्रांस विदेशोंकी कई तरहसे सेवा करते हैं। वे विदेशियोंके मालको अपने जहाजोंमें ले जाते हैं और विदेशियोंको व्यापार करनेके लिए अपने पाससे धन देते हैं। इसी लिए उनको विदेशियोंको प्रतिवर्ष इतना रुपया नहीं देना पड़ता।

अब आपने देखा कि एकपक्षको ही ग्रहण करनेसे कितने बड़े भ्रमकी संभावना हो सकती है। हम इस लेखके शुरूमें अनेक बातोंका जिक्र कर आये हैं। आपको भारतवर्षके धनके निर्णय करनेमें उन सब बातोंका विचार करना चाहिए। भारतवर्षके धनमें वृद्धि हो रही है या नहीं, यह विषय बड़ा ही टेढ़ा है। यदि आप इस उलझनको हल कर दें तो जैनसमाज ही नहीं किन्तु समस्त भारतवर्ष आपका बड़ा कृतज्ञ होगा।

—संशोधक।

पुस्तक-परिचय।

गत नौवें अंकमें जो पुस्तकपरिचय प्रकाशित हुआ था, उसके ५४० वें पृष्ठके अन्तका कुछ अंश छपनेसे रह गया था। वहाँ जैनप्रभात मासिकपत्रके परिचयमें इतना अंश और शामिल

कर लेना चाहिए—" समाचारपत्र अबतक उनके (न्या० दि० पं० पन्नालालजीके) विषयमें सर्वथा चुप देखे जाते हैं । न जाने इनके और कितने भाईबन्द हमारे भोले भाइयोंको ठग रहे होंगे । हम राह देख रहे हैं कि उनका भी कच्चा चिट्ठा शीघ्र ही प्रकाशित हो। प्रान्तिकसभाका और सहयोगीका यह प्रस्ताव हमें पसन्द न आया कि प्रतिष्ठाचार्योंकी कमी है, इसलिए उनके बढ़ानेका यत्न किया जाय । कौन कह सकता है कि नये प्रतिष्ठाचार्य भी न्यायदिवाकर-जीके ही भाईबन्द न बन जावेंगे और निःस्वार्थदृष्टिसे काम करने-वाले होंगे ? सभाको इसके बदले यह प्रस्ताव पास करना था कि अब मन्दिरों और प्रतिष्ठाओंकी ज़रा भी ज़रूरत नहीं है, इसलिए कोई भी भाई यह कार्य न करे और यदि कहीं वास्तवमें ज़रूरत हो तो वहाँके भाई ऐसे स्वार्थियोंसे सावधान रहें । हम आशा करते हैं कि जैनप्रभातको जैनसमाजकी ओरसे अच्छा आश्रय मिलेगा और वह नियमितरूपसे अपने दर्शन दिया करेगा । ग्राहक होनेवालोंको ' मैनेजर, जैन प्रभात, चन्दाबाड़ी, बम्बई नं० ४ ' इस ठिकानेसे पत्र लिखना चाहिए । "

कुमारपालचरित । लेखक, मुनि ललितविजय । प्रकाशक, अध्यात्मज्ञानप्रसारक मण्डल, चम्पागली—बम्बई । मूल्य छह आने । गुजरातमें महाराज कुमारपाल नामके एक प्रसिद्ध राजा हो गये हैं। वे चौलुक्यवंशीय (सोलंकी) थे। उनकी राजधानी अनहिलवा-ड़ेमें थी । उनके राज्यका विस्तार बहुत बड़ा था । दूर दूर तक उनकी आज्ञाका पालन होता था । विक्रमसंवत् ११४९ में उनका

जन्म हुआ था। ११९९ में वे राजासिंहासन पर बैठे और १२३० में उनकी मृत्यु हुई। उनके द्वारा गुजरातमें जैनधर्मकी बड़ी उन्नति हुई, जीवदयाका बहुत विस्तार हुआ, मांसभक्षण, यज्ञमें पशुवध आदिका सर्वथा निषेध हो गया और प्रजाकी आशातीत सुखवृद्धि हुई। श्वेताम्बरसम्प्रदायके प्रसिद्ध विद्वान् हेमचन्द्राचार्यको उन्होंने अपना गुरु माना था और उनकी प्रेरणासे उन्होंने जैनधर्मकी उन्नतिके लिए बहुत कुछ किया था। इस पुस्तकमें इन्हीं कुमारपाल महाराजका चरित है जो श्रीजिनमण्डन गणिके वि० स० १४९९ में रचे हुए संस्कृत कुमारपालप्रबन्धके आधारसे लिखा गया है। यद्यपि काव्यशैलीसे लिखे जानेके कारण इसमें अत्युक्तियाँ बहुत हैं, तो भी ऐतिहासिक दृष्टिसे यह बहुत महत्त्वका ग्रन्थ है। मुनि महाराजकी हिन्दी उतनी अच्छी नहीं है जितनी कि होनी चाहिए, तो भी उनका परिश्रम अभिनन्दनीय है। पुस्तकके प्रारंभमें मुनि जिनविजयजी महाशयकी लिखी हुई लगभग ५० पृष्ठकी प्रस्तावना है जो बहुत योग्यतासे लिखी गई है और जिससे सारी पुस्तकका आशय मालूम हो जाता है। प्रस्तावनाकी भाषा भी अच्छी है। उससे मालूम होता है कि महाराज कुमारपालके विषयमें बीसों ग्रन्थोंकी रचना हुई है जिनमेंसे १२ ग्रन्थ तो उपलब्ध हैं। इनमेंसे दो गुजरातीमें, एक प्राकृतमें और शेष ९ संस्कृतमें हैं। आवश्यकता है कि इन सब ग्रन्थोंका अध्ययन करके और उस समयके भारतके इतिहासका अध्ययन करके कुमारपाल महाराजका विश्वस्त ऐतिहासिक चरित लिखा जावे। इसके

लिए श्वेताम्बर सम्प्रदायके विद्वानोंको अवश्य प्रयत्न करना चाहिए। बहुतसे विद्वानोंका खयाल है कि कुमारपाल परम आर्हत नहीं, किन्तु परम माहेश्वर थे। जैनधर्मसे उनकी सहानुभूति थी और जैनोंके प्रति उनका सद्भाव था, बस इसी कारण जैन विद्वानोंने उन्हें परम आर्हत लिखा है। इसका उल्लेख गुजरातीके प्रसिद्ध लेखक केशवलाल हर्षदराय ध्रुवने अपनी 'प्रियदर्शना' नाटिकाकी भूमिकामें किया है और स्मिथके Early History of India की साक्षी दी है। ऐसी शंकाओंपर उक्त चरितमें अच्छी तरह विचार होना चाहिए। पुस्तक निर्णयसारमें छपी है और उस पर कपडेकी सुन्दर जिल्द बँधी हुई है। सब मिलाकर लगभग पौने तीन सौ पृष्ठ हैं। इतने पर भी मूल्य सिर्फ छह आना है जो शायद लागतसे भी कम होगा। प्रकाशकोंकी उदारता प्रशंसनीय ही नहीं अनुकरणीय भी है। इतिहासज्ञोंको इस पुस्तकका संग्रह अवश्य करना चाहिए।

स्वामी दयानन्द और जैनधर्म। लेखक, पं. हंसराजजी शास्त्री पञ्चनदीय। पृष्ठसंख्या १९०। मूल्य आठ आना। मिलनेका पता—आत्मानन्द जैन सेन्ट्रल लायब्रेरी, बाजार जमादार, अमृतसर (पंजाब)। आर्यसमाजके संस्थापक स्वामी दयानन्दजी सरस्वतीने अपने प्रधान ग्रन्थ सत्यार्थप्रकाशके बारहवें समुल्लासमें जैनधर्मकी चर्चा की है और उसमें जैनधर्मके सिद्धान्तोंका केवल खण्डन ही नहीं किया है, किन्तु उसपर अनेक जघन्य दोषारोपण करके उसको बदनाम करनेकी कोशिशकी है। इस पुस्तकमें पं० हंसराजजीने उस

समुल्लासकी विस्तृत समालोचना की है और स्वामीजीकी भद्दी भूलों, भ्रमपूर्ण विचारों, असभ्य लेखों और जैनधर्मसम्बन्धी शोचनीय अज्ञानताओंका दिग्दर्शन कराया है। इस विषयमें अब तक जितनी पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं, हमारी समझमें यह उन सबसे अच्छी है। लेखकको अपने प्रयत्नमें यथेष्ट सफलता हुई है। लेखकने असभ्य आक्रमणोंका उत्तर देते समय भी अपनी सभ्यता और भाषासमितिकी बहुत कुछ रक्षा की है और यह इस पुस्तककी प्रधान विशेषता है। इस पुस्तकके पढ़नेके पहले हम नहीं जानते थे कि स्वामी दयानन्दजी जैसे विद्वानके ग्रन्थमें जैनधर्मके सम्बन्धमें इतनी अधिक अज्ञानता भरी होगी और स्वामीजी मामूली श्लोकों और प्राकृत गाथाओंका अर्थ समझनेमें भी इतने कमजोर होंगे। विवेकविलास नामक ग्रन्थमें दिगम्बर श्वेताम्बर सम्प्रदायका भेद बतलाते हुए कहा है—

न भुंक्ते केवली न स्त्रीमोक्षमेति दिगम्बराः।
प्राहुरेषामयं भेदो महान् श्वेताम्बरैः सह॥

इसका अर्थ यह है कि दिगम्बर केवलीका कवलाहार करना और स्त्रीका मोक्ष होना नहीं मानते हैं। बस, श्वेताम्बरोंके साथ उनका यही बड़ा भारी भेद है। परन्तु स्वामीजी इसका यह अपूर्व अर्थ करते हैं—“ दिगंबरोंका श्वेताम्बरोंके साथ इतना ही भेद है कि **दिगम्बर लोग स्त्रीसंसर्ग नहीं करते और श्वेताम्बर करते हैं। इत्यादि बातोंसे मोक्षको प्राप्त होते हैं** । यह इनके साधुओंका भेद है। ” (सत्यार्थप्रकाश पृ. ४७७)। पुस्तकमें स्वामीजीके पाण्डित्यके इस तरहके बीसों उदाहरण दिये हैं। कुछ उदाहरण

ऐसे भी हैं जिनसे मालूम होता है कि स्वामीजीने जैनमतके प्रति द्वेष बढानेकी पवित्र इच्छासे भी बहुतसी बातें लिखी हैं। एक जगह आप लिखते हैं कि " पाखण्डोंका मूल ही जैनमत है। " और एक जगह कहा है " सबसे वैर विरोध निंदा ईर्षा, आदि दुष्ट कर्मरूप सागरमें डुबानेवाला जैनमार्ग है।" " अच्छे पुरुषको जैनियोंका सग करना वा उनको देखना भी बुरा है। " स्वामीजी जैनमतके इतने ज़बर्दस्त जानकार थे कि उसके स्याद्वाद या सप्तभंगी नयको बौद्धधर्ममें भी मान्य बतलाते हैं। स्याद्वादका अर्थ भी बड़ा ऊँटपटाँग किया है। हम आशा करते हैं कि इस पुस्तकको पढकर आर्यसमाजके वे सज्जन जो स्वामीजीको सर्वथा निर्भ्रान्त, परम विद्वान् और पूर्वकालके ऋषियोंसे भी बढकर महर्षि मानते हैं बहुत कुछ ठिकाने पर आ जावेंगे। अपने पक्षका मण्डन करनेके लिए दूसरे धर्मके सिद्धान्तोंका खण्डन करना सज्जनानुमोदित अवश्य है; परन्तु खण्डनका अर्थ यह नहीं है कि अपने पक्षके अन्धाधुन्ध जोशमें आकर दूसरे धर्मको गालियाँ भी दे डालना और उसके सिद्धान्तोंको समझे बिना ही उसे बुरा भला कह डालना। स्वामीजीकी खण्डनशैली इस पुस्तकसे इसी प्रकार-की मालूम होती है। समाजी विद्वानोंको अपने गुरुकी इस शैलीका त्याग कर देना चाहिए।

आप्तपरीक्षाका भावानुवाद। लेखक, पं० उमरावसिंहजी जैन, अध्यापक स्याद्वादपाठशाला काशी। मू० पाँच आने। तत्त्वार्थ-सूत्रके 'मोक्षमार्गस्य नेतारं' आदि श्लोकपर स्वामी विद्यानन्दने आप्त-

परीक्षा नामका लगभग १२९ श्लोकोंका ग्रन्थ बनाया है। इसमें उक्त मंगलाचरणके श्लोककी विस्तृत व्याख्या की गई है और कपिल, बौद्ध आदि आप्तोंका अनाप्त ठहराकर जिनदेवको वास्तविक आप्त ठहराया है। यह न्यायका ग्रन्थ है। पं० उमरावसिंहजीने अच्छा किया जो इसे हिन्दी जाननेवालोंके लिए भी उपयोगी बना दिया। हम न्यायशास्त्र जानते नहीं हैं, इस लिए इस समालोचनाके अधिकारी नहीं, तो भी इतना कह सकते हैं कि अनुवाद साधारणतया अच्छा हुआ है। यदि मूलग्रन्थकर्ताके आशय और भी सरलतासे समझाये जाते, तो अच्छा होता। अनुवादमें कहीं कहीं भूलें भी रह गई हैं। दूसरे श्लोकके ' शास्त्रादौ मुनिपुङ्गवाः ' का अर्थ ' तत्त्वार्थशास्त्रकी आदिमें उमास्वामिने ' होना चाहिए। चौथे श्लोक, और १२३ वें श्लोकके अर्थमें भी इसी प्रकारकी भूल है। इन श्लोकोंका अर्थ हमने गताङ्कके इतिहासप्रसङ्गमें विस्तारसे किया है।

ब्रह्मचर्यदिग्दर्शन—लेखक, जैनमुनि ज्ञानचन्द्रजी। प्रकाशक, लाला फग्गूमल्ल जंगीमल्ल गुरुमहल, अमृतसर। मूल्य सदाचार। अनेक संस्कृत श्लोकों और प्राकृत गाथाओंको देकर लेखक महाशयने पुरानी पद्धतिसे ब्रह्मचर्यकी महिमा गाई है। भाषा अच्छी है। प्रकाशकोंसे मुफ्त मिल सकती है।

श्रीतीर्थक्षेत्रकुल्पाक— लेखक, वादी(?)मानमर्दनकार, भिषग्रत्न श्वेताम्बरजैनधर्मोपदेशक श्रीमान् बालचन्द्राचार्यजी महाराज (?)। प्रकाशक नेमीचन्द्रजी गोलेच्छा, रेसीडेंसी बाजार,

दक्षिण हैदराबाद । दाक्षिण हैदराबादसे ४९ मील ईशानकी ओर कुल्पाक नामका कस्बा है । वह सिकन्दराबादसे बिजबाड़ेको जानेवाली लाइनके आलेर नामक स्टेशनसे तीन मील दूर है । वहाँ पर एक विशाल मन्दिर है जिसमें ऋषभदेवकी ढाई हाथ ऊँची प्रतिमा है । इस प्रतिमाको माणिक्यस्वामी भी कहते हैं । इस प्रतिमाका बड़ा भारी माहात्म्य है और इस कारण श्वेताम्बर सम्प्रदायमें यह पूज्य तीर्थ माना जाता है। इसी तीर्थको श्वेताम्बर सिद्ध करनेके लिए और इसकी ख्याति बढ़ानेके लिए यह पुस्तक लिखी गई है । लेखक महाशयका कथन है कि इस तीर्थको शङ्करगण नामके राजाने विक्रम संवत् ६८० के लगभग स्थापित किया था । परन्तु इसके लिए उन्होंने जो ऐतिहासिक प्रमाण दिये हैं वे १४ वीं शताब्दिके बादके हैं । वहाँ पर लगभग १९ शिलालेख हैं जिनमें एक वि० सं० १३३३ का है जो पूरा नहीं पढ़ा जाता है और शेष सब १४५० के पछिके हैं । जिनप्रभसूरिके 'तीर्थकल्प' नामक ग्रन्थमें इस तीर्थकी उत्पत्ति आदिका जो वर्णन दिया है वह भी विक्रमकी चौदहवीं शताब्दिका लिखा हुआ है । वह वर्णन बड़ा ही आश्चर्यजनक अतिरंजित और असंभव है । लिखा है कि "भरतचक्रवर्तीने अयोध्यामें मरकतमणिकी एक ऋषभदेवकी प्रतिमा प्रतिष्ठित की, कुछ समयके बाद विद्याधर उसे वेताढ्य पर्वत पर ले आये, वहाँ उसे नारदजीने देखा और उसका संवाद देवाधिराज इन्द्रको दिया, तब इन्द्रने उसे अपने विमानमें मँगवा लिया । नमिनाथके समय तक वह वहीं देवों द्वारा पूजी गई । इसके बाद मन्दोदरीने उसकी

पूजा करनेकी इच्छा की और इस हेतु अन्न जलका त्याग कर दिया। तब रावणने इन्द्रका आराधन किया। इन्द्रने प्रसन्न होकर प्रतिमा दे दी। मन्दोदरी प्रतिमाको बहुत समय तक पूजती रही, पीछे उसने उसे समुद्रमें रख दी। वहाँ देव उसे हजारों वर्षतक पूजते रहे। विक्रमसंवत् ६८० में कल्याण नगरमें शंकर नामका राजा राज्य करता था। उसके यहाँ एक व्यन्तरने महामारी रोग फैलाया। राजा चिन्तातुर था कि इतनेमें पद्मावतीने उसे स्वप्नमें कहा कि समुद्रमेंसे ऋषभ भगवान्‌की प्रतिमा लाकर पूजा करो, तो रोग शान्त हो जायगा। राजाने समुद्राधिपति देवका आराधन किया और उसने उक्त प्रतिमा दे दी। प्रतिमा राजाके पीछे पीछे शकट द्वारा आप ही आप चलने लगी। मार्गमें एक जगह राजाने पीछेकी ओर देख दिया तो प्रतिमा ठहर गई; तब राजाने वहीं एक मन्दिर बनवाकर उस प्रतिमाको प्रतिष्ठित कर दिया। प्रजाका रोग शान्त हो गया। पहले यह प्रतिमा अन्तरिक्षमें स्थित या अधर थी, परन्तु उस देशमें म्लेच्छोंका प्रवेश होनेसे वह सिंहासन पर जम गई! इस प्रतिमाको देवलोकसे मर्त्यलोकमें आये ११८०९०५ वर्ष हुए!! इस प्रतिमाके स्नानजलसे भीगी हुई मिट्टीको आँखमें आँजनेसे अन्धे सूझते हो जाते हैं, चैत्यके मूल मंडपमें केसरकी वर्षा होती है, जिससे यात्रियोंके वस्त्र कुछ कुछ रंग जाते हैं, प्रतिमाके सामने आते ही साँपका जहर दूर हो जाता है! इत्यादि।" सोमधर्मगणिके बनाये हुए 'उपदेश-सप्तति' नामक ग्रन्थमें भी कुल्पाकतीर्थके स्थापन होनेका वृतान्त तीर्थ-

कल्पके ही समान लिखा है और उसमें भी शंकर राजाको स्थापक बतलाया है; परन्तु यह ग्रन्थ तीर्थकल्पसे भी पीछेका अर्थात् वि० संवत् १९०३ का बना हुआ है । यह संभव है कि जो शंकरगण नामका राजा विक्रमकी सातवीं शताब्दिमें हुआ है, वही कुल्पाक-तीर्थका स्थापक हो और शायद वह जैन भी हो; परन्तु लेखक महाशय इसके लिए कोई यथेष्ट प्रमाण नहीं दे सके हैं । आपने यह तर्क भी उठाया है कि 'शंकर राजा किस जैन सम्प्रदायका था ?' और स्वयं ही उत्तर दे दिया है कि 'श्वेताम्बर सम्प्रदायका ।' परन्तु इसके लिए भी कोई विश्वस्त प्रमाण नहीं दिया गया है । कुल्पाक-तीर्थकी प्रतिमायें शंकरराजाकी बनवाई हैं, इसका जब कोई प्रमाण नहीं है तब वहाँकी प्रतिमाओंके श्वेताम्बर होनेसे राजाको श्वेताम्बरत्व कैसे आ जायगा, यह समझमें नहीं आता । शंकर राजा श्वेताम्बर सिद्ध हो जाय, इसमें हमारी कोई हानि नहीं; परन्तु वह होना चाहिए प्रमाणसे । दक्षिण कर्नाटकमें जितने जैन राजा हुए हैं वे सब दिगम्बर सम्प्रदायके अनुयायी हुए हैं; श्वेताम्बर सम्प्रदायके उस तरफ़ प्रचलित होनेका कोई उदाहरण नहीं मिलता है । ऐसी दशामें शंकरके श्वेताम्बर होनेमें विशेष सन्देह है जिसके समाधान होनेकी बहुत आवश्यकता है । विज्जलराजाको लेखक महाशयने चालुक्य वंशीय लिखा है; परन्तु वास्तवमें वह कलचुरि या हैहयवंशीय था और चालुक्य 'तैल'के राज्यको छीनकर कल्याणके सिंहासन पर बैठा था । बसवपुराण और चैन्न बसवपुराणके पढ़नेसे निश्चय हो सकता है कि विज्जल श्वेताम्बर था या दि-

गम्बर। पृष्ठ ३७ में लेखकने लिखा है कि " जितनी प्रतिमायें इस देशमें अर्ध पद्मासनस्थ हैं वे सभी श्वेताम्बरोंकी हैं। " बलिहारी! इस नियमसे तो आप दिगम्बरोंकी हजारों प्रतिमाओंको अपनी बनालेंगे। क्योंकि दिगम्बर मन्दिरोंमें भी अर्ध पद्मासनस्थ प्रतिमाओंकी कमी नहीं है। पुस्तकके लिखनेमें यतिजी महाशयने इसमें सन्देह नहीं कि परिश्रम किया है; परन्तु हमारी समझमें आपके लिखनेका ढंग अच्छा नहीं है। आप इतिहास तो लिखते हैं; परन्तु आग्रह और पक्षपातको साथ रखते हैं। दिगम्बरसम्प्रदाय पर तो आपकी बड़ी कड़ी दृष्टि रहती है। इसके निदर्शनस्वरूप आप कुछ पुस्तकें भी लिख चुके हैं। हमारी प्रार्थना है कि आप श्वेताम्बर-दिगम्बरके पक्षको छोड़कर शुद्ध इतिहासकी आलोचना करें तो अच्छा हो। इतिहासप्रेमियोंको यह पुस्तक अवश्य पढ़ना चाहिए। पुस्तक पर मूल्य नहीं लिखा।

जीवनचरित्र आचार्य श्रीमोतीरामजीका। लेखक, जैनमुनि पं० ज्ञानचन्द्रजी। प्रकाशक, लाला कुन्दनलाल चिरंजीलाल जैन मु० भुल्लरहेड़ी, नाभा स्टेट। स्थानकवासी जैनसम्प्रदायमें आचार्य मोतीरामजी नामके एक साधु हो गये हैं। वे अच्छे क्रियावान् और सुयोग्य उपदेशक थे। संवत् १८८० में उनका जन्म हुआ था और १९५८ में देहावसान। इस ६० पृष्ठकी पुस्तकमें उन्हींका जीवनचारित पुरानी पद्धतिसे लिखा गया है। पुस्तकका अधिकांश धर्मके स्वरूप और उपदेशसे भरा हुआ है, चरितका अंश बहुत ही थोड़ा है। महात्माओंके चरितोंमें उनके अन्तरंग

और बहिरंग भावोंका तथा आचरणोंका सूक्ष्म निरीक्षण होना चाहिए। पुस्तककी हिन्दी अच्छी है । साधारण श्रावकवर्ग इससे शिक्षा प्राप्त कर सकते हैं। आधा आनेका टिकट भेजनेसे "लाला फत्तूराम जैन, सम्पादक जैनोदय, लुधियाना" इस पुस्तकको मुफ्त भेजते हैं।

परीक्षामुख। लेखक और प्रकाशक, पं० घनश्यामदास जैन, धर्माध्यापक स्याद्वादविद्यालय, काशी। मू० छह आने। आचार्य माणिक्यनन्दि स्वामीके प्रसिद्ध न्यायग्रन्थ परीक्षामुखका यह भाषानुवाद है । भाषा और भी सहज लिखी जाती और विषय और भी समझाकर लिखा जाता तो अच्छा होता, पाठकोंका अधिक उपकार होता। आप्तपरीक्षाकी अपेक्षा इसकी छपाई और कागज़ दोनों अच्छे हैं । स्वाध्यायप्रेमियोंको इसकी एक एक प्रति अवश्य मँगा लेना चाहिए और प्रकाशकके उत्साहको बढ़ाना चाहिए।

हिन्दी शिक्षा, पहला भाग। प्रकाशक, मोहकमलाल मैनेजर, जैनशिक्षाप्रचारक कार्यालय, कूचा सेठ, देहली । मूल्य एक आना। जैनविद्यार्थियोंको हिन्दीकी शिक्षा देनेके अभिप्रायसे यह पाठ्य पुस्तक लिखी गई है। इसमें छोटे छोटे १७ पाठ हैं जिनमें तीन पाठ कविताके हैं । पाठ प्रायः सब ही अच्छे और शिक्षाप्रद हैं। भाषा भी साधारतः अच्छी है । पुस्तक सचित्र है। जो चित्र लीथोके छपे हुए हर रंगके हैं वे यदि न दिये जाते तो हमारी समझमें पुस्तककी शोभा उलटी बढ़ जाती।

उपदेशरत्नमाला। अनुवादक, विट्ठल विष्णु उर्फ रावजी भावे। प्रकाशक, सेठ मोतीलाल रावजी गांधी, शोलापुर। मूल्य

आठ आने। यह उपदेशरत्नमाला नामक हिन्दी पुस्तकका भाषान्तर है, जिसकी समालोचना हितैषीमें पहले हो चुकी है।

समयसार नाटक। प्रकाशक, जैन औद्योगिक कार्यालय, चन्दावाड़ी, बम्बई। मूल्य आठ आना। कविवर बनारसीदासजीके समयसारकी यह नई आवृत्ति है। पुस्तकमें अशुद्धियोंकी भरमार है। संशोधनकी ओर ध्यान देना प्रकाशकका सबसे मुख्य कर्तव्य था। छपाई वगैरह अच्छी है।

सागारधर्मामृत (पूर्वार्द्ध)। अनुवादक, पं० लालारामजी अध्यापक, इन्दौर। प्रकाशक, शा मूलचन्द कसनदासजी कापड़िया, सूरत। मूल्य १।। रु०। कापड़ियाजीने अब तक जितने ग्रन्थ प्रकाशित किये हैं उनमें यही एक ग्रन्थ महत्त्वका निकला है। पं० आशाधार बड़े नामी विद्वान् थे। उन्होंने श्रावकाचारके ग्रन्थोंका अच्छी तरह मनन करके यह ग्रन्थ लिखा है। इसमें अनेक बातें ऐसी हैं जो दूसरे ग्रन्थोंमें नहीं मिलतीं। अनुवादकी भाषा सरल और प्रायः शुद्ध है।

स्थानकवासी जैन कान्फरेंस प्रकाशका खास अंक—स्थानकवासी जैन कान्फरेंसकी ओरसे एक साप्ताहिक पत्र निकलता है। पत्रकी मुख्य भाषा गुजराती है। कई लेख हिन्दीमें भी रहते हैं। डा० धारसी गुलाबचन्द संघाणी इसके सम्पादक हैं। वार्षिक मूल्य ढाई रुपया है। उसका यह खास अंक पर्युषणपर्वके उपलक्ष्यमें निकला है। जैनमित्रके आकारके लगभग १७५ पृष्ठ हैं। इसमें हिन्दीके २३, अँगरेजीके ९, मागधीका १ और गुजरातीके ६९

गद्यपद्य लेख और लगभग ५० चित्र हैं। इसके तैयार करानेमें ९००) नौ सौ रुपया खर्च हुए हैं । प्रत्येक कापीकी लागत ॥।≈) है, परन्तु ग्राहकोंको मुफ्तमें और सर्वसाधारणको यह छह आनेमें दिया जाता है । सम्पादक महाशयका यह उद्योग और परिश्रम प्रशंसनीय है। पाठकोंको उनका उत्साह बढ़ाना चाहिए। कई लेख पढ़ने योग्य हैं। हितैषीके पाठकोंके परिचित लाला मुंशीलालजी एम, ए, बाबू चेतनदासजी बी. ए. और बाबू जुगमन्दरलालजी जजके भी इसमें चार लेख हैं । दो लेख किसी 'सत्यशोधक' नामधारी महाशयके हैं जो जैनसिद्धान्तभास्करके चन्द्रगुप्त और नग्नदार्शनिक साधु नामक लेखोंकी आलोचनास्वरूप हैं। यद्यपि लेखकके विचार कट्टर श्वेताम्बरी जान पड़ते हैं और उन्होंने जगह जगह दिगम्बर सम्प्रदाय पर अनुचित तथा अनावश्यक आक्षेप किये हैं तो भी उनके लेखोंमें बहुत कुछ तथ्य है । भास्कर सम्पादकको उनपर विचार करना चाहिए। चित्र प्रायः बने-ठने सजे-सजाये सेठ लोगोंके हैं जिनमें सादगीका नाम नहीं है। अच्छा है, जब तक इन लोगोंमें शिक्षाका प्रेम नहीं है, तबतक इनके चित्रादि प्रकाशित करके ही इनसे कुछ काम लिया जाय । कुछ चित्र ऐसे शिक्षित और सादे पुरुषोंके भी हैं जो इस सेठमय चित्रमालामें ग्रथित देखकर आपको शायद ही सौभाग्यशाली समझें ।

हिन्दीहितैषी कार्यालय, देवरी (सागर) की नीचे लिखी दो पुस्तकें हमें समालोचनार्थ प्राप्त हुई हैं:—

आदर्शचरितावली—लेखक, पं० शिवसहाय चतुर्वेदी । पृष्ठ संख्या ८० । मूल्य पाँच आने । इस पुस्तकमें जनरल बूथ, बुकर

टी. वाशिंगटन, गारफील्ड, लिंकन, विलसन, विद्यासागर, राणा प्रताप, रानडे, मालवीय, गाँधी, गोखले, राजा विनयकृष्ण, भरत, दधीचि, शिबि, इन १९ देशी विदेशी महापुरुषोंके शिक्षाप्रद चरित संग्रह किये गये हैं। पुस्तककी भाषा अच्छी और सरस है। ऐसी पुस्तकोंका जितना अधिक प्रचार हो, उतना अच्छा।

भारतीय नीतिकथा—महाभारत कथाओंका भाण्डार है। आदि पर्वसे उद्योग पर्वतक उसमें जितनी नीतिपूर्ण कथायें हैं, इस पुस्तकमें उन सबका सार आज कलके ढंगसे संकलन किया गया है। भीष्मकी पितृभक्ति और इन्द्रियदमन, अर्जुनकी एकाग्रता, जुआका भयंकर परिणाम, धर्मराजकी जीवदया आदि कथायें बड़ी अच्छी और शिक्षाप्रद हैं। इसके लेखक भी पूर्वोक्त पं० शिवसहायजी चतुर्वेदी हैं। मूल्य इसका बारह आने है। दोनों पुस्तकें उक्त कार्यालयसे मँगाना चाहिए।

वीराङ्गना अर्थात्, रूपनगरकी राजकन्या चञ्चलकुमारीका सच्चा ऐतिहासिक वृत्तान्त। रचयिता व प्रकाशक, ज्ञानचन्द्र, बटाला (गुरुदासपुर)। मूल्य छह आने। राजपूतानेमें रूपनगर एक छोटासा राज्य था। बादशाह औरंगजेबने रूपनगरके राजाकी कन्या चञ्चलकुमारीसे शादी करनी चाही। राजा तो राजी हो गया, परन्तु चञ्चल राजी न हुई। उसने अपनी रक्षाके लिए महाराणा राजसिंहकी सेवामें पत्र भेजकर उन्हें उत्तेजित किया और तब राजसिंहने बादशाहकी सेनासे लड़कर चंचलकुमारीको छुड़ा लिया और उसके साथ स्वयं विवाह कर लिया। इस ऐतिहासिक घटनाको

लेकर स्वर्गीय बाबू बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्यायने 'राजसिंह' नामक उपन्यासकी रचना की है। यह बतलानेकी आवश्यकता नहीं कि ऐसे उपन्यासोंमें लेखक दो चार प्रधान ऐतिहासिक घटनाओंकी रक्षा करके शेष सारी बातें अपनी कल्पनासे लिखता है। अपनी रचनाको सरस, प्रभावोत्पादक बनानेके लिए वह नये नये पात्रोंकी स्थानोंकी, प्रसङ्गोंकी कल्पना करनेमें ज़रा भी कुण्ठित नहीं होता है। तदनुसार 'राजसिंह' में भी कल्पनाप्रसूत बातोंकी कमी नहीं है। यह पुस्तक उक्त उपन्यासको ही संक्षिप्त करके लिखी गई है; परन्तु लेखक महाशयने इसे 'सच्चा ऐतिहासिक वृत्तान्त' समझ लिया है और यह लिखनेकी भी आवश्यकता नहीं समझी है कि 'राजसिंह' के आधारसे इसकी रचनाकी गई है! पहला भ्रम है और दूसरा अपराध है। आशा है कि लेखक महाशय आगे इन गल्तियोंको सुधार लेंगे। कोई भी 'ऐतिहासिक वृत्तान्त' और सो भी 'सच्चा' उपन्यासोंपरसे नहीं लिखा जा सकता, इसके लिए टाड राजस्थान जैसे इतिहासग्रन्थ ही उपयोगी हो सकते हैं। पुस्तक अच्छी, देशाभिमानको जागृत करनेवाली, और शिक्षाप्रद है; भाषा भी बुरी नहीं है। स्त्रियोंको खास तौरसे पढ़ना चाहिए।

शारदाविनोद—यह एक मासिकपत्र है। शारदाभवन पुस्तकालय, दीक्षितपुरा जबलपुरसे प्रकाशित होता है। हितैषीके साइजके ५० पृष्ठ रहते हैं। वार्षिक मूल्य डेढ़ रुपया है। अबतक इसके तीन अंक निकल चुके हैं। इसमें छोटी छोटी मनोरंजक और शिक्षाप्रद गल्पें प्रकाशित हुआ करती हैं। कोई कोई गल्प बहुत अच्छी

होती है। हिन्दीमें अपने ढंगका यह एक ही पत्र है, पर इसका बहिरंग आकर्षक नहीं है। छपाई सफ़ाईमें उन्नति करनेकी आवश्यकता है।

चुटकुले। लेखक, श्रीयुत शर्मा। प्रकाशक, एंग्लो ओरियंटल प्रेस, लखनऊ। मूल्य पाँच आने। अच्छी पुस्तक है। इसमें २०५ चुटकुलोंका संग्रह है। चुटकुले केवल हँसानेवाले या जी खुश करनेवाले ही नहीं हैं, उनमें अच्छी अच्छी शिक्षायें भी भरी हुई हैं। असभ्यता या अश्लीलताकी इसमें गन्ध भी नहीं है जिसके लिए मनोविनोदकी पुस्तकें बदनाम हैं। सामाजिक सुधारके उद्देश्यसे कहीं कहीं कटाक्ष भी किये गये हैं जो विशेष उग्र नहीं हैं। चुटकुलोंमें बड़ी भारी विशेषता यह है कि वे प्रायः लेखकके निजके हैं और बीरबलविनोद आदिसे उड़ाये हुए नहीं हैं। ये सब पहले नागरीप्रचारक और अवधवासीमें छप चुके थे, अब पुस्तकाकार प्रकाशित किये गये हैं। विनोदप्रिय पाठकोंको इस पुस्तकका संग्रह अवश्य करना चाहिए।

उत्तररामचरित नाटक। अनुवादक, पं० सत्यनारायण शर्मा, कविरत्न। प्रकाशक, भारतीभवन, फीरोजाबाद (आगरा)। मूल्य बारह आने। संस्कृतसाहित्यमें महाकवि भवभूति अपनी कीर्ति अमर कर गये हैं। कालिदासके बाद काव्यरचनामें भवभूतिका ही नाम लिया जाता है। उनका उत्तररामचरित बहुत ही प्रसिद्ध नाटक है। यह पुरुषोत्तम रामचन्द्रजीके राज्यारूढ होनेके बादके कथानकको लेकर रचा गया है। इसमें करुणरसकी प्रधानता है।

इसके तीसरे अंकको पढ़कर तो पाषाणहृदय भी द्रवित हो जाता है। जहाँतक हम जानते हैं, अभी तक हिन्दीमें इसका कोई अनुवाद नहीं हुआ था। पं० सत्यनारायणजीने यह सुन्दर अनुवाद करके बड़ा काम किया। अनुवाद गद्यका गद्यमें और पद्यका पद्यमें किया गया है। पद्यरचना व्रजभाषामें की गई है जिस पर कविरत्न महाशयका पूरा अधिकार जान पड़ता है। हिन्दीके शब्दोंको तोड़मरोड़ करके जिस व्रजभाषाका उद्धार आजकलके बहुतसे कवि कर रहे हैं उस व्रजभाषासे आपकी व्रजभाषा भिन्न है। आपकी रचना शुद्ध व्रजभाषामें है। रचना बड़ी ही प्यारी और भावपूर्ण है। एक नमूना लीजिए। लक्ष्मणजी रामचन्द्रजीको शोकाकुलित देखकर कहते हैं:—

तुव नयन सन टपकत टपाटप यह लगी असुअन झरी,
बिखरी खरी भुअपै परी जनु टूट मुतियनकी लरी।
रोकत यदपि बलसों विरहकी वेदना उर तउ भरै,
जब अधर नासापुट कँपहिं अनुमानसों जानी परै॥

कविजीका गद्यानुवाद उतना अच्छा नहीं है जितना कि पद्यानुवाद है। बहुत कम लोग ऐसा भावपूर्ण पद्यानुवाद कर सकते हैं। पर हमें आशा नहीं कि वर्तमान खड़ी-बोली-पूर्ण हिन्दी संसारमें कविरत्न महाशयके परिश्रमका जितना चाहिए उतना आदर होगा। आजकलके शिक्षितोंके लिए अब व्रजभाषा एक अपरिचित भाषा होगई है—खास तौरसे अध्ययन किये बिना उनके लिए उसका समझना कठिन है। कविरत्न महाशयने व्रजभाषाकी रचनामें जो

परिश्रम किया है यदि वही परिश्रम खड़ी बोलीकी रचनामें करते तो हिन्दीभाषाभाषियोंका और भी अधिक उपकार होता। पुस्तकके प्रारंभमें २९ पृष्ठकी विस्तृत भूमिका है जिसमें भवभूति, उनकी रचना, और इस नाटककी विशेषताओंका विवेचन किया गया है। भूमिकाके पढ़नेसे भवभूतिके और उनके ग्रन्थोंके सम्बन्धमें अनेक जानने योग्य बातोंका ज्ञान होता है। पुस्तक सब तरहसे अच्छी और संग्रहणीय है। साहित्यप्रेमियोंको इसकी एक एक प्रति मँगाकर प्रकाशकोंके उत्साहको बढ़ाना चाहिए।

आत्मतत्त्वप्रकाश। अनुवादक, पं० ज्वालादत्त शर्मा, किसरौल (मुरादाबाद)। प्रकाशक, लाला गणेशीलाल लक्ष्मीनारायण मुरादाबाद। यह पुस्तक महामहोपाध्याय डा० सतीशचन्द्र विद्याभूषण एम. ए., पी. एच. डी. के एक बंगला निबन्धका अनुवाद है। पुस्तक बड़े महत्त्वकी है। प्रारंभके ३४ पृष्ठोंमें भारतीय दर्शनशास्त्रोंका इतिहास है जो बड़ी खोजसे लिखा गया है और फिर आत्मा, जन्मांतरवाद, ईश्वर आदिके सम्बन्धमें भारतीय दर्शन शास्त्रोंके सिद्धान्त लिखे गये हैं। विद्वानोंको ऐसी पुस्तकोंका अवलोकन अवश्य करना चाहिए। मूल्य पुस्तकपर लिखा नहीं, लगभग चार आने होगा।

फिजी द्वीपमें मेरे इक्कीस वर्ष। लेखक, पं० तोताराम सनाढ्य। प्रकाशक, भारती भवन, फीरोजाबाद (आगरा)। मूल्य छह आने। लेखक महाशयने इसमें आपबीती कहानी लिखी है। आप आरकाटियोंके हाथमें पड़कर जबर्दस्ती फिजीद्वीपमें भेज दिये गये

थे । कुली बनकर वहाँ आपको २१ वर्ष तक रहना पड़ा और अगणित यातनायें सहनी पड़ीं । आपको और आपके साथी दूसरे भारतवासियोंको वहाँ जो असह्य दुःख दिये गये थे, उनका इस पुस्तकमें बड़ा ही रोमाञ्चकारी वर्णन है । प्रत्येक भारतवासीको इसका पाठ करके अपने भाइयोंको उन दुःखोंसे बचानेका यत्न करना चाहिए । फ़िजीद्वीपसम्बन्धी और भी अनेक जानने योग्य बातोंका इसमें उल्लेख किया गया है । ऐसी पुस्तकोंकी लाखोंकी संख्यामें छपकर वितरण होनेकी ज़रूरत है ।

मा और बच्चा । अनुवादक और प्रकाशक, म० गोवर्धन बी. ए. सम्पादक 'प्रह्लाद'. देहली । मूल्य आठ आने । यह 'एमिली' नामक फ्रेंच ग्रन्थके पहले खण्डका अँगरेज़ीपरसे किया हुआ अनुवाद है । पुस्तक बहुत ही अच्छे विचारोंसे परिपूर्ण है; परन्तु खेद है कि अनुवादकी भाषा ठीक नहीं । वाक्यरचना बड़ी ही गुट्ठल और अँगरेज़ी ढंगकी है । ऐसा मालूम होता है कि मूल पुस्तकका शब्दशः अनुवाद किया गया है । इस दोषके होनेपर भी हम अपने विचारशील पाठकोंसे इस पुस्तकके पढ़नेकी सिफारिश करते हैं । छोटे छोटे बच्चोंके पालनपोषण, शिक्षण, शरीररक्षण आदिके सम्बन्धमें उन्हें इस पुस्तकमें बड़ी ही अनोखी बातें मिलेंगीं ।

नवजीवन । यह एक मासिक पत्र है । पहले यह बनारससे पं० केशवदासजी शास्त्रीके द्वारा सम्पादित होकर निकलता था; परन्तु शास्त्रीजीके अमेरिका चले जानेसे बन्द हो गया था । अब इसे बाबू द्वारकाप्रसादजी (सेवक) ने अपने हाथमें लिया है और

बड़े उत्साह तथा परिश्रमसे सम्पादन करना शुरू किया है । अब तक इसके छह अंक निकल चुके हैं । आकार सरस्वतीके जैसा है, एक दो चित्र भी रहते हैं । यद्यपि सेवकजी आर्यसमाजी हैं, परन्तु उनके विचारोंमें अन्य समाजी भाइयों जैसी कट्टरता नहीं है । वे अपने पत्रमें सब प्रकारके अच्छे विचारोंको स्थान देते हैं । देश-हितकी ओर उनका विशेष लक्ष्य है । छट्ठे अंकमें श्रीयुक्त बाबू अर्जुनलालजी सेठी बी. ए. का चित्र प्रकाशित किया गया है । इसके पहलेके अंकोंमें भी सेठीजीके विषयमें कई नोट निकल चुके हैं । सम्पादक महाशय जैनधर्मसम्बन्धी लेखोंको भी प्रकाशित करनेकी इच्छा रखते हैं । 'मैनेजर, नवजीवन, सरस्वतीसदन, केम्प इन्दौर' के पतेसे पाँच आनेके टिकट भेजनेसे पत्रका नमूना मिल सकता है । वार्षिक मूल्य तीन रुपया है ।

नीचे लिखी पुस्तकें भी सादर स्वीकार की जाती हैं:—

१ सदाचारप्रश्नोत्तरी—बाबू नारायणप्रसाद अरोड़ा, कानपुर ।

२ नई रोशनीकी कुलदेवी—बी. पी. सिंघी, सिरोही (राजपूताना)

३ बालशिक्षा—दिगम्बर जैन आफिस, सूरत ।

४ रिपोर्ट सं० १९६७–७०—श्वेताम्बर जैन कान्फरेंस, बम्बई ।

५ रिपोर्ट (सन् १९१३–१४)—जैन बोर्डिंग स्कूल, रतलाम ।

६ द्विवार्षिक रिपोर्ट (सं० १९६८–६९)—जैनबालाश्रम, पालीताना ।

७ रिपोर्ट (१९१४–१५)—स्याद्वादमहाविद्यालय, काशी ।

८ रिपोर्ट (१९११-१९) श्राविकाश्रम, मुरादाबाद ।

९ अनित्यादिभावनास्वरूप—लेखक, मुनि प्रतापविजयजी । प्रकाशक, मानचन्द बेलचंद, गोपीपुरा, सूरत ।

१० बालबोध जैनधर्म मराठी ३ रा ४ था भाग—अनुवादक और प्रकाशक, रावजी सखाराम दोशी, शोलापुर ।

११ हिन्दी भक्तामर और प्राणप्रिय काव्य
१२ रूपसुन्दरी (गुजराती)
१३ श्राविका सुबोध (,,)
} प्रकाशक, मूलचन्द कशनदासजी कापड़िया, सूरत ।

१४ लघु अभिषेक—प्रकाशक, डाह्याभाई शिवलाल, करमसद (खेड़ा)

१५ हिन्दीजैन शिक्षा, द्वितीय भाग—लेखक और प्रकाशक, सेठ लक्ष्मीचन्दजी घीया, प्रतापगढ़ (मालवा) ।

१६ श्रीमदात्मानन्दजीका संक्षिप्त जीवन—प्रकाशक, आत्मानन्द जैनसभा, अम्बाला शहर ।

१७ रिपोर्ट (१९६९-७०) दिगम्बर जैनपाठशाला, कुंथलगिरी ।

विविध-प्रसङ्ग।

१ बालक भट्टारक और शेतवाल पंचोंका प्रयत्न।

गत अंकमें हमने लातूरके भट्टारककी गद्दीके सम्बन्धमें एक नोट लिखा था। उसके सम्बन्धमें शेतवाल समाजके एक प्रतिष्ठित सज्जन श्रीयुत नेमिनाथ अनन्तराज पांगलका पत्र हमारे पास आया है। वे लिखते हैं कि "आपने अपने नोटमें जो यह लिखा कि लातूरकी गद्दीपर एक बालक बिठा दिया गया है, सो ठीक नहीं है। वास्तविक बात यह है कि अपनेको 'पण्डित' कहलवानेवाले एक रामभाऊ नामक व्यक्तिने स्वर्गस्थ भट्टारक विशालकीर्तिजीके बाकायदा नियत हुए पंचोंकी सम्मति लिये बिना ही, केवल भोले लोगोंको ठगनेके लिए एक अज्ञान बालकको गद्दीपर बिठानेका फार्स किया है—बिठाया नहीं है। परन्तु यथार्थमें वह बालक और ब्रह्मचारी कहलानेवाले रामभाऊ न हमारे समाजके गुरु हैं और न उनमें गुरुके कोई लक्षण ही हैं। इन दोनोंको शेतवाल समाजका एक बहुत बड़ा भाग पूज्य माननेसे इंकार करता है और अब तो उन पर स्व० विशालकीर्ति भट्टारककी गद्दीके पंचोंने कोर्टमें मुकद्दमा भी दायर कर दिया है। सारांश, उक्त अज्ञान अशिक्षित लड़का हमारे समाजका भट्टारक नहीं है और हम उसे वैसा मानते भी नहीं हैं।" इसमें सन्देह नहीं कि गद्दीके पंचोंका प्रयत्न बहुत ही प्रशंसनीय है और हमें आशा है कि वे उसमें पूरी पूरी सफलता लाभ करेंगे। क्या हमारे गुजराती भाई

भी इन पंचोंका अनुकरण करेंगे और अपने प्रान्तके ऐसे ही भट्टारकों द्वारा लुटते हुए भोले भाइयोंकी रक्षा करनेका पुण्य सम्पादन करेंगे? यदि बाकायदा प्रयत्न किया जाय और कुछ प्रतिष्ठित पुरुष भी इस प्रयत्नमें योग देवें, तो जितने अयोग्य असदाचारी भट्टारक हैं वे सरकारकी आज्ञासे बहुत जल्दी निकलवा दिये जा सकते हैं। जिस तरह चोर और डकैतोंसे प्रजाकी रक्षा करना सरकारका कर्तव्य है उसी प्रकार धर्म-चोरों और ठगोंसे बचाना भी वह अपना कर्तव्य समझती है, इसमें ज़रा भी सन्देह नहीं है।

२ त्यागी मन्नालालजीकी मालकी पेटियाँ।

गत अंकमें हमने 'तेरहपंथियोंके भट्टारक' शीर्षक नोटमें पं० मूलचन्दजीके कथनानुसार लिखा था कि त्यागी मुन्नालालजीकी एक पेटीमें जिसे वे किसी गाँवके मन्दिरमें रख गये थे दो हज़ार रुपयेके नोट निकले। इस विषयमें जैनमित्रके दफ्तरमें छारोरा और मूंगावलीके पंचोंकी सहीसे दो पत्र आये हैं। मूंगावलीवाले लिखते हैं-"गत वैशाखवदी १२ को ऐलक पन्नालालजी मूंगावली आये थे। उन्होंने दूसरे दिन बाजारके मंदिरमें त्यागी मन्नालाल-जीकी रक्खी हुई पेटियाँ खुलवाईं। देखा तो ३ पेटियोंमें और ३ कनस्तरोंमें शास्त्र भरे हुए थे। एक पेटी कपड़ोंसे भरी हुई थी। २ कैंचियाँ, १ लोटा, २ पीतलके कमंडल, १ चंदोबा, २ कुरते चिकन और कश्मीराके, १ मच्छरदान, २ पिछौरा, २ मखमलके टुकड़े, रेशमी छींट २ गज, १ तकिया, १ पीतरकी पीछी, मोरके पंख २॥ सेर, १ चमचा, १ कटोरी, १ खुरजी, १ सदरी, १ कुरता, १ गामठीकी दुहर, ३ मलमलके टुकड़े, ३ लट्ठेके टुकड़े, घूमास १ हाथ,

४ मलमलके पिछौरा, १० लेम्पकी बत्तियाँ ९ गज, १० मोमबत्तियाँ, १ बहुत बढ़िया लालटेन, १० छटाया (?), १ छाता, कुछ फुटकर चीजें, इस तरह सामान निकला। इनकी पेटियाँ भेलसा, रतलाम, चँदेरी, चन्दरादिमें भी पड़ी हैं। एक जगह एक घड़ी १० रुपयेमें गिरवी रक्खी थी। इनका चारित्र हमारे देशमें सब अच्छी तरहसे जानते हैं। ये परदेशसे चीजें ला-लाकर अपने भाईको भेजते हैं। " छारोरावाले लिखते हैं—" यहाँ ऐलकजी वैशाखवदी ७ को पधारे। उन्होंने मुन्नालालजीकी पेटियाँ खुलवाईं। उसमें १ घड़ी आफिस क्लाक, ३ घड़ियाँ जर्मन सिलवरकी, १ घड़ी चाँदीकी, १ चशमा, १ लोटा, १३ पिछौरा, २ मच्छरदानी, ४ टुकड़े गजीके, २९ सुइयाँ, १० तागे गोटेके, २ डिब्बियाँ मोती वगैरहकी खाक, २ शीशी पौष्टिक दवाइयोंकी, २ चमचे, १ कमंडलु तांबेका, १ बालटी, १ बेलन, १ गठी (?), १ झारी, १ काच, १ खुरजी, केशर ९ तोला, १ सवरानी(?), १९ मलमलके पिछौरा, ४ साटनके चंदोबा, ४९॥)रुपये नक़द। ये सब चीजें दो पेटियोंमें थीं। शेष पाँच पेटियाँ शास्त्रोंसे भरी हुई थीं।" इन दोनों चिट्ठियोंमें लिखा है कि जैनहितैषीमें जो समाचार प्रकाशित हुआ है, वह असत्य है—सत्य तो यह है, जो हम लिखते हैं। इस पर हमारा निवेदन यह है कि पं० मूलचन्दजीने जो दो हज़ार रुपयेके नोटोंकी बात कही थी, संभव है कि उन्होंने बढ़ाके कही हो। वे स्वयं भी एक प्रकारके त्यागी हैं और भट्टारकके शिष्य हैं, इसलिए कुछ आश्चर्य नहीं जो अपने सहव्यवसायीको अधिक नीचा दिखलानेके लिए उन्होंने उक्त बात स्वयं ही गढ़ ली हो। परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि क्षुल्लक

मुन्नालालजीने अपने वेष और त्यागको रुपया कमानेका ही जरिया बंना रक्खा है । मूंगावली और छारौराकी पेटियोंके समान और न जाने कहाँ कहाँ उनकी पेटियाँ रक्खी होंगीं । उनमें दो हज़ारके नोट भले ही न हों; परन्तु माल तो दो हज़ारसे कमका न होगा । जब उक्त पेटियोंमें भरे हुए शास्त्र बेचे जावेंगे, तब क्षुल्लकजीके कुटुम्बका दरिद्र दूर हो जायगा ! आशा है कि हमारे भोलेभाई अब ऐसे त्यागी महात्माओंसे सावधान रहेंगे । इनके बाहरी आचरणको देखकर ही भक्तिगद्गद न हो जाना चाहिए, इनके भीतर भी टटोलना चाहिए कि क्या है ।

३ बिनैकया भाइयोंका प्रार्थनापत्र ।

गत मार्गशीर्षमें भोपाल स्टेटके बाड़ी मुकाममें एक बिम्बप्रतिष्ठा हुई थी । उसमें जैनहितैषिणी सभा नरसिंहपुरके कुछ उत्साही सभासद और पं० दीपचन्दजी परवार गये थे । उक्त प्रान्तमें अज्ञानान्धकार फैला हुआ है । हज़ारों आदमी ऐसे हैं जो यह नहीं जानते कि सभा क्या चीज़ है । इन सज्जनोंने किसी तरह सभा आदिका प्रबन्ध किया और चार दिनतक खूब व्याख्यान दिये । व्याख्यानोंका प्रभाव पड़ा और एक पाठशाला खोलनेके लिए २९०रु० वार्षिक चन्दा हो गया । एक दिनके व्याख्यानमें पं० दीपचन्दजीने कहा कि जैनधर्म जीवमात्रका धर्म है । नीच ऊँच आदि सभी उसको पालन कर सकते हैं । चाण्डालोंने भी इस धर्मको धारण करके स्वर्गप्राप्ति की है । इसलिए इसका प्रचार सर्वत्र करना चाहिए । इत्यादि । जिस दिन यह व्याख्यान हुआ उसी दिन वहाँके कुछ बिनैकया भाइयोंने एक प्रार्थनापत्र पण्डितजीके हाथमें दिया

जिसका अभिप्राय यहाँ प्रकट किया जाता है। आशा है कि इससे दस्साओंके धार्मिक अधिकार छीननेवाले बीसाओंका तथा हमारे परवार भाइयोंका हृदय थोड़ा बहुत अवश्य पसीजेगा;—

"मान्यवर पण्डितजी, आपका व्याख्यान सुनकर शान्ति मिली और आशा हुई कि आप हमारी प्रार्थनाको अवश्य सुनेंगे।

"हम लोग बिनैकया (दस्सा) हैं। किसी समय हमारे पुरखाओंसे कोई अनाचार बन गया होगा जिसका फल हम लोग कई पीढ़ियोंसे भोग रहे हैं। पर उस पापका अन्त अब तक नहीं आया है, इस लिए हमारे परवार भाई हमें मंदिरजीमें नहीं आने देते हैं और हम लोग पशुओंके समान बिना जिनदर्शन किये ही पेट भरते हैं। माना कि हमारे पुरखाओंने कोई अनाचार सेवन किया होगा; परन्तु क्या परवार भाइयोंमें सारे ही स्त्री पुरुष सीता और रामचन्द्रके तुल्य हैं? हम लोग ग़रीब हैं, हमारी ओर कोई बोलनेवाला नहीं; नहीं तो हम पचासों स्त्रीपुरुषोंके दुश्चरित्र सुना दें; पर वे धनी हैं और मन्दिरपर उनका पट्टा लिखा हुआ है, इसलिए उन्हें कौन रोक सकता है? क्या धर्मका न्याय यही है कि हम लोग तो अपने पुरखाओंके पापोंका प्रायश्चित्त भोगें और ये अपने ही अनाचारोंका फल न भोगें? अस्तु, हमें इनके कर्मोंसे कोई मतलब नहीं। हम न इनके साथ भोजन करनेको लालायित हैं और न इनके साथ बेटीव्यवहार ही करना चाहते हैं। हम तो सिर्फ भगवान्‌के दर्शन और पूजनका अधिकार चाहते हैं। आप बड़े हैं, पण्डित हैं, इन दोनों कामोंके करनेकी रोक टोक मिटवा दीजिए।

"आपकी दृष्टिमें हम पतित हैं, तो क्या काड़िया, लुहार, बढ़ई,

माली, काछी, चितेरा आदि जातियोंसे भी गिरे हुए हैं जो श्रीजीकी वेदीतक जाते हैं? ये लोग शूद्र हैं, पर हम लोग आपहीके खून हैं, एक ही पिताके सन्तान हैं और जब कि हम लोग अनाचार सेवन नहीं करते हैं तब उनसे अच्छे क्यों नहीं हैं जो निरन्तर व्यसनोंमें आसक्त रहकर भी मन्दिरोंमें आते जाते और जातिके अगुए कहलाते हैं? इतने पर भी यदि हम पतित हैं तो क्या पतितोंका प्रायश्चित्त नहीं होता है? क्या पतित पावन नहीं हो सकते हैं? यदि नहीं तो भील, चोर, चाण्डालादि शुभगतिको कैसे प्राप्त हो गये?

" यदि सचमुच ही अब हम पावन या शुद्ध नहीं हो सकते हैं, तो लाचारी है। आप हमें मत मिलाइए, जिनदेवका दर्शन पूजन मत करने दीजिए, परन्तु कृपाकरके यह तो बतला दीजिए कि हम पीर पैगम्बर, क्राइस्ट, बुद्ध, विष्णु, चण्डी, भवानी आदि किसकी पूजा करें और किस धर्मके उपासक बन जायँ, जिससे आपका नित्यका काँटा निकल जाय और हम कई हजार बिनैकयोंके निकल जानेसे आप लोग हलके हो जायँ, आपके धर्मकी उन्नति हो जाय।

" जब कुँअर दिग्विजयसिंहजी जैन हुए, तब सारा जैनसमाज आनन्दसे नृत्य करने लगा; परन्तु जब हमारे हजारों भाई जैनधर्मसे विमुख हो जायँगे, तब शायद किसीके कानोंपर जूँ भी न रेंगेगी। क्या उन्नतिकी उपासना इसीको कहते हैं कि एक नया जैन बनानेमें तो गजों ऊपर उछलें और हजारों जैनोंको अजैन बननेके सम्मुख देखकर एक आह भी मुँहसे न निकालें? स्थितिकरण अंगका स्वरूप क्या यही है कि गिरते हुएको एक और जोरका धक्का लगा देना?

" अन्तमें निवेदन है कि हमें इस पत्रका उत्तर अवश्य दिया जाय, जिससे हम लोग किसी ठिकानेसे लग जायँ। इस समय तो हमारी बड़ी ही दुर्दशा है। इधर आप लोग हमें पास नहीं आने देते हैं और उधर दूसरे लोग हमें जैन समझते हैं। इस तरह हम दोनों ओरसे धक्के खा रहे हैं। क्षमा कीजिए, हम लोगोंने जो इतना कहनेका साहस किया है, सो इसका कारण केवल हमारे शरीरमें होनेवाला आपके खूनका प्रवाह और पवित्र धर्मका प्रेम है।"

४ भारतकी दरिद्रता।

कुछ दिन पहले धूलियावाले सेठ गुलाबचन्दजीके व्याख्यानकी समालोचनामें सेठ हीराचन्द नेमीचन्दजीने सोने चाँदीकी आमद–रफ्तका हिसाब बतलाकर प्रकट किया था कि भारत दरिद्र नहीं, किन्तु धनी होता जा रहा है। सेठजीके इस बड़े भारी भ्रमको दूर करनेके लिए हमारे सुयोग्य मित्र श्रीयुत संशोधकजीने एक अर्थ-शास्त्र सम्बन्धी लेख लिखकर भेजा है जो अन्यत्र प्रकाशित किया जाता है। आशा है हमारे पाठक उसे ध्यानसे पढ़ेंगे और इस प्रश्नकी सब बाजुओंको अच्छी तरहसे समझ लेंगे। भारत पहले बहुत बड़ा धनी था, पर अब यहाँके लोगोंकी दशा दिन पर खराब होती जाती है। इस बातको श्रीमती एनी बिसेन्टने अपने 'इंग्लेंड और भारतवर्षके निकष्ट वर्ग' विषयक व्याख्यानमें स्पष्ट शब्दोंमें स्वीकार किया है। व्याख्यानका उक्त अंश हम सहयोगी प्रतापके अनुवादमेंसे यहाँ उद्धृत किये देते हैं:—

"एक मुसलमान सरदारके पांच मन जवाहिरात लेनेका उल्लेख भारतके इतिहासमें है। आज यह बात आपको पुराणोंकी कथा-

ओंकी तरह मालूम पड़ती है, लेकिन यह बात सच्ची है, उस समय हिंदुस्तान देश ऐसा ही सम्पत्तिवान् था। सत्रहवीं शताब्दिमें मुगल बादशाहोंने कुछ दीन दरिद्र यूरोपियन व्यापारियोंको शान्तिसे व्यापार करनेकी आज्ञा दी। उन्होंने व्यापार करते करते पहिले भूमि मोल ली और फिर गांव और नगरों पर कब्ज़ा किया। इस प्रकार युरोपके समस्त राष्ट्र हिन्दुस्तानकी सम्पत्तिके लिए झगड़ने लगे। व्यापारी कंपनियोंको राजाओंसे सनदें मिलीं और वे कंपनियां यहां आकर व्यापार करने लगीं। फ्रेंच और अंगरेज़ोंका आगमन हुआ, मिश्नरियोंने श्रीरामपुरमें कालेज स्थापित किया। इतने पर भी अठारहवीं शताब्दिके अर्द्ध भाग बीतनेतक हिंदुस्तान धनाढ्य था। बस, इसके बाद भारतकी लक्ष्मीकी अच्छी तरहसे लूट आरम्भ हो गई। अंगरेज़ोंकी सत्ताधीशतामें कम्पनी सरकारका राज्य चला और द्रव्यकी धारा इंगलैण्डकी ओर बह चली। उस समय ख़ैरियत इतनी ही थी कि हर बीसवें वर्ष कम्पनीको अपनी सनद बदलवानी पड़ती थी और पार्लिमेंट सभामें इस बातकी जांच होती थी कि भारतकी तात्कालिक दशा अच्छी है वा नहीं। इस जांचका परिणाम यह हुआ कि पार्लीमेंटको यह मालूम होगया कि भारत दिनों दिन ग़रीब होता जा रहा है और अन्तमें कंपनी सरकारके हाथसे राज्य निकल गया, तथापि आज निम्न समुदायकी दशा कैसी गिरी हुई है, इसे देखिए।

"यदि भारतके वृद्ध पितामह दादाभाई नवरोजीके विषयमें कहा जाय कि उन्होंने भारतकी दरिद्रताका ज्ञान प्राप्त करनेमें

अपनी सारी आयु बिता दी है; तो भी अत्युक्ति न होगी। दादा भाई कहते हैं कि यहांके हर मनुष्यके वार्षिक आयकी औसत बीस रुपये है। लार्ड क्रोमर इसे सत्ताइस बताते हैं। यदि क्रोमर साहबहीकी बात सत्य मान ली जाय, तो भी यह जो सत्ताइस रुपये प्रति मनुष्यकी एक वर्षकी आयके रक्खे गये हैं, उनमें मिलोंके मालिकों और बड़े बड़े व्यापारियोंकी आमदनी भी जुड़ी हुई है। किसानोंकी सच्ची स्थिति देखी जाय तो सालमें आठ मास उन्हें भोजन मिलता है। शेष चार महीने उन्हें महाजनोंसे क़र्ज़ उधार लेकर बिताने पड़ते हैं। यह बम्बई प्रदेशके कृषकोंकी दशा है और यह शोचनीय स्थिति दिनों दिन और ख़राब होती जा रही है। ”

५ बिना अन्नके पच्चीस दिनतक जीता रहा।

कई महीने हुए इटलीमें जो भूकम्प आया था उसके विषयमें बहुतसी कहानियां सुनी जाती हैं। इस विषयमें अभी एक नई बात मालूम हुई है। माइकल कैओलो Miecael caiolo नामका एक मनुष्य पच्चीस दिनोंतक अन्धकारमें भूखा पड़ रहनेके बाद जीता लौट आया है। उसका कहना है कि ज्योंही उसे कुछ धक्कासा लगा, वह समझ गया कि भूकम्प आरहा है। भागकर वह एक अस्तबलमें छिप रहा, परन्तु भूकम्पके वेगसे घर गिर गया और उसीके साथ अस्तबल भी ढल पड़ा। बेचारा कैओलो उसीके नीचे दब गया। उससे बाहर निकलनेको कहीं राह न मिली। विवश हो वहीं पच्चीस दिनोंतक अन्धेरेमें भूखा पड़ा रहा। परन्तु भाग्यवश एक नलके टूट जाने-

से उसके पास बहकर पानी आता रहा। वही पानी पीता था और सो रहता था। हिलने डोलनेकी उसे जगह न थी।

इतने काल तक वह कैसे जीता रहा? यदि हम अपना शरीर बिल्कुल स्थिर रक्खें, तनिक भी न हिलें डोलें तथा ऐसी जगहमें पड़े रहें जहां गरमी न घटे न बढ़े और पानी पीनेको मिलता जाय तो भोजनके न मिलनेपर भी हम बहुत दिनोंतक जीते रह सकते हैं। ऐसी दशामें शरीर अपने ही आधार पर जीता है। मनुष्य तथा और देह-धारियोंमें चर्बीका भाग अधिक होता है जो भूखे रहनेकी हालतमें खर्च होता है। इससे मांस, रुधिर, मज्जा और मस्तिष्कका पोषण होता रहता है; परन्तु शरीर दुर्बल होता जाता है, चर्बी कम होती है, चमड़ा सूख कर सख्त हो जाता है और दिल और दिमाग़ हलके होते जाते हैं। पहले दो तीन दिन तक भूख सताती है, फिर धीरे धीरे सुस्ती आती जाती है। यदि मनुष्य इसी तरह छोड़ दिया जाय तो बिना कष्टके कुछ दिनोंमें मर जाय। अनुकूल दशामें अन्न बिना मनुष्य साधारणतः चालीस दिनों तक जीता रह सकता है, यह तो पाश्चात्य विद्वानोंका मत है। भारतीय तपोधन ऋषि मुनि इससे कहीं अधिक काल तक अन्न बिना जीवन रक्षा करते हुए सुने गये हैं।—(विज्ञानसे)

६ मुकद्दमेवाज़ीका उपदेश।

जम्बूस्वामी मथुराके मेले पर अभी हाल ही दिगम्बरजैनतीर्थ-क्षेत्र कमेटीका अधिवेशन हुआ है। उसके सभापति महोदयने अपने व्याख्यानमें दिगम्बरजैनसमाजको खूब ही उत्तेजित किया है और कहा है कि तन—मन—धन न्योछावर करके मुकद्दमे लड़ना

चाहिए और प्रत्येक तीर्थपर अपने स्वत्वोंकी रक्षा करना चाहिए। जो लोग तीर्थोंके झगड़ोंको आपसमें निबटानेकी सम्मति देते हैं वे दिगम्बर धर्म तथा विधर्म (श्वेताम्बर) को एक करना चाहते हैं। मालूम नहीं ये लोग विधर्मियोंके सामने क्यों अपनी मनुष्यताको खोकर गिड़गिड़ाते हैं और अपनी दीनता दिखाते हैं। इत्यादि। बड़े अफसोसकी बात है कि जो लोग प्रतिवर्ष मुकद्दमेवाज़ीमें लाखों रुपयोंको पानीकी भाँति बहते देखकर, भाईभाईमें द्वेषकी वृद्धि होते देखकर, संघशक्तिका घात होते देखकर आपसमें निबटारा कर लेनेकी सम्मति देते हैं वे तो मनुष्यताको खोनेवाले समझे जायँ तथा साधारण जनताको उनके विरुद्ध भड़कानेके लिए दिगम्बर श्वेताम्बर सम्प्रदायको एक कर डालनेवाले करार दिये जायँ और जो देशका समाजका सर्वनाश करनेवाली मुकद्दमेवाज़ीके लिए उत्तेजन दिलावें वे मनुष्यश्रेष्ठ और परमधर्मात्मा बननेका दावा करें! यह कहा गया है कि श्वेताम्बरसमाज हमसे द्वेष करता है, हमारे न्याय्य स्वत्वोंकी छीनना चाहता है और आपसमें निबटारा करनेके लिए बिलकुल तैयार नहीं है, तब हम क्यों न मुकद्दमें लड़ें? संभव है कि इस कथनमें बहुत कुछ सत्यता हो; श्वेताम्बर समाजमें भी हमारे समाजके जैसे कट्टर धर्मात्माओंकी और धर्मान्धोंकी कमी नहीं है; परन्तु क्या इससे आपसमें निबटारा करनेका आन्दोलन या प्रस्ताव मनुष्यताको खोनेवाला हो गया, अथवा क्या कभी आपसमें निबटारा होना संभव ही नहीं है, ऐसा सिद्ध हो गया? इस विषयमें अभी हमें बहुत कुछ कहना है, जिसे स्थानाभावके कारण आगेके लिए रखना पड़ा।

जैनहितैषीका कायापलट ।

नये वर्षमें नया आकार, नया रूप, नई बात ।

इस अंकके साथ जैनहितैषीका वर्ष समाप्त होता है । अब आगामी वर्षमें हमारे ग्राहक इसे एक नये ही रूपमें और नये ही आकारमें देखेंगे । इसका साइज़ वर्तमान साइज़से दूना कर दिया जायगा । क़ागज़ बढ़िया लगेगा । पृष्ठसंख्या डेढ़गुनीसे भी अधिक कर दी जायगी और हो सका तो प्रत्येक अंकमें कुछ चित्र भी रहा करेंगे । कवर पेज बहुत ही सुन्दर और मनोरम होगा ।

लेखोंमें भी विशेषता होगी । प्रत्येक अंकमें सामाजिक, धार्मिक, ऐतिहासिक और नैतिक लेखोंके सिवाय शिक्षाप्रद उपन्यास, गल्पें, मनो-विनोद और महापुरुषोंके जीवनचरित भी रहा करेंगे। ऐसा कोई अंक न होगा जिसमें कोई जीवनचरित और उपन्यास न हो । स्त्रियोपयोगी लेखोंके लिखवानेका भी प्रबन्ध किया जायगा । कविताओंके लिए कई कविमहाशयोंने वचन दिया है । गरज यह कि हमने इसे जैन समाजका सर्वोत्कृष्ठ पत्र बनानेका विचार किया है और निश्चय किया है कि इसके द्वारा जैनसमाजको उन सब बातोंका ज्ञान कराया जाय जिनसे कि वह प्राय अज्ञान है और जिनसे केवल जैन-समाचारपत्रोंके पढ़नेवाले वंचित रहते हैं ।

ऐसे समयमें जब कि कागज़का भाव पहलेसे लगभग डेवढ़ा हो गया है और छपाई आदिके चार्ज भी बढ़े हुए हैं हम जो इस बहुव्यय-साध्य कामको करनेके लिए उत्साहित हो गये हैं, इसका कारण एक तो हमारे कई उत्साही मित्रोंकी अतिशय प्रेरणा है और दूसरा हमारे हृदयकी उस सोई हुई इच्छाका जागृत हो जाना है जो जैनसमाजमें एक सर्वाङ्गसुंदर आदर्शपत्रको जन्म देना चाहती है। हमें विश्वास है कि हितैषीके प्रेमी पाठक हमारे इस उत्साहको बढ़ानेमें सब तरहसे सहायता देंगे और हमें आर्थिक कष्टसे पीड़ित न होने देंगे। यदि इस समय उन्होंने एक ही एक ग्राहक बढ़ानेकी कोशिश कर दी, तो जैनहितैषीका नयारूप स्थायी हो जायगा और वह जैनसमाजकी एक अभिमानकी चीज़ बन जायगा।

मूल्य कितना रहेगा?

इस नये परिवर्तनमें हमें हितैषीका मूल्य अवश्य बढ़ाना पड़ेगा; परन्तु अपने ग्राहकोंको हम विश्वास दिला सकते हैं कि यह मूल्यकी वृद्धि हम अपने लाभ या मुनाफ़ेके लिए नहीं करते हैं। हितैषीसे हमें कभी मुनाफ़ा हुआ नहीं और हम इससे मुनाफ़ेकी आशा रखते भी नहीं हैं। यदि इसका खर्च इसमें ही निकल आया करे, तो हम सन्तुष्ट हैं। हम अपने परिश्रमके बदलेमें इससे एक पैसेकी भी आशा नहीं रखते हैं। हमने जो नये वर्षके खर्चका हिसाब लगाया है, उसके अनुसार इसका मूल्य **तीन रुपयेसे** कम नहीं रक्खा जा सकता है। और इस मूल्यमें भी तब पूरा पड़ेगा जब हमारे वर्तमान ग्राहक ज्योंके त्यों बने रहकर **कमसे कम २०० ग्राहक और भी बढ़ जायँ। इस कारण—**

वर्तमान ग्राहकोंसे प्रार्थना।

है कि वे मूल्यके कुछ अधिक होजानेका ज़रा भी ख़याल न करें और कमसे कम एक वर्षतक और भी इसके ग्राहक बने रहें। रुपया बारह आनेका अधिक ख़र्च इसके लिए कोई बड़ी बात नहीं हैं। इसके सिवाय अपने मित्रोंमेंसे भी एक एक दो दो ग्राहक बना देनेकी कृपा करें।

उपहारमें एक अच्छा उपन्यास

देनेका प्रबन्ध किया है। इतना अच्छा उपन्यास कि जिससे अच्छा हमारे ग्राहकोंने अपने जीवनमें कभी पढ़ा भी न होगा। यह सामाजिक उपन्यास पवित्र और ऊँचे विचारोंसे भरा हुआ है। करुणरसपूर्ण है। पढ़कर पाठक रोये बिना न रहेंगे। मूल्य उसका बारह आने है। इस मूल्यमें वह खूब बिक रहा है, परन्तु हितैषीके ग्राहकोंको

बिलकुल मुफ्तमें

दिया जायगा। उपहारी ख़र्च, डांक ख़र्च आदि कुछ भी न लिया जायगा। पहले अंकके साथमें ३~) तीन रुपया एक आनेके वी. पी. से भेज दिया जायगा। गत वर्ष हमने अपने ग्राहकोंसे उपहारसहित हितैषीका मूल्य २।~) लिया था, और इस वर्ष ३~) लेंगे। इस हिसाबसे देखा जायगा जो पहलेसे सिर्फ़ बारह आने ही अधिक देना पड़ेंगे।

दो महीनेकी छुट्टी।

नया इन्तजाम करनेके लिए, कवरके लिए चित्रादि बनवानेके लिए समय चाहिए, इसलिए हम दो महीनेकी छुट्टी लेना चाहते हैं। अर्थात् हितैषीका पहला अंक जनवरीमें निकलेगा और तभीसे इसका

वर्ष प्रारंभ होगा। अबतक इसका वर्ष दिवालीसे प्रारंभ होता था, परन्तु आगे अँगरेज़ी सालसे हुआ करेगा। इस दो महीनेके अवसरमें हम

प्रतीक्षा

करेंगे कि हितैषीके प्रेमी पाठक इस बीचमें कितने नये ग्राहक बनाकर भेजते हैं और कितने महाशय ग्राहकश्रेणीसे अपना नाम जुदा करवा लेते हैं। इस अंकके साथ छपा हुआ कार्ड भेजा जाता है, उसे भरवाकर भिजवानेकी प्रत्येक ग्राहक और पाठकसे पुनः पुनः प्रार्थना है। —सम्पादक।

मुफ्तमें जैनहितैषी।

पिछले तीन चार वर्षोंके हमारे यहाँ बहुतसे अंक पड़े हैं। यह कहनेकी जरूरत नहीं कि हितैषीके प्रत्येक अंकमें अच्छे और पढ़ने योग्य लेख होते हैं। उसकी प्रत्येक लाइन कामकी होती हैं। इस लिए जो महाशय पिछले लेख पढ़ना चाहें, वे हमारे पास केवल डांक खर्चके लिए कुछ टिकिट भेज देवें। हम उनके पास पिछले अंकोंमेंसे कोई अंक उठाकर भेज देंगे। उनके भेजे हुए टिकिटोंमें जितने वजनके अंक जा सकेंगे उतने ही भेज दिये जावेंगे। एक पैसेके टिकिटमें एक अंक जा सकता है। अमुक अंक ही भेजो ऐसी आज्ञाका पालन हम न कर सकेंगे, जो अंक मौजूद होंगे वे भेज दिये जावेंगे। ग्राहक महाशयोंको चाहिए कि पिछले अंक अपने मित्रोंको मुफ्तमें मँगा दें और यदि उन्हें लेख पसन्द आ जायँ तो ग्राहक बननेकी प्रेरणा कर दें।

मैनेजर।

राष्ट्रीय ग्रन्थ ।

Printed by C. S. Deole, at the Bombay Vaibhav Press, Servants of India Society's Building, Sandhurst Road, Girgaon Bombay, & Published by Nathuram Premi at Hirabag, Near C. P. Tank Girgaon, Bombay.

(इस अंकके प्रकाशित होनेकी तारीख़ ३०-१०-१५।)